

उत्तरार्द्धम्



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

 KAPWING

॥ श्रीः ॥

योगरत्नाकरः

‘विद्योतिनी’ हिन्दीटीकोपेतम् (उत्तरार्द्धम्)

अथ शूलनिदानं व्याख्यास्यामः ।

यदुकं हारीते—

अनज्ञनाशाय हरश्चिशूलं सुमोच्च कोपान्मकरध्वजस्थ ।

तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयादितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ १ ॥

स विष्णुहुङ्कारविमोहितास्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः ।

स पञ्चभूतानुगतं शारीरं प्रचूरश्चरथस्य हि पूर्वस्थिः ॥ २ ॥

शूल की उत्पत्ति—कामदेव के नाश के लिये मकरध्वज पर कोप कर के छोड़े तु ए शिव जी के विशूल को आता हुआ सहसा देख कर भय से पीड़ित होकर विष्णु के शरीर में बह (मकर-ध्वज) प्रविष्ट हो गया । इस पर विष्णु ने हुङ्कार किया जिस हुङ्कार से मूर्च्छित होकर वह (विशूल) भूमि पर गिर पड़ा और वही शूल नाम से प्रसिद्ध हुआ । वह पांचमौतिक शरीर को चूसता है । यही शूल की प्राथमिक उत्पत्ति है ॥ १-२ ॥

शूलरोपणवर्णीदा यस्य करमात्मजायते । विशूलसम्भवं चैनं शूलमाहुः पुराविदः ॥ ३ ॥

जिसमें शूल गढ़ने के समान अकरमात् पीड़ा हो अथवा छेदने के समान शात हो उसे विशूल से उत्पन्न शूल रोग पुरातत्त्व-विशारदों ने कहा है ॥ ३ ॥

शूलस्फोटनवत्स्य यस्मात्तीवा च वेदना । शूलासक्षत्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥ ४ ॥

इस रोग में शूल स्थान को पोषणे के समान तीव्र पीड़ा होती है इसलिये इसे ‘शूल’ कहते हैं ॥ ४ ॥

तस्य सङ्घायामाह—

पृथग्दोषैः समस्तामद्धन्तैः शूलोऽस्था भवेत् । सर्वप्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रसुः ॥ ५ ॥

शूल का निदान—वातादिक पृथक् २ दोषों से, त्रिदोष से, आम से और दो-दो दोषों के पक्षत्र कोप से (दन्दज दोष से) शूलरोग आठ प्रकार का होता है । इन सब प्रकार के शूलों में प्रायः वायु की ही प्रशानता रहती है ॥ ५ ॥

वातिकशूलस्य कारणं लक्षणं चाह—

व्याथामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।

कलायमुद्गादकिकोरदूषादत्यर्थरूपाध्यशनानिधानात् ॥ ६ ॥

कथायतिकातिविरुद्धजातिविरुद्धवश्लूकशुष्कशाकात् ।

विष्णुकमूनानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादर्तिहास्यभाष्यात् ॥ ७ ॥

वायुः प्रवृद्धो जनयेदि शूलं हृषपार्वपृष्ठमिकवस्तिदेशे ।

जीर्णे प्रदोषे च ब्राह्मणमे च शीते च कोर्पं समुपैति गाढव्र ॥ ३ ॥

ब्रातज शूल—अधिक व्यायाम, अधिक यान (बोडे-हाथी आदि की सवारी) और अति मैथुन करने से, अधिक जागने से, अधिक शीतल जल-पीने से, मध्यर, मूंग, अरदर, कोदो और अति लूप पदार्थ का सेवन, अध्यशन (मोजन कर जुकने पर पुनः मोजन) करने से, आघात लगने से, अधिक कवाय-तिक्त तथा अति विलड (कठिन) अवादि पदार्थ, विलड (प्रकृतिविशद, संयोगविशद तथा ऋतु (समय) विलड पदार्थ, वल्लूर (सूखे हुए मास) तथा सूखे हुए शाकादि के सेवन से, मल, शूक, मूत्र तथा बात के वेग का अवरोध करने से, अधिक-शूक, उपवास तथा अधिक हँसने और बोलने से बढ़ा हुआ (कुपित) वायु, हृदय, पाश्व, पीठ, श्विरदेश और मूत्राशय में शूल उत्पन्न कर देता है । वह शूल जीर्ण में (मोजन के पचने पर), प्रदोष काल में (संध्या में), वर्षा ऋतु में तथा शीतकाल में अधिक तीव्र होता है ॥ २-३ ॥

मुहुर्सुहुश्चोपशमप्रकोपौ विद्वातसंस्तम्भनतोधमेदेः ।
संस्वेदनार्थज्ञनमर्दनाद्यैः दिनभोण्णमोजयैश्च शामं प्रयाति ॥ ४ ॥

बार २ शूल शमन होता है और बार २ शूल का वेग-बढ़ जाता है और मल तथा अवोवायु का अवरोध और सूई चुम्पने (मेहने) के समान पीड़ा ये सब लक्षण होते हैं । तथा वह (बातज) शूल स्वेद कार्म, अभ्यक्त (तैकमर्दनादि) तथा स्त्रिय एवं उषण पदार्थों के मोजन करने से शान्त होता है । ये उपरोक्त निदान तथा लक्षण बातज शूल के हैं ॥ ४ ॥

ऐषिकस्य कारणं लक्षणं चाह—

क्षारातितीचणोणविद्वाहितैलिनिष्पावपिण्याककुलत्थयूर्धैः ।

कटवम्भसौवीरमुराविकारैः क्षोधानलायासरविप्रतापैः ॥ १ ॥

ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः वित्तं प्रकृप्याऽद्यु कर्णाति शूलम् ।

तुण्मोहषाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाक्रमवोपयुक्तम् ॥ २ ॥

पित्तव शूल—अधिक क्षार युक्त पदार्थ, अति तोक्ष-उषण और दाइकारक पदार्थ, तेल, सेम, तिळ की खटी, कुकुरी का यूव, अति कटु, अम्ल, कांजी, सुरा आदि के मक्षण से, अधिक क्रोध करने से, अधिक सेवन, अधिक परिश्रम तथा घूर सेवन से, अधिक मैथुन करने और मोजन के विवरण होने से, पित्त शीत्र कुपित हो कर शूल रोग को उत्पन्न कर देता है, जिससे वृषा, मोह, दाह और नाभिस्थान में पीड़ा, स्वेद, मूर्छा, अम और शोष होता है ॥ १-२ ॥

मध्यनिदेने कुप्यति चार्धरात्रे निदावकाले जलदात्यये च ।

शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ ३ ॥

इस शूल का कोप मध्याह्न, आचीरात, ग्रीष्म और शरद ऋतु में अधिक होता है । यह (पित्तज) शूल शीतकाल में, शीत उपचारों से और स्वादु (मधुर) तथा शीतल पदार्थों के मोजन से शान्त होता है ॥ ३ ॥

इषेषिकस्य कारणं लक्षणं चाह—

आनुपवारिजकिलाटपयोविकारै मांसेषुपिष्ठकृशरातिलक्षणकुलीभिः ।

अन्वयैर्लासजनकैरपि हेतुभिष्ठ इलेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ १ ॥

कफज शूल—आनुपवारि जिलाटपयोविकारै मांसेषुपिष्ठकृशरातिलक्षणकुलीभिः । इन्द्रज के जीवों के मास, जलज (मस्त्यादि) जीवों के मास, जले-फेदे दूष का स्रोता, दूष के विकार दही आदि के अधिक सेवन, मास, ईख, पिठु आदि, खिंचडो, तिळ, पूरी आदि के अधिक सेवन तथा अन्यान्य इसी मांसिति के कफवर्धक कारणों से कफ कुपित होकर शूल उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

हृष्णासकाससदनार्थिसम्प्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुवैः ।

भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च ॥ २ ॥

इस (कफज) शूल में हृष्णास (उबकाई), कास, शिविलता, अरुचि, लालाजाव, आमाशय में आर्द्रता, कोष्ठ तथा सिर में गुरुता आदि लक्षण होते हैं । यह शूल सदा भोजन करने पर, सूर्योदय के समय, शिशिर ऋतु तथा वसन्त ऋतु में अधिक पीड़ा करनेवाला होता है । अर्थात् ये निदान तथा लक्षण कफज शूल के हैं ॥ २ ॥

सत्रिपातिकमाह—सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्विषयक् सर्वभवं हि शूलम् ।

सुकृष्टमेन विषवद्ग्रनुश्यं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १ ॥

सत्रिपातज शूल—जिस शूल में सब दोषों के सभी प्रकार के लक्षण उपस्थित हों उसे वैष्ण सत्रिपातज शूल बोले । यह शूल विवर तथा वज्र के समान कष्टदायक है । इसे विष पैदा त्याज्य कहते हैं क्योंकि यह असाध्य है ॥ १ ॥

आमजमाह—आदोपहृत्तलासवमीणुक्ष्वस्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः ।

कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोऽवं शूलसुदाहरन्ति ॥ १ ॥

आमज शूल—जिस शूल में आटोप (पेट में गुरुगुदाइट), उबकाई, बमन, शरीर की गुरुता, शरीर पर आर्द्र बज्र लगे हुए के समान ज्ञात होना, आनाद, कफ का मुक्त से ग्राव होना, ये सब लक्षण हों तथा कफज शूल के कक्षणों के समान लक्षणों से युक्त हो उसे आमज शूल कहते हैं ॥ १ ॥

द्विदोषजमाह—

द्विदोषलक्षणैरेतेविद्याद्वृलं द्विदोषजम् । वैष्टौ हृकण्ठपाशर्वेषु च शूलः कफवातिकः ॥ १ ॥

द्विदोषज शूल—जिस शूल में दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण हों उसे द्वन्द्व और जिस शूल में मूत्राशय, हृदय कण्ठ और पाश्वदेश इन स्थानों में शूल होवे उसे वात-कफज शूल जानना चाहिये ॥ १ ॥

कुच्छी हृष्णाभिमध्ये यः स शूलः कफपैत्तिकः । दाहउवरकरो धोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥ २ ॥

जिस शूल में कुक्षिस्थान, हृदय और नाभि के मध्य में शूल होवे उसे कफ-पैत्तिक जानना चाहिये । जिस शूल में धोर दाह तथा ज्वर हो उसे वातपैत्तिक जानना चाहिये ॥ २ ॥

तन्त्रान्तरे—वाताम्बकं वस्तिगतं वदन्ति पित्ताम्बकं चापि वदन्ति नाभ्याम् ।

हृष्णाशर्वकुच्छी कफसञ्चिविष्टं सर्वेषु देशेषु च सत्रिपाताव ॥ १ ॥

तन्त्रान्तर से द्विदोषज, द्विदोषज शूल—जो शूल मूत्राशय में हो वह वातज कहा जाता है, जो नाभिस्थान में हो वह पित्तज कहा जाता है तथा जो हृष्ण-पाश्व देश तथा कोख में हो वह कफज कहा जाता है तथा जो सम्पूर्ण स्थानों में हो वह सत्रिपातज कहा जाता है ॥ १ ॥

साध्यासाध्यवमाह—

एकदोषोस्थितः साध्यः कुच्छूसाध्यो द्विदोषजः । सर्वदोषोस्थितो धोरस्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥

साध्यासाध्यता—एक दोष से उत्पन्न हुआ शूल साध्य होता है, दो दोषों से उत्पन्न हुआ कफसाध्य और सब दोषों से उत्पन्न हुआ शूल तथा अनेक उपद्रवों से युक्त शूल अस्तन्त इन्द्रज तथा असाध्य होता है ॥ १ ॥

उपद्रवानाद—

धेदनातिरुषा मूर्च्छां द्वानाहो गौरवाहृची । अमो उवरः कृशत्वं च वलहानिस्तथैव च ॥

कासः आसन्न हिक्का च शूलस्थोपद्रवाः स्मृताः ॥ १ ॥

शूल के उपद्रव—शूल रोग में यदि अतिपीड़ा, तृष्णा, यूच्छी, आनाद, गुरुता, अरुचि, भ्रम, ज्वर, कृशता, बक की हानि, कास, थास और इक्षा हो तो इन्हें उपद्रव जानना चाहिये ।

अथ सामान्यतः शूलचिकित्सा ।

वस्त्रनं लहूनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः । व्यारश्चृण्डः गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥

सामान्यतः शूल चिकित्सा—‘शूल रोग की शान्ति के लिये वस्त्र कम, लहून कम, स्वेदन कम, पाचन, फलवर्ति, क्षार, चूर्ण और क्षार गुटिका आदि का प्रयोग उत्तम होता है ॥ १ ॥

अथ वातशूलचिकित्सामाह—

ज्ञात्वा तु वातजं शूलं स्नेहस्वेद्यैरुपाचरेत् । पायसः कृशरापिण्डः दिनघैर्वा पिशितोरेकटः ॥ १ ॥
आशुकारी हि पवनश्तस्मात्तत्वरया ज्येत् । तस्य शूलाभिपश्चरथं स्वेद एव सुखायाहः ॥ २ ॥

वातशूल चिकित्सा—वातजशूल जान कर उसके लिये स्नेहन कर्म और स्वेदन कर्म करना चाहिये और स्वीर, खिंचवी और स्त्रिय (स्नेह युक्त) मासरस आदि पिण्डाना चाहिये । यह वात आशुकारी (शीघ्रता करने वाला) है इसलिये इसे शीघ्रता से जीतना चाहिये (शमन करना चाहिये) । इस वातज शूल से युक्त रोगी के लिये स्वेदकर्म सुखकर है ॥ १-२ ॥

तिलकल्क स्वेदः—

मुखादिविनिष्पृष्ठतिलकल्कोष्णपोटली । आमिता जठरस्योद्दृशं मुहुः शूलं विनाशयेत् ॥ ३ ॥

तिलकल्क स्वेद—कांजी के साथ तिल को पीस कर कल्क बना कर पोटली में बांध कर गरम कर उदर के क्षेत्र बार २ दुमाने से शूल को (वातिक शूल को) नष्ट करता है ॥ २ ॥

लेपसेकी—

नाभिलेपाज्ञयेशूलं मर्दनं कालिकान्वितम् । विश्वैरण्डतिलैर्वैर्डिपि पिष्टैरभ्लेन पोटली ॥ १ ॥

लेप और सेक—मैनफल को कांजी के साथ पीस कर लेप बना कर नाभि स्थान पर लेप करने से अथवा बेल की छाल, एरण्डमूल की छाल और तिल इनको समान लेकर कांजी के साथ पीस कर पोटली में बांध कर घेट पर फेरने से वातिक शूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

कुलत्यादियूषः—वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्ययूषः ।

संसैन्धवो व्योषयुतं सलावः सहिङ्गुसौवर्चलद्विमात्यः ॥ १ ॥

कुलत्यादियूषः—सेन्धा नमक, सौंठ पीपर, मिर्च, और अनार दाना इनके चूर्णों से युक्त कुक्षी के जूस में स्नेह (घृत) मिलाकर पिण्डाने से वातिक शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ २ ॥

बकादिकाथः—

बकापुनन्वैरण्डबृहतीद्वयगोम्भूरैः । काथः सहिङ्गुलवणः पीतो वातशूलं ज्येत् ॥ १ ॥

बकादिकाथ—बरिआरा, पुननन्वा, एरण्डमूल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरु समझान लेकर काथ कर इसमें शुद्ध हींग और सेन्धा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वातज शूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

शार्ङ्गधरान्नागरादिकाथः—

बागरैरण्डयोः काथः काथ हन्त्ययवस्थ वा । दिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥ १ ॥

नागरादिकाथ—सौंठ और एरण्डमूल अथवा इन्द्रजौ का काथ बना कर उसमें (दोनों काथों में) शुद्ध हींग और सौवर्चल नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वातज शूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

करलसौवर्चलनागराणां सरामठानां समझागिकानाम् ।

चूर्ण कमुखोन अकेन पीतं समीरशूलं विनिहन्ति सदा ॥ १ ॥

करजादि चूर्ण—करज, सौवर्चल नमक, सौंठ और शुद्ध हींग इन द्रव्यों को समझान लेकर चूर्ण कर थोड़े गरम जल के अनुपान से पान करने से वातज शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

राजिकादिलेपः—

राजिकाशिग्रुकस्कं च गोतक्षेण च पेषितम् । तेन लेपेन हस्त्याशु मूलं वातसमुद्धवम् ॥ १ ॥

राजिकादि लेप—राई और सहित्रन की छाल के गाय के तक के साथ पीसकर कल्क बना कर उदर पर लेप करने से शीघ्र वात से उत्पत्त शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिङ्गवादिलेपः—

हिङ्ग तैलं सलवणं गोमूत्रेण विपाचितम् । नाभिस्थाने प्रदातात्थं यस्य शूलं स्वेदनम् ॥ १ ॥

हिङ्गवादि लेप—हींग, तैल का तेल और सेन्धानमक इनको गोमूत्र में मिलाकर पाककर बिसे बढ़ी पीड़ा के साथ वातिकशूल हो उसके नाभिस्थान पर लेप करना चाहिये । इससे वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

शूले साटोपी—

तैलमेरण्डजं वाऽपि दशमूलस्थं वारिणा । पीतं निहन्ति साटोपं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ १ ॥

शूल और आंटोप में चिकित्सा—एरण्ड का तेल दशमूल के काथ में प्रक्षिप्त कर अथवा शूल हींग और सौवर्चल नमक के चूर्ण को दशमूल के काथ में प्रक्षिप्त कर पान करने से आंटोप सहित वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ पित्तशूलचिकित्सामाह ।

वामयेत्पित्तशूलार्थं पटोलेज्जुरसादिभिः । पत्रांद्विरेचयेऽस्यद्युपिष्ठसुवृलमविरेचनेः ॥ १ ॥

पित्तशूल चिकित्सा—प्रथम पित्तवशूल के रोगी को परनर के पत्ते और ईख के रस आदि से (आदि पद से अन्य वामकयोग से) वमन कराना चाहिये । पश्चात पित्तज गुलम में कहे हुए विरेचक योगों के द्वारा भल्लोमांति विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

शतावर्यादिकाथः—शतावरी सयष्ट्याद्वाह्ना वात्यालकुशगोम्भूरैः ।

शूतशीतं पिवेत्तोयं सगुदसौद्रशकरम् । पित्तशूलास्वदाह्नं हिङ्गाऽवरवमिच्छिदम् ॥ १ ॥

शतावर्यादिकाथ—शतावरी, जेठीमधु, वरिआरा, कुश, गोखरु सम भाग लेकर काथ बनाकर शीतल कर उसमें शुद्ध पुराना और मधु इसका प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तशूल, रक्तदोष (स्नाव), दाह, हिङ्गका, ज्वर और वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

बृहत्यादिकाथः—

बृहतीगोम्भैरण्डबृहतीद्वयगोम्भूरैः । पीतोः पित्तभवं शूलं सधो हन्त्युः सुदारणम् ॥ १ ॥

बृहत्यादिकाथ—बड़ी कटेरी, गोखरु, एरण्डमूल, कुश की जड़, कास (राढ़ी) की जड़, ईख की जड़, सुगन्धवाला समान भाग लेकर काथ कर पान करने से कठिन से कठिन पित्तशूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलारग्वधादिकाथः—

त्रिफलारग्वधादिकाथः शक्तराम्बौद्रसंयुतः । रक्तपित्तहरो द्वाहपित्तशूलनिवारणः ॥ १ ॥

त्रिफलारग्वधादिकाथ—श्रावला, ईर्षा, बहेड़ा और अमलतास समझान लेकर काथ कर शीतल होने पर शक्तर और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तपित्त, दाह तथा पित्तशूल को नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलारग्वधादिकाथः—

त्रिफलारग्वधादिकाथः शूलम् । पाययेन्मधुसंमिश्रं द्वाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

ओगरशाक्तः

त्रिफलादि काथ—आंवरा, हरा, वहेरा, नीम की छाल, जेठीमधु, कुटकी, अमलतास का गूदा। सम भाग लेकर काथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से दाह और शूक को शमन करता है ॥ १ ॥

शतावरीस्वरसः वृन्दादः—

शतावरीरसं चौद्रयुक्तं प्रातः पिवेत्तरः । दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तसथापहम् ॥ १ ॥

शतावरी स्वरस—शतावरी स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर प्रातः काल पान करने से दाह और शूक शान्त होकर सब प्रकार के पित्तज्वरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

धात्र्यादियोगः—

धात्र्या रसं विद्यार्थी वा त्रायन्तीगोस्तनाभ्वाना । पित्तशूलनिवारणम् ॥ १ ॥

धात्र्यादि काथ—आंवले का स्वरस अथवा विदारीकन्द का स्वरस तथा त्रायमाण और मुनक्का इनके काथ शक्तरा के प्रक्षेप को देकर पान करने से पित्तज्वल शमन होता है ॥ १ ॥

धात्रीचूर्णादिः—

प्रलिङ्गापित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समालिङ्गकम् । सगुडां धृतसमिमश्रां भच्छयेह्वा हरीतकीम् ॥ १ ॥

धात्रीचूर्ण—आंवले के चूर्ण को मधु के साथ लेह बनाकर अथवा हरी के चूर्ण को पुराने गुड़ और घृत के साथ मिलाकर अक्षुण करने से पित्तज्वल नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडादियोगः—

गुडालियव चीरं सर्पिंहुर्गं विरेचनम् । जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनः ॥ १ ॥

गुडादियोग—गुड़ पुराना, शालिधान, जी और दूध इनका खीर पिलाने से, तथा दूध में घृत मिलाकर पिलाने से, विरेचन देने से, जांगल जीवों के मांस का रस पिलाने से पित्तज्वल शमन होता है ॥ १ ॥

अथ कफशूलचिकित्सामाह ।

शायननं जाङ्गलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम् । मायानि जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

कफशूल चिकित्सा—कफशूल में शालिधान्य, जांगल जीवों का मांसरस, नीम, कटुरसवाले पदार्थ, मध्य और पुराने गेहूँ इनका प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

त्रिलवणादिचूर्णम्—

लवणन्त्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् । सुखोल्लोनाभभसा पीतं कफशूलहरं परम् ॥ १ ॥

त्रिलवणादि चूर्ण—सेन्धानमक, सौचर नमक (सौबर्चल), विडनमक, पीपरि, पिपरामूल, चब्द, चित्रकमूल, सौंठ, शुद्धींग, समभाग लेकर चूर्णकर उणोदक के अनुपान से सेवन करने से शूल को नष्ट करने के लिये उत्तम है ॥ १ ॥

त्रिदोषशूलचिकित्सामाह ।

शङ्खचूर्णयोगः—

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिंशु द्योषसंयुतम् । उणोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ १ ॥

शङ्खचूर्णयोग—शङ्खभस्म, सेन्धानमक, शुद्धींग, सौंठ, पीपरि और मरिच सम भाग लेकर चूर्णकर उणोदक के अनुपान से पान करने से त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

मण्डूरावलेहः—

बोमूधसिद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलहन्मधुसंयुतम् शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २ ॥

मण्डूरावलेह—गोमूत्र के योग से सिद्ध किया हुआ मण्डूरमस्तम और हर्दा-वहेरा तथा आंवला इनका चूर्ण, सब समान भाग लेकर मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से त्रिदोषजशूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

शूलचिकित्सा

अथ आमशूलचिकित्सामाह ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी । शेषमामहरं सर्वं चयदपिनविवर्धनम् ॥ १ ॥

आमशूल चिकित्सा—आम से उपज शूल में कफजशूल को नष्ट करने वाली समूण क्रियाएं तथा आम को नष्ट करनेवाली समूण अन्य क्रिया (औषध-पथ्यादि) और जो २ अविवर्धक क्रियाएं हैं उन्हें करनी चाहिये ॥ १ ॥

चित्रकग्रन्थि कैरण्डगुणीधान्यजलैः श्रतम् । सहिंशुसंधर्वाद्यहमाशुलहरं परम् ॥ १ ॥

चित्रकग्रन्थि काथ—चित्रकमूल, पिपरामूल, घरण्डमूल, सौंठ, चिनिया और शुगन्वाला सम भाग लेकर काथ कर उसमें शुद्धींग, सेन्धानमक और विडनमक का प्रक्षेप देकर सेवन करने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

परण्डादिकायः—परण्डविलववृहतीद्वयमातुलुङ्गपाण्डित्रिकटुमुलहृतः कथायः ।

सच्चारहिंशुलवणोरुत्तेलमिश्रः श्वेष्यंसपृष्ठहृदयस्तनदहु पेयः ॥ १ ॥

परण्डादि काथ—परण्डमूलत्वक्, वेल की छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, विकौरा नीबू, पथरचूर, सौंठ, पीपरि, मरिच, सम भाग लेकर काथ कर इसमें चवाला, शुद्धींग, सेन्धानमक और परण्डतेल का प्रक्षेप देकर पान करने से श्वेष्य, अंसदेश, पीठ, हृदय और स्तन की पीड़ा शमन होती है ॥ १ ॥

परण्डादिकाययोगः—परण्डतेलं घड्मार्गं लशुनस्य तथाइकम् ।

एकं हिंशु त्रिसिन्धूर्थं सर्वमेकत्र मर्दयेत् । त्रिनिष्कं भच्छयेच्चानु श्वामशूलप्रशान्तये ॥ १ ॥

परण्डतेलादियोग—परण्ड का तेल ६ भाग, शुद्ध लहसुन आठ भाग, शुद्धींग एक भाग, सेन्धानमक तीन भाग, लेकर चूर्णकर योग्य मात्रा व अनुपान के द्वारा (उणोदक से) ३ निष्क (३ शांत) की मात्रा से [कहीं २ एक शांत की मात्रा भी है] सेवन करने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिंशुत्रिगुणसेन्धर्वं तस्मारिगुणतैलमैरण्डम् । त्रिगुणरासोत्तरसं गुरुमोदादतंशूलज्ञम् ॥ २ ॥

शुद्धींग १ भाग, सेन्धानमक ३ भाग, परण्डतेल ९ भाग, लहसुन का रस २७ भाग इन सबको एकत्र मिलाकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से गुरुमोदा और शूल को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ द्रुन्द्वजशूलचिकित्सा ।

कण्टकार्यादिकायः—निदिपिधिका वृद्धार्थी च कुक्षाकोकुक्षालकाः ।

सदंष्ट्रैरण्डमूलं च चारिणा सह पाचयेत् । पिवेत्सर्वशर्चौद्दैश्च शूले पित्तानिलामके ॥ १ ॥

कण्टकार्यादि काथ—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कुश की जड़, कास की जड़, ईख की जड़, शुगन्वाला, गोखरू और परण्डमूल सम भाग लेकर काथ कर शीतल होने पर शक्तकर और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने के लिये पित्तज्वरातज निश्चित द्रुन्द्वज शूल में देना चाहिये ॥ १ ॥

पटोलादिः—

पटोलत्रिफलारिष्टामृतं चौद्रयुतं पिवेत् । पित्तश्लेष्मजवरच्छृद्विदाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

पटोलादि काथ—परवर की पत्ती, हरा, आंवरा, वहेरा, नीम की छाल, गुरुचि समभाग लेकर काथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पित्तकफज शूल, ऊवर, बमन, दाह और शूल में पान करने के लिये देना चाहिये । इससे ये रोग शमन होते हैं ॥ १ ॥

मर्दन कर इस चूर्णे को १ कर्ष की मात्रा से मधु के अनुपान से चाटने से आडमान रोग, मल की कठिनता, उदर और कफनपित के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शङ्खवटी—

चिक्कादारं पञ्चपलं लवणानि पलं पलम् । सञ्चूर्यं निजिपेतप्रस्थद्वयैर्जन्मीरत्वारिभिः ॥ ३ ॥
शङ्खं दशपलं तप्तवा निजिपेतस्त्वारतः । तत्समस्तं विशोष्याथ हिकु व्योर्षं चतुष्पलम् ॥ २ ॥
बलिसूतविषादागानपलाध्यं च पृथक्पृथक् । एतत्समस्तं सम्मर्थं जन्मीराम्लैर्दिनश्रव्यम् ॥ ३ ॥
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद् बुधः । एकैकां भज्येत्प्रातः कोषणतोयं पिवेदनु ॥ ४ ॥
सर्वशूलं हरेद् गुणमज्जीर्णं परिणामज्जम् । अतिसारगदं हन्त्याद् ग्रहणीयं च विशेषतः ॥ ५ ॥

शङ्खवटी—इमली का क्षार ५ पल, पाचों नमक पृथक् २ एक एक पल लेकर चूर्ण कर जमीरी नीबू के दो प्रस्थ रस में मिला देवे पश्चात इसमें शुद्ध शङ्ख २० पल लेकर अविन पर तपा २ कर सात बार चुकावे, फिर इसको भली-भाँति मर्दन कर सुखा कर इसमें शुद्ध हींग, सौंठ, मरिच, पीपरि इनका चूर्ण ४-५ पल मिलावे और शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध विष इनको आधा २ पल लेकर पारद गन्धक की कज्जली कर फिर विष उसके साथ मर्दन कर सबको एकत्र कर जमीरी नीबू के रस में ३ दिन तक मर्दन कर वैर की गुठली के प्रमाण की बटी बना कर प्रातकाल एक २ बटी डणोदक के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के शूल, गुण, अजीर्ण, परिणाम शूल, अतीसार रोग और विशेष कर ग्रहणीय रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

सूर्यप्रभावटी—व्योर्षग्रन्थिवचारिनहुजरणहृन्दं विषं निम्बुक-

द्वावैराद्वक्त्वे रसेविमृदितं तुलयं मरीचोपमा ।

कर्तव्या वटिकाऽथ सा दिनसुखे भुक्ता कवोषणाभुना ।

शूलं त्वधविधं निहन्ति सहसा सूर्यप्रभा नामतः ॥ १ ॥

सूर्यप्रभावटी—सौंठ, पीपरि, मरिच, पिपरामूल, वच, चित्रकमूल शुद्ध हींग, जीरा और कृष्ण जीरा, शुद्ध मीठा विष, लेकर उत्तम चूर्ण कर जमीरी नीबू के रस में मर्दन करे फिर अद्रक के रस में मर्दन कर मरिच के समान बटी बना कर प्रायः काल डणोदक के अनुपान से सेवन करने से आठों प्रकार के शूल को यह 'सूर्यप्रभा' नाम की बटी सहसा नष्ट कर देती है ॥ १ ॥

खण्डपिष्पली—

कणाचूर्णं तु कुडवं षट्पलं हविषस्तथा । पलषोडशकं स्पण्डं शतावर्याः पलाष्टकम् ॥ १ ॥
द्वीरप्रस्थद्वये सार्वं लेहीभूते तदुद्धरेत् । त्रिजातसुस्तवान्याकं शुण्ठीमांसीद्विजीरकम् ॥ २ ॥
अभ्याद्यमलकं चैव चूर्णं दादशकार्षिकम् । तदधं मरिचं भागं सारं खादिरमेव च ॥ ३ ॥
मधुविषपलसंयुक्तं खादेत्सिद्धं यथाबलम् ।

शूलारोचकहृष्णास्तच्छुर्दिपित्तामलरोगनुत् । अग्निसन्दीपनी हृष्णा खण्डपिष्पलिका मता ॥ ४ ॥

खण्डपिष्पली योग—पीपरि का चूर्ण एक कुडव (आधामानी) गोदृष्ट ६ पल, शक्ता १२ पल शतावरी स्वरस ८ पल और गोदृष्ट ३ पल प्रस्थ इनको लेकर अवलेह पाक की विधि से पाक करे जब लेह सिद्ध हो जावे तब उत्तरकर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोया, धनिया, सौंठ, जटामासी, जीरा और कृष्णजीरा, दर्हा और बाँचला इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण पृथक् २ बारह २ कर्ष लेवे और मरिच का चूर्ण ६ कर्ष, खेर का चूर्ण १२ कर्ष लेकर एकत्र मिलाकर मर्दन कर शीतल होने पर मधु ३ पल मिलाकर रख लेवे । इस अवलेह को अग्निवल के अनुसार सेवन करने से शूल, अरुचि, उकाई, बमन और अग्निपित्तरोग नष्ट होते हैं और यह लेह अग्निको दीप करता है और हृदय को द्वितकर है । इसका नाम खण्डपिष्पली (लेह) है ॥ १-५ ॥

घृतस्—

घृताच्चतुर्गुणो देयो मातुलहरसो दधि । शुष्कमूलकोलाग्लकषायो दाढिमाभसा ॥ १ ॥
विड्गुलवणचारं पञ्चकोलयवानिभिः । पाठामूलककलकेन सिद्धं शूले घृतं मतम् ॥ २ ॥
हृपार्श्वशूलं वै श्वासं कासं हिक्कां तथैव च । वर्धमगुलमप्रमेहाशौवातव्याधीर्णश नाशयेत् ॥ ३ ॥

घृत प्रकरण—गाय का मूर्च्छित घृत एक प्रस्थ और घृत से चौगुना मातुलज्ज (विजौरा) नीबू का रस, दही, शुष्कमूलक (सूखीमूली) का काथ, वैर के फल अथवा अरणवेत के फल का काथ और अनार का रस प्रत्येक ४ प्रस्थ लेकर पृथक् २ पाककर इनमें बांधीरंग, सेवानमक, यवाखार, पीपरि, पिपरामूल, चब्य, चित्रकमूल, सौंठ, अजवाशन, पुरेनपादी की जड़, समान मिलित हुए प्रस्थ लेकर कक्षकर उपर्युक्त ओषधियों में मिलाकर घृत सिद्ध कर उत्तार-छानकर इस घृत का सेवन करने से शूल में उत्तम लाभ करता है और हृदय तथा पाश्वशूल, श्वास, कास, हिक्का, घृद्धिरोग, गुणम, प्रमेह, अरुचि और वात-व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ रसौ ।

शूलगज्जकेसरी रसः—

रसविषगन्धकपर्वत्तारेण सिन्धुपिष्पलीविश्वैः । अहिवल्लयग्नुविष्वैः शुलेभरिद्विग्नोऽथस्म
शूलगज्जकेसरी रस—शुद्धपारद, शुद्धमीठा विष, शुद्धगन्धक, कौदीभस्म, यवाखार, सेवानमक, पीपरि का चूर्ण और सौंठ का चूर्ण समान भाग लेकर पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर सबको एकत्र मिलाकर पान के रस में मर्दन कर २ रसी के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह शूलगज्जकेसरी नामक रस शूल तथा अन्यत्वं कई प्रकार के रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अन्यत्वं—ज्ञारं कपर्दीद्विषसैन्धवौ च व्योर्षं च सम्मर्थं भुजङ्गवल्लयाः ।

रसेन गुज्जाप्रिमितः प्रदिष्टः समीरशूलेभरिदिः प्रचण्डः ॥ १ ॥

यवाखार, कौदीभस्म, शुद्धमीठा विष, सेवानमक, सौंठ, मरिच, पीपरि समान भाग, लेकर उत्तम चूर्ण कर पान के रस के साथ मर्दन कर १ रसी के प्रमाण की बटी बनाकर सेवन करने से शूल नष्ट होता है इसका नाम 'समीरशूलगज्जकेसरी' है ॥ १ ॥

अथ पद्धयापश्यम् ।

पटोलं कारवेशं च वास्तुकं शिग्रुजं तथा । सामुद्रं लघुनं वाऽथ वालिः संवरसरोषितः ॥ १ ॥

पृष्ठदत्तैलं सुरभीजलं च तस्मात्तु ज्वरीररसोऽपि कुष्ठम् ।

लघूनि च चाररजासि चेति वर्यो हितः शूलगदादितेभ्यः ॥ २ ॥

पद्धयापश्य—परवर, कैरली, वशुआ, सहिजन, सामुद्रनमक, लहसुन, एक वर्ष का पुराना शालिजन का चावल, परण्डतैल, गोमूत्र, राष्ण जल, जमीरी नीबू का रस, कूट, लघु पदार्थ और क्षार चृण्डिवे सब शूल के रोगियों के लिये द्वितीयं (द्वितीकर अथवा पद्धय) कहे गये हैं ॥ १-२ ॥
विषद्वयन्यज्वरपानानि जागरं विषमाशनम् । रुक्षतिक्षकव्याधाणि शीतलानि गुरुणि च ॥ ३ ॥
व्याधामं मैथुनं मध्यं वैदलं कटुकानि च । वेगरोधं शूर्चं क्रोधं वर्जयेच्छूलवालः ॥ ४ ॥

विषद्वय भोजन, रात्रि जागरण, विषम भोजन, रुक्ष, तिक्क, क्षवाय, शीतल और गुरु पदार्थ, व्याधाम, मैथुन, मदिरा, दाल, कटु पदार्थ, वेगवरोध (मूर्च-मण्डादि का अवरोध), शूल और क्रोधं ये सब शूल का रोगी त्वाग दे अर्थात् ये अपश्य हैं ॥ ३-४ ॥

अथ परिणामशूलनिदानप्राप्तम् ।

स्वैर्निवानैः प्रकपितो वायुः सम्भिहितस्तदा । कफपितो समावृत्य शूलकारी भवेद्वली ॥ १ ॥

योगरत्नाकरः

परिणाम शूल का निदान—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित हुआ बलवान् वायु कफ और पित्त में व्याप्त होकर शूल को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—

बलासः प्रस्तुतः स्थानातिपत्तेन सह मूर्च्छितः । वायुमादाय कुहने शूलं जीर्यति भोजने ॥ १ ॥
कुच्ची जठरपाशेषु नाभ्यां बहस्ती रुतभान्तरे । पृष्ठमूलप्रदेशेषु सर्वेषेषु वा पुनः ॥ २ ॥

जब कफ अपने स्थान से न्युत होकर पित्त के साथ मूर्च्छित हो जाता है तब वायु उसको ले जाकर भोजन के पचते समय में शूल को उत्पन्न करता है जिससे कोखों में, उदर में, पार्वत्यथान में, नाभि स्थान में, सूक्ष्माशय में, स्तनों में, पृष्ठमूल (त्रिक देश) आग में शूल होता है ॥ १-२ ॥

भोजन कर केने पर, वमन हो जाने पर तथा अन के जीर्ण हो जाने पर शूल में शान्ति आ जाती है । साठी बान, जौ और शालिधान के भात के सेवन से बढ़ता है ॥ ३ ॥
तत्परीणमज्जं शूलं दुविज्ञेयं महागदम् । आहाररसवाहानां स्तोतसां दुष्टिहेतुकम् ॥ ४ ॥

उस शूल को आहार के रसों को बहन करने वाली नाड़ियों के दूषित होने के कारण उत्पन्न हुआ दुविज्ञेय महारोग को परिणाम शूल कहते हैं ॥ ४ ॥

केचिद्ब्रह्मवं प्राहुरन्ये तत्पक्षिद्वेषजम् । पक्षिशूलं वदन्यथेके केचिद्ब्रह्मविदाहजम् ॥ ५ ॥

कोई - आचार्य उसे अनन्द्रव शूल अथवा पक्षिदोष से उत्पन्न (पक्षिशूल) कहते हैं तथा कोई आचार्य 'अन्नविदाहज शूल' कहते हैं ॥ ५ ॥

तस्य सामान्यलक्षणमाह—

शुके जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् । तस्य लक्षणमेतद्वि समावेन प्रकीर्यते ॥ १ ॥
परिणाम शूल के सामान्य लक्षण — जिस शूल में भोजन के पचने के समय शूल हो उसे 'परिणामज शूल' कहते हैं । उसका लक्षण यहाँ संक्षेप से कहते हैं ॥ १ ॥

वातिकमाह—

काधमानाटोपविष्मूष्मविवन्धारतिवेषनः । स्तिर्भवोजोपशामं प्रायो वातिकं तद्वदेद्विषक् ॥ १४ ॥
वातादिक परिणाम शूल — जिस परिणाम शूल में आधमान, पेट में आटोप, मल-मूत्र का अवरोध हो, मन खिल्न रहे, कम्पन हो तथा रिनर्थ और रण प्रक्रिया से प्रायः शूल शान्त हो जावे उसे वातिक परिणाम शूल कहते हैं ॥ १ ॥

पैतिकमाह—

तृष्णादाहारुचिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् । शूलं शीतशमं प्रायः पैतिकं तद्वदेद्विषक् ॥ १ ॥

पैतिक परिणाम शूल — जिस परिणाम शूल में तृष्णा, दाह, अरुचि, स्वेद आदि शूल के समय होते, और कड़, अम्ल तथा लवणरस के व्यवहार से शूल में वृद्ध हो और प्रायः करके शीतल पदार्थ के सेवन से शूल शान्त हो जावे उसे वैद्य 'पैतिक परिणाम शूल' कहते हैं ॥ १ ॥

इलैचिमिकमाह—

छुर्दिहलाससमोहस्वरपक्षदीर्घसन्ततिः । कटुतिकोपशान्तं हि तद्वच श्येयं कफात्मकम् ॥ १ ॥

कफज परिणाम शूल — जिस परिणाम शूल में वमन, हल्लास, मोह, मन्द र शूल हो तथा चिरकाल तक शूल का बैग बना रहे एवं जो शूल कड़ और तिक पदार्थों के सेवन से शान्त हो उसे 'कफज परिणाम शूल' जानना चाहिये ॥ १ ॥

द्विदोषमाह—संस्थृलक्षणं तुदृष्ट्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ।

शूलचिकित्सा

द्विदोषज परिणाम शूल — दो दोषों के मिलित लक्षण जिस परिणाम शूल में हों उसे द्विदोषज जानना चाहिये ॥

सान्त्रिपातिकमाह—त्रिदोषजसाध्यं स्यारचीणमांसबलाबलम् ॥ १ ॥

सान्त्रिपातिक परिणाम शूल — तीनों दोषों के मिलित लक्षण जिसमें हो वह त्रिदोषज है । वह त्रिदोषज तथा जिस परिणाम शूल में रोगी के मांस, बल और अंगी क्षीण हो गये हों, ये दोनों असाध्य हैं ॥ १ ॥

अन्नद्रवाल्यम—

जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे च यच्छूलमुपजायते । तदप्यसाध्यं नित्यस्वाधुक्तं वैद्यविशारदैः ॥ १ ॥

अन्नद्रव शूल — जो शूल अन्न के पचने पर तथा पचने के समय अथवा अजीर्ण में भी उत्पन्न हो जाता है वह नित्य है अत एव असाध्य है । ऐसा वैद्यविशारदों ने कहा है ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यप्रयोगेण झोजनाभोजनेन वा । न शम्भं आति नियमासोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २ ॥

जो शूल पथ्य करने पर अथवा कुपथ्य करने पर अथवा भोजन करने पर वा नहीं करने पर किसी भी प्रकार से नहीं शान्त होता है वह शूल 'अन्नद्रव' कहकाता है ॥ २ ॥

अथायं प्रयोगं त्रिदोषविकृतित्वादसाध्यः—

आनाहो तौरवं छुर्दिर्भवस्तुल्या उवरोऽस्यचिः । कृशार्चं बलहानिश्च वेदनाऽतिप्रवर्तते ॥ ३ ॥

उपद्रवा दक्षैवते शूले च परिणामते । सोपद्रवोऽप्यसाध्यः स्यारक्ष्येण निष्पद्वः ॥ २ ॥

त्रिदोष के विकार से परिणाम शूल की असाध्यता—आनाह, शुरुता, वमन, भ्रम, तृप्ता, उवर, अरुचि, कृशता, बल की दृष्टि और अधिक पूंडी होना, ये दस परिणाम शूल के उपद्रव हैं । उपद्रव सहित परिणाम शूल भी त्रिदोषज की भाँति असाध्य है और उपद्रव रहित परिणाम शूल—कट साध्य है ॥

अथ तच्चिकित्सा ।

लङ्घघनं प्रथमं कुर्याद्भूमनं च विरेचनम् । वस्तिकर्म परं चात्र पक्षिशूलोपशान्तये ॥ ३ ॥

परिणाम शूल चिकित्सा—परिणामशूल में प्रथम लहून, वमन और विरेचन करा कर वस्तिकर्म करने से शूल शमन हो जाता है ॥ ३ ॥

वातजं स्नेहयोगेन पित्तजं रेचनादिना ।

कफजं वमनाद्यैश्च पक्षिशूलमुपाचरेत् । द्वन्द्वजं स्नेहयोगेन तस्मियोगेन सर्वजम् ॥ २ ॥

वातजनित परिणाम शूल को स्नेहयुक्त योगों से, पित्तजनित को रेचनादि से, कफजनित को वमनादि से शमन करे और द्वन्द्वज परिणाम शूल को स्नेहयुक्त योगों से तथा तीनों दोषों में कहे गये योगों से त्रिदोषज को विचारपूर्वक चिकित्सा करके शमन करे ॥ २ ॥

कल्कः—

विष्णुक्रान्ताजटाकक्षः सितार्ष्णौद्वृत्यैर्युतः । परिणामभवं शूलं नाशयेत्सप्तसिर्दिनैः ॥ १ ॥

कल्क प्रकरण — विष्णुक्रान्ता (अपराजिता) की जड़ के कल्क में शर्करा-मधु और वृत्त मिला कर सेवन करने से सात दिन में परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

शुण्ठीतिलगुडः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् । परिणामभवं शूलमामवातश्च नशयति ॥ २ ॥

सोंठ, तिल और पुराना गुड इनको समान लेकर कल्ककर दूध के अनुपान से सेवन करने से परिणाम शूल और आमवात नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

नागरतिलगुडकरं पयसा संसध्य यः पुमानशात् ।

उद्गं परिणतिशूलं सप्ताहायति चावश्यम् ॥ ३ ॥

सोंठ, तिल और पुराने गुड के कल्क दूध के साथ पकाकर जो सेवन करता है उसका अतिकठिन परिणामशूल सात दिन में अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

शम्बूकभ्रस्मयोगः—

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोध्येन तत्त्वणात् । पकिंजं विनिहन्त्याशु शूलं विषुश्चिवासुरान् ॥
शम्बूकभ्रस्म योग—शम्बूक (खोवा) की भ्रस्म को ठण जल के अनुपान से सेवन करने से शीघ्र पक्षिशूल इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार विषु भगवान से असुर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शम्बूकादिवटिका—

शम्बूकमूषणं चैव पक्षिवै लुभणानि च । सर्वांशा गुटिकां क्रावा कल्पु करमेन च ॥ १ ॥
आत्मोजनकाले वा भज्येच्च यथाबलम् । शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहस्रा परिणामजात् ॥ २ ॥

शम्बूकादि वटिका—शम्बूक भ्रस्म, मरिच, पृथक् २ पांचों नमक समान लेकर चूर्णकर कल्पुक (करमी) के पत्ते के साथ मर्दन कर बटी बनाकर प्रातःकाल अथवा भोजन के समय बढ़ा-नुसार मात्रा से सेवन करने से मनुष्य परिणामशूल से (इठात) अवश्य सुक्ष हो जाता है ॥ १-२ ॥

क्षीरमण्डूरः—

लोहकिंष्टं पलान्यष्टौ गोमूत्रार्धांडके पचेत् । परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति न संशयः ॥ १ ॥

क्षीरमण्डूर—८ पल शुद्धमण्डूर को २ प्रस्थ गोमूत्र में मिलाकर विषिपूर्वक पकाकर गाढ़ा रो जाने पर उतारकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से शीघ्र तथा निश्चित ही परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

तारमण्डूरः—

विडङ्गं चित्रकं चैवं त्रिफला व्यूषणानि च । नवभागानि चैतानि लोहकिंष्टसमानि च ॥ १ ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्तवा मूत्राद् द्विगुणो गुडः । शनैर्मृद्विना पक्ववा सुखिदं पिण्डतां गतम् ॥
स्त्रियभाष्टे विनिचित्य भज्येत्कोलमात्रया । प्राण्मध्यान्तकमेव भोजनस्थ प्रयोजितः ॥ २ ॥

योगोऽयं शमयस्थाशु पक्षिशूलं सुदारुणम् ।

कामलां पाण्डुरोगं च शोथमेदोनिलार्द्दसाम् । शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया प्रकटीकृतः ॥ ३ ॥

तारमण्डूर—बामीरंग, चित्रकमूल, चैव, आंवारा, हरी, बहेरा, सौंठ, मरिच, पीपरि, प्रयेक एक २ भाग लेवे और मण्डूर शुद्ध ९ भाग, गोमूत्र अठारह भाग और पुराना गुड़ २६ भाग लेकर प्रथम गोमूत्र, मण्डूर और गुड़ को एकत्र कर गुडपारु विषि से पाक सिद्ध कर उसमें उपर्युक्त ९ ओषधियों के इलक्षण चूर्ण को मिलाकर पिण्ड के समान दुए उस ओषध को स्त्रिय वात में रख लेवे । इसको १ कंष्ठ के प्रमाण की मात्रा से भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से यह योग कठिन पक्षिशूल को शीघ्र शमन करता है और कामला, पाण्डुरोग, शोथ, मेदोरोग, वातव्याधि तथा अर्शरोग को नष्ट करता है । शूल से पीड़ितों पर कृपा करके ताराने इस योग को प्रकट किया है । इसलिये इस योग का नाम 'तारामण्डूर' है ॥ १-४ ॥

भीममण्डूरः—

यवचारकणाशुण्टीकोलग्रन्थिकचित्रकात् । पर्येकं पलमादाय प्रथमं लोहस्थ किंद्रः ॥ १ ॥
शनैः पचेद्यस्पात्रे यावद्वर्धप्रलेपनम् । दत्ताद्विगुणगोमूत्रं किट्टाद्विद्विवृक्षणः ॥ २ ॥

ततोऽक्षमात्रान्वटकान्योजयेत्सप्तरात्रतः ।

आदिमध्यावसानेषु भोजनस्थेचित्य वै । स भीमवटको ह्येव परिणामसंगतः ॥ ३ ॥

भीममण्डूर—जवाखार, पीपरि, सौंठ, बैर, पिपरामूल और चित्रकमूल प्रयेक एक २ पल शुद्ध मण्डूर एक प्रस्थ लेकर प्रथम मण्डूर को अठाने गोमूत्र के साथ विषिपूर्वक लोहे के पात्र में मन्दार्चिन से पाक करे गाढ़ा होने पर उसमें उपर्युक्त जवाखारादि के इलक्षण चूर्ण को मिलाकर एक कंष्ठ के प्रमाण की बटी बना कर भात रात तक भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से यह भीममण्डूर शूल को निश्चित नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

शतावरीमण्डूरः—

संसाध्य चूर्णितं क्रावा मण्डूरस्थ पलाष्टकम् । शतावरीरसस्थाष्टौ दधनश्च पयसस्तथा ॥ १ ॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गध्यस्थ सर्पिषः । विपच्चेत्तर्वेषेकस्थ याविपृष्ठदत्तवामानुयात् ॥ २ ॥
सिद्धं तु भक्षयेन्मध्ये ग्रान्ते त्रुक्तस्थ चाग्रतः । वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम् ॥ ३ ॥

निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ।

शतावरी मण्डूर—शुद्ध मण्डूर का चूर्ण, शतावरि का रस, दही और दूध प्रयेक ८ पल, और गाय का घृत २ पल, लेकर एकत्र कर विषिपूर्वक पाक करे जब पिण्ड बैंधने लगे तब उतार कर रख लेवे और इसको भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से वातज शूल, पित्तज शूल और परिणाम शूल नष्ट होते हैं । मण्डूर का यह योग निश्चित ही शूल को नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १-३ ॥

कुधे निर्वापणं कार्यं यद्या बहुसुतारसे । अथवा चोभयोरेव लोहकिंष्टस्य सप्तधा ॥ ४ ॥

रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्थायदि मर्दनात् । तदा पाकं विकानीयान्मण्डूरस्य भिषवरः ॥

मण्डूर पाकविधि—मण्डूर की तपा कर दूध में अथवा शतावरि के रस में अथवा दोनों में सात २ बार बुझावे इस प्रकार की किया करने पर जब मण्डूर का रस और गन्ध शुभ हो जावे और पाक मर्दन करने पर वस्ती के समान हो जावे तब मण्डूर का पाक डूष्म बुक्षा जानना चाहिये ॥ ४-५ ॥

लोहगुणुलः—

त्रिफला सुस्तकं च्योषं विडङ्गं पौष्टकं चैव । चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लकणचूर्णिरम् ॥

अथोभ्रस्म पलान्यष्टौ गुगुलुतावदेव तु त्रिपविष्यामृद्विवृक्षं कर्षमात्रवटीकृतम् ॥ २ ॥

अथादनु विवेकोषणं वारि शूलाद्विमुच्यते । जीर्णोच्छसम्भवात्पाण्डोः कामलाया हलीमकात् ॥

लोहगुणुल—आंवारा, दर्पा, वहेरा, नायरमोथा, सौंठ, पीपरि, मरिच, बाधीरंग, पुहकमूल, वच, चित्रकमूल, सुलहाडी पक-एक पल लेकर उत्तम चूर्ण कर उसमें लोहमस्म तथा शुद्ध गुगुल ८-८ पल लेकर मिलाकर उसमें घृत पर्याप्त मात्रा में मिलाकर कूरंकर एक कंष्ठ के प्रमाण की बटी बना लेवे । इसको खाकर उण जल का अनुपान पीवे तो शूल से मुक्त हो जाता है और अन्त-द्रवशूल, पाण्डु, कामला और हलीमक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

विडङ्गाद्यो मोदकः—

विडङ्गतण्डुलं च्योषं त्रिवृद्धन्तीं सचित्रकम् । सर्वांप्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कास्येत् ॥ १ ॥

गुडेन मोदकान्कूत्वा भज्येत्प्रातरुक्षितः ।

उष्णोदकानुपानेन दद्यादग्निविर्धनम् । जयेत् त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्धवम् ॥ २ ॥

विडङ्गादि मोदक—वायविडंग का चावल, सौंठ, पीपरि, मरिच, निशोय, दनतीमूल, चित्रकमूल, सम भाग लेकर उत्तम चूर्ण कर पुराना गुड़ मिलाकर विषिपूर्वक मोदक (बटी) बनाकर यथायोग्य मात्रा से प्रातः उष्णोदक के अनुपान से (सेवन करने से) अग्नि की वृद्धि होती है और विदोषज शूल तथा परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

परण्डविभिरस्मयोगः—

परण्डविभिरस्मयोगोऽनुरं समम् । अन्तदंगवापि विद्विरुद्धाणभिः शूलशान्तये ॥ ३ ॥

परण्डविभि—भ्रस्म योग—परण्डमूल, चित्रकमूल, शम्बूक भ्रस्म, गदह पुरना, गोखरु सम भाग लेकर कूरंकर एक मिट्ठी के पात्र में रख मुख बन्दकर चुविक्षा यन्त्र के द्वारा भ्रस्म कर त्वयशीत और जाने पर यथायोग्य मात्रा से उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से शूल शमन होता है ॥

पथ्याद्योहरजः—

पथ्याद्योहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मनुसर्विष्ठा । परिणामभवं हन्ति वातपित्तकफात्मकम् ॥ १ ॥
पथ्यादि लोह— इर्हा का चूर्ण, लोह भस्म और गोधृत के अनुपान से सेवन करने से ख्रिदोषब
परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृष्णार्थं लोहम्—

कृष्णार्थयालोहचूर्णं विलिहन्मधुसर्पिष्ठा । परिणामभवं शूलं सदो हन्ति सुवाहनम् ॥ २ ॥
कृष्णादि लोह—पीपरि का चूर्ण, इर्हा चूर्ण और लोहभस्म सम भाग लेकर मधु और धृत के
अनुपान से चाटने से कठिन परिणाम शूल शीत्र नष्ट होता है ॥ २ ॥

चतुर्तिसमझोहम्—

गन्धं ताम्रं रसं लोहं प्रत्येकं मारितं पलम् । सर्वमेतत्समाहृत्य विपचेकुशलो भिषक् ॥ ३ ॥
आज्ञये पलद्वादशके दुखे शतपले चरे । पश्चवा तम्रं उपेच्चूर्णं सुपूर्तं घनतां नयेत् ॥ ४ ॥
विद्वक्त्रिफलावहिक्रिकटूर्णां तथैव च । चिप्पवा पलोन्मितानेतान्यथा समिभर्तां नयेत् ॥ ५ ॥
ततः पिष्ठा शुभे भाष्डे स्थापयेद्वच विचक्षणः । आरम्भनः शोभने घने पूजयित्वा रवि गुरुम् ॥
धृतेन मधुना मर्यं भ इयेन्मापसम्भितम् । अष्ट माषाः क्रमाद्यावन्माश्रां संस्तनभयेत्ततः ॥ ६ ॥
अन्नपानं च दुखेन नारिकेलोदकेन वा । जीर्णशालयसुद्धाश्र वितामांसरसादयः ॥ ७ ॥
रसानामविरुद्धानि पानाशान्यपि भक्षयेत् । हृच्छूलं पाश्वंशूलं च सामवातं कटिप्रहम् ॥ ७ ॥

गुरुमशूलं च सर्वं च यकृष्णलीहा विशेषतः ।

अविनमान्यं चयः कुष्ठं श्वासकासविचर्चिकाः । अरमरी मूत्रकृष्टं च योगेनानेन शास्यति ॥ ८ ॥

चतुर्तिसमझोह—शुद्ध गन्धक, ताम्र-भस्म, शुद्ध पारद, लौहभस्म प्रत्येक एक २ पल लेकर
प्रथम पारद-गन्धक की कल्जली कर फिर लोह-ताम्र मिला कर मर्दन कर १२ पल गोधृत में
तथा १०० पल गोधृत में पृथक् २ पाक करे, सिद्ध हो जाने पर उसमें वायविडंग, हरड़,
बहेडा, आंवाळा, चिक्कमूल, सौंठ, पीपल और मरिच, प्रत्येक एक २ पल लेकर उत्तम चूर्ण कर
मिलादेवै फिर सबको पीस कर एक अच्छे (स्त्रिय) पात्र में रख देवे । इस योग को शुभ
दिन में सूर्य तथा गुरु की पूजा कर धृत और मधु के अनुपान से एक माषा की मात्रा से
प्रारम्भ कर आठ माषा तक क्रम से बढ़ा कर सेवन करे । पथ्य में अन्नपान सब दूष के साथ
मझके, नारियल का जल पीवे, पुराने शालिषान के चावल, मूंग, शर्करा, मांसरस आदि का
और रससेवन में कहे दुप अपथ्य अन्न-पानादि का त्याग कर देवे तो इस योग से हृच्छूलं
शूल, पाश्वंशूल, आमवात, कटियह, सर्व प्रकार के गुदम, शूल तथा विशेष करके यकृत और
प्लीहा का शूल, मन्दारिन, क्षय, कुष्ठ, शास, कास, विचर्चिका, अझमरी, मूत्रकृष्ट आदि रोग नष्ट
होते हैं ॥ ८ ॥

• सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रं सैन्धवं लारौ हृचकं रोमकं विडम् । दन्ती लोहरजः किटटं त्रिवृत्सूरणकं समम् ॥ १ ॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपापवकपाचित्तम् । तथाग्निबलं चूर्णं पिवेदुप्तेन वारिणा ॥ २ ॥
जीर्णेऽजीर्णे च भुजीत मांसादि धृतसाचित्तम् । नामिशालं च हृच्छूलं गुरमस्त्वीहृक्तं च चय ॥
विद्वध्यष्टीलं हन्ति कफवातोऽस्वं तथा । अज्ञद्वं जरथितुमजीर्णं ग्रहणीमपि ॥ ४ ॥

सामुद्राद्यं— सामुद्र लवण, सेवा नमक, जवाखार, सज्जीखार, हृचक नमक, रोमक
नमक, विडनमक, दन्तीमूल, लोह-भस्म, शुद्ध मण्डूर, निशेष और सूरनकन्द इन सब ओषधियों
को समान लेकर उत्तम चूर्ण कर, दही, गोधृत और दूष में पृथक् २ मन्दारिन पर पाक कर सूख

जाने पर चूर्ण कर अविनदल के अनुसार मात्रा से बध्य जल के अनुपान से पीवे और भोजन
पचा रहे अथवा नहीं पचा रहे पर भोजन के समय धृतादि से सिद्ध किया हुआ मांसादि का
भोजन करे । इससे, नामिशूल, हृदयशूल, गुदम का शूल प्लीहा का शूल, विद्वि और अशीला
का शूल आदि और कफवात से उत्पन्न शूल, अनन्दव शूल, अजीर्ण और ग्रहणी रोग नष्ट
होते हैं ॥ १-४ ॥

शूलानामपि सर्वेषामोषधं नास्यतः परम् । परिणामसमुत्थस्य विशेषणान्तकं मतम् ॥ ५ ॥

सब शूलों की जो अन्य ओषधियों कही गयी हैं उनमें इससे उत्तम कोई ओषध नहीं है ।
किन्तु परिणाम शूल को नष्ट करने की यह विशेष ओषध है ॥ ५ ॥

पिप्पश्यादियोगः—

समागधीगुणं सर्विः प्रस्थं द्वीरं चतुर्गुणम् । पकवं पीत्वा जयस्याशु पक्षिशूलं समुद्धतम् ॥ १ ॥

पिप्पश्यादि योग—पीपरि का कल्क, पुराना गुड़ दो-दो पल, मूँछित गोधृत १ प्रस्थ और
धृत से चतुर्गुण (४ प्रस्थ) गो दुध भिला कर धृत पाक की विधि से पाक कर धृत मात्र देष
रहने पर उतार छान कर सेवन करने से शीघ्र बढ़ा हुआ पक्षिशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिपुरमैरवौ रसः—

भागौ रसस्य भागश्च हेमः पिष्टं विधाय च । तथा द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥ १ ॥

ऋद्धांशो गन्धकं दद्वा पलमात्रं समन्ततः । द्वारस्य सूर्यशङ्कस्य चूर्णं योउयं समन्ततः ॥ २ ॥

सिद्धेन्मस्याचिनीरेण दद्वधा यामचतुष्टयम् । पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्प्रिपुरमैरवः ॥ ३ ॥

त्रिपुरमैरव रस— शुद्ध पारद २ भाग, सुद्धं शुद्ध एक भाग दोनों को खरक में मर्दन कर,
शुद्ध ताम्र के पत्र १२ भाग लेकर उस पर लेप कर दे, फिर शुद्ध गन्धक का चूर्ण एक पल लेकर
उत्तम च्वर्णादि किस ताम्र के पत्र के कपर नीचे (गन्धक को) एक सूर्यपत्र में रख कर उसके चारों
ओर यवाखार और सूर्यशंग के चूर्ण को देकर मत्स्याक्षी (मछेछी) के स्वरस से भजीमौति सिङ्गित
कर (मिजा कर) पात्र का सुख कपर-मिट्टी द्वारा बन्द कर अविन पर रख कर चार
पहर अविन पर विधिपूर्व पाक कर स्वांगशीत होने पर उतार कर रख लेवे । यह 'त्रिपुरमैरव रस'
शूलनाशक है ॥ १-३ ॥

माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे । अन्येष्वेषण्टतैलेन कटुत्रययुतो हितः ॥ ४ ॥

इसे परिणाम शूल में १ माषा की मात्रा से मधु और धृत के अनुपान से और अन्य शूलों
में एरण्टतैल तथा त्रिकुट के चूर्ण के अनुपान से देना चाहिये ॥ ४ ॥

शूलदावानलः, सारसंग्रहात्—

शूद्धसूतं विषं गन्धं पकाशं मर्दयेद् दृढम् । मरीचं पिप्पली शुण्ठी हिङ्कु सौवर्चलं दृढम् ॥ १ ॥

पलाष्टकं पट्टूनां च चिक्काहारं पलाष्टकम् । ससपारं शाङ्कभस्म जग्धिराम्ले निषेचयेत् ॥ २ ॥

पलाष्टकं च संयोज्य तस्वर्वं निष्ठुकद्रवैः । दिनं मर्यं कोलमात्रं भवयेत्सर्वं शूलनुत् ॥ ३ ॥

शूलदावानल रस— शुद्ध पारद, शुद्ध मीठा विष, शुद्ध गन्धक इनको एक २ पल लेकर पारद-
गन्धक की कल्जली कर मली-मौति मर्दन करे । फिर मरिच, पीपरि, सौंठ, शुद्ध
हींग, सौवर्चल नमक प्रत्येक २-३ पल लेकर चूर्ण कर ले, और मिलित पांचों नमक, इमली का
क्षार, और शह्व की भस्म प्रत्येक ८-८ पल लेकर जमीरी नीबू के रस में सात वार गरम करके
बुझा कर पक्षात सब ओषधियों को पकव कर नीबू के रस के साथ दिन भर मर्दन कर आधा
कर्ष के प्रमाण की मात्रा से खाने से सब प्रकार के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

अजीर्णेऽदरमन्दाग्निमसाध्यमपि साधयेत् । शूलदावानलाद्योऽयं रसोऽजीर्णिद्विरोगहा ॥ ४ ॥

अजीर्ण, उदर रोग, मन्दादिन, आदि यदि असाध्य भी हो गये हों तो भी उनको यह 'शुक्रदावानक रस' नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

पश्यापद्यम्—मात्रादिविशिष्टीधान्दामि मध्यानि वनिता हिमम् ।
आतपं कागरं क्रोधं शुचं सन्धानमलकम् । वर्जयेथकिशुलातस्थाइजीर्णं तिळानपि ॥ ५ ॥

पश्यापद्य—उड्ड आदि शिल्मीधान्य मध्य, खीप्रसंग, शीत-सेवा, घूप, आगरण (रात्रि आगरण), क्रोध, शोक, सिरका तथा काँजी आदि अम्ल पदार्थ को एवं अजीर्ण भोजन और तिळ को परिणामशूल का रोगी स्थान देते ॥ ६ ॥

अथोदावर्तनिदानम् ।

सातविष्णूप्रजृभाशुचवोदावर्तमीनिदयैः । चुच्छृणोच्छवालनिद्राणां खृयोदावर्तसम्भवः ॥ ७ ॥

उदावर्त के निदान—भयोवायु, मल, सूक्ष, अध्माई, आंसु, छींक, डकार, वमन, वीर्य, क्षुधा, तुपा, उच्छ्वास और निदा इनके देवों को रोकने से उदावर्त रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ७ ॥

तेषां क्रेषण लक्षणान्याह, अथापानवातावरोधमाह—

सातमूष्पुरीशाणां सङ्कोऽग्नानं वल्मी उवरः । जटरे वातजाशान्ये रोगाः स्युवार्तनिग्रहात् ॥ ८ ॥

उदावर्त के कक्षण—भयोवायु रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें अयोवायु-मूत्र और पुरीष का अवरोध हो जाता है और आध्मान, क्लान्ति, उवर, उदर में वातजनित रोग तथा अन्य भी उदर रोग हो जाते हैं ॥ ८ ॥

पुरीषवरोधमाह—आटोपशुलौ परिकर्तिका च सङ्कः पुरीषस्य तथोद्धवातः ।

पुरीषमास्यादध्याविरेति पुरीषवेगेऽभिहिते नरस्य ॥ ९ ॥

मल के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें पेट में गुहुडाइट, शूल, गुदा में कतरने के समान पीड़ा, मल का अवरोध और काढ़वात हो जाता है और कभी २ मुख से मल भी निकलने कठता है ॥ ९ ॥

मृत्विग्रहमाह—

स्वस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकुरुकृं शिरोरुजा । विनामो वक्षुणानाहः स्याविलङ्घं मूत्रनिग्रहे ॥ १० ॥

मूत्र के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें मूत्राशय और शिश्न में शूल होता है, मूत्र-कुरुकृ, सिर में पीड़ा, शरीर का नम जाना (शुक्र जाना वा नम हो जाना) और वक्षण का फूल जाना ये सब कक्षण होते हैं ॥ १० ॥

कृम्प्राविदातवमाह—मन्त्रगालस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनारमकाः द्युः ।

तथादिनासाव्रदनामयाश्च भवनित तीव्राः सह कर्णरागैः ॥ ११ ॥

जृम्भा के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मन्द्य और गले में स्तम्भ होता है, सिर में पीड़ा तथा अन्य सिर के विकार, वात विकार और नेत्र, नासिका, मुख इनके रोग तथा कीम कणे रोग होते हैं ॥ ११ ॥

अशुविदातजमाह—आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तमसुखतो हि ।

शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवनित तीव्राः सह पीतसेन ॥ १२ ॥

अशुविदातजमाह—आनन्द से अथवा शोक से बहते हुए आंसु के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें सिर में भारीपन, नेत्ररोग तथा तीव्र पीतस रोग होता है ॥ १२ ॥

दिक्षानिरोधमाह—

मन्यास्तमः शिरःशूलमर्दिताधर्वमेदकौ । इन्द्रियाणां च दौर्वश्यं च वस्थः स्याद्विधारणात् ।

छींक के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मन्दात्मम, शिरःशूल, अदित अर्थावभेद (अधकपारी) और इन्द्रियों की दुर्बलता (इन्द्रियों के कार्य में न्यूनता) आदि होते हैं ॥ १३ ॥

उदावरिधारणमाह—कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवाप्रवृत्तिः ।

उद्रावरेगेऽभिहिते भवनित घोरा विकाराः पवनप्रसुताः ॥ १४ ॥

उक्तकार के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें कण्ठ और मुख भरा रहता है (किया हुआ भोजन मुख कण्ठ में भरा रहने के समान छात होता है), अत्यन्त तोद होना (समून शरीर में सूई ऊमाने के समान पीड़ा होना), कूजन होना (आंतों में शब्द होना), वायु का रुक जाना और अन्यान्य भी वातजनित घोर विकार होते हैं ॥ १४ ॥

उदिनिग्रहमाह—

कण्ठकोठाहचिद्यङ्गशोथपाण्डवामयज्वराः । कुष्ठहृष्णासवीसपर्शश्चदिनिग्रहजा गङ्गाः ॥ १५ ॥

वमन के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें कण्ठ, मण्डल, अरुचि, व्यङ्ग (शारीर) शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, हस्तास (उदकार्द) और विसर्प आदि रोग होते हैं ॥ १५ ॥

शुक्रविधारणमाह—मूत्राशये वै गुरुमुखयोग्य शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।

शुक्राश्मरी तत्त्वद्वयं भवेच्च ते से विकाराभिहिते च शुक्रे ॥ १६ ॥

वीर्य के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें मूत्राशय, गुदा और अण्डकोष में शोथ और पीड़ा होती है, एवं वीर्यवात तथा अन्यान्य वीर्य सम्बन्धी विकार भी होते हैं ॥ १६ ॥

क्षुधावरोधमाह—

सम्ब्रान्तमर्दवहुचिः अम्रम चूषोऽभिधाताकृशता च इष्टे ॥ १७ ॥

भूख के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें तत्त्वा, देह का द्रूटना, अरुचि, श्रम और इष्ट में कमी होती है ॥ १७ ॥

तुष्णानिरोधमाह—कण्ठास्यशोथः श्रवणावरोधस्तुष्णः भिवाताद् हृदयस्था च ॥ १८ ॥

तुष्ण के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें कण्ठ और मुख सूखता है, श्रवणशक्ति का अवरोध होता है और हृदय में पीड़ा होती है ॥ १८ ॥

थासावरोधमाह—आन्तस्य निश्चासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथ वाऽपि गुरुमः ॥ १९ ॥

थासावरोधमाह—आनन्दस्तम्भशिरोविकाराः उद्धृतान् विनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथ वाऽपि तन्द्रा ॥ २० ॥

निदानिरप्तज्वराह—जर्माक्षमदोऽचिशिरोतिजाडयं निद्राविधातावथ वाऽपि तन्द्रा ॥ २१ ॥

निदा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें जर्माई, शरीर का द्रूटना, नेत्र तथा सिर में स्तम्भता अथवा तन्द्रारोग होता है ॥ २१ ॥

स्वस्त्रानजननितविकारमाह—

वायुः कोट्टानुगोरुचक्षवायकटुतिकैः । भोजनैः कुपितः स्वय उदावर्त करोति च ॥ २२ ॥

रुक्ष, कषाय, कटु और तिक्करस वाले पदार्थों के अति सेवन करने से कुपित दूर कोष की वायु शीत उदावर्तरोग उत्पन्न कर देता है ॥ २२ ॥

तत्य सम्प्राणिमाह—

वातमूत्रपुरीशाशुककमेदोवहनि वै । चोतांस्युदावर्तयति पुरीष चातिवर्तयत ॥ २३ ॥

वातो हृदस्तिशूलातो हल्लासारतिपीडितः । वातमूत्रपुरीशिणि खूच्छेण लमते नरः ॥ २४ ॥

वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतुषापवरान् ।

वमिहिककाशिरोरोगमनःप्रवणविभ्रमान । वहूनन्याश्च लभते विकारान्वातकोपपान् ॥ २५ ॥

उदावर्तं की सम्प्राप्ति—वह कुपित हुई वायु-अधोवायु, मूत्र, मल, आसु, कफ और मेद को उनके बाली नाड़ियों को अवश्य करती है तथा पुरीष को भी मुख देती है। जिससे हृदय, वस्ति इनके शूल से अधिक पीड़ा होती है, इक्षास और हृदयोदयेग से पीड़ा होती है, और अधोवायु-मूत्र और मल उस मनुष्य को बड़े कष देते हैं, तथा श्वास-कास-प्रतिश्याय, दाढ़, मोइ, तृष्णा, उच्चर, वमन, हिक्का, गिरीरोग होते हैं और मन तथा श्वयणमें अम दोता है, (अर्थात् चित्त में स्थिरता तथा श्रवणशक्ति की न्यूनता होती है) तथा अन्य भी अनेक प्रकार के बात के कोप से उत्पन्न होने वाले विकार होते हैं ॥ १६-१८ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

तृष्णादितं पदिविक्षुं छीयं शूलहृपद्रुतम् । शाङ्कूसमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुरुजेत् ॥ १ ॥
उदावर्त के असाध्य लक्षण—जिस उदावर्त में रोगी 'तृष्णा-तथा क्लेश से पीड़ित हो, क्षीण हो, शूल से पीड़ित हो, तथा उसके मुख से मल निकलता हो उसे दुष्टिमान् वैद्य त्याग देव अर्थात् वह असाध्य है ॥ १ ॥

अथ उदावर्तचिकित्सा ।

सर्वेष्वेतेषु भिषजा चोदावर्तेषु कृत्सन्नाः । वाथोः क्रिया विधातव्याः स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥ १ ॥
उदावर्त चिकित्सा—सब प्रकार के उदावर्तरोग में वैद्य विगुणित (दूषित) वायु को अपने मार्ग पर के जाने की (वायु को प्रकृतिश्य करने की) क्रियाओं को करे ॥ १ ॥

आस्थापनं माहतजे रिनध्विनन्ने विशेषतः । पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहकोदितः ॥ २ ॥
वातजनित (वातावरोध) उदावर्तरोग में विशेष करके स्नेह और स्वेदन करके आस्थापन करें करें (आस्थापन वस्ति देव) और पुरीषज (पुरीषावरोध) उदावर्त में आनाह रोग में कही हुई सब क्रियाओं को व्यवहार में लावे ॥ २ ॥

सौवर्चंकाल्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत् । एलं वाऽप्यथ मस्तवन्नं चीरं चाऽथ वराम्बु वा ॥

सौवर्चंकाल्यादि योग—मूत्रज (मूत्रावरोध) उदावर्त में सौवर्चंक नमक पच्चुर प्रयोग में मिलाकर मध्यपान करे अथवा छोटी इलायची मदिरा में मिलाकर पान करे अथवा दही के 'पानी' के साथ अच्छ खावे अथवा दूध पीवे अथवा विफला का काथ वा जल (रस) पीवे ॥ १ ॥

उर्वाक्षीजादियोगः—

उर्वाक्षीजं तोयेन पिबेद्वा लवणान्वितम् । पञ्चमूलीश्वरं चीरं द्रावारसमथापि वा ॥ ३ ॥
उर्वाक्षीजादि योग—ककड़ी के बीज (बल के साथ पीसकर) रस में नमक मिला पान करने से अथवा पञ्चमूल के साथ पकाया हुआ दूध पीने से अथवा द्राक्षा का रस पान करने से मूत्रज उदावर्त नष्ट होता है ॥ ३ ॥

यवक्षारादियोगः—

यवक्षारं सितायुक्तं पिबेद्वा मृद्धिकारस्ते । वरिक्षमाणद्योस्तोयं सितायुकं पिबेदथ ॥ ३ ॥
यवक्षारादि योग—यवाखार में अथवा द्राक्षा के रस में अथवा शतावरी और श्वेत कुर्माण्ड के रस में शुकरा मिलाकर पान करने से मूत्रज उदावर्त नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मूषकादियोगः—

मूषकस्य विशा लेपं वस्तेवपरि वा चरेत् । किञ्चकानां प्रलेपो वा कवोष्णो मूषरोधहा ॥ ४ ॥
मूषकादि योग—मूत्रे की विशा का मूषाशय पर लेप करने से अथवा पलास के फूलों को पीस गरम कर मूषाशय पर लेप करने से मूषावरोध (अथवा मूत्र निरोधज उदावर्त) नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पिष्ठा इवदृष्टाकलमूषिकाविवर्णहीजानि सकालिकानि ।

आलिष्यमात्रानि समानि अत्तौ मूषकस्य विषयन्दकराणि सद्यः ।

अश्रु सर्वं प्रयुक्तीत मूष्रकुच्छाशमरीविधिम् ॥ २ ॥

गोखरु के फल, मूत्रे की विशा और ककड़ी की बीजों को समान लेकर काढ़ी में पास कर वस्ति पर लेप करने से शीघ्र मूत्र आ जाता है अर्थात् मूषावरोध मिट जाता है। इस मूत्रावरोध में मूष्रकुच्छ और अश्मरीरोग में कही हुई सब क्रियाओं को करना चाहिये ॥ २ ॥

अथावशेषाणां चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं लूभाजं समुपाचरेत् । अश्रुमोद्धोऽश्रुजे कार्यं दिनध्विवशस्य लेहिनः ॥ १ ॥

उदावर्त के सामान्य चिकित्सा—ब्रह्माई के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग को स्नेह और स्वेद के उपचार से शमन करे। आसु के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग को स्नेह और स्वेदन कराकर अश्रुमोक्षण करना चाहिये ॥ १ ॥

मरीचाद्वज्ञनैर्धमैराद्वित्याथवलोकनैः । लवजे स्वयन्नेण ग्राणस्थेनाऽनयेत्स्वम् ॥ ३ ॥

आसु निकलने के लिये मरिच आदि तीक्ष्ण पदार्थों का अजन लगाना, धूपे में बैठना, सूर्य की ओर देखना आदि कर्म करना चाहिये। छींक के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में क्षव यन्त्र (छींके छाने वाले यन्त्र) को नाक में डालकर छींकना चाहिये अथवा तुण आदि नाक में छालाकर छींकना चाहिये ॥ २ ॥

उद्धारजे क्षोपेतं स्नेहिं धूममाचरेत् । भव्येहुचकं सारं स्वर्णं वा मथितान्वितम् ॥ ३ ॥

उद्धार के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में स्नेह पदार्थों वाला (स्नेहुक) पूष्पयान करना चाहिये और नमक तथा अदक में खोड़ मिलाकर अथवा दही के मसित (मठ्ठे) के साथ भक्षण करे ॥ ३ ॥

वस्त्या वानं यथाहोषं नस्यस्नेहाद्विभिर्जेत् । वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पथः ॥ ४ ॥

आवारिनाशास्त्रक्षियं शीतवन्तं प्रकामतः । इमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ५ ॥

वमन के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में दोष के अनुसार वमन करावे तथा नस्य कर्म और स्नेहादि कर्म करावे। शुक्र के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में वस्ति को शुद्ध करने वाले द्रव्यों के साथ चौपुना बल मिलाकर दूध सिद्ध करे (पकावे) और जब केवल दूध मात्र योग रहे तब उस दूध को सेवन कराकर रोगी को प्रिय खियों के साथ रमण करावे। (इस क्रिया तथा भोज्य से शुक्रोदावर्त नष्ट होता है) ॥ ४-५ ॥

तस्याभ्यङ्गोऽवगाह्यम् मदिराश्वरणायुधाः । शालिः पयो निरुद्धात्र हितं मैथुनमेव च ॥ ६ ॥

शुक्रोदावर्त के रोगी को अभ्यङ्ग (तेल मर्दन), अवगाहन (नदी आदि में स्नान), मध्यपान, कुन्तुट्यास मध्यण, शालिघान का चावल, दूध, निरुद्धास्ति और मैथुन करना हितकर होता है ॥ २ ॥

मृद्धिकारसे हितं रिनध्वं रुद्धमलपं च भोजनम् । तृष्णाते पिबेन्मध्यं यवागू रवादुशीतकम् ॥

शुष्मा के अवरोध करने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें स्नेहयुक्त, उचिकारक और अश्वप्रमाण में भोजन करना चाहिये। तृष्णा के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में मध्य तथा मधुर और शीतल यवागू पीना चाहिये ॥ ७ ॥

स्नेहायात् विश्वान्तः अमथासार्वितो नरः । निद्रावाते पिबेद् दुर्घं माहिषं रजनीमुखे ॥ ८ ॥

तिळतैलेन सम्मूड्य भूतले शशनं चरेत् ।

उदावर्तिनमभ्यक्षं स्त्रियुपाचरेत् । वर्तिकास्थापनस्वेदवस्तिरेवत्कर्मणा ॥ ९ ॥

अमर्थास के अवरोध से उपर्यन्त उदावर्त में मांसरस पिलाना चाहिये । निद्रा के अवरोध से उपर्यन्त उदावर्त में सन्ध्या समय (रात्रि के प्रारम्भ में) मैस का दूष पिला कर तिळ के तेल से शरीर को मर्दित कराकर भूमि पर शयन कराना चाहिये । अभ्यक्ष किये हुए उदावर्त रोगी को जिसका इरीर रिनग्ग हो गया है उसको फलवर्ति, आस्थापन, स्वेदन, वस्ति कर्म तथा विरेचन कर्म करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

इयामादिक्षायो वृन्दात्—इयामा दन्ती द्रवन्ती हनुमहाश्यामाऽमृता त्रिवृत् ।

सरस्ताणाङ्कुरी श्वेता राजदुष्टः सविश्वकः ॥

कृषिपश्चकं करत्वश्च हेमस्तीरीस्यथं गणः । सविस्तैलरजाकाथक्षकेष्वन्यतमेषु च ॥

उदावर्तोवृशतानाहवियगुणमविनाशनः ॥ २ ॥

इयामादि कथाय—इयामास्ता (कुण्ठ-सारिवा) छोटी दन्तीमूल, बड़ी दन्तीमूल, शूद्र (सेहुड़), महाश्यामा लता (बड़ी सारिवा), युश्चि, निशोथ, सप्तका (सेहुड़ का मेद), शङ्खुपुष्पी, श्वेता (श्वेत सारिवा), अमलतास, बेल, कनीका, करंज, स्वर्णक्षीरी (-सत्यानाशी) इस गण के साथ (इन औषधियों के कल्क के साथ) घृतपाक करे अथवा तैक्यपाक करे अथवा इनका चूर्ण करे वा काथ करे अथवा कल्क बनावे, इनके सेवन करने से उदावर्त, उदर, आजाह, विषरोग और गुरम् इन सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

वृन्दादाट्यादियूषः—

वाटया यूषेण पिपलया मूलकार्णी रसेन वा । भुद्धस्वा रिनग्गमुदावर्तवात्वात्गुरुमाद्विमुच्यते ॥ १ ॥

वाटयादियूष—बरि ओर से प्रस्तुत किये यूष से अथवा पीपरि तथा मूली के रस से स्त्रियूष भोजन करने से उदावर्त तथा वात गुरम् से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

‘वाटयादिः—

वाटयादीरसैः सेहुड़ं यज्ञ वातानुलोमनम् । वातान्तर्लवणाद्यैश्च रसाद्याक्षमाचरेत् ॥ १ ॥

बरिओर से सिद्र किये दूष अथवा बरिआर के रस को सेवन करे तथा अन्य वात का अनुलोमन करने वाले पदार्थों अर्थात् वातनाशक लवणादि और मांसरसादि से शुक्त अन्त का सेवन करे । इससे उदावर्त नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथाचूर्णानि ।

हरीतकयादिचूर्णम्—

हरीतकी यवधारः पीलूनि त्रिवृता तथा । घृतैर्ष्वन्न विवदं पेयमुदावर्तप्रशान्तये ॥ १ ॥

हरीतकयादि चूर्ण—हरीत, यवधार, पीलू (शक फल), निशोथ इनको समभाग लेकर विधि-पूर्वक चूर्ण कर उदावर्त की शान्ति के लिये घृत के अनुपान से देवे ॥ १ ॥

द्विरुद्धवचास्वर्जितिं चेति द्विरुद्धरम् । पीतं मध्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम् ॥ १ ॥

द्विरुद्धरम्—शुद्ध हींग, कूट, बच, सउजी और विड लवण इनको द्विरुद्धर (एक से दूसरा दूना) कम से शुद्ध हींग १ भाग, कूट २ भाग, बच ४ भाग, सउजी ८ भाग और विड नमक १६ भाग लेकर उत्तम चूर्ण बना कर मध्य के अनुपान से सेवन करना उदावर्त को नष्ट करने में उत्तम योग है ॥ १ ॥

उदावर्तचिकित्सा

नाराचचूर्णम्—स्पष्टपलं त्रिवृतासमसुपकुश्याकर्षचूर्णिं सूक्षमम् ।

प्राप्तमोजनस्य समधु विडालपदकं लिहेश्वरातः ॥ १ ॥

पृतद्वादपुरीषे शुद्धे पित्ते कफे च विनियोग्यम् । स्वावुन्पूर्योर्योऽथ चूर्णे नाराचको नाम ॥

नाराचचूर्ण—शककर १ पल, निशेय १ पल, पीपरि १ कर्ष लेकर सवका ब्रह्मन्तूरे बनाकर शोषण से पहले मधु के अनुपान से एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रातःकाल चाटना चाहिये ।

इस औषध को मकबद्धता में और पित्त तथा कफ के शुभित (कृपित) अवस्था में देना चाहिये । यह स्वादिष्ट ‘नाराच नामक’ चूर्ण सब राजायों के योग्य है ॥ १-२ ॥

हिङ्कु शिगुणसैन्धवं तस्मात्तु शुद्धतैलमैरपदम् । तस्मिन्गुणरसोनरसे गुरुमावाचर्त्तशुलभ्यम् ॥

शुद्ध हींग १ भाग, सेंधा नमक १ भाग, शुद्ध परण्टलै १ आग और कहसुन का रस २७ भाग इन सब को एकत्र मिलाकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से गुरम् तथा उदावर्त का शुक नष्ट होता है ॥ १ ॥

प्रलेपः—

धारमीकमृतकरञ्जस्य त्वच्छूलफलपल्लवम् । सिद्धार्थ चेति पिण्डानी मूलेणाऽलेपनं हितम् ॥

उदावर्तेषु सर्वेषु सङ्ख्यवातानुलोमनम् ॥ १ ॥

प्रलेप—विमोती की मिट्टी, करञ्ज की छाल, मूल, फल और पत्ता तथा श्वेत ससीं इन छालों को सम भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर लेप बनाकर लगाने से उदावर्त में लाग होता है । सब प्रकार के उदावर्तों में छलीभौंति वायु का अनुलोमन करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ फलवर्तीयः ।

तत्र मंदनादिः—

मदनं पिपलीकुष्ठं वृच्छा गौराश्च सर्वपाः । गुडच्छीरसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १ ॥

मदनाविफलवर्तिः—मैनफल, पीपरि, कूट, वच, श्वेत-ससीं, गुड़ और दूष मिलाकर विभिन्नके बनार्दे तुरं बत्ती उदावर्त के लिये हितकर है ॥ १ ॥

आगारधूमादिः—

आगारधूमः पिपलयो मदनं रामसर्वपाः । गोमूत्रपिण्डाः सपुडाः फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १ ॥

आगारधूमादि—गृहधूम (होला जो घरों में धूम के कारण होता है), पीपरि, मैनफल, काली ससीं (तोरी) इनको गोमूत्र के साथ पीसकर गुड़ मिलाकर बत्तीया बनाकर सेवन करना उदावर्त के लिये हितकर है ॥ १ ॥

हिङ्गमादिः—

हिङ्गमाचिकसिन्धूर्थैः पक्षवा वर्ति सुवर्तिताम् । घृतैर्भ्यक्षो गुदेदश्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥

हिंगविदिवति—हींग, मधु, सेंधानमक, इनको समान लेकर विधिवत पाककर बत्ती बनाकर इसमें घृत लगाकर युदा में देने से उदावर्त नष्ट होता है (कहीं २ इसको हींग ४ मासा, सेंधानमक १ कर्ष, मधु १ पल इस प्रमाण से लेकर पाककर बत्ती बनाते हैं) ॥ १ ॥

उदयमातृण्डरसः—हिङ्गलं जयपात्राट्कूणविषाप्यन्धार्धभागोत्तरं

सर्वत्वश्वत्तले विमर्थं मतिमान्गुजाद्यूर्थं च वदेत् ।

मार्तण्डोदयको ऋवादिसहिते यः सोदराध्मानके

पाण्डवाजीर्णगदेऽनुपानवशतः पर्थं च तक्रैवन्म् ॥ १ ॥

उदयमातृण्डरस—शुद्ध विष १ भाग, शुद्ध टंकण १२ भाग, शुद्ध जयपात्र २ भाग और शुद्ध सिगरिक २५ भाग सबको खरल में मर्दन कर २ रक्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करावे तो

उत्तर आदि सदित उदराष्ट्रमान नष्ट होता है। पाण्डुरोग तथा अजोर्णोग को अनुपान विशेष से यह नष्ट करता है। इसमें मट्ठा और मात पथ्य देना चाहिये ॥ १ ॥

व्योरेणाऽऽद्वृत्सेन तत्र सितया युक्तो ज्वरे वाक्ये
मान्धे गुरुमक्कानके च पत्ने शूले च शोफोद्दो ।
वाताच्ये स्वरवर्णं कुष्ठगुरुजान्मोगानशोषात्त्वयेत् ॥ २ ॥

विषुद्ध, अद्रक के रस और शक्करा के अनुपान से सेवन करने से भयहूर उत्तर, मन्दामि, गुरुमक्क और अवल (पित) के रोग, वायुरोग, शूल, शोष, उत्तर, वातरक्त, स्वरधंग, वर्णविकार, कुष्ठ, अर्थ तथा अन्य सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ २ ॥

नाराचरसः—

जेपालेन समैः सूतध्योषट्ट्वणगन्धकैः । नाराचः स्याद्रसो द्वेष माषसर्पिः सितायुतः ।
हन्त्युदावर्तमानाहमुदराणि च गुरुमक्कम् ॥ १ ॥

नाराचरस—शुद्ध जमालगोटा, शुद्ध पारद, सोठि, पीपरि, मरिच प्रत्येक का चूर्ण शुद्धटक्कण, शुद्धगन्धक प्रत्येक १-२ भाग इन सबको लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कड़वी कर पुनः सद ओषधियों के चूर्ण को मिलाकर मदनं कर इस 'नाराचरस' को मापा प्रमाण की मात्रा से घृत और शक्करा के अनुपान से सेवन करने से उद्धारत, आनाह, उदर और गुरुमरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ आनाहनिदानम् ।

आमं शक्त्वा निचितं क्लेशं भूयो विषद्वं विषुणोनिलेन ।

प्रवर्तमानं न यथास्थमेन विकारमानाहमुदाहरिति ॥ १ ॥

आनाह निदान—प्रामरस अथवा मल कम से (शनैः शनैः) वायु के विकृत होने के कारण संचित होकर बैंध जाता है (शुष्क हो जाता है) और विचित रीति से उसकी प्रष्टुति नहीं होती (अवरोध हो जाता है) इस विकार को 'आनाह' कहते हैं ॥ १ ॥

आमजसानाहमाद—

तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवे तु तृष्णोप्रतिश्यायशिराविद्वाहाः ।

आमाशये शूलमयो गुह्यवं दृष्टस्तम्भनोद्वारविवातनं च ॥ २ ॥

आनाह के लक्षण—आम के संचित होने के कारण जो आनाह होता है उसमें तृष्णा, प्रतिश्याय, सिर में दाहादिरोग, आमाशय में शूल, शरीर का मारीपन, हृदय का स्तम्भन (व्याकुलता) और उदर का अवरोध होता है। (डकार आने को होकर रुक जाता है) ॥ २ ॥

शक्तसश्चयमाद—

श्वतम्भः कटीपृष्ठुरीष्मुत्रे शूलोदय मूर्छा शक्तो वमित्र ।

श्वासश्च पक्षाशयजे भवन्ति तथाऽल्लसोक्तानि च लक्षणानि ॥ ३ ॥

मल के पक्षाशय में संचित होने से जो आनाह होता है उसमें कटि और पीठ में स्तम्भन होता है, मूत्र तथा मल का अवरोध होता है, पक्षाशय में शूल, मूर्छा, मल का बमन, आस ये सब होते हैं। तथा अक्सकरोग में कड़े हुए लक्षण भी होते हैं ॥ ३ ॥

उद्वावर्तिनमप्येनमानाहिनमधायि वा । तृष्णोपद्ववसंयुक्तं तं स्येद्विषजां वरः ॥ ४ ॥

असाध्य लक्षण—उद्वावर्तरोग वाले को अथवा आनाहरोग वाले को यदि तृष्णा आदि उपद्रव दिखाई पड़े तो उसे ऐष्ट वैय को त्याग देना चाहिये। अर्थात् तृष्णादि से युक्त उद्वावर्त आनाह असाध्य है ॥ ४ ॥

आनाहचिकित्सा ।

आनाहेष्पि प्रयुक्तीत उदावर्तहर्ती क्रियाम् ।

विशेषमाह—

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्तुहीक्षिरेण भावेत्य । वटिका मूत्रपीतास्तः श्रेष्ठस्वानाहभेदिकाः ॥

आनाह चिकित्सा—आनाह रोग में भी उदावर्त रोग को नष्ट करने से बाली क्रिया करनी चाहिये। निशोथ, इर्दा, श्यामा (कृष्ण सारिवा), इनको सम साग लेकर चूर्ण कर थूर के दूध की मावना देकर वटी बना कर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करे। यह आनाह को नष्ट करने में ऐष्ट है ॥ १ ॥

हिङ्गप्रगन्धाविद्वृष्ट्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ।

भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुरुमोदरानाहविशूचिकासु ॥ २ ॥

भागोत्तर वृक्षि कम से तीर्ण १ भाग, बच २ भाग, विड लवण १ भाग, सोठि ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्दा ६ भाग, पुहरमूल ७ भाग और कूट ८ भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से गुरुमरोग, उदररोग, आनाहरोग और विशूचिका रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

वचाभग्याविव्रक्यावश्यकान् स्पिष्पलीकातिविषान् सद्गृष्णान् ।

श्वण्डाद्वुषाऽऽनाहविमूलवातान् पीतस्वा अयेदाशु रसोदनाशी ॥ ३ ॥

बच, इर्दा, चिक्रकमूल, यवाखार, पीपर, अतोस और कूट सम साग लेकर चूर्ण कर उद्धोदक के अनुपान से सेवन करने से आनाह रोग तथा विमूलवात शीघ्र ही नष्ट होता है। इस औषध के साथ मांस-रस और चावक का भाव पथ्य देना चाहिये ॥ ३ ॥

राधभूमादिवर्तिः—

राठधूमविद्वृष्ट्यजुहुमूलविषपाचिता । यदेष्वृष्ट्यसमा वर्तिविषेयाऽनाहशूलबुद्ध ॥ १ ॥

राधभूमादिवर्ति—रादु फल, गृहधूम, विड लवण, सोठि, पीपर, उड़ पुराना और गोमूत्र समान भाग लेकर एकत्र कर यथाविधि पाक कर हाथ के अंगूठे के प्रमाण मोटी बत्ती विधिवत बनाकर घृत लगाकर युदा में देने से आनाह शूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

विषाल्य मूत्रास्थरसेन दन्तीपिण्डीतकृष्णाविद्वृष्ट्यधूमैः ।

वर्ति कराद्गुष्मिभां धृताकां गुदे धनानाहहर्ती विद्वृष्ट्याद् ॥ २ ॥

दन्तीमूल, पिण्डीत (काढा मैनफल), पीपरि, विड लवण, कृष्ण सर्सी (तोरी) और गृहधूम (वर में कणा धुम का शाला) समान भाग लेकर गोमूत्र और कौंबी के साथ पाक कर पूर्णोक्तरीति से बत्ती बनाकर उसमें घृत लगाकर युदा में देने से शूल और आनाह को नष्ट करती है ॥ २ ॥

प्रथापथ्यम्—

विष्टम्भीनि विहृदानि कथायाणि गुरुणि च । उदावर्तें प्रथलेन वर्जयेत्सतं नरः ॥ ३ ॥

प्रथापथ्य—विष्टम्भ करने वाले पदार्थ, विरुद्ध भोजन, कथाय रस वाले पदार्थ और गुरु पदार्थ इन द्रव्यों को आवर्त और आनाह का रोगी यस्तु पूर्वक निरन्तर त्याग देवे क्यों कि वे अपथ्य हैं ॥ ३ ॥

उदावर्तें हिंते सर्वं पाचनं लहूनं सथा । आनाहे तु यथापथ्यं सेवयन्मतिमानः ॥ २ ॥

उदावर्ते रोग में सद प्रकार के द्रव्य और लहून करना हितकारक है और आनाह रोग में बुद्धिमान् मनुष्य को यथा पोथ्य (दोषानुसार) पथ्य आदि विचार कर सेवन करना चाहिये ॥

अथातो गुल्मनिदानं ध्याह्याद्यामः ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

हुष्टा वाताद्योऽस्यथं मिथ्याद्यारविहारतः ।

कुर्वन्ति पश्चात् गुल्मं कोष्ठान्तप्रतिष्ठिरूपिणम् ॥ ३ ॥

गुल्म का निदान—मिथ्या आद्या और विहार से अस्यन्त दूषित (कुपित) हुए वातादिक दोष कोठे में आकर ग्रन्थि (गाठ) की भाँति पांच प्रकार के गुल्म रोग को बरपन करते हैं ॥ १ ॥

तेषां स्थानान्याह—तस्य पञ्चविंश्यं स्थानं पाश्वद्वज्ञाभिवस्तथः ।

गुल्म के स्थान—गुल्म के पांच स्थान हैं—पाश्वद्वज्ञ, हृदय, नाभि और वर्षित ।

तस्य कृष्णमाह—

हृष्णाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सज्जारी यदि वाऽचलः । वृत्तश्चापच्यवान्स गुल्म इति कीर्तिः ॥

गुल्म के लक्षण—हृदय और नाभि के मध्य में उल्लंग वाली अथवा अचल, गोळ तथा बद्धने वाली ग्रन्थि (गाठ) को 'गुल्म' कहते हैं ॥ २ ॥

विशेषलक्षणं चरके—

तृष्णाऽवरपरीतश्च दाहस्वेदाग्निमादेवैः । गुरिमनामद्वौ चापि रक्तमेवाद्यसेचयेत् ॥ ३ ॥

तृष्ण, अवर, दाह, स्वेद, मन्दादिन हो और गुल्म में अरुचि भी हो तो रोगी को रक्तोक्त्वण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

मट्टारकहरिश्चन्द्रः—

झीणामार्तवज्जो गुल्मो न पुंसामुपजायते । अन्यश्चत्वस्त्रभवो गुल्मः झीणां पुंसां च जायते ॥

जियों को आर्तव के कारण जो गुल्म होता है वह पुरुषों को नहीं होता, किन्तु अन्य कारणों से कुपित हुआ रक्तज गुल्म खी और पुरुष दोनों को होता है ॥ ४ ॥

निरुद्धमूलप्रभवो हि कोष्ठे रिथतः स्वतन्त्रः परसंश्रयो वा ।

स्पर्शोपलब्धः परिपिण्डित्वाद् गुल्मो यथा दोषमुपैति नाम ॥ ५ ॥

स व्यस्तैर्जायते होषैः समस्तैरपि चोच्छ्रूतैः । गुल्माणां तथा झीणां ज्योरो रक्तेन चापरः ॥

जिस ग्रन्थि (गुल्म) का निरुद्ध (इड) हो, कोष्ठ स्थान अथवा अन्य स्थान में स्वतन्त्र रहता हो, स्पर्श करने से प्राप्त होता हो (स्पष्ट जात हो जाता हो), पिण्ड के समान (गोल) हो, यदि इस प्रकार का गुल्म हो तो दोष के अनुसार उसका विभिन्न नाम है । यह गुल्म पृथक् २ वातादिकों के कुपित होने से बातन, पित्तज और कफब गुल्म कहा जाता है । और तीनों दोषों के मिलित प्रकोप से होने से सान्त्रिपातिक गुल्म कहा जाता है । तथा एक और गुल्म रक्त से होता है जो पुरुष खी दोनों को होता है । (इससे परे आर्तव अन्य गुल्म भी जियों को होता है) ॥ ५-६ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—उद्भारवाहुल्यपुरीषवन्धवृप्त्यच्चमवान्त्रविकृजनानि ।

आटोपमामानमपकिशक्तिरासज्जगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ७ ॥

गुल्म के पूर्वरूप—गुल्म रोग जब होने को होता है तब उसके पहले ढकार बहुत होता है और मल का अवरोध भोजन में अनिष्टा, सहन शक्ति की व्युत्तता, आंतों में गों, गों शब्द आटोप, (गुड २ शब्द) आधामान और पाचन शक्ति की व्युत्तता ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

सर्वगुल्मानां सामान्यलक्षणमाः—

अरुचिः कृच्छ्रविष्मूर्चं वातान्त्रप्रतिकूजनम् । आनाहं चोर्धवातस्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ८ ॥

गुल्मी के सामान्य लक्षण—अरुचि, मल-मत्रा और वायु आदि का कष से होना, आंतों में कूचन (शब्द), आनाह और ऊर्धवात होना ये सब लक्षण प्रायः सब प्रकार के गुल्मों में होते हैं ॥ ८ ॥

वातजमाह—रुक्षाद्यपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ।

शोकोऽभिवातोऽतिमलद्यश्च निरक्षता चानिलगुल्महेतुः ॥ ९ ॥

वातज गुल्म—रुक्ष अज्ज और रुक्ष पेयादि के अति सेवन करने से और विषम अव्याप्ति तथा अति मात्रा में अज्ज पान करने से और विचेष्टा (परिश्रम-झी-प्रत्यंगादि) करने से, वेग (मध्यादिकों) के घारण करने से, अविक शोक से, अविवात से, मल के क्षय होने और अविक उपचास करने से वातज गुल्म होता है । अर्थात् इन कारणों से वात कुपित होकर गुल्म बत्यता कर देता है ॥ ९ ॥

यः स्थानसंस्थानक्षाविकर्षं विद्वात्सङ्गं गलवक्त्रशोषम् ।

स्थानाद्यग्रं शिशिरउवरं च हर्कुलिपार्षीसविरोधं च ॥ १० ॥

करोति जीर्णेऽभ्यविकं प्रकोपं भुवते मृकुस्वं समुपैति यश्च ।

वातारस गुल्मो न च तत्र रुक्षं कथायतिकतं कदु चोपश्चेते ॥ ११ ॥

जिस गुल्म रोग में स्थान, प्रमाण तथा वेदना आदि का विकर्ष रहे (अर्थात् इसका कुछ ठिकाना नहीं रहे कि किस स्थान पर रहता है, कितने प्रमाण में है और कभी पीड़ा कम होती है कभी अधिक) और मल तथा अवरोध हो जावे, गला और मुँह सूखता रहे, शरीर का वर्ण इत्यम अथवा तांत्र हो जावे, शीत उवर हो और हृदय, कोख, पाइर्वदेश, स्कन्ध और तिर में पीड़ा हो, भोजन के पच जाने पर अविक प्रकोप हो और भोजन कर लेने पर शान्त हो जावे इसे भूत से होने वाला गुल्म जानना चाहिये । इसमें रुक्ष, कवाय, तिक और कदु पदार्थ सेवन करने से शमन नहीं होता, किन्तु बढ़ जाता है ॥ १०-११ ॥

पैतिकमाह—कट्वग्लतीषोणविदाहिरुक्षकोधातिमध्याकर्कुताशसेवा ।

आमाभिवातो रुधिरं च दुष्टं पित्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ १२ ॥

पित्तस्य गुल्म—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही और रुक्ष पदार्थों के अति सेवन करने से, कोष अविक करने से, अधिक मध्य पीने से, अविक धूप तथा अविन के पास रहने से, आमदोष से अभिवात से और रक्त दूषित होने से पित्तस्य गुल्म होता है ॥ १२ ॥

उवरः पिपासा वृन्दाङ्गरागः शूलं महूडजीर्यति भोजने च ।

स्वेदो विदाहो वृगवृच्च गुल्मः स्पर्शस्तहः पैतिकगुल्मरूपम् ॥ १३ ॥

जिस गुल्म रोग में उवर, पिपासा, मुख और शरीर में कालिमा, भोजन पचते समय अवस्थन शूल (पीड़ा), स्वेद और दाह हो, त्रण के समान गुल्म का स्पर्श सहन नहीं हो, ये सभी पैतिक गुल्म के लक्षण हैं ॥ १३ ॥

इलैजियकमाह—शीतं गुरु द्विनाधमचेष्टनं च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।

गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वश्च तुष्टो निचयात्मकस्य ॥ १४ ॥

कफस्य गुल्म—अति-शीतल, गुरु और स्त्रियों पदार्थों के सेवन से, निश्चेष्ट रहने से (परिश्रम आदि नहीं करने से), पेट का निरन्तर भरा रहना, दिन में सोना इन कारणों से कफज गुल्म होता है । और संनिपातज गुल्म में सभी वातादिक दोष दुष्ट हो जाते हैं (यह प्रस्वपनश्च कहा गया है) ॥ १४ ॥

स्तैमित्यशीतज्वरग्राप्रसादहृष्टासकासाहचिन्गौरवाणि ।

शैत्यं रुग्णपा कठिनोऽक्षतत्वं गुरुमस्थ रूपाणिकफास्मकस्य ॥ १५ ॥

जिस गुरुम में आद्रंता, शीत उवर, अंगों की शिथिलता, हलास (उबकार), कास, अरुचि, शरीर का भारीपन, शीतलता, गुरुम में पीड़ा की कमी, गुरुम का कठिन तथा उन्नत होना ये सब लक्षण हों उसे कफज गुरुम जानना चाहिये ॥ १५ ॥

दन्दचिदोषबेषु हेतुलक्षणनिर्देशार्थमाह—

निमित्तलिङ्गाभ्युपलभ्य गुरुमे द्विदोषजे दोषबलावलं च ।

स्थामित्तलिङ्गानपरांहृष्टु गुरुमांश्चीनादिशोदौषधकलहपनार्थम् ॥ १६ ॥

दन्दज तथा त्रिदोषज गुरुम—दो दोषों के मिलित कारण और लक्षण दोषों के बालक के अनुसार जानना चाहिये अर्थात् जहाँ दो दोषों के मिलित कारण और लक्षण दिखाई दें उसे दन्दज और मिथ्रित तीनों दोषों के कारण और लक्षण जितमें हो उसे त्रिदोषज जानना चाहिये । फिर चिकित्सा करने के लिये दन्दज तीन प्रकार का समझना चाहिये ॥ १६ ॥

त्रिदोषजस्यासाध्यत्वमाह—

महारुजं दाहपरात्ममशब्दुनोऽक्षतं शीघ्रविद्वाहि दाहणम् ।

मनःशरीराभिमिथलापाहिरिणं त्रिदोषजं गुरुमसाध्यमादिशेत् ॥ १७ ॥

जिस गुरुम में अस्यन्त पीड़ा हो, दाह हो, परथर के समान कठिन तथा उत्तर हो, शीघ्र दाह करने वाला हो, महादारण (दुखदायी) हो, बल का क्षीण करने वाला हो तो वह त्रिदोषज गुरुम असाध्य कहा जाता है ॥ १७ ॥

खीर्णा रक्तगुरुमस्थ सम्प्राप्तिमाह—

नवप्रसूताऽहितमोजना या या चाइमगर्भं विस्त्रेष्ठतौ वा ।

वायुहि तस्थः परिगृह्य रक्तं करोति गुरुमं सर्वजं सदाहम् ॥ १८ ॥

गुरुम की सम्प्राप्ति—नव प्रसूता या यदि अहितकर मोजन करे अथवा जिसको गम्भेयात छुआ हो अथवा क्रतु के समय में जो अहित मोजन करे उसके रक्त को लेकर वायु रक्तगुरुम कर देता है । उसमें पीड़ा और जलन होती है ॥ १८ ॥

उत्तरं चरके—ऋताव नाहारभ्यातपेन विरुण्णैवं गविश्वारणैश्च ।

संस्तम्भनोऽस्तेखनयोनिदोषैर्गुरुमः द्विदोष रक्तमवोऽभ्युपैति ॥ १९ ॥

क्रतु के समय में उपवास से तथा भय, आतप, रुक्षमोजन, मलादि का वेग घारण, स्तम्भन और उस्तेखन दब्यों के सेवन से और योनिदोष से खियों को रक्त गुरुम होता है ॥ १९ ॥

तस्य लिङ्गमाह—पित्तस्थ गुरुमेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निवोध ।

यः इग्नदते विषिड्त एव नाहैश्चिरात्सशूलः समगर्भंलिङ्गः ।

स रौधिरः खीर्णव एव गुरुमो गासे व्यतीते दशमे चिकित्सयः ॥ २० ॥

रक्त गुरुम के लक्षण—जिस गुरुम में वित्तजग्नुम के समान लक्षण हों, किन्तु विशेष कर पिण्डाकार, अकरहित, गर्भ के समान इच्छ-उधर किरता रहे, शूल भी बहुत देर में कमी-कमी होते, गर्भ के समान और भी लक्षण हों । वह खियों को रक्त से होने वाला गुरुम है अर्थात् रक्त गुरुम के ये लक्षण हैं । इसकी चिकित्सा दसवें महीने के बाद करनी चाहिये । क्षेयोंकि यही लक्षण गर्भ का भी है, इससे दोनों के समान लक्षणों के रहने से यदि गुरुम न होकर गर्भ ही हो तो स्नान हो जायेगा ॥ २० ॥

असाध्यलक्षणमाह—

सञ्चितः क्रमशो गुरुमो भद्रावास्तुपरिग्रहः । कृतशूलः शिरानदो यदा कूर्म द्वयोऽक्षतः ॥ २१ ॥
द्वौवंलयाहचिद्वृक्षासकासवभ्यरतिज्वरैः । तृणातन्द्राप्रतिशयायैर्युद्यते स न सिध्यति ॥ २२ ॥

गुरुम के असाध्य लक्षण—जो गुरुम अधिक दिन में भीरे २ बदता हुआ उदर भर में व्यास हो गया हो, अन्य धातुओं में भी जिसका प्रवेश हो गया हो, सिराओं से विर गया हो और कहुये के समान उन्नत हो तथा जिसमें दुर्बलता, अरुचि, उबकार, कास, वमन, पीड़ा, उवर, तृण, तन्द्रा और प्रतिशयाय हो वह गुरुम असाध्य है ॥ २१-२२ ॥

पुनरसाध्यलक्षणमाह—

गुहीत्वा सापवर्ण श्वासद्वृद्ध्यतीसारपीडितम् । हन्माभिहस्तपादेषु शोधः कर्षति गुहिमनम् ॥
जिस गुरुम रोग में उवर, व्यास, वमन तथा अतिसार से पीड़ा हो और दृढ़य, नामि, इथ और पांवों में शोथ हो गया हो उसको वह गुरुम मार डाकता है । अर्थात् इन लक्षणों वाला गुरुम असाध्य है ॥ २३ ॥

श्वासः शूक्रं पिपासाऽऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूदता । जायते दुर्बलत्वं च गुहिमनो मरणाय वै ॥ २४ ॥

जिसमें श्वास, शूक्र, पिपासा, मोजन पर अनिच्छा, गुरुम के ग्रन्थि का लुप्त हो जाना और दुर्बलता हो उस गुरुम वाले को मरने ही के लिये जानना चाहिये । अर्थात् वह असाध्य है ॥ २४ ॥

अथ गुलमचिकित्सा ।

लङ्घनं दीपनं स्तिनध्यमुण्डं वातानुलोमनम् । बृंहणं च भवेद्वन्नं तद्वितं सर्वगुहिमनाम् ॥ १ ॥

गुरुम चिकित्सा—चहून (उपवास) और दीपन, स्तिनध्य, डण, वात का अनुलोमन तथा बृंहण अन्न के सेवन कराने से सब प्रकार के गुरुम में लाप्त होता है ॥ १ ॥

गुहिमनामनिलशान्तिहपायैः सर्वशो विधिवदाचरितम् ।

मारुते तु विजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमलपमपि कर्म निहन्यात् ॥ २ ॥

गुरुम के रोगियों की वायु को शमन करने की विधिवद चिकित्सा सबसे पहले करनी चाहिये । क्षेयोंकि वायु के जीत लेने पर अन्य बड़े दुष (पित्तादिक) दोषों को अल्प यत्न से भी शमन किया जा सकता है ॥ २ ॥

सुखोष्णा जाह्नवरसा: सुस्तिनध्या द्वयक्सैन्धवाः । कदुष्रिकसमायुक्ता हिताः पानेषु गुहिमनाम् ॥

जांगल जीवों का मास रस सुखोष्णा (योड़ा गरम २) धृतादि से स्तिनध्य कर सेंधा नमक और सौंठि, पीपरि, मरिच के चूर्णों को भिलाकर पान कराने से गुरुम रोगियों को लाभ होता है ॥ ३ ॥
कुदिभिण्डेष्टकास्वेदान् काशयेकुशलो भिषक् । उपनाहाश्र कर्तव्याः सुखोष्णाः शालवणाद्याः॥

वातनाशक काथादि से परिपूर्ण भाफ युक्त (जिसका सुंद ढक कर काथ किया गया हो) कुंभी या घट से स्वेद देवे (भाप से सेंके), और पिण्ड स्वेद करे (उड़द आदि पीस कर पिण्डी बना कर गरम कर उससे स्वेद देवे) अथवा ईटे को अग्नि में तपा कर वातनाशक काथादि में सिंचन कर उस भाफ से स्वेद देवे अथवा शालवण-वेशवार आदि योगों से कुशल वैष्य गुरुम में स्वेद कर्म करे ॥ ४ ॥

गुरुमस्थाने रक्तमोक्षो बाहुमध्ये शिराद्यधः । स्वेदानुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुहिमनाम्॥५॥

गुरुम के स्थान में रक्त मोक्षण कराना चाहिये, बाहु के मध्य की सिरा का रक्तमोक्षण कराना चाहिये (बाहु के मध्य की मध्या वा बड़ी सिरा वचा कर छोटी सिरा का रक्त मोक्षण कराना चाहिये क्षेयोंकि बाहु का मध्य मरमस्थान कहा गया है) और स्वेद कर्म तथा वात का अनुलोमन करने वाली किया सब गुरुम रोग वालों के लिये उत्तम कही गयी है ॥ ५ ॥

अथ वातगुरुमचिकित्सा—प्रागेव वातजे गुलमे सुस्तिनमध्यं स्वेदितं नरम् ।

रेचितं स्नेहरेकाश्रि निलहैः साजुवासनैः । उपाचरेद्विष्वप्राङ्मो मात्राकालविशेषतः ॥ १ ॥

वात गुरुम विकित्सा—वातज गुरुम में रोगी को प्रथम भली भाँति स्तिनग्रह कर, स्वेदित करे, और स्तिनग्रह विरेवनों से रेचित करे, फिर निलहै वस्ति तथा अनुवासन थस्ति देवे । इन सब कर्मों को विद्वान वैद्य मात्रा, काल आदि का विशेष विचार कर करे ॥ १ ॥

मातुलुक्षणादियोगः—

मातुलुक्षणे हिंकु दाढिम विद्वसैन्धवम् । सुरामण्डेन पातव्यं वातगुरुमद्वापहम् ॥ १ ॥

मातुलुक्षणादि योग—विजौरा नीबू के रस में शुद्ध हींग, अनारदाना, विद्वनमक, सेंधा नमक मिला कर सुरामण्ड के साथ साथ मिलाकर पान करने से वातिक गुरुम की पीड़ा को इरण करता है ॥ १ ॥

वृद्धावागरादि—नागराध्यंपकं पिष्टं द्वे पले लुभितस्य च ।

तिलस्यंकं गुहपलं चीरेणोष्णेन पायथेत् । वातगुरुमसुखावतं योनिशुलं च नाशयेत् ॥ १ ॥

नागरादि कल्क—सोंठि आषा पल, शुद्ध किये हुए तिल दो पल और पुराना गुड़ एक पल लेकर सभको पीस कर उड़ा दूध के साथ पान करने से वातज गुरुम, उदावत और योनिशुल नष्ट होता है । (इसकी मात्रा रोग-बलानुसार, विचार कर देनी चाहिये) ॥ १ ॥

दिकुपश्चक्षम्—

दिकुपश्चवृक्षाङ्कराजिकानागरैः समैः । चूर्णं गुरुमप्रशमनं स्यादेतदिकुपश्चक्षम् ॥ ३ ॥

दिगुपश्चक्षम्—शुद्ध हींग, सेंधानमक, वृक्षाङ्क (कोकम), राई और सोंठि एक २ भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से यह 'दिगुपश्चक्षम्' चूर्णं गुरुम को शमन करता है ॥ ३ ॥

केतकीश्वारयोगः—

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः श्वारः केतकिसम्भवः । पीतस्तैलेन शमयेद्वातगुरुमे सुदारुणम् ॥ १ ॥

केतकीश्वार योग—सज्जी, कूठ और केतकी के पैथेका श्वार तीनों को समान लेकर तेल के साथ पान करने से भयंकर वातज गुरुम शान्त होता है ॥ १ ॥

परण्डतैलं वा वाहणीमण्डमिश्रितम्—

परण्डतैलं वा वाहणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पथसा वातगुरुमी पिवेश्वरः ॥ १ ॥

परण्डतैलादि योग—सुरामण्ड में अथवा दूध में परण्ड तैल मिलाकर पान करने से वातज गुरुम बाले रोगी को लाग होता है ॥ १ ॥

वृन्दाद्युपश्चवृत्तम्—

हुपुषाजाजिपृथ्वीकापिष्पलीमूलचित्रकैः । श्वीरमूलककोलानां रसैऽव विपचेद् घृतम् ॥ १ ॥

वातगुरुमारुचिशास्त्रशुलानाहृवराधासाम् । महणीयोनिदोषाणां घृतमेतत्प्रियादारणम् ॥ २ ॥

हुपुषाय घृत—हाक्षवेर, जीरा, बड़ी इलायची, पिपरामूल और विक्रमूल समान लेकर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्छित गोघृत और घृत से चौगुना गोघृत और दूध के समान मूली का काथ और उसी के समान बैर का काथ कम से मिलाकर विचिपूर्वक घृतपाक करे जब घृतमात्र शेष रहे तब उतार छान कर सेवन करने से वातज गुरुम, अरुचि, श्वास, शूल, मानाह, उदर, बर्श, अर्थ, महणीयो और योनिदोष नष्ट होता है ॥ २-२ ॥

चित्रकाश्यं घृतम्—

चित्रकाश्योषसिन्धूयं पृथ्वीकाच्यदादिमैः । दीप्यकप्रनिधकाजाजीहुपुषाधान्यकैः समैः ॥ १ ॥

दीप्यारनालष्वद्वसूलकस्वरसैर्धृतम् । पकवा पिवेद्वातगुरुमद्वैर्यादोपशूलनुत् ॥ २ ॥

चित्रकाश्य घृत—चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, सेंधा नमक, बड़ी इलायची, चब्य, अनारदाना, जवाइन, पिपरामूल, जीरा (रेवत), हाक्षवेर और वनियाँ सम भाग लेकर कल्क करे, जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्छित गोघृत और घृत से चौगुना दहो और दहो के समान काबी और काजी के ही समान बैर की जड़ का काथ और उसी के समान मूली का स्वरस क्रम से मिलाकर पाक करे जब घृत रहे तब उतार छान कर पान करने से वातज गुरुम, दुर्बलता, आटोप और शूल को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

पद्मम्—

तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुकुटान्कौश्च वित्तिकान् । सर्पिः शालिप्रपञ्चांश्च वातगुरुमे च योजयेत् ॥

वातगुरुम में पथ्य—तित्तिर, मोर, कुकुट, कौच पक्षी और बटेर इनके मांसरस को घृत तथा शालिवान्य (भात) के साथ मिलाकर वातज गुरुम में पथ्य खाना चाहिये ॥ २ ॥

वातगुरुमप्रतीकारे प्रकृत्यति यदा कफः । शस्त्रमुखेष्वनं तत्र चूर्णाद्याश्च कफापहा: ॥ ३ ॥

वातज गुरुम की चिकित्सा करने से यदि कफ दोष बढ़ जावे तो उस अवस्था में उत्क्षेपन कर्म तथा कफनाशक चूर्णं आदि का प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

यदि कुण्ठ्यति वा पित्तं विरेकस्तत्र भेजज्य । दोषान्नैरप्यशान्ते च गुरुमे शोभितमोष्णगम् ॥

यदि वातज गुरुम की चिकित्सा करते २ पित्त कुपित हो जावे तो उस अवस्था में विरेचन देना चाहिये । पित्त कफ आदि दोषों को नष्ट करने वाली ओषधियों के सेवन करने पर भी यदि गुरुम शान्त न होवे तो गुरुम में रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ पित्तगुरुमचिकित्सा ।

त्रिवृच्चूर्णम्—

पित्तगुरुमे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाग्नुना । विरेचनाय ससितं कपिशुलं च समादिकम् ॥

त्रिवृच्चूर्ण—पित्त गुरुम में निशेष का चूर्णं त्रिफला के जल से विरेचन के लिये पान करना चाहिये और कवीला का चूर्णं शर्करा तथा मधु से चटाना चाहिये ॥ १ ॥

द्राक्षादियोगः—

द्राक्षाभयारसं गुरुमे पेत्तिके संगुडं पिवेद् । संशर्करं वा विलहेत्रिफलाचूर्णं मुत्तमम् ॥ १ ॥

द्राक्षादि योग—पैत्तिक गुरुम में दाख और हर्रा का स्वरस निकाल कर गुड़ मिलाकर यीना चाहिये अथवा त्रिफला का चूर्णं शर्करा के साथ खाना चाहिये ॥ १ ॥

पथ्यार्थं घृतम्—

रसेनाऽमलकेच्छणां घृतयादं विपाचयेत् । पथ्यायाश्च पिवेत्सपिस्तसिद्धं पित्तगुरुमनुत् ॥ १ ॥

पथ्यार्थ घृत—आंशके का रस और उसी के समान ईख का रस और मूर्छित गोघृत चतुर्थीश तथा रस के समान ही हर्रा का काथ इनके साथ कम से (एक २ के साथ दूध २) घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से पित्तज गुरुम नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्राक्षार्थं घृतम्—

द्राक्षामधुक्लर्जं विवारीं सशतावरीम् । पर्षद्वक्षिणी साधयेत् पलासमिताम् ॥ १ ॥

जलाके पादशैरे रसमामलकस्य च । घृतमित्तुरसं द्विरमध्याक्लपादिकम् ॥ २ ॥

साधयेत्तद् घृतं सिद्धं शर्कराद्वैद्यपादिकम् । प्रयोगः पित्तगुरुमनः सर्वगुरुमविकारनुत् ॥ ३ ॥

द्राक्षादि घृत—दाख, मुलाठी, जलाके का फल, विदारीकन्द, शतावरि, कालसा, आंवरा, हर्रा, बहेड़ा प्रत्येक एक २ पल लेकर कुछ कूद कर एक आड़क (४ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्थीशावशेष काथ उतार छानकर रख लेवे, आंवले का स्वरस (एक प्रस्थ), ईख का रस, गौ का दूध प्रस्थेक

जितना काय हो उसके समान (एक प्रस्थ) और मूर्च्छित, गोधृत एक कुड़व (४ प्रस्थ) तथा हर्ट का कल्क १ पल लेकर कम से विधिपूर्वक पृथक्-पृथक् स्वरसादिकों का पाक करते हुए मन्द २ अद्वितीय पर धृत सिद्ध करे जब धृत मात्र शेष रह जावे तब उत्तार-छानकर शीतल होने पर धृत के चतुर्थशंश शक्तिरा और मधु मिलाकर सेवन करने से पैचिक गुरुम नष्ट होता है तथा गुरुम के अन्य सब विकार नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

पथ्यम्—शार्णि गोद्वागदुर्घं च पटोलं धृतमितितम् ।

द्राष्टां परुषकं धात्री खर्जुं द्वादिमे सिताम् । पथ्यार्थं पैतिके गुरुमे बलातोर्य च योजयेत् ॥

पित्तजगुरुम में पथ्य—शालिधान का चावल, गौ तथा बकरी का दूध, परवर का शाक (धृत में सिद्ध किया दुधा) दाख, फालसा, आंवला, खजूर का फल, अनार, शक्तिरा और बरियारे का स्वरस अथवा काथ ये सब पित्तजगुरुम में पथ्य के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

अथ श्लेषमगुलमचिकित्सा ।

स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीणांसंसनवस्तिभिः । योगैश्च वातगुरुमोक्तैः श्लेषमगुलमसुपाचरेत् ॥ १ ॥

कफजगुरुमचिकित्सा—कफजगुरुम में स्नेहपान, उपनाह कर्म, स्वेद कर्म, तीक्ष्ण संसन वस्ति तथा वातगुरुम में कहे हुए योगों का व्यवहार कराकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

तिलादिस्वेदः—

तिलैरेण्डातसीवीजसर्वपैः परिलिप्य च । श्लेषमगुलमसमयस्पावैः सुखोण्यैः स्वेदयेन्द्रियकृ ॥ १ ॥

तिलादि स्वेद—तिल, एरण्ड औज, (तुषरहित) तीसी और सर्सों इनको पीस कर गुरुम (कफजगुरुम) पर लेप कर लोहे के पात्र को कुछ तपा कर (सहने योग्य) उससे गुरुम को स्वेद देवे। इससे कफजगुरुम शमन होता है ॥ १ ॥

यवान्यादियोगः—

यवानीं चूर्णितां तक्षेषु लवणीकृताम् । श्लेषमगुरुमे पिबेद्वातमूत्रवर्चोनुलोमनोभ् ॥ १ ॥

यवान्यादि योग—जवाहन तथा विडनमक के चूर्ण को मट्ठे में मिलाकर पान करने से कफजगुरुम में वात-मूत्र-पुरीष का अनुलोमन होता है अर्थात् कफजगुरुम में लाभ होता है ॥ १ ॥

क्षीरषट्पलं धृतम्—

पिपलीपिधपलीमूलचध्यचित्रकनागरैः । पलिके स्वयच्चारै धृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥

चूर्णप्रस्थेन तत्सर्पिहन्ति गुरुमं कफात्मकम् । ग्रहणीपाणहुरोग्नां प्लीहाकासउवरापद्म ॥ १ ॥

क्षीरषट्पल धृत—पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल और सोंठ तथा यवाखार इनको एक-एक पल लेकर पाक करे, मूर्च्छित गोधृत और गोदुग्ध प्रस्थेक एक-एक प्रस्थ पक्षत कर मन्दाद्वि पर धृत सिद्ध कर सेवन करने से कफजगुरुम, ग्रहणी, पाणहुरोग, प्लीहा, कास रोग और ज्वर को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मिश्रकस्नेहः—

त्रिवृता त्रिफला दन्ती दशमूलं पलोनिमतम् । जले चतुर्गुणे पञ्चवा चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥

सर्पिरेरण्डतैलं च चूर्ण चैकत्र साधयेत् । संसिद्धो मिश्रकस्नेहः सचौद्रः कफगुरुमनुत् ॥ २ ॥

मिश्रक स्नेह—निशोय, आंवरा, हरा, वहरा, दन्तीमूल तथा दशमूल ओषधियों को पृथक्-पृथक् एक २ पल के प्रमाण से लेकर बौगुने जल के साथ चतुर्थशंश शेष काप कर उत्तार-छानकर जितना काथ हो उसके समान भाग मूर्च्छित गोधृत, एरण्ड तैल और दूध (गाय का) लेकर एकत्र पाक करे और जब केवल स्नेह (धृत-तैल) मात्र शेष रहे तब उत्तार-छानकर रख लेवे। इसे 'मिश्रक स्नेह' कहते हैं। इसको मधु मिलाकर सेवन करने से कफजगुरुम नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्वदावर्त्तचिकित्सा

३४

पथ्यम्—

कुलस्थास्मीर्णशालींश्च षष्ठिकान्यवज्ञाङ्गलान् । मध्यं तैलं धृतं तक्रं कफगुरुमे प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

कफजगुरुम में पथ्य—कफजगुरुम में कुलधी, उराने शालिधान का चावल, साठी, जौ, जागल और चीवों का मांसरस, मध, तैल, धी और मठ्ठा इन सब द्रव्यों का पथ्य में प्रयोग करना चाहिये ॥

अथ त्रिदोषगुलमचिकित्सा ।

वज्ञणादिकषायस्तु गुरुमं दोषवश्योरित्यत्म । हन्ति हस्पाश्वशूलाद्वयं सोपद्रवमसंशयम् ॥ १ ॥

त्रिदोष-गुरुम-चिकित्सा—वज्ञणादि कषाय पान करने से त्रिदोषगुरुम हृत्य, हृदय का शूल, पादवशूल और अन्यान्य गुरुमों के सभी उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शाक्षंथराद्वरुणादिकाय—

बहुणो बकपुष्पश्च विलवापामार्गचित्रकाः । अग्निमन्थशूलं शिश्रद्वयं च द्वृहतीद्वयम् ॥ १ ॥

सैरेयकश्च भूर्भा मेषश्रद्धी किरातकः । अजस्याङ्गी च विश्वी च करञ्जश्च शतावरी ॥ २ ॥

वज्ञणादिगणकायः कफमेदोहरः स्मृतः । हन्ति गुरुमं शिरःशूलं तथाऽध्यन्तरविद्वीन् ॥ ३ ॥

वज्ञणादि कथ—वज्ञणा की छाल, अगस्त्य का पूल, बैल की छाल, अपासारे की जड़, चित्रक की जड़, गनियार छोटा, गनियार बड़ा, सहिजन और रक्त सहिजन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कटसरैया वैतपुष्प की नील पुष्प की तथा पीत पुष्प वाली तीनों पृथक् २, मूर्चामूल, मेडासिणी, चिरता, अजमूर्ची, विश्वीफल, करञ्ज और शतावरि ये वज्ञणादि हैं। इनको समान लेकर काथ कर सेवन करने से कफ, मेष, गुरुम रोग, शिरःशूल और अन्यविद्विति नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

अथ रक्तगुलमप्रतीकारः ।

पित्तवदक्षगुरुमन्था नार्थाः कार्यो यथाविधि । प्रसिन्धस्विश्वकोषायायोजयं स्नेहविरेचनम् ॥

रक्तगुरुम चिकित्सा—रक्तगुरुम वाली जियों की चिकित्सा पित्तजगुरुम के समान करनी चाहिये। पहले स्नेह पान करा कर कोष को स्वेदन करे, फिर स्त्रिय विरेचन देवे ॥ १ ॥

शताहादिकलः—

शताहादिचिरविवश्वदश्मभाङ्गीकोद्धवः । एहकः पीतो जयेद् गुरुमं तिलकायेन रक्तजम् ॥

शताहादि कल—सौफ, नाटा करञ्ज की छाल, देवदार, भारजी और पीपरि सम भाज लेकर काथ कर तिल के काथ के अनुपान से पान करने से रक्तगुरुम नष्ट होता है ॥ १ ॥

तिलकायः—

तिलकायो गुष्ठधृतव्योषभाङ्गीरजोनिवतः । पानं रक्तभवे गुरुमे नष्टे पुष्पे च योवितः ॥

तिलकाय—तिल के काथ में पुराना गुह, धृत, सोंठ, पीपरि, भरिच और वयनेठी इनके समान मिलित चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तगुरुम नष्ट होता है और रबोवरोध में देने से आसिक घंटे खुल जाता है ॥ १ ॥

शुष्टसात्तिलमूलादि चूर्णम्—तिलमूलं च शिश्रुं च व्रह्मदण्डीयमूलकम् ।

शुष्टसात्तिलमूलादि चूर्णम्—तिलमूल के चूर्णमुपासयेत् । पुष्परोधे वातगुरुमे चीणां साधः सुखावशम् ॥ १ ॥

तिलमूलादि चूर्ण—तिल की जड़, सहिजन की छाल, वयनेठी, मूली, जेठीमधु, सोंठ, पीपरि और भरिच को समग्र लेकर चूर्ण कर सेवन करने से रजोवरोध और वातवा गुरुम में जियों को लाभ करता है ॥ १ ॥

भाङ्गीर्णिन्द्रिचूर्णम्—

भाङ्गीर्णिन्द्रिचूर्णम्—चूर्ण तिलानां कायेन रक्तगुरुमरुजापद्म ॥ १ ॥

३६ शुद्ध उत्तम

भाङ्गर्थादि चूर्ण—वसनेठी, पीपरि, करज की छाल, पिपरामूल, देवदार की छाल प्रथेक शुद्ध २ भाग लेकर नूरं कर तिक के काथ के साथ सेवन करने से रक्त गुलम की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

दन्तयादिगुटिका—सून्तीहिकृथवच्छारालाकृष्णकणगुदाः।
द्युष्मीष्विरेण गुटिका सर्वेषां कर्षमात्रिका । भविता रक्तगुलमधी खचिरस्तावकारिणी ॥ १ ॥

दन्तयादि गुटिका—दन्तीमूल, शुद्ध हींग, यवाखार, कट्टुम्बी की बीज, पीपरि, पुराना गुड एक २ भाग लेकर सून्ही हीर मदन कर बटी बनावे । एक कर्व के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से रक्तगुलम और रक्तवरोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

अकृपुष्पयोग—पवकं तेलेऽर्कजं पुष्पं खचिरस्तावकारि च ॥ १ ॥

अकृपुष्पयोग—मदार के फूल को तेल के साथ पाक कर पान करने से खचिर का साव होता है (रक्तवरोध नष्ट होता है) ॥ १ ॥

पलाशश्वारघृतम्—

पलाशश्वारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिवेद्दधूः । वस्तिमध्वसरे शारतोयसाध्यघृताविषु ॥ १ ॥
फेनोद्वाग्मस्य निर्वृतिनर्शुद्धगुलमसमाहृतिः । स पृथ तश्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ २ ॥

पलाश श्वार घृत—पलाश के क्षार का बछ ४ भाग और मूँछिलत गोघृत १ भाग के साथ घृत सिद्ध करे, जब घृत मात्र देख रहे तब उतार-छानकर खो को पिलाने से रक्तगुलम नष्ट होता है और थो मासिक वर्ष बन्द हो गया है वह होने लगता है । जिस समय क्षार के बक से घृत पाक किया जाता है उस समय फेन उसमें अधिक होता है और फेन दुष्क के समान वह देखने में हो जाता है वही लक्षण घृत के उचित पाक होने का समझना चाहिये । यदि इस रूप का नहीं हो तो पाक ठीक नहीं हुआ, यह जानना चाहिये ॥ १-२ ॥

वृन्दादिगुलवकम्—

मुण्डीरोचनिकाचूर्णं शकंरामात्रिकान्वितम् । विद्धीताद्यगुलिमन्थां मलसंरेचनाय च ॥ १ ॥
मुण्डयादि चूर्ण—मुण्डी और वंशालीचन दोनों को समझाए लेकर चूर्ण कर शकंरा और मधु मिलाकर सेवन करने से रक्तगुलम वाली खियों के मक का रेचन हो कर रक्तगुलम में राम होता है ॥ १ ॥

दृष्टिर्वाच भेदयेत्तिन्ने विधिर्वाऽसुवदरो हितः । अतिग्रवृत्तमस्तु भिन्ने गुलमे निवारयेत् ॥ २ ॥

दृष्टि दृष्टों से रक्त गुलम का भेदन करे और उष्म भेदन से रक्त निकल जावे तब उसमें रक्त प्रदर में कहीं तुरी विधि हितकारक है । गुलम के भेदन होने के कारण यदि रक्त का अधिक स्नाव होने लगे तो उसका अवरोध भी करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

विश्वकारिकापाथः—

विश्वकारिकापाथः परं हितः । शूलानाहविवन्देतु सहित्तगुधिद्वैन्धवः ॥ १ ॥
विश्वकारिकापाथ—विश्वकरूल, पिपरामूल, एरण्डमूल और सौठ समझाए लेकर काथ कर शुद्ध हींग, विडनमक और सेथा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से शूल, आगाह और विषव रोग में अस्थन्त हितकारी होता है ॥ १ ॥

दिक्षगुडिचूर्णम्—

दिक्षगुडिचूर्णम्—विश्वकारिकापाथात्तार्थी, शूलान्तर्क लवणद्वयं त्रिकटुकं शारद्वयं दाढिमम् ।
दिक्षगुडिचूर्णम्—विश्वकारिकापाथात्तार्थी, शूलान्तर्क लवणद्वयं त्रिकटुकं शारद्वयं दाढिमम् ।
प्रथापुष्करवेतसारुद्धुलाज्ञायस्तदेभिः कृतं, चूर्णं भावितमेतदाद्रकरसैः स्याहीजपूरस्य च ॥

आप्मानग्रहणीविकारगुद्धजान्मुखावर्तकान्
प्रस्याधमानगदं तथाऽस्मियुतं तूनिद्वयारोचकान् ।

उद्दस्तमतिभ्रमं च भनसो वाचिर्यमष्टीलिकां

प्रत्यष्टीलिकामध्यापहरते प्राशपीतमुष्णामहुना ॥ २ ॥

हुकुषिवकृष्णकटीजटान्तरेषु वस्तिस्तनांसफलकेषु च पाश्वर्योश्च ।

शूलनि नाशयति वातघलासज्जानि हिह्यवादि मान्द्यमिदमाश्चिनसंहितायाम् ॥ ३ ॥

हिंवादि चूर्ण—शुद्ध हींग, पीपरामूल, धनिया, बीरा, वच, चाव, विश्वकरूल, पुरश्न पादी, कचूर, वृक्षामूल (कोकम), सेथानमक, सोचरनमक, विडनमक, सौंठि, पीपरि, मरिच, पीपर, यवाखार, सज्जोखार, अनारदाना, हर्टा, पुहकरमूल, अम्लवेत, हालवेत, बीरावेत, सम भाग (एक २ भाग) लेकर चूर्ण बना कर अद्रक के स्वरस से मावना देवे, फिर अम्बीरी नीबू के स्वरस से भावित कर उणोद्रक के अनुपान से पीने से आधमान, ग्रहणी, अर्श, गुलम, उदावर्त, प्रस्याधमान, अक्षमरी, तूनी, प्रत्नी, अबचि, उद्दरतम्य, मतिभ्रम (अमरोग), मानस रोग (चन्मादादि), वाचिरता, अष्टीका, प्रत्यष्टीला आदि रोग, हृदय, कुक्षि, वंशण, कटि, उद्दर, वस्ति, स्तन, स्कन्द दोनों, तथा दोनों पाखों के शूल और वात कफ से उपत्पन्न शूल इन सब को तथा मन्दादिन को भी नष्ट करता है । अधिन संहिता में इस चूर्ण का नाम ‘हिंवादि चूर्ण’ है ॥ १-३ ॥

वृन्दादिगुलवकम्—

हिङ्गु पुष्करमूलानि तुम्बुरुणि हरीतकी । श्यामा विद्धं सैन्धवं च यवस्तारं महीषधम् ॥ १ ॥
यवकाथोदैवेनैतद घृतभृष्टेन पायथेत् । तेनाश्य भियते गुलमः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥

हिंगुनवक—शुद्ध हींग, पुहकरमूल, तेजवल के फल, हर्टा, कृष्णा सारिवा, विडनमक, सेथानमक, यवाखार और सौंठ इन ओषधियों को सम भाग लेकर चूर्ण कर रखे, पुनः वृत्त के साथ भूक लेवे फिर यव के काथ के अनुपान से उपरोक्त चूर्ण को सेवन करने से शूल तथा उपद्रवों संहित गुलम रोग फूट जाता है ॥ १-२ ॥

भास्करणवाद्य चूर्णम्—

सामुद्रलवणं ग्राहामष्टकर्थमितं त्रुधे । एवं सौवर्चलं ग्राहां विडसैन्धवधान्यकम् ॥ १ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं चूर्णं जीरकपत्रकम् । नायकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा ॥ २ ॥

द्रिकर्थमात्रायेतानि प्रथेकं काहयेद् त्रुधः । मरीचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ३ ॥

दाढिमस्य चतुर्क्षयं त्वगेला चार्धकर्षिका । एतच्चूर्णकृतं सर्वं लवणं भास्करभिधम् ॥ ४ ॥

भास्करणवाद्य चूर्ण—बुद्धिमान वेद सामुद्र नमक और सौचर नमक ८ कर्ष और विडनमक सेथानमक, धनिया, पीपरि, पिपरामूल, चब्य, इवेत जीरा, तेजपत, नायकेसर, तालिसपत्र, अम्लवेत, प्रथेक दो २ कर्ष तथा मरीच, जीरा और सौंठि एक २ कर्ष, अनारदाना ४ कर्ष, दाढ़-चीनी आधा कर्ष और छोटी इषायवी के दाने आधा कर्ष सबको एकत्र चूर्ण कर लेवे । यह ‘भास्करणवाद्य चूर्ण’ कहा जाता है ॥ १-४ ॥

शाणग्रामाणं देयं तु मधुतुक्षुरासवैः । चातरलेघमवं गुलमं प्लीहानमुदरं चतम् ॥ ५ ॥

अर्शासि ग्रहणीं कुष्ठं विद्यन्धं च भगवद्रम् । शोधं शूलं श्वासकासमामदोधं च हृदजन् ॥

मन्दादिनि नाशयत्वेतहीपनं पाचनं परम् । सर्वलोकहितार्थं भास्करेणोदितं पुरा ॥ ६ ॥

इस चूर्ण को एक शाग (४ मात्रा) के प्रमाण की मात्रा से दही के पानी, तक, मध अथवा आसव के अनुपान से सेवन करने पर वातकफ से उपत्पन्न गुलम, प्लीहा, उद्दर, क्षतरोग, अनी, ग्रहणी, कुष्ठ, विषव, अग्नन्दर, शोध, शूल, श्वास, कास, आमदोष, हृदय की पीड़ा, मन्दादिन इन सब

रोगों को नष्ट करता है। यह चूर्ण वास्तव दीपन तथा पात्र है। इस चूर्ण को संसार के कल्पण के लिये पहले आस्कर ने कहा था हस्तीते इसका नाम 'आस्कर छब्बण' है ॥ ५-७ ॥

क्षारदयादि—

क्षारद्यानलद्योषनीलवणपञ्चकम् । चूर्णितं सर्विष्ठा पैषं सर्वं गुरुरपेष्वरापद्मम् ॥ १ ॥

क्षारदयादि योग—यवाखार, सज्जीखार, चित्रकमूल, सौठि, पीपरि, मरिच, नील, सेवानमक, सौचरनमक, विडनमक, सुमुद्रनमक और उद्धिदलमक सम आग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के गुरुरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अधिनमुखरसः—

द्विगुणभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत् । पिपली चिंगुणा ज्येष्ठा । शुद्धवेरं चतुर्गुणम् ॥ २ ॥
चवानिका पञ्चगणा षड्गुणा च हरीतकी । चित्रकं सप्तमुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ॥ २ ॥
एतद्वातहरं चूर्णं पीतमांशं प्रसक्षया । पिपेहृना असतुना वा चुरुया कोणवारिणा ॥ ३ ॥

उदावत्मर्जीर्णं च 'पलीहानसुद्धरं तथा ।

अङ्गनि यस्य शीर्यन्ते विषं वा येन भवितम् । अशोंहरो दीपनश्च शुद्धनो गुरुमनाशनः ॥

अधिनमुख रस—शुद्ध हींग एक आग, बच दो आग, पीपरि तीन आग, सौठि ४ आग, चिवाइन ५ आग, हर्दा ६ आग, चित्रकमूल ७ आग, कूठ ८ आग लेकर चूर्ण बना कर प्रसक्षा, दही, दक्षी के पानी, सुरा अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने पर वात को वक्षा उदावत्तं, अबीर्ण, पलीहान और उदररोग को नष्ट करता है तथा चिसके अङ्ग शिथिक हो गये हो अथवा चिसने विष यस्त्रण किया हो उहें काम करता है तथा अशोंहरोग, शुद्ध रोग और गुरुरोग को भी नष्ट करता है। यह दीपन है ॥ ४ ॥

कासं शासं निहन्त्याशु तथैव त्यन्तवानाशनः । चूर्णो छासिनमुखो नामना न क्षवितप्रतिहन्त्यते ॥

यह 'अधिनमुख' नामक चूर्ण कास और श्वय को भी शोषण नष्ट करता है। यह चूर्ण अपने नाम के प्रभाव को नष्ट नहीं होने देता-अर्थात् उपर्युक्त सभी रोगों में अवश्य काम करता है ॥ ५ ॥

काङ्क्षायनगुटिका—

यदानी जीरकं धान्यं मरिषं गिरिकर्णिका । अजमोदोपकुञ्जो च चतुःशाणाः पृथक् पृथक् ॥
द्विष्टु षट्काणिकं कार्यं लारौ लवणपञ्चकम् । त्रिवृच्चाष्टमितः शाणैः प्रत्येकं कलपयेत्प्रसुधीः ॥
दन्ती शटी पौष्करं च विडङ्गं द्वादिमं चिचा । चित्रोऽप्तवेत्सः शुष्टी शाणैः षोडशसिः पृथक् ॥
वीजपूरवसेनैर्वां गुटिका कारयेद् तुष्टः । शृतेन पयसा चाग्ने रसैरुष्णोयुक्तेन वा ॥ ६ ॥
पिपेकाङ्क्षायनप्रोक्ता गुटिका गुरुमनाशिनी । मध्येन बातिकं गुरुमं गोक्षीरेण च पैतिकम् ॥ ७ ॥
शुद्धेण कफगुरुमं च दक्षमूलैङ्गिद्वेषजम् । उष्टीदुर्धेन नारीणां रक्तगुरुमं निवारयेत् ॥ ८ ॥

हृद्रोगं ग्रहणीशूलं कुमीनशार्णसि नाशयेत् ॥ ७ ॥

काङ्क्षायन गुटिका—जवाइन, जीरा, बनिया, मरिच, इन्द्रायण, अजमोदा, कुञ्ज जीरा प्रत्येक चारे शाण (१६-१६ माषा), शुद्ध हींग ६ शाण, यवाखार, सज्जीखार, सेवा नमक, विड नमक, सौचर नमक, सामुद्र नमक, उद्धिद नमक और निशेष पृथक् पृथक् आठ २ शाण और दन्तीमूल, कच्चूर, पुइकरमूल, बाग्नीरंग, अनारदाना, हर्दा, चित्रकमूल, अम्बवेत, सौठ प्रत्येक १६-१६ शाण लेकर चूर्ण कर चिंगीरा नीबूके रस में मर्दन कर बटी बना लेवे। इस बटी को घृत, दूष, अम्लरस (कांगी आदि) अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से यह काङ्क्षायन बटी गुरुम को नष्ट करती है। मध्य के अनुपान से बातिक गुरुम, गोदुष तथा पैतिक गुरुम से कफब

गुरुम, दशमूल के काथ से चिदोषग गुरुम और लैटनी के दूष के अनुपान से लियों के रक्तगुरुम, द्वारो, ग्रहणी, शूल, कृष्ण तथा अर्दी को नष्ट करती है ॥ १-७ ॥

चिङ्गाशारादिशूलवटी—

चिङ्गाशारारं स्तुहीष्वारमक्षारं पलं पलस् । द्विपलं शूलजं भस्म रामठं च पलाधंकम् ॥ १ ॥

लवणानि च लवर्णिणि पलमाग्राणि योजयेत् । चारदूयं पलाधं च सर्वमेकत्र योजयेत् ॥ २ ॥

अङ्गीरकरसैर्मर्यांगमनलस्य दिनश्वयम् । भृङ्गराजस्य निर्गुणद्वया मुण्डयाश्रेव पृथग्ग्रन्धवैः ॥ ३ ॥

आद्रेकस्थ रसेनैव प्रथेकं दिनमद्वितयम् । बदरीशीजमात्रांस्तु बढ़कान् कारयेद्विषक् ॥ ४ ॥

चिङ्गाशारादि शूलवटी—इसली का शार, सेहुड़ का शार, मदार का शार एक २ पल, शूल भस्म दो पल, शुद्ध हींग आग आग पल (२ क्वर्ट), पांचों नमक भिक्षित एक पल, यवाखार और सज्जी खार दोनों भिक्षित आग पल लेकर सक्तो एकत्र मर्दन कर जमीरी नीबू के रस तथा चित्रकमूल के रसरस के साथ पृथक् २ तीन २ दिन तक मर्दन करे। फिर आंगरे के रस, निर्गुणी के रस, मुण्डी के रस और भृङ्ग के रस के साथ पृथक् २ एक २ दिन मर्दन कर वैर के शीष के समान (प्रमाण) बटी बना कर बैष रख लेवे ॥ १-४ ॥

पृक्कं भज्येत्प्राप्तः पञ्च गुरुमालं व्यथोहति । सर्वं शूलं निहन्त्याशु अक्षीर्णं च विषुचिकाम् ॥
मन्द्यार्दिन नशयेद्वृक्षीज्ञ पथ्यं तेलाङ्गालवर्जितव्य । चिङ्गाशूलवटी नाम ग्रहणीरोगहपरा ॥५॥

इसकी एक २ बटी प्राप्तः काल सेवन करने से पांचों प्रकार के गुरुम नष्ट होते हैं और सब प्रकार के शूल रोग, अक्षीर्ण, विषुचिका और मन्द्यार्दिन शोषण नष्ट होते हैं। इसके साथ पथ्य में केवल तेल और खाराई वर्जित है। यह 'चिङ्गा शूलवटी' नामक औषधि ग्रहणी रोग की जट करने में उत्तम कही गयी है ॥ ५-६ ॥

वज्रज्ञारः—

सामुद्रं सैन्धवं कार्यं यवाइनं सुवर्जलम् । दक्षं प्रवर्जितकाशारं तुर्सं चूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥

अर्कचूरीः स्तुहीष्वारैः शोषयेद्वातपे व्यथहृः । अर्कचूरं लिपेत्तेन रुद्रध्वा आण्डे धुटे पचेत् ॥२॥

तं चारं चूर्णयित्वाऽथ व्युषणं विफलारजः ।

बीरकं रजनी वहिनंवकस्य समं ततः । चाराधं योजयेत्प्रस्त्रयोक्तीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ ३ ॥

वज्रज्ञारमिमं शुद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना ॥ ४ ॥

वज्रज्ञार—सामुद्र नमक, सेवा नमक, काच नमक, यवाखार, सोचर नमक, शुद्ध टक्कण और सज्जीखार तम आग लेकर चूर्ण कर मदार के दूष और सेहुड़ के साथ पृथक् २ तीन दिन तक आवना देवे फिर मदार के पत्तों में उपेट कर एक हींगी में रखकर सुख बन्द कर अपिन पर आका कर भस्म कर लेवे और मर्दन कर इस भस्म में सौठि, पीपरि, मरिच, अबीला, हर्दा, वेद्वा, जीरा, हरदी, चित्रकमूल हन लौ द्रव्यों को लमान माग लेकर चूर्ण कर भस्म (शार) अितना हो उसके आवा इस मिलित चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर रख लेवे। इस 'भुद्रवज्रज्ञार' को स्वयं भग्नदेवती ने कहा था ॥ १-४ ॥

सर्वोदयेषु शूले शोषे च योजयेत् । अजिनमान्ये व्यजीर्णं च भजेनिन्द्रकृत्यं तथा ॥

इसको सब प्रकार के उदर रोग, शूल, शूल, शोष, मन्द्यार्दिन और अक्षीर्ण में देना चाहिये। इसकी मात्रा दो निष्क के प्रमाण की चाहिये ॥ ५ ॥

वाताविके ललैः क्षोष्णीर्घृतैः पित्ताविके हितः । कफे गोमूत्रसंयुक्त आदनालैचिद्वोषजुत् ॥ ६ ॥

वात की अविकता में कुछ उष्ण जल के अनुपान से, पित्त की अविकता में घृत से, कफ की अविकता में गोमूत्र से और चिदोष की अविकता में कांजी के अनुपान से सेवन करना चाहिये। अर्थात् इन २ अनुपानों से तीनों द्रव्यों के कोष से दोनों वाले गुरुम आदि नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

योगसाराप्रद्वादावः—प्रस्थं जमीरनीरं बद्रपरिमितं काकुपदस्य मूलं
कषाधे स्वर्णिकायाक्षिपदुपलयुतं नव्यसारं पलाधंम् ।
तत्सर्वं सूर्यतापे मुनिदिनशुगलं काचकूप्यां निधाय
हन्याद् गुरुम् सुतीवं अठरमल्लजं शङ्ककद्रावसंज्ञः ॥ १ ॥

शङ्कद्राव का कषण और गुण—जमीरी नीबू का रस एक प्रथम, काकनासा की बड़ी कोण प्रमाण (२ शाखा), सज्जीखार आधा कर्ष, सेंधानमक, सौचर नमक और विहनमक मिकित १ पल, नरसार आधा पल लेकर सबको एकत्र कर काढ़ के वर्तन में रख कर चौदह दिन तक सूर्य के ताप में रख कर सेवन करने से तीव्र गुरुम रोग, उदररोग और मल की पीड़ा (मल का उचित निर्गम नहीं होना) आदि सब नष्ट होते हैं । इसका नाम 'शङ्कद्राव' है ॥ १ ॥

अन्यः शङ्कद्रावः—

फटकीपलमेकं च सैन्धवं पलमेव च । द्विपलं च यद्वारं द्विपलं नवसागरम् ॥ २ ॥
चतुर्पलं सुराचारं पलाधं कासिसं तथा । दम्भयन्त्रयोगेन तुश्यां वै बद्रीनवनैः ॥ २ ॥

साधयेष्वाचावाचर्णं शङ्कद्रावरसं परम् । गुरुमादिसर्वरोगेषु देयः सर्वसुखप्रदः ॥ ३ ॥

फिटकिरी, सेन्वा नमक १-२ पल, यवाचार, नरसार दो पल, सोरा ४ पल, कासीस आधा पल लेकर मर्दन कर विषिपूर्वक ढमल यन्त्र में रख कर चूसे पर चढ़ा कर वैर की लकड़ी के आंच से पाचन करे । यह 'शङ्कद्राव रस' छुटुता के कारण शीघ्र यन्त्र में क्षपर चढ़ जावेगा । इसको गुरुम आदि सभी उदर रोगों में देने से लाभ होता है ॥ २-३ ॥

अन्यतः—

सैन्धवं च यद्वारं नरसारं तथैव च । प्रथेकं द्विपलं ग्राहं सुराचारं चतुर्पलम् ॥ १ ॥
फटकीपलमेकं च पलाधं कासिसं तथा । सर्वमेकत्र संयोग्य दमरूयन्त्रमध्यगे ॥ २ ॥

तुश्यां प्रोहयेत्तु उवालयेष्वादिरेन्वनैः । द्रवितं तत्समादाय तेजोरूपं जलप्रभद् ॥ ३ ॥

ग्रावयेष्वाचिलान् धातून् वरात्रांश्च न संशयः । शङ्कद्रावरसो नाम गुरुमोदरहरः परः ॥ ४ ॥

सेंधा नमक, यवाचार और नरसार प्रथेक दो २ पल लेवे, सोरा ४ पल, फिटकिरी १ पल कासीस आधा पल लेकर उसको एकत्र कर ढमल यन्त्र में रख कर चूसे पर चढ़ा कर वैर की लकड़ी का आंच देवे । इससे द्रवित तेजोरूप जल के समान औषध को रख लेवे । इस शङ्कद्राव से सब वातु द्रवित हो जाते हैं (गल बाते हैं) और कौड़ियों भी द्रवित हो जाती हैं । यह 'शङ्कद्राव' नामक रस गुरुम तथा उदर रोग का अथन्त नाश करने वाला है ॥ १-४ ॥

कन्धादरसः—

द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिलिपेत् । पारदं पलमानेन मृतशुलबायसी पुनः ॥ १ ॥
कर्जमानेन समिश्र्य पञ्चाङ्गुलद्वये लिपेत् । ततो विचूर्ण्य यस्तेन विद्विष्याऽप्यसपात्रे ॥ २ ॥

तुश्यां निवेश्य यस्तेन चालयेन्मदुचहिना । पात्रं पात्रं ही जमीररसं तत्र प्रवायेत् ॥ २ ॥

पञ्चकोलसमुद्भूतैः कायाँः सारांश्वेतसैः । भावनाः खलु दातव्याः पञ्चाशत्रमितास्तथा ॥ २ ॥

मृष्टदण्डन्यूनेन तुश्येन सह मेलयेत् । तद्वर्धपञ्चलवैः सर्वसाम्यमरीचैः ॥ ५ ॥

सप्तशा भावयेष्वशाच्छान्कचारवारिणा । ततः संशोध्य सम्पेत्य कूपिकाम्यन्तरे विषेत् ॥ ६ ॥

कन्धादि रस—शुद्ध गन्धक दो पल लेकर अविन पर पिघला कर शुद्ध पारद १ पल में भिलाकर मर्दन कर विषिपूर्वक कजली कर उसमें तात्र ग्रस्य और कोह ग्रस्म एक कर्ष भिला कर मर्दन कर मन्द २ अविन पर लोह के पात्र में पाक करें, जब द्रवीभूत हो जावे तब पर्णटी की विषि से एरण्डपत्र पर ढालकर पर्णटी बना कर फिर चूर्ण कर एक कोहे के पात्र

(कड़ाही) में रख कर चूसे पर चढ़ा कर उसमें एक आड़क जमीरी नीबू के रस को गिल कर मन्द २ अविन पर पाक करे और चकाता रहे जब सब रस सूख जावे तब पञ्चकोक के क्वांच पीपरि, पिपरामूल, चब्य, चित्रमूल और सौंठि को समान लेकर विषिपूर्वक अठुले जल में काथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर ढारार कर छान देवे और अम्बेत के क्वांच से पृथक् पृथक् ५० वार अविन कर छुचा लेवे । सूखने पर वितना यह शौषध दो उसके समान आग भूजा हुआ (शुद्ध टक्कण) सोहागा का चूर्ण भिलावे और तुदागे के आवा आग पर्णबी लम्भक का भिलित चूर्ण भिलावे, तथा सब भिला कर वितना हो उसके बराबर मरिच का चूर्ण भिलाकर मर्दन कर चणकाकार के जल से सात भावना लेकर चुस्ता कर पीस कर शीशी में रख लेवे ॥ २-६ ॥ अथन्तगुहमोदयानि गुरुमांसान्यनेकशः । भचेष्वाऽकण्ठपर्यन्तं ततो देयो रसोत्तमः ॥ ७ ॥ चतुर्वर्षलमितो देयस्तक्षः सलवणैरपि । भक्तं जीर्यति तस्तिष्यं जायते दीपनं परम् ॥ ८ ॥

रसः कन्धादनामाऽप्य ग्रोको भन्थानभैरवः ।

सिंहलषोणिपात्राय भूरिमांससुजे पुरा । ततः कन्धादकः ग्रोको दृढं प्रथयकारकः ॥ ९ ॥

अथन्त गुरु भोजय पदार्थं, अनेक प्रकार के गुरु सांतादि कण्ठ पर्यन्त भोजन कर अर्थात् अधिक से अधिक प्रमाण में भोजन कर इस रस को ४ बछ के प्रमाण की आवा से सेवन करना चाहिये । इसको नमक मिले हुए मट्ठे के साथ भी देते हैं । इसके सेवन से भोजन दीप्ति पश्चाता है और अविन अथन्त दीप होती है । इस 'कन्धाद भैरव' नामक रस को मन्धान भैरव ने तिहाई देना के बाबा के लिये कहा था को बहुत सूक्ष्मोजी था । इसलिये इसका नाम 'कन्धाद रस' कहा गया, यह अथन्त पाचन है ॥ ७-९ ॥

कुर्यादीपनसुदृतं पवनञ्जे देवे परं शोषणं

तुष्मस्यैषयनिवर्हणे गदहरो दुष्टवणातिप्रणुत् ।

कासशास्विनाशनो ग्राहणिकाविष्वंसनः ज्ञासनो

गुरुमप्लीहजलोदरोपशमनः कन्धादनामा रसः ॥ १० ॥

यह रस अथन्त अविन को दीप करता है, बातम शरीर में अथन्त शोषक है । ऐट के निकले हुए तोद और स्थृता को नष्ट करता है, रोग को हरण करता है और दुष्ट ब्रण की पीड़ा कास, शास तथा ग्रहणी को नष्ट करता है और ज्ञासन सारक अर्थात् मल निकालने वाला है । और गुरुम, प्लीहा, जलोदर को यह कन्धाद नामक रस नष्ट करता है ॥ १० ॥ विश्विष्वुविदैः सार्थं कन्धादो भविष्यतो रसः । गुरुमानशोषान् प्लीहानं विद्रुष्मोनिपि नाशयेत् ॥

सौंठि, शुद्ध हीग और विष नमक के समान भिलित चूर्ण के साथ इस कन्धाद रस को भक्षण करने से सभी प्रकार के गुरुपरोग, प्लीहा और विषि भी नष्ट होता है ॥ ११ ॥

गदनिप्रदाच्चिकित्सकः—

चविकाथास्तुलार्थं तु तथैव चिक्रकस्य च । चापिका उपकरं मूलं षड्ग्रन्था हपुषा जाई ॥ १ ॥

पटोलमूलचिफलायवानीकृटज्ञवचः । विशाला धान्यक रासना दृन्ती दक्षपलोम्भिता ॥ २ ॥

द्वृमिष्टसुरतमग्निद्वादेवद्वादकदुविकम् । भागान् पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽप्यसः पचेत् ॥ ३ ॥

द्रोणशेषे रसे पूर्ते देवं गुडशत्रप्रयत्नः । धातुकथा विशालिपलं चातुर्जातिं पलाष्टकम् ॥ ४ ॥

लवङ्गयोषकझोलं पलिकानि प्रकल्पयेत् । निदध्यान्मासमेकं तु बृतभाष्टे सुसंकृते ॥ ५ ॥

चविकाथ—चव्य आधा तुला (१० पल) और उसके आधा (२५ पल), चित्रमूल और वाष्पिका (हीग अथवा कृष्ण जीरा), पुहकरमूल, पिपरामूल, हाङ्केवर, कच्चूर, परवर की अच्छ (पत्र सहित देना चाहिये), त्रिफला (आंवरा, हरी, बड़ेरा), जवाइन, कोरया की छाँड़,

माहरि, धनिश्वाँ, रास्ता और दन्तीमूल प्रथेक इस २ पक्ष और दाक्षीरंग, नागरमोथा, मजीठ, देवधार, सौंठि, मरिच, पीपरि प्रथेक ५-५ पल लेकर सदको पक्का कर आठ द्रोण (१२ आडक) जल के साथ विधिपूर्वक अष्टमांशशेष पाक कर उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ तीन सौ पक्ष, बाय का फूल २० पक्ष और दालचीनी, लायची, सेवपात, नागकेसर इन चारों का सम मिलित चूर्ण आठ पक्ष, तथा छवंग, सौंठि, पीपरि, मरिच, कहुल इनका पक्ष २ पक्ष चूर्ण को लेकर सदको पक्ष में मिलाकर स्तिर्घ पात्र में रख कर मुख बन्ध कर आसव की विधि से एक आस रखा रहने देवे ॥ १-५ ॥

अनुष्ठानों पिवेन्मात्रा आसः पीतं वियच्छुति । सर्वं गुणमिकारात् प्रमेहाश्वैष विश्वसित्य ॥६॥
असिद्धायं चूर्ण कासमधीलां वातशोणितम् । छद्मशापन्नप्रवृद्धिं च विविकादो महासवः ॥७॥

एक मास के पश्चात छानकर (जब आसव सिद्ध हो जावे तब) रख लेवे । इसको प्रातःकाल ४ पल के प्रमाण की मात्रा से पान करने से सब प्रकार के गुणरोग, २० प्रकार के प्रमेह, प्रतिश्याय, छुट, छास, लाईचा, वातरक्ष, उदररोग, अन्वृद्धि आदि सभी इस विकादि नामक मण्ड-सव से नष्ट होते हैं ॥ ६-७ ॥

कुमारीसवः—

कुमारीश्च इसप्रोगे गुड़ं पलक्षतं तथा । तुलाकृतिसंकथां विज्ञयां काथयेत्तउज्जलामणे ॥ १ ॥
चतुर्यांशावशेषे तु पूते तस्मिन्विज्ञापयेत् । मधुनशात्तुदकं दत्त्वा धातक्या हिपलाष्टकम् ॥२॥
स्तिर्घमाण्डे वित्तिचिप्य कलहं चैव अदापयेत् । जातीफलं लवहङ्गं च कंकोलं च झालादकम् ॥३॥
स्तुलादधिष्ठितं च जातिपत्री स्तकर्कटम् । अच्च गुष्करमूलं च प्रथेकं च युलं पलम् ॥ ४ ॥
सूतं गुरुं तथा लोहं गुलिमालं प्रदापयेत् । भूत्यां वा जान्यराशौ वा स्थापयेद्विनविश्वसित्य ॥
तमुद्धर्व पिवेन्मात्रा यथा चाप्तिवलावलम् । पञ्चकासं तथा शासं उद्यरोगं च दात्यगम् ॥६॥
ददराणि तथाऽष्टौ च षड्वासिं च नाशयेत् । वातव्याविष्यपस्त्वारमन्यान् रोगान् सुदारुणान् ॥

कुमारी आसव—कुमारी (घृत कुमारी) के १ द्रोण (४ आडक) इस में पुराना गुड़ सौ पल, विज्ञया (बांग) २५ पल लेकर एक द्रोण जल के साथ काथ करे चौथाई शेष रहने पर उतार-छानकर रख लेवे । शीतल होने पर इसमें मधु एक आडक (चार प्रथ), बाय का फूल १६ पल मिलाकर स्तिर्घ पात्र में रख कर उसमें बायफर, लवंग, कंकोल, कवावचीनी, पीपरि, चब्य, विकमूल, लाईची, काकडासिंगी, बहेड़ा पुइकरमूल, प्रथेक पक्ष २ पल लेकर इनका कुरकुरकर (श्लोकार्थ कलह ही है पर चूर्ण दिया है) मिला देवे और तांब्र भस्म और लौह-भस्म पक्ष २ शुद्धि (आधा २ पक्ष) मिलाकर मुख मुद्रण कर भूमि में अथवा धान्यराशि में आसव की विधि से रखकर बीस दिन तक रहने दे पश्चात आसव सिद्ध हो जाने पर निकाल—छानकर अविवक्ष के अनुसार मात्रा से पान करने से पांचों प्रकार के कास, आस तथा कठिन उद्यरोग, आठों प्रकार के उदररोग, छे प्रकार के अश्वरोग आदि नष्ट होते हैं और वातव्याचि, अपस्मार तथा अन्यान्य कठिन रोगों को भी यह आसव नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

आठरं कुरुते दीसं कोषशूलं च नाशयेत् ।

गुरुमाष्टकं नष्टपूर्वं नाशयेदेकपञ्चतः । कुमारिकासवो हेष वृहस्पतिविनिर्मितः ॥ ८ ॥

तथा जठरानिं को दीप करता है, कोषशूल को नष्ट करता है, आठों प्रकार के गुरुओं को तथा नष्टपूर्व (मासिकथां की एकावट) को एक पञ्च के सेवन से नष्ट करता है । इस कुमारी आसव को वृहस्पति ज्यों ने बनाया था ॥ ८ ॥

हिष्पवादिघृतम्—

हिष्पुत्रकरमूलानि गुडुरुहणि हरीतकी । श्यामा विडं सैन्धवं च यवज्ञारं महीषधम् ॥ १ ॥
यवक्षायोदकेनैतद् घृतप्रस्थं विषाचयेत् । तेजास्थ मिथ्यते गुरुमः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥

हिष्पवादि घृत—शुद्ध दींग, पुकरमूल, तेजवल के फल, ईरा, द्यामा (कृष्ण सारिचा), विड नमक, सैवानमक, जवाखार, सौंठि प्रथेक समग्राम (एक २ माग) लेकर कल्ककर जितना हो उसके चौगुना (एक प्रथ) मूर्च्छित गोघृत लेकर उसमें मिलावे और उसमें यव का काथ घृत से चौगुना (४ प्रथ) लेकर मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर सेवन करने से शूल तथा उपर्दर्भों से युक्त गुरुम का भेदन होता है अर्थात नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

दाविकघृतम्—

विडदादिमसिभूष्यहुतसुग्योषजीरकः । हिष्पु सौवर्च्छारचुक्रवृल्लवेतसैः ॥ ३ ॥

बीजपूररसोपेतैः सर्पिदधि चतुर्गुणम् । साधितं दाविकं नाडना गुरुमहार्घ्लीहुत्परम् ॥ ४ ॥

दाविक-घृत—विडनमक, अनारदाना, सैवानमक, चित्रकमूल, सौंठि, पीपरि, मरिच, जीरा इवत, शुद्ध दींग, सौंबर नमक, यवाखार, चुक, दृश्याम्ब (कोकम), अम्लवेत समग्राम लेकर कल्क करे और कल्क के चौगुना मूर्च्छित गोघृत तथा गोघृत से चौगुना विलैर नीबू का रस और घृत से चौगुना ही दही मिलाकर घृत तिद कर रख लेवे । यह 'दाविक' नामक घृत गुरुम और प्लोदा को नष्ट करने वाला है ॥ १-२ ॥

बृन्दात्रायमाणादि—

बृंडे दशगुणे साध्यं आयमाणं चतुर्पलम् । पञ्चभागान्वितं पूतं करकैः संयोज्य कार्विकैः ॥
रोहिणी कटुका मुस्ता आयमाणा दुरालभा । द्राहा तामलकी चीरा जीवन्ती चन्दनोपलम् ॥
रसस्थाऽमलकानीं च कीरत्य च घृतस्थं च । पलानि पृथगष्टाणीं सम्यग्दरवा विषाचयेत् ॥
पित्तगुरुमं रक्तगुरुमं विसर्पं पित्तजं जवरम् । हृदोगं कामराणीं कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम् ॥४॥

आयमाणादि घृत—आयमाण को चार पल लेकर दस गुणे जल के साथ काथ करे जब बलकर ५ माग शेष रहे तब उतार-छानकर यह काथ ८ पल लेकर इसमें मजीठ या गम्भार, कुटकी, नागरमोथा, आयमाणा, ज्वासा, दाख, भुइ आंवला, विदारीकन्द, जीवन्ती, लालचन्दन, नीबू और कम्ल प्रथेक समग्राम लेकर कल्क करे । भिलित यह कल्क २ पल और इसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत, आंवले का स्वरस और दूष प्रथेक आठ पल और सम्पूर्ण द्रव्यों को कम से घृत पाक की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर सेवन करने से पित्त गुरुम, रक्त गुरुम, विसर्प, पित्त जवर, हृदोग, कामराणी और कुटरोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सामुद्रादिवर्ति—

वातवर्चोनिरोधे गुरुमुद्रादिकसर्वैः । क्रुत्वा पायी विधातव्या वर्तयो मरिचान्वितैः ॥ ५ ॥

सामुद्रादिवर्ति—अधोवायु और मल का जब अवरोध हो जावे तब सामुद्रनमक, अदक, सर्सों और मरिच समग्राम लेकर पीस कर विधिपूर्वक अंगूठे के प्रमाण की मोटी बत्ती बना कर गुदा में देने से यह सामुद्रादिवर्ति वायु और मल को निकालती है ॥ ५ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽर्द्धे नाराचो रसः—शुद्धसूतं सम्यं गन्धं जेपालं विफलासमय ।

त्रिकटुं पेषयेद्वौद्विश्वं गुरुमं लिहन् हरेत् । उष्णोदकं पिवेषानु नाराखोडयं रसोत्तमः ॥५॥

नाराच रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमाझगोटा, खोला, इरा, बहेड़ा, सोठि, पीपरि, मरिच इनका पृथक् २ चूणे एक २ भाग लेकर प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली कर फिर इन सब को एक मर्दन (खरक) कर यथायोग्य मात्रा से अमु गिलाकर चांट कर वस्त्रोदक का अनुपान करे तो यह नाराच नामक उत्तम रस गुरुम को नाश करता है ॥ १ ॥

वडवानकरसः—

द्विद्वयं समं गन्धं सृतं ताम्राभ्रद्वयम् । सामुद्रं च वचाखारं स्वर्जिसैन्यवनागरम् ॥ ३ ॥
अपामार्गस्य च चारं पालाशं वसनाभकम् । प्रथेकं सूतुर्वयं स्याक्षणकाङ्गेन मद्येत् ॥ ४ ॥
हस्तिकन्याद्वैश्वाहो आद्रेयुक्तं पुटेलघु ।

मार्गेकं भस्येन्तर्यं रसोऽयं वडवानलः । सर्वगुरुमं निहस्त्यागु ग्रहणीं च विशेषतः ॥ ५ ॥
वडवानक रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, साम्र भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध टक्कण, समुद्रनमक, यवाखार, सज्जीखार, सेवा नमक, सोठि, अपामार्ग का खार, पणास का खार, शुद्ध वसनाभ विष, प्रथेक पारद के समान अर्थात् सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर सब द्रव्यों के उत्तम चूणे को तथा भस्म को मिला कर चमकाम्ल (चनाखार का जड़) के साथ मर्दन करे फिर केले के स्वरस, घृतकुमारी के स्वरस, तथा अद्रक के स्वरस के साथ पृथक् २ मर्दन कर पुटपाक की विषि से कम्बु घुट देकर एक भाषा के प्रमाण की मात्रा से नियम गणन करने से यह 'वडवानल रस' सब प्रकार के गुरुमों को शीघ्र नष्ट करता है और विशेष कर ग्रहणी रोग को नष्ट करता है ॥ २-३ ॥

गुरुमकुठारो रसः—

नागवङ्गाभकं कान्तं समं ताम्रं समांशभकम् । जम्बीरस्वरसैर्घृत्वा वटी गुज्जाप्रमाणिका ॥ १ ॥
मधुनाऽऽद्रेकनीरेण चारयुग्मेन सेविना ।

अचीर्णमाणं गुरुमं च द्रुताश्वेतरशूलके । नाम्ना गुरुमकुठारोऽयं सर्वगुरुमात् व्यपोहति ॥ २ ॥

गुरुम कुठार रस—नाग (शीशा) भस्म, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, कान्त लौह भस्म, साम्र भस्म समान (एक २ भाग) लेकर मर्दन कर जमीरी नीबू के रस के साथ-खरक कर एक रसी के प्रमाण की बटी बना कर मधु और अद्रक स्वरस और यवाखार तथा सज्जी खार इनके अनुपान के साथ सेवन करने से अजीर्ण, आम दोष, गुरुम, हृदय, पाश्व और बदर के शूल तथा सब प्रकार के गुरुमों को यह गुरुमकुठार नामक रस नष्ट करता है ॥ २ ॥

काश्यवान्मदेमसिंहसूतो रसः—

रसगन्धवराटताप्रशङ्कं विषवङ्गाभककान्ततीष्णसुण्डम् ।
अहिहिङ्गुलटक्कणं समांशं सकलं तत्रिग्रुणं पुराणकिटम् ॥ ३ ॥
पशुमूत्रविशोधितं हि घृत्वा त्रिफलाभुक्तरजाद्रकोत्थनीरैः ।
सुविशेष्य वरामृतालिवासास्वरसैरघुणैः पुनर्नवोर्थैः ॥ ४ ॥
पृथगरिनकृतं घनं विपाच्य गुटिका गुज्जायुता निजानुपानैः ।
उवरपाण्डुपृष्ठाच्चपित्तगुरुमल्यकासस्वरद्विसादमूर्छाः ॥ ५ ॥
पवनादिषु दुस्तराष्टरोगान् सकलं पित्तहरं मदावृतं च ।

बहुना किमसौ यथार्थनामा सकलच्याधिहरो मदेभसिंहः ॥ ६ ॥

मदेभसिंहसूत रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कौड़ीभस्म, ताम्रभस्म, शृङ्खभस्म, शुद्धविष, वंगभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलौहभस्म, तीक्ष्णलौहभस्म, सुण्डलौहभस्म, नागभस्म, शुद्ध हिंगु, शुद्धटक्कण प्रथेक समभाग (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर

बन्द गोष्ठियों को एक खरक कर सब मिलाकर जितना हो उसके लियुना पुराना मण्डूर गोमूत्र से शोषित मर्दन कर त्रिफला के काय, मांगरे के स्वरस और अद्रक के स्वरस के साथ पृथक् २ भावित कर लुखाकर त्रिफला, शुद्धवि, अरुसा और पुनर्नवा इनके पृथक् २ अठगुने स्वरस के साथ अविन पर पाक करे जब पकते २ बना हो जावे तब उतार कर एक गुज्जा के प्रमाण की बटी बनाकर अनुपान विशेष से सेवन करने से जबर, पाण्डु, तृष्ण, रक्तपित्त, गुरुम, क्षय, कास, स्वरभंग, मन्दाविन, मूच्छां तथा वातादिरोग, कठिन आठो प्रकार के कुषादि रोग, सब प्रकार के पित्तरोग और मदारथय को नष्ट करता है । अधिक कथा यह 'मदेभसिंह' नामक रस यथार्थ में सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है ॥ २-४ ॥

प्रवालपञ्चामृतरसः—

प्रवालमुक्ताफलशङ्कुशुकिकपर्विकानां च समांशभागम् ।

प्रवालमात्रं त्रिगुणं प्रयोग्य च विवाहमेव ॥ १ ॥

एकीकृतं तरखलु भाण्डमध्ये विषवा मुखे बन्धनमन्त्र योग्यम् ।

पुटं विद्यध्यादतिशीतले च उद्धृत्य तद्वस्त्रम् विपेत्करण्डे ॥ २ ॥

नियं द्विवारं प्रतिपाकयुक्तं बहुलप्रमाणं हि नरेण सेव्यम् ।

आनाहगुरुमोदरस्त्रीहोकासस्वासात्तिनान्यान् कफमारुतोरथान् ॥ ३ ॥

अचीर्णमुक्तारहदामयनं प्रहृष्ट्यतीसारविकारनाशनम् ॥ ४ ॥

प्रवाल पञ्चामृतरस—प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, शृङ्खभस्म, शुक्ति (सीप) भस्म और कौड़ीभस्म समान भाग केवे और केवल दो भाग लेवे और मर्दनकर जितना हो उसके समान मर्दार के दूध को भिलाकर खरलकर शराद-सम्पुट में रख कर मुखमुद्रण कर पुटपाक की विषि से गवपुट में फूंक देवे और स्वामीशीत होने पर निकाल कर उस भस्म को पात्र में रख देवे । इसको १ बहुल (१। रक्ती) के प्रमाण की मात्रा से नियर दो बार सेवन करने से आनाद, गुरुम, उदर, क्षीदा, कास, व्यास, मन्दाविन, कफ तथा वात से उत्पन्न रोग, अजीर्ण, बदगार, दृद्य के रोग, ग्रहणी तथा अतीसार आदि रोग नष्ट होता है ॥ १-४ ॥

मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृष्णं तथाऽश्मरीम् । नाशयेत्सात्र सन्देहः सत्यं गुरुवच्चो यथा ॥ ५ ॥

प्रमेहे रोग, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी इन सब रोगों को प्रवाल पञ्चामृत रस अवश्य नष्ट करता है । यह गुरु के बचन के समान सत्य है ॥ ५ ॥

पथ्याश्रितं भोजनमादरेण समाचरेणिमलचित्तवृद्ध्या ।

प्रवालपञ्चामृतनामध्ये योगोत्तमः सर्वं गदापहारी ॥ ६ ॥

इस 'प्रवालपञ्चामृत' के सेवन के समय प्रसन्न वित्त होकर पथ्य ही भोजन करना चाहिये । सब रोगों को नष्ट करने वाला यह योग अति उत्तम है ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

संबस्तसस्त्रपन्नाः कलमा रक्तशालयः । खण्डं कुलध्ययूष्म धन्वमांसरसः सुरा ॥ १ ॥

गवामजायाच्च पयो मूढीका च पूरुषकम् । तक्कमेरण्डतैलं च लशुनं बालमूलकम् ॥ २ ॥

पत्तूरो वास्तुकं शिग्रुमांतुलङ्गं हरीतकी । वातानुलोमनं चैव पथ्यं गुरुमे तृणां भवेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—एक दृष्ट के पुराने कलम तथा शालिवान के चावल, शकर, कुकीरी का वूष, धन्वदेशांय जीवों का मांसरस, पय, गौ तथा बकरी का दूध, मुखका, फालसा, मट्ठा, परण्डतैल, छहमुन, छोटी मूली, पत्तरनामक शाक, वशुभा, सहिवन, विजौरा नीबू, इरी और वात को अनुकोमन करने वाले पदार्थ गुरुम रोग में मनुष्यों के लिये पथ्य होते हैं ॥ २-३ ॥

माधवादयः विश्विभान्ये शुक्खान्ये यवादयः । वरल्लूरं मूलकं भरहं मधुराणि फलानि च ॥
शिम्बीचान्यों में उड्ड आदि और शूक्खान्यों में यव आदि तथा सूखा मास, मूली, मछली, मीठे कल आदि को गुण का रोगी नहीं सेवन करे ॥ ४ ॥

अष्टोवायुशकुन्मूत्रश्रमश्वसाशुवारामम् । वर्षनं जलपानं च गुह्यमरोगी परिथजेत् ॥ ५ ॥
अष्टोवायुशकुन्मूत्रश्रमश्वसाशुवारामम् । वर्षनं जलपानं च गुह्यमरोगी परिथजेत् ॥ ५ ॥
अथवा अनियमित जलपान इन सको गुल्म का रोगी त्याग देवे ॥ ५ ॥

इति गुल्मप्रकरणं समाप्तम्

अथातो हृद्रोगनिदानम् ।

अस्युण्णगुरुवृक्षकषायतिकैः श्रमामिदाताद्यशनप्रसूः ।
संचिन्तनैवेशविषाणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ ६ ॥

हृद्रोग का निदान—अति सष्ठि और अतिगुरु पदार्थों और अति अम्ल-अतिकषाय तथा अति तिक्त रस वाले पदार्थों के अति सेवन करने से, अस्यन्त परिश्रम करने से, आवात होने से, अथशुन अर्थात् शोबन करने के पश्चात् पुनः भोजन कर लेने से, अति मैथुन से, अति चिन्ना से और मलमूत्रादि के बेंगों के अवरोध से, हृदय दूषित होकर पांच प्रकार का हृद्रोग होता है ॥ ६ ॥

तस्य संप्राप्तिमाह—

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः । हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचच्छते ॥ २ ॥

हृद्रोग की सम्प्राप्ति—वातादि दोष अपने कुपित होने के कारण कुपित होकर रसघातु को दूषित कर और हृदय में प्रवेश कर जो पीड़ा उत्पन्न करते हैं उस पीड़ा को हृद्रोग कहते हैं ॥ २ ॥

वातिकमाह—

आथश्च ते माहूतजे हृदयं तुधते तथा । निर्मध्यते दीर्घते च स्फोटते पादधतेऽपि च ॥ ३ ॥

वातिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में हृदय तन बावे (फैल बावे), हृदय में सूई चुम्हाने के समान, मथने के समान, चीरने के समान, फोड़ने के समान या ढूटने (डुकड़े करने) के समान पीड़ा हो उस हृदय रोग को वात के प्रकारप का (वातज) हृद्रोग जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पैतिकमाह—

तृष्णोण्णदाहचोषाः स्युः पैतिके हृद्रदे कुमः । धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्थ च ॥

पैतिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में तृष्णा, वृद्धता, दाह, चूसने के समान हृदय में पीड़ा और कलनित हो, मुख से धूमा निकलने के समान ज्ञात हो, मूर्च्छा, स्वेद और मुख सूखता हो उस हृदय रोग को पित्त के प्रकारप का (पैतिक) जानना चाहिये ॥ ४ ॥

श्लैषिमकमाह—

गौरवं कफसंधाकोउचिः स्तम्भोऽस्मिमार्दवद् । माधुर्यमिषि चाऽस्यस्य वलासावतते हृदि ॥

कफज हृद्रोग—जिस हृद्रोग में गारीपन हो (हृदय गारी हो), मुख से कफ का ज्ञाक, अरचि, अड़ता, मन्दापिन और मुख मधुर रसाद का बना रहे उस हृदय रोग को कफ के प्रकारप का (कफज) जानना चाहिये ॥ ५ ॥

विदोषकुमिजयोलंक्षणमाह—

विद्यारिव्वदोषमध्येवं सर्वलिङ्गं हृदामयम् । त्रिवोपज्जु हृदोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ ६ ॥

तिलचीरुदार्दीश्च प्रन्थिस्तस्योपज्ञायते । ममेकदेशे संक्लेदं रसशास्युपगच्छति ॥ ७ ॥

हृद्रोगचिकित्सा

विश्वोषज तथा कुमिज हृद्रोग—जिस हृदयरोग में वातादिक तीव्रों दोषों के समिलित कहाय विद्युर्द देवे उसको विदोष के कोप का (विदोषज) हृद्रोग जानना चाहिये । हृद्रोग में जो दुरात्मा मनुष्य तिल, दूष, गुड आदि का अधिक सेवन करता है उसके हृदय में मर्म के पक स्थान में अन्धि (गांठ) उत्पन्न हो जाती है, उसमें क्लेद होता है और रस भी पहुँचता रहता है ॥ ६-७ ॥

तस्यलेदाक्षमयश्वास्य भवन्त्युपहतात्मनः । तीव्रातितोदं कुमिदं तदोषत्रयसम्बवम् ॥ ८ ॥
अपद्य करनेवाले रोगी को उसी क्लेद से कुमि उत्पन्न हो जाते हैं और उससे हृदय में कठिन पीड़ा होती है, सूई चुम्हाने के समान ज्ञात होता है । इसको विदोषज कुमिज हृद्रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

तस्यलेदः श्वीवनं तोदः श्वलं हृष्टासकस्तमः । अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कुमिजे भवेत् ॥ ९ ॥
कुमिज हृद्रोग—जिस हृद्रोग में उक्लाई आवे (वमन की इच्छा हो हो कर रक जावे), मुख से अधिक धूक निकले, सूई चुम्हाने के समान पीड़ा हो, श्वल, हृष्टास (वमनेच्छा), अरुचिं के सामने अंधेरा, अरुचि, नेत्र श्याम वर्ण के हो जावे और शोष हो उस हृद्रोग को कुमिज जानना चाहिये ॥ ९ ॥

उपद्रवः—क्लोदनः सादो अमः शोषो ज्येयास्तेषामुपद्रवाः ।

कुमिजे कुमिजातीनां श्लैषिमिकाणां च ते मताः ॥ १० ॥

हृद्रोग के उपद्रव—क्लोम (शिथिलता), अम और शोष ये सब हृद्रोग के उपद्रव हैं । कुमिज हृद्रोग में कुमिरोग के उपद्रव और कफ दोष सम्बन्धी कहे गये उपद्रव होते हैं ॥ १० ॥

अथ हृद्रोगचिकित्सा ।

वातहृद्रोगः—

वातोपसृष्टे हृदये वामयेस्त्रिन्धमातुरम् । द्विपञ्चमूलीकायेन स्त्रेनेहलवणेन वा ॥ १ ॥

वातज हृद्रोग की विकित्सा—वातज हृदय रोग में रोगी को स्नेह देकर दशमूल के काप को पिलाकर अथवा स्नेह युक्त पदार्थों में नमक मिलाकर पान करा कर वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम्—

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु चक्षुवारोदय सैन्धवम् । सौवर्च्छलमयो शुण्ठी दीप्यश्चेति विचूर्णितम् ।
फलधान्यामलकौलस्थदृष्टिमध्यासवादिभिः । पाययेच्छुददेहस्य वातहृद्रोगशान्तये ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपरि, छोटी इलायची, वच, शुद्ध हींग, यवाखार, सेंधा नमक, सोन्चर नमक, सौंठ और जी सबको एक-एक मात्र लेकर चूर्ण कर यथायोग्य मात्रा से फलों के रस, कौंबी, कुलधी के रस वा काथ, दाही, मध और आसव इनमें से किसी एक के अनुपान से रोगी को वमनादि से शुद्ध कर सेवन कराने से वातिक हृद्रोग शमन होता है ॥ १-२ ॥

पुकरमूलाद्यं जूरांगम्—

सुपुकरमूलाद्यं फलपूरमूलं महोषधं शदयभया च कलकः ।

चाराम्बलसंपिर्लवणैविभिः । स्याद्वात्तहृद्रोगहरो नराणाम् ॥ ३ ॥

पुकरमूलाद्य चूर्ण—पुकर मूल, विजौरा नीबू की जड़, सौंठ, कचूर, दर्दा, सम माग ले कलक बनाकर यवाखार, कौंबी, धूत, नमक इन सबको उस कलक में मिलाकर सेवन कराने से मनुष्यों का वातज हृदयरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पित्तजहृद्रोगः—

श्रीपर्णी मधुकं चौद्रं सितागुडजलैवमेत् । पित्तोपसृष्टे हृदये सिद्धेत मधुरैः श्रृतैः ॥ ४ ॥

पित्तज हृद्रोग चिकित्सा—गम्भार की छाल, मुलहडी, मधु, शकरा और पुराना गुड इनको

पुष्कर चूर्ण—पुष्कर मूल का चूर्ण बना कर मधु के अनुपान से सेवन करने से हृत्तास, शास, क्रांत और हृदय रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

कनुभ्राद्यं चूर्णम्—धृतेन दुष्क्षेन गुह्याभ्यसा वा पिवेस्तचूर्णं कलुभ्रतव्योरथम् ।

हृद्रोगशीर्णज्वररक्षपितं जित्वा भवेत्युश्चिरजीविनश्ते ॥ १ ॥

कनुभ्राद्यं चूर्ण—धृत के अनुपान से, दूषके अनुपान से अथवा गुह्य के जल के अनुपान से इनमें से किसी एक के साथ (अनुपान से) विषिष्ठूर्वक बनाया गुह्य अजुन की छाल का चूर्ण सेवन करने से हृदय रोग, जीर्ण ज्वर तथा रक्तपिता नष्ट होता है । यह आयुर्वेद है ॥ १ ॥

एणशूक्रमस्त्वयोगः—

शारावसम्पुटे हृदयवा शृङ्गं हृदिणं पिवेत् । गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ १ ॥

एणशूक्रमस्त्वयोग—एण मृग के सींग को शाराव सम्पुट में रख कर विषिष्ठूर्वक गव्यपुट में पुट देकर भस्म कर पीस कर गोधृत में मिला कर (गोधृत के अनुपान से) पान करने से हृदय के शूल को निश्चित ही नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात् कदुकादि—

पिष्टा वा कदुका देया सथष्टीका सुखाग्नुना । जीर्णज्वरं रक्तपितं हृद्रोगं च ध्यपोहस्ति ॥ १ ॥

कदुकादि योग—कुटकों और जीठी मधु सम भाग लेकर विषिवद चूर्ण कर सुखोषण जल के साथ पान करने से जीर्ण ज्वर, रक्तपिता और हृदय रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ धृतानि ।

अथादौ बलभृतम्—शतार्घमभयानां तु सौवर्च्छलपलुद्यम् ।

पचेकलकैर्वृत्प्रस्थं दद्वा चीरं चतुर्युग्मम् । धृतं वशलभकं नामना थेष्टं हृद्रोगनाशनम् ॥ १ ॥

बलभृत—मुख उच्चम हरड़ संख्या में ५०, और सोचर नमक दो पल लेकर विषिष्ठूर्वक कलक कर जितना हो अथवा एक प्रस्थ मूर्छित गोधृत और धृत से चौगुना (४ प्रस्थ) गोदुख मिला कर धृतपाक की विधि से मध्य २ अंगिन पर पाक करे, धृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से हृद्रोग नष्ट होता है । यह 'बलभृत' नाम का उच्चम धृत है ॥ १ ॥

घट्यादिधृतम्—

थष्टीनागबलोदीच्याजुनैः सर्पिः सुसाधितम् । हृद्रोगहृदयपित्ताञ्चश्वासकासवरार्तिजित् ॥ १ ॥

घट्यादि धृत—जीठी मधु, नागबला, मुग्नवाला, अजुन की छाल समझाग लेकर विषिष्ठूर्वक कलक कर जितना हो उसके चौगुना मूर्छित गोधृत और पाकार्थ धृत से चौगुना छाल देकर धृतपाक की विधि से धृत सिद्ध कर सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, रक्तपिता, शास, कास और ज्वरादि तथा इनकी पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात् पुनर्नवादितेकम्—

पुनर्नवादाहसपञ्चमूलकराशनायवाङ्कोलकपित्थविश्वम् ।

पवस्त्वा जले सेन पचेष्व तैलमध्यक्षपानेऽनिलहृदगद्धम् ॥ १ ॥

पुनर्नवादि तेक—पुनर्नवा (गदहपुरना), दाशदी, पञ्चमूल (शाकिषणी, पृष्ठपणी, छोटी कटोरी, बड़ी कटोरी, गोखल) की पांचों ओषधियों पृथक् २, रासना, अब, अङ्गोल, कैथ और बेल की छाल इन ओषधियों को पृथक् २, एक २ भाग लेकर आठगुने बल के साथ विषिष्ठूर्वक कार्य करे और चौथाई शेष रहने पर उतार छान लेवे तथा जितना क्वाय हो उसके चौथाई मूर्छित तिक का तेल लेकर यिलाकर तैल पाक की विधि से तेक सिद्ध कर तैल मात्र शेष रहने पर उतार छान कर इसके मद्दन करने से अथवा पान करने से वातज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्राऽस्तदौ त्रिनेत्रो रसः—

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थेवृक्षत्वगङ्गुना । एकविंशतिधा वर्षे भावितानि विधानतः ॥ १ ॥

माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।

वातजं पित्तजं श्लेषमस्मृतं वा त्रिदोषजम् । कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ॥ २ ॥

त्रिनेत्र रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अश्रु भस्म मिलाकर मर्दन कर अजुन वृक्ष की छाल के बल (स्वरस अथवा काथ) २२ बार घाम में रखकर मावना की विधि से भावित कर रख लेवे । इस चूर्ण को एक माष (मासा) के प्रमाण की मात्रा से मधु के साथ लेह बनाकर सेवन करने से वात-जनित, पित्तज, कफज अथवा त्रिदोषज और कृमिज हृद्रोग निश्चित ही नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

हृदयार्णवरसः—सूतार्कांगन्धं क्वायेन वराया मर्दयेहिनम् ।

काकमात्र्या वटीं कृत्वा चण्मात्रां तु भयेत् । हृदयार्णवनामाऽयं हृद्रोगदलनो रसः ॥ ३ ॥

हृदयार्णव रस—शुद्ध पारद, ताप्रभस्म और शुद्ध गन्धक सम भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कजली कर फिर ताप्रभस्म मिलाकर मर्दन कर त्रिफला के काथ के साथ दिन भर मर्दन करे फिर मकोय के स्वरस के साथ दिन भर खरल कर चने के प्रमाण की बटी विषिष्ठूर्वक बना कर सेवन करने से यह 'हृदयार्णव' नामक रस हृद्रोग को नष्ट करने वाला है ॥ ३ ॥

अथ धृद्यापथ्यम् ।

शालिमुद्रा यवा मांसं जाङ्गलं मरिचान्वितम् । पटोलं कारवेशलं च पथ्यं प्रोक्तं हृदामये ॥ ४ ॥

पथ्यापथ्य—शालि धान्य, मूँग, जव, जाङ्गल जीवों का मांसरस, मरिच का चूर्ण मिला दुआ परवर, करैली ये सब हृदय रोग में पथ्य हैं ॥ ४ ॥

तैलाम्लतक्रुगुर्वक्षकथायधममातपम् । रोषं चीनम् चिन्तां वा भाव्यं हृद्रोगवांस्यज्ञेत् ॥ ५ ॥

तैल, अम्लरस बाले पदार्थ, तक, गुरु अन्न, कषाय रस बाले पदार्थ, परिशम, धूप सेवन, क्रोध, मैथुन, चिन्ता और अधिक सम्भाषण ये सब हृद्रोग का रोगी र्याग देवे अर्थात् ये सब अपथ्य हैं ॥ ५ ॥

इति हृद्रोगप्रकरणम् समाप्तम्

अथ उरोग्रहनिदानम् ।

अर्थभिष्यन्दिगुर्वशुगुर्वपूर्यामिषाशनात् । सादं मांसं यकृणलीहोः सद्यो वृद्धिं यदा गतम् ॥

उरोग्रहं तदा कुर्वी कुरुतः कफमाहतौ ।

उरोग्रह निदान—अर्थात् अभिष्यन्दी पदार्थ के सेवन से, अति तुष अव्य के सेवन से और सूखा तथा दुर्गन्ध युक्त मांस के खाने से मांस तथा रक्त के सद्वित शीघ्र बहुत और पौरी जब बढ़ जाते हैं तब कुक्षि स्थान में कफ और वायु प्रविष्ट होकर उरोग्रह रोग को करते हैं ॥ ६ ॥

सस्तरम् सज्जरं धोरं रुचं स्पर्शासहं गुरम् ॥ ६ ॥

आध्मानं कुचित्तिकण्ठे चातविष्टमूत्रोर्धेतः । तन्द्रारोचकशूलानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥

उरोग्रह के लक्षण—उरोग्रह रोग में स्तम्भन, धोर ज्वर, रक्षता, रूपर्श का सहन नहीं होना, शुक्रता, कुक्षि, हृदय और कण्ठ में आध्मान, अधोवायु, मल तथा मूत्र का अवरोध, तन्द्रा, अरचि और शूल होते हैं ॥ ६-३ ॥

योगरत्नाकरः

अथ उरोग्रहचिकित्सा ।

अन्नाऽऽशु स्वेदनं युक्त्या वमनं रक्तमोद्गुणम् । तीव्रगेरिं रुहणं चैकं कमाल्लङ्घनमाचरेत् ॥३॥

उरोग्रह चिकित्सा—उरोग्रह रोग में शीघ्र स्वेदन करने, वमन करने, रक्तमोक्षण, तीव्र

पदार्थों से निर्मित निरुह बस्ति और कम से लहून करने करना चाहिये ॥ १ ॥

पुत्रबीवकं प्रत्यक्षसूर्यावर्तनभोज्वाः । इसा एकेकशः कोलगा द्विषो वा रामठार्थिताः ॥२॥

सूपश्वलवणः पथ्याख्याद्गुणद्वयुक्तिकातः । ततिवृत्तौ यथालाभं मूत्रतेलसुरासवैः ॥ ३ ॥

क्षयाद्गुणवेत्सकारसरामठतचित्रकान् । पित्रेत्तलादनालाभ्यामुरोग्रहनिवृत्तये ॥ ४ ॥

पुत्रबीवक, सदिवन की छाल, सूर्यमुखी और विरामारा इनमें से एकयक्त द्रव्य का रस

अथवा दो द्रव्यों का रस घोड़ा गरम कर शुद्ध होग के प्रक्षेप के साथ पान करने से तथा

पांचों नमक मिलित, निशोय और गुड़ इन द्रव्यों के करक विषितूर्वक बनाकर पान करने से

और उरोग्रह के निरुह होने पर गोमूत्र, तिल का तेल, मध्य और आसव इनमें से जो प्राप्त हो

सके उसके साथ चव्य, अम्लवेत, यवाखार, शुद्ध होग और चित्रक मूल इनके समान मिलित

विषितूर्वक बने चूर्ण को पान करने से अथवा इस चूर्ण को तेल और काँचों के साथ पान करने से

उरोग्रह निवृत्त होता है ॥ १-४ ॥

यो वा नरस्यात्र वृत्तस्य कर्मणो विधिविशदो न भवेन्मनागपि ।

यथाबलं वीचय च शुद्धविग्रहं तथाविधं पथ्यमपि प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

पथ्यापद्य—यहीं इस रोग में कहे हुए जो कर्म हैं डनको करे तथा जो विधि तनिक भी
विशद न हो उने (पथ्य) करे और उन आदि का विवार कर विषितूर्वक पथ्य भी देवे और
रोगी का शरीर निरन्तर शुद्ध रखें ॥ ५ ॥

इति उरोग्रहप्रकारणं समाप्तम्

अथातो मूत्रकुच्छनिदानम् ।

व्यायामस्तीक्ष्णौ पञ्चलमयप्रसङ्गन्तर्यनुत्पृष्ठयानात् ।

आनूपमस्याध्यशनादवीणारिस्तुर्मूत्रकुच्छाणिनृणामिहाद्यौ ॥ १ ॥

मूत्रकुच्छनिदान—प्रति व्यायाम, तीव्र औषधियों के अधिक सेवन, रुग्म अन्न के अति
सेवन, अति मध्यान, अति मैथुन, अति नृथ कर्म, अति शीघ्र चक्षने, घोड़े आदि की अधिक
सवारी करने, आनूप जीवों के मास सेवन, अति मध्यम बक्षण, अध्यज्ञन तथा अजीर्ण इन सब
कारणों के होने से मनुष्यों को आठ प्रकार के मूत्रकुच्छ रोग होते हैं ॥ १ ॥

तस्य सम्प्राप्तिमाद—पृथक्षम्लाः स्वेषः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुरुपेय चर्स्तो ।

मूत्रस्य मार्यं परिपीड्यनित यदा तदा मूत्रयतीह कुच्छात् ॥ २ ॥

मूत्रकुच्छ की सम्प्रसित—वातादिक मक (दोष) अपने २ प्रकोपक कारणों से कुपित होकर
पृथक् २ अथवा सब मिलकर जब मूत्राशय में कोप को प्राप्त होते हैं तब मूत्रमार्य को पीड़ित
करते हैं उससे मूत्र कष से होता है ॥ २ ॥

वातजग्नमाद—तीव्रा हि रुग्मुखग्यस्तिमेदे द्वलयं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ॥ ३ ॥

वातजमूत्रकुच्छ—जिस मूत्रकुच्छ में वहक्षण, वस्ति और शिशन में तीव्र पीड़ा हो और

बार २ मूत्र होवे उसे वात के कोप का (वातज) मूत्रकुच्छ जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पित्तजमाद—पीतं सरकं सरजं सदाहं कुच्छं मुहुर्मूत्रयतीह पित्तात् ॥ ४ ॥

मूत्रकुच्छनिदानम्

पित्तज मूत्रकुच्छ—जिस मूत्रकुच्छ में पीतवर्ण का रक्त मिलित, पीड़ा सहित तथा दाह
सहित कष से बार २ मूत्र होवे उसे पित्त के कोप का (पित्तज) मूत्रकुच्छ जानना चाहिये ॥ ४ ॥

इलैधिकमाद—बस्ते: सलिङ्गस्य गुरुवशोफौ मूत्रं सूचित्यं कफमूत्रकुच्छे ॥ ५ ॥

कफज मूत्रकुच्छ—जिस मूत्रकुच्छ में बस्ति स्थान तथा शिशन में गुरुता और शीघ्र हो
और मूत्र पिच्छिलता युक्त कष से होता हो उसे कफ के कोप का (कफज) मूत्रकुच्छ जानना
चाहिये ॥ ५ ॥

विदोषजमाद—सर्वाणि रूपाणि च सञ्चिपाताद्वन्नित तत्कृच्छ्रतमं हि कुच्छ्रम् ॥ ६ ॥

विदोषज मूत्रकुच्छ—जिस मूत्रकुच्छ में तीनों दोषों के मिलित लक्षण हों उसे विदोषज के
कोप का (विदोषज) मूत्रकुच्छ जानना चाहिये यह (विदोषज) मूत्रकुच्छ कषसाध्य होता है ॥ ६ ॥

शल्यजमाद—मूत्रवाहितु शल्येन ज्वतेष्वभिहतेषु च ।

मूत्रकुच्छं तदा वाताजज्ञायते भृशवेदनम् । वातकृच्छ्रेण तु श्वयनि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥

शल्यजमूत्रकुच्छ—मूत्र को वहन करने वाली नाड़ियाँ जब किसी शश्य आदि से क्षत अथवा
वामित ह (किसी प्रकार पीड़ित) हो जाते हैं, तब उस शश्य के आधात से मूत्रकुच्छ रोग उत्पन्न
हो जाता है। इस शल्यज मूत्रकुच्छ में पीड़ा अत्यन्त होती है और वातज मूत्रकुच्छ के लक्षणों
के समान इसमें लक्षण दिखाई पड़ते हैं ॥ ७ ॥

पुरीवजमाद—

शक्तस्तु प्रतीवाताद्वायुविगुणतां गतः । आधमानं वातशुलं च मूत्रसङ्गं करोति च ॥ ८ ॥

पुरीवज मूत्रकुच्छ—मूत्र के आधार (अनरोध) होने से वायु विकृत होकर आधमान, वात-
शुल और मूत्रावरोध कर देता है ॥ ८ ॥

अथाश्मरीजमाद—अश्मरीवृत्तु तत्पूर्वं मूत्रकुच्छसुवाहतम् ॥ ९ ॥

अश्मरीजन्मय मूत्रकुच्छ—अश्मरी (पर्याप्त) रोग के कारण जब मूत्र कष से होता है तब उसे
अश्मरीज मूत्रकुच्छ कहते हैं ॥ ९ ॥

शुक्रजमाद—

शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्यं विधारिते । स्वयुक्तं मूत्रयेकुच्छाद्वितमेहनशूलवान् ॥ १० ॥

शुक्रज मूत्रकुच्छ—शुक्र दोष से (वातादि से द्रवित शुक्र से) मूत्र मार्य के उपरत (अवरद)
होने पर वारण किया (रका) हुआ वीर्य मूत्रकुच्छ रोग उत्पन्न कर देता है। इसमें मनुष्य को
शुक्र के साथ कष से मूत्र होता है और वस्ति तथा शिशन में शुक्र होता है ॥ १० ॥

अवान्तरभेदमाद—

अश्मरी शार्करा चैव तुल्यसम्भवलक्षणे । शार्कराया विशेषं तु श्वणु कीर्तयतो मम ॥ ११ ॥

अश्मरी और शार्करा का भेद—अश्मरी और शार्करा इन दोनों रोगों के उत्पन्न होने के कारण
और लक्षण एक ही समान होते हैं। इसलिये इन दोनों रोगों के शान के लिये शार्करा के विशेष विवरण
कहते हैं। (अर्थात् इस विशेषता से यह ज्ञात हो जाएगा कि अश्मरी है अथवा शार्करा) ॥ ११ ॥

एष्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना । विसुक्तकफसन्ध्याना चरन्तीश्वर्करा मता ॥

जब अश्मरी (पर्याप्त) पित्त से पक्ती हुई, वायु से शोषित हुई और कफ के संयोग से छोड़ी
हुई (पृथक्-पृथक् ढकड़ी हुई) मूत्रमार्य से गिरने लगती है तब उसी को शार्करा कहते हैं ॥ १२ ॥

हृषीडा वैपथुः शूलं कुच्छी चहिंशु बुर्बलः । तथा भवति मूत्राच्छ्री च मूत्रकुच्छं च दाहयम् ॥ १३ ॥

शार्करा रोग में हृदय में पीड़ा, शरीर-कम्पन, कुक्षिस्थान में शुल, मन्दारिन और
मूळां होती है तथा कठिन मूत्रकुच्छरोग होता है ॥ १३ ॥

अथ मूत्रकुच्छचिकित्सा ।

तत्राऽदौ वातमूत्रकुच्छम्—अध्यज्ञनस्नेहनिरुहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् ।
सित्तादिभिर्वित्तहरैश्च सिद्धान्दिदासांश्चानिलमूत्रकुच्छे ॥ १ ॥

वातज मूत्रकुच्छचिकित्सा—वातज मूत्रकुच्छ में अभ्यङ्ग कर्म, रनेह, निरुह वस्ति, खेद, उपनाह, उत्तर वस्ति और सेक कर्म (काथादिकों द्वारा सिद्धन कर्म) करना चाहिये तथा सिरा, (शाकिधीय आदि) वातावाक औषधियों से सिद्ध किये रखने को देना चाहिये ॥ २ ॥
असृता नागरं धात्री वाप्तिगन्धा त्रिकण्ठकम् । निष्कार्य प्रपित्रेकाथं मूत्रकुच्छ समीरजे ॥ ३ ॥
गुरुचि, सौंठ, अंवरा, असगन्ध, गोखरु समान (एक-एक मात्र) लेकर क्वाय की विधि से इनका क्वाय सिद्ध कर पान करने से वातज मूत्रकुच्छ नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ पित्तकुच्छम् ।

सेकावगाहाः शिशिरप्रदेहाः श्रेष्ठो विधिवस्तिपयोविरेकाः ।

द्राक्षाविदारीकुच्छसर्वतत्त्वं कुच्छेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ ३ ॥

पित्तज मूत्रकुच्छचिकित्सा—पित्तज मूत्रकुच्छ में सेक कर्म (क्वाथादिकों द्वारा सिद्धन), अवगाहन, शीतल औषधियों से निर्मित लेप, वस्तिकर्म, दुधपान (विधि से औषधादि के साथ पाक किये हुए दूध का पान) और विरेचन कर्म आदि करना श्रेष्ठ है और दाख, विदारीकन्द, ईख के रस आदि के द्वारा निर्मित घृत का सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

तुणपञ्चमूलकावपयमी कुशः काढः शरो दर्भ इच्छुरचेति तृणोद्धवम् ।

पित्तकुच्छहरं पञ्चमूलं बित्तिविशाधनम् । एतरिसद्व पयः यीं मेदग्रं हन्ति शोणितम् ॥ ३ ॥

तुण पञ्चमूल क्वाय और दूध—तुण की जड़, कास (राढ़ा) की जड़, शर (सरकण्डा) की जड़, दम्भ (दम्भ) की जड़ तथा ईख की जड़ समंभाग लेकर पान करने से यह तुण पञ्चमूल नाम का क्वाय पित्तज मूत्रकुच्छ को नष्ट करता है और वस्ति को शुद्ध करता है। इसी तुण पञ्चमूल के साथ यदि क्षीरपाक विधि से दूध सिद्ध कर पान किया जावे तो शिशन से निकलते हुए रक्त को नष्ट करता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिक्वायः—शतावरीकाशकुशाश्वदप्तूविदारिशालीकुकसेवकाणाम् ।

क्वाथं सुशीतं मधुशकराभ्यां युक्तं पित्तपैत्तिकमूत्रकुच्छे ॥ १ ॥

शतावर्यादि क्वाय—शतावरि, कास (राढ़ा) की जड़, कुश की जड़, गोखरु, विदारीकन्द, शालि (धान्य) की जड़, ईख की जड़ और कटेर समान लेकर विधिपूर्वक क्वाय कर शीतल होने पर उसमें मधु और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तज मूत्रकुच्छ को नष्ट करता है ॥ १ ॥

हरीतकयादिक्वायः—हरीतकीगोचुरराजवृक्षपाषाणभिद्वन्वयवासकाणाम् ।

क्वाय पित्तेन्माच्चिकसम्प्रयुक्तं कुच्छे सदाहे सरुजे विवन्धे ॥ ३ ॥

हरीतकयादि क्वाय हरी, गोखरु, अमलतास के फल का गूदा, पाषाणमेद (पत्थर चूर), शबासा इन द्रव्यों को एक एक आग लेकर क्वाय कर शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से वह मूत्रकुच्छ जिसमें वाह, पीड़ा और विवन्ध हो, शान्त होता है ॥ २ ॥

बुर्जावीजयायाः—उर्जावीजं मधुकं सदाविं पित्तेन्मत्तुलधावनेन ।

द्वात्री तथैत्ताऽमलकरिसेन समातिकां पित्तकुत्तेऽथ कुच्छे ॥ १ ॥

द्वात्रीक बीज योग—खीरे के बीज, मुलहठी, दारुहरदी, समभाग लेकर चावल के घोवन के

मूत्रकुच्छचिकित्सा

साथ पान करने से और इसी प्रकार दारुहरदी और आंवले के रस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से (इन दोनों योगों में से किसी एक के सेवन से) पित्तज मूत्रकुच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

बुन्दान्मन्थादियोगः—मन्थं पित्तेद्वा सतिं सर्विं श्रुतं पयो वाऽर्थसितप्रयुक्तम् ।

धात्रीरसं चेद्वारं पित्तेद्वा कुच्छे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

भन्धादि योग—इस पित्तज मूत्रकुच्छ रोग में विधिवत बने हुए किसी मन्थ में शर्करा और घृत भिलाकर पीना चाहिये, अथवा औटाप हुए शीतल दूध में आधा भाग शर्करा भिलाकर पीना चाहिये, अथवा आंवले का स्वरस वा ईख का स्वरस मधु के प्रक्षेप के साथ पीना चाहिये। इन योगों में किसी एक के पान करने से रक्त के सहित मूत्रकुच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्राक्षादियोगः—

द्राक्षा सितोपलाकलक्कुच्छन्मस्तुना युतम् । पित्तेद्वा कामतः चीरमुष्णं गुडसमन्वितम् ॥

द्राक्षादि योग—द्राक्षा और मिश्री दोनों को समान लेकर कल्क बनाकर दही के पानी के अनुपान से अथवा उष्ण किया हुआ दूध और पुराना गुड़ भिलाकर इच्छामर पान करने से मूत्रकुच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

बुन्दान्मारिकेलादियोगः—

नारिकेलजलं योजयं गुडधान्यसमन्वितम् । सदाहं मूत्रकुच्छं च रक्तपित्तं निहनित च ॥ १ ॥

नारिकेलादि योग—नारियल के जल में पुराना गुड़ और धनियां का चूर्ण भिला कर पान करने से दाह सहित मूत्रकुच्छ तथा रक्तपित्त नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अन्यथा—रक्तस्य नारिकेलस्य जलं कतकसंयुतम् । शर्करैलासामायुक्तं मूत्रकुच्छरं विदुः ॥

रक्तवर्ण के नारियल के जल में निर्मली फल, शर्करा और छोटी इलायची के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकुच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिसर्पिं—शतावरीकाशकुशस्वदप्तूविदारिश्वामलकलक्षिद्वम् ।

सर्पिं पयो वा सितया विमिश्रं कुच्छेषु पित्तप्रभवेषु योजयम् ॥ १ ॥

शतावर्यादिसर्पिं—शतावरि मूल, कास (राढ़ा) की जड़, कुश की जड़, गोखरु, विदारीकन्द, ईख की जड़ और आंवला समान लेकर कल्क कर इस कल्क के साथ विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे अथवा पाक विधि से दूध ही सिद्धकर उसमें शर्करा भिला कर पान करने से पित्तज मूत्रकुच्छ नष्ट होता है। (घृत सिद्ध करना हो तो कल्क से चतुर्गुण मूर्च्छित गोघृत लेना चाहिये) ॥ १ ॥

अथ श्लेषमुत्रकुच्छम् ।

चारोषणीचणैषधमन्नपानं स्वेदो चयान्व वमनं निरुहः ।

तत्कं च तिलोषधसिद्धतैलं वस्तिश्च शस्तः कफमूत्रकुच्छे ॥ १ ॥

कफज मूत्रकुच्छ में श्वार (यवालारादि), उष्ण तथा तीक्ष्ण औषध और अन्न-पानादि का सेवन करना चाहिये, खेदकर्म, जौ अन्न का मक्का, चमनकर्म और निरह वस्ति देना चाहिये, तक सेवन, तिल पदार्थ तथा मरिच इनसे सिद्ध किया हुआ तैल सेवन तथा वस्ति देना, ये सभ उत्तम हैं अर्थात् इन क्रियाओं से कफज मूत्रकुच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूत्रादियोगः—

मूत्रेण सुरया वाऽपि कदलीस्वरसेन वा । कफकुच्छविनाशय सूचमां पिण्डवा शुद्धि पिवेत् ॥

मूत्रादियोग—छोटी इलायची के सूक्ष्म चूर्ण को गोमूत्र अथवा मध्य अथवा केले के वृक्ष के रस के अनुपान से सेवन (पान) करने से, कफज मूत्रकुच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

तकादियोगो वृद्धात्—तक्षेण युक्तं सितवास्तकस्य वीजं पिबेत्कृच्छ्रविद्यातहेतोः ।

पिबेत्था तण्डुलधावनेन ग्रावालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

तकादि योग—हिलिङ्गा के बीजों को चूर्ण कर तक के अनुपान से अथवा प्रवाल भस्म को चावल के धोवन के अनुपान से सेवन करने से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ त्रिदोषकृच्छ्रम् ।

सर्वं श्रिदोषप्रभवे तु कृच्छ्रे चयावलं कर्म समीचय कार्यम् ।

तद्राघिके प्रागवमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु वस्तिः ॥ १ ॥

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—त्रिदोष से उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों में कही हुई विधियों को रोगी के दोष वलावल को विचार कर करनी चाहिये तथा उसमें यदि कफ की अविकाता भाल्य हो तो प्रथम वमन करना चाहिये, यदि पित्त की अविकाता हो तो प्रथम विरेचन करना चाहिये तथा यदि वात की अविकाता हो तो प्रथम वस्ति कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

बृहत्यादिकाथः—

द्वाहतीधावनीपाठायश्चीमधुकलिङ्गकान् । पवस्वा कार्यं पिबेन्मर्थ्यः कृच्छ्रे दोषव्योम्बवे ॥ १ ॥

बृहत्यादि काथ—बड़ी कटेरी, पृष्ठपर्णी, पुरान पाढ़ी, जेठीमधु, इन्द्रजी समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ कर पान करने से त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिकाथः—

शतावर्यास्तु मूलानां निकाथः ससितामधुः । मूत्रदोषं निहन्त्याणु वातपित्तकफोद्भवम् ॥ १ ॥

शतावर्यादि काथ—शतावरि की जड़ का काथ बनाकर शीतल कर उसमें शर्करा और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से वात-पित्त तथा कफदोष से उत्पन्न होने वाले मूत्रदोष (मूत्रकृच्छ्र) शीत्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुददुरुपयोगः—

गुडेन मिश्रितं हुग्धं कदुषां कामतः पिवेत् । मूत्रकृच्छ्रे सर्वेषु शर्करा वातरोगनुत् ॥ १ ॥

गुड गुड योग—थोड़े गरम दूध में पुराना गुड़ मिला कर इच्छाभर पान करने से सभी प्रकार के (त्रिदोषज) मूत्रकृच्छ्र शर्करा रोग और वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथाभिधातजमूत्रकृच्छ्रम् ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिधातोर्थे वातज्ञकृक्रिया हिता । पञ्चवस्तकलमूल्लेपः कवोष्णोऽन्नं प्रशास्यते ॥ १ ॥

अभिधातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—अभिधात से (शतावरि से क्षत अथवा अभिहत होने से) उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्र रोग में वातज मूत्रकृच्छ्र में कही हुई क्रिया हितकर है। और पञ्चवस्तकल (षट, पीपल (अवस्थ), पाकर, गूलर, बेत इनकी छाल) की सम भाग (एक-एक भाग) लेकर एक भाग मिट्टी मिला कर पीस कर (जल के साथ) गरम कर कुछ गर्म-गर्म लेप (पेहुंचर) करने से अभिधातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मन्यादियोगः—मन्थं पिबेद्वा ससितं ससर्विः शृतं पथो वाऽर्धसिताप्रयुक्तम् ।

धात्रीरसं चेतुरन्तं पिबेद्वाऽभिधातकृच्छ्रे मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

मन्यादि योग—विधिपूर्वक बने हुए मन्थ में शर्करा और धूत मिला कर अथवा औटाये हुए दूध में आधा भाग शर्करा मिला कर अथवा आंदोले के रस में वाँडेख के रस में मधु मिला कर पान करने से अभिधातज मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है ॥ १ ॥

अथ शुक्रविवन्धधर्मज्ञकृच्छ्रम् ।

हुड्छ शुक्रविवन्धधर्मज्ञकृच्छ्रम् । सच्चीरं ससितं सपिंश्चित्त्रापि पिबेत्थः ॥ १ ॥

शुक्र विवन्धज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—शुक्र विवन्ध से मूत्रकृच्छ्र रोग में शुद्ध शिलाजीत भव्य दूष, शर्करा और धूत (गोधृत) मिलित कर पान करना चाहिये इससे लाभ होता है ॥ १ ॥

शाकदोषविशुद्धयर्थं समदां प्रसदां अयेत् । तुणपञ्चकमूलन सिद्धं सर्विः पिबेदपि ॥ १ ॥

शुक्र विवन्धज मूत्रकृच्छ्र दोष की शुद्धि के लिये मदमत्त (बौवंगमर से मत्त) वीज के साथ रमण करना चाहिये और उण पञ्चमूल के योग से विधिपूर्वक सिद्ध किये धूत को पान करना चाहिये। इससे शुक्रज (शुक्रविवन्धज) मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

लेहः शुक्रविवन्धोर्थे शिलाजातुसमाचिकः ।

वक्षाहित्यगुयुतं शीरं सपिंश्चित्त्रिं पिबेत्थः । मूत्रदोषविशुद्धयर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ २ ॥

शुक्रविवन्धज मूत्रकृच्छ्र में शुद्ध शिलाजीत को मधु के साथ लेह बनाकर चाटना चाहिये और वरिआरा तथा गुदर्हीग मिले हुए दूध में गोधृत मिलाकर पीना चाहिये। इससे मूत्र दोष की शुद्धि होती है और शुक्र दोष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

अथ शुक्रदिव्यातजं कृच्छ्रम् ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः श्युः पुरीषजे । कृच्छ्रे तत्र विधिः कार्यः सर्वः शुक्रविवन्धजित् ॥

पुरीषविवातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—मलावरोध से उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्ररोग में चूर्णसेवन, अध्यक्ष, वस्तिकर्म ये सब करना चाहिये और शुक्रविवातज को नष्ट करने वाले सब कार्य (सभी चिकित्सा) करना चाहिये। इससे पुरीषविवातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरादिकाथः—

काथो गोक्षुरशीजानां यवज्ञारयुतः सदा । मूत्रकृच्छ्रं शाकज्ञानं पीतः शीत्रं निवारयेत् ॥ १ ॥

गोक्षुरादि क्वाय—गोखरु के बीजों का विधिपूर्वक क्वाय बनाकर उसमें जवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से पुरीषविवातज मूत्रकृच्छ्र शीत्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथाशमरीजं कृच्छ्रम् ।

अशमरीजे मूत्रकृच्छ्रेऽवेदात्या वातजिक्रिया । याषाणभेदकायस्तुकृच्छ्रं मशमरिजं जयेत् ॥ १ ॥

अशमरीजन्यं मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र रोग में स्वेदादि कर्म वात को नष्ट करने वाले हैं उन्हें करना चाहिये। और पाषाणभेद (पथरचूर) के क्वाय को पान करने से अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथेलादिः—एलोपकूलयामधुकाशमरेद्वृष्टावृष्टकोहवृकैः ।

शृतं पिबेदशमज्ञु प्रागादं सशकर्मं साशमरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

एकादियोग—छोटी इकायची, पीपरि, मुलाठी, पाषाणभेद, रेणुका बीज, गोखरु, अरुसा, परणमूल सम भाग लेकर क्वाय कर इससे शुद्ध शिलाजीत और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

त्रिकण्ठकादिकाथो गदनिग्रहात्—

त्रिकण्ठकारगवधर्मकाशदुरालभापर्पेटभेदपद्याः ।

निधनन्ति पीता मधुनाऽशमरीका सम्प्राप्तस्त्रयोरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ १ ॥

त्रिकण्ठकादि क्वाय—गोखरु, अमलतास की गुही, डाय की बड़ी, राढ़ी की बड़ी, बवासी, विषपापड़ी, पाषाणभेद और इर्ही सम भाग लेकर क्वाय सिद्ध कर शीतल होने पर मधु प्रक्षेप देकर पान करने से मारणालने वाला सी अशमरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पाषाणमेदादि—पाषाणमेदत्रिवृता च पथ्या हुरालभा मूषकस्योक्तुरं च ।

पलाशशङ्खाटककर्तीजवीजं कथायः सुनिहृदयमत्रे ॥ १ ॥

पाषाणमेदादि कथा—पाषाणमेद, निशोऽ, हर्ष, ज्वासा, पुहकरमूल, गोखरु, पलास के बीज, सिंधाडे के बीज और ककड़ी के बीज सम भाग लेकर काथ बना कर पान करने से अवरुद्ध हुए मूष्टरोग में लाभ होता है अर्थात् मूष्ट सुगमता से होता है ॥ १ ॥

समूलगोक्तुरकथा:

समूलगोक्तुरकथा: सितामादिकसंयुतः । नाशयेन्मूष्टकृच्छाणि तथा चोष्णासमीरणम् ॥ २ ॥

समूल गोक्तुरकथा—भूतसहित गोखरु के काथ में शीतल होने पर शकंरा और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से मूष्टकृच्छ को नष्ट करता है और उच्चावात को नष्ट करता है ॥ २ ॥

यवादिवृन्दाद—यवोरुबूकैस्तृणपञ्चमूलीपाषाणमेदैः सशतावरीभिः ।

कृच्छ्रेष्ठु गुरुमेव भयाविमिश्रैः कृतः कथायो गुह्यसद्प्रयुक्तः ॥ ३ ॥

यवादि कथा—यव, परणमूल, तुण पंचमूल की पौँछों ओषधियाँ, पाषाण मेद, शतावरी और हर्ष सम भाग लेकर कथा कर उसमें पुराने गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से मूष्टकृच्छ और उच्चम में लाभ होता है ॥ ३ ॥

अयैकादियोगः—एलाशमभेदकशिलाजतुपिष्ठलीन चूर्णनि तण्डुलजलैलुलितानि पीत्वा ।

यद्या गुडेन सहितान्यवलिक्ष धीमानासज्जस्त्युरपि जीवति मूष्टकृच्छी ॥ ३ ॥

एलादि योग—छोटी इलायची के बीज, पाषाण मेद (पथरचूर), शुद्ध शिलाजीत, पीपरि सम भाग लेकर चूर्ण कर तण्डुलोदक के अनुपान से पीने से अथवा इस चूर्ण में पुराना गुड़ मिलाकर चाटने से मूष्टु के मुख में गदा हुआ भी मूष्टकृच्छ का रोगी जीवित हो जाता है ॥ ३ ॥

क्षाराणा प्रयोगः—

अङ्गोलतिलकाष्ठानी भारः त्वैद्रेण संयुतः । दधिवायतुपानेन मूष्टरोधं नियच्छुति ॥ १ ॥

क्षारों का प्रयोग—अङ्गोल के छकड़ी का और तिल के लकड़ी का क्षार समान लेकर मधु मिला कर दही के अनुपान से सेवन करने से मूष्टवरोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

सितातुरयो यवाखारः सर्वकृच्छनिवारणः । निदिविधकारसो वाऽपि सच्चौदः कृच्छनाशनः ॥

शकंरा और यवाखार सम भाग लेकर सेवन करने से सब प्रकार के मूष्टकृच्छ नष्ट होते हैं। अथवा छोटी कटेरी के रस में मधु मिला कर सेवन करने से मूष्टकृच्छ रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

यवाखारसमायुक्तं च कामतः । मूष्टकृच्छविनाशाय तथैवाशमरिनाशनम् ॥ ३ ॥

यवाखार के तक में मिला कर इच्छापूर्वक पान करने से मूष्टकृच्छ तथा अश्मरी रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

माषमेकं यवाखारं कूष्माण्डस्वरसं पलम् । शकंराकर्षसंयुक्तं मूष्टकृच्छनिवारणम् ॥ ४ ॥

यवाखार १ माषा, इवेतकूष्माण्ड (पेठा वा भुद्वा) का स्वरस १ पल और शकंरा १ कर्ष मिलाकर पान करने से मूष्टकृच्छ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

बृन्दाद्वादिमादियोगः—

बृद्धिमास्तुरुतां हृथीं शुष्टीजीरकसंयुताम् । पीत्वा सुरा सलवणां मूष्टकृच्छारप्रसुद्यते ॥ ५ ॥

बृद्धिमादि योग—खट्टे अनातर के रस, सौंठ, जीरा और सेवा नमक मिलाकर पान करने से मूष्टकृच्छ रोग से मुक्ति होती है ॥ ५ ॥

उवारुदीजकथकं च बृन्दात—

उर्वारुदीजकथकं च इलायचीपिष्ठाउदसंमितम् । चान्यामललवणैः पैयं मूष्टकृच्छविनाशनम् ॥

उर्वारुदीजकथक—ककड़ी के बीज को मधीमांति पीस कर कल्प बनाकर एक कर्ष प्रमाण

लेकर चान्यामल (कांबी) और सेवा नमक मिलाकर उसके अनुपान से पान करने से मूष्टकृच्छ रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिकल्पः—

त्रिफलायाः सुपिण्ठायाः कलंकं कोलसमन्वितम् । वारिणा लवणीकृत्य पिवेन्मूष्टकृच्छापहम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि कल्प—त्रिफला समान लेकर मधी मांति पीस कर कल्प कर एक कोक (आधा कर्ष) प्रमाण लेकर सेवा नमक मिलाकर जल के अनुपान से सेवन करने से मूष्ट के कष्ट को (मूष्टकृच्छरोग को) नष्ट करता है ॥ १ ॥

एलादिः—

पिवेन्मैथेन सूचमैलां धानीफलसेन वा । शितिवारकवीजं वा तके रलचणं च चूर्णितम् ॥

एलादियोग—मध अथवा आंवले के फल के रस के साथ छोटी इलायची के बीजों के चूर्ण को पान करने से अथवा सुसुना के शाक के बीजों के इलक्षण चूर्ण को तक के साथ पान करने से मूष्टकृच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

इरिद्रादिः—हरिद्रागुडकर्षेन चाऽऽरनालेन वा पिवेत् ।

चन्द्र्याकर्णोटिकान्दं भजेत्त्वैद्रसितायुतम् । अश्मरी हन्ति नो विन्नं रहस्यं हि शिवोदितम् ॥

इरिद्रादि योग—हरदी और पुराना गुड़ एक कर्ष लेकर आरनाल (कांबी) के साथ भक्षण करना चाहिये। इससे (इन दोनों प्रकार के योगों से) अश्मरी नष्ट होती है। इसमें विचित्रता की (चकित होने की) कोई बात नहीं है। यह रहस्य शिवजी का कहा है ॥ १ ॥

योगसारादेलादिः—

पूलायोक्तुरयोश्चर्णं शिशोदेवं च मधुप्लुतम् । मूष्टकृच्छापहः क्वायः पेयस्तन्मूलवारिणा ॥ १ ॥

छोटी इलायची के बीज और गोखरु समभाग लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर बालकों को देने से उनका मूष्टकृच्छ नष्ट होता है और इनके जड़ के काथ का भी सेवन करने से मूष्टकृच्छ नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्तुरजस्तथा क्वायो यवद्यारयुतः शुभः । सर्वकृच्छविनाशाय शिलाजतुयुतोऽथ वा ॥ २ ॥

गोखरु का काथ बनाकर उसमें यवाखार का प्रक्षेप देकर शुद्ध शिलाजीत को मिला कर पान करने से सब प्रकार के मूष्टकृच्छ रोग को नष्ट करता है ॥ २ ॥

खर्जारादिचूर्णम्—

स्वर्ज्वरामलबीजानि पिष्ठली च शिलाजतु । एलामधुकपाषाणं चन्दनोर्वादीजकम् ॥ १ ॥

धान्यकं शकरायुक्तं पातव्यं उद्येष्टविरिणा ।

अङ्गदाहं लिङ्गदाहं गुदवङ्गगुदुकम् । शकरास्तमरिशूलस्त्वं बलयं वृष्यकरं परम् ॥ २ ॥

खर्जारादि चूर्ण—खर्जूर, आंवले के बीज (गिरी), पीपरि, शुद्ध शिलाजीत, छोटी इलायची, मुलहठी, पाषाण मेद (पथरचूर), इवेतवदन, ककड़ी के बीज और चनिया समान (एक २ भाग) लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके समान उसमें शकरा मिलाकर जेष्ठामु अर्थात् शालिवान के चावलों के धोवन के अनुपान से पान करने से अङ्गों का और लिङ्ग, गुदा-वङ्गण और शुक के दाइ तथा शकंरा और अश्मरी के शूल इन सबको नष्ट करता है और अवयन्त बलकारक तथा वृष्य है। (पाठान्तर में मूष्ट-वीर्य तथा शकंरा रोग में मुलहठी के काथ के अनुपान का विषयान है) ॥

इक्षुरसादियोगः—

भृष्टेष्टस्वरसं ग्राव्यमात्मुवित्सद्वित्संपिवेत् । नाशयेन्मूष्टकृच्छाणि सद्य एव न संशयः ॥ १ ॥

इक्षुरसादि योग—ईख को आग में भूजकर स्वरस निकाल कर (कोखू में पेर कर) उसमें

मूल के मल का चूर्ण मिळाकर पान करने से पूष्टकुच्छ रोग को शीघ्र नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १ ॥

कुटज्योगः—

पिष्ठा गोपयसा शलचणं कुटजस्य त्वचं पिवेत् । तेनोपशास्त्रते खिं प्रं मूत्रकुच्छं सुदाशणम् ॥
कुटज्योग—कुटज (कोरया) की छाल को गोदुख के साथ अच्छी भाँति पीसकर पान करने से कठिन मूत्रकुच्छरोग शीघ्र शमन हो जाता है ॥ २ ॥

विकण्टकार्यं धृतम्—विकण्टकैरण्डकुशाश्चभीरुक्काञ्जेचुस्वरसेन सिद्धम् ।
सर्पिंगुदाधार्यांशयुतं प्रयेणं कुच्छाशमरीमूत्रविधातहारि ॥ ३ ॥

विकण्टकार्यधृत—गोखरू, एरण्डमूल, कुशादि तुण्डपञ्चमूल, शतावरि, ककड़ी के बीज, सम भाग (पक २ भाग) लेकर कक्षकर जितना कक्ष हो उसके चौहुना मूँछिल गोधृत और धृत के चौहुना ईख का रस मिला कर धृत सिद्ध कर जितना धृत हो उसमें आधा भाग पुराना युद्ध मिलाकर पान करने से मूत्रकुच्छ, अश्मरी और मूत्राधात रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

शतावरीधृतम्—

धृतप्रस्थं शतावर्या रसस्थार्थादिकं पचेत् । अजाहीरिण संयुक्तं चतुर्प्रस्थान्वितेन तु ॥ १ ॥
द्विगोच्छासृतानन्ताकाशकाण्टकिनीरसान् । कुट्टवार्चं पृथगदत्त्वा पिष्ठेर्यष्टिकुटुम्बयम् ॥ २ ॥
धृतप्रस्थानन्ताकाशकाण्टकिनीरसान् । द्विगोच्छासृतानन्ताकाशकाण्टकिनीरसान् । कुट्टवार्चं पृथगदत्त्वा पिष्ठेर्यष्टिकुटुम्बयम् ॥ २ ॥
धृतप्रस्थानन्ताकाशकाण्टकिनीरसान् । द्विगोच्छासृतानन्ताकाशकाण्टकिनीरसान् । कुट्टवार्चं पृथगदत्त्वा पिष्ठेर्यष्टिकुटुम्बयम् ॥ २ ॥
शाकंराद्विपलोपेतं द्वौब्रापादसमन्वितम् । हन्ति कुच्छाणि सर्वाणि मूत्रदोषाशमशक्तराः ॥

सर्वकुच्छाणि हन्त्याशु एतद्धृतावरीधृतम् ॥ ४ ॥

शतावरी धृत—मूँछिल गाय का धृत एक प्रस्थ, शतावरि का रस आधा आढ़क (२ प्रस्थ) दोनों को मिला कर पाक करे जब शतावरि का रस बल जावे तब उसमें बकरी का दूध चार प्रस्थ देकर पाक करे जब दूध बल जावे तब उसमें दोनों (छोटा-बड़ा) गोखरू, गुरुचि, अनन्दमूल, कास (राढ़ा) की बड़ी, छोटी कट्टी के पृथक् २ स्वरस को देकर पाक कर उसमें जेठीमु, सौठि, पीपरि, मरिच, गोखरू, प्रियहु, दुखा (दूधी बूटी), शुद्ध शिलाजीत, पावाण-भेद, दालचीनी, इलायची, तेजप्रात आदा २ एल लेकर कक्ष बनाकर और मिलाकर पुनः पाकार्ये धृत से चतुर्गुण बल मिलाकर यथाविधि सिद्ध कर उत्तर-छानकर शीतक कर उसमें दो पल शवंरा और धृत जितना हो उसके चतुर्थांश मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के मूत्रकुच्छ रोग, मूत्रदोष, अश्मरी और शकरारोग को नष्ट करता है। यह 'शतावरीधृत' सब प्रकार के कुच्छ रोगों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

विकण्टकादिगुणगुलुः—

विकण्टकानां कथितेऽष्टनिन्दे पुरं पचेत्प्रकविधानयुक्त्या ।

फलत्रिक्षयोषपयोधराणां चूर्णं पुरेण प्रमितं प्रदद्यात् ॥ १ ॥

वटी प्रमेहं प्रदर्दनं च मूत्राधातं च कुच्छं च तथाऽरमरीं च ।

शुक्रस्य दोषान् सकलांश्च वाताञ्जिहन्ति मेघानिव वायुवेगः ॥ २ ॥

विकण्टकादि गुणगुलु—गोखरू का अष्टमांशावशिष्ट सिद्ध काय लेकर उसमें शुद्ध गुणगुलु मिलाकर गुणगुलु पाक की विधि से पाक करे जब पाक सिद्ध होवे तब उसमें अबरा, हरा, बहेड़ा, सौठि, पीपरि, मरिच और नागरमोथा समभाग लेकर इलक्षण चूर्णकर गुणगुलु के समान मात्रा में मिलाकर वटी बनाकर सेवन करने से प्रमेह, प्रदर्द, मूत्राधात, मूत्रकुच्छ, अश्मरी और सम्पूर्ण दोष तथा अन्यान्य दोषों को भी इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार मेघ को वायु का वेग नष्ट (तितर-वितर) कर देता है ॥ २-२ ॥

लेकले पौ—पिट्ठा शब्दवृष्टाकलमूलिकाविदैरुवाद्यीजानि सकाजिकानि ।

आलिप्यमानानि समानि वस्तौ मूत्रस्थ निष्पत्त्वान्दकराणि सद्यः ॥ १ ॥

सेक तथा लेप विधि—गोखरू के फल, मूँछी, विडनमक, ककड़ी के बीज समान भाग लेकर काँची के साथ पीस कर लेप की विधि से वस्ति स्थान पर लेप करने से शीघ्र मूत्र को निकालने वाला होता है ॥ २ ॥

वस्तावेवेष्टन्तैलेन दिनश्चर्ये किञ्चुकोन्नवैः । स्विष्टपुष्पैः स्वेदसेकं मूत्रकुच्छोपशान्तये ॥ २ ॥

वस्तिस्थान को परण्डतैल से रिनश्च करके डाक (पलास) के फूलों को कथित कर उससे स्वेद देने तथा सिङ्गन करने से मूत्रकुच्छ शमन होता है ॥ २ ॥

कोणाखुवित्कलकलेपो वस्तेष्टपरि कुच्छिणः । अपुसीबीजलेपो वा धारा वा किञ्चुकाऽभसः ॥

धृतप्रस्थद्वेषेन्दुदानं दानं वा चटकाविशः । मेघनादशिफालेपः स्वेदो वा कर्कटाऽभसा ॥ ३ ॥

पातो वा कोणाखैलस्थ धारा वा कोणवारिणः । नवैते पादिका योगा मूत्रकुच्छहरा मताः ॥

आखु (चूड़े) के मल को बल के साथ पीस कर कुछ गरम कर अथवा ककड़ी के बीजों को बल के साथ पीस कर मूत्रकुच्छ के रोगी के वस्तिस्थान पर लेप करने से अथवा डाक को कथित कर उसकी बलधारा (काय धारा) वस्ति पर देने से, अथवा लिङ्ग के छिद्र में कर्म अथवा चटक पक्षी (गरौया) के मल को ढालने से अथवा मैवनाद (चौराई) की जड़ की जल में पीसकर वस्तिपर लेप करने से अथवा केकड़े के विधिवत् बने काय से स्वेद देने से अथवा योद्धे-योड़े गरम तेक अथवा जल की धारा वस्ति पर देने से, (इनमें से किसी एक के अवहार से) मूत्रकुच्छ रोग नष्ट होता है ॥ ३-५ ॥

चन्द्रकलारसः, संग्रहात्—

प्रस्थेकं कर्षमात्रं स्थारसूतं ताम्रं तथाऽन्नकम् । द्विगुणं बन्धकं चैव शूरचा कज्जलिकां शुभाम् ॥

सुरतादादिमद्वौर्यैः । केतकीरत्नजड्वैः । सहदेष्या: कुमार्याश्च पर्पंतस्य च वारिणा ॥ २ ॥

रामशीतिलिकातीयैः शतावर्या रसेन च । भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पुष्टक् ॥ ३ ॥

तिक्ता गुद्धचिकासात्वं पर्पयोक्षीरमाधवी । श्रीगन्धं सारिवा चैवां समानं सूचमचूर्णितम् ॥ ४ ॥

द्रावाकलकणायेण ससुधा परिभावयेत् । ततः तापाश्रयं कुत्वा वट्यः कार्याश्रयोपमाः ॥ ५ ॥

अथं चन्द्रकलानामना रसेन्द्रः परिकीर्तिः । सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ६ ॥

चन्द्रकला रस—शुद्ध पारद, ताप्रमस्त्वं और अन्नक मस्त्वं प्रत्येक एक-एक कर्ष, शुद्ध गन्धक द्विगुण (दो कर्ष) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली विधिपूर्वक कर के फिर ताम्र तथा अन्नक मस्त्वं को मिलाकर मर्दन कर नागरमोथा, अनार, दूब तृण, केतकी, गोदुग्व, सहदेवी, कुमारी (धृत कुमारी) पित्तपापदा, रामशीताला और शतावरि के स्वरस अथवा क्वाय से (जिसका स्वरस नहीं निकाल सके उसके क्वाय से) पृथक्-पृथक् एक-एक दिन विधिपूर्वक मावित करे, फिर कुटीक, गुरुचि के सत्त, पित्तपापदा, खस, माघवीलता, इवेत चन्द्रन, सारिवा, समान लेकर इलक्षण चूर्ण कर उपयुक्त मावित पारदादि द्रव्यों में समान (जितना मावित रस हो उसके तुल्य समान मिलित इनका चूर्ण) मिला कर एकत्र मर्दन कर द्रावाकला के काथ से सात बार मावित कर बान्ध राशि में रखकर उसके प्रमाण की बड़ी बना कर रख लेवे। यह चन्द्रकला नाम का रस सब रसों में श्रेष्ठ कहा गया है। यह सब प्रकार के पित्त के और वातपित्त के रोगों को नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

अन्तर्बाह्यमहाद्वाहविध्वंसनमहावनः । श्रीरमकाले पारदकाले विशेषण व्रशस्यते ॥ ७ ॥

इससे अन्तर्दीह तथा शाय दाद इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार क्षमा-मेघ से नष्ट हो-

जाती है। इसको ग्रीष्म ऋतु में और शरद ऋतु में (अर्थात् पित्त के संचय और प्रकोप के समय में) विशेष करके प्रयोग में लाना चाहिये ॥ ७ ॥

कुरुते नागिनमान्यं च महातापं ज्वरं हरेत् । अमूर्च्छाहरश्चाऽशु श्वीणा रक्तं महाज्वरम् ॥

यह मन्दाविन नहीं करता है और महाताप तथा ज्वर को अथवा ज्वर के महाताप को नष्ट करता है तथा अम, मूर्च्छा और खियों के महाज्वर (जो रक्त निरन्तर बहता है) उसे शीघ्र नष्ट करता है ॥ ८ ॥

ज्वरधीरे रक्तपित्तं च रक्तवान्ति विशेषतः । मूर्च्छाहरश्चाणि सर्वाणि नाशयेज्ञात्र संशयः ॥ ९ ॥

कृष्ण और अयोग्यामी रक्तपित्त तथा विशेष कर रक्त वसन को नष्ट करता है और सब प्रकार के मूर्च्छाहर रोग को नियन्त ही नष्ट करता है ॥ ९ ॥

रसरस्त्वं प्रदीपालभुलोकेश्वरो रसः—

रसरस्त्वं च भाग्यकं चत्वारः शुद्धगन्धकम् । पिट्ठवा वराटकानुर्याद्रसपादं च टक्कणम् ॥ १० ॥

चौरेण पिट्ठवा रुद्धाऽस्यं शाण्डे रुद्धवा पुटे पचेत् ।

स्वाङ्गशीते विचूर्ण्याथ लघुलोकेश्वरो रसः ॥ ११ ॥

लघुलोकेश्वर रस—पारद भस्म अथवा रससिन्दूर एक भाग और शुद्ध गन्धक चार भाग लेकर खरल कर कौड़ियों में मर देवे फिर जितना पारद भस्म हो उसके चतुर्थीश शुद्ध टक्कण लेकर दूध के साथ पीस कर उन कौड़ियों के सुख पर लगा कर मुख बन्द कर एक मृत्युपात्र में रख कर उसका मुख मुद्रण कर गज पुट में पूँक देवे स्वांग-शीत होने पर निकाल कर खरल कर रख लेवे यह 'लघुलोकेश्वर रस' है ॥ ११-१ ॥

चतुर्गुरुं ज्वरं देवो मरिचेकोनविशितिः । जातिमूलपलं वैकमजाहीरेण पाचयेत् ।

जार्कराभावितं चानु पीतं कृच्छ्रहरं परम् ॥ १२ ॥

इस रस को चार रत्ति के प्रमाण की मात्रा से लेकर उसमें गोधृत और १९ मरिचों के चूर्ण को भिलाकर चाटकर चमेली की जड़ एक पल लेकर बकरी के दूध के साथ शीरपाक विष से पका कर शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से मूर्च्छाहर रोग को नष्ट करने में यह अचेष्ट है ॥ १२ ॥

वैकान्तमध्यनामा रसः—

सूतं स्वर्णं च वैकान्तं सूतं तुरुणं च मर्दयेत् । चाण्डालीराष्ट्रसीद्रावैर्द्वियमान्ते च गोलकम् ॥
शुष्कं रुद्धवा पुटे पाचयं करीषाग्नी महापुटे । माखेंकं मधुना लेह्नं मूर्च्छाहरप्रशान्तये ॥ १३ ॥

वैकान्तगर्भ रस—पारदभस्म अथवा रससिन्दूर, स्वर्ण भस्म, वैकान्त भस्म, तोनी समान एकत्र मर्दन कर चाण्डाली (शिविलिंगी) और राक्षसी (मुरासांसी), इनसे स्वरस के साथ पृथक् २ दो २ पहर तक खरल कर (भावित कर) गोलाकार बनाकर मुखा कर एक मृत्युपात्र में रख कर मुख मुद्रण कर पुटपाक की विष से उपलोकी विनियोग से महापुट देवे और स्वांग-शीत होने पर निकाल कर खरल कर एक माघा के प्रमाण से मधु के साथ चाटने से मूर्च्छाहर शमन होता है ॥ १३-१ ॥

वैकान्तगर्भनामाऽयं सर्वंकृच्छ्रामयाज्ञयेत् । अपामार्गस्य मूलं तु तके पिट्ठवाऽनुपाययेत् ॥

यह 'वैकान्त गर्भ' नामक रउ सब प्रकार के मूर्च्छाहर रोग को नष्ट करता है। इसके सेवन के समय अपामार्ग की जड़ को तक के साथ पीस कर अनुपान देना चाहिये ॥ १३ ॥

लोहभस्मयुगः—

अथोभस्म श्लचगपिष्टं मधुजा सह योजितम् । मूर्च्छाहरं निहन्याशु त्रिभिलेहैनं संशयः ॥

लोहभस्म योग—लोहभस्म को मली भाँति खरल कर मधु के साथ मिला कर तीन बार चाटने से निश्चय ही मूर्च्छाहर रोग को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

रसादियोगः—

रसवर्षलं यद्वारं सितातक्युतं पिवेत् । मूर्च्छाहरश्चाण्यशेषाणि हन्यन्ते पानतो जवात् ॥ ११ ॥

रसादि योग—शुद्ध पारद भस्म अथवा रससिन्दूर एक वर्षल (डेह रत्ति) के प्रमाण से लेकर उसमें यवाखार, शर्करा और तक्र मिलाकर पान करने से सभी प्रकार के मूर्च्छाहर रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

अथ पश्यापश्यम् ।

पुरातना लोहितशालयश्च धन्वामिन्द्रियं सुदूरसः सिता च ।

तक्षं पयो गोश दधि प्रभूतं पुराणकृष्णमाण्डफलं पटोलम् ॥ ३ ॥

उवारुषजूरकनारिकेलं तण्डूलियं चाऽस्मलकं च सर्पिः ।

प्रतीरनीरं हिमवालुका च मित्रं तृणां स्यासति मूर्च्छाहरे ॥ २ ॥

पश्यापश्य—पुराने तथा रक्त वण के शालिवान्यों का चावल, वन्देशीय (मरुस्थलीय) जीवों के मांस, मूंग का रस, शर्करा, गाय का मट्ठा, दूध और दही प्रचुर मात्रा में, पुराना द्वेत कुर्माण्ड, परवर, ककड़ी, खजूर, नारियल, चौराई शाक, आवला, धूत, नदी के तीर का जड़, शीतल बालु का सेवन ये सब मूर्च्छाहर रोग में मनुष्यों के हितकारी अर्थात् पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

मध्यं श्रमं निधुवनं गजवाजियानं सर्वं विरुद्धमशनं विषमाशनं च ।

ताम्बूलमस्यलवणार्द्रकतैलभृष्टं पिण्याकहिरुतिलसर्वप्रस्त्रवेगान् ।

माधान्करीरमतितीचणविदाहिरुत्तमस्मलं प्रसुत्तु जनः सति मूर्च्छाहरे ॥ ३ ॥

मध्यान, परिश्रम, मैथुन, दाढ़ी-घोड़े की सवारी, सब प्रकार के विशद भोजन, विषम भोजन, ताम्बूल, मछली, नमक, अद्रक, तेल में भूजे हुए पदार्थ, तिक्कुट, हींग, तिळ, सर्सों, मूत्र वेग का धारण, उद्धव, करीर, अस्थन्त तीक्ष्ण पदार्थ, विदाही पदार्थ, रुक्ष द्रव्य और अम्ल पदार्थ इन सब द्रव्यों को मूर्च्छाहर का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये सब अपश्य हैं ॥ ३ ॥

इति मूर्च्छाहरप्रकरणं समाप्तम् ।

अत्र मूर्च्छाधातनिदानम् ।

ज्ञायन्ते कुपितैर्देवैमूर्च्छाधातार्थ्योदश । प्रायो मूर्च्छिविधातार्थ्यैर्विकुण्डलिकाद्यः ॥ १ ॥

मूर्च्छाधातनिदान—प्रायः करके मूर्च्छ-मलं आदि के वेग के आवात से (अवरोध वा भारण करने से) कुपित हुए वातादि दोष वातकुण्डलिका आदि तेरह प्रकार के मूर्च्छाधात रोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १ ॥

त्रादौ तेषां मध्ये क्रमेण वातकुण्डलिकामाद—

रौच्याद्वेगविवाताद्वा वायुवस्तौ सर्वेदतः । मूर्च्छमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥

मूर्च्छमल्पाद्वप्यमथवा सरुजं सम्प्रवर्तते । वातकुण्डलिको तां तु व्याचिं विद्यासुवादणम् ॥ ३ ॥

वातकुण्डलिका के लक्षण—रुक्षता से अथवा वेगों (मूर्च्छ-मलादि के वेगों) के आवात से कुपित हुआ वायु वस्ति में जाकर मूत्र में प्रवेश कर पीड़ा करता हुआ कुण्डलिका के आकार का होकर घूमता है। जिससे मूत्र थोड़ा २ अथवा पीढ़ी के साथ निकलता है उस कठिन व्याचि को 'वातकुण्डलिका' जानना चाहिये ॥ २-३ ॥

अष्टीलामाद—

आधापयन्वस्तिगुदं रुद्धवा वायुश्लोकाताम् । कुर्यात्तीवर्तिमष्टीलां मूर्च्छमार्गनिरोधिनीम् ॥

अष्टीला के लक्षण—जिस मूर्च्छाधात में वायु आधामान करती हुई वस्ति और उदा को अवरुद-

कर चलने वाली और उठी हुई, तीव्र पीड़ा करने वाली तथा मूत्रमार्ग का अवरोध कर देने वाली अष्टोला (ग्रन्थि) उपचार कर देती है उसे 'अष्टोला' कहते हैं ॥ ४ ॥

वातवस्तिमाह—

वेगं विधारयेद्यत्तु मूत्रस्थाकुशलो नरः । निशणद्वि सुखं तथ्य बस्तेवस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥

मूत्रसङ्गो भवेत्तेन वस्तिकुचिरुत्तराकरः । वातवस्तिः स विज्ञेयो व्याख्यः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

वातवस्ति के लक्षण—जो अज्ञानी मनुष्य मूत्र के वेग को धारण करता है उसको वस्ति स्थान में इने वाली वायु वस्ति के सुख को अवश्य कर देती है जिससे मूत्र का अवरोध हो जाता है और वस्तिस्थान तथा कुक्षिं में पीड़ा होती है । इसे 'वातवस्ति' जानना चाहिए । यह रोग कष्टसाध्य है ॥ ५-६ ॥

मूत्रातीतमाह—

चिरं धारयते मूत्रं धरयते न प्रवर्तते । सेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

मूत्रातीत के लक्षण—जो मनुष्य बढ़ी देर तक मूत्र के वेग को धारण करता है उसको फिर मूत्र शीघ्रता से नहीं आता अथवा मन्दः२ वेग से मूत्र होता है, इस अवस्था को 'मूत्रातीत' रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

मूत्रबठरमाह—

मूत्रस्थ वेगोऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः । अपानः कुपितो वायुद्वरं पूरयेद् भृशम् ॥ ८ ॥

नामेरवस्तादाघमानं जनयेत्तीवेदनम् । तन्मूत्रबठरं विद्याद् गुदवस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

मूत्रबठर के लक्षण—मूत्र के वेग को धारण करने से उदावर्त को उत्पन्न कर देने वाला कुपित अपान वायु उटर को अत्यन्त पूर्ण कर देता है उससे नाभि के नीचे आघमान हो जाता है और तीव्र पीड़ा होती है तथा इस आघमान से गुदा और वस्ति का मार्ग रुक जाता है । इसको 'मूत्रबठर' कहते हैं ॥ ८-९ ॥

मूत्रोत्सङ्गमाह—

वस्तौ वाऽप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः । मूत्रं प्रवृत्तं सउजेत् सरकं वा ग्रवाहतः ॥

स्नवेच्छनैः शतरवपं सर्वज्ञ वाऽथ नीहवम् । विगुणानिलज्ञो व्याख्यः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥

मूत्रोत्सङ्ग के लक्षण—जिस मनुष्य को वस्ति में अथवा मूत्रवाही (शिशन) में अथवा शिशन के मुण्ड में प्रवृत्त हुआ (निकलता हुआ) मूत्र रुक जाता है अथवा बल्कूर्क बहाने से (बल लगा कर मूत्रोत्सङ्ग करने से) रक्त के साथ धीरे २ मूत्र निकलता है और उसमें पीड़ा होती है अथवा नहीं भी होती है । यह 'मूत्रोत्सङ्ग' नाम की व्याख्या वायु के विगुण (विमार्ग) होने से होती है ॥ १०-११ ॥

मूत्रक्षयमाह—

रुच्यस्थ वलान्तदेहस्य वस्तिस्थौ पित्तमारुतौ । मूत्रक्षयं सरुदाहं जनयेत् तदाह्यम् ॥

मूत्रक्षय के लक्षण—जिसका शरीर रुच तथा क्षान्त (खकित) हो गया हो उसके वस्ति स्थान में इने वाला पित्त तथा वायु कुपित होकर पीड़ा तथा दाह सहित मूत्रक्षय कर देते हैं । इसको 'मूत्रक्षय रोग' कहते हैं ॥ १२ ॥

मूत्रग्रन्थिमाह—

अन्तर्वस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽवपः सहस्रा भवेत् । अरमरोतुरुपर्याग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥

मूत्रग्रन्थि के लक्षण—वस्ति के भीतर मुख पर अक्षमात्र जो गोल, सिर, छोटी सी, अद्मरी समान पीड़ा करने वाली ग्रन्थि (गांठ) उपचार हो जाती है उसे 'मूत्रग्रन्थि' कहते हैं ॥ १३ ॥

त्रान्तरे रक्तम्—

मूत्रं वातकादुषं वस्तिद्वारेतु दाहगम् । ग्रन्थिं कुर्यात्स कृच्छ्रेग सज्जेन्मूत्रं तदावृतम् ॥ १४ ॥

वात और कफ से दूषित हुआ मूत्र वस्ति के द्वार पर कठिन ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है । उससे (उस ग्रन्थि से) विरा हुआ मूत्र कष से बाहर निकलता है । उसे 'मूत्रग्रन्थि' कहते हैं ॥ १४ ॥

मूत्रशुक्रमाह—मूत्रश्रितस्य द्वियं आतो वायुना शुक्रमुखतम् ।

श्वानाद्यच्युतं मूत्रयतः प्राप्तवाह्वा प्रवर्तते । भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १५ ॥

मूत्रशुक्र के लक्षण—जो मनुष्य मूत्र का वेग होने के समय मूत्र का अवरोध करके खीपसंग करता है उसका वीर्य कुपित वायु से उद्धृत होकर अपने स्थान से ब्रह्म होकर मूत्र के प्रथम वा पश्चात् भस्म मिले हुए जल के समान निकलता है उसको 'मूत्रशुक्र' कहते हैं ॥ १५ ॥

दण्डवातमाह—

व्यायामाध्यातपैः वित्तं वस्तिं प्राप्यनिलावृतम् । वस्तिं मेदं गुदं चैव प्रदहेत्वावयेद्यथः ॥

मूत्रं हारिद्रमथवा सरकं रक्तमेव वा । कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुणवातं वदनित तम् ॥ १७ ॥

दण्डवात के लक्षण—भविक व्यायाम करने से, अधिक मार्ग चलने से, अधिक ताप में रहने से, इन सब कारणों से कुपित हुआ पित्त वस्ति में प्राप्त होकर वायु से विर कर वस्ति, शिशन और गुदा में दाह करता है और इर्दी के समान, रक्तवर्ण का अथवा रक्तसंहित कष से मूत्र का नीचे की ओर स्राव होता है । उसे 'दण्डवात' कहते हैं ॥ १६-१७ ॥

मूत्रसादमाह—

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्तेऽपिक्लेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तदा रकं पीतं श्वेतं घनं सुजेत् ॥

सदाहं रोचनाशङ्कूर्चूर्वणं व्यवेच्छ तत् । शुक्रं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदनित तम् ॥ १९ ॥

मूत्रसाद के लक्षण—पित्त और कफ शुचवा दोनों जब वायु के संग मिलकर वस्ति में कुपित हो जाते हैं तब कष से रक्त, पीत या श्वेत वर्ण का और वना मूत्र निकलता है । उसमें दाह होता है तथा गोरोचन, शङ्क तथा चूने के समान श्वेतवर्ण का मूत्र होता है अथवा सूखा हुआ सब वर्णों का मूत्र होता है । उसको 'मूत्रसाद' कहते हैं ॥ १८-१९ ॥

विद्विवातमाह—रुच्छ्रुर्वलयोर्वातादुदाहृत्तं शकृथदा ।

मूत्रस्तोतोऽनुपश्चेते विद्विस्युषं तदा नरः । विद्ग्रन्थं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विवातं तमादिशेत् ॥

विद्विवात के लक्षण—रुच तथा दुर्बल मनुष्य का वात कुपित होकर अथ मल को आदृत कर लेता है (घेर लेता है) तब वह मल-मूत्रवाहिनी नाड़ियों में प्राप्त हो जाता है और मूत्र में मिल जाता है जिससे विषा मिला हुआ और विषा के गन्ध वाला बड़े कष से मूत्र होता है । उसको 'विद्विवात' कहते हैं ॥ २० ॥

वस्तिकुण्डलमाह—

द्रुताध्वलङ्गनाथासैरभिवाताध्यपीडनात् । स्वस्थानाद्यस्तिरुद्वृतिः स्थूलस्तिष्ठृतिः गर्भंवद् ॥

शूलस्पन्दनदाहार्तो विन्दुं विन्दुं लभ्यते । पीडितस्तु सज्जेदारां संरक्षभोद्वेनार्तिमान् ॥

वस्तिकुण्डलमाहृतं घोरं शशविषोपमयः । पवनप्रबलं प्राप्तो दुर्निवासमतुदिभिः ॥ २१ ॥

वस्तिकुण्डल के लक्षण—जहि शीत्र २ मार्ग चलने से, अधिक उपवास करने से, अधिक परिश्रम करने से, आधात हो जाने से अथवा किसी अन्य प्रकार से वस्ति के पीडित हो जाने से अपने स्थान से इटकर वस्ति स्थूल होकर (फूल कर) गर्भ के समान हो जाती है, जिससे शूल, कपान वा संचालन, दाह इनसे पीडित होकर विन्दु-विन्दु करके मूत्र का ज्वाव होता है और विष के समान दुःखप्रद 'वस्तिकुण्डल' रोग कहते हैं । यह रोग प्रायः वायु की प्रवलता से होता है और अवृद्धि अथवा अस्पृद्धि पुरुषों के लिये दुर्निवार (असाध्य) है ॥ २१-२२ ॥

तस्मिन्पित्तावृते दाहः शूलं मूष्विवर्णता । श्लेष्मणा गौरवं शोकः रिनग्रं मन्त्रं घनं सितम् ॥
इस रोग में बब पित्त का अकिं कोप होता है तर उसमें दाह, शूल और मूत्र में विवर्णता होती है, और जब कफ की अधिकता होती है तब युरुता, शोथ और रिनग्रंता युक्त द्वेतवणं का घना (गाढ़ा) मूत्र निकलता है ॥ २५ ॥

श्लेष्मस्तुविलो वस्तिः पित्तोदीर्णो न सिद्धति ।

अविभ्रान्तविलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ।

स्याद्वृश्टौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः आस एव च ॥ २५ ॥

साध्यासाध्यता—जिसमें वस्ति का मुख कफ से अवरुद्ध हो गया हो और पित्त बढ़ गया हो वह कुण्डलिका असाध्य है। जिसमें वस्ति का मुख खुला हो और जो कुण्डली की भाँति नहीं हुई हो वह 'वस्तिकुण्डलिका' साध्य है। वस्ति जब कुण्डली की भाँति हो जाती है तब उसमें रुपा, मोह और शास हो जाता है। यह भी असाध्य है ॥ २५ ॥

अथ मूत्राधातचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपक्षस्य हितं स्नेहविरेचनम् । दयादुत्तरवस्ति च मूत्राधाते सवेदने ॥ १ ॥

मूत्राधात चिकित्सा—मूत्राधात के रोगी को प्रथम स्नेहन तथा स्वेदन कराकर रिनग्रं विरेचन देना चाहिये और पीड़ायुक्त मूत्राधात में उत्तरवस्ति देना चाहिये।

नलादिकायः—नलकुशकाशेदुशिकाकथितं प्रातः सुशीतलं ससितम् ।

पित्ततः प्रथाति नियतं मूत्राधातः सवेदनः पुंसः ॥ १ ॥

नलादि कवाथ—नर४८ की जड़, कुश की जड़, रांडा की जड़ और ईख की जड़ समान माग लेकर काथ बनाकर शीतल करके प्रातःकाल उसमें शक्तरा का प्रक्षेप देकर पान करने से पीड़ा सहित मूत्राधात रोग निश्चित ही नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोधावर्यादिकायः—

गोधावर्यादिभूतं शृततैलगोरसोनिमश्यम् । पीतं निस्तदमचिराद्विनच्चि मूष्रस्य सञ्चातम् ॥

गोधावर्यादि चवाथ—गोधावर्यी (गोधालिया) के मूल का काथ बनाकर उसमें गोदृत, तिळ का तेल और गाय का दूध मिलाकर पान करने से मूत्रसञ्चात को शीघ्र ही भेदन कर निकालता है ॥ १ ॥

शार्निवाराद—

शीरतकृच्छ्रवृन्दा वासा सहचरद्वयम् । कुशदृशं नलो गुच्छा बकुष्योडविनमन्थकः ॥ १ ॥

मूर्वा पाषाणगेदक्ष स्योनाको गोदृतरसतथा । अपास्त्रांश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणी वरः ॥ २ ॥

शीरतवार्दिरिष्येष शक्तराशमरिकृच्छ्रहा । मूत्राधातं वातरोगाचाक्षयेदशिलानपि ॥ ३ ॥

शीरतवार्दि कवाथ—गांडर दूध अथवा सरकण्डे की जड़, बन्दा (वृक्ष पर की बांधी), अरुसा, दोनों सहचर (पीत पुष्पवाली और नीछ पुष्पवाली), दोनों कुश (कुश और चाम), नरकट, पटेर इनका मूल, अगस्त के फूल, गनियार की छाल, मूर्वा, पाषाणगेद, सोना पाठा की छाल, गोखर, अपासांश, कमल और ब्राह्मी ये शीरतवार्दि गण हैं। इन शीरतवार्दि गण का काथ बना कर सेवन करने से शक्तरा रोग, अस्मरी और मूत्रकुच्छ्र, मूत्राधात तथा सम्पूर्ण वात रोगों को नष्ट करता है (शार्निवार में 'सहचरद्वयम्' पाठ है अर्थात् तीनों प्रकार के नील, पीत और इवेत पुष्प के सहचर) ॥ १-२ ॥

पिवेच्छिलाजसु काथे गणे शीरतवार्दिके । रसं दुशालभाया वा कथायं वासकस्य च ॥ ४ ॥

इस शीरतवार्दि-गण के काथ में शुद्ध शिलाजीत अथवा जवासे का रस मिलाकर पीने से अथवा अरुसा का काथ पीने से भी उपयुक्त शक्तरादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

दशमूलादि कायः—

दशमूलीश्वरं पीत्वा सशिलाजसुशर्करम् । वातकुण्डलिकाष्ठीलावातवस्तौ प्रमुच्यते ॥ १ ॥
दशमूलादि कवाथ—दशमूल की प्रत्येक ओषधियों को समझाग लेकर कवाथ कर उसमें शुद्ध शिलाजीत और शक्तरा का प्रक्षेप देकर पान करने से वातकुण्डलिका अष्ठीला और वात वस्ति से रोगी मुक्त होता है ॥ २ ॥

गोक्षुरादिकवाथः—

पीतो गोकण्टककायः सशिलाजतुकौशिकः । मूत्रकुच्छ्रमूत्रशुक्राम्बूत्रोत्सङ्घाद्विमुच्यते ॥ ३ ॥

गोक्षुरादि कवाथ—गोखरु के विषपूर्वक बने कवाथ में शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध गुणुल मिलाकर पान करने से मूत्रकुच्छ्र, मूत्रशुक्र और सुत्रोत्सङ्घ से रोगी मुक्त होता है ॥ १ ॥

शिलाजतुयोगः—

शशकरं च ससितं छींदं शिलाजतु । निहन्ति मूत्रजठरं मूत्रातीतं च देहिनः ॥ ३ ॥

शिलाजतु योग—शुद्ध शिलाजीत में शक्तरा और इवेत शक्तरा मिलाकर बाटने से मूत्रजठर और मूत्रातीत रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादियोगः—

त्रिकण्टकैरपदशातावरीयः सिद्धं पथो वातन्धवे च शूले ।

गुदप्रगाढं सपृष्ठं पथो वा रोगेषु कृच्छ्राद्विषु शस्त्रमेतत् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादि योग—गोखरु, परण्डमूल और शतावरि इन द्रव्यों के द्वारा श्वीरपाक विधि से दूध तिळ कर उसमें पुराने गुण का प्रक्षेप देकर सेवन करने से वातज शूल नष्ट होता है। अथवा घृत और दूध मिलाकर पान करने से भी मूत्रकुच्छ्रादि रोग में आम होता है ॥ १ ॥

निदिग्धकादियोगः—

तिदिग्धिकायाः स्वरसं पिवेद्वा तक्संयुतम् । जले कुछुमकरं वा सखौव्रमुचितं निशि ॥ १ ॥

श्रद्धशीतपशोडजाशी चन्दनं तपण्डुलाम्बुना । पिवेत्सक्षरं श्रेष्ठामुण्डवाते सशोणिते ॥ २ ॥

निदिग्धकादि योग—छीटो कटेरी के स्वरस को तक में मिलाकर शथवा केसर के कल्प को पर्युषित कर उसमें मधु मिलाकर पान करने से और औटा कर शीतल किया। दुधा दूध तथा अश का अक्षय करने से, तथा इवेत चन्दन को चावल के घोवन में विस कर शक्तरा मिलाकर पान करने से रक्त सहित चण्डवात नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

शतावर्यादियोगः—

वरीगोद्धरमूत्राशीमूलानां स्वरसं पलम् । माषमेकं यवचारं सौरं माषदृशं सथा ॥ १ ॥

दिग्गुर्जं दृक्षणं चारं सर्वमेकव्र मेलवेत् । पिवेत्तु विनाशाय मूत्राधाते सुदारणे ॥ २ ॥

शतावर्यादि योग—शतावरि, गोखरु और सुई आवाका की जड़ों का स्वरस मिलित ३ पल, यवाखार १ मासा, तुम्बलक (ज्ञाइमरिच) दो मासा, टक्कण खार (शुद्ध सुदारणा) दो रक्ती सूतों को एकत्र कर कठिन मूत्राधात को नष्ट करने के लिये देना चाहिये ॥ १-२ ॥

मूत्रशोणितप्रसङ्गेन शोणितं यस्य सिद्धयते ।

मैथुनोपरमश्यास्य हृष्णीयो विधिमतः । नाम्रचूलवसातैलं हितं चोत्तरमरितु ॥ १ ॥

मूत्रशोणित चिकित्सा—जब अत्यन्त खीप्रसक्त करने से शिशन से रक्त का साव इने झगता है तब उसे मूत्रशोणित कहते हैं। उसमें मैथुन सर्वथा स्याग देना चाहिये और बृंदण क्रिया करनी चाहिये तथा कुलकुट का वसा अथवा तेल की उत्तरवस्ति देनी चाहिये ॥ १ ॥

स्वगुप्तार्थं चूर्णम्—

स्वगुप्ताक्षमूदीकाहृष्णोद्धरितारजः । समानमर्धसागानि चीरचौद्रधृतानि च ॥ ३ ॥

सर्वं सम्यविमर्श्या दुष्मात्रां लीढवा पयः पिवेत् । हन्ति शुक्रश्चयोत्थांश्च दोषान्वन्धया मृतप्रदम् ॥
स्वगुप्ताय चूर्ण—केवाच के फल (बीज), मुखका, पीपरि, ताल मखाना और शकरा सम
भाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके आधा गोदुख, मधु और धृत इनको समान मिलित
लेकर उसमें अली-आंति मर्दनकर एक अक्ष (कर्ष) के प्रमाण की मात्रा से चाटकर ऊपर से दूध
का अनुपान पान करने से शुक्रश्य उत्पन्न होने वाले दोष नष्ट होते हैं और बन्धा यदि सेवन
करे तो उसे पुनर दोता है ॥ १-२ ॥

क्षौद्रार्धभागधृतम्—

कौद्रार्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीरसर्विषः । शकैरायाश्च चूर्ण च द्राक्षाचूर्ण च तत्समम् ॥

स्वयंगुप्ताफलं चैव तथैवेद्युक्तकश्च च । पिष्ठलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥ ३ ॥

तदेकस्थं मेलयित्वा स्वश्वेनोन्मध्यं च चगम् । तथ्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्वीरं ततः पिवेत् ॥

क्षौद्रार्धं माग धृत—मधु आवा आग, गोदुख, गोदुख, शकरा, द्राक्षा, केवांच के बीच, ताल
मखाना और पीपरि का चूर्ण प्रत्येक १ भाग एकत्र करुण समय तक खरल में मर्दन कर इसमें से
एक कर्ष भर लेकर चाट कर ऊपर से गोदुख पान करे ॥ १-३ ॥

एतत्वर्थः प्रयुक्तानः शुद्धदेहो नरः सदा ।

शुक्रदोषात्त्वेऽसर्वनिद्रापि भृशुर्दुर्जयान् । जयेच्छोगितदोषांश्च बन्धा खी गर्भमाप्नुयात् ॥

इस धृत को सेवन करने के पहले शरीर शुद्ध कर लेना चाहिये । इसके प्रयोग से सब प्रकार
के अस्थन्त कठिन तथा बड़े हुए शुक्रदोष नष्ट होते हैं और रक्त दोष या आरंब सम्बन्धी दोष नष्ट
होते हैं तथा बन्धा खी को इसके सेवन से गर्भ रहता है ॥ ४ ॥

धाययोक्तुराचं धृतम्—

धान्यगोक्तुरकषाथकरकसिद्धं धृतम् हितम् । मूत्राघारेत्वु कृच्छ्रेष्ठ शुक्रदोषे च दाषणे ॥ ५ ॥

धान्य गोक्तुराचं धृत—धनियाँ और गोखरु इनके काथ तथा इन्हीं के कल्क के साथ धृत पाक
की विधि से (कल्क से चतुर्णुं मूर्च्छित गोधृत और धृत से चतुर्णुं काथ के द्वारा) सिद्ध धृत के
सेवन करने से मूत्राघार, मूर्च्छकृच्छ्र और कठिन शुक्र दोष में लाभ करता है ॥ ५ ॥

विश्रकां धृतम्—

विश्रकं सारिवा चैव खला काला च सारिवा । द्राक्षाविश्रालापिष्ठप्रस्थस्तथा च त्रिफला भवेत् ॥
तथैव मधुकं दृश्याद्यामलकानि च । धृताकं पचेदेतेः कल्कैरसमन्वितैः ॥ २ ॥

शीरद्रोणे जलद्रोणे तरिसद्वत्तायेत् । शीतं परिशृष्टं चैव शकरा प्रस्थसंयुतम् ॥ ३ ॥

तुगाढीर्या च तत्सर्वं मर्तिमान्परिमिश्रयेत् । ततो मितं पिवेत्काले यथादोषं यथाबलम् ॥ ४ ॥
मूत्रग्रन्थं मूत्रप्रसादसुष्णवात्मसुद्वरम् । विद्विवातां निहस्येतद्वस्तिकुण्डलिमप्यलम् ॥ ५ ॥

विश्रकाचं धृत—विश्रकमूल, सारिवा लता, बरिआरा, नागदला, कुण्डा सारिवा, द्राक्षा, माइरि
की जड़, पीपरि, आँवला, हरी, बड़ेहा, मुलाहठी और आँवला प्रत्येक १क-१क अक्ष के प्रमाण से
लेकर कल्क कर मूर्च्छित गोधृत एक आदक (४ प्रस्थ) में मिलाकर और उसमें गाय का दूध एक
द्रेण और जल एक द्रोण (४ आदक) मिलाकर धृत सिद्ध करे जब धृत मात्र शेष रहे तो उतार-
छानकर शीतल होने पर उसमें शकरा और बंशलोचन का चूर्ण एक २ प्रस्थ मिलाकर रख लेवे,
इस धृत को दोष, बल और अविन के अनुसार मात्रा से पान करने से मूत्रग्रन्थि, मूत्रसाद,
उष्णवात, रक्प्रदर, विहवात और वस्तिकुण्डलिका ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

सर्पिरेतत्प्रयुक्ताना खी गर्भं लभतेऽचिरात् ।

अस्त्रदोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च । प्रयोक्त्यमिदं सर्पिश्चित्रकां धृतम् ॥ ६ ॥

इस धृत के प्रयोग से खी शीघ्र ही गम्भारण कर लेती है तथा रक्तदोष, योनिदोष और
मूत्रदोष में इस 'विश्रकाचं धृत' का प्रयोग बुद्धिमान् को सदा करना चाहिये ॥ ६ ॥

सदाभद्राधं चूर्णम्—सदाभद्राधं शमभिन्मूलं शतावर्याश्च विश्रकम् ।

रोहणीकोकिलाहौ च कौञ्चित्थूलं त्रिकंटकम् ॥

श्लशपिष्टः सुरा पीता मूत्राघातप्रणाशनाः ॥ ७ ॥

सदाभद्राधं चूर्ण—गम्मार की छाल, पाषाणमेद की जड़, शतावरि मूळ, विश्रक मूळ, कुटकी,
तालमखाना, कमल बीज, ईख की जड़ और गोखरु को सम भाग लेकर इकट्ठण चूर्ण कर सुरा
(भय) के अनुपान से सेवन करने से मूत्राघात रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

उशीरादिचूर्णम्—

उशीर बालकं पश्चं कुष्ठं धात्री च मौसली । एला हरेणुकं द्राचा कुकुमं नागकेसदम् ॥ १ ॥

पश्चकेसरकन्दं च कर्पूरं चन्दनदूधयम् । व्योषं मधुकलाज्ञाश्च शतावरी ॥ २ ॥

गोधुरं कर्कटाद्यं च जाती कझोलवोक्तम् । एतानि समभागानि द्विगुणाऽमृतशकर्का ॥ ३ ॥

मरस्यविषिद्कामयुभ्यां च प्रातेरेव बुभुतिः । उद्यं च रक्तपितं च पाददाहमसुद्वरम् ॥ ४ ॥

मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं रक्तक्षावं च नाशयेत् । अशीरिति वातजानोगान्विवेषामेहतुष्यरम् ॥ ५ ॥

उशीरादिचूर्ण—खस, सुगन्धबाला, तेजपात, कूठ, आँवला, मूसली, छोटी इलायची के बीज,
रेणुका बीज, द्राक्षा, केसर, नागकेसर, पदमकेसर, पदुम की जड़, कूरू, ईवेत चन्दन, रक्त चन्दन,
सौंठ, पीपरि, मरिच, मुलाहठी, धान की जड़ी, असगन्ध, शतावरि, गोखरु, ककड़ी के बीज,
चमेली, कझोल, मरिच, चौरा (चोरक) समभाग लेकर (१क-१क भाग लेकर चूर्णकर जितना
हो उसके दुगुना गुड़ी से स्त्रव मिलाकर मर्दन कर रख लेवे । इसको ईवेत शकरा (मिश्री) तथा
मधु के साथ प्राप्त काल मृक्षण करने से क्षय, रक्तपिता, पाददाह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, रक्तक्षाव और
असी प्रकार के वात रोग नष्ट होते हैं तथा विशेष कर यह प्रयोग रोग नष्ट करने में उत्तम है ॥

सामान्यक्रिया—

अशमरीमूत्रकृच्छ्रेष्ठ मेषजं यस्तिक्षया च या । मूत्राघातेषु सर्वेषु कुर्यात्तरसंवादरातः ॥ १ ॥

सामान्य क्रिया—अशमरी तथा मूत्रकृच्छ्र रोग में कही हुई सभी ओषधियाँ और क्रियायें
मूत्रकृच्छ्र रोग में प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ १ ॥

इस अन्द्रकलाखयश्च कृच्छ्रनो यः पुरेरितः । मूत्राघातेषु सर्वेषु स प्रयोऽयो विजानता ॥ २ ॥

चन्द्रकला नामक जौ रस मूत्रकृच्छ्र रोग के प्रकरण में पहले कह आये हैं उन्हें सब प्रकार के
मूत्राघात रोग में बुद्धिमान् वैद्य को प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातना लोहितशालयश्च मांसानि धन्वग्रभवाणि भद्रम् ।

तकं पयो दध्यपि मावयूषः पुराणकृच्छ्रमाण्डकलं पटोलम् ॥ १ ॥

उवाखर्यर्जुनकनारिकेलतालद्विमाणामपि मस्तकानि ।

यथामलं सर्वमिदं च मूत्राघातातुराणां हितमादिशन्ति ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने रक्तवर्ण के शालिधान का चावल, धन्वदेशीय (महस्यल के) जीवों का
मास, मदिरा, तक, दूध, दही, डड़क का यूष, पुराने देवत कुष्माण्ड (पेठा), परवर, ककड़ी,
खजूर, नारियल, तथा ताड़ वृक्ष के मस्तक, ये सब पथ्यापथ्य दोषानुसार मूत्राघात के रोगियों के लिये
हितकर कहे गये हैं ॥ १-२ ॥

विरुद्धाशनसर्वाणि व्यायामं मार्गशीलनम् ।

रुचं विद्वाहि विष्टिभ्य अथवाथ वेगधारणम् । करीरुं व मनं चापि मूत्राधाती विवर्जयेत् ॥३॥
सब प्रकार के विश्व औजन, व्यावाम, मार्ग चलना, रुक्ष, विदाही और विष्टिभ्य पदार्थ,
मैथुन, मलादि बेगों का अवशोष, करीरुं फल खाना और व मन मूत्राधात का रोगी त्याग देवे ॥३॥
इति मूत्राधातप्रकरणं समाप्तम्

अथाशमरीनिदानम् ।

वासपित्तकफैस्तिचक्षतुर्थी शुक्लाऽपरा । प्रायः श्लेष्माश्रयः सर्वाः ह्यशमर्यः स्युर्थभोपमाः ॥
अशमरी निदान—अशमरी (पथरी) रोग चार प्रकार का होता है । एक वात के कोप से,
दूसरा पित्त के कोप से, तीसरा कफ के कोप से और चौथा शुक्र दोष से । प्रायः करके सब प्रकार
के अशमरी रोग इष्टमा को ही आश्रय करके रहते हैं और उक्त चारों प्रकार के अशमरी रोग
व मन के समान भयहूर रहते हैं ॥ १ ॥

तरसंप्राप्तिमाह—विशेषयेद् वस्तिगतं सशुक्षं शूक्रं सवित्तं पवनः कफं वा ।
यदा तदाश्मर्युपजायते तु क्लेशेण पित्तेविव रोचना गोः ॥ २ ॥

अशमरी की सम्प्राप्ति—बब वायु वरित स्थान में कुपित होता है तथा वस्ति में स्थित हुए
शुक्र सहित अथवा पित्त सहित अथवा कफ सहित मूत्र को सुखा देता है जिससे अशमरी रोग
हो जाता है । यह अशमरी रोग जिस क्रम से गाय के पित्त के सूखने से गोरोचन हो जाता है
उसी क्रम से मूत्र के सूखने से हो जाता है ॥ २ ॥

स्थ्यासनेकदोषाश्रयत्वमाह—

नैकदोषाश्रयः सर्वास्त्वयाऽसां पूर्वलच्छनम् । वस्यास्त्वानं तथाऽसन्नदेशेषु परितोऽतिक्रम ॥
मूत्रे च वस्तगन्धर्वं मूत्रकुच्छं उवरोऽविचिः ।

अशमरी के अनेक दोषाश्रयत्व—सब प्रकार की अशमरी एक दोष के आश्रय से नहीं रहती
अर्थात् अनेक दोषों से युक्त होती है और इस अशमरी के होने के समय (पहले) वस्ति में
आश्मान और वस्ति के सामीप के स्थानों में (वस्ति के क्षण-नीचे, शिशन तथा अण्डकोशादि में)
अति पीड़ा होती है और मूत्र में बकरे के गन्ध के समान गन्ध होती है तथा मूत्रकुच्छ, ऊर
और अश्वचि होती है ॥ ३ ॥

तासां सामान्यलक्षणमाह—

सामान्यलिङ्गं शून्नभिसीवलीविस्तिमूर्धंसु । विशीर्णधारं सूत्रं स्यातथा मार्गं निरोधिते ॥४॥
तदव्यपायासुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् । तस्मांसोभात्स्वते साक्षमायासाच्चातिरुभवेत् ॥

अशमरी के सामान्य लक्षण—नामिस्थान, सीवनी, वरित स्थान तथा सिर में पीड़ा होती है,
अशमरी के मूत्र मार्ग में रोध के कारण मूत्र कर्तृ वार से होता है और वह अशमरी जब मूत्रमार्ग
से पृथक् हो जाती है तब सुखपूर्वक वच्छ गोमेद के सामान मूत्र होता है । उस अशमरी के
संक्षेपित (कुद) होने से क्षत भी हो जाता है जिससे रक्त के साथ मूत्र निकलता है और कुछ
मूत्र वेग में बकरने से अस्थन्त पीड़ा होती है । ये सब अशमरी रोग के सामान्य लक्षण हैं ॥४-५॥

वातजामाह—

तत्र वाताद् भृशं चाऽर्तो वन्तान्वादति वेपते । मूद्राति मेहनं नाभिं पीडयस्यनिशं कण्ण ॥
सानिलं मुञ्चति शाङ्कमुहुर्मेहति विनदुषाः । श्यावाणाश्मरी चास्य स्याचित्ता कण्ठकैरिव ॥

वातज अशमरी—जिस अशमरी रोग में अस्थन्त पीड़ा होती है जिससे मनुष्य द्रांत कटकाटा
है, कौपता है, शिशन को मर्दन करता है तथा निरन्तर नाभि को पीड़ित करता रहता है और

अशमरीनिदानम्

कालता है उसको वायु साहत मछ निकलता है, बाट-बार बैंदू र मूत्र त्याग करता है तथा ओ
अशमरी श्यावा अथवा अरुण वर्ण की तथा कठिदार होती है उसे वात के कोप की (वातवा)
अशमरी जाननी चाहिये ॥ ७ ॥

पित्तजामाह—

पित्तन वृद्धते वस्तिः पच्यमान हृत्वोधमवान् । भज्ञतकस्थिसंस्थाना रक्षणीता तथाऽशमरी ॥
अशमरी—जिस अशमरी में वस्ति में दाह होती है और व्रण पक्ले के समान पीड़ा
होती है तथा ज्वरा होती है, और अशमरी भिलावे की गुठली के समान (आकार की) होती है,
तथा रक्त वा वीत वर्ण की होती है उसे पित्त के कोप की (पित्तज) अशमरी कहते हैं ॥ ८ ॥

इष्टेजामाह—

वस्तिनिस्तुच्यत हृत्व श्लेष्मणा शीतलो गुहः । अशमरी महती इलचणा मधुवर्णाऽद्य वा सिता ॥
कफज अशमरी—जिस अशमरी में वस्ति में सूर्य चुम्बने के समान पीड़ा, शीतलता और गुरुता
होती है और अशमरी बड़ी, पिछिल, मधु के वर्ण की अथवा इवेत वर्ण की होती है उसे
कफ के कोप की (कफज) अशमरी कहते हैं ॥ ९ ॥

घृता भवन्ति वालानां तेषामेव च भूयसा । आश्रयोपचयास्तपत्वाद् ग्रहणाहरणे सुख्याः ॥१०॥

ये तीनों प्रकार की (वातज, पित्तज, कफज) अशमरीयाँ प्रायः करके वालकों की होती हैं
(कदाचित् बड़ों को भी हो जाती है) । इनके रहने के आश्रय (वस्ति) और संचय (पथरी की
स्थूलता) दोनों ही अल्प होते हैं इसलिये उसका पकड़ने (बड़ी वन्न से) और निकालने में
शर्क से चौरकर दुष्प्रता होती है ॥ १० ॥

शुक्राशमरीमाह—शुक्राशमरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ।

स्थानाच्युतमसुर्कं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः । शोषपत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्राशमरी ॥११॥

शुक्राशमरी—शुक्राशमरी पूर्ण वयस्क मनुष्य को ही (जो मैथुन के योग होते हैं) शुक्र के
धारण करने से होती है । मैथुन द्वारा स्थान से च्युत हुए बिस वोर्य को जो इठपूर्वक या भयादि
से रोक लेते हैं (गिरने नहीं देते) उसके वीर्य को जो कुपित वायु शिशन में रहती है वह लेकर अण्ड-
कोश और वस्ति के समय में सुखा देती है । उसको 'शुक्राशमरी' कहते हैं अर्थात् इसी कारण से
शुक्राशमरी होती है ॥ ११ ॥

तद्लक्षणमाह—

वस्तिरुपूत्रकुच्छव्युत्पत्तिशुक्रमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥१२॥

जिस अशमरी में वस्तिस्थान में पीड़ा, मूत्रकुच्छ और मुष्कदेश (अण्डकोश) में शोय होता
है और उसके (पथरी के) उत्पन्न होते ही यदि किसी प्रकार से विलीन हो जावे तब शुक्र
निकलता है उसे 'शुक्राशमरी' कहते हैं ॥ १२ ॥

शकरालक्षणमाह—

पीडिते व्यवक्षेत्रेऽस्तिमूत्रपूर्वक्षयथुक्रकरिणी । तस्यामुष्पत्वमात्रायां शुक्रमेति विलीयते ॥१३॥

निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विवद्यते । मूत्रक्षोत्तिरात्रा सा तु सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥१४॥

शकरा के लक्षण—अशमरी को पीडित करने से (छिद्र को ढानने से) अवस्था मेद से वही
अशमरी शकरा हो जाती है । वह वायु से भिन्न होकर टुकड़े-टुकड़े होकर शकरा के कण के समान
वायु के अनुकूल होने से मूत्र के साथ बाहर निकलती है और प्रतिलोम होने से वैव जाती है ।
वह अशमरी का कण मूत्रक्षोत्त में लगी रह जाने से उपद्रव करती है अर्थात् ये शकरा के लक्षण हैं ॥

तानेवोपद्रवानाह—

दौर्बल्यं सदनं काश्यं कुचिश्लमयाहविः । पाण्डुस्वमुष्पत्वात् च तृष्णा हर्षपीडनं घमिः ॥

अशमरी के उपद्रव—दुर्बलता, अङ्ग की गळानि, कृशता, कुषिश्ल, अरचि, पाण्डु, स्त्रणवात, रुपा, दृश्य में पीड़ा, वसन ये सब अशमरी के उपद्रव हैं ॥ १५ ॥

तस्या असाध्यत्वमाह—

प्रशूजनाभिवृद्धणं वद्यमूत्रं कृजादितम् । अशमरी असाध्याशु सिकता शक्तान्विताः ॥ १६ ॥

अशमरी के असाध्य लक्षण—जिस अशमरी के रोगी का नामिस्थान और अण्डकोश शोथ युक्त और मूत्र का अवरोध हो जाए, पीड़ा से पीड़ित हो और सिकता (शक्ता) से युक्त हो उसको अशमरी शीघ्र मार दाकती है अर्थात् अशमरी के ये असाध्य लक्षण हैं ॥ १६ ॥

अस्यु द्वच्छास्वपि तथा निविक्तामु वटेऽथ वा । कालान्तरेण पङ्कः स्यादशमरीहृ भवेत्तथा ॥

स्वच्छ जल अथवा पानी से भरे घड़े में इस अशमरी को ढाल देने से कुछ समय के पश्चात् वह पङ्क के स्थान हो जावेगी ॥ १७ ॥

अथ अशमरीचिकित्सा ।

आदौ शूलः कुचिदेते कटौ स्थात् पश्चाद्वोधे जायते मूत्रमुख्यम् ।

एतैलिङ्गैशमरीरोगचिह्नं शात्वा कुर्याद्वेषजायैश्चिकित्साम् ॥ १ ॥

अशमरी चिकित्सा—रोग के प्रारम्भिक अवस्था में यदि कुचि देश तथा कटि भाग में शूल हो पश्चात् शूल अवरुद्ध (शमन) हो जाय और मूत्र उष्ण होवे तो ये लक्षण अशमरी रोग के हैं ऐसा जान कर दैव चिकित्सा करे ॥ १ ॥

वाताशमरी—वाताशमरीपूर्वरूपे रनेहपानं प्रशास्यते ॥ १ ॥

वाताशमरी चिकित्सा—वाताशमरी के पूर्वरूप में ही (जब पूर्वरूप शात हो तभी) रनेहपान कराना चाहिये ॥ १ ॥

शुण्ठादिकायः—

शुण्ठ्यविनम्न्यपाषाणमिच्छुग्रुवक्षणसुरेः । अभयादग्वायष्टुलैः क्षायं कृत्वा विच्छुणः ॥ १ ॥

दामठकारलवणचूर्णं दशवा पिवेन्ननः ।

वाताशमरी हन्ति कुच्छु मान्धमनेश्च तद्वुजः । कट्यूहुदमेदृश्यं वङ्गुणरथं च मारुतम् ॥ २ ॥

शुण्ठादि काय—सौठ, गनियार, पाषाणमेद, सहितन की छाल, दण्ड की छाल, गोखरु, दर्दी और अमलतास के फल का गूदा इनको समान भाग लेकर काय बना उसमें शुद्ध हींग, शवाखार और सेन्धा नमक के नूरों का प्रक्षेप देकर पान करने से वाताशमरी, मूत्रकृच्छ्र, मन्दिरिन से हांने वाली अन्य प्रकार की पीड़ायें कटि, कड़, युदा, शिशन तथा वङ्गुण में स्थित वात इन सर्वों को नष्ट करता है ॥ २-२ ॥

वरुणकाय—वरुणस्य तेवचं श्रेष्ठो शुण्ठीयो चुरसंयुताम् ।

क्षायथित्वा श्रुतं तस्य यवचारशुगुडान्वितम् । पीत्वा वाताशमरी हन्ति चिरकालानुषन्धनीम् ॥

वरुणादि काय—वरुण की उत्तम छाल, सौठ और गोखरु सम भाग लेकर काय कर उसमें शवाखार और पुराने युद्ध का प्रक्षेप देकर पान करने से पुरानी वाताशमरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

वीरतर्वादिः—

वीरतर्वादिः क्षायः पूर्वोक्तो वाताशमरीम् । सद्यो हन्ति यवचारशुगुडयुक्तो न संशयः ॥

वीरतर्वादि काय—पूर्व कथित वीरतर्वादि गण (गांडर दूष, बन्दा (बाही), राढ़ा की जड़ दोनों सहचर (कहीं २ तीनों सहचर का पाठ है), कुश की जड़, डाम की जड़, नरकट की जड़, पटेट की जड़, अगस्त की छाल, गनियार, मूर्चा, पाषाणमेद, अरलू, गोखरु, चिचिद्धा,

कलम और बाही) की ओषधियों को समान लेकर क्वाय कर उसमें शवाखार और पुराना युद्ध का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र तथा निश्चित ही वाताशमरी को नष्ट करता है ॥ १ ॥

च्छान्त्यवामूः पेयाश्च कथायाणि पर्यासि च । ओजनार्थं प्रयोज्यानि वाताशमरिजुर्णाम् ॥

वाताशमरी में पथ्य—सब प्रकार के आंश (यवाखारादि), वांगू, पेया, क्षाय तथा शीरपाक ये सब ओजन के लिये वाताशमरी रोगी को देना चाहिये ॥ २ ॥

पित्ताशमरी—

पीत्वा पाषाणभिक्षाद्यं सक्षिलाजतुशर्करम् । पित्ताशमरी निहन्त्याशु वृचमिन्द्राशनियंथा ॥

पित्ताशमरी चिकित्सा—पाषाण भेद के काथ में शुद्ध शिलाजीत शर्करा प्रक्षेप देकर पान करने से पित्ताशमरी को शीघ्र इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार विषली वृक्ष को नष्ट करती है ॥ ३ ॥

कफाशमरी—

काथो निपीतः सच्चारः विग्रहश्वस्णवचोः । कफजामशमरी हन्ति शक्ताशनिरिक्व द्रमम् ॥

कफाशमरी चिकित्सा—सैद्धिन और वरुण की छाल को समान लेकर क्वाय कर उसमें शवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से कफाशमरी को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार विजकी वृक्ष को नष्ट करती है ॥ ४ ॥

शुक्राशमरी—

शुक्राशमर्या तु सामान्यो विधिरशमरिनाशनः ॥ १ ॥

शुक्राशमरी चिकित्सा—शुक्राशमरी सेंग में अशमरी को नष्ट करना ही सामान्य विधि है अर्थात् अशमरी नाशक किया करनी चाहिये ॥ १ ॥

कूम्बाण्डरसः—

यवचारशुगुडोन्मिश्रं पिवेत्पुल्यफलोद्धवम् । इसं मूत्रविवर्धन्धनं शुक्राशमरिविनाशनम् ॥ ५ ॥

कूम्बाण्ड रस—श्वेत कूम्बाण्ड (पेठा) के रस में यवाखार और पुराना युद्ध मिलाकर पान करने से मूत्र विवर्ध रोग और शुक्राशमरी नष्ट होती है ॥ ५ ॥

शतावर्यादिः—

शतावरीमूलरसो गधेन पयसा समः । पीतो निपातयत्याशु शमरी चिरजामपि ॥ १ ॥

शतावर्यादि रस—शतावरि के मूल का रस समान भाग गाय के दूध में मिलाकर पान करने से पुरानी शुक्राशमरी भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

कुटजादियोगः—

पितृतः कुटजं दद्धना पथ्यमन्तं च खादतः । निपत्तयचिरादस्य निश्चितं भेदशर्करा ॥ १ ॥

कुटजादि योग—कोरया की छाल का चूर्ण दही के अनुपान से सेवन करने से तथा पथ्य अज्ञ (अशमरी रोग में जो पथ्य अज्ञ कहे गये हैं वे अज्ञ) मोजन करने से शीघ्र शिशन की शर्करा निश्चित ही नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

कुटजकशकः—

अपि च कुटजमूलं धेनुदध्यध्वृपिष्ठं पितृमितमवलीढं पातयत्यशमरीकाम् ॥ १ ॥

कुटज कशक—कोरया की जड़ को गाय के दही के साथ पीस कर कल्प बना कर एक अक्ष (एक कर्ष) प्रमाण की मात्रा बाटने से अशमरी गिर जाती है ॥ १ ॥

प्रण्डादिकशकः—

गन्धर्वहस्तवृहतीभ्याग्रीयोज्जुरकेद्धरात् । मूलकशकं पिवेद्धना मधुरेणाशमरेदनः ॥ १ ॥

परण्डादि कल्प—परण्ड, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरु, तालमखाना लेकर कल्प बना कर मधु या दही के अनुपान से सेवन करने से अश्मरी रोग नष्ट होती है ॥ १ ॥

पाषाणभिद्वद्विषयोगोऽसुरक्षवृक्षाद्यक्षुरकमूलकृतः कथायः ।

दृढ़ना युतो जयति मूष्मनिवन्धन्यशुक्रमुग्राशमरीमणि च शक्तरथा समेताम् ॥ १ ॥

पाषाणभेदादि काथ—पाषाणभेद, वस्त्रा, गोखरु, परण्ड, छोटी कटेरी और तालमखाना इनके मूल भाग को समान लेकर काथ कर उसमें दही का प्रक्षेप देकर पान करने से सूख विद्यन्व, अथ शुक्राश्मरी और शक्तरा रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

एकादि—एलोपकुल्यामधुकाशमभेदकौन्तीश्वद्वद्वादृष्टकोरुवृक्षैः ।

श्रुतं पिवेदरमज्ञु प्रगाढं सशक्तरे सारमरिमूलकृच्छ्रे ॥ १ ॥

एकादि काथ—छोटी इकायची, पीपरि, मुलहठी, पाषाणभेद, रेणुका, गोखरु, अरुसा, परण्डमूल समभाग लेकर काथ बनाकर उसमें शुद्ध शिलाजीत तथा शक्तरा का प्रक्षेप देकर अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र में पान करने को देना चाहिये ॥ १ ॥

शिग्रमूलादि—क्षात्रश्च शिग्रमूलोऽथः कहुणोऽशमरिपातनः ।

चौराज्ञासुरबहिर्शिलामूलं वा तपहुलाऽनुवा ॥ १ ॥

शिग्रमूलादि काथ—सहिजन के जड़ का काथ बनाकर कुछ रुच रहते २ पान करने से अश्मरी गिर जाती है अथवा मधुरशिखा के मूल की चावल के घोवन के साथ पीसकर पान करने तथा केवल दूष और अन्न भोजन करने से अश्मरी नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

शिलाजवादिः—

अश्मर्यां चाशमरीकृच्छ्रे शिलाजातु समाचिकम् । यवचारं गोक्षुरं च खादेद्वा चाशमरीहरम् ॥ १ ॥

शिलाजवादि योग—शुद्ध शिलाजीत को मधु के अनुपान से सेवन करने से अश्मरी में तथा अश्मरी सहित मूत्रकृच्छ्र में लाग होता है अथवा यवचार और गोखरु इनके चूर्ण को अक्षण करने से अश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

अपुसीबीजादि—अपुसीबीजं पथसा पीस्वा वा नारिकेरजं कुसुमम् ।

दद्मूत्रशक्तरावान् भवति सुखी कतिपयैविवसैः ॥ १ ॥

अपुसी बीजादि योग—ककड़ी के बीजों को अथवा नारियल के फूलों को दूष में पीसकर पान करने से कुछ ही दिनों में सूखावात और शक्तरा का रोगी सुखी हो जाता है ॥ १ ॥

राजमार्तण्डाद् गोपालककंटकादि—

गोपालककंटीमूलं पिण्ठं पर्युषिताऽभस्ता । पीयमानं विश्रान्ते पातयस्थशमरी हठात् ॥ १ ॥

गोपालककंटवादि योग—गोपाल ककंटी (गोपाल ककड़ी) की जड़ की पर्युषित जल (वासी पानी) के साथ पीस कर पान करने से तीन रात में ही अश्मरी को बलपूर्वक नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दावन शृङ्गवेरादियोगः—

शृङ्गवेरेयत्र चारपथवाकालीयकान्तितम् । आजद्विभिन्नरयुग्राशमरीमाशु पातयेत् ॥ १ ॥

शृङ्गवेरादि योग—सौंठ, यवचार, हरा और फाली अगर समभाग लेकर चूर्णकर बकरी के दहों के अनुपान से सेवन करने से बड़ी हुई कठिन अश्मरी को भी शीघ्र भेदन कर गिरा देता है ॥

अकंपुष्टीकरकः—गव्येन पिष्टा पथसाऽकंपुष्टी निपीयमानाऽनुदिनं प्रभाते ।

विद्वार्थं वीर्येणानिजेन तीव्रामध्यशमरीं या कुरुते सत्त्वाहाम् ॥ १ ॥

अकंपुष्टी कल्प—अकंपुष्टी (इवेत पुष्प का हुरहुर) को गाय के दूष के साथ पीसकर प्रतिदिन प्रातः काल पान करने से यह योग अपने प्रशाव से तीव्र-दाहयुक्त अश्मरी को भी तोड़कर निकाल देता है ॥ १ ॥

त्रिकण्ठकादिचूर्णम्—

त्रिकण्ठकस्य वीजानां चूर्णं माद्विकसंयुतम् । अविच्छिरेण सप्ताहं पिवेदश्मरिभेदनम् ॥ १ ॥

त्रिकण्ठकादि चूर्ण—गोखरु के बीजों का चूर्ण मधु के अनुपान से चाटकर पश्चात भेड़ी का दूष पान करने से एक सप्ताह में अश्मरी का भेदन कर गिरा देता है ॥ १ ॥

इरिदादियोगः—

यः पिवेद्रजनीं सम्यक्सगुदां तुष्वारिणा । तस्याऽशु चिररुदाऽपि यास्यस्तं मेढ़शकरा ॥ १ ॥

इरिदादि योग—जो मनुष्य हस्ती के चूर्ण और पुराने गुड़ को मलीमौति मिलाकर काँची के साथ पान करता है उसको अत्यन्त पुरानी मैड़ शक्तरा भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

तिलादिक्षारायोगः—

तिलापामार्पकदलीपलाशयवसम्भवः । चारः पेयोऽविमूत्रेण शक्तराश्वशमरीहु च ॥ १ ॥

तिलादिक्षार योग—तिल, चिचिडा, कदली (केला), पलाश और यव इनके क्षार को भेड़ी मूत्र के साथ पान करने से शक्तरा तथा अश्मरी में लाग होता है । (ग्रन्थान्तर में भेड़ी के दूष के साथ पान करने का विवाद है) ॥ १ ॥

तिलक्षारः—चारो निपीतस्तिलनालजातः समाचिकः तीरयुतचिरात्रम् ।

हन्त्यशमरीं सिन्धुविभित्तिं वांनिपीयमानं रुचकं प्रयत्नात् ॥ १ ॥

तिलक्षार योग—तिलनाल के क्षार को मधु और दूष के साथ तीन रात (तीन दिन) पान करने से अश्मरी नष्ट होती है अथवा सेवानमक मिलाकर रुचक नमक को यत्नपूर्वक पान करने से भी अश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

वरणादिघृतम्—

वरणस्य तुलां चुण्णां जलद्रोणे विपाच्येत् । पादशेषं परिस्त्राय घृतप्रस्तं विपाच्येत् ॥ १ ॥

चारणी कदली विलवं तुणं पञ्चमूलकम् । अमृतां वशमज्जं देयं बीजं च अपुसस्य च ॥ २ ॥

शतपर्वा तिलक्षारः पलाशक्तार एव च । युधिकायाश्च मूलानि काषिकाणि समावयेत् ॥ ३ ॥

अस्य मात्रां पिवेजन्तुदेशकालायपेत्या ।

बीजें चानुपिवेत्पूर्वमज्जीर्णं न तु मस्तुना । अश्मरीं शक्तरीं चैव मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥ ४ ॥

वरणादि घृत—वरणा की छाल सौ पल लेकर काटकूट कर एक द्रोण (४ आड़क) जल में पाक करे, चतुर्थी शावशेष काथ कर उतार-छानकर उसमें मूर्छित गोधृत पक प्रत्यं तथा माइरि की जड़, कैले की बड़ी, बेल की छाल, तुणपंचमूल की पांचों ओषधियां, गुहूची, शुद्ध शिलाजीत, ककड़ी की बीज, बांस की जड़, तिल का क्षार और पलास का क्षार, जूही की जड़, एक एक कप लेकर कल्प कर मिलाकर सिद्ध करे । उस घृत को देश, काल, वय, वल आदि का विचार कर मात्रा से यदि भोजन पक चुका हो तो दही के पानी से पिलावे और अजीर्ण ही तो दही का पानी नहीं पिलावे । इसके सेवन से अश्मरी, शक्तरा और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

पाषाणभेदपाकः—

अश्मभेदाप्रस्थमेकं चूर्णितं वस्त्रागालितम् । गद्ये दुरधाढके त्रिप्त्वा पाचयेन्मृदुवह्निना ॥ १ ॥

दूर्घार्था सम्बद्येत्तावद्यावद्वन्तरं भवेत् । एलालव्वमग्ना यष्टीमध्यमृदुताऽभया ॥ २ ॥

कौन्ती श्वदंद्वा वृषकं शरपुङ्ग्वा पुनर्नवा । यावश्वको विलङ्घी च मांसी सप्ताङ्गुलारपलम् ॥ ३ ॥

वङ्गं लोहं तथाऽन्नं च कर्दूरं पर्पटं सटी । पत्रेभकेसरं त्वकच संशुद्धं च शिलाज्ञतु ॥ ४ ॥
पृथगर्धपलं चूर्णं चूर्णिता सितशर्करा । सार्थप्रस्थमिता आशा दुधे वै लेहातां नयेत् ॥ ५ ॥
सर्वं तज्जिह्विषेत्त्र स्वाङ्गशीतलतां नयेत् । मधुनः प्रस्थकं दद्यात्तिनग्धभाष्टे विनिविषेत् ॥ ६ ॥
कषार्धं भद्रयेत्प्रातस्तीचणं तैलादिकं रथजेत् । पञ्चाशमीभेदनः स्यान्मूत्रकृच्छ्रं खुडं तथा ॥ ७ ॥
मूत्रादातन्प्रमेहाद्य नाशयेन्मधुमेहताम् । अधोगं रक्षितं च बस्तिकृषिगदं तथा ॥ ८ ॥
तीव्राशमरीप्रतीतानां विशेषेण हितं हि तत् । प्रागनिष्ठाविरचितं त्वचनाय निवेदितम् ॥ ९ ॥

पाषाणभेदपाक—पाषाणभेद को कूट-चूर्ण कर कपड़े में छानकर एक प्रस्थ लेवे और एक आड़क (४ प्रस्थ) आथ के दूध में मिलाकर मर्दन अविन पर पाक करे और तब तक चलाता रहे जब तक की वह गाढ़ा न हो जावे । गाढ़ा होने पर (खोला हो जाने पर) उसमें छोटी इलायची के बीच, लौंग, पीपरि, जेठीमधु, गुद्धची, ईर्ष, रेणुका, गोसूख, असुसा, सरफोका, गदह पुरना, जवाखार, विलम्भी (संमवतः इन्द्रायण अर्थ करना उचित है), जटामांसी, छितवन की छाल, इन अोषधियों के चूर्ण को एक २ पल लेवे और वंगभस्म, लोधरस्म, अम्रकमस्म, शुद्रकपूरं, पित्तपापहा, कचूर, तेजपात, नागकेसर, दालचीनी और शुद्र शिलाजीत के चूर्ण को प्रथक् २ आथा २ पल लेकर तथा श्वेत शुर्करा आधाप्रस्थ लेकर उपर्युक्त दुग्धपाक (अवलेह पाक) में मिला कर मर्दन कर उतार लेवे और स्वांग शीतल होने पर उसमें एक प्रस्थ मधु मिलाकर इस तिद्ध अवलेह पाक को स्तिनग्ध पात्र में रख लेवे । इसको आधा कषं के प्रमाण की मात्रा से सेवन करे और तीक्ष्ण पदार्थ तथा तेल आदि का सेवन त्याग देवे तो पांचों प्रकार की अश्मरी नष्ट होती है । यह मूत्रकृच्छ्र, वातरक्ष, मूत्रादात, प्रमेह, मधुमेह, अधोगामी रक्तपित्त, बस्ति तथा कुक्षि के रोग को नष्ट करता है तथा तीव्र अश्मरी में युक्त रोगियों के लिये विशेष हितकर है । इस योग को प्रथम अविकृष्टि ने रचकर च्यवन को निवेदित किया था (मुनाया था) ॥ १-९ ॥

अथ रसाः—

तत्राऽऽर्दो पाषाणवज्रकरसः—

शुद्धसूतं त्रिवा गन्धं द्रावैः श्वेतपुनर्नवैः । मर्दयित्वा दिनं खल्वे शुद्धवा तद्भूधरे पचेत् ॥ १ ॥
पाषाणभेदचूर्णं तु समयुक्तं द्विमाधकम् । भद्रयेदरमर्दी हन्ति इसः पाषाणवज्रकः ॥ २ ॥

गोपालकर्कटीमूलकाथं तदनु पाथयेत् ॥ ३ ॥

पाषाणवज्रकरस—शुद्ध पारद एक माग, शुद्ध गन्धक तीन माग लेकर दोनों की कज्जली कर श्वेत पुनर्नवा के रस के साथ दिन मर मर्दन कर 'भूधर यन्त्र' में रख कर पकावे । शीतल होने पर इसके सम भाग पाषाणभेद का चूर्ण मिलाकर दो मात्रा के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से यह 'पाषाणवज्रकरस' अश्मरी रोग को नष्ट करता है । इसके साथ अनुपान में गोपाल ककड़ी के मूल का काघ देना चाहिये ॥ १-३ ॥

विविकमरसः—

ताप्रभस्म त्वजाहीरे पाच्यं तुर्खे घृते पचेत् । तत्त्वान्नं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समयः ॥ १ ॥
निर्गुण्डयथद्वैर्मर्द्यं दिनं तद्वगोलमाहरेत् । यामेकं वालुकायन्त्रे पाच्यं योउयं द्विगुञ्जकम् ॥ २ ॥
बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपायथेत् । रसश्विकमो नामना सिकतां चाशमर्दी जयेत् ॥ ३ ॥

विविकमरस—ताप्रभस्म एक माग लेकर बकरी के दूध और उसके समान शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक प्रथक् २ लेकर कज्जली बनाकर ताप्र में मिलाकर निर्गुण्डो के स्वरस के साथ दिन मर मर्दन कर गोलक (गोला) बनावे । पुनः उस गोलक को 'वालुका यन्त्र'

में रख कर एक पहर तक पाक करे । स्वांगशीत होने पर निकाल कर दो रसी के प्रमाण की मात्रा से सेवन करे । बिजौरे नीबू के मूल के जल के साथ पीसकर अनुपान देवे तो इस 'विविकम' नामक रस से सिकता और अश्मरी रोग नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

अथ पथ्यम् ।

कुलिथा सुदगयोधूमा जीर्णशालियवा हिताः ।

धन्वाभिषं तण्डुलीयं जीर्णकूम्भाण्डकं फलम् । आद्रंकं यावशूकश्च पथ्यशमरिरोगिणाम् ॥ १ ॥

पथ्य—कुलधी, मूंग, गेहूं, पुराने शालियान के चावल, यव, धन्वदेशीय जीवों का मास, चीराई के साग, पुराने श्वेत कूम्भाण्ड (पेठा) के फल, अद्रल, यवाखार ये सब अश्मरी के रोगियों के हितकर पथ्य हैं ॥ १ ॥

इति अश्मरीप्रकरणं समाप्तम्

अथातो मेहनिदानम् ।

आस्थासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्यौदकान्पूररसाः पर्याप्ति ।

नवाक्षापानं गुडवैकृतं च प्रमेहादेतुः कफकृच्छ सर्वम् ॥ १ ॥

प्रमेह निदान—अत्यन्त सुखपूर्वक अधिक बैठे रहने से, सीधे रहने (परिश्रम रहित होने से, अधिक दधि खाने से, ग्राम्य जीवों (बकरी आदि), जल जीवों (मर्त्यादि), और आनुप जीवों (जल के निकट रहने वाले चकवाकादि) के मास अधिक मश्श करने से, दूध अधिक पीने से, नये अश्व, जल और गुड़ विकार (शकरा मिठाई आदि) तथा सब प्रकार के कफकारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से प्रमेहरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—मूत्रादातः प्रमेहाश्र शुद्धदोषास्तरथैव च ।

मूत्रदोषाश्र वे वाऽपि वस्ती चेव भवन्ति हि ॥ २ ॥

मूत्रादात, प्रमेह, शुद्धदोष अथवा जो २ अन्य दोष (रोग) वस्ति में होने वाले हैं वे सभी उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् इन सब रोगों के ये ही कारण हैं ॥ २ ॥

सम्प्राप्तिमाद—मेदश्च मांसं च वारीरजं च वलेदं कफो वस्तिगतः प्रदूष्य ।

करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तान्येव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ ३ ॥

जीर्णेषु दोषेभ्वकृच्छ वस्ती धातुन्प्रमेहान्कुरतेऽनिलश्च ॥ ४ ॥

प्रमेह की सम्प्राप्ति वस्ति त्रियते कफ मेद, मांस तथा शारीरिक क्लेद (द्रव याग) को दूषित कर कफज प्रमेह को उत्पन्न करता है और उष्णता से (उष्णीयों तथा उष्ण स्पर्शादि से) बढ़ा हुआ वस्ति में त्रियते मेदा—मांसादिकों को दूषितकर पित्तज प्रमेह को उत्पन्न करता है । इसी प्रकार कुरित वायु अन्य दोषों (कफ-पित्त) के क्षीण होने पर धातुओं (वसा—मज्जादि) को वस्ति में खींच कर प्रमेहों (वातिक प्रमेहों) को उत्पन्न कर देता है ॥ ३-४ ॥

क्षेण साध्यासाध्यत्वमाद—

साध्याः कफोरथा दश पित्ताः षड् याप्ताः न साध्याः पवनाऽचतुर्काः ।

समक्षियस्वाद्विषमकिंचन्द्रवान्महात्ययस्वाच्च यथाक्षम् ते ॥ ५ ॥

साध्यासाध्यता—प्रमेह २० प्रकार का होता है, जिसमें दस प्रकार के प्रमेह होते हैं वे कफज (कफोपजन्य) समक्षिय होने से साध्य हैं क्योंकि इसके दोष (कफ) और दूष्य (मेदादि धातु) दोनों एक ही किया (कटु-तिक्तादि क्रिया कवायादि) से शमन हो जाते हैं इसलिये कफज दस सुखसाध्य हैं । पित्तज प्रमेह छ प्रकार के होते हैं वे (पित्त के कोपक)

विषम किया होने से वाप्त है क्योंकि इसके दोष (पित्त) और दूष्य (मेदादिवातु) दोनों की किया लिख है (जिस किया से पित्त शमन होता है उससे मेदादि में ड्रवि होती है) अर्थात् एक से दूसरे में समता नहीं होती है इसलिये पित्तज कटसाध्य है । वातज प्रमेह चार प्रकार के होते हैं वे (वात के कोप से होते हैं) मदात्ययकारी (विनाशकारी) होने से असाध्य हैं क्योंकि वायु मज्जादि गम्भीर धातुओं का अपर्करण करने वाला व्याप्त एवं शीघ्रशकारी होने के कारण विनाश कर देता है इसलिये चार प्रकार का वातज असाध्य है ॥ ५ ॥

तन्त्रान्तरे—

ज्वरे तु वृद्ध्यर्तु दोषत्वं प्रमेहे तु वृद्ध्यर्दृष्ट्यता । रक्तगुरुमे पुराणस्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥
ज्वर रोग में दोष और अतु दोनों समान हों, प्रमेह रोग में दोष तथा दूष्य दोनों समान हों और रक्तगुरुमे पुराणस्व (बहुत दिन का पुराना) ही तो ये सुख साध्य के लक्षण हैं ॥ ६ ॥

तन्त्रान्तरे वातचतुष्टयस्य साध्यत्वमुक्तम्—

या वातमेहान्प्रति पूर्वसुक्ता वातोल्खणानां विहिता किया स्ता ।

वायुद्विमेहेष्वतिकाषतेषु करोति मेहान्प्रति नाश्ति चिन्ता ॥ ७ ॥

बो किया वात प्रमेहों के लिये पहले कही गयी है वही किया वातोल्खण प्रमेहों के लिये करनी चाहिये । वायु मेह को अति कर्षित (क्षीण) करके प्रमेह करती है उस मेह के प्रति (वातोल्खण प्रमेह की) चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥

प्रमेहो दोषदूष्यवर्गमाह—

कफः सपित्तः पवनश्च दोषो मेदोऽध्यशुक्राद्युवसालसीकाः ।

मज्जा रसोजः पिण्डितं च दूष्यं प्रमेहिणं विशातिरेव मेहाः ॥ ८ ॥

प्रमेह दोष दूष्य वर्ग—प्रमेह रोग में कफ, पित्त और वायु ये दोष कह जाते हैं और मेद, रक्त, शुक्र, जल (शरीरज वलेद स्वेदादि) वसा, लसीका, मज्जा, रस, ओज तथा मांस ये सब दूष्य कहे जाते हैं । इन्हीं से वीस प्रकार के एवं शब्द से संख्या निश्चित किया है कि मेह २० ही होते हैं । अधिक नहीं होते ॥ ८ ॥

तन्त्रान्तरे दूष्यसंग्रह उक्तः—

वसा मांसं शरीरस्य कलेदः शुक्रं च शोणितम् । मेदो मधुज्ञालसीकौजः प्रमेहे दूष्यसंग्रहः ॥

वसा, मांस, शरीर का कलेद (स्वेदादि), शुक्र (वीर्य), रक्त, मेद, मधुज्ञा, लसीका, ओज ये सब प्रमेह रोग में दूष्य माने गये हैं ॥ ९ ॥

पूर्वरूपमाह—

दन्तादीनां मलाद्यर्त्वं प्राप्नुपं पाणिपादयोः । दाहश्चिक्षणता देहे तट् स्वाद्वाराय च जायते ॥

प्रमेह के पूर्वरूप—जब प्रमेह रोग होने को होता है तब उसके पहले दौत आदि, (दौत-नेत्र, गला, तालु, कान और बिहा) में मल का अधिक होना, हाथ पाँव में दाह, शरीर में स्तिनश्ता (चिकनाई), तृष्णा और मुखका मधुर होना और चकार (च) ग्रहण से केशों का जटिल होना, नख का अधिक बढ़ना ये सब होते हैं ॥ १० ॥

सामान्यलक्षणमाह—सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलभूत्रात् ।

प्रमेह के सामान्य लक्षण—सब प्रकार के प्रमेहों का सामान्य लक्षण यही है कि मूत्र अधिक तथा मलिन (विकृत) होता है ।

कारणमेदात्कार्यमेदमाह—दोषदूष्याविशेषेऽपि तस्योगविशेषतः ॥ ११ ॥

मूत्रपर्णादिमेदेन मेदो मेहेषु कल्पयते । सम्यग्मेदं परीक्षयाऽस्तदौ क्रिया कार्या भिषगवरैः ॥

प्रमेह के मेद—दोष और दूष्य में विशेषता नहीं होने पर भी उनके संयोग विशेष से और मूत्र के वर्णादि मेद से प्रमेहों में भेद की कल्पना की जाती है अर्थात् भेद हो जाता है इसलिये ।

दक्षमेहस्तथा चेत्तुः सान्द्रमेहः सुरामिथः । पित्तप्रमेहः शुक्रास्या सिकता शीतकः शनैः ॥

लालामेहस्तथा श्वारो नीलमेहोऽथ कालकः । हारिद्रमेहप्रसिद्धौ रक्तमेहस्तथाऽपरः ॥ १४ ॥

षोडशोऽथ वसामेहो मज्जामेहस्तथा कीर्तितः । छौद्रमेहस्तथा हस्ती मेहानां विंशतिः क्रमात् ॥

प्रमेहों के नाम—दक्षमेह (उदकमेह), इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिठमेह, सिकतमेह, शीतमेह, शनैःमेह, अक्षमेह, श्वारमेह, नीलमेह, कालमेह, हारिद्रमेह, मालिङ्गमेह और रक्तमेह, ये सोलह और वसामेह, मज्जामेह, लोकमेह तथा हस्तिमेह, ये मिलकर क्रम से २० प्रकार के प्रमेह कहे गये हैं । (इनमें पूर्व क्रम से उदकमेह दस कफम, श्वारादि हैं पित्तम और वसामेह चार वातज मेह जानना चाहिये) ॥ १३-१५ ॥

उदकमेहस्तथो दश कफाः त्रोदकमेहमाह—

अचलं वहुं सिंतं शीतं निर्गन्धमुदकोपम् । मेहस्तुदकमेहेन किञ्चिद्विलपिच्छुलम् ॥ १६ ॥

उदक मेह के लक्षण—जिस प्रमेह में स्वच्छ, मात्रा में अधिक, इवेत वर्ण का, शीतल, गन्ध रहित, जल के समान मूत्र होते उसे 'उदकमेह' जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इक्षुमेहमाह—इक्षु रसमिवात्यर्थं मधुरं चेत्तुमेहतः ।

इक्षुमेह के लक्षण—जिस मेह में किञ्चित् अधिक (मलिन), पिठिल (चिकना) और ईख के रस के समान अत्यन्त मधुर मूत्र होता है उसे 'इक्षुमेह' कहते हैं ॥

सान्द्रमेहमाह—सान्द्रीभवेत्पर्युचितं सान्द्रमेहेनमेहति ॥ १७ ॥

सान्द्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र पर्युचित होने पर (एक दिन-रात रख देने) पर उन (गाढ़ा) हो जावे उसे 'सान्द्रमेह' कहते हैं ॥ १७ ॥

सुरामेहमाह—सुरामेही सुरातुल्यमुपर्युच्छुमधो घनम् ।

सुरामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र सुरा के समान छपर स्वच्छ और नीचे घन (गाढ़ा) होता है (नीचे मूत्र जम जाता है) उसे 'सुरामेह' कहते हैं ।

पिठमेहमाह—संहष्टरोमा पिटेन पिष्टवद्वहुलं सितम् ॥ १८ ॥

पिठमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र होते समय रोमाश्च हो जावे और पिसे हुए आटे के समान मात्रा में अधिक तथा इवेत मूत्र होते उसे 'पिठमेह' कहते हैं ॥ १८ ॥

शुक्रमेहमाह—शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ।

शुक्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शुक्र (वीर्य) के समान वर्ण वाला अथवा शुक्र मिला हुआ होता है उसे 'शुक्रमेह' कहते हैं ।

सिकतामेहमाह—सूचाणन्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १९ ॥

सिकतामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र में मल के अणु (कण) सिकता (वाल) के रूप में निकलते हैं उसे 'सिकतामेह' कहते हैं ॥ १९ ॥

शीतमेहमाह—शीतमेही सुष्वाष्टो मधुरं भृशशीतलम् ।

शीतमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र अधिक मात्रा में, मधुर तथा अत्यन्त शीतल होता है उसे 'शीतमेह' कहते हैं ।

शनैमेहमाह—शनैः शनैः शनैमेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ २० ॥

शनैमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शनैः २ मन्द २ से होता है उसे 'शनैःमेह' कहते हैं ॥

लालाप्रमेहमाइ—लालातन्त्रयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १ ॥

लालामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र लाला तन्तु (लार के खांसों की तरह) अथवा पिच्छिल सूत्र की भाँति होता है उसे 'लालामेह' कहते हैं ॥ १ ॥

षटपैत्तिकानाइ तत्र क्षारमेहमाइ—

गन्धवर्णरसस्पर्शः स्त्रारेण ज्ञारतोयवद् ॥ २१ ॥

ज्ञारमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र का गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श के समान हो अर्थात् ज्ञार के सदृश मूत्र हो उसे 'ज्ञारमेह' कहते हैं ॥ २१ ॥

नीलकाळमेहावाइ—नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मध्येतिभम् ।

नीलमेह तथा कालमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र नील के वर्ण का आता है उसे 'नीलमेह' तथा जिसमें मूत्र मध्यी (काली स्थाई) के समान आता है उसे 'कालमेह' कहते हैं ।

हारिद्रमेहमाइ—हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासज्जिभं दहत् ॥ २२ ॥

हारिद्र मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र का स्वाद कटु और रंग हल्की के समान और जलन होती है उसे हारिद्र मेह कहते हैं ॥ २२ ॥

माजिष्ठमेहमाइ—विञ्चं माजिष्ठमेहेन मजिष्ठासलिलोपमम् ।

माजिष्ठमेह के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त तथा मजीठ के जल के समान मूत्र होता है उसे 'माजिष्ठमेह' कहते हैं ।

रक्तमेहमाइ—विञ्चमुखं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥ २३ ॥

रक्तमेह के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त, उच्छ, उच्छ, उच्छ रसयुक्त तथा रक्त के वर्ण का मूत्र होता है उसे 'रक्तमेह' कहते हैं ॥ २३ ॥

पंच षट्पैत्तिकाः—चतुरो वातबानाह । तत्राऽस्त्रौ वसामेहमाइ—

वसामही वसामिश्रं वसाभं मूत्रवेन्मुहुः ।

वसामेह के लक्षण—जिस मेह में वसायुक्त तथा वसा धातु की भाँति (वसा के समान) वार वार मूत्र होता है उसे 'वसामेह' कहते हैं ।

मज्जामेहमाइ—मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुमुहुः ॥ २४ ॥

मज्जामेह के लक्षण—जिस मेह में मज्जा के समान तथा मज्जा मिला हुआ बार २ मूत्र होता है उसे 'मज्जामेह' कहते हैं ॥ २४ ॥

क्षीदमेहमाइ—कायांयं मधुरं रुचं क्षीदमेहेन मेहति ।

क्षीदमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र कायांय, मधुर और रुक्ष होता है उसे 'क्षीदमेह' कहते हैं । (किसी २ के मत से क्षीद मेह मधु के सदृश होता है ।)

इस्तिमेहमाइ—

हस्ती मत्त हृवाजसं मूत्रं वेगविवर्कितम् । सलसीकं विवर्कं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ २५ ॥

हस्तिमेह के लक्षण—जिस प्रमेह में मत्त हाथों के मूत्र की भाँति निरन्तर वेग रहित लसीका सहित बंधा हुआ मूत्र होता है, उसे 'हस्तिमेह' कहते हैं ॥ २५ ॥

उपद्रवानाह

अविपाकोऽरुचिश्लुर्विनिद्राकासः सपीनसः । उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥

कफज मेह के उपद्रव—मोजन का परिपाक नहीं होना, अरुचि, वमन, निदा, कास और पीनस ये कफज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २६ ॥

पित्तमेहोपद्रवानाइ—वस्तिमेहनयोद्तोदो मुखकावदरणं उवरः ।

दाहस्तृष्णा कलमो मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ २७ ॥

पित्तज मेह के उपद्रव—वस्तिओर शिशन में तोद (सूरी चुम्बने के समान पीड़ा) होना, अण्डकोष फटने के समान प्रतीत होना, उवर होना, दाह, तृष्णा, कलान्ति, मूर्च्छा और मलभेद (पतला मल का होना) ये पित्तज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २७ ॥

वातबामाइ

वातजानामुदावर्तः कण्ठहृद्ग्रहलोलताः । शूलमुक्तिद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २८ ॥

वातज प्रमेह के उपद्रव—उदावर्त कण्ठ ग्रह होना हृदय ग्रह शूल, अनिद्रा, शोष, कास और श्वास ये वातज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २८ ॥

अयासाध्यतामाइ—

यथोक्तोपद्रवाविष्टमिस्तुतमेव च । पिटिकायीडितं गाढं प्रमेहो हनित मानवम् ॥ २९ ॥

असाध्य लक्षण—विस प्रमेह में कडे हुए उपद्रव (अविपाकादि) उपस्थित हों और स्वाव (मूत्रसाव) अधिक होता हो तथा शराविका आदि पिङ्किकाओं से रोगी पीड़ित हो प्रमेह गाढ़ (अधिक दिन से) हो वह असाध्य है ॥ २९ ॥

मूर्च्छार्ज्जुर्दिवरश्वासकासवीसंपर्गौरवैः । उपद्रवैरुपेतो य प्रमेहां दुष्प्रतिक्रियः ॥ ३० ॥

जिस प्रमेह में मूर्च्छा, छर्दि (वमन), उवर, श्वास, कास, विसर्प और गौरव ये उपद्रव उपस्थित हों वह दुष्प्रतिक्रिय अर्थात् चिकित्सा के योग्य नहीं (असाध्य) है ॥ ३० ॥

नराणां दृश्यते मेहः स्त्रीणां किं तु न दृश्यते । अच्चपानविशेषण दोषदूष्यक्षमेण च ॥ ३१ ॥

रजः प्रवर्तते यस्मान्मासि मासि विशोधयेत् । सर्वान्धान्तुश्च दोषांश्च न प्रमेहन्यतः खियः ॥

जियों को प्रमेह में मूर्च्छा, पुरुषों को प्रमेह दिखाई देता है किन्तु जियों को नहीं दिखाई देता इसमें दोष और दूष्य के क्रम से और अव्यापन की विशेषता से ऐसा होता है । क्योंकि मास—मास में जियों को रजःसाव होता रहता है जिससे सब धातु और दोषों की शुद्धि होती रहती है इसलिये जियों को प्रमेह नहीं होता है ॥ ३१-३२ ॥

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा साध्यो न रोगः स हि बीजदोषात् ।

ये चापि केचिकुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ ३२ ॥

अन्य असाध्य लक्षण—जो प्रमेही मधुमेही (मधुमेही से सामान्य मेह का बोध होता है) से उत्पन्न बालक (प्रमेह वाले की सन्तान) को होता है वह बीज दोष के कारण साध्य नहीं होता अर्थात् असाध्य है । अथवा और भी जो कुलज विकार (कुष्ठ, क्षय, अर्शादि रोग) होते हैं वे सब भी असाध्य कहे जाते हैं ॥ ३२ ॥

मधुमेहिनं प्रदशेयात्—

सर्व एव प्रमेहान्तु कालेनाप्रतिकारिणः । मधुमेहस्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ ३४ ॥

(प्रमेह की उपेक्षा से मधुमेहता)—सब प्रकार के प्रमेह (साध्य [साध्य] कफजन्मादि मेह भी) अचिकित्स्य होने पर (चिकित्सा नहीं करने पर) और अधिक समय तक रह जाने पर (पुराने हो जाने पर) मधुमेहत्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मधुमेह हो जाते हैं और मधुमेहत्व को प्राप्त होकर असाध्य हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

तन्मान्तरे—

गुरुमी च मधुमेही च राजयक्षमी च यो नरः । अचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसपरिच्छयात् ॥

गुरुमी के रोगी, मधुमेह के रोगी और राजयक्षमा के रोगी ये जब बल मांस से ध्वीण हो जाते

हे तब अविकिरित्य हो जाते हैं अर्थात् असाध्य हो जाते हैं। (किन्तु अब तक बल, मास रहे तब तक विकिरित्सा करनी चाहिये) ॥ ३५ ॥

धातुक्षयावरणम्भ्या कुपितवातेन मधुसम्भवमाह—

मधुमेहो मधुसमं जायते स किल द्विष्ठा । कुद्रे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ ३६ ॥

धातुक्षय और आवरणभेद से मधुमेह का दैविध्यलक्षण—जिस मेह में मधु के समान मूत्र होता है (वर्ण में तथा स्वाद से) उसे मधुमेह कहते हैं। वह मधुमेह दो प्रकार का होता है एक धातु के क्षय होने के कारण वायु के कुपित होने से और दूसरा पित्तादि दोष के कारण मांस के अवश्यक (आवृत्त) हो जाने से अर्थात् मधुमेह दो प्रकार का होता है एक वातिक और दूसरा उपेक्षित।

धावृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन् । त्रीयः द्वाणाखणारपूर्णे भजते कृच्छ्रासाध्यताम् ॥

धावृत वायु (कफ-पित्तादि के कारण घिरा हुआ वायु) उनके (दोषों के) लक्षणों को अकस्मात् प्रकट करता हुआ क्षण में ही क्षीण हो जाता है और क्षण में ही पूर्ण हो जाता है। यह (उपेक्षित) मधुमेही कष्टसाध्य होता है ॥ ३७ ॥

मधुमेह शब्दप्रवृत्तौ निभित्तमाह—

मधुरं तच्च मेहेषु प्रायो भविव मेहति । सर्वेऽपि मधुमेहस्या माधुर्याच्च तनोरतः ॥ ३८ ॥

मधुमेह शब्द की प्रवृत्ति में निभित्त—जिनके प्रमेह में पायः मधु के समान मीठा मूत्र होता है और शरीर मधुर हो उनके सभी प्रमेह मधुमेह कहे जावेंगे ॥ ३८ ॥

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविळमपिच्छुलम् । विशदं तिक्ककटुकं तदाऽरोयं प्रचावते ॥ ३९ ॥

प्रमेह-निवृति के लक्षण—जब प्रमेह के रोगी का मूत्र मलिन और पिच्छिल नहीं हो, रक्तचुल तिक्क और कटु तब उसे आरोग्य हुआ (प्रमेह से रहित) जानना चाहिये ॥ ३९ ॥

प्रमेहपिडिका—प्रमेहिणों प्रजायन्ते पिडिका: सर्वसनिष्ठु ।

शाराविका कक्ष्यपिका जालिनी विनताऽलजी । मसूरिका सर्वपिका पुत्रिणी च विदारिका ॥

विद्विश्वचेति पिडिका: प्रमेहोपेक्षया दश । सनिधमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ ४ ॥

प्रमेह पिडिका—प्रमेह के रोगियों को सब सनिधों में पिडिकाये उत्पन्न हो जाती हैं उनके नाम कहते हैं। शाराविका, कक्ष्यपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्वपिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्विश्व। ये दस प्रकार की पिडिकाये प्रमेहरोग की उपेक्षा करने से (वचित् चिकित्सा नहीं करने से) सनिधयों के मध्य स्थान में अथवा सनिधयों और मर्मों में तथा मासक स्थानों में उत्पन्न हो जाती हैं ॥ ४-२ ॥

शाराविकामाह—अन्तोऽश्वता च तद्रूपा निश्चन्माध्या शाराविका ।

शाराविका के लक्षण—जिस पिडिका में किनारे २ ढाठी हुई और मध्य में नीची शराव (श्वारोरे) के आकार की पिडिका हो उसे 'शाराविका' कहते हैं।

सर्वपिकामाह—गौरसर्वसंस्थाना सध्ममाणा च सर्वपी ॥ ४ ॥

सर्वपिका के लक्षण—जिस पिडिका का रूप इवेत सभी के समान तथा उसी के प्रमाण का आकार हो उसे 'सर्वपिका' कहते हैं ॥ ४ ॥

कक्ष्यपिकामाह—सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कक्ष्यपिका त्रुधैः ।

कक्ष्यपिका के लक्षण—जिस पिडिका का आकार कक्ष्युर के समान हो और दाह युक्त हो उसे 'कक्ष्यपिका' कहते हैं। अर्थात् जो कक्ष्युर के पीठ के समान घारी और नीची और बोच में ढाठी हुई शोय युक्त होती है।

जालिनीमाह—

जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता । अवगाङ्गलजोत्कलेदा पृष्ठेवाऽप्युदरेऽपि वा ॥४॥

जालिनी के लक्षण—जिस पिडिका में तीव्र दाह हो, मांस के जाल से पिरी हुई हो, अस्यन्त पीड़ा तथा क्लेद (पूर्यादि) से युक्त हो और पीठ अथवा उदर में उत्पन्न हुई हो उसे 'जालिनी' कहते हैं ॥ ४ ॥

विनतामाह—महती पिडिका बीला सा त्रुधैर्विनता रसृता ।

विनता के लक्षण—जो पिडिका आकार में बड़ी हो और नीलवर्ण की हो उसे 'विनता' कहते हैं।

महत्यर्थपवित्ता ज्ञेया पिडिका सा तु पुत्रिणी ॥ ५ ॥

पुत्रिणी के लक्षण—जिस पिडिका का आकार बड़ा हो और छांटी २ पिडिकाओं से युक्त हो अर्थात् एक पिडिका जड़ी हो और उसके साथ छांटी २ पिडिकायें भी हों उसे 'पुत्रिणी' कहते हैं ॥

मसूरिकामाह—मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ।

मसूरिका के लक्षण—जो पिडिका आकार-प्रकार में मसूर की दाल के समान हो उसे 'मसूरिका' जाननी चाहिये ।

अलजीमाह—रक्तासिता स्फोटवती विज्ञेया त्वलजी त्रुधैः ॥ ६ ॥

त्वलजी के लक्षण—जो पिडिका रक्तवर्ण की अथवा इवेत वर्ण की हो और स्फोटों से युक्त हो उसे 'अलजी' जाननी चाहिये ॥ ६ ॥

विदारिमाह—विदारिकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ।

विदारिका के लक्षण—जो पिडिका आकार में विदारी कन्द के समान इत्त (गोल) तथा कठिन हो उसे 'विदारिका' कहते हैं ।

विद्रिपिकामाह—विद्रिपेञ्जुण्युरुक्ता ज्ञेया विद्रिपिका तु सा ॥ ७ ॥

विद्रिपिका के लक्षण—जो पिडिका विद्रिपि के लक्षणों से उत्त होती है उसे 'विद्रिपिका' कहते हैं ॥

पिटिकानामारम्भकारणमाह—

ये अन्मयाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः । विना प्रमेहमप्येता जायन्ते कुष्मेक्षसः ॥ ८ ॥

पिडिकाओं के होने के कारण—जो २ प्रमेह (विस-विस (वातादि) दोष से उत्पन्न होते हैं उन २ प्रमेहों में होने वाली ये पिडिकायें भी उन दोषों से युक्त होती हैं अर्थात् कफज आदि प्रमेहों में उत्पन्न पिडिका कक आदि से युक्त होती हैं। कभी २ ये पिडिकायें विना प्रमेह के भी दूषित मेदा वालों को हो जाती हैं ॥ ८ ॥

तावच्चेता न छच्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः ।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोथिताः । सोपद्रवा दुर्बलायेः पिडिकाः परिवर्जयेत् ॥ ९ ॥

ये पिडिकायें तब तक नहीं लक्षित होती हैं जब तक स्थान को आइत नहीं कर लेती है अर्थात् जब तक नहीं होती है जब इनका जान नहीं होता है। पिडिकाओं की असाध्यता—ये पिडिकायें यदि गुदा, हृदय, सिर, कन्धा, पीठ तथा अन्य मर्मस्थानों में उत्पन्न हुई हों, और उपद्रवों (आगे उपद्रव लिखे हैं उनसे) से युक्त हों तथा दुर्बल अग्नि वाले को हुई हों तो उसे त्याग देना चाहिये ॥ ९ ॥

चरकेण पिटिकानामुपद्रवा उक्ताः—

तृट्कासमांससंकोचमोहहिकामदञ्चराः । विसर्पे मर्मसंरोधः पिटिकानामुपद्रवाः ॥ १ ॥

पिडिकाओं के उपद्रव—तृट्का, कास, मांस संकोच, मोइ, हिका, मद, ज्वर, विसर्प और मर्मस्थानों का संरोध, ये पिडिका के उपद्रव होते हैं ॥ १ ॥

प्रमेहनिष्ठिलक्षणं दुश्श्रेति पठितम्—

प्रमेहिणो यदा भूत्प्रभाविलभिल्लभ । विशदं कदु तिर्त्त च तद्याऽरोर्वच्छते ॥ १३ ॥
प्रमेह विद्विति के अष्टुणाम्नार—जब प्रमेह के रोगों का भूत्प्रभाविल (महिनता रहित) और
स्त्रियतारहित (चिकनाई रहित), स्वच्छ, कदु तथा तिर्त्त हो तो उसे आरोग्य अर्थात् प्रमेह
निवृत्त दुआ जानना चाहिये ॥ १ ॥

हारिद्रवर्णं शक्तिं च भूत्प्रभिना प्रमेहस्थ तु दूर्वल्लयैः ।

यो मेहयेत्सं च वदेत्प्रमेहं रक्तस्थ वित्तस्थ स हि प्रकोपः ॥ २ ॥

प्रमेहरक्तपित्त का भेद—यदि प्रमेह रोग का पूर्व लक्षण (पूर्वरूप) नहीं हुआ हो और उस
अथवा में भी विभीत सूत्र का वर्ण पौर्त अथवा रक्त आता हो तो उसे प्रमेह रोग नहीं कहते हैं । ऐसा
एक पित्त के कोप होता है यह जानना चाहिये अर्थात् रक्तपित्त और प्रमेह में यही भेद है कि
प्रमेह के सूत्र का वर्णादि पूर्वरूप के पश्चात् ही प्रमेह के लक्षणों का होता है और रक्तपित्त के कोप
से पीतादि वर्ण के सूत्र दिना प्रमेह के पूर्वरूप के ही प्रमेह के समान हो जाते हैं यहाँ रक्तपित्त के
प्रकोप का जानना चाहिये ॥ २ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

इष्ट षट् चापि चर्चारः कफ्पित्तसमीरजाः ।

सात्या याप्या असाध्यास्ते प्रमेहाः क्रमशो नृणाम् ॥ १ ॥

प्रमेह चिकित्सा—कफज दस प्रमेह साध्य, पित्तज छह प्रमेह याप्य और वातज चार प्रमेह
असाध्य इस क्रम से मनुष्यों को २० प्रकार के प्रमेह होते हैं ॥ १ ॥

कफप्रमेहचिकित्सा—हरीतकीकटफलमुस्तलोधाः पाठाविडङ्गार्जुनधन्वथासाः ।

उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदम्बशालार्जुनवीप्यकाशः ॥ १ ॥

दार्ढी विडङ्गं खदिरो ध्वश्च दुराङ्गार्जुनचन्दनानि ।

दार्ढीविनमन्थौ त्रिफला सपाठा पाठा च मूर्दा च तथा श्वदंद्रा ॥ २ ॥

यवान्युशीराप्यभया गुदूची जडुशीवाचित्रकसपृष्ठाः ।

पादैः कथायाः कफमेहिनां ते दशोपदिष्टा मधुसउपयुक्ताः ॥ ३ ॥

कफज प्रमेह चिकित्सा—१—हरी, कायफल, नागरमोया और कोप २—पुरुषन पाढ़ी, मामीरंग,
अर्जुन की छाल और यवासा । ३—हरदी, दारुहरदी, तगर और मामीरंग । ४—कदम्ब की
छाल, सालवृक्षकी छाल, अर्जुन की छाल और जवाहन । ५—दारुहरदी, मामीरंग, खेर और
धव की छाल । ६—देवदाश, कूट, अर्जुन वृक्ष की छाल और लालचन्दन । ७—दारुहरदी,
गनियार, अवरा, हरी, बड़ेहा और पुरुषनपाढ़ी । ८—पुरुषनपाढ़ी, मूर्वमूल और गोखरु ।
९—जवाहन, खस, हरी और गुरुचि । १०—जामुन की छाल, हरी चित्रकमूल और छित्रवन की
छाल । इनमें प्रत्येक इलोक के एक २ योग है । इस प्रकार ये दस योग दस प्रकार के कफज
मेहों के लिये क्रमपूर्वक कहे गये हैं । इन योगों के विधिवत् बने काथ को शीतल कर मधु के प्रक्षेप
के साथ यथा क्रम से बन करने से कफज दस मेह नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

जलप्रमेहेच्छुरसप्रमेहे सान्द्रप्रमेहे च सुराप्रमेहे ।

पिष्टप्रमेहेऽपि च शुक्रमेहे क्रमादमी श्युः सिकताप्रमेहे ।

शीतप्रमेहे च शनैः प्रमेहे लालाप्रमेहेऽपि सुखाय तेषाम् ॥ ४ ॥

उदक मेह, रुक्मी, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकता मेह, शीतमेह
शनैःमेह और लालामेह में क्रम पूर्वक हरीतकयामि, पाठादि, हरिद्रादि, कदम्बादि, दार्ढीदि,

प्रमेहचिकित्सा

सुराहादि (देवदार्ढीदि), दार्ढीदि, पाठादि, यवान्यादि और जम्बवादि कथाय का सेवन करने से
काम होता है ॥ ४ ॥

सुश्रुताद—तत्त्रोदकमेहिनाम्—पारिजातकथायं पाययेत् । द्वुष्मेहिनाम्—निष्वकथायम् ।
सान्द्रमेहिनाम्—सासपर्णकथायम् । सुरामेहिनाम्—शालमलीकथायम् । पिष्टमेहिनाम्—
द्विहरिदाकथायम् । शुक्रमेहिनाम्—दूर्वाशैवलप्लवकरत्वक्लेशकथायम्, कुभुभ्यन्दनकथायं
चा । सिकतामेहिनाम्—निष्वकथायम्, शीतमेहिनाम्—पाठागोद्धुरकथायम् । शनैमेहिनाम्
त्रिफलागुदूचीकथायम् । लालामेहिनाम् त्रिफलारवधुकथायं पाययेत् ॥ ५ ॥

उदकमेह वालों को पारिजात (दूर श्वकार) का विधिवत् बना काथ पिलाना चाहिये । द्वुष्मेह
वालों को निष्वकथाय (नीव का काथ), सान्द्रमेह वालों को सपर्णण (छित्रवन) का काथ,
सुरामेह वालों को शालमली (सेमर का) काथ, पिष्टमेह वालों को द्विहरिदा (इरदी और दारू-
हरदी), शुक्रमेह वालों को दूर्वा, सेवार, केवटीमोथा, करज और कसेल को समान लेकर काथ
बनाकर वह काथ अस्तु अर्जुन की छाल और लालचन्दन का काथ, सिकतामेह वालों को नीम
का काथ, शीतमेह वालों को पुरुषनपाढ़ी और गोखरु का काथ, शनैमेह वालों को त्रिफला और
गुदूची का काथ और लालामेह वालों को त्रिफला और अमलतास का काथ बनाकर सेवन
कराना चाहिये इन दस प्रकार के काथों से दसों कफज मेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पित्तमेहचिकित्सा—

उशीरलोध्रासुरचन्दनानामुशीरसुस्तामलकाभ्यानाम् ।

पटोलिनिड्वामलकामृतानां मुस्ताभयासुष्ककवृत्तकाणाम् ॥ १ ॥

लोध्राम्बुकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनानां भित्तिसोरप्लानाम् ।

माजिष्ठारिद्रकनीलचारउष्णाख्यरक्ते क्रमशः कथायाः ॥ २ ॥

पित्तमेह चिकित्सा—१—खस, लोध, देवदाश और लाल चन्दन । २—खस, नागरमोया, आँवला
और हरा । ३—परवर के दालपात, नीम की छाल, अंवला और गुरुचि । ४—नागरमोया, हरा,
मोया और इवेत कुटज की छाल । ५—लोध, हुगन्धवाला, काढा चन्दन (देवी चन्दन), और
धय के फूल और सौंठि ६—अर्जुन की छाल, सौंफ और नील कमल, इन पृष्ठक २ छालों योगों
को समान लेकर काथ कर क्रम से माजिष्ठ मेह, हारिद्रमेह, नीलमेह, क्षारमेह, उष्णमेह और
रक्तमेह इन छीं पित्तज मेहों में सेवन करने से लाभ होता है ॥ १-२ ॥

सुश्रुताद—माजिष्ठमेहिनाम्—मञ्जिष्ठाचन्दनकथायं पाययेत् । हारिद्रमेहिनाम्—राज-
वृत्तकथायम्, नीलमेहिनाम्—सालसारादिकथायमस्त्रशक्तकथायं च । चारमेहिनाम्—
त्रिफलाकथायम्, कालमेहिनाम्—न्ययोधादिकथायम् । शोणितमेहिनां गुदूचीतिन्दुकास्थि-
काशमर्यस्त्वरूपकथायं, मधुमिश्रं पाययेत् ।

पित्तमेह चिकित्सा—माजिष्ठमेहिनाम्—मञ्जिष्ठप्रमेह वालों को मञ्जिष्ठ और चन्दन को समान लेकर काथ
बनाकर पिलाना चाहिये । एवं हारिद्रमेह वालों को अमलतास का काथ, नीलमेह वालों को
सालसारादिगण का अथवा अस्त्रय वृक्ष की छाल का काथ, क्षारमेह वालों को त्रिफला का कथाय,
कालमेह वालों को न्ययोधादि गण का काथ और रक्तमेह वालों को गुरुचि, तिन्दुक के फल की
गुठली, गम्भार की छाल और खजूर समभाग लेकर काथ बना शीतल कर मधु के प्रक्षेप के
साथ सेवन करना चाहिये ।

वातमेहचिकित्सा—

अग्निमन्थकथायं तु वृत्तमेहे प्रयोजयेत् । पाठाशिरीषुःस्पर्शमूर्वांकिशुकतिन्दुकैः ॥ ३ ॥

कपिपर्येन भिषजकुप्रयवायं हस्तिप्रमेहके । पूर्णारिमेदयोः काथः सत्त्वमहिनाम् ॥ ३ ॥

वातज मेह चिकित्सा—वसामेह में गनियार की छाल का काथ, हस्तमेह में पुरश्नपादी, की छाल, यवासा, मूर्वामूल, पलासपुष्प, तिन्दुक फल तथा कैथ फल के समझाग का काथ और शीदमेह में पूरीफल और विटखंदिर को समझाग लेकर काथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिए ॥ १-२ ॥

द्वितीयांशुकथायेण पाठाकुटज्ञामठम् । तिका कुष्ठं च सङ्कृत्यं सर्पिमेह पिवेन्नः ॥ ३ ॥

गुरुचि और चिक्रमूल के काथ में पुरश्नपादी, कुटज्ञत्वक्, शुद्ध हींग, कुटकी, कूट सम आग लेकर चूर्णकर इनका प्रक्षेप देकर पान करने से सर्पिमेह (मज्जमेह) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुशुत्ता—जत उत्तर्वमलाद्येऽत्त्वपि योगान्यापनार्थवच्यामः । तथा—वसामेहिनाम्—अग्निं
मन्थकथायं शिक्षापाकथायं च । सर्पिमेहिनाम्—कुष्ठकुटज्ञपाठाहिङ्गुकुटरेहिणीकलं गुहूचीं
चिक्रकथायेण पाचयेत् । चौद्रमेहिनाम्—खदिरकदरकमुककथायम् । हस्तिमेहिनाम्—
तिन्दुककपिथशिरीषपलाशपाठामूर्वादुःस्वर्णकथायं मधुशिश्रम्, हस्तयशशूकरस्त्रोद्धास्थि-
त्तारं चेतु ।

सुशुत्त के गत से इसके ऊपर असाध्य ओ बातिक मेह है उसके शमन के लिये भी उपाय
लिखे जा रहे हैं :—

वसामेह वालों के लिये गनियार अथवा शीशम की छाल का चिपिपूर्वक कवाय बनाकर देना
चाहिये । सर्पिमेह वालों के लिये कूठ, कोरया की छाल, पुरश्नपादी, शुद्ध हींग और कुटकी सम
आग लेकर चूर्णकर (कल्क कर पाठ है पर काथ का प्रक्षेप चूर्ण ही अच्छा होता है) उसका
प्रक्षेप गुरुचि और चिक्रमूल के काथ में मिलाकर सेवन करना चाहिये । शीदमेह वालों के
लिये खेर, खबू की छाल और पूरीफल का काथ बनाकर देना चाहिये । हस्तिमेह वालों को
तिन्दुकफल, कैथ, शिरिष की छाल, पलास की छाल, पुरश्नपादी, मूर्वामूल और यवासा सम आग
लेकर कवाय कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये और हाथी,
घोड़ा, सूभर, गधा, झॅट, इनकी अस्थियों का धार बनाकर देना चाहिये ।

अथ द्वन्द्वजप्रमेहचिकित्सा ।

करिप्पुससच्छुद्धशालजानि विभीतोहीतककौटज्ञानि ।

तुष्पाणि द्वन्द्वात्र विचूर्णितानि शौद्रेण लिह्वाकफित्तमेहे ॥ ३ ॥

इन्द्रज प्रमेह चिकित्सा—कमीला, छितवन, साल, बहेड़ा, रोहित तुण और कोरया इन
ओषधियों के पुष्टों को समझाग लेकर चूर्ण कर दी के साथ मिलाकर और मधु ढाल कर चाटने
से कफपित्त मिश्रित द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है ॥ ३ ॥

हीरीतकीकटकलमुस्तलोभ्रुकुचन्दनोशीरकृतः कथायः ।

शौद्रेण युक्तः कफवातमेह निहन्ति पीता रजसा च पीतः ॥ २ ॥

हर्रा, कायफर, नागरमोथा, लोध, पतक की लकड़ी और खस समझाग लेकर कवाय कर
उसमें हरदी के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कफवातजनित द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है ॥ २ ॥

विड्वरजनीद्वृद्वृद्विरोशीरपूजः । कथायः पीतः प्रगो हन्ति मेहं पित्तानिलोऽन्तवम् ॥ ३ ॥

भामीरंग, इरदी, दाशहरदी, खेर, खस और पूरीफल समझाग लेकर कवाय कर प्रातःकाल
सेवन करने से वातपैत्तिक द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है ॥ ३ ॥

काथः खर्जुरकाशमयंतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः । सुहिमः पीतमात्रस्तु सच्चौद्वी रक्तमेहहा ॥ ४ ॥

खर्जुर, गम्भार की छाल, तिन्दुक फल की गुठली और गुश्चि समान लेकर कवाय बनाकर
शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तमेह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ सामान्यप्रमेहचिकित्सा ।

फलथिकादि काथः—फलथिकादि वालनिशाविशालामुस्तं च निष्काश्यनिशांशकलम् ।

विवेकचायं मधुसंप्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषु चिरोथितेषु ॥ १ ॥

फलथिकादि काथ—अवरा, हर्रा, बहेड़ा, दाशहरदी, माइरि की जड़, नागरमोथा, सम आग
लेकर कवाय कर उसमें हरदी का कल्क और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के
पुराने प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विड्वरजनीयष्टीनागरोद्धुरैः कृतः । कथायो मधुना हन्ति प्रमेहाद्दुस्तरान्यपि ॥ १ ॥

विड्वरजनीयष्टीनागरोद्धुरैः कृतः । भामीरंग, हरदी, जेटीमधु, सोंठि और गोखरु समझाग लेकर कवाय कर
शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कठिन प्रमेह भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पलाशपुष्पाणि कथायः—

पलाशतस्त्रपुष्पाणां कथायः शर्करया युतः । निषेवितः प्रमेहाणि हन्ति नानाविधान्यपि ॥ १ ॥

पलाश पुष्प कवाय—पलाश के पुष्टों का कवाय बनाकर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर सेवन
करने से अनेक प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

बृन्दात्रिफलादिकथायः—

ब्रिफलादाशदार्थवदकथायः शौद्रेण सेहहा । कुटजासलनदार्थवद्वक्तव्यभवोऽथवा ॥ १ ॥

ब्रिफलादि कवाय—अवरा, हर्रा, बहेड़ा, देवदार, दाशहरदी, नागरमोथा सम आग लेकर
कवाय कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है । अथवा
जोरया की छाल, खसना, दाशहरदी, नागरमोथा, अंवरा, हर्रा सम आग लेकर कवाय कर
शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है ॥ १ ॥

बृन्दादग्नुहृद्यादिः—

गुहूच्यायः स्वरसः पेयो मधुना सर्वमेहजितः । निशाकस्त्रयुतो धात्रीरसो वा माचिकान्वितः ॥

गुहूच्यादि योग—गुहूचि के स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के
प्रमेहों का नाश होता है । हृद्य का कल्क अथवा मधु मिलाकर आंवले का स्वरस पान करने से
सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूवाच्यादिः—

भूवाच्री च विवशाणं भृत्यानां च विश्वितः । असाध्यान्साधयेन्मेहान्ससरान्नां संशयः ॥

भूवाच्रिकादि योग—भूई आंवले का स्वरस ३ गद्याण (१८ मात्रा) और संख्या में २० मरिच
का चूर्ण मिलाकर पान करने से असाध्य प्रमेहों को भी सात रात में (एक सप्ताह के
करने से) अवश्य साध्य कर देता है (नष्ट कर देता है) ॥ १ ॥

कतकबीजयोगः—कर्षप्रमाणं कतकस्थ बीजं तक्रेण पिष्ट्वा सह माचिकेण ।

प्रमेहजालं विनिहन्ति सद्यो रामो यथा रावणमाहवे तु ॥ १ ॥

कतक बीज योग—निर्मली के बीजों को एक कर्ष लेकर मट्ठे के साथ पीस कर उसमें मधु
का प्रक्षेप देकर पान करने से शीत्र प्रमेह जाल को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार रावण
को युद्ध में राम ने नष्ट किया (मारा) था ॥ १ ॥

आकुल्यादियोगः—

आकुल्यीसुकुलं धात्री हरिद्रा मधुना लिहेत् । विश्विति च प्रमेहाणां हन्ति सर्वं न संशयः ॥ १ ॥

आकुकादि योग—आकुल इनस्पति विशेष की कली अथवा गेहूं के बाल का होला (होरहा) और पित्ता, अंविका हरदी समझाग लेकर चूं कर मधु के अनुपान से सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेहों को निश्चय ही नष्ट करता है, यह सत्य है ॥ १ ॥

निशात्रिफलायोगः—

द्विनिशात्रिफलायुक्तं रात्रौ पर्युचितं जलम् । प्रभाते मधुना पीतं मेहमूलं निकृत्तं ॥ १ ॥

निशात्रिफला योग—हरदी, दारहरदी, अवरा, हर्दा, बहेडा इनकी समान लेकर जौ कुट कर रात को जल में भिगा देवे प्रातः उस पर्युचित जल को मधु के प्रक्षेप से सेवन करने से प्रमेह रोग को समूल नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलाकश्कः—

सज्जलं त्रिफलाकश्कमातपे खारयेत्यहम् । तज्जाण्डे दोलिकायन्त्रे चणकान्सुष्टिमाश्कान् ॥
अहोरात्रोषितान्खादेहृधर्मानं दिने दिने । असाध्यं साधयेन्मेहं सिद्धयोग उदाहृतः ॥ २ ॥

त्रिफला कश्क—त्रिफला (अवरा-हर्दा-बहेडा समझाग मिलित) कश्क बनाकर उसमें जल मिलाकर एक मृत पात्र में रखकर तीन दिन तक धूप में रखें फिर उस पात्र में कपड़े में बांधकर एक सुटी चना दोला यन्त्र को भाँति लटका दे (चना उस जल में डूबा रहे) एक दिन रात उसमें रहने के पश्चात निकाल कर कम से दिन २ बड़ा कर सेवन करने से असाध्य मेहों को भी साध्य कर देता है । यह सिद्ध योग कहा गया है ॥ १-२ ॥

सालमुस्तयोगः—

सालमुस्तकक्षिप्तस्त्रकश्कमहसमं पित्रेत् । भाक्षीहसेन सचौद्रं सर्वमेहहरं परम् ॥ १ ॥

सालमुस्त योग—साल और नागरमोथा तथा काँची का समझाग लेकर कश्क कर एक अक्ष प्रमाण लेकर अंविके का स्वरस और मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिचूर्णम्—

मधुना त्रिफलाचूर्णमय वाऽरम्भन्तुद्वयम् । लोहजं वाऽभयोर्थं वा लिङ्गान्मेहनिवृत्तये ॥ १ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला का चूर्ण अथवा शुद्ध शिलाजीत अथवा लोह मरम मधु मिलाकर सेवन करने से प्रमेह रोग की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

न्ययोधादिचूर्णम्—

न्ययोधोदुर्घराशवस्थस्योनाकारारवधासनम् । आञ्चं कपियं ज्ञवूश्च प्रियालं कुरुभं धवम् ॥ १ ॥

मधुकं मधुकं लोध्रं वृणुं पारिभद्रकम् । प्रोलं मेषश्वर्णीं च दन्तीं चित्रकपाटली ॥ २ ॥

करञ्जं त्रिफला शक्रभज्ञातकफलानि च । एतानि समझागानि सूचमचूर्णानि कारयेत् ॥ ३ ॥

न्ययोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् । फलत्रयरसं चानुं पिवेन्मूलं विशुद्धयति ॥ ४ ॥

न्ययोधादि चूर्ण—वट, उदुबर, पीपल, अरलू, अमलतास, असना, आम, बैथ, जामुन, प्रियाल (वृक्ष विशेष), अजुनं, धाव, मधुआ इनकी छाल, सुलाइठी, लोध, वृणु की छाल, पारिभद्र (पारिजात) की छाल, परवर की ढालपात, मेडासिंगी, दन्तीमूल, चित्रकमूल, पाड़ की छाल, कंजु, आंवला, हर्दा, बहेडा, इन्द्रजव और हुद्ध भिलावे के फल प्रत्येक समझाग लेकर चूर्ण कर लेवे । यह न्ययोधादि चूर्ण को शद्द में मिलाकर चाटना चाहिये और त्रिफला का स्वरस अनुपान में पीना चाहिये । इससे मूत्र शुद्ध होता है ॥ १-४ ॥

एतेन विश्वतिर्महा मूत्रकृत्याणि यानि च । वेगेन प्रशमं यान्ति पित्रिका न च जायते ॥ ५ ॥

न्ययोधादि चूर्ण से बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं और जितने प्रकार के मूत्रकृत्य रोग हैं वे सब वेग से (शीघ्र) शमन हो जाते हैं तथा पित्रिकायें (प्रमेह पित्रिकायें) नहीं उत्पन्न होती हैं ।

कर्कटीयोजादिचूर्णम्—

कर्कटीयोजादिचूर्णमयिक्षलास्त्रमभागिकम् । योत्तमुष्णाम्भसा चूर्णं मूत्ररोधं निवारयेत् ॥ १ ॥

कर्कटीयोजादि चूर्ण—कर्कटी के बीज, सेषा नमक, आंवला, हर्दा, बहेडा समझाग लेकर चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से पान करने से मूत्रावरोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरादियुटी—

त्रिकटुत्रिफलातुरुषं गुणगुलं च समांशकम् । गोक्षुराकाथसंयुक्तो गुटिकां कारयेद् बुधः ॥ १ ॥

त्रिकटुत्रिफलातुरुषं गुणगुलं च समांशकम् । न चाच परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेष्यस्तम् ॥

प्रभेहान्वासरोनांश्च वातशोणितमेव च । मूत्राद्वातं मूत्ररोधं प्रदर्शनं चाशयेत् ॥ २ ॥

गोक्षुरादियुटी—सौंठ, पीपरि, मरिच, आंवला, हर्दा, बहेडा समझाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके समान शुद्ध गुणगुल मिलाकर गोखरु के कवात में मर्दन कर विधिवत् वटी बना कर देश, काल और वल के अनुसार मात्रा से सेवन करने से अनुलोमक है । इसके सेवन के समय कोई विशेष परिहार नहीं है । इच्छानुकूल भोजनादि कर्म करना चाहिये । इससे प्रमेह वात रोग, बातरक, मूत्रावात, मूत्रदोष और प्रदर रोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

चन्द्रप्राग्युटी—योगरस्तावश्या—

वेष्टुब्दयोषफलत्रिकं त्रिलकणं द्विष्ठारचाव्यानल—

श्यामापित्पलिमूलसुस्तकसटीमालीकधातुरुचः ।

षड्ग्रन्थामरव्याहरणकणामूलिग्वद्वन्तीनिशा—

पत्रेलातिविषाः पित्रुप्रतिमिता लोहस्य कर्षीष्टकम् ॥ १ ॥

रवक्ष्वारी पलिका पुराहश पलान्यष्टौ शिलाजन्मवो

आनाकर्षसमा लुतेति गुटिका संयोजय सर्वं विषक् ।

तत्वैव प्रतिवासरं सह चृतस्त्रौद्रेण लिङ्गादिमा

तत्वं सर्वं च गोक्षुरं मूत्ररसं पश्चारिष्येनमात्रया ॥ २ ॥

चन्द्रप्रमा गुटी—बायकीड़, सौंठ, पीपरि, मरिच, आंवला, हर्दा, बहेडा, सेषा, सौंवंड और विष नमक, यवाखार, सब्जी खार, चब्द, चित्रकमूल, निशोध, पिपरामूल, नागरमोथा, कचूर, स्वर्णमालिक भस्म, दालकीनी, दच, देवदारु, गजपीपरि, चिरैता, दन्तीमूल, हरदी, तेजपात, इलायची के बाने, असीस, इन सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर पित्रु प्रमाण (२ तोला वा एक कपै) प्रयक् २ लेवे और लोह भस्म ८ कपै, वंश लोचन १ पल, शुद्ध गुणगुल १० पल, शुद्ध शिलाजीत ८ पल लेकर सबको स्तरक में एकत्र मदने कर कर्षी प्रमाण की बटी विविष्वक बनाकर छृत और मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करे, अपने अनुकूल मात्रा से तक, दही का पानी, गोघृत, मधु और मांस रस का अनुपान सेवन (पीना) करना चाहिये । इस योग में पारदग्नवक की कज्जली अथवा रससिंदूर अथवा अम्रक भस्म भी एक पल मिलाने का योग कई ग्रन्थों में है । (इसकी मात्रा ४ रसी छी है पर अपने २ बलानुसार सेवन करना चाहिये) ॥ १-२ ॥

बहाँसि प्रदर्शनं उवरं च विषमं नाडीत्रयानशमरी-

कृच्छ्रं विद्विषिमित्वमान्व्यसुदर्शं पापद्वासयं कासलाम् ।

यथमाणं सभगन्दरं सपिटिकां गुरुमप्रमेहारुची

रेतोदोषसुरःचतं कफमस्त्रिपत्तिमुत्रां जयेत् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से सब प्रकार के अश्रोग, प्रदर, विषम उवर, नाडीत्रय, अशमरी, मूत्रकृच्छ्र, विद्विष, मन्दादिन, उदररोग, पापद्वास, कामला, यक्षमा, अग्नदर, प्रमेहपिटिका और

भगवन्दर की पीडिका, गुलमरोग, प्रमेह, अहंचि, वीरंदोष, उरःक्षत, कफ-बातु और पित्त के भ्रति उपर रोग हनको यह नष्ट करती है ॥ ३ ॥

बृहं सञ्जनयेद्युवानमसमोजस्कं बलं वर्धये-
देतस्यां न निविद्यमश्चमसकृचाध्वागमो मैथुनम् ।

विश्वाता गुटिकेयमच्छितसरा चन्द्रप्रभा नामतः

सान्द्रानन्दकरी तनोति च रुचिं चन्द्रेण तुल्यां तनौ ॥ ४ ॥

यह वटी दृढ़पुरुषों को युवा करती है अर्थात् युवा के समान शक्तिशाली करती है तथा उन्हें औब और बल को बढ़ाती है । इसके सेवन करने के समय किसी प्रकार के अन्नादि, मार्ग एमन तथा मैथुनादि किसी कर्म का निषेध नहीं है । यह प्रसिद्ध वटी अत्यन्त आनन्द देने वाली, रुचि करने वाली तथा चन्द्रमा के समान शरीर को सुन्दर बनाने वाली है । इसका नाम चन्द्रप्रभा है । (यद्यपि इसके सेवन के समय कुछ वर्जित नहीं है तथापि यदि पथ्य के साथ सेवन किया जावे तो और कामकारक है) ॥ ४ ॥

योगरत्नावस्थाः पूर्णपाकः—

हेमार्घोधरचन्दनं त्रिकटुकं खान्नी विषालाः कटु-
लंगजालुक्षिसुगन्धजीरकयुगं शङ्काटकं वंशजम् ।
जातीकोशलवङ्घाधान्यवद्धुकाः प्रथेकमस्तोनिमताः
पूरास्थाष्टपलं विचूर्णं च पथ्यः प्रस्थवये सप्तप्तेत् ॥ ५ ॥
गोसर्पिः कुट्ठवं सितार्धकतुलाधानीवरी द्वयाली
मन्दाग्नीवै पिचेऽस्त्रिवश्यमदिने सुस्तिनग्धभाषणे चिषेत् ।
तं स्वादेत्तु पथानिन वासरमुखे मेहांश्च जीर्णउवरं
पित्तं साङ्कमसुख्युर्तिं च गुदजान्ववत्रादिनासापु च ॥ २ ॥
मन्दार्घिं च विजित्य पुष्टिमतुलां कुर्याच्च शुक्रप्रदो
योगो गर्भकरः परं गदहरः स्त्रीणामस्तुदोषितित् ॥ ६ ॥

पूर्णपाक—नागकेसर, नागरमोया, चन्दन, सौठ, पीपरि, मरिच, ऊंवरा, व्रियाल, कोरया की छाल, लड्डावन्ती, दाकचीनी, तेजपात, इलायची, लीरा, कृष्णजीरा, सिंघादा, वंशलोचन, जायफल, जावित्री, लंबंग, धनिया, बड़ी इलायची के दाने प्रथेक २ अक्ष (एक २ कर्ष) लेकर चूर्ण करे फिर उत्तम पूरीफल का चूर्ण ८ पल लेकर तीन प्रस्थ गाय के दूध के साथ पाक कर गाढ़ा, (खोवा) कर लेवे पश्चात उस खोवे को एक कुट्ठव (आधा मानी) गाय के घृत के साथ भ्रन कर उसमें देवत शकरा ५० पल, आँवले का चूर्ण और शतावरि मूल का चूर्ण दो २ अक्षली (१६, १६ पल) तथा उपर्युक्त नागकेसरादि का चूर्ण भिलाकर शुद्ध अविन पर पाक कर अच्छे दिन वैद्य स्त्रिय या पात्र में रख लेवे । इस पाक को अविनवल के अनुसार प्रातः सेवन करने से प्रमेह रोग, जीर्ण उवर, अम्लपित्त, रक्तस्राव, अर्श, मेह, आँख तथा नाक के रोग तथा मन्दाग्निको नष्ट करता है और अत्यन्त पुष्टिकारक, शुक्रकारक है, तथा यह योग उत्तम गर्भकारक है, जिसके रक्तदुष्टि रोगों को नष्ट करने वाला है ॥ १-६ ॥

अश्वगन्धापाकः—पलान्यद्यावस्थगन्धां विपात्य गोहुरवे घटशोरके मन्दवह्नी ।

द्वीपलियो यावदास्ते सुपकश्चातुर्जातं तिष्यं कर्वप्रसामानम् ॥ १ ॥
जातीजातं केशरं वंशसत्त्वं सोचं मांसी चन्दनं कृष्णसारम् ।
पत्रीकृष्णापिष्पलीमूलदेवतुष्यं कङ्गोलालिकाचोटासारम् ॥ २ ॥

भ्रह्मीकीजं शङ्करं गोस्त्रुराश्यं सिन्दूराश्यं नागवङ्मं च लोहम् ।

कर्षार्धार्धं सर्वचूर्णं प्रकल्प्य संशोषयाथो शक्तिरापक्षपाके ॥ ३ ॥

पक्षवा शीतं कारयेद्यस्थगन्धापाकोऽयं वै हन्ति मेहानशेषान् ।

उवरं जीर्ण शोषगुलमनितकारान्पैत्तान्वातावशुक्रवृद्धिं करोति ॥ ४ ॥

पुष्टि द्यावस्थिसन्दीपिनोऽयं कान्ति कुर्यात्सौमनस्यं नराणाम् ॥ ५ ॥

अश्वगन्धापाक—असगन्ध का चूर्ण आठ पल और गाय का दूध छै शराव या ३ प्रस्थ लेकर मन्द २ अविन पर पाक तब तक करें जब तक कल्ही में लगे नहीं, फिर इसमें दालचीनी, नागकेसर, इलायची और तेजपात का समान मिलित चूर्ण एक कर्ष मिलावे और जायफर, नागकेसर, वंशलोचन, मोर्चरस, जटामासी, चन्दन, खेरसार, जावित्री, पीपरि, पिपरामूल, लंबंग, कंकोल, पाढ़र की छाल, अखोरोट के फल का गूदा, शुद्ध भिलाका, सिंघादा, गोखरू, रससिन्दूर, अभ्रकमस्म, नागमस्म, वंगमस्म, लौहमस्म प्रस्थेक का चूर्ण चौथार्ष २ कर्ष, भिलाके और इवेत शकरा ५० पल का पाक कर (चाशनी बना) एकत्र कर पाक की विधि से सिद्ध पाक शीतक होने पर रित्यध पात्र में रख ले । यह अश्वगन्धापाक सम्पूर्ण प्रमेहों को नष्ट करता है, जीर्ण उवर, शोष, गुद्ध, बात तथा पित्त के विकार को नष्ट करता है, वीर्य की वृद्धि करता है, पुष्टिकारक है, अविनदीपिक है तथा शरीर की कानिं तो बढ़ाता है और रुचिकारक है ॥ १-५ ॥

सालमपाकः—जीरे द्रोणयुते ससालकुट्टवं मन्दाभिना पाचितं

यावत्पाकुसुपाज्ञेत्पर्वाहतं प्रस्थं गुडं निषिपेत् ।

चातुर्जातलवङ्गजातिफलकेसुस्तातुगाधान्यकः

शुण्ठीमापाधिकोषणाश्वमध्यालौहैश्च मिश्रीकृतम् ॥ १ ॥

हृद्रांगक्षयशोषमास्तगदान् हिक्कास्वसुक्षोषणे ।

विशाम्नेहिशिरोविकारशम्नो रोगानशेषाभ्येत् ॥ २ ॥

सालम पाक—एक द्रोण गाय के दूध में सालम भिशी का चूर्ण एक कुट्टव (आधा मानी) भिलाकर मन्द २ अविन पर पाक करे जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें पुराना गुड़ एक प्रस्थ मिलावे और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, लंबंग, जायफर, नागमोया, वंशलोचन, धनिया, सौठि, पीपरि, मरिच, असगन्ध, हर्दी इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण और लौहमस्म, प्रस्थेक एक २ कर्ष लेकर यथा विधि पाक में मिश्रित कर रित्यध पात्र में रख ले । इसके सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, शोष, बात के रोग, हिक्का, रक्त शोष, बीसों प्रकार के प्रमेह रोग तथा सिर के रोग और सम्मां व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

द्राक्षापाकः—द्राक्षादुर्घसितापृष्ठपरिमिता प्रस्थेन सम्पाचिता

युक्त्या वैद्यवरेण चूर्णमधुना देयं पलार्धं पुथक् ।

चातुर्जातलवङ्गजातिफलकेसुहाश्रकं केशरं

पत्री जातिफलं मृगाङ्करजतं कस्तुम्बरी चन्दनम् ॥ ३ ॥

सम्यग्नातसं प्रभातसमये सेव्यं द्विकर्षेनिमितं

स्त्रियर्थं शुक्रकरं प्रमेहशमनं विज्ञायस्वसंसनम् ।

मूत्राद्यातविवन्धकृच्छूशमनं रक्तार्तिनेत्रार्तिहस्त-

पादे पाणितले विदाहशमनं सौल्यप्रदं प्राणिनाम् ॥ ३ ॥

द्राक्षापाक—दाख एक प्रस्थ, गाय का दूध एक प्रस्थ और श्वेत शकरा एक प्रस्थ लेकर एकत्र कर विधिपूर्वक पाक करे, गाढ़ा हो जाने पर उसमें वैद्य युक्तिपूर्वक पाक की विधि से आगे लिखी दालचीनी, इलायची के दाने, तेजपात, नागकेसर, सौठि, पीपरि, मरिच, कस्तूरी, लौहमस्म,

अन्नकम्भस्म, केसर, जाविशी आयफर शुद्ध कपूर, रौप्यभस्म, धनिया और चन्दन इन ओषधियों के पृथक् २ आधा २ पल चूपै-भस्म को मिलाकर स्त्रियों पात्र में रख लेवे। इसको प्रातः काल दो कष्ठ के प्रमाण की मात्रा से (अथवा वय-बद्ध के अनुसार मात्रा से) सेवन करना चाहिये। यह रित्यन्ध वीर्यवर्धक प्रमेह को शमन करने वाला, पित्त के रोग को नष्ट करने वाला मूत्राधात, विषन्ध, मूत्रकुच्छ इनको शमन करने वाला, रक्त सम्बन्धी पीड़ा, नेत्र रोग इनको नष्ट करने वाला, दाय पैर के तलवों के दाह को शान्त करने वाला और प्राणियों को सुख देने वाला है ॥ १-२ ॥

अथाऽऽस्त्रवद्यूतत्वेत्तेलादि ।

लोध्रासव— लोध्रं शर्टी पुष्करमूलमेला मूर्वां विडङ्गं विफलां यवानीम् ।
चत्यं प्रियहुं क्रमुकं विशालां किराततिकं कटुरोहिणीं च ॥ १ ॥
भार्हीं नतं चित्रकपिपृष्ठलीनां मूलं सकुष्ठातिविषां सपाठाम् ।
कलिङ्गकान् केसरमिन्द्रसाहूं नखं सपत्रं मरिचं एलवं च ॥ २ ॥
द्वोणेऽभस्मः कर्षसमानिं पश्चावा पूर्वे चतुर्मार्गजलावदेषे ।
रसेऽर्थं भाजं मधुनः प्रदाय पञ्चं विधेयो वृत्तभाजनस्थः ॥ ३ ॥
लोध्रासवोदयं कफपित्तमेहान्वितं निहन्याद्वि पलप्रयोगात् ।
पाण्डवामयाशार्णस्थरुचि ग्रहण्या दोषं किलासं विविधं च कुष्ठम् ॥ ४ ॥

आसव घृत तैलादि प्रकरण—लोध्रासव—लोध, कचर, पुष्करमूल, इलायची के दाने, मूर्वामूल, भाजीरंग, अंवरा, ईरा, वडेडा, अदाइन, चाव, प्रियेणु, पूणीफल, माहौरी की बड़ी, चिरेता, कुट्की, बमनेठी, तगर, चित्रकमूल, पिपरामूल, कूट, अतीस, पुरुषनपाढ़ी, कोरया की छाल, नागकेसर, इन्द्रजी, नखी द्रव्य, तेजपात, मरिच, केवदीमोथा प्रस्त्रेक एक-एक कष्ठ लेकर जौ कुट कर एक द्रोण (४ आड़क) जल के साथ चतुर्थीशावशेष पाक करके उतार-छानकर शीतल होने पर जितना काय हो उसके आधा मधु मिलाकर एक स्त्रियं घृत पात्र में रख कर आसव की विधि से १५ दिन तक मुख बन्द कर रख दे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर एक पल के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह 'लोध्रासव' कफ और पित्त के प्रमेह को शीघ्र ही नष्ट करता है और पाण्डुरोग, अशो, अश्वचि, ग्रहणी के दोष, किलास कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के अन्यान्य कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सिहासृतघृतम्—

कण्टकार्यं गुह्यच्याश्च संहरेच शतं शतम् । सहुद्योद्युल्वले विद्वांश्चतुर्दोणेऽभसः पद्मेषु ॥ १ ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् । विकटुविफलाराजाविडङ्गान्यथं चित्रकम् ॥ १ ॥
कांसमर्याश्चापि मूलानि पूतिकस्य त्वचस्तथा । कुट्टयेदिति सर्वांगि शुचनपिट्टानि कारयेत् ॥
अस्थं मात्रां पिवेत्प्रातः शालिभिः पश्चासा हितैः । प्रमेहं मधुमेहं च मूत्रकुच्छं भगवन्दरम् ॥ ४ ॥
आलस्थं चान्नवृद्धिं च कुष्ठरोगं विशेषतः । चयं आदि निहन्त्येतज्ञाम सिहासृतं घृतम् ॥ ५ ॥

सिहादिघृत— छोटी कटेरी, गुरुचि, दोनों को सो २ पल पृथक् २ लेकर औंखल में कूट कर चार द्रोण (१५ आड़क) जल के साथ चतुर्थीशावशेष पाक कर उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोधृत एक प्रस्त्र मिलावे और सोंठि, पीपरि, मरिच, अंवरा, ईरा, वडेडा, रासना, भाजीरंग, चित्रकमूल, गम्भार की बड़ी, पूतिकरज और दालचीनी समान (एक २ भाग) लेकर कूटकर कल्ककर यह कल्क घृत से चौथाई मिलाकर घृत सिद्ध कर यथायोग्य मात्रा से प्रातःकाल पान करने तथा शालिखान और दूध का प्रस्त्र सेवन करने से प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकुच्छ, भगवन्दर,

आलस्थ, आन्त्रेश्चिदि और विशेष कर कुष्ठरोग को नष्ट करता है तथा यह सिंहादि नामक घृत कुष्ठरोग को भी नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

इरिद्रादितैलम्— निशारसं चतुःप्रस्थं द्विप्रस्थचीरसंयुतम् ।

कुष्ठाशगान्धालग्नुनिशापिपृष्ठलिकितम्— विपक्वं तिलजप्रस्थं मेहानां विशसि जयेत् ॥ १ ॥

इरिद्रादितैल— इरदी का स्वरस ४ प्रस्त्र, गाय का दूध दो प्रस्त्र और मूर्च्छित तिल का तेल एक प्रस्त्र मिला कर उसमें कूट, असम्बन्ध, घृष्णुन, इरदी, पीपरि इनको समान मिलित करके मिलाकर तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लेपनम्—

जीरमौदुब्बरं चन्नाद्वाकुचीं च प्रयोजयेत् । पिटिकासु समस्तासु लेपनं सम्प्रशान्तये ॥ १ ॥

लेपन— गूरक का दूध और बाकुची बीज इनको पीस कर लेप बनाकर लगाने से सब प्रकार की पिटिकायें शमन होती हैं ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्रादौ इरिशङ्कररसः—

सूताभ्राकामलजलैः सप्तवारं विभावयेत् । इरिशङ्करसंज्ञः स्वाद्रसः सर्वप्रमेहन्तुत ॥ १ ॥

इरिशङ्कररस— पारदभस्म अथवा रससिन्दूर तथा अन्नकम्भस्म इन दोनों को समझाग लेकर औंखले के रस के साथ सात बार मावित कर लेवे। यह 'इरिशङ्कर' नामक रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

सूतं कान्तं गन्धतीचं ताप्यं द्योषं फलत्रिकम्— गिलाजतुशिलाङ्कोलबीजं रात्रिकपित्तकम् ॥

ग्रिससफ्लाको भृजाङ्ग्रीभोवयेत्तिकमानकः— । मधुना मेघनादोदयं सर्वंमेहान्विनाशयेत् ॥ २ ॥

महानिम्बवस्य बीजानि पेषयेत्तप्तहुलाद्वन्ना । सप्तवान्यचिराद्वन्नः पानान्मेहाश्चिरोस्थितान् ॥

मेघनाद रस— शुद्धपारद, कान्तलौद्यम्भस्म, शुद्धगन्धक, तीक्ष्णलौद्यम्भस्म, त्वर्णमास्तिकमधस्म, सौंठि मरिच, औंवला, ईरा, वडेडा, इनका चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध मैनसिल, अङ्गोल के बीज का चूर्ण, इरदी का चूर्ण, कैथ के फल का चूर्ण इन सब को सम मांग (एक २ भाग) लेकर प्रस्त्र पारद-गन्धक की कजली कर, फिर अन्य सभी ओषधियों को एकत्र मर्दन कर मांगरे के स्वरस के साथ मावित कर सुखा कर पीस कर इसको एक निष्क (४ मांग) की मात्रा से मधु के अनुपान से सेवन करने से यह 'मेघनाद रस' सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है। (मात्रा रोग बलानुसार देनी चाहिये) ॥ १-२ ॥

मेहकुञ्जरकेसरी रसः—

रसगन्धायसाभ्राजि नागवङ्गी सुवर्णकम् । वज्रकं भौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ १ ॥

शतावरीरेत्तेनैव गोलकं शुक्कमातपे । बद्धध्वा शुद्धकं तसुदध्य शरावे सुषुद्धे द्विपेत् ॥ २ ॥

सन्निधलेपं मूदा कुयाद्रुतांया गोमयाविनाना । पुटेयामचतुःसंख्यसुदध्य श्वाङ्गशीतलम् ॥ ३ ॥

शुलचण्डलवे विनिश्चिप्य गोलं तं मर्दयेद् दृढम् । देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा धृत्वाऽथ कूपिके ॥

सादेद्वेष्टुप्य प्रातः शीतं आनु पिवेज्जरूपम् । अष्टादश प्रमेहाश्च जयेन्मांसोपथोगतः ॥ ५ ॥

तुष्टिं तेजो भलं वर्णं शुक्रवृद्धिं च दारुणम् । अग्नेवर्लं वित्सुते मेहकुञ्जरकेसरी ॥

दिव्य रसायनं श्रेष्ठं नाम्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

मेहकुञ्जरकेसरी रस— शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लौह भस्म, अन्नक भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म, सुवर्ण भस्म, हीरा भस्म, मोती भस्म, सम मांग लेकर प्रस्त्र पारद-गन्धक की कजली कर फिर अन्य ओषधियों को मिलाकर मर्दन कर फिर शतावरि के रस के साथ मर्दन कर गोला

बनाकर धूप में सुखा लेवे किर उसे शराव सम्पुट में रख कर सम्पुट का सुख अली भाँति वन्द पुटपाक की विधि से एक गढ़े में रखकर गोवर के आग में चार पहर तक पुट देवे (पक्के लेवे), स्वाग शोत होने पर निकाल कर खरल में रखकर उस गोले को अली भाँति पीस लेवे फर देवता और ब्राह्मण की पूजा कर के शीशी में रख लेवे । इसको दो बदल के प्रमाण की मात्रा से प्राप्त खाकर शीतल अल का अनुपान करे तो यह रस एक मास के सेवन करने से अठारह प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है और इससे तुष्टि होती है, तेज, वष, वर्ण और वीर्य की अस्थन्त वृद्धि होती है और अचिन के बल को बढ़ाता है । यह 'मेदकुञ्जरकेसरी' नामक रस दिव्य एवं श्रेष्ठ रसायन है । इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ १-६ ॥

मेदान्तको रसः—

मृताश्रकान्तलोहनि नागवङ्गौ विशेषितौ । यथोत्तरं भागवृद्धया स्वल्बमध्ये विनिष्ठिपेत् ॥
तलपोटेन वाराण्याः शतावर्या हिमाञ्चुना । भावनाऽन्न प्रकर्तव्या यामं यामं पृथक्पृथक् ॥२॥
क्षणमात्रां वटीं कृत्वा नवनीतेन सेवयेत् । प्रातश्याय विधिना सर्वमेहकुलान्तकः ॥ ३ ॥

मेदान्तक रस—यथामाग उत्तरोत्तर वृद्ध करके अन्नक मस्त १ भाग, कान्त लोह मस्त २ भाग, लोहमस्त ३ भाग, नागमस्त ४ भाग, वंग मस्त ५ भाग लेकर खरल में रख कर मर्दन कर ताकमूली के रस (मूसली के रस), वाराही कन्द के रस, शतावरि के रस और सुगन्ध वाला के रस के साथ पृथक् २ एक २ पहर तक क्रम से भावित कर चने के प्रमाण की वटी विधि पूर्वक बनाकर मर्दन के साथ प्राप्तः काल विधिवत् सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है ॥ १-६ ॥

शास्यक्षं सप्तोलं च तण्डुलीयकवास्तुकम् । मरस्याद्वा सुद्रवूर्वं च अपककदण्डीफलम् ॥३॥

रस के सेवन करते समय पथ्य में शालिषान का चावल, परवर, चौराई, बथुआ, मरस्याद्वी, मूंग का यूव, कद्दा केला आदि का सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अक्षर्णसि ग्रहणीदोषमूत्रकुच्छाशमरीप्रणुत् । कामलापाण्डुशोकांश्च अपश्मारक्ततज्ज्यान् ।

इक्कासविनाशे श्यात्पञ्चलोहरसायनम् ॥ ५ ॥

इस रस के सेवन से अर्ज, ग्रहणी के दोष, मूत्रकुच्छ और अश्मरीरोग, कामलारोग, पाण्डु, शौथ, अपश्मार, क्षत, क्षय तथा रक्तसहित कास इन सबको यह प्रब्रह्मोद रसायन (मेदान्तक रस, जिसमें ८ प्रकार के रसों का योग है) नष्ट कर देता है ॥ ५ ॥

मेदान्तरसः—

वङ्गभस्म मृतं सूतं तुरुयं चौद्रे विमद्येत् । द्विगुजो लेहयेत्तिं हवित मेदान्तिरवत्तनान् ॥६॥

मेदान्तर रस—वंगमस्म, पारदमस्म वा रससिन्दूर दोनों को समान लेकर मधु के साथ मर्दन कर दो रक्ती के प्रमाण की मात्रा से नित्य चाटने से पुराने प्रमेहों को मी नष्ट करता है ॥ ६ ॥

चन्द्रकलावटी—एडा सर्करूरसिता सप्ताश्री जातीफलं के रसरात्रमली च ।

सूतेन्द्रवङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समानं परिभावयेत् ॥ १ ॥

गुद्धचिकाशालमलिकाकषायैर्निर्कार्धमानं मधुना तत्त्वं ।

बद्रध्वा वटीं चन्द्रकलेतिसंज्ञा सर्वप्रमेहेषु नियोजयेत्ताद् ॥ २ ॥

चन्द्रकला वटी—छोटी इलायची के दाने का चूर्ण, शुद्ध करूर, इवेतशकंरा, औवले का चूर्ण, नागकेसर, सेमल की मूसली का चूर्ण, पारदमस्म वा रससिन्दूर, वंगमस्म और लौहमस्म समभाग (एक २ भाग) लेकर एक खरल में बोटकर प्रथम गुहर्च के काथ या स्वरस से पश्चात् सेमल के काथ या स्वरस में विधिपूर्वक भावित कर सुखाकर मधु मिला कर आधा निष्क (२ मासा) के प्रमाण की वटी बना सभी प्रमेहों में इसका प्रयोग करना चाहिये । इसका 'चन्द्रकलावटी' नाम है ॥

वज्रेश्वरः—

रसमेक अथो वङ्गं वङ्गसाम्यं तु गन्धकन् । मर्दयेद्विनमेकं तु कुमार्यः स्वरसे त्रुधः ॥ १ ॥
संस्थाप्य गोलकं भाष्टे शोधयेद्वुहं मुखम् । पाचयेद्वालुकायन्त्रे द्विनमेकं ढाग्निना ॥ २ ॥
स्वाङ्गशीतलमादाय सम्पूर्य द्विजदेवता । पिप्पलीमधुना युक्तं सर्वमेहेषु योजयेत् ॥ ३ ॥

वज्रेश्वर रस—शुद्ध पारद दक आग, दंगभस्म तीन भाग, और वंग के समान (३ भाग ही) शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद गन्धक की कजली कर फिर वंग मिळाकर मर्दन कर कुमारी के रस के साथ एक दिन भर (४ पहर) मर्दन कर गोला बनाकर एक कांच के पात्र में रख कर छाँड़ बन्द कर कपड़मिट्टी कर विधिपूर्वक 'वालुका यन्त्र' में एक दिन भर (४ पहर तक) इद अग्नि पर पाककर स्वांगशीतल होने पर निकाल पीसकर ब्राह्मण देवता का पूजाकर यथायोग्य मात्रा से पीपरि के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर सब प्रकार के प्रमेहों में प्रयोग करना चाहिये, इससे सब प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

जीरान्तं योजयेपथ्यमर्दललवणवर्जितम् । इसे वज्रेश्वरो नाम सर्वमेहिनिकृन्तनः ॥ ४ ॥

इसके सेवन के समय अन्त और दूष का पथ्य देवे और अम्ल तथा लवणरस का स्याय कर देवे । यह वज्रेश्वर नाम का रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करने वाला है ॥ ४ ॥

महावज्रेश्वरः—

वङ्गं कान्तं च गगनं हेमपुष्पं समं समम् । कुमारीरसतो भाव्यं सप्तवारं भिषण्वरैः ॥ १ ॥

पृष्ठ वज्रेश्वरो नाम प्रमेहान्विशार्तिं लयेत् ।

मूत्रकुच्छं सोमरेवं पाण्डुरोगं महाशमरीम् । इसायनमिलं श्रेष्ठं नागार्जुनविनिर्मितम् ॥ २ ॥

महावज्रेश्वर रस—वंगमस्म, कान्तलौहमस्म, अभ्रकमस्म, घूर के फूल समभाग लेकर कुआर के स्वरस से सात बार भावित कर रख लेवे, यह 'महावज्रेश्वर' नामकरस बीसो प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है तथा मूत्रकुच्छ, सोमरोग, पाण्डुरोग और अश्मरीरोग को नष्ट करता है । यह 'नागार्जुन ली' का बनाया हुआ श्रेष्ठ रसायन है ॥ १-२ ॥

वङ्गमस्मप्रयोगो गुणाश्च—

वङ्गं शिलाजनुयुतं तु मलं प्रमेहे धातुक्षये हुबंलनशुक्षयोः ।

अन्नेण युक्तं तु सुतप्रदं संधाज्जातीफलाकंकश्वाटलवङ्गमयुक्तम् ॥ ३ ॥

वंगमस्म—वंगमस्म को शुद्ध सिलाजीत के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग, धातुक्षय, धातु दौर्बल्य तथा नष्ट शुक्र रोग को नष्ट करने वाला होता है । वंगमस्म को अभ्रकमस्म, जायफर के चूर्ण, ताम्रमस्म, स्वर्णमस्म और लवण के चूर्ण इनके साथ सेवन करने से पुत्र को देने वाला होता है ॥ १ ॥

शालमलीवंग्रसोपेतं सज्जौद्रवरजनीरजः । वङ्गमस्म हरेमेहान्पञ्चानन् हृच द्विपान् ॥ २ ॥

वंगमस्म को सेमर वृक्ष की त्वचा के स्वरस, मधु, हरदी के चूर्ण, इनके साथ सेवन करने से प्रमेहों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे शेर इथियों को ॥ २ ॥

गुहुचीसारमधुना वङ्गमस्म प्रमेहसुत् । नागभस्म तथैवापि सर्वमेहिनानम् ॥ ३ ॥

वंगमस्म को गुहुची के सत्त और मधु इनके साथ सेवन करने से प्रमेह को नष्ट करता है । इसी प्रकार नाग भस्म भी सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

पथो गवी सलण्डकं त्रिकण्ठवङ्गवङ्गकम् । प्रमेहसञ्जकं परं त्रुधा वृद्धनिति सावरम् ॥ ४ ॥

वंगमस्म को एक वल प्रमाण लेकर गोहर के चूर्ण के साथ खाँड़ (शर्करा) मिश्रित गोदुम के अनुपान से सेवन करने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

वद्गुणः—तिष्ठकं सलवणं च भेदकं पाण्डुजन्तुशमनं सुशीतलम् ।
मेहदाहशमनं च कान्तिं वज्रमाहुरिति माहतापहम् ॥ १ ॥

वज्र के गुण—बंगभस्म, तिक्त लवण रस युक्त, भेदक पाण्डु तथा कृषि रोग का नाशक, शीतक, प्रमेह और दाह को शमन करने वाला, कान्ति को देने वाला और वातनाशक कहा गया है ॥ १ ॥

अध्रकयोगः—

निश्चन्द्रमध्रकं भस्म सवरारजनीरजः । मधुना लीढमचिराप्रमेहान्विवर्तयेत् ॥ २ ॥

अध्रक भस्म का योग—निश्चन्द्र (उत्तम) अध्रक भस्म का फ्रिफ्ला (समान मिलित) के चूर्ण और हल्दी के चूर्ण के साथ मधु के अनुपान से चाटने से सब प्रकार के प्रमेहों को शीतक नष्ट करता है । (इसकी मात्रा रोग बलानुसार देनी चाहिये ॥ २ ॥)

नागभस्मयोगः—

शुद्धस्य च सृतस्थाडे रजो वज्रमितं लिहेत् । सनिशामलकचौद्रं सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ३ ॥

नागभस्म का योग—शुद्ध नागभस्म को एक वल्ल के प्रमाण की मात्रा से हल्दी के चूर्ण, आंवले के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह शमन होते हैं ॥ ३ ॥

गन्धकयोगः—

गन्धकं गुदसंयुक्तं कर्षं भुवर्वा पथः पिवेत् । विश्वातिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः पिटिका अपि ॥

गन्धक का योग—शुद्ध अवलासार गन्धक को यथावैय मात्रा से पुराने शुद्ध के साथ सेवन कर दूध का अनुपान करने से बीसों प्रकार के प्रमेह तथा प्रमेह पिटिकायें भी नष्ट होती हैं ॥ ४ ॥

शिलाजतुर्योगः—

शिलाजतुरसं पीथा प्रातः चीरसितायुतम् । मुच्यते सर्वमेहभ्यद्यिःससदिवसैर्नरः ॥ ५ ॥

शिलाजीत का प्रयोग—शुद्ध शिलाजीत को दूध और शक्ता के साथ प्रातः पान करने से २१ दिन में सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

स्वर्णमाद्विकमर्मप्रयोगः—

माद्विकं मधुना लीढं मेहं हरति सर्वथा । गुद्धूचीस्तरसंयुक्तं पित्तमेहं ध्यपोहति ॥ ६ ॥

स्वर्ण माद्विक भस्म योग—स्वर्ण माद्विक भस्म को मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह और गुद्धूची के सत्त के साथ सेवन करने से पित्तमेह नष्ट होता है ॥ ६ ॥

वसन्तकुसुमाकरः—

पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रं त्रयो वज्राहिकान्तज्ञम् । चत्वारः सूतमञ्चं च प्रवालं मौकिकं तथा ॥ ७ ॥

भावना गध्यदुर्घेषुवासाश्रीद्विजलैर्निशा । मोचाकन्दरसैः सप्त क्रमाद्वायं पृथक्पृथक् ॥ ८ ॥

शतपत्रसैव मालयाः कुसुमैस्तथा । पश्चान्मुग्महैर्भाव्यः सुसिद्धो रसराङ् भवेत् ॥ ९ ॥

कुसुमाकरविश्वायातो वसन्तपदपृथकः । वज्राहुर्यमितः सेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः ॥ १० ॥

वलीपलितहन्मेध्यः कामदृः सुखदृः सदाऽ । मेहधनः पुष्टिदृः श्रेष्ठः परं वृथ्यो रसायनम् ॥ ११ ॥

वसन्त कुसुमाकर रस—स्वर्णभस्म और रौप्यभस्म दो-दो भाग, बंगभस्म नागभस्म और कान्तमध्यम प्रत्येक दो भाग, पारदभस्म वा रससिन्दूर, अध्रकभस्म, प्रवालभस्म और मोतीभस्म प्रत्येक ४ भाग लेकर सबको एकत्र खरक में मर्दन कर गय के दूध से, रेख के रस से और अल्सा, कमल, सुगन्धवाला, जलबेत, हरदी तथा केले के कन्द के स्वरस से पृथक् २ कम्भशः सात भावना देवे । किं गुलाब के फूल वा कमल के फूल वा मालती या चमेली के फूल तथा कस्तूरी इन यथायोग्य स्वरस से पृथक् २ भावना देकर सुखाकर पीतकर रख लेवे । इस प्रकार मठोन्मैति सिद्ध किया गुला वह रसराज होता है । वह वसन्त कुसुमाकर के नाम से प्रसिद्ध है । इसको दो

वल्क के प्रमाण की मात्रा (यथायोग्य मात्रा) से शक्ता, घृत और मधु के अनुपान से सेवन करना चाहिये । यह बड़ी पलितरोग को नष्ट करता है ऐधाशक्ति बढ़ाता है, सदा कृम उत्पन्न करता है और सुख देता है, प्रमेह को नष्ट करता है, यह पौष्टिक, अत्यन्त वृद्ध और श्रेष्ठ रसायन है ॥ १-५ ॥

आशुवृद्धिकरं पुसां प्रजाजननमुच्चमम् । ज्येष्ठासर्वोदामव्यासरक्तविषार्तिजत् ॥ ६ ॥

बायु की वृद्धि करता है, सन्तानकर योगों में उत्तम है, तथा क्षय, कास, तूबा, उन्माद, शास, रक्तदोष तथा विषदोष को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

सिताजन्दनसंयुक्तमध्लपित्तादिराजजित् । शुक्लपाण्डवमयावश्लाम्भूताताशमरी हरेत् ॥

इसको शक्ता और चन्दन (विसा गुला इवेतचन्दन) के साथ सेवन करने से अम्लपित्तादि (पित्तज) रोगों को नष्ट करता है और शुक्लवर्ण का पाण्डुरोग (जिस रोग में रक्त की न्यूनता से शरीर का वर्ण इवेत हो जाता है उसे इवेत पाण्डुरोग कहते हैं) तथा पाण्डुरोग, शूल, मूत्रावात और अशमरी इन रोगों को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

योगवाहिं विदं सेव्यं कन्तिश्रीवलवधनम् । सुसात्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमदाशातम् ॥ ८ ॥

यह रस योगावैरी है । इसके सेवन से शरीर की कान्ति, श्री तथा वक्ता वर्ण होती है और इसके सेवन के समय सात्य मिष्ट पदार्थों का भोजन करने वाला सौ जियों के साथ रमण कर सकता है ॥ ८ ॥

मदनं मदयन्मदमुज्ज्वलव्यन्प्रमदानिवहानतिविद्वल्यन् ।

सुरतैः सुखदैर्यतिविच्यवनैर्भवसारजुषामयमेव सुहृत् ॥ ९ ॥

यह रस कामरेव के मद को बढ़ाता है, अत्यन्त मद से विहळ रमणियों को शान्त कराता है (अनेक रमणियों को तुस कराता है) सुरत के समय सुख पहुँचाता है, भोग शक्ति को बढ़ाता है और संसारी (कामी) मनुष्यों के लिये मित्र के समान है ॥ ९ ॥

जलधामृतरसः—

तवच्छीरं शिला धातुर्वज्ज्वलिस्वकम् । मेहारिवीज्ज्वलसंयुक्तं विदारीजीवनीरसैः ॥ १० ॥

भावयेत्तिविच्यवारं तु सितोपलदमनिवत्सैः । जलजामृतविश्वयातो रसोदयं मेहकृच्छ्रुत् ॥ ११ ॥

जलजामृतरस—तवाशीर, शुद्धमैनसिक, वंगभस्म, नागभस्म और इवेत अपराजित के बीजों का चूर्ण इनको समान लेकर एकत्र मर्दन कर विदारीकन्द के स्वरस तथा जीवन्ती के स्वरस से पृथक् २ तीन र बार भावित कर सुखा कर चूर्ण कर इवेत शक्ता के अनुपान से सेवन करे । यह 'जलजामृत' नामक प्रसिद्ध रस प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्रुत को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

प्रमेहपिटिकानां तु प्राक्कार्यं रक्तमोषणम् । पाठनं तु विषप्रानां तासां पाने प्रशस्यते ॥ ३ ॥

काशो व्रणन्दोऽत्र वसितसूलैस्तीचणिविरेचनम् । व्रणप्रतिक्रिया सर्वा कार्याद्वापि भिषघवरैः ॥

प्रमेह पिटिका चिकित्सा—प्रमेह पिटिकाओं का प्रथम रक्त मोक्षण कराना चाहिये और ओ पिटिकाओं पक गयी हो उनका पाठन (चीरा छगाना) आदि कर्म करना चाहिये और उसमें पान करने के लिये व्रणनाशक काथ का प्रयोग, वस्ति कर्म और तीक्ष्ण मूल दन्ती आदि द्रव्यों से विरेचन कराना चाहिये और व्रण रोग में कही दुई सारी क्रिया (चिकित्सा) इस प्रमेह पिटिका में भी श्रेष्ठ वैद्य को करनी चाहिये ॥ ३-४ ॥

अथ पृथ्यापथ्यम् ।

श्यामाकोद्रवोद्वालगोप्यमूलचणकाढकी । शालिसुद्धकुलित्याश्च मेहिनां देहिनां हिताः ॥ १ ॥

पृथ्यापथ्य—सावा, कोद्रो, वन् कोद्रो, गेहूं, चना, अरहर, शालिधान का चावल, मूंग, मुळधीये ये सब पदार्थ प्रमेह के टोगियों के लिये द्वितीय हैं ॥ १ ॥

मध्योम्ना बद्धमूत्राश्च समाः संवेषु धातुरु । यवान्तस्मा शस्यन्ते मेहेषु च विशेषतः ॥ २ ॥

प्रमेह रोग में जौ विशेष कर लाभदायक है कर्त्त्वकि वह मैदनाशक, मूत्र को बांधने वाला और सब धातुओं के लिये इसकी प्रशंसा है ॥ २ ॥

तिक्तशाकं पटोलानि जाङ्गलामिषज्ञा इसाः । सैन्धवं मरिचं चैव मैहिनामाहरेत्रिष्क् ३ ॥

तिक्त रस वाले शाक, परवर, जाङ्गल जीवों का मास रस, सेंध नमक और मरिच इन सब द्रव्यों को वैष्ण प्रमेह के रोगियों को आहार के लिये देवे ॥ ३ ॥

सदासनं दिवा निद्रा नवाच्छन्निं द्वितीये च । मूत्रवेगं धूमपानं स्वेदं शोणितमोषणम् ॥ ४ ॥
सौचीरकं सुरा सुकं तैलं चारं चृतं गुब्दम् । अस्त्वेत्तुरसपिण्डाकानूपमांसिन वर्जयेत् ॥ ५ ॥

सदा आसन पर बैठे रहना, दिन में सोना, नया अन्न का भक्षण करना, दही खाना, मूत्र के बेग को रोकना, धूमपान करना, स्वेद करना, रक्तमोषण करना, सौचोर, सुरा, सुक, तैल, क्षार, धृत, युह, अम्ल रस वाले पदार्थ, ईख का रस, पिण्ड अन्न और आनूप मास इन सब पदार्थों को प्रमेह का रोगी स्थान देवे ॥ ४-५ ॥

इति प्रमेहप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ ग्रन्थान्तरे बहुमूत्रमेहतिदानम् ।

काईं स्वेदोऽङ्गगन्धः करपदरसनानेनकणोपदेहः

कासः शिथिलमङ्गेऽरुचिरपि पिटिकाः कण्ठतालवोष्टशोषः ।

दाहः शीतप्रियत्वं धवलिमतनुता आन्तता पीतमूत्रं

मूत्रस्था मृच्किकाद्याश्रिरमपि बहुमूत्राद्यरोगे प्रवृद्धे ॥ १ ॥

बहुमूत्र प्रमेह—जिसका बहुमूत्र रोग बढ़कर पुराना हो जाता है उसके शरीर से अधिक गन्ध निकलती है, दाथ, पैर, जिहा, नेत्र और कर्ण स्थान में डपदेह (लेप किये हुए के समान) होता है, कास, अङ्गों में शिथिलता, अरुचि और पिटिकायें होती हैं, कण्ठ-तालु और ओट सूखने लगते हैं, दाह और शीत से प्रेम (शीत की इच्छा) होता है, शरीर का वर्ण स्वेत हो जाता है, शरीर में अधिक यकान (हास) और मूत्र का वर्ण पीला होता है और मूत्र पर मृच्कियों वैठती हैं । ये सब लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

वारभट—स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलतमङ्गे शय्यासनस्वप्नसुखाभिलापः ।

हन्तेनेत्रजिह्वात्रव्योपदेहो धनाङ्गता केशनखातिवृद्धिः ॥ १ ॥

शीतप्रियत्वं गलतालुक्षोषो मातुर्यमासये करपाददाहः ।

भविष्यतो मेहागस्य लिङ्गं मूत्रेऽनिधावन्ति पिण्डीलिकाशः ॥ २ ॥

शरीर से अधिक स्वेद होना, अङ्ग से गन्ध का निकलना, अङ्गों का शिथिल होना, शय्या पर दैठे रहने, सोये रहने आदि सुख की इच्छा होना, हृदय, नेत्र, ओट, कान इनमें उपदेह शरीर का वर्ण (स्तम्भ) होना, केश तथा नखों का अधिक बढ़ना, शीत से प्रेम (शीत की इच्छा होना), गला तथा तालु का सूखना, मुंह का स्वाद मधुर रहना, दाथ पैरों में दाह होना और मूत्र पर चौटियों का आना ये सब प्रमेहों के होने के लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

हड्डा प्रमेहं मधुरं सपिद्धं मधुपमं स्वाद् द्विविधो विचारः ।

संतप्तणाद्वा कफसूलभवः स्यात्त्वीणेषु दोषेष्वनिलामको वा ॥ ३ ॥

प्रमेह को मधुर, चिकना तथा मधु के समान देखकर दो प्रकार का विचार करना चाहिये । सन्तप्तण से कफज मेह होता है और दोषों के (कफ-पित्तादि के) क्षीण होने से वातज प्रमेह (मधुमेह) होता है ॥ ३ ॥

सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ।

साध्वा न ते पित्तकृतास्तु यात्यः साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्म ॥ ४ ॥

साध्यासाध्य विचार—उदिलखित पूर्वरूपों सहित कफ-पित्त मिमित मेह तथा वातज मेह कम से साध्य नहीं है (असाध्य है) । पित्तज मेह यात्य है और यदि मेह अधिक दूषित नहीं हुआ हो तो साध्य भी होते हैं ॥ ४ ॥

अथ बहुमूत्रचिकित्सा ।

श्रिकलावेणुपत्राब्दपाठामधुयुतैः कृतः । कुम्भयोनिरिवाममोषिं बहुमूत्रं तु शोषयेत् ॥ १ ॥

बहुमूत्र की चिकित्सा—अँवरा, हर्दी, वेढ़ा, वांस के पत्ते, नागरमोथा, पुरुदनपादी, समभाग लेकर काथ का शीतल होने पर मधु भिलाकर सेवन करने से इस प्रकार बहुमूत्र सूखता है जिस प्रकार अगस्त्य मुनि के पीने से समुद्र सूख गया था ॥ १ ॥

तारकेश्वरसः—सूतं सूतं सूतं लोहाभ्रं समम् ।

मर्दयेन्मधुना सार्धं रसोऽयं तारकेश्वरः । माषैकं लेहयेत्त्रैन्द्रेवं बहुमूत्रापनुच्ये ॥ ३ ॥

तारकेश्वर रस—पारदमस्म वा रससिन्दूर, वंगमस्म और अन्नकमस्म, समभाग लेकर मदनं कर मधु के साथ बोटकर रख लेवे । इसमें से एक मासा के प्रमाण की मात्रा से मधु के अनुपान से चाटने से बहुमूत्र रोग को नष्ट करता है । इसका नाम 'तारकेश्वर रस' है ॥ ३ ॥

आनन्दमैरववती—

विषोषणकणाटकहिजुलैः समचूर्णकैः । आनन्दभैरवस्यास्य गुजाइतीसारमेहजुलै ॥ १ ॥

आनन्द भैरव वटी—शुद्ध मोठा विष, मरिच, पीपरि, शुद्ध टक्कण, शुद्ध हिणुल, समान लेकर चूंगी कर एकत्र मदनं कर विषपुर्वक वटी बना इस 'आनन्द भैरव' नामक रस के सेवन करने से अतोसार तथा प्रमेह रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

इति बहुमूत्रप्रमेहप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ मेदोरोगनिदानम् ।

अथायामद्विवाश्वप्लेघमलाहारसेविनः । मधुरोऽङ्गरसः प्रायः स्नेहान्मेवो विवर्तते ॥ १ ॥

मेदोरोग निदान—परिश्रम नहीं करने से, दिन में सोने से, कफकारक आहार के सेव न करने से प्रायः करके मधुर अन्न का रस स्नेह से मिलकर मेद को बढ़ाता है ॥ १ ॥

मेदसाऽङ्गवृत्तमार्गं व्याप्त्यन्वयन्त्यन्ते न धातवः । मेदस्तु चीयते तस्मादशकः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

मेदकी सम्प्राप्ति मेद के बढ़ने के कारण सब धातुओं के मांग के आवृत हो जाने से दूसरे धातुओं (रस-रक्तादि) की पुष्टि नहीं होती है केवल मेद ही बढ़ता है और मेद बढ़ने से मनुष्य सब कामों में अशक्त हो जाता है ॥ २ ॥

मेदस्विलक्षणम्—

जुद्रक्षासत्रपामोहरस्वप्नकथमसादानैः । युक्तः चुरस्वेददौरैन्द्र्यं वैरस्प्राणोऽङ्गप्रमेहजुलै ॥ १ ॥

बड़े हुए मेद के लक्षणादि—शास शून्य २ आना, तुवा, मोह, निद्रा अधिक होना, एकाएक शास का अवरोध तथा अंग शिथिल होना, क्षुपा लगना, स्वेद अधिक होना, शरीर से दुर्गंभ निकलना, शक्ति का अल्प होना और मैथुन शक्ति का कम होना ये सब लक्षण मेद के बहुत बढ़ाने पर उपस्थित हो जाते हैं ॥ १ ॥

मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेन्वर्त्य तिष्ठति । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ २ ॥

मेद वातु प्रायः करके सब जीवों के उदर और अस्थि में ही स्थित होता है इसकिये मेदस्विवौ का (प्रथम) उदर ही बढ़ता है ॥ २ ॥

मेदसाऽवृत्तमार्गाव्याकोषे वायुविशेषतः । चरन्सन्धुस्थरथमिमाहारं शोषयस्यपि ॥ ३ ॥
तस्मात्स शीघ्रं जरथ्याहारं काङ्क्षयस्यपि । विकारान्त्रान्त्रनुने घोरान्कांश्चिकलब्ध्यतिक्रमात् ॥

मेद के बढ़ने से जठरनिम की प्रदीपता—मेद के बढ़ जाने के कारण सब जीवों के अस्थि ही बाने से विशेष कर कोष में चलती हुई वायु अग्नि की तीव्र कर देती है इससे उसका आहार पचकर सूखता रहता है इसकिये आहार किया अब शीघ्र पच जाता है और फिर अन्न की इच्छा होती है । इस इच्छा के समय अब नहीं मिलने पर दूसरे २ घोर विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥

यत्तावुपद्रव करौ विशेषादग्निमाहतौ । पृतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावान्त्लो यथा ॥ ५ ॥

दुश्चिकित्सयत्ता—ये दोनों अग्नि और वायु विशेष कर उपद्रव करने वाले होते हैं और ये स्थूल (मेदस्वी) को इस प्रकार दहन करते हैं जिस पकार वन को दावाग्नि ॥ ५ ॥

मेदस्थतीव संवृद्धे सहस्रैवानिलादयः । विकारान्दहणान्कुर्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ६ ॥

मेद के अस्थन्त बढ़ जाने से अक्समात् वायु अस्थन्त कठिन विकारों (रोगों) को करके शीघ्र जीव को नष्ट कर देती है ॥ ६ ॥

स्थूलक्षणम्—

मेदोमांसातिवृद्ध्याच्चलस्फिगुदरस्तनः । अयथोपचयोरसाहो नरोऽतिश्थूल उच्यते ॥ ७ ॥

अतिश्थूल के लक्षण—मेद तथा मांस के अधिक बढ़ जाने के कारण त्रिस मेदस्वी के नित्य, उदर और स्तन हिलते रहते हैं और उसे वृद्धि (शरीर की स्थूलता वा मांस वृद्धि) यथायोग्य नहीं होती है तथा यथोचित उसाह नहीं होता है । ऐसे मनुष्य को 'अतिश्थूल' कहते हैं ॥ ७ ॥

स्थूले स्थुर्दुस्तरा रोग विसर्पीः सभगन्द्वराः । उवरातिसारमेहार्दीःश्लीपद्यापचिकामलाः ॥

अतिदस्थूलता से उत्पन्न रोग—स्थूलता के कारण मनुष्य को विसर्प, भगन्दर, उवर, अतिसार, मेद, अश्व, इकोपद, अपेक्षा और कामला आदि यज्ञुररोग हो जाते हैं ॥ ८ ॥

कृशलक्षणम्—

शुष्कस्फिगुदरशीवो धमनीजालयन्ततः । रवगस्थिशोषोऽतिकृशः स्थूलपर्वा नरः स्मृतः ॥ ९ ॥

कृश के लक्षण—विस मनुष्य के नित्य, उदर, गला, सूखे हुए हों, नस सव फैली हुई दिखाई देवे, त्वचा और अस्थियां सूखी हुई हों और पर्व स्थूल हों उसे 'अतिकृश' कहते हैं ॥ ९ ॥

अथ मेदोरोगचिकित्सा ।

सौद्रेण विकलाकाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः । जीरीभूतं तथोणारुद्धु मेदोहर्वौवसंयुतम् ॥ १ ॥

मेदोरोग की चिकित्सा—जैवरा, हर्दा, वहेडा समान लेकर काश बनाकर शीतल कर उसमें मधु का ग्रेप देकर पान करने से मेद का नाश होता है और उषण कर शीतल किये बल में मधु मिला कर पान करने से भी मेद का नाश होता है ॥ १ ॥

दृणं भक्षय मण्ड वा पिवेक्षक्षतनुभवेत् । सच्चयजीरकध्योद्योषहिङ्गुसौवर्च्छानलाः ॥ २ ॥

मधुना सक्तवः पीता मेदोषना वहिदीपनाः । चारं वा तालपत्रस्य हिङ्गुयुकं पिवेष्वरः ॥

मेदोवृद्धिविनाशय भक्षमण्डसमन्वितम् ॥ ३ ॥

आत का गरम २ मांड पीते से शरीर कृश होता है अर्थात् मेद नष्ट होता है तथा त्वच, औरा, सौठि, पीपरि, मरिच, शुद्ध हींग, सौचरनमक, चित्रकूर इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर सत्तू में मिलाकर (१६ युने सत्तू में मिलाकर) मधु के साथ पान करने से मेद

को नष्ट करता है और अग्नि को दीप करता है अथवा ताल पत्र के क्षार को शुद्ध हींग के साथ मिलाकर आत के मांड के साथ पान करने से मेद उष्णि नष्ट होती है ॥ १-३ ॥

हरीतकीलोद्धमरिष्टपत्रचूतवच्चो दाढिमवस्तुलं च ।

पृष्ठोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां ज्ञानवाः कथायश्च नराधिपानम् ॥ ४ ॥

हर्दा, क्लो, नीम की पत्ती, आम की छाल, अनार की छाल, इनका अङ्गराग (उटन) विधि पूर्वक बनाकर लगाने से इन्होंने के बर्ण की सुन्दरता बढ़ती है इसी प्रकार जामुन के काश से राजामों की सुन्दरता बढ़ती है ॥ ४ ॥

फलचिकं श्रिकटुकं संतेललवणान्वितम् । षण्मासादुपयोगेन कफमेदोनिलापहम् ॥ ५ ॥

फल विकादियोग—बैंवरा, हर्दा, वहेडा, सौठि, पीपरि, मरिच, इनकी सम भाग लेकर चूर्ण कर तेल और नमक के साथ मिलाकर छै मास तक सेवन करने से कफ-मेद और वायु को नष्ट करता है ॥ ५ ॥

गुह्यच्छीभद्रसुस्तानां प्रयोगस्त्रैफलश्वस्तथा । तक्षरिष्टप्रयोगश्च प्रयोगो माचिकस्य च ॥ ६ ॥

गुह्यच्छीद्वयोग—गुह्यच्छीद्वयोग का चूर्ण वा त्रिफला का चूर्ण तक्षरिष्ट अथवा मधु के सेवन करने से मेदोरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

ज्यूषणाथ लोहम्—

ज्यूषणं त्रिफलाच्चवद्यं वित्रकं विद्मोन्निदम् । बाकुची सैन्धव च व सौवर्च्छलमयोरजः ॥ १ ॥

माषमात्रमतश्चूर्णं लिहेदाज्यमुरुण्डतम् । अतिथौल्यमिदं चूर्णं निहन्त्यग्निविवर्धनम् ॥

ज्यूषणाथ लोह, सौठि, पीपरि, मरिच, बैंवरा, हर्दा, वहेडा, चाव, वित्रकमूल, विडनमक, उद्धिद नमक, बाकुची बीज, सैन्धवनमक, सौचरनमक और लोहमस्त्र समान भाग लेकर चूर्ण पक्षण-मर्दन कर एक मासा के प्रमाण की मात्रा से मधु और वृत के साथ मिलाकर चाटने से अस्थन्त स्थूलता को यह चूर्ण नष्ट करता है और अग्नि को बढ़ाता है ॥ २-२ ॥

मेदोरोग मेदहुकृष्टनं श्लेषमध्याधिनिवृहणम् ।

नाऽऽहरे नियमात्रात्र विहारे वा विधीयते । ज्यूषणाथमिदं चूर्णं रसायनं रनुत्तमम् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से मेद, प्रमेह, कुठ तथा कफज व्याधियों का नाश होता है । इसके सेवन के समय आहार-विहार का कोई नियम नहीं है । यह 'ज्यूषणाथ चूर्णं' (लोह) नामक औषधि चतुर रसायन है ॥ ३ ॥

नदकगुणुः—प्रयोगादिनसुस्तानिविद्मलाविद्मुरुण्डगुण्डुं समम् ।

खाद्यन्दनवाल्येद्य ध्याधीन्मेदःश्लेषमामवातजान् ॥ १ ॥

नदक गुणु-सौठि, पीपरि, मरिच, वित्रकमूल, नागरमोया, बैंवरा, हर्दा, वहेडा और वाभीरंग सम भाग लेकर चूर्ण हो उसके समान भाग शुद्ध गुण्डु मिलाकर विधिपूर्वक बड़ा बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के मेदोज कफज और आमवातज रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लेपोद्दत्तने—

हितो मोचरसो युक्तरचूर्णंहस्तिफेनजैः । प्रलेपनं निहन्त्याशु देहदौर्गन्ध्यसुस्कटम् ॥ १ ॥

लेप और उदरवान—मोचरस में समुद्रकेन का चूर्ण मिलाकर लेप करना हितकर है ।

यह ईै की तीव्र दुर्गन्धि को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

ज्ञासाद्वलरसालेपाद्युक्तरचूर्णंवचूर्णितात् । विष्वपत्रवरसो वाऽपि गात्रदौर्गन्ध्यसुस्कटम् ॥ २ ॥

अलसा के पत्तों के स्वरस में शङ्खमस्त्र मिलाकर अथवा बेल के पत्तों के रस को शरीर पर लेप करने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ २ ॥

हरीतर्कीं तु सरिपद्य गात्रमुद्वृत्येष्वरः । पश्चात्स्नानं प्रकुर्वीत देहस्वेदप्रशान्तये ॥ ३ ॥

हर्षा को मलीभौति पीस कर शरीर पर उटन (उटन) करके पश्चात् स्नान करने से देह का स्वेद शमन होता है ॥ ३ ॥

चम्दांशुशीतलं कोध्रं शिरीषोशीरकेसरैः । उद्वृत्तं भवेद्ग्रीष्मे द्वेदोद्गमनिवारणम् ॥ ४ ॥

क्षुपु, स्वेतचन्दन वा पुमुकाठ, छोथ, शिरीष, खस, नागकेसर सम भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर ग्रीष्माक्षतु में उटन करने से स्वेद का अधिक होना नष्ट होता है ॥ ४ ॥

बब्लूलस्य दुःखे: सम्प्रवारिणा परिपेषितैः । गात्रमुद्वृत्येष्वपश्चाद्वीतया सुपिष्ठ्या ॥ ५ ॥

भूय उद्वृत्तं कृत्या पश्चात्स्नानं समाचरेत् । प्रस्वेदानुसूच्यते विप्रं तत्स्वेवं समाचरेत् ॥ ६ ॥

इबूर के पतों को विधिपूर्वक जल के साथ पीसकर शरीर पर उटन करे, फिर इर्हे को मलीभौति पीस कर उटन करे पश्चात् स्नान कर लेवे । इस प्रकार करने से शीघ्र स्वेद का अधिक आनंद नष्ट होता है ॥ ५-६ ॥

जग्बूलार्जुनतरुपसवैः सकुष्ठैरुद्वृत्तं प्रकुरुते प्रतिवासरं यः ।

प्रस्वेदाद्विन्दुकणिकानिकारातुष्टाद् दुर्गन्धिता वपुषि तस्य पदं न धते ॥ ७ ॥

जामुन के पते, अर्जुन वृक्ष के फूल या फल और कृठ को समान लेकर पीस कर प्रतिदिन उटन करने पर स्वेद आने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

शिरीषलामउत्कृष्टस्वद्वोपलंस्वेदहरः प्रघर्दः ।

प्रियकुलोऽधाभयचन्दनानि शारीरद्वैर्गन्ध्यहरः प्रदिष्टः ॥ ८ ॥

शिरीष की छाल या पते वा फूल, रोहिसरुण (युलाय कण्डा), नागकेसर, छोथ, समभाग लेकर उटन करना कर शरीर पर लेप करने से त्वचा के दोष तथा स्वेद नष्ट होता है । प्रियकुल, छोथ, दर्हा और चन्दन समान लेकर पीस कर उटन करने से शरीर की दुर्गन्धि को नष्ट करता है ॥ ८ ॥

वृन्दविषफलाद्य तैलम्—

श्रिफलातिविषामूर्वानिवृचिशकवासकैः । निम्बात्तवधृष्टद्वयन्थासपर्णनिशाद्यैः ॥ ९ ॥

गुह्यचीन्द्रियवाकृष्णाकृष्णसर्पनागरैः । तैलमेभिः समं पक्वं सुरसादिरसप्तत्तम् ॥ २ ॥

पानाभ्यञ्जनगृहप्रस्तुत्यवस्थित्पुर्योजितम् । स्थूलतालस्यकण्ठ्यादीन् ज्येष्ठकफकृतान्गादान् ॥

त्रिफलादि तैल—ओवारा, हर्षा, बडेहा, अतौत, सूर्य मूल, निशीथ, चित्रकमूल, अरुसा, नीम की छाल, अमलता, स, च, छितवन की छाल, इरदो, दाढ़ इरदो, गुरुचि, इन्द्रजी, पीपरि, कृठ, सर्सों, सोठ सम भाग लेकर कलक कर जितना कलक हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और तैल से चौगुना सुरंसादिगण की ओषधियाँ (ज्वेत तुलसी, काली तुलसी, गन्धपत्तास, बन तुलसी, गन्धतुण, वृद्धदग्धतुण, राई, सर्सों, काली बन तुलसी, कासमर्द (कसौजर), नक्षिकनी, वामीरंग, कायफर, सम्माल, दोनों (ज्वेत तथा नीलपुष्प वाली), चन्द्रसूर, इन्दुर कानों (मूषाकणी) बमनेठी, काकनासा, मकोय, महानिम्ब) का स्वरस वा काय मिलाकर विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर इस तैल को पान अभ्यक्त या गण्डूषधारण, नस्य और वर्सित कर्म करने से स्थैर्य, आलस्य, कण्डु आदि रोग तथा कफज व्यापि नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

मात्रासुगन्धितैलम्—

चन्दनं कुकुमोद्वारं प्रियकुशटिरोचनम् । तुरुक्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ १ ॥

जातीकद्वौलपूगानां लवक्षस्य फलानि च । नालिका नलदं कुष्ठं हरेण्यं तगरं प्लवम् ॥ २ ॥

जख ड्याग्रनसं स्पृष्टा बालो दमनकं तथा । प्रपौष्टदीर्घं कच्चीं समाशैः शाणमात्रकैः ॥ ३ ॥

महामुगन्धिकं द्वेतत्तेष्ठेन साधयेत् । प्रस्वेदमलद्वैर्गन्ध्यकण्ठ्यकृष्णहरं परम् ॥ ४ ॥

महासुगन्धि तैल—दाढ़चन्द, केसर, खस, कूल प्रियगु, कचूर, मोरोचन, शिलारस, अपर कस्तूरी, कपूर, जाविकी, आयफर, कद्वौलमरिच, दंगी फल, लदंग, नलिका नाम की सुगन्धि वृक्ष की छाल (नरसल), पीली खस, कूठ, रेणुका, तगर, नाली, व्याप्र नखी, सूक्ष्मा, सुगन्ध वाला, दौना, पुण्डरिया, कचूर, प्रयेक एक र शांत की मात्रा से लेकर कलक कर मूर्च्छित तिल के तैल एक प्रथम में मिलावे और पाकार्य जल चार प्रथम मिलाकर तैल सिद्ध करे इस महा सुगन्धित तैल के व्यवहार से स्वेदनिर्गम, मैल, शरीर की दुर्गन्धि, कण्डु और कुछ आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अनेनाऽध्यक्षग्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा । युवा भवति शुकाद्यः श्वीणामत्यन्तवल्लभः ॥
सुभ्रगो दर्शनीयश्च गच्छेद्वै प्रमदाशतम् ॥

बन्ध्याऽऽधिय लभते गर्भ वप्तोऽपि पुरुषायते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शासम् ॥

इस तैल के शरीर पर मालिक्ष करने से सतत वर्ष का वृद्ध भी उवा के समान वीर्यवान् और जियों का अयन्त मिथ और सुदूर देखने के शोभ रूपवान् तथा सौ जियों के साथ भोग करने की शक्ति वाला ही जाता है, बन्ध्या जी भी गर्भ धारण करती है, नंगुसक पुरुष भी पुरुषवद को प्राप्त होता है, पुत्र नहीं होने वाले को पुत्र होता है और मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है ॥ ५-६ ॥

रसाः ।

तत्राऽस्त्री रसप्रसमयोगः—

रसभस्मवल्लमात्रं लीदवा मधुना प्रियेद्वन् चौद्रम् ।

कोण्याऽनुवाना समेतं व्यैष्यं भेदःकृतं जयति ॥ १ ॥

रसप्रसम का योग—पारद भस्म अथवा रससिन्दूर को एक वृक्ष (३ रसी) के प्रमाण की मात्रा से लेकर मधु मिलाकर चाटने से और मधु को उष्णोदक में मिलाकर अनुपान करने से भेद से उत्पन्न स्थूलता नष्ट होती है ॥ १ ॥

विमूर्तिरसः—

सूतगन्धमयोभस्म समं संभेदय भावयेत् । निरुपूष्टीपत्रोदेन सुसलीकन्दवादिणा ॥ १ ॥

ततः सिद्धमसु मायमात्रं रसमनुत्तमम् । लोध्राद्वैद्रेण चारनीयाच्चूर्णमेवा पिच्चन्मितम् ॥ २ ॥

चट्कुदु त्रिफला पञ्चलवगावत्प्रगृज्यत ततः । मेदःज्योथानिमान्यामवातश्लेष्मगदप्रणुत् ॥ ३ ॥

विमूर्ति रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहमस्म समान लेकर प्रथम पारद गन्धक की कजलीकर फिर लोहमस्म मिलाकर मर्दन कर मैरदी के पते के त्वरत और मुसलीकन्द के रस से पृथक् २ भावित कर सुखा कर चूर्ण कर इस सिद्ध उत्तम रस को एक मात्रा लेकर लोह के न्यून और मधु के साथ मिलाकर चाट लेवे और कपर से पीपरि, पिपरामूल, चब्द, चित्रकमूल, सोठ, मरिच, अवरा, हर्दा, बडेहा, पांचों प्रकार के नमक और बाकीची बीज समान लेकर चूर्ण कर पिच्चु प्रमाण (एक रसी) की मात्रा से खावे तो मेदरोग, शोष, मन्दायन आमवात और कफज रोग नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

वडवाचिनरसः—

शुद्ध सूतं सूतं तात्रं तालं बोलं समं समम् । अर्कदीर्घिनं सद्य चौद्रैलेण्यं द्विगुलकम् ॥ १ ॥

वडवाचिनरसो नाम स्थैर्यं तु द्वन्द्वं नियच्छ्रुतिः । पलं चौद्रं पलं तोयमनुपानं पिवेत्सदा ॥ २ ॥

वडवाचिन रस—शुद्ध पारद, तात्र मस्म, तालमस्म, शुद्ध गन्धक प्रयेक सम भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कजली कर अन्य द्रव्यों को मिलाकर मदार के दूध के साथ दिन भर मर्दन कर सुखाकर रख लेवे । इसको दो रसी के प्रमाण की मात्रा से मधु के साथ चाटने से यह

'प्रह्लादिन' नामक रस स्थूलता और तोद को नष्ट करता है। इसके सेवन के पश्चात् एक पल मधु को एक पक जल में भिजाकर बनुपान करना (पीना) चाहिये ॥ २ ॥

पथ्यपथ्यम्—

पुराणशालयो मुद्रकुलस्योद्यालको द्वावा । लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ ३ ॥

पथ्यपथ्य—पुराने शालिधाम का चालण, सूंग, कुलधी, बन कोदो, कोदो, लेखन बहित, ये सब मेद वाले रोगियों को सदा सेवन करना चाहिये ॥ ३ ॥

श्रमचिन्ताव्यवायाऽव्याप्तिनिवारणप्रियः । हन्तयवश्यमतिस्थौर्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ २ ॥

परिश्रम करना, चिन्ता करना, मैथुन करना, मार्ग चलना, मधु सेवन, अधिक जागना, यह तथा सानां का भोजन करना ये सब कर्म स्थूलता को अवश्य नष्ट करते हैं ॥ २ ॥

अस्वास्थं च व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च । शौलियमिच्छुन्परियक्तं क्रमेणैवं प्रवर्धयेत् ॥

निंदा का त्वाग, मैथुन, परिश्रम और चिन्ता को स्थूलता नष्ट करने की इच्छा करने वाले को कम से बढ़ाना चाहिये ॥ ३ ॥

श्वि भेदोरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथोदरनिदानम् ।

दोगः सर्वेऽपि मन्देऽनीन् सुतरामुदराणि तु । अजीर्णन्मिलिनैश्चाज्ञैर्ज्ञायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥

उदररोग निदान—प्रायः करके सभी रोग मन्दाग्नि मूलक होते हैं, उसमें मी उदर रोग तो अवश्य ही मन्दाग्नि मूलक होते हैं। उदर रोग अधीर्ण से, मलिन (दूषित) अश्रों के खाने से तथा मल के संचय से भी होते हैं ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—

अतिसिंचितदोषाणां पापकर्म च कुर्वतात् । उदराणयुज्यायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ २ ॥

वातादि० दोषों के अर्थात् दूषित होकर संचित हो जाने से, पाप-कर्मों के करने से और विशेष कर मन्दाग्नि से उदर रोग होते हैं ॥ २ ॥

संप्रसिमाह—ददृध्वा स्वेदाभ्युवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्जिताः ॥

प्राणाभ्ययानान्सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नुग्नम् ॥ ३ ॥

उदररोग की सम्पादि—दूषित हुए वातादि दोष संचित होकर स्वेद तथा अनुवाही ज्वों को रोककर प्राणवायु, अग्नि तथा अपानवायु को दूषित करके मनुष्यों को उदररोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ ३ ॥

मुक्तुते—तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्गा वलीविनाशो जटरेष्ठि राज्यः ।

जीर्णपृथिज्ञानविदाहृत्यां वस्तौ रुजः पाकगतश्च शोफः ॥ ४ ॥

जब उदररोग होने को होता है तो उसके पहले बल तथा वर्ण की आकृद्धशा होती है, वली (विवली) में दोष आ जाता है, उदर पर रेखा हो जाती है, अद के जीर्ण होने का शान नहीं होता है, दाह-वस्ति त्यान में पीड़ा और ऐरों में शोष होता है ॥ ४ ॥

उदरस्य सामान्यलक्षणमाह—

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्वलयं दुर्बुद्धास्तिता । शोफः सदनभग्नानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ ५ ॥

दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जटरेषु भवन्ति हि ।

उदररोग के सामान्य लक्षण—उदर में आध्मान, चलने की शक्ति की कमी, दुर्वलता, मन्दाग्नि, शोष, अजों में शिथिलता, अचोवायु तथा मल का अवरोध, दाह, तन्द्रा, ये सब लक्षण प्रायः करके सभी उदररोगों में होते हैं ॥ ५ ॥

निंजलोदरलक्षणम्—

सर्वैवतोयमस्तु नातिभारिकम् । गवाचितं शिराजालैः सदा गुदगुदायते ॥ ६ ॥

निंजलोदर के लक्षण—जिस उदररोग के रोगी के उदर में कही भी जड़ नहीं हो, वर्ण श्वरीर का अरुण हो (श्वरीर पर रक्त की लालिमा हो), पेट में शोफ होती नहीं हो, पेट अधिक भारी नहीं हो, सिराओं का जाल दिखाई पड़ता हो और पेट सदा गुदगुदाता हो उसे 'निंजलोदर' कहते हैं ॥ ६ ॥

उदराणा संख्या—

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहुष्वद्यत्तोदकैः । संभवन्युदराण्यद्वै तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु ॥ ७ ॥

उदररोग की संख्या—पृथक् २ दोषों से (वातादिक पृथक् २) तीन, समस्त दोषों से (सम्बन्धित से) प्लीहा से एक, बहु से एक, क्षत से एक और उल से एक इस प्रकार आठ तरह के उदररोग होते हैं इनका पृथक् २ लक्षण निम्न है ॥ ७ ॥

वातोदरलक्षणमाह—

तत्र वातोदरे शोफः पाणिपश्चाभिकुचिषु । कुचिपार्ष्वेद्रकटीपृष्ठुरुपवर्मेष्वनम् ॥ ८ ॥

शुष्ककासोऽङ्गमर्द्दोऽधो गुदता मलसंग्रहः । श्यावाराणवश्वगादिवस्मकस्माद्वृद्धिदासवत् ॥ ९ ॥

सतोदमेदमुदरं तन्त्रुकृणशिराततम् । आध्मातदितिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥

वायुश्वान्नसहक्षणमाह—विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ १० ॥

वातोदर के लक्षण—जिस उदररोग में हाथ-पैर नामि और कुक्षित्यान में शोष, कुक्षि, पार्ष्वदेश, उदर, कटि, इष्ट इन स्थानों में पीड़ा, पूर्वों में छेदने के समान पीड़ा और सूखा कास होता है, श्वरीर दृश्यता है, श्वरीर के अधोमाग (नामि से नोचे) में गुदता और मक का अवरोध हो जाता है, त्वचा आदि (त्वचा नरम नेत्रादि) इयम वा अरुण वर्ण के हो जाते हैं और अचानक उदर में दुखिल और हास होता है (पेट पूर्णता और कम होता है), उदर में तोद (सूई चुम्बने के समान पीड़ा) तथा भेद (फटने के समान) होता है, पतली तथा काली सिराओं से उदर विरा रहता है, फूले दुष्ट चमड़े की थैली पर ठोकने के समान उदर ठोकने से शब्द करता है और उदर में वायु पीड़ा तथा शब्द करता हुआ सर्वत्र विचरता रहता है उसे वातोदर कहते हैं ॥

पैत्तिकमाह—पित्तोदरे उवरो मूर्च्छी दाहस्तुट्कटुकास्यरा ।

अमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरिद् ॥ ११ ॥

पीतत्वात्त्रशिरान्द्रं सस्वेदं सोष्म दद्यते । धूमायते मृदुस्पर्शं लिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १२ ॥

पित्तोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में उदर मूर्च्छा, दाह, रुग्न मुह का त्वाद कठ, अम और अतिसार होता है, त्वचा, नख, नेत्रादि पीत वर्ण के होते हैं और उदर हरे वर्ण का हो जाता है, पेट तात्र वर्ण तथा पीत वर्ण की सिराओं से विरा रहता है, स्वेद, उदर में उष्मा तथा दाह होता है, धूयें के गंध के समान गंध का ढकार आता है, रुपश्च करने से उदर मृदु शात होता है, शीघ्र पाक होता है (अर्थात् उदररत्व को प्राप्त हो जाता है) और पीड़ा होती है, उसे पित्त के कोप का रोग (पित्तोदर) कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

श्लेषिमकमाह—श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापः श्यथुगौरवम् ।

निद्रोऽक्लेशोऽहृतिः श्वासः कासः शुक्लरवगादिता ॥ १३ ॥

उदरं स्तिमितं द्विनश्चं शुक्लराजीततं महत् । चिराभिवृद्धि कठिनं श्वीतस्पर्शं गुरुस्थिरम् ॥

कफोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में अजों में चालनि, श्यथा, शोष हुता, निरा, उदरकार्द, अरुण, श्वास और कास होता है तथा त्वचा, नख, नेत्रादि द्वेतवर्ण के हो जाते हैं, उदर

मीजे कपड़े से लिस की भाँति स्त्रिय इवेत तथा वही रेखाओं से पिरा हुआ रहता है, पेट देर में बढ़ता है तथा स्थर्ण करने पर कठिन, शीत, गुरु और स्त्रिय शात होता है, उसे कफ के कोण का उदर रोग अर्थात् कफोदर कहते हैं ॥ १८-१९ ॥

साक्षिपातिकमाद—स्त्रियोदयानं नक्षरोममूल्रविद्वार्त्तव्यैकमसाधुवृत्ताः ।

यस्मै प्रथच्छृन्यरयो गरांश्च दुष्टान्मुदूरीविषसेवनाद्वा ॥ ३५ ॥
तेनाऽस्यु रक्षं कुपिताक्ष दोषाः कुर्युः सूधोरं अठरं प्रिलिङ्गम् ।

तच्छ्रीतवातातपदुर्दिनेषु विशेषतः कुर्यति दद्याते च ।

स चाऽस्तुरो मूर्च्छिति संप्रसक्तं पाण्डुः कृष्णः शुष्यति तृणया च ॥ ३६ ॥
हृष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निषेध ।

सक्षिपातोदर के लक्षण—दुष्ट प्रकृति की जिया (अथवा दुष्ट पुरुष) अपना नस, रोम, सूक्ष्म भक्त तथा आर्तव, अन्न तथा पान की वस्तुओं में मिलाकर पति अथवा अन्य किसी पुरुष को जिया देती है (पति या अन्य पुरुष को अपने वश में करने के लिये जिया अपना आर्तव आदि जिया कर अपने वस में करती है) उससे अथवा शब्द आदि के द्वारा विष (किसी अन्न-पान के संयोग से दिया हुआ) भक्षण करने से अथवा दूषित ब्राह्मदि के सेवन से अथवा दूषी विष के सेवन से रक्त शीघ्र दूषित हो जाता है और तीनों दोष कुपित होकर अस्थन्त कठिन विदोषय उदर रोग को करते हैं उससे उदर में शीतकाल, वायु के समय, आतप (धूप) के समय और दुर्दिन (आदक पानी आदि के समय) में विशेष कर रोग का कोण होता है, तथा उदर में दाह होता है और रोगी सूर्णिष्ठ होता रहता है, तथा पाण्डुरुग्ण का और दुर्वल हो जाता है, तृष्णा से श्रुत्य सूखा करता है । इसको सक्षिपातोदर वा दृष्योदर भी कहते हैं । आगे प्लीहोदर कहेंगे ॥ ३५-३६ ॥

प्लीहोदरयुक्तुदरक्षणम्—

विद्याद्यभिष्यन्विद्रतस्य लक्ष्योः प्रदृशसर्वथमसूक्ष्मकश्च ॥ ३७ ॥

प्लीहोभिष्युक्ति कुदतः प्रवृद्धो प्लीहोरथमेतज्जठरं वदन्ति ।

तद्वामपाश्वरं परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चाऽस्तुरोऽथ ॥ ३८ ॥

मन्ददुर्वहनिनः कफपित्तलिङ्गहृष्टुरुतः शीणवलोऽतिपाण्डुः ।

सर्वाण्यपाश्वर्यं यहृति प्रदुष्टे ज्येण चृद्वायुदरं तदेव ॥ ३९ ॥

प्लीहोदर के लक्षण—जो मनुष्य दाहकारक तथा अभिष्यन्दी पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं उनके रक्त और कफ दूषित होकर प्लीहा को बढ़ा देते हैं, इस बढ़े हुए प्लीहा को प्लीहोदर कहते हैं । वह प्लीहा वायें और पेट में बढ़ती है जिससे रोगी विशेष कष पाता रहता है और इसमें मन्द र ज्वर और मन्दाविन होती है, यह रोग कफ और विष के लक्षणों से युक्त रहता है, रोगी का बल अस्थन्त शीघ्र और शरीर पाण्डु हो जाता है ये सब लक्षण प्लीहोदर के हैं । साथ ही इहाने पाश्व में यहूत जब दूषित हो जाय तब उसे 'यकुदुर' कहते हैं ॥ ३७-३९ ॥

कफजप्लीहोदरः—

प्लीहा निर्वेदनः श्वेतकठिनः स्थूल एव च । महापरिग्रहः शीतश्लेष्मसंभव हृष्यते ॥ २० ॥

कफज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में पीड़ा नहीं होती हो, इवेत तथा कठिन स्थूल, बहुत वडी (प्लीहा) हो, वह शीत तथा कफ से हीनेवाली प्लीहा कही जाती है ॥ २० ॥

सञ्चवः प्रपिपासश्च स्वेदनस्तीव्रवेदनः । शीतगात्रो विशेषणं प्लीहा पैतिक उच्यते ॥ २१ ॥

पित्तज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में ज्वर तृष्णा, स्वेद और कठिन पीड़ा होती ही, और विशेष कर शरीर का वर्ण धीमा हो उसे 'पैतिक प्लीहोदर' कहते हैं ॥ २१ ॥

नित्यमानद्वकोष्ठश्च निर्योदावतंपीडितः । वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते ॥ २२ ॥
वातिकप्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में नित्य कोष्ठ में आनाह उशावर्त की पीड़ा और वेदना हो उसे 'वातिक प्लीहोदर' कहते हैं ॥ २२ ॥

रक्तप्लीहोदरः—

वल्लमोऽतिदाहः संमोहो वैवर्यं गात्रगौरवम् । रक्तोदरं भ्रमो मूर्च्छा ज्येष्ठं रक्तजलज्ञानम् ।
प्रयाणामपि रुपणि प्लीहृष्टसाध्ये भवन्ति हि ॥ २३ ॥

रक्तप्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में क्लान्ति, अस्थन्त दाह और मोह हो, वर्ण विवर्ण हो जावे, शरीर मारी रहे, उदर का वर्ण लाल हो, भ्रम और मूर्च्छा हो उसे रक्तप्लीहोदर कहते हैं । ये तीनों रूप प्लीहा के असाध्य अवस्था में होते हैं ॥ २३ ॥

तत्र दोषसम्बन्धमात् ।

उदावर्तहजानाहैमोहद्वद्वहनउवैः । गोरवाश्चिकाठिन्यैविद्यात्तत्र मलान् क्रमात् ॥ २४ ॥

प्लीहोदर के दोष सम्बन्ध—यदि प्लीहोदर में उदावर्त, पीड़ा और आनाह हो तो वात दोष का सम्बन्ध जानना चाहिये । यदि मोह, तृष्णा, दाह और ज्वर हो तो पित्तदोष का और यदि गुहता, अरुचि और कठिनता हो तो कफ दोष का सम्बन्ध जानना चाहिये ॥ २४ ॥

यदगुइमाह—यस्यान्त्रमन्तेहृष्टेपिभिर्वी बालान्मिर्वा पिहितं वयावत् ।

सम्भीयते तस्य मलं सदोषः शानैः शानैः सद्गृह्णवच्च नादयाम् ॥ २५ ॥

निरहृयते यथा गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रावपि चावपमद्वपम् ।

दृष्टिमिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं यदगुइवद्वन्ति ॥ २६ ॥

दृष्टिमिमध्ये—जिस उदर रोग में मनुष्य की भाँति अन्न से अथवा उपलेपी पदार्थों (चिकने पदार्थों) से, वा बालों से, पत्थरों से (अन्नादि के साथ जो पेट में चले आते हैं उससे) अच्छालित हो जाती है उसका मल दोषों सहित और २ संचित होकर भाँति की नादियों में जम जाता है, इस कारण उसकी गुदा में पुरीष का अवरोध हो जाता है और वही कठिनता से योद्धा २ मल निकलता है, मल के अवरोध होने से दृष्टि और नामि के मध्य में उदर बढ़ जाता है इसको 'बढ़ गुदोदर' कहते हैं ॥ २५-२६ ॥

पृतद्वद्वोदरं तेन स्युर्द्वाहउत्तृष्टुभ्रामः । कासक्षासोहसदनं रुद्धज्ञामिर्शस्तु च ॥ २७ ॥

मलसङ्गोऽक्षचिश्छ्रिद्वरं मूढमारुतम् । स्थिरं नीलाण्डिशिरोमराजिविराजितम् ।

नाभेश्वरि च ग्रायो गोपुर्च्छाकृति जायते ॥ २८ ॥

बढ़ गुदोदर में दाह, ज्वर, तृष्णा, भ्रम, कास, श्वास, ऊरुत्तराता, दृष्टिनामिश्चानन और सिर में पीड़ा होती है, मल का अवरोध, अरुचि, वमन, उदर में वायु का मूढ़ होकर रहना (वायु का गुम होना), पेट का रित्यर रहना तथा नील एवं अरुणवर्ण की सिराओं और रोम की पक्षियों से विरा रहना जाती है तथा प्रायः करके नामि के ऊपर गी के पूँछ की आकृति का बन जाना ये सब लक्षण होते हैं ॥ २७-२८ ॥

क्षतोदरमाह—श्वलयं तथाऽज्ञोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनस्यागतमन्यथा वा ।

तस्माऽस्तुतोऽन्नासलिलपकाशः स्त्रावः स्ववेद्वै गुरुत्तस्तु भूयः ॥ २९ ॥

नाभेश्वरोदरमेति वृद्धिं निस्तुच्छतेऽतीव विदाश्वते च ।

एतत्परिद्विद्वाहुद्रुपं प्रिलिङ्गं तद्वोदरं कीर्तयतो नियोध ॥ ३० ॥

क्षतोदर के लक्षण—जिस उदररोग में लोबन किये हुए अन्नादि के साथ कटि कङ्कड़ आदि जो भाँति में प्राप्त होकर टेढ़ेमेढ़े होने से आंतों को भेदन कर देते हैं, जिससे आंतों से अक के

समान स्वाव होता है और बारबार गुदा के रास्ते बाहर निकलता रहता है और नाभिस्थान के नीचे उदर बढ़ जाता है, उसमें सूई चुमाने के समान और फटने के समान पीड़ा होती है इसके क्षतोदर अथवा परिस्तावी उदर कहते हैं। अब आगे जलोदर कहते हैं ॥ २९-३० ॥

दकोदरमाइ—यः स्नेहपूर्णितेऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरुद्धः ।
पिवेऽजलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्व्याहानि ॥ ३१ ॥

स्नेहोपलिसेष्वथ वापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ।

स्निधं महत्तेष्यस्त्रिवृत्तनामि समातं पूर्णमिवाम्बुद्वाच ॥ ३२ ॥

अथा इति: क्षुभ्यति कश्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ ३३ ॥

जलोदर के लक्षण—जिस उदररोग में जो कोई मनुष्य स्नेहपान करके, अनुवासन वस्ति लेकर वपन कर, विरेचन कर अथवा निरुद्धवित लेकर शीघ्र ही जल पी लेता है तसके जलवाही स्रोतों में स्नेह के लिए होने से पूर्वोरोग (क्षतोदर) के समान (नाभि के नीचे उदर का बढ़ जाना, गुदा से स्वाव होना आदि लक्षणों वाला) जलोदररोग हो जाता है जिसमें पेट दिनध्य, बड़ा और नामि के चारों ओर उत्तर हो जाता है, अच्छी तरह तना दुधा जल से परिपूर्ण होता है और जिस प्रकार जल चमड़े की धैली (मसक आदि) जल से पूर्ण रहने पर क्षुभ्यति होती है, कोपती है और शब्द करती है उसी प्रकार जलोदर वाले का उदर भी क्षुभ्यति, कम्पित और शब्द युक्त होता रहता है। ये सब जलोदर के लक्षण हैं ॥ ३१-३३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाइ—

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मत्तम् । अलिनस्तदजाताम्बु यज्ञासाध्यं नवोथितम् ॥

उदररोग के साध्यासाध्यता—प्रायः करके सभी उदररोग उत्पन्न होते ही कष्टसाध्य माने जाते हैं। परन्तु यदि रोगी बछवान हो, पेट में जल नहीं उत्पन्न हुआ हो और रोग नया ही उत्पन्न हुआ हो तो यत्न से साध्य होता है ॥ ३४ ॥

अशोफमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम् । सदा गुडगुडायुक्तं शिराजालगवाच्छितम् ॥ ३५ ॥
नाभि विष्ट्य वायुस्तु वेगं कृच्च ग्रन्थयति । हृदङ्गुणकटीनामिगुदं प्रयेकश्चलिनः ॥ ३६ ॥
कर्कशं सृजते वातं नातिमन्दे च पापके । लोलस्यापि रसे वालपे मूत्रेऽलपे संहृते विशि ॥ ३७ ॥

अजातोदकमित्येत्युरुक्तं विज्ञाय लक्षणः ।

जब तक उदर में शोथ नहीं हो, उदर का वर्ण अरुण हो, शब्द करता हो, अधिक आरी नहीं हो, सदा गुडगुड़ करता हो, सिराभों से विरा दुधा हो, नाभि की विष्ट्यक कके वायु वेग क्षरे और नष्ट हो जावे, हृदय, बङ्गण, कटिभाग, नाभि और गुदा इन प्रत्येक में शूल हो, पेट से वेगवान् वायु निकले, असि मन्द नहीं हुआ हो, उदर के चंचल होने पर भी रस (जल) का अंश कम हो, मूत्र कम हो और मल रुका हुआ हो, ये लक्षण जिस रोगी को हो उसे अज्ञात उदर के समझना चाहिये अर्थात् उसके उदर में जल नहीं आया है यह जानना चाहिये ॥ ३५-३७ ॥

जिसकी कोख अधिक बढ़ गयी हो, सिराये पेट पर नहीं दिखाई देवे और पानी से भरे हुए चमड़े की धैली के समान जिसके पेट में शोभ होता हो और वैसा ही स्पर्श करने पर भी जात हो उसे जातोदक रोग समझे अर्थात् उदर में जल आ जाने के ये लक्षण हैं ॥ ३८ ॥

विशेषणासाध्यत्वमाइ—

पवाहुद्गुदं तृष्णं सर्वं जातोदकं तथा । प्रायो भवत्यभावाय चिद्रान्त्रमुदरं नृणाम् ॥ ३९ ॥

एक पक्ष (१५ दिन) के पश्चात् बद्धगुद (बद्ध गुदोदर) और जिसमें जल आ गया हो ऐसा सभी उदररोग तथा छिद्रान्त (क्षतोदर) उदररोग ये सब प्रायः मनुष्यों के नाश के किंवद्दि होते हैं ॥

पुनरप्यसाध्यत्वमाइ—

शूनाचं कुटिलोपस्थमुपक्षित्वमनुवाच्यम् । बलशोणितमांसाद्विपरिच्छीणं च वर्जयेत् ॥ ४० ॥

जिस उदर रोगी के आंखों में शोथ और लिंग देहा हो गया हो, तवाचा (पेट की) आदि और पतली और बल, रक्त, मांस और अधिन क्षीण हो गये हों, उसे त्याग देना चाहिये ॥ ४० ॥

पार्श्वभङ्गाश्चविद्वेषशोफातीसारपीडितम् । विरिक्तं क्षुभ्युदरिणं पूर्णमाणं विवर्जयेत् ॥ ४१ ॥

जिसको पार्श्वभङ्ग (दोनों पैसलियों का देहा होना) अन्न से द्रेष (अस्वचि), शोथ-और अतिसार हो और विरेचन कराने पर भी जिसका उदर पूर्ण ही रहे उसे त्याग देना चाहिये ॥ ४१ ॥

अथोदरचिकित्सा ।

तत्रादाहुदराणि—पृथग्दोषः समस्तैव प्लीहबद्धतोदकैः ॥ १ ॥

उदररोग की गणना—पृथग् २ दोषों से अर्थात् वात-पित्त और कफ से तीन, समस्त अर्थात् त्रिदोष से एक और प्लीहा, बढ़, क्षत तथा जल होने वाले उदररोग एक २ इस प्रकार ८ प्रकार के उदररोग होते हैं ॥ १ ॥

तत्र पृथग्दोषैर्वर्तपित्तकैः संनिपातेनैकम् । प्लीहोदरं बद्धोदरं चतोदरं जलोदरमिति सञ्ज्ञा भवन्ति । तेष्वासाध्यं बद्धगुदं परिस्तावि च । षट्वशिष्टानि क्लृप्साध्यानि । सर्वार्णवेव च प्रत्यासाध्योपकमेव । तेष्वासाध्यतुर्वर्गो मेषजसाध्यः । उत्तरः नश्चसाध्यः । कालप्रकर्षार्दस-वर्णयेव । शक्तसाध्यानि भवन्ति वर्जयत्यानि वा, हृति सुक्ष्मतात् ॥

यहाँ पर पृथग् २ दोषों से होने वाले अर्थात् वातोदर, पित्तोदर और कफोदर कहे जाते हैं इस प्रकार ये तीन हुए और सिविपात से (लीनों दोषों से) होने वाला सिविपातोदर एक और प्लीहोदर एक, बद्धोदर एक, क्षतोदर एक और जलोदर एक, इन संज्ञाओं वाले आठ प्रकार के उदररोग होते हैं। इन आठों में 'बद्धगुद' और 'परिस्तावी' असाध्य हैं और शेष छः कष्टसाध्य हैं। सब उदर रोगों को असाध्य ही समझकर चिकित्सा करनी चाहिये। इनमें आदि के चार (वातोदर, पित्तोदर, कफोदर और सात्रिपातोदर) मेषज से (ओषधि चिकित्सा से) साध्यासाध्य होते हैं और अन्त के चार प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर शक्त चिकित्सा से साध्य होते हैं। समय बीत जाने पर (पुराने होने पर) सभी उदररोग शक्त से सिद्ध होने वाले हो जाते हैं अथवा त्याज्य (असाध्य) हो जाते हैं ॥

वातोदरचिकित्सामाइ—

उपकमेन्द्रियग्दोषवलकालविशेषवित् । स्थिरादिसंपित्तः पानं स्नेहं स्वेदं विरेचनम् ॥ ३ ॥

वेष्टनं वाससा भानानौ शाश्वप्योनो पनाहनम् । पेया यूषरसात्मं च योषयं वातोदरे कमात् ॥ २ ॥

वातोदर की चिकित्सा—उदर रोग में दोष (वातादि), रोगी तथा रोग का बल और काल आदि का विशेषज्ञ दैव चिकित्सा करे अर्थात् इनका विचार कर चिकित्सा करे। वातोदर में 'स्थिरादि संपित्त' का पान कराना चाहिये, स्नेहन, स्वेदन, और विरेचन देना चाहिये और कम से वातोदर में वज्र से उदर को बांधना चाहिये। शाश्वण स्वेद के द्रव्यों से उपनाद करना चाहिये, तथा पृथग् के लिये पेया, यूष, मांसरस तथा अन्त का व्यवहार करना चाहिये ॥ २-३ ॥

प्रणदत्तैलादियोगः—प्रणदत्तैलं दशमूलमिष्ठं गोमूत्रयुक्तं विफलारजो वा ।

निहन्ति वातोदरशोथशूलं कायः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ १ ॥

प्रणद तैलादि योग—प्रणद के तैल को दशमूल के बने काय में मिलाकर पान कराने से

अथवा विफला के समान मिलित चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन कराने से अथवा दशमूल के काथ में गोमूत्र मिलाकर पान कराने से बातोदर शोथ और शूल नष्ट होते हैं।

दशमूलादियोगः—

दशमूलकथायेण छीरवृत्तिः शिलाजनु । स्थो वातोदरी शीरमौष्माजं च केवलम् ॥ १ ॥
दशमूलादियोग—दशमूल के काथ में शुद्ध शिलाजीत मिलाकर सेवन करने और केवल दूध ही पथ्य खाने से अथवा केवल ऊंट या बकरी के दूध के सेवन करने से शीघ्र बातोदर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

कुषादिचूर्णम्—कुष्ठ दम्ती यवसारं द्योषं विलवणं वशाम् ।

आजार्जीं दीप्त्यक्षं हिङ्गु स्ननिकां च्छ्वचित्रके । शुण्ठीं चोण्डाऽमसा पीरवा वातोदरक्षापहाम् ॥
कुषादि चूर्ण—कूठ, दम्तीमूल, यवसार, सोंठि, पीपरि, मरिच, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विडमसक, वच, बीरा, जवाइन, शुद्ध हींग, सज्जी, चब्य, विक्रमूल और सोंठि समग्र का चूर्ण व्यवोदक के अनुपान से सेवन कराने से बातोदर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ २ ॥

बृन्दावासुदार्थं चूर्णम्—

सामुद्रसौवर्च्छलदैन्धवानि चारो व्यवानामज्जोदभागः ।
सपिष्ठिलीचित्रकश्चक्षेवेन हिङ्गु विलवणं च समानि कुर्यात् ॥ ३ ॥
एतानि वृण्णानि धृतप्लुतानि भुजीत पूर्वं कवकांप्रशस्तान् ।
वातोदरं गुलमसीर्णमुक्तं वातप्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम् ॥ २ ॥
अर्णांसि हुष्टानि च याण्डुरोगं भगव्यं द्वापि निहिति सद्धः ॥ ३ ॥

सामुद्रादि चूर्ण—सामुद्र नमक, सोंचर नमक, सेंधा नमक, यवालार, अचमोदा, पीपरि, चित्रक मूल, सोंठि, शुद्ध हींग और बाचीरंग समग्र लेकर विषिपूर्वक चूर्ण कर धृत में मिलाकर भोजन के पूर्व प्रशस्त (उचित) मात्रा से खावे तो इससे बातोदर, गुलम, अचमोदा, वात का प्रकोप, शुद्ध ग्रहणी रोग, दुष्ट अर्श (कूपित अर्श), पाण्डु रोग और भगव्य ये सब रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

दशमूलार्थं धृतम्—

दशमूलीकथायेण रासनानागरदारुभिः । पुनर्नवाभ्यां च धृतं सिदं वातोदरापहम् ॥ १ ॥

दशमूलार्थ धृत—दशमूल का काथ ४ प्रस्थ, मूँछित गोधृत २ प्रस्थ, रासना, सोंठि, देवदाढ़ और दोनों पुनर्नवा (श्वेत तथा रक्त) इनके समान मिलित कक्ष ३ प्रस्थ को लेकर एकत्र कर धृत सिद कर सेवन करने से बातोदर नष्ट होता है ॥ १ ॥

पित्तोदरम्—

पित्तोदरे च बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् । पयसा विवृताकहेनोश्वक्षृतेन वा ॥ ३ ॥

सातलाश्रयमाणाभ्यां श्रुतेनाऽस्त्रवधयेन च । धृतं पित्तोदरे पेयं मधुरोवधसाधितम् ॥ २ ॥

पित्तोदर की चिकित्सा—पित्तोदर में यदि रोगी बलवान हो तो प्रथम उसे विरेचन देना चाहिये। इसके बाद १-दूध के साथ त्रिविताकक्ष के अथवा २-परण्ड के कफों के अथवा ३-सातला (स्तुही विशेष) श्रयमाणा और अमलतास कफ के अथवा ४-मधुर गण की ओषधियों के कक्ष के साथ विषिपूर्वक धृत सिद कर सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर पित्तोदर नष्ट होता है। (कोई २ आचार्य इन चारों योगों को दो ही मानते हैं) ॥ १-२ ॥

स्यावित्र विफलासिद्धं सपिष्ठानं विशुद्धये ।

शृणपर्णीबलाद्यांशीलाचानागरसाधितम् । छीरं पित्तोदरं हन्ति जठरं कतिभिर्दिनैः ॥३॥

निशोय और अवरा, दर्ता, बैड़ा, इनके कल्क के साथ सिद्ध किया धृत सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर लाग्त होता है तथा पृष्ठपर्णी, बरिअरा, छोटी कटरी, लास और सोंठि इन ओषधियों के साथ क्षीर पाक विधि से सिद्ध किया दूध सेवन करने से पित्तोदर तथा कतिपय पैतिक उदर के उपद्रवों को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

इलेमोदरम्—

इलेमोदरिणं तु पिप्पव्यादिसिद्धेन सपिष्ठा स्नेहं नीवा स्तुहीशीरानुलोभ्यत्रिकटुकमूक्तं तैलमुखकादिकाथेनाऽस्थापयेदनुवासयेच चवकिटुसर्वपामलकवीजश्चोपनाहयेदुदरम् । भोज्ञ-ऐश्वर्यं त्रिकटुकप्रगाढेन कुलित्यथूषेण पयसा वा स्वेदयेच्चाभीजम् ।

कफोदर की चिकित्सा—कफोदर रोग वाले को पिप्पव्यादि गण (पीपरि, पिप्पव्याक, मरिच, गजपीपरि, सोंठि, चित्रक मूल, रेणुका, रासना, अचमोदा, सर्सों, हींग, बमनेठी, पुराण पाढ़ी, दम्हजौ, बीरा, बकाइन, मूवामूल, अतीस, कुटकी और बालीरंग) की ओषधियों के काथ के साथ विषिपूर्वक धृत सिद कर पान कराकर स्नेहन कर, धूहर के दूध के साथ सिद किये धृत से अनुलोमन कर, सोंठि, पीपरि, मरिच, गोमूत्र और आस्थापन वर्ग में कहे इप मुस्तादि वर्ग के काथ के साथ विषिपूर्वक सिद किये हुए तेल से स्थापन बस्ति और अनुवासन बस्ति देवे। पश्चात यथा, किंदू, सर्सों, मूँछी बीज इनको पीसकर पेट के ऊपर उपनाद देवे। कुलधी के दूध में सोंठि, पीपरि और मरिच का चूर्ण प्रचुर प्रमाण में मिलाकर भोजन करावे (पथ्य देवे) अथवा दूध पिलावे और पूर्ण स्वेद देवे।

व्योषयुक्त कुलित्यथूषे वा भोज्ञने हितम् ।

गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्त्वक्तिभिस्तथा । सचीतैलपानैश्च शमयेत्तरकफोदरम् ॥ १ ॥

भोजन के किये सोंठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण मिला हुआ कुलधी का यूध अथवा दूध देना द्वितकर है और गोमूत्र तथा अरिष्ट पिलाने से, चूर्ण सेवन से, लौह भस्म मिलित औषध देने से और दूध के साथ तेल मिलाकर पान कराने से कफोदर रोग शमन होता है ॥ १ ॥

दूधोदरं त्रिलिङ्गमुदरं च—

सत्तिपातोदरे काथं एष एव कियाविधिः । हरीतक्यमध्याकलकभावितं मूष्ममङ्गुना ॥ १ ॥

पीतं सर्वोदरप्लुलीहमेहाशःकुमितुमनुय । उसलालाङ्गुनीसिद्धं धृतं आप विशोधनम् ॥ २ ॥

दूधोदर, सत्तिपातोदर की चिकित्सा—सत्तिपातोदर में यही किया करनी चाहिये। हरे का सेवन करना चाहिये और इर्दे के कक्ष से भावित गोमूत्र को बक के साथ सेवन करने से (पान करने से) सब प्रकार के उदर रोग, प्लौहा, प्रमेह, अर्श कृमि तथा गुलम नष्ट होते हैं। और सप्तला (स्तुही विशेष) और शंखिनी (यवतिका अथवा इवेत अपराजिता) इनके कक्ष से विषिपूर्वक सिद किया हुआ धृत सेवन करने से विशोधन होता है ॥ १-२ ॥

दन्तीद्रवन्तीकलजं तैलं दूधोदरी पिलेत । नागरत्रिकलाप्रदं धृतं तैलं तथाऽदकम् ॥ ३ ॥

मस्तुना साधयित्वा तु पिलेसर्वोदरापहम् । कफमारुतसम्भूतं गुलमं चैव प्रशास्यति ॥ ४ ॥

दन्ती के फल और द्रवन्ती के फल का तेल दूधोदर में दीने से काम होता है। तथा सोंठि और त्रिलिङ्ग का कक्ष एक प्रस्थ मूँछित गोधृत ४ प्रस्थ, मूँछित तिक का तेल ४ प्रस्थ और धृत तेल से चौगुना दही का पानी मिलाकर विषिपूर्वक (स्नेह पाक की विधि से) लौह सिदकर पान करने से सब प्रकार के उदर रोग नष्ट होते हैं और कफ तथा वात से उत्पन्न होने वाले गुलम को भी यह स्नेह नष्ट करता है ॥ ३-४ ॥

अथ प्लौह दरयकुदुदरयोश्चिकित्सा ।

स्नेहस्वेदप्रकारादि विधेयं प्लौहरोगिणाम् । वामवाही च मोक्षया कूर्षराभ्यन्तरे शिरा ॥५॥

प्लीहोदर तथा यकुदुदर की चिकित्सा—प्लीहा के रोगियों को स्नेहन तथा स्वेदन देना चाहिये और बाये बांह वाई को केहुनी के भीतर की सिरा को मेदन कर मोक्षण करा देना चाहिये। इससे प्लीहा नष्ट होती है ॥ १ ॥

विध्येष्टलीहिविनाशाय यकुञ्जाशाय दचिगे ।

मणिवन्धे समुत्पद्धत्वामाकुञ्जसमीरिताम् । वहेच्छिर्वाणश्चेणाऽस्तु वैयः प्लीहप्रशान्तये ॥ २ ॥

यदि यकुर बढ़ा हो (यकुर के रोगी का) तो दाहिने बाँह की केहुनी के भीतर की सिरा को मेदन कराकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये और बाये मणिवन्ध पर बाये अंगूठे के पास से आई हुई सिरा को 'शर' नामक यन्त्र से ज्ञाने से प्लीहा शीघ्र ही नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

शास्त्रमलिपुष्टकाथः—

सुस्तिवन्धं शालमलीपुष्टं निशापर्युचितं नरः । राजिकाचूर्गसंस्युक्तं दद्यात्प्लीहोपशान्तये ॥ ३ ॥

शास्त्रमलिपुष्ट काथ—सेमर के कूच को स्वेदित कर जल सहित रात भर पड़ा रहने देवे, प्रातः पर्युचित होने से पर उसमें राई के चूर्ण का प्रशेष देकर पान करने से प्लीहा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

शरपुङ्गामूलकलकः—शरपुङ्गामूलकलकः पीतस्तक्रेण नाशयस्यचिरात् ।

बहुतरकालसमुख्यं प्लीहान् रुद्धमवगाढम् ॥ १ ॥

शरपुङ्गामूलकलक—सरफोक की जड़ को लेकर कलककर तक के साथ पान करने से बहुत पुरानी तथा कठिन प्लीहा को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

लवणादितकम्—

लवणं रजनी राजी प्रत्येकं पलुपक्षकम् । चूर्णितं निजियेद्वाप्ते शततकपलान्विते ॥ १ ॥

प्रिदिनं सुद्रितं रजेष्टपश्चात्पञ्चपलं तदा । प्लीहानं नाशयेतीत्रा निःसाहं न संशयः ॥ २ ॥

लवणादि तक सेवानमक, इरदी, राई इनमें प्रत्येक को पाँच-पाँच पल लेकर चूर्ण कर सौ पल तक में मिला कर एक मिट्ठी के पात्र में रख कर मुखमुद्रण कर तीन दिन तक एहां रहने देवे पश्चात् पाँच पल के प्रमाण की मात्रा से ३ सप्ताह तक (२१ दिन तक) पान करने से प्लीहा निश्चित ही नष्ट होती है ॥ १-२ ॥

शहनाभिचूर्णम्—सुप्रकजनीररसेन शङ्खनाभीरजः पीतमवश्यमेव ।

कर्षप्रमाणं शमयेदवश्यं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ ३ ॥

शहनाभिचूर्ण—मालीभाँति पके हुए जमीरी नीबू के रस के साथ शहनाभिभूतम, मिला कर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से पान करने से कछुओं के समान बढ़ी हुई प्लीहा भी शीघ्र अवश्य नष्ट होती है ॥ १ ॥

यवान्यादिचूर्णम्—यवानिकाचित्रकथावश्यकषट्डग्नन्तीमयधोऽवानाम् ।

प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णसुष्णाऽङ्गुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥

यवान्यादिचूर्ण—जवाइन, चित्रकमूल, यवाखार, यिपरामूल, दन्तीमूल, पीपरि समभाग लेकर चूर्ण बनाकर गरम जल, दही के पानी, सुरा या असव के अनुपान से सेवन करने से यह (चूर्ण) प्लीहारोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—

कुष्ठं वचा शङ्खवेरं चित्रकं कौटर्जं फलम् । पाठा चैवाजमोदा च यिष्पत्यः समचूर्णिताः ॥ ३ ॥

ततो चिदालपदकं पिवेद्विषेण वारिणा । प्लीहोदरसुदावर्तं सर्वमेतेन शाभ्यति ॥ २ ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूठ, वच, सोठि, चित्रकमूल, इन्द्रजी, पुराइनपाढ़ी, अजमोदा और पीपरि सम भाग लेकर चूर्णकर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से उड्डोदक के अनुपान से सेवन करने से प्लीहोदर (प्लीहारोग) और उदावतरोग में सब नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

बहुदिग्वादि चूर्णम्—

हिङ्ग त्रिकटुकं कुष्ठं यवज्ञारोद्य सैन्धवम् । मातुलुङ्गसेनैव प्लीहशूलहरं परम् ॥ १ ॥

लघुदिग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, सोठि, मरिच, पीपरि, कूठ, यवाखार और सेवानमक समभाग लेकर चूर्णकर जिज्वरे नीबू के साथ सेवन करने से प्लीहा और शूल को नष्ट करने में परम ऐष्ट है ।

वायुः प्लीहानसुदध्यय कुपितो यस्य तिष्ठति । शूलः परितुइन्पाश्वेषं प्लीहा तस्य प्रवर्धते ॥

कुपित हुई वायु प्लीहा को उठाकर जब रहती है तब शूल करती हैं और दोनों पांवों में सूई नुभाने के समान पीड़ा करने लगती है । इस अवस्था में प्लीहा बढ़ जाती है ॥ २ ॥

सिन्धवादि चूर्णम्—सिन्धुमधारिन्चूर्णं शिशिकाजाजिकासमं पीतम् ।

प्रबलमपि योगराजः प्लीहानं नाशयत्याशु ॥ ३ ॥

सिन्धवादि चूर्ण—सेवानमक, पीपरि, चित्रकमूल, सहिजन की जड़, जीरा सम भाग लेकर चूर्ण कर जल से सेवन करने से यह योगराज प्रबल प्लीहा को भी शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

विडङ्गादिचूर्णम्—विडङ्गानि यवानी च चित्रकं चेति तस्यमम् ।

द्विगुणं देवदारं च नागरं सुनुर्नवम् ॥ १ ॥

त्रिवृद्धागात्र च चक्रारसवर्च कलकपेषितम् । चैरेणोषेन पातश्यं श्रेष्ठं प्लीहिविनाशनम् ॥ २ ॥

विडङ्गादि चूर्ण—मामीरंग, जवाइन, चित्रक मूल, समान (१-१) साग और देवदार, सोठि और पुनर्नैवा इनसे द्विगुण अर्थात् दो २ साग, निशोथ ४ साग लेकर कलक कर उष्ण दूध के अनुपान से पान करने से यह प्लीहा को नष्ट करने में ऐष्ट है ॥ १-२ ॥

अथ वैतानि चूर्णानि गवां भूत्रेण पायरेत् । उदरीभूतमन्यवेषं प्लीहानं सम्प्रणाशयेत् ॥ ३ ॥

अथवा इसी चूर्णों को गोमूष के अनुपान से पान करने पर सम्पूर्ण उदर में व्याप्त प्लीहा यदि हो तो भी वह नष्ट होती है ॥ ३ ॥

वज्रशारः—

सौवर्च्छं यवज्ञारं सामुद्रं काचसैन्धवम् । टङ्गं स्वजिकाचारं तुल्यमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १ ॥

अकंदुर्घे: स्तुहीदुर्घे भावियेदातपे यथाहम् । उद्वाधिस्थैः क्रमात्तस्य तत्त्वयैरक्षपूष्वते ॥ २ ॥

भाठोदे संस्थाप्य चुल्पिते रुद्धवा गजपुटे पचेत् । श्वाङ्गशीते तु सञ्चूर्ण्य चूर्णमेष्टा तु मेलयेत् ॥

च्यूर्णं च विडङ्गं च राजिकां त्रिकलामपि । च्यूर्णं च हिङ्गुसम्भृतं तक्रेणाश्याश्याश्वलम् ॥ ४ ॥

शोधं गुष्मं तथाऽधीलां मन्दाभिमहति तथा । प्लीहानं यकुद्वायाल्यसुदरं च विशेषतः ॥ ५ ॥

वज्रशार—सौचर नमक, यवाखार, सामुद्र नमक, काच नमक (कचलीन), सेवा नमक, शुद्ध टङ्ग, सज्जीखार, सम भाग (एक २ भाग) लेकर चूर्ण कर मदार के दूध और सेंदुड़ के दूध के साथ तीन २ दिन तक आतप (घूप) में भावित कर सुखा कर चूर्ण कर बितना हो उसके बाराबर मदार के चूंचों को लेकर आवा नीचे और आधा ऊपर करके और मध्य में भावित ओषधि को रख कर शाराव सम्पुट में रखकर कपर मिट्ठी दारा मुख सुदा कर के विषिपूर्वक गजपुट में रखकर पाक करे स्वांग शीत होने पर निकाल सबको एकत्रित चूर्ण कर उसमें सोठि, पीपरि, मरिच, वामीरंग, राई, आंवला, हरा, बैद्वा, चाव और चून में भुजी हुई शुद्ध हींग के समान मिलित चूर्ण को उपयुक्त पुटपाक औषध में मिलाकर बल के अनुसार प्रमाण की मात्रा में तक अनुपान से सेवन करने से, यह 'बज्र शार' नामक चूर्ण उदर रोगों को नष्ट करता है और शोथ, शुल्म, अष्टीला, मन्दाविन, अरुचि, प्लीहा और विशेष कर यकुद्वायाल्य रोग को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

बृन्दाच्छुक्तिकाक्षारादियोगः—

पातव्यो युक्तिः चारः चैरेणोष्विष्युक्तिः ।

पथसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ १ ॥

शुक्ति का क्षारादि योग—समुद्र की सौप का क्षार (भस्म) अथवा पीपरि के चूर्ण दूष के साथ सेवन करने से प्लीहा शमन होती है ॥ १ ॥

क्षारादियोगः—क्षारं वा विडकृष्णाभ्यां पृतिकस्याभ्युनि शृतम् ।

यकृत्प्लीहीप्रशान्तर्यर्थं पिवेत्प्रातर्यथाबलम् ॥ १ ॥

क्षारादि योग—यवाखार, विड नमक और पीपरि के समान भाग चूर्ण को पृतिकरंज के स्वरस को कुछ गरम कर उसके अनुपान से पलानुसार मात्रा से प्रातः सेवन करने से यकृत और प्लीहा रोग शमन होता है ॥ १ ॥

सौभाजनादियोगः—

सौभाजनकनिर्युहं सैन्धवाग्निकणान्वितम् । पलाशचारयुक्तं वा यवसारं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

सौभाजनादि योग—सहितन की छाक के काथ में सेंधा नमक, चित्रक मूल और पीपरि का चूर्ण मिलाकर अथवा पलास के क्षार के साथ यवाखार मिलाकर प्रयोग करने से प्लीहा शमन होती है ॥ १ ॥

लशुनादियोगः—

लशुनं पिप्पलीमूलमभयोः चैव भस्येत् । पिवेत्प्रोमूलगण्डूर्धं प्लीहोगविमुक्ते ॥ १ ॥

लशुनादि योग—लशुन, पिपरामूल और हर्दा के सम भाग चूर्ण खाकर कपर से गोमूत्र का अनुपान करने से प्लीहा रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

रोहीतकादिकल्पः—

रोहीतकाभयाकल्पं भावितं मूत्रमस्तुता । पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःकुमिगुरुमनुत् ॥ १ ॥

रोहीतकादि कल्प—रोहीत तृण (गुलावकड़ा) और हर्दा के समान के कल्प कर गोमूत्र से भावित कर जल के अनुपान से पीने से सब प्रकार के बदर रोग, प्लीहा, मैह, अशै, कुमि और गुरुम रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्रवन्तीनाशवटी—

तिलैरेणद्वयवन्तीना चागे भस्त्रातकं कणा । पूर्णो भागं समं कूरवा तस्यवं तु गुडं मतम् ॥ १ ॥

खादेद्विनवलं ज्ञात्वा पावकर्य चिद्वृद्धये । जयेस्प्लीहानमस्तुग्रं यकृद् गुरुमं तथैव च ॥ २ ॥

द्रवन्ती नाशवटी—तिल का क्षार, एरण का क्षार, द्रवन्ती का क्षार शुद्ध मिलावा और पीपरि एक २ भाग लेकर एकत्र कर जितना हो उसके समान पुराना गुड़ मिलाकर वटी बनाकर अविन—बल के अनुसार सेवन करने से जठरार्मिन की वृद्धि होती है और अति उत्तम प्लीहा को तथा यकृत और गुरुम रोग को नष्ट करती है ॥ १-२ ॥

शिशुकाथः—

शोकं प्लीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचेन्वितः । अद्वलेत्ससंयुक्तः शिशुकाथः सलैन्धवः ॥ ३ ॥

शिशु क्वाथ—सहितन की छाक के क्वाथ में पीपरि, मरिच, अम्लवेत और सेंधा नमक के समान मिलित चूर्ण का प्रयोग देकर पान करने से शिशु और प्लीहोदर नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

क्षारभावितपिप्पली—

पलाशचारतोयेन पिप्पली परिभाविता । गुरुमप्लीहार्तिशमनी वहिदीसिकरी मता ॥ ३ ॥

क्षार भावित पिप्पली—पलास के क्षार के बल से पीपरि को भावित कर सेवन करने से गुरुम तथा प्लीहा की पीड़ा को शमन करती है और अविन दीप करती है ॥ ३ ॥

अविनमुखं लवयम्—

चित्रकप्रिवृतादन्तीत्रिफलाकृष्णः समैः । यावन्ध्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु सैन्धवम् ॥

भावयित्वा स्तुहीक्षीहैः स्तुक्षाण्डे प्रसिद्धेत्ततः । स्त्रैपञ्चेनानुलिप्याथ प्रसिद्धेजातवेदसि ॥२॥

सुदर्घं च ततो ज्ञात्वा श्वेतैर्यः समुद्दरेत् ।

तक्षेण पीतं तच्चूर्णं यकृत्प्लीहोदरापहम् । एनदरिनमुखं नामा लवणं वहिवर्धनम् ॥ ३ ॥

अविनमुख लवण—चित्रक मूल, निशोष, दन्ती मूक, आवला, इर्दा, बहेड़ा, रुचक नमक, समभाग लेकर चूर्ण हो उसके बराबर सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर सेंहुड के दूष से भावित कर सुखा कर चूर्ण कर सेंहुड लकड़ी के बीच के गुदे को निकाल कर उसी में इस चूर्ण को भर कर मुखमुदा कपर मिट्टी कर आग में पाक करे । जब भली भाँति पाक हो जावे तब वैद्य उसे धीरे से निकाल कर सेंहुड सहित सम्पूर्ण को चूर्ण कर तक के अनुपान से पान करावे तो यकृत और प्लीहोदर नष्ट होते हैं । यह 'अविनमुख' नाम का लवण अविनवर्धक है ॥ ३-३ ॥

चित्रकाथं धृतम्—

चित्रकस्य तुलाकाथे धृतप्रस्थं विषाच्चयेत् । आरानालं तु द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १ ॥

पञ्चकोलकतालीसं खारे च पृष्ठपञ्चकम् । यवान्यौ द्वे च रथये मरीचं चाचसंमितम् ॥ २ ॥

पृतैर्युग्मस्था धृतं सिद्धं मात्रया च पिवेत्प्रयो । प्लीहोक्तोवारार्शोऽनं विशेषादरिनदीपनम् ॥३॥

चित्रकाथ धृत—चित्रक मूल का काथ एक तुका (१०० पल) और मूर्छित गोधृत पक प्रस्थ, कांबी दो प्रस्थ, दही का पानी वा तक चार प्रस्थ लेकर उसमें पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्रकमूल, सौंठि, ताळीस पत्र, यवाखार, सज्जी खार, पांचो नमक पृष्ठक २ ज्वाइन, अमोदा, जीरा और कुण्ड जीरा तथा मरिच प्रत्येक एक २ कर्ष पीसकर कल्प करना ले और यथाविधि उसको धृत में मिलाकर धृत सिद्ध कर, यद्योग्य मात्रा से प्रातः सेवन करने से प्लीहा, शोष, बदर रोग और अशै नष्ट होते हैं । विशेष कर यह धृत अविन दीपक है ॥ ३-३ ॥

महारोहितकं धृतम्—

रोहीतकारपलशतं संसुधं बदरादकम् । साधियित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥

सुतप्रस्थं समाचाप्य प्लीहोक्तीरं चतुर्गुणम् । तस्मिन्दद्याणि सर्वोणि प्रदद्याक्तार्चिकाणि च ॥

च्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यवानीं तुम्बुरं विदम् । विडङ्गं चित्रकं चैव हपुषां चविकं वचाम् ॥२॥

अजालीं कूरणलवणं दादिमं देवदाह च । पुनर्नवां चिशालां च यवद्वारं सपौष्करम् ॥ ३ ॥

पृतैर्युतं विपक्वं तु निदध्यादृढ़माजने । पायवेच्च पलं मात्रा रसयूषपयोग्मुभिः ॥ ४ ॥

यकृत्प्लीहोदरं शूलमरिनमांश्यं च नाशयेत् । कुषिशूलं पार्श्वशूलं कटिशूलमरोचकम् ॥ ५ ॥

विषन्धूलं शमयेत्पद्मुरोगं सकामलम् ।

छृथीतीसारशमनं तन्मात्रवर्निवारणम् । महारोहितकं नाम्ना प्लीहृष्णे तु विशेषतः ॥ ७ ॥

महारोहितक धृत—रोहितक (रहेड़ा) की छाक सौ पल, बैर एक आडक (४ प्रस्थ) लेकर दोनों को कूट कर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्भीशावशेष काथ कर, उत्तर-छानकर उसमें मूर्छित गोधृत पक प्रस्थ और बकरी का दूध ४ प्रस्थ मिलावे और उसमें नीचे लिखी सौंठि, पीपरि, मरिच, आवला, इर्दा, बहेड़ा, शुद्ध हींग, ज्वाइन, तेजबल के फल, विडनमक, बामीरंग, चित्रकमूल, हाङ्कबेर, चव्य, वच, जीरा, काला नमक, अनारदाना, देवदार, पुनर्नवा, माइरि, यवाखार और पृष्ठकरमूल इन सभ आवश्यियों को पृष्ठक-पृष्ठक एक २ कर्ष लेकर कल्पकर उपर्युक्त धृत कर पात्र में रख लेवे । इस धृत को एक पल के प्रमाण की मात्रा में भाँस रस, यूष, दूष और जल इनमें से किसी एक के अनुपान से सेवन करने से यकृत, प्लीहोदर, शूल, मन्दाविन, ये सब रोग नष्ट होते हैं । और कुषिशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, अशै, विषन्धूल (मलावरीध से होने वाला शूल), पाण्डुरोग, कामला, वमन, अतीसार, तन्द्रा और ज्वर की भी

नष्ट करता है। यह 'महारोहितक' नाम का घृत विशेष कर प्लीहारोग को नष्ट करता है ॥ १-७ ॥
यकुदुरचिकित्सा—प्लीहोहितकः क्रिया: सर्वं चक्रत् संप्रकल्पयेद् ।

कार्यं च दधिणे बाहौ तत्र शोणितमोच्छणम् ॥ १ ॥

यकुत् उदर-चिकित्सा—प्लीहारोग में कही दुर्द सब चिकित्सा यकुत् रोग में करनी चाहिये और दाहिनी भुजा से रक्तमोक्षन कराना चाहिये। (दाहिनी भुजा की केड़नी के मध्य की सिरा को भेदन कर रक्त निकलवाना चाहिये) ॥ १ ॥

पिप्पलीकल्कत्तंयुक्तं घृतं चीरं चतुर्गुणम् । पक्त्वा पिदेयथावहि यकुदावयुदरापहम् ॥ २ ॥

पिप्पलीकल्कत्तंयुक्तं घृतं चीरं चतुर्गुणम् । पक्त्वा पिदेयथावहि यकुदावयुदरापहम् ॥ २ ॥
पिप्पलीकल्कत्तंयुक्तं घृतं चीरं चतुर्गुणम् । पक्त्वा पिदेयथावहि यकुदावयुदरापहम् ॥ २ ॥
पिप्पलीकल्कत्तंयुक्तं घृतं चीरं चतुर्गुणम् । पक्त्वा पिदेयथावहि यकुदावयुदरापहम् ॥ २ ॥

अथ बद्धगुदोदरप्रतीकारः ।

स्विवन्ने बद्धोदरे योउयो बहितस्तीष्णैस्तु भेषजैः । सतैललवैश्चापि निरुहश्चानुवासनम् ॥ ३ ॥

बद्ध गुदोदर चिकित्सा—बद्ध गुदोदर में प्रथम स्वेद देकर पुनः तीक्ष्ण अोषधियों से बनी बस्ति देनी चाहिये तथा तेल और नमक मिली हुई ओषधियों द्वारा निरुहस्ति तथा अनुवासन बस्ति देनी चाहिये ॥ ३ ॥

उदावत्तंहरं सर्वं प्रकर्तव्यं चिकित्सितम् । वर्तयो विविधाश्चात्र पायौ शस्ताः प्रकीर्तिः ॥ ४ ॥

उदावत्तं को नष्ट करने वाली सब चिकित्सायें करनी चाहिये और अनेक प्रकार की उपयुक्त अविधियों की गुदा में देनी चाहिये ॥ ४ ॥

तीष्णैर्विवेचनं चात्र शस्तते तु विशेषतः । वातहन्ता विचिः सर्वो विधातव्यो विजानता ॥

इस बद्धगुदोदर में विशेष कर तीक्ष्ण विवेचन देना चाहिये और वातनाशक सभी विधियों को करनी चाहिये ॥ ५ ॥

क्षतोदरमुदकोदरं च—छिद्रान्त्रवद्दसंज्ञेषु जठरेषु प्रयोगविद् ।

लब्धानुज्ञो भिषक्युर्त्याटनं व्यधनक्रियम् ॥ ३ ॥

क्षतोदर और जलोदर चिकित्सा—छिद्रान्त्र (क्षतोदर) और बद्धगुदोदर में प्रयोग करने में चतुर वैव राजकीय आशा को लेकर पाटन (आपरेशन) और व्यधन (चीर-फार) करे ॥ ३ ॥

तथा जातोदकं सर्वं मुदरं व्यधयेद्भवक् । ज्ञातींशु सुद्धदो दारान्वाक्षणान्तृपर्ति गुरुम् ॥ ३ ॥

अनुशास्य भिषवर्यो विद्यधातसंशयं भ्रवम् । सुवेषितं स्वधो नाभेवाभितश्चतुर्द्वगुलात् ॥ ३ ॥

अक्षयुदरमास्रं तु वीहिवक्त्रेण भेदयेत् । नाढीमुभयो द्वारां संयोजयापहरेजलम् ॥ ४ ॥

सब प्रकार के जलोदर में वैव रोगी के पेट को देख कर जल निकाले । उस समय रोगी के जाति, मित्र, स्त्री, ब्राह्मण, राजा और गुरु की आशा ले लेवे और उनसे यह स्पष्ट कह देवे कि प्राण का इसमें अवश्य संशय है । फिर नाभिस्थान के नीचे मलीमौति वज्र से बेषित कर नाभि के बायें भाग में चार अङ्कुष पर अङ्कुषी के मध्यभाग तक की गहराई के प्रमाण से ब्रीहि-मुख शक्ति से भेदन कर उसमें दोनों और जिस नाड़ी (नली) का सुंदर खुका दुग्ध हो ऐसी नली डालकर उसके द्वारा जल को निकाले ॥ ४-४ ॥

न चैकस्मिन्दिने सर्वं दोषं व्यपहरेत्था । कासशास्रौ उवरस्तुष्णा शान्त्रभद्रश्च वेष्युः ॥ ५ ॥

अतिसारश्च सुतरां पूर्यते जठरं ततः । तृतीयपञ्चमादेषु दिव्येषेवत्वपशः पुनः ॥ ६ ॥

चाचयेद्वद्दकं तैललवणाभ्यां दहेद् ब्रणम् । बधनीयाद्विषतो दोषे रक्तं प्राक्प्रतिपूर्य च ॥ ७ ॥

संवेष्येद्वाडतं फौशेयादिकचमणा । जलोदरेऽनु विद्यायं जातं जातं विवेचनः ॥ ८ ॥

एक ही दिन में सम्पूर्ण दोषों को (सम्पूर्ण जल को) नहीं निकाल देवे क्योंकि एक ही दिन में सम्पूर्ण जल निकाल देने से कास, श्वास, ज्वर, तुष्णा, गाव्रभद्र, कम्फन और अतीसार रोग हो जाते हैं और उदर किर जल से पूर्ण हो जाता है । इसलिये तीसरे, पाँचवें, सातवें और नवें दिन यथा कम से अल्प अथवा निकालना चाहिये और उस छेदे द्वय वर्ण को तेल और नमक भिलाकर लिप्त कर देवे और ब्रण को जला देवे (दाग देवे) । यदि विष दोष से जलोदर हुआ हो तो प्रथम रक का प्रतिपूरण करना चाहिये तथा फौशेय (रेशमी) वज्र अथवा भेड़, बकरी आदि के चर्म से मलीमौति बेषित कर देना चाहिये । जलोदर में जब २ जल आता जावे तब तब विवेचन द्वारा निकालते रहना चाहिये ॥ ५-८ ॥

विरिक्तजटराधमानं स्नेहाद्यैर्वस्तिभिर्येत् । निःस्तुतो छिह्नितो पेयामस्नेहलवणां पिवेत् ॥ ९ ॥
अतः परं तु षण्मासान्वीरवर्ती भवेत्तरः । त्रीन्मासान्वयसा पेयां पिवेत्त्रीश्चापि योजयेत् ॥ १० ॥
सकोरत्पूर्षश्यामाकं पयसा लवणं लघु । नरः संवासरेणैवं जयेदाग्नु जलोदरम् ॥ ११ ॥

जिरेचन लेने पर यदि उदराधमान हो तो स्नेह वर्सित द्वारा उसे नष्ट करना चाहिये । जल निकालने के पश्चात रोगी को जलून कराकर स्नेहरहित तथा लवणसंसर रहित पेया पिलाना चाहिये । पश्चात ही मास तक केवल दूध ही पिलाना चाहिये, फिर तीन मास तक दूध और पेया भिलाकर पिलाना चाहिये, फिर तीन मास कोदो, साँवा दूध के साथ देना चाहिये अथवा सेवा सेवा नमक लघु मात्रा में भिलाकर पेया पिलानी चाहिये । इस प्रकार एक वर्ष तक पथ्य सेवन करने से मनुष्य जलोदर को शीघ्र नष्ट कर सकता है ॥ १०-११ ॥

अथ सर्वोदरेषु सामान्यविधिः ।

तदराणां मलाव्यत्वाद्वद्वृशः शोधनं हितम् । चीरेणैरण्डजं तैलं पिवेत्तलं पयसा वा दिने दिने ॥ १२ ॥

उदर रोगों की सामान्य चिकित्सा—उदर रोगों में प्रायः मल की अधिकता होती है (इसीसे रोग में वृद्धि भी होती है) इसलिये उदर का बहुत बार शोधन कराना चाहिये (विवेचन देना चाहिये) इसके लिये दूध के साथ परण्ड तेल पान करना चाहिये अथवा गोमूत्र के साथ परण्ड तेल कई बार पान करना चाहिये अथवा ज्योतिष्मती (माल कांगनी) का तेल दूध के साथ प्रतिदिन पान करना चाहिये ॥ १ ॥

मूत्राण्यष्टातुर्द्विरणां सेके पाने च योजयेत् ॥ २ ॥

आठो प्रकार के मूत्र उदररोगियों को सिवन तथा पान करने के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

देवदार्वादिलेपः—

देवथापलाशाकंहस्तिपिप्पलिशिक्तुः । साक्षात्पूर्वैः प्रदिव्याद्वदरं शनैः ॥ १३ ॥

देवदार्वादिलेप—देवदारु, पलास, मदार, गजपीपरि और सहितन की छाल, असगन्ध समग्रग ले पीसकर गोमूत्र भिलाकर उदर पर धीरे २ लेप करे तो उदर रोग में लाभ होता है ॥ १३ ॥

रोहितकादियोगः—

रोहितकाभयाशुण्ठीः पिवेन्मूत्रेण शक्तिः । सर्वोदरहरं प्लीहमेहार्शःक्लिपुलमनुत् ॥ १४ ॥

रोहितकादियोग—रोहितक (रहेडा), हरा, सोडी का चूर्ण कर गोमूत्र के भनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, मेह, अर्द्ध, झूमि और गुरम नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

विशालादिः—

विशालाशङ्कुनीदन्तीश्चिवृत्तिफलकाव्रयम् । निशाविद्युङ्कं क्लिपलं मूत्रेणोदरवान्पिवेत् ॥ १५ ॥

विशालादियोग—माहरि, शंखिनी (शंखादुक), दन्तीमूत्र, निशोय, वैवरा, इरा, रहेडा,

११६

योगरत्नाकरः

हरदी, वामीरंग, कवीका, समभाग लेकर विषिवत् चूर्ण कर गोमूत्र के साथ पान करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

यथो वा चब्यदन्त्यविनविड्वृद्धोषकविकतम् ।

येयं वा शृङ्खलेवाराम्बु कषायो दासुव्विजः । चब्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये ॥ १ ॥

यथो-आदि योग—चब्य, दन्तीमूल, चित्रकमूल, वामीरंग, सोंठि, पीपरि, मरिच समान ले करकर दूष के साथ पान करे अथवा अद्रक का स्वरस पान करे अथवा देवदारु और चित्रकमूल का कवाय अथवा चब्य और सोंठि का क्षवाय बनाकर पान करे तो उदर रोग शान्त होता है ॥ १ ॥

मुश्तितात्—हरीतकसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः ।

सहस्रं पिप्पलीनां वा स्तुवक्षीरेण सुभावितम् ॥ १ ॥

पिप्पलीवर्धमानं वा क्षीराशी वा शिलाजतु । तद्वद्वा गुणगुलु जीरं तुल्याद्रकरसं तथा ॥

चिक्राकामरदारम्भां करकं द्वीरेण वा पिवेत् ॥ २ ॥

एक सहस्र बड़ी हरदी को क्रम से गोमूत्र के साथ (प्रथम एक हरदी से प्रारम्भ करे और एक २ हरदी बढ़ाता आवे) सेवन करे और दूष का ही आहार करे अथवा एक सहस्र पीपरि को लेकर सेहुड़ के दूष के साथ भावित कर उसी क्रम से सेवन करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ अथवा वर्धमान पिप्पली योग का सेवन करे और दूष का ही पथ्य करे अथवा शुद्ध शिलाजीत का सेवन करे और दूष का पथ्य करे अथवा शुद्ध गुणगुल को दूष के साथ सेवन करे अथवा दूष में समान भाग अद्रक का रस मिलाकर सेवन करे अथवा चित्रक मूल और देवदारु समभाग ले करकर दूष के साथ पान करे तो उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पिप्पलीवर्धमानम्—

श्रिभिरथ परिवृद्धं पञ्चभिः सप्तभिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्धमानम् ।

इति पिवति युवा यस्तस्य न यासकासउवरजटरगुदाशीर्वातरस्कच्छयः स्युः ॥ ३ ॥

वर्धमान पिप्पली योग—तीन, पाँच, सात अथवा दस पीपरि के क्रम से बड़ा कर जो मनुष्य वर्धमान पिप्पली योग का सेवन करता है और दूष का पथ्य करता है उस पुरुष को शास, कास, ऊर, उदर, गुदा, अश्य, वात रक्त और क्षय ये सब रोग नहीं होते हैं ॥ १ ॥

देवद्रुमादि—देवद्रुमं शिग्र मसूरकं च गोमूत्रपिष्ठामध्यवाऽश्वगन्धाम् ।

पीत्वाऽस्यु हन्यादुदरं प्रवृद्धं कूमीनसशोफाकुदरं च दृष्यम् ॥ १ ॥

देवद्रुमादि योग—देवदारु, सहितन की छाल, मसूर, अथवा केवल असगन्ध को गोमूत्र के साथ पीस कर पान करने से बड़ा हुआ उदर रोग, कूमी रोग, शोथ और दूष्योदर नष्ट होते हैं ॥

पटोलाधं चूर्णम्—

पटोलमिन्द्रजनीविड्वृत्रिकलात्वचः । क्रिप्पलकं नीलिनीं च त्रिवृतां वेति चूर्णयेत् ॥ १ ॥

बटाधान्कार्षिकानन्त्यास्त्रीश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिवेत् ॥

विरिक्तो शुद्ध भुजीत भोजनं जाङ्गले रखेतः । मण्डपेयां च पीत्वा वा सब्द्योषं षडहं पथ्यः ॥ ३ ॥

पटोलाधं चूर्ण—परवर का ढार पात, इन्द्रजी, हरदी, वामीरंग, त्रिफला (भावला, हरा, बड़ी), दालचीनी, कवीका, नील का फल और निशोथ इन ओषधियों में से आदि की ही ओषधियों की (परवर से दालचीनी तक) एक २ कर्ष लेकर अन्त की तीन ओषधियों को अर्थात् कवीका दो कर्ष, नील का फल तीन कर्ष और निशोथ चार कर्ष लेकर सबका चूर्ण कर मुष्टि प्रमाण (एक पल) की मात्रा से गोमूत्र के साथ पान करे । (यह मात्रा अत्यधिक है तू कर्ष की या यथा बछ मात्रा से प्रारम्भ करे) इससे विरेचन हो जाने पर शुद्ध पदार्थों का भोजन

चाकूल जीवों के मास रस के साथ करे अथवा मण्डपेया पीवे । पश्चात् सोंठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण मिलाकर पकाया हुआ दूष है दिन तक पीवे ॥ २-३ ॥

श्रृतं पिबेत्तत्त्वचूर्णं पिवेदेवं पुनः पुनः । हन्ति सर्वोदाराण्येतत्त्वचूर्णं जातोद्वकान्यपि ॥

कामलां पाण्डुरोगं च व्यथयु चापकर्षति ॥ ४ ॥

इस प्रकार बार २ इस चूर्ण को इसी विधि से पान करने से यह चूर्ण सब प्रकार के उदर के रोगों को और जलोदर को भी तथा कामला, पाण्डु रोग और शोथ को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

नारायणचूर्णम्—

यवानी हुपुषा धान्यं त्रिफला सोषक्षुम्बिका । कारबी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा ॥ ३ ॥

शताह्वा जीरं व्योषं व्यर्णं वीरी सचिव्रकम् । द्वौ चारौ पुष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥

विड्वं च सम्भानि दन्तीभागवयं तथा । त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याद्वत्पुर्णुणा ॥ ३ ॥

नारायण चूर्णं—जावान, हाकबेर, खनियाँ, आंबला, हरा, बड़ी, बड़ी, बड़ी (कड़ीजी, काली) (कृष्ण जीरा का भेद), पिप्पलमूल, अजमोदा (वस्तगन्धा), कचूर, वच, सौफ, जीरा, सोंठि, मरिच, पीपरि, सत्यानाशी, चित्रक मूल, यवाखार, सज्जीखार, पुष्कर मूल, कूठ, पांचो नमक (पृथक् २); वामीरंग, प्रत्येक सम भाग लेके और दन्ती मूल तीन भाग, निशोथ और माहरि दो दो भाग, सातला (सेहुड़ भेद) ४ भाग लेकर चूर्ण कर लेवे । यह 'नारायण' नाम का चूर्ण सब प्रकार के रोग समूहों को नष्ट करने वाला है ॥ १-३ ॥

पृष्ठ नारायणो नाम चूर्णो दरिभिः पेयो गुणिमिर्बद्राम्बुना ॥ ४ ॥

आनन्दवाते सुरया वातरोगे प्रसद्वया । द्विष्ठिष्ठेन विट्सङ्गे दाढिमाम्बुभिरक्षर्णसि ॥ ५ ॥

परिकते च वृत्तालैलेणाम्बुभिरक्षर्णके । अगन्द्वरे पाण्डुरोगे कासे आसे गलग्रहे ॥ ६ ॥

हृदोगे ग्रहणीरोगे कृष्टे मन्दानले उवरे । दंट्राविषे भूलविषे गरले कृत्रिमे विषे ॥

यथाहं स्तिनधकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ७ ॥

तक के अनुपान से उदररोगियों को और वैर के स्वरस के अनुपान से हुमरोग वालों को पीना चाहिये और आनन्दवात में दुरां, वातरोग में प्रसन्ना, मलावरोग में दही के नल, अश्य में अनार के स्वरस, परिकतिका में वृक्षाम्ल (कोकम के फल) और अजीर्ण में षड्गोदक के अनुपान से सेवन करना चाहिये, तथा भगन्दर, पाण्डुरोग, कास, श्वास, गलग्रह, हृदोग, ग्रहणी, कुष्ठ, मन्दारिन, ऊर, दंष्ट्राविष (दाँत से काटने से उत्पन्न विष) मूल विष (बड़ी-बड़ीयों का विष), गरल विष और कृत्रिम विष, इन सब रोगों में यथावोग्य यह विरेचन कोष्ठ को जाहिये ॥ ४-७ ॥

क्षारद्वादिन्द्रूणम्—क्षारद्वयानलृप्तोषनीलोलवणपञ्चकम् ।

चूर्णितं सर्विषा पेयं सर्वगुलमोदरापहम् ॥ १ ॥

क्षार द्वयादि चूर्णं—यवाखार, सज्जीखार, चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, जील, पृथक् २ पांचो नमक, प्रत्येक सम भाग लेकर चूर्ण के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के गुणरोग और उदररोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वृन्दाच्छुक्तिकाक्षारादियोगः—

सामुद्रशुक्तिकाक्षारो यवक्षारः सर्वैन्धवः । गोदध्ना संप्रयुज्येत सर्वोदारविनाशनः ॥ १ ॥

शुक्तिकाक्षारादि योग—समुद्र सीप का भस्म, यवाखार, सेन्वानमक समान लेकर चूर्ण कर एकत्र मर्दन कर गी के दही के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं ॥

उष्ट्रीक्षीरपानम्—

उष्ट्रीक्षीरं पिवेदजीर्णं निरन्वो जठराभयी । पष्ठं मासमृद्धुं वाऽपि न च पानीयमाचरेत् ॥ १ ॥

उच्चीकृत पान—जो उदररोगी मनुष्य के वक्ष ऊटी का दूध पीवे अन्न नहीं खाते और दूध उसे पचता जाने, तो इस प्रकार यदि वह एक पक्ष (१५ दिन), एक मास अथवा एक अंतु (दो मास) तक करता रहे और पानी भी नहीं पीवे तो उसका उदररोग नष्ट हो जाता है ॥

अथ घृतानि ।

तत्रादौ विन्दुघृतम्—अर्कस्तीरं पक्षे द्वे तु स्तुहीकीरं पलानि घट् ।

पथ्या कपिलकं श्यामा शश्याकं गिरिकणिका ॥ १ ॥

नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा । पतेषां पलिकैभर्गै घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥
अथास्य मणिने कोष्ठे विन्दुमान्नं प्रदापयेत् । यावदस्य पिबेद्विन्दुन् तावद्वेगान्विविष्यते ॥ ३ ॥

विन्दुघृत—मदर का दूध दो पल, सेहुड़ का दूध छ पल, हर्दी, कबीला, श्यामाकाता वा काली निशेय, अमयतास के फल की राही, इवेतापाराजिता, नील, निशेय, दन्तीमूल, शङ्खिनी (शङ्खाहुक) चित्रकमूल, एक २ पल ले कल्क कर मूर्छित गोघृत एक प्रस्थ और पाकार्य जल ४ प्रस्थ देकर घृत सिद्ध कर इस घृत को कोष्ठ की मणिनता (मलावरोब) मे पक्ष बूंद सेवन करना चाहिये । जितनी बूंद पिलावे उतनी ही बार विरेचन होता है ॥ १-३ ॥

कुष्ठं गुरुमुदुवातं शवयथुं सभगन्दरम् ।

शामयस्युदराण्यष्टौ वृचमिन्द्राशनिर्यथा । एतद्विन्दुघृतं नाम येनाख्यको विरिष्यते ॥ ४ ॥

इसके सेवन से कुष्ठ, गुरुम, उदावतं, शोय, अग्नदर और उदर रोग इस प्रकार शान्त होते हैं जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से वृक्ष नष्ट होते हैं । यह 'विन्दुघृत' ऐसा प्रभावशाली है कि इसको उदर पर मक्क देने से विरेचन हो जाता है ॥ ४ ॥

योगतरक्षिण्या नाराचघृतम्—

त्रिफला चित्रको दन्ती वृहती कण्ठकारिका । स्तुही चार्कविद्वानि घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ १ ॥

तस्य भृद्भिसिद्धस्य कर्षर्धं पाययेन्नरम् ।

शोथगुणमोदरानाहप्लीहोदरजलोदरान् । नाशयश्युख्वाणानेतान्सर्विनर्नाचसङ्खितम् ॥ २ ॥

नाराच घृत—जैवरा, हर्दी, बडेहा, चित्रकमूल, दन्तीमूल, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, सेहुड़, मदर, बामीरंग, समभाग कल्क कर एक पक्ष कुडव ४ पल मूर्छित गोघृत के साथ चतुर्थी प्रमाण (१ पक्ष) लेकर मिला देवे और पाकार्य जल ४ कुडव (२ मानी) मिलाकर मन्द अग्नि से घृत सिद्ध कर आवा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से पान करने से शोय, गुरुम, उदर, आनाह, ब्लोदर, अकोदर ये सभी रोग यदि अत्यन्त बढ़े दुष्ट भी हों तो उन्हें यह 'नाराच' नामक घृत नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

त्रिवृताधं घृतम्—

पथ्यस्यगुणे सर्विः प्रस्थं स्तुकप्रयसः पलम् । त्रिवृतापलकहेन सिद्धं अठरगुरुमनुव ॥ १ ॥

त्रिवृताध घृत—मूर्छित गोघृत एक प्रस्थ और दूध गाय का अंडगुना (८ प्रस्थ), सेहुड़ का दूध पक्ष और निशेय का कल्क एक पक्ष इनको एकत्र कर घृत सिद्ध कर सेवन करने से जठर रोग तथा गुरुम नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमूलाधं घृतम्—द्वे पञ्चमूलयो त्रिवृतां निकुरम्भं ससप्तलं चित्रकशिग्रमूलम् ।

करञ्जबीजं त्रिफलां, गुहुचीमेरण्डमूलं मदयन्तिकां च ॥ १ ॥

पाढ़ीं सभाज्ञीं सुचर्वीं सतिकां सरोहिषां यासकुचेलिकां च ।

पृथक्समाहर्य पलं जलस्य द्वोषे पचेत्तच्छुरंशशेषे ।

घृतं विषकं सकंचाययुक्तं निहन्ति पीतं सकलोदराणि ॥ २ ॥

पञ्चमूलाध घृत—दोनों पञ्चमूल (दशमूल) के पृथक् २ दसों द्रव्य, निशेय, दन्तीमूल, सप्तला (सातल) चित्र की जड़, सहिजन की जड़, करंज के बीज, अंवरा, हर्दी, बडेहा, गुरुचि, परण्डमूल, मदयन्ति (नवमरितिका), पुरश्नपाढ़ी, बमनेठी, कृष्णबीरक, कुटकी, रोहिष तुण (गुलाबकंडा), जवासा और पुरश्नपाढ़ी पृथक् २ एक २ पक्ष लेकर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) बक्ष के साथ चतुर्थीशावशेष पाक कर उतार-छानकर जितना काथ हो उसके चतुर्थीश मूर्छित, गोघृत मिला घृत सिद्ध कर पान करने से सब प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

हिंगवादिघृतम्—

हिंगवा इसोनाद्र्वं कशिग्रपथ्याषडग्रन्थदन्तीदशमूलतोयैः ।

द्वित्तारपञ्चोषणकरपादैः सिद्धे घृतं तडजठरे प्रशरस्तम् ॥ १ ॥

हिंगवादि घृत—हींग, लहसुन, अद्रक, सहिजन की जड़, हर्दी, वच, दन्तीमूल और दशमूल के पृथक् २ दसों द्रव्य समभाग लेकर सोलह गुने जड़ में चतुर्थीशावशेष काथ कर उतार-छानकर जितना काथ ही उसके चतुर्थीश मूर्छित गोघृत और घृत से चतुर्थीश आगे लिखे हुये यवासार, सज्जीखार, पीपरि, पिपरामूल, चब्य, चित्र की जड़ और सोंठि इनको समान ले करक कर सबको एकत्र कर घृत सिद्ध कर सेवन करने से उदररोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

तकपानम्—

बातोदरी पिबेत्तकं पिष्पलीछवणान्वितम् । शर्कारामरिष्योपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ १ ॥
थवानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी । सज्जिपातोदरी तकं श्रिंगदुष्टारसैन्धवैः ॥ २ ॥

बद्धोदरी तु हपुषादीद्यकाजाजिसैन्धवैः ।

पिबेचिक्कदोदरी तकं पिष्पलीच्छौदसंयुतम् । च्यूष्णज्ञारालवण्यैर्युक्तं तु सलिलोदरी ॥ ३ ॥

उदररोग में तकपान—वातज उदररोग वाला मनुष्य तक में पीपरि का चूर्ण और सेधानमक मिलाकर पीवे और चित्र उदररोग वाला शङ्खकर और मरिच का चूर्ण मिलाकर, कफज उदररोग वाला जवाहन, सेधानमक, जीरा, सोंठि, पीपरि और मरिच का समान मिलित चूर्ण मिलाकर सत्रियातज उदररोग वाला सोंठि, पीपरि, मरिच, यवासार और सेधानमक का समान मिलित, चूर्ण मिलाकर, बढोदर वाला शङ्खवेर, जवाहन, जीरा और सेधानमक का चूर्ण मिलाकर, छिद्रोदर (श्वतोदर) वाला पीपरि का चूर्ण और मधु मिलाकर और ब्लोदर वाला मनुष्य सोंठि, पीपरि, मरिच, यवासार और सेधानमक का चूर्ण मिलाकर तक को पीवे । इस प्रकार के तक सेवन से सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं ॥

शोफोदरचिकित्सा—हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्वाच्छिरहाकथायः ।

संगुगुलुम्बंयुतश्च पेयः शोफोदराणां प्रवरः प्रयोगः ॥ १ ॥

शोयोदर चिकित्सा—हर्दी, सोंठि, देवदार, गदहपुरना, गुरुचि समभाग के काथ कर उसमें शुद्ध गुग्गुल तथा गोमूत्र का प्रक्षेप देकर पान करना शोयोदर के लिये उत्तम योग है ॥ १ ॥

पुनर्नवानिन्द्रपटोळशुप्तीतिकाभ्यादार्थ्यमूताकथायः ।

सर्वाङ्गशोफोदरकासशूलधासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ २ ॥

पुनर्नवा, नीम की जड़, परवर की डाल पत्र, सोंठि, कुटकी, हर्दी, दाशहरदी, गुरुचि समभाग के काथ कर सेवन करने से सभ्यून अङ्गों का शोय, उदररोग, कास, शूल, शास और पाण्डुरोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्नवादार्थ्यमयागुह्यचीः पीवेत्समूचा महिषाचयुक्तः ।

स्वप्नोषशोफोदरपण्डुरोगस्थैर्यप्रसेकोर्धकफामयेषु ॥ ३ ॥

पुनर्नवा, दाशहरदी, हर्ष, गुहचि सम भाग के काथ कर गोमूष्र और शुद्ध महिषाक्ष गुण्युल का प्रक्षेप देकर पान करने से त्वचा के दोष, लोथ, उदर, पाण्डुरोग, स्थूलता, प्रसेक (आश्वस्त्राव) और ऊर्ध्वमाग के कफब रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गोमूष्रयुक्त महिषीपथो वा चीरं गांवा वा त्रिफलाविमिश्रम् ।

श्रीराजभुक्तेवलभेव गव्यं मूत्रं पिवेद्वा श्वयथूदरेषु ॥ ४ ॥

गोमूष्र मिकाकर भैस की दूध, अथवा त्रिकका का चूर्ण मिलाकर गाय का दूध अथवा केवल गोमूष्र पीने और दूध तथा अन्न को ही अक्षण (पथ्य) करने से शोधोदररोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

सप्ताहं माहिषं मूत्रं पथ्यसा चाम्बुदित्तम् । पिवेद्वौदृं पथो मासं श्वयथूदरनाशनम् ॥ ५ ॥

एक सप्ताह तक भैस का मूत्र बलरदित दूध में मिलाकर पीने से अथवा ऊंठनी का दूध एक मास तक पीने से शोधोदररोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

विल्वादिनचित्ताद्र्कश्छवेरकाथेन कलकेन च सिद्धमाप्यम् ।

सच्छागदुधं ग्रहणीगुदोरथशोकाग्निसादाश्चिह्नद्विषितम् ॥ ६ ॥

वेल की छाल, चित्त की जड़, चव्य और अद्रक सम भाग ले बाय करे और इन्हीं द्रव्यों का कल्प भी करके जितना बाय हो उसके चतुर्थांश मूर्च्छित गोधृत और धृत चतुर्थांश समान मिलित करक तथा बकरी का दूध बाय के समान भाग मिलाकर धृत सिद्ध कर सेवन करने से ग्रहणी, गुदा के रोग (अश्वादि), शोथ, मन्दाग्नि और अश्वचि से सब नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

अथ रसाः ।

तत्रादौ नाराचो रसः—

भृष्टक्षणतुल्य तु मरिषं च रसं समम् । गन्धकं पिपली शूण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ १ ॥

सर्वतुश्यं चिपेद्वन्तीजीं सर्वमेकलमस्यम् । द्विगुञ्जं रेचनं चैतहुदराणि द्ययोहस्ति ॥ २ ॥

नाराचरस—शुद्ध टक्कण, मरिच, शुद्ध पारद, १-१ भाग और शुद्ध, गन्धक पीपरि और सौंठि दो २ भाग चूर्ण कर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य ओषधियों के चूर्ण को मिला कर मर्दन कर जितना चूर्ण हो उसके बारबार शुद्ध दन्तीजीं का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से बटी बनाकर सेवन करने से विरेचन होता है और उदररोग नष्ट होता है ॥

इच्छाभेदी रसः—

शुण्ठीमरिचसंयुक्ता रसगन्धकटक्कणाः । जेपालविगुणः प्रोक्तः सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥ १ ॥

हृष्टाभेदी रसो श्वस्य द्विगुजां ससितां पिवेत् । तक्कीदूनं च द्वात्वयं पथ्यमन्त्र विजानता ॥ २ ॥

इच्छाभेदीरस—सौंठि, मरिच, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टक्कण १-१ भाग के चूर्ण कर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर उसमें १ भाग शुद्ध जमाक्ष-गोदा के बीज का चूर्ण मिला मर्दन कर दो रत्ती के प्रमाण की बटी बना शक्ती के साथ सेवन कर जितने तक अर्थात् जितनी बार बल पीवे उतनी ही बार विरेचन होता । यह 'इच्छाभेदीरस' हृष्टानुसार मेदन करता है । विरेचन के पश्चात् मट्टा और भात का पथ्य देना चाहिये । (गरम बल पीने से इसमें विरेचन का अवरोध होता है) ॥ १-२ ॥

जलोदरातः—

पिपली मरिषं ताङ्रं काञ्चनीचूर्णसंयुतम् । स्तुहीद्वीरेद्विनं मर्यं तुल्यं जेपालकीजकम् ॥

चिक्कं भुक्तं विरेकेण साथं इन्ति जलोदरम् ॥ १ ॥

जलोदरातः—पीपरि, मरिच, ताङ्रमेतम्, हरदी का चूर्ण सम भाग ले मर्दन कर सेहुङ के रस के साथ दिन भर (४ पद्धर) मर्दन कर जितना हो उसके बारबार शुद्ध जमालगोटा के बीच

का चूर्ण मिला मर्दन कर निष्क प्रमाण (४ मात्रा) से सेवन करने से विरेचन होकर अछोदररोग नष्ट हो जाता है । यह सर्थ है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

दोषैः कुचौ हि सम्पूर्णे वहिर्मन्दस्वसृच्छ्रिति । तस्माज्ञोष्यानि योज्यानि दीपनामि लघूनि च ॥

पथ्यापथ्य—उदर रोग में बातादि दोष कुशिस्थान में भरे रहते हैं जिससे अग्नि मन्द हो जाती है, इसलिये इस रोग में दीपन और लघु भोजन (पथ्य) देना चाहिये ॥ १ ॥

शालिषट्कगोप्यमयवनीवाऽभोजनम् । विरेकास्थापनं श्रेष्ठं सर्वथु जठरेषु च ॥ २ ॥

शालिषान का चावल, साठी का चावल, गेहूं, जौ और नीवार (तीनाधान का चावल) भोजन के लिये देना चाहिये तथा विरेचन और आस्थापन कर्म उदर रोगों में करना उत्तम है ॥

पथ्यापथ्यसंहितायाम्—

विरेचनं लङ्घनमबद्सम्भवाः कुलरथमुद्वाहणशालयो यवाः ।

मृगा द्विजाजाङ्गकसंज्ञयाऽन्विताः पेया सुरा माद्विकसीधुसैन्धवाः ॥ १ ॥

तक्कं रसोनोद्धुतैलमाद्र्कं शालिं च शाकं कुलकं कठिल्कम् ।

पुनर्नवा शिग्रकलं हरितकी ताम्बूलमेला यवशूकमायसम् ॥ २ ॥

अजागवोद्धीमहिषीपथो जलं लघूनि तीव्राणि च दीपनान्यपि ।

यथासम्लं पथ्यग्नोऽयमाश्रितः सखा नुणां ख्यादुदरामये सति ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—विरेचन कर्म, लघून, एक वर्ष के पुराने कुलयी, मूंग, रक्त वर्ण के शालिषान का चावल, यव, मूग (जांगल पशु), पक्षी इनका मास रस, पेया, सुरा, मधु, सीधु, सेंधा नमक, मट्टा, लहसुन, परण्ड तैल, अद्रक, शालिच शाक, परवर, करैली, पुनर्नवा, सृष्टिजन का फल, हर्ष, पान, छोटी इलायची, जवाखार, लोहमस्म, बकरी, गाय, ऊंठनी, भैस के दूध तथा मूत्र और लघु, तीव्र तथा दीपन द्रव्य सेवन करना चाहिये । रोगी के दोष बलवल के अनुसार इन उपयुक्त पदार्थों का सेवन उदर रोगी मनुष्यों को करना चाहिये अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ २-३ ॥

अम्बुषानं दिवास्वापं गुर्वभिष्यन्दिभोजनम् । यथायामं चाव्यवानं च जठरी परिवर्जयेत् ॥

जलं पीना, दिन में सोना, गुरु और अभिष्यन्दी पदार्थ का भोजन, परिश्रम, मार्ग चक्का और यान इन सब को उदर का रोगी खांग दे अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ४ ॥

इति उदररोगप्रकारणम् समाप्तम् ।

अथ शोथनिदानम् ।

शोथस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं रूपमाद् ॥

रक्षपित्तकफान्वायुदुष्टो दुष्टान्वद्विः शिरा । नीवा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यान्मासरवगाश्रयम् ॥

उरसेऽप्य संहतं शोफं तमाहुर्निच्यादतः ॥ १ ॥

शोथ की सम्प्राप्ति—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित वायु, दूषित रक्त, पित्त और कफ को वायु तिराओं में के जाकर उनकी गति को अवश्य कर मास और त्वचा के आश्रय में उन्नत तथा कठिन शोथ उत्पन्न कर देता है । वह निरोध संग्रहात्मक होता है ॥ १ ॥

सर्वं हेतुविशेषं स्तु रूपमेदास्वात्मकम् । दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिष्याताहिषादपि ॥ २ ॥

वह शर्श हेतु विशेष से तथा रूपमेद से नव प्रकार का होता है, जैसे दोषों के पृथक् ३ भेद से (वात-पित्त और कफ से) तीन, द्वाद्वय तीन, सात्रिपात्रिक एक, अमिवातज एक और विष से एक, इस प्रकार नव प्रकार का शाय होता है ॥ २ ॥

तस्य पूर्वस्पमाह—तत्पूर्वरूपं द्रवथुः शिरायामोऽङ्गौरवम् ।

शोथ का पूर्व रूप—जब शोथ होने को होता है तब उसके पहले नेत्रादिकों में विशेष दाह, सिराओं में तमाव और शरीर का गुरु होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥
कारणमाह—शुद्धयामयाभक्तक्षाबलानां ज्ञाराम्लतीवगोष्णगुरुपसेवा ।

दध्याममृच्छाकविरोधिद्वृष्ट्यामरोपसृष्टाच्छनिषेवणं च ॥ ४ ॥

शोथ के कारण—कोष्ठ शुद्धि जिसकी हुई हो (वमन विरेचन आदि दिया गया हो), जबर पाण्डु आदि रोग जिसे हुआ हो, जो उपचास अथवा बिगुण भोजन किया हो, इन कारणों से दुर्बल और बलहीन हुए मनुष्य वदि श्वार, अम्ल, तोक्षण, उष्ण और गुरु पदार्थ, दही, आम (अपक्व) पदार्थ, मिठी, ज्वाक, (प्रश्वाक) विरोधी, दूषित तथा विषमित अन्न आदि का अक्षण कर लेता है तो उसे शोथ रोग हो जाता है ॥ ४ ॥

व्यार्थस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्मीभिदातो विषमा प्रसूतिः ।

मिथ्योपचारः प्रतिक्रमणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ ५ ॥

और अश्वरोग, निश्चेष्ट रहना, देह की शुद्धि नहीं करना (दोषों का शोधन नहीं करना), मर्म स्थानों में आधात होना, प्रसन का विषम होना (गर्भपातादि होना) और मिथ्या उपचार (वमन आदि का अवोध्य उपचार या अनावश्यक वमनादि करने करना) इन सब कारणों से शोथ रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ५ ॥

तस्य सामान्यलक्षणमाह—

सगौरचं द्यादनविश्वस्वं सोऽसेधमूलाऽथ शिरातनुव्यवम् ।

सलोहमर्षं च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं व्ययथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

शोथ के सामान्य लक्षण—शरीर में गुरुता, मन का स्थिर नहीं रहना, उत्सेष अर्थात् त्वचा में लंकापन (शोथ) होना, उम्मा होना, सिराओं का दुर्बल होना, रोमाश्र होना और वर्ण का विवर्ण हो जाना ये सब शोथ होने के साथारण लक्षण हैं ॥ ६ ॥

वातजशोथमाह—चलस्तनुव्यवप्लुप्तोऽसितःप्रसुसिहर्वार्तिंयुतोऽनिमित्ततः ।

प्रशास्यति प्रोक्तमति प्रपीडितो दिवावली च श्वयथुः समीरणात् ॥ ७ ॥

वातज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ चलता रहे अर्थात् एक नियित स्थान पर नहीं रहे, शोथ पर की त्वचा पतली, कंकश, अरुण अथवा कृष्ण वर्ण की हो, उसमें शून्यता और रोमाश्र होता हो, इनके सहित पीड़ा अकारण ही शान्त हो जाती हो (कभी कठ जाती हो), तथा दबाने से शोथ दब जाता हो (फिर उठ जाता हो) और दिन में शोथ बलवान हो । (शोथ में शुद्धि हो और रात्रि में कम हो) उसे वायु के कोप का शोथ जानना चाहिये ॥ ७ ॥
पैतिकमाह—सृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवाऽवरभ्रमस्वेदतुषामदानिवतः ।

य उत्थयते ह्यपर्वशुगिरिशागङ्गूत्सपित्तशोफो भृशाद्वाहपाकवान् ॥ ८ ॥

पित्तज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ का स्थान कोमल हो, गम्भ युक्त, कृष्ण वर्ण अथवा पीत वर्ण का हो, और ज्वर, अम, स्वेद, तृपा और मद हो, शोथ में दाह हो, स्पर्श करने से पीड़ा हो, नेत्र रक्त वर्ण के हों और शोथ में अस्यन्त दाह तथा पाक हो उसे पित्त के कोप का शोथ जानना चाहिये ॥ ८ ॥

कफजमाह—गुरुः स्थिरः पाण्डुररोधकानिवतः प्रसेकनिद्रावमिवद्विमान्यकृत् ।

सकृच्छजन्मप्रश्नो निपीडितो न चोक्षेद्रात्रिवली कफात्मकः ॥ ९ ॥

कफज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ गुरु (मारी) तथा स्थिर हो, पाण्डुवर्ण का, अरुचि रोग युक्त, खाव, निद्रा, वमन और मन्दारिन करने वाला, तथा कठिनता से उत्पन्न और शान्त

होने वाला हो और दबाने से इवे नहीं तथा रात्रि में शोथ बढ़ जावे उसे कफ के कोप से होने वाला शोथ जानना चाहिये ॥ ९ ॥

शून्यन्ते वस्थ गात्राणि स्पन्दक्षिव रुज्जिव । पीडितोऽयुष्मति च वातशोफं तमादिवेत् ॥

यश्चाप्यहृष्मणाभिः शोफो नक्तं प्रणश्यति । स्नेहोष्णामदृनाम्यां च प्रणश्येत्स च वातिकः ॥

अन्य वातज शोथ—जिस शोथ रोग में शरीर में कम्पन तथा पीड़ा होता हुआ शोथ उत्पन्न हो और दबाने से शोथ बढ़कर फिर उठ जावे उसे बातज शोथ कहते हैं । और जिस शोथ का वर्ण अस्थ द्वारा दर्शन हो तथा रात्रि में शोथ नष्ट हो जावे और स्नेह पदार्थ (घृत-तैलादि) के मदन्त तथा उष्ण सेक्षण से नष्ट हो जावे उसे बातज शोथ कहते हैं ॥ १०-११ ॥

यः पीतः सज्जवरातिः स्थाद्वृथते च विद्यते । स्विद्यते कुट्टते गन्धी स पैतः श्वयथुः स्मृतः ॥

अन्य पित्तज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ का वर्ण पीत हो, ज्वर पीड़ा (सन्ताप वा दुःख) दाह, स्वेद, क्लेद और गन्ध हो उसे पित्तज शोथ कहते हैं ॥ १२ ॥

यः पीतसुखवर्णवृथक्षूर्धमध्याप्रसूयते । तनुव्यचातिसारौ च स पैतः श्वयथुः स्मृतः ॥ १३ ॥

जिस शोथ में मुख का वर्ण तथा त्वचा पीत वर्ण के हो गये हों तथा शोथ की प्रथम उत्पत्ति मध्य शरीर से हुई हो, त्वचा पतली और अतीसार रोग हो उसे पित्तज शोथ कहते हैं ॥ १३ ॥

द्विदोषजमाह—निदानाकृतिसंसर्गच्छव्यथुः स्थाद् द्विदोषजः ॥

द्विदोषज शोथ दो दोषों के मिलित निदान और लक्षण जिस शोथ रोग में हों, उसे द्विदोषज अर्थात् वात पित्तज, पित्त कफज और वात कफज शोथ जानना चाहिये ।

सञ्चिपातजमाह—सर्वाकृतिः सञ्चिपाताच्छ्वोफो द्यामिश्रहेतुजः ॥ १४ ॥

सञ्चिपातिक शोथ—जिस शोथ रोग में सब दोषों के मिलित कारण और लक्षण एकत्र मिलित दिखाई देवें उसे सञ्चिपातिक शोथ जानना चाहिये ॥ १४ ॥

अभिधातजमाह—

अभिधातेन शक्षादिष्ट्येदभेदज्ञतादिभिः । हिमानिलोद्यनिलैभर्ज्ञातकपिकच्छुजैः ॥ १५ ॥

रसैः शूक्रं संसप्शाच्छ्वयथुः स्थाद्विसर्पात्रून् । भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥

अभिधातब शोथ—जो शोथ आधात के कारण शाकादिकों से भिन्न जाने और क्षत हो जाने से हो जाता है और शीतल वायु तथा समुद्र की वायु के लगने से, मिलावे के संसर्ग से, केवाच के रस यं उसके फल पर के रोगों के लगने से हो जाता है वह फैलने वाला शोथ होता है और उसमें अत्यन्त उष्णता होती है और वह क्षोदित वर्ण का होता है और प्रायः करके पित्तज शोथ के लक्षणों वाला होता है ॥ १५-१६ ॥

विषजक्षणमाह—

विषजः सविषग्राणिपरिसर्पणमूलश्नात । दंष्ट्रादन्तनसाधातादविषग्राणिनामपि ॥ १७ ॥

विषवृश्मानिलस्पशाद्वयोगावच्चूर्णनात् । सृदुश्लोऽवलभ्वी च शीघ्रो दाहश्वाकरः ॥ १८ ॥

अन्य विषज शोथ—जो शोथ विषज होता है वह विष वाले जीवों (सर्पादि) के शरीर पर चलने और मूत्र आदि कर देने से और विषरहित जीवों (मनुष्यादि) दाँत काटने से नस्तादि के आधात से शोथ हो जाता है, विष वाले जीवों के मल-मूत्र-शूक्र आदि से उक्त पर्व मिलन वर्षों के संसर्ग से भी शोथ हो जाता है, विष वाले वृक्षों के वायु के स्पर्श से और गर विष (कृत्रिम विष) के चूनी आदि के शरीर पर कग जाने से शोथ हो जाता है । वह शोथ, मल,

चक (फैलने वाला), नीचे की ओर बढ़ने वाला, स्त्रीब्रह्म होने वाला तथा दाह और पीड़ा को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ १७-१८ ॥

यस्मिन्देशे दोषाः शोथं कुर्वन्ति तमाह—
दोषाः शयथुमूर्खं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः ॥ १९ ॥

पक्षाशयस्था मध्ये तु चर्चास्यानगतास्ववधः। कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताः कुर्यात् सर्वसंरं तथा ॥ २० ॥
शोथेत्पत्ति का स्थान—जब वातादिक दोष त्रुपित होकर आमाशय में रहते हैं तब अध्यवैभाग (वक्षःस्थल मुखादि) पर शोथ करते हैं और जब पक्षाशय में रहते हैं तो मध्यशरीर (उदर आदि) पर और जब पुरीषस्थान में रहते हैं तो शरीर के अधोभाग (पादादि) में शोथ करते हैं तथा जब सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहते हैं तो सम्पूर्ण शरीर में शोथ करते हैं ॥ १९-२० ॥

यो मध्यदेशे शयथुः सकटः सर्वगत्य यः। अधोङ्गेऽरिष्टभूतः स्याद्यश्वोर्ध्वं परिसंपर्ति ॥ २१ ॥
कष्ट साध्यादि शोथ—जो शोथ मध्य अथवा सम्पूर्ण शरीर में होता है वह कष्टसाध्य होता है और जो शोथ अधोभाग (पादादि) में हो और ऊपर को बढ़े वह अरिष्टभूत अर्थात् अतिकष्टसाध्य होता है ॥ २१ ॥

उपद्रवारिष्टस्यासाध्यत्वमाह—

शासः पिपासा छूर्विद्व दौर्बल्यं उवर एव च। यस्य चान्ने रुचिनास्ति शोथिनं पदिवर्जयेत् ॥
असाध्य शोथ—जिस शोथरोग में शास, पिपासा, वमन, दुर्बलता, उवर और अन्न में असुचि हो उस शोथ वाले को त्याग देना चाहिये अर्थात् वह असाध्य है ॥ २२ ॥

ऋधर्वगामी नरं पद्मयामधोगामी छियं मुखात्। उभयोर्विस्तिसञ्जातः शोफो हन्ति न संशयः ॥
यदि पुरुष को नीचे आग (पादादि) से शोथ होकर ऊपर को बढ़े और खी की मुख की ओर उत्पन्न हुआ शोथ दोनों का (खी वा पुरुष दोनों का) अवश्य नाश कर देता है ॥ २३ ॥

स्थानमेदेनासाध्यत्वमाह—

अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुद्धवः। तु उद्धवं हन्ति नारीं तु मुखजो गुद्धजो द्वयम् ॥ २४ ॥
जो शोथ पुरुष को विना उपद्रव—शासादि रहित) का भी हो और पैर से उत्पन्न होकर ऊपर को बढ़े वह पुरुष को और जो शोथ खी को विना उपद्रव का भी हो और मुख से होकर नीचे की ओर बढ़े वह खी को तथा गुद्ध स्थान में हुआ खी पुरुष दोनों को मार डालता है ॥ २४ ॥
उपद्रवानाद—श्वासः पिपासा दौर्बल्यं उवरच्छुर्विरोचकाः।

हिक्कातीसारकासाध्य शोथिनं छपयन्ति हि ॥ २५ ॥

शोथ रोग में शास, पिपासा, दुर्बलता, उवर, वमन, असुचि, हिक्का, अतीसार और कास ये उपद्रव जब हो जाते हैं तब शोथ के रोगी को मार डालते हैं ॥ २५ ॥

तन्त्रान्तरे—पादप्रवृत्तः शवयथुर्नुणां यः प्राण्युथानसुखम् ।

वक्षवादधस्ताद्यो याति वर्तित तस्य न सिद्धयति ॥ १ ॥

पुरुष का जो शोथ पैर से उत्पन्न होकर ऊपर मुख की ओर बढ़े और खी को जो शोथ मुख से उत्पन्न होकर वस्ति की ओर जावे वह सिद्ध नहीं होता है अर्थात् असाध्य है ॥ १ ॥

क्षीरपाणिनाऽप्युक्तम्—

ऊर्धवगामी नरं पद्मयामधोगामी मुखात्स्थियम्। उभयोर्विस्तिसञ्जातः शोथो हन्ति न संशयः ॥

पुरुष का शोथ यदि पैर से ऊर्धवगामी हो अर्थात् पैर से होकर ऊपर बढ़े और खी का मुख से अधोगामी हो अर्थात् मुख से होकर नीचे बढ़े तथा वस्ति स्थान में होने वाला शोथ दोनों का (खी पुरुष दोनों का) अवश्य नाश करता है अर्थात् असाध्य है ॥ २ ॥

अथ शोथचिकित्सा ।

निदानदोषातिविषयं यक्षमैरुपाचरेत्तं बलकालदोषवित् ।

अथाऽमज्जं लङ्घनपाचनक्षमैर्विशोधनद्वयवादोषमादितः ॥ १ ॥

शोथ रोग चिकित्सा—बल, काल और दोष को जानने वाला वैद्य प्रथम रोग के निदान तथा दोषादिकों के विपरीत क्रम से उपचार (शोथ की चिकित्सा) करे। आमज शोथ को क्रम से अब्जन और पाचन किया करके शान्त करे। और अति बड़े हुए दोषों को विशेषन से (वमन-विरेचन से) जीते अर्थात् इस उलिखित क्रम से शोथरोग को चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधोविरेचनैरुद्धर्वमतस्तथोर्धम् ।

उपाचरेत्सनेहभवं विरुद्धणः स्नेहस्तु रुचेण विरुद्धयते ध्रुवम् ॥ २ ॥

तिर में गये हुए दोषों को शिरोविरेचन (नस्यादि)^१ देकर शान्त करे, अर्धवेगत दोषों को अधोविरेचन देकर निकाल देवे और स्नेह से उत्पन्न होने वाले अर्धवेगत दोष को (शोथ को) रुक्ष किया (रुक्ष द्रव्यों) से रुक्ष करे अर्थात् रुक्ष चिकित्सा करे क्योंकि स्नेह-रुक्ष पदार्थों से अवश्य रुक्ष हो जाता है ॥ २ ॥

विवद्धविट्कानिलजे निरुहणं धृतं तु पित्तानिलजे सतिक्षम् ।

शोथेन मूर्छार्वति दाहकश्चित्ते विशोधनीयं तु समुन्नमिष्यते ॥ ३ ॥

जिस शोथ रोग में मल बढ़ता हो और वायु का अवरोध (वात विवन्ध) हो अथवा वातज हो उसमें निरुहण बरित देवे। पित्त-वातज शोथ में तिक्त पदार्थों के योग से सिद्ध धृत को देवे। शोथ के कारण यदि रोगी को मूर्छाहोती हो और दाह के कारण कृश (दुर्बल) हो गया हो तो उसको विशेषन देकर शमन करना चाहिये ॥ ३ ॥

कफोत्थितं खारकदूषणसंयुतैः समूत्रतक्रैरपि गुरुक्षिभिर्हेतु ॥ ४ ॥

कफज शोथ को क्षारं, कटु तथा रुक्ष पदार्थों के सहित गोमूत्र और मट्ठों के बने हुए योगों से शान्त करे ॥ ४ ॥

मुखतो जायते शोथः श्वीणां पुंसा च पादतः ।

असाध्यौ द्वावपि ग्रोक्तौ तयोः पुण्याक्षिर्वर्तनम् ॥ ५ ॥

यदि मुख से उत्पन्न हुआ खियों का शोथ और पैर से उत्पन्न हुआ हुए पुण्यों का शोथ हो तो ये दोनों असाध्य कहे गये हैं। ये दोनों शोथ रोगी के बहुत बड़े पुण्य से निवृत होते हैं ॥ ५ ॥

शयथोर्वातादिमेदेविशेषचिकित्साः—

शोथे वातोत्थिते पूर्वं मासाध्यं त्रिवृतं पिवेत् ॥ १ ॥

वातज शोथ चिकित्सा—वातज शोथ में पहले अन्धा मास (१५ दिन) निशोथ के न्यून को पान करना चाहिये ॥ १ ॥

तैलमेरण्डज्जं चाऽपि मलबन्धेऽपि तन्मतम् ।

शास्यन्नं पश्यसा युक्तं रसैर्वार्डिपि प्रयोजयेत्। स्वेदाभ्यङ्गाद्यं वातजनास्तेकलेपांश्च क्षिपतान् ॥

यदि शोथ में मल बढ़ता हो तो एरण्ड तैल को पान करना चाहिये, शालिधान का चावल (भात) दूष अथवा मांस रस के साथ भोजन करे और वातजाशक द्रव्यों से स्वेद कर्म करे, वातजन तेलों का मदनं करे तथा वातजन द्रव्यों द्वारा निर्मित सिस्त्रन और लेपन करे ॥ १ ॥

शुष्ठिरादिकायाः—

शुष्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलशृतं जलम् । वातिके श्वययो पैर्यं शुक्षपाकेऽपि तन्मतम् ॥ १ ॥

शुष्ठिरादिकाय—सौठि, पुनर्नवा, एरण्ड की जड़, और पञ्चमूल की पृथक् २ पांचों गोबविर्या, इन सब को सम भाग (एक २ भाग) लेकर काथ कर वातज शोथ में पिलाना

चाहिये तथा इसी काथ में भोजन भी पकाना चाहिये (जल दूसरा नहीं देना चाहिये) इससे बातब शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

बीजपूरादिलेपः—

बीजपूरजटाहिसादेवदाहमहौषधम् । रासनामिनमन्थलेपोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ ३ ॥
बीज पूरादि लेप—बिहारी नीबू की जड़, छोटी कटेरी, देवदारु, सौंठि, रासना, गनियार सम भाग लेकर पीसकर लेप बनाकर लेप करने से बातब शोथ नष्ट होता है ॥ २ ॥

पित्तशोथे—**हीराशिनः पित्तकूतेऽतिशोफे विवृद्गुहुद्वीत्रिफलाकणाथम् ।**

पिवेद्वाचं मूत्रविमिश्रितं वा फलत्रिकाचूर्णमथाहमात्रस् ॥ ३ ॥

पित्तज शोथ की चिकित्सा—पित्तज शोथ जो अत्यन्त बढ़ा हुआ हो उसमें केवल दूध पद्धय देना चाहिये और निशोथ, गुरुचि, हर्दी, बहेड़ा, झौंवरा, सम भाग लेकर काथ कर देना चाहिये। अथवा फिला के समान मिलित यने हुए चूर्ण को एक अक्ष प्रमाण की मात्रा से गोमूत्र के साथ पान करना चाहिये। इससे पित्तज शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

पटोलादिकाथः—**पटोलत्रिफलारिष्टादार्वार्धकाथः सुगुण्डुः ।**

हन्ति पित्तमवं शोथं तुष्णाऽवरसमन्वितम् ॥ ३ ॥

पटोलादि काथ—परवर का ढार—पात, हर्दी, बहेड़ा, झौंवरा, नीम की छाल और दालहरदी समभाग लेकर काथ कर शुद्ध गुण्डु का प्रक्षेप लेकर पान करने से तुष्णा और ज्वर से युक्त पित्तज शोथ नष्ट होता है ॥ २ ॥

कफशोथे—**पुनर्नवाचिश्चिवृद्गुहुद्वीत्रिशयाकपथ्यासुरदारुकरकम् ।**

शोफे कफोरथेऽवसम्भमूत्रं काथं पिवेद्वाऽप्यथं चैव तेषाम् ॥ ३ ॥

कफब शोथ चिकित्सा—पुनर्नवा, सौंठि, निशोथ, गुरुचि, अमलतास, हर्दी, देवदारु सम भाग ले करक बना कर एक अक्ष के प्रमाण की मात्रा से गोमूत्र के अनुपान से सेवन करने से अथवा इन विशिष्ट द्रव्यों को सम भाग लेकर काथ बना कर गोमूत्र के प्रक्षेप के साथ पान करने से कफब शोथ में काम होता है (शोथ नष्ट होता है) ॥ २ ॥

पुनर्नवाचलेहः—

पुनर्नवामृतादाहवशमूलरसादके । आद्वकरथ रसप्रस्थे गुदस्थ च तुलां पचेत् ॥ १ ॥

तरिसखं द्योषपत्रैलात्वक्षपत्रैः कःपिंकः पृथक् । चूर्णीकृतैलिहेच्छीते मधुनः कुडवं चिपेत् ॥ २ ॥
लेहः पुनर्नवो नाम रलेभ्याशोकानिषुद्धनः व्यासकासाराचिह्नरो बलपुष्पयनिवधनः ॥ ३ ॥

पुनर्नवाऽवलेह—पुनर्नवा, गुरुचि, दालहरदी, दशमूल की दसो ओषधियों पृथक् पृथक् लेकर इनका मिलित स्वरस अथवा इनका नवात ४ प्रथ, अद्रक का रस एक प्रथ, पुराना गुद एक तुला (सौ पक्ष) के पक्त्र कर अवलेह सिद्ध कर उसमें सौंठि, मरिच, पीपरि, तेजपात, इलायची के दाने, दालबीनी और तेजपात पृथक् पृथक् एक २ कर्षे लेकर चूर्ण कर मिला देवे, जब यह लेह शीतल हो जावे तब उसमें मधु एक कुडव (ही मानी) मिला देवे। यह 'पुनर्नवा' नामक लेह कफज शोथ, श्वास और अरुचि को नष्ट करता है और बल-पुष्पि तथा अधिन को खदात है ॥ २-३ ॥

अथाऽरवधादितेलम्—**कफोरथेऽप्त्र पिवेत्सैलं सिद्धमारवधादिना ।**

मन्देऽग्नी स्तिमिते कोष्ठे खोतोरोधेऽहचाविपि । खारमूत्रासवारिष्टचूर्णं तके निषेजयेत् ॥ १ ॥

आरवधादि तेल—आरवधादि गण (अमलतास, इन्द्रजौ, पाद्वर, करञ्ज, नीम, गुरुचि, मूत्रमूल, विकंकत (सुखावक्ष), पुरानपाढ़ी, चिरैता, कटसरैया इवेत, परवर, कृत्ताकरञ्ज, छितवन,

चित्त की जड़, छाणजीरा, कटसरैया नीली, मैनफल) की ओषधियों को समभाग लेकर कल्प कर बित्तना हो वसके चौगुना मूर्चित तिल का तेल और रेत के चौगुना जड़ देकर तेल तिदकर पान करने को कफज शोथ में देना चाहिये और शोथ में मन्दारिन, कोष्ठ की स्त्रवता, स्नोतोरोध और अरुचि भी हो तब भी देने से इनको शान्त करता हुआ शोथ नष्ट कर देता है। कफज शोथ में झार, सूक्ष्म, आसव, अरिष्ट और चूर्ण को तक के साथ देना चाहिये ॥ १ ॥

निदोषजे मिश्रे च—**मिश्रे मिश्रक्रमं कुर्यात्सर्वजे सर्वमेव तु ॥ १ ॥**

निदोषज और दून्दूष शोथ चिकित्सा—दो दोषों के मिश्रित लक्षण वाले शोथ में मिश्रित (दो दोषों को नष्ट करने वाली) क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिये और निदोषज शोथ में तीनों दोषों को नष्ट करने वाली मिलित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

पिपलवादि चूर्णम्—

पिपलवादाजी ग त्रिप्पली च निदिविधकानागरचित्रकैश्च ।

रजन्ययः पिपलिमूलपाठामुस्तं च चूर्णं सुखतोयपीतम् ॥

कलकश्च भूनिभवमहौषधाभ्यां हन्यात्तिद्रोषं चिरजं च शोफम् ॥ १ ॥

पिपलवादि चूर्ण—पीपरि, जीरा, गब पीपरि, छोटी कटेरी, सौंठि, चित्त की जड़, हरदी, कोहमस्तम, पिपलमूल, पुरान पाढ़ी, नागरमीथा, प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर सुखोष्ण जड़ के अनुपान से पान करने से भौत चिरैता तथा सौंठि को समान लेकर कल्प कर सुखोष्ण जड़ से सेवन करने से निदोषज तथा पुराना भी शोथ नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथाऽर्दकरसादियोगः—

रसस्तथैवाऽर्दकनागरस्य पेयोऽथ जीर्णे पथसाऽच्चमयात् ।

शिलाद्वयं चा त्रिफलारसेन हन्यात्तिद्रोष श्वयथुं प्रसहा ॥ १ ॥

आद्वकरसादि योग—आद्व क्षीठि (हरा अद्रक) के स्वरस को पीना चाहिये और उसके पच जाने पर दूध और अन्न खाना चाहिये अथवा शुद्ध शिलाजीत को त्रिफला के रस से सेवन करने से निदोषज शोथ नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथागन्तुजे विषजे च—

शोफे चाऽग्नन्तुजे कुर्यात्सेकलेपादिशीतलम् । भज्ञातकभवे शोफे सतिला कृष्णमृतिका ॥

आगन्तुज और विषज शोथ चिकित्सा—आगन्तुक शोथ में सिंचन तथा लेपादि शीतल किया (चिकित्सा) करनी चाहिये। मिलावे के संसर्ग से उत्पन्न शोथ में तिल और काळी (करौली) मिट्टी को पीसकर लेप बनाकर लगाना चाहिये ॥ १ ॥

नवनीततिलालेपादथ दुग्धं तिलान्वितम् ।

यद्युक्तिलेपो नवनीतेन संयुतः। शोफमारुकरं हन्ति चूर्णं शालदलस्य वा ॥ २ ॥

अथवा तिल पीस कर और मक्खन का लेप बनाकर लगाना चाहिये अथवा दूध के साथ तिल पीसकर अथवा जेठी मधु, दूध, तिल पीसकर मक्खन मिलाकर लेप करना चाहिये अथवा शाल के पत्तों के चूर्ण का लेप बनाकर लगाने से मिलावे के संसर्ग का शोथ नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

विलवपत्रस्वरसः—

बिल्वपत्रस्वरसः पीतः सोषणः श्वयथौ रुजि । विल्वसङ्गे चैव दुर्नामिन विषघृच्यां कामलास्वपि ॥ १ ॥

विलव पत्र स्वरस—विलवपत्र के स्वरस में काली मरिच के चूर्ण को मिलाकर पान करने से शोथ रोग, मलाधरोध, अर्श, विसूचिका और कामला रोग में काम होता है ॥ १ ॥

योगरत्नाकरः

भूनिम्बादिकलकः—भूनिम्बविश्वकरुणं जगध्वा पीतः पुनर्नवाचायाथः ।
अपहरति नियतमाणु श्वयथुं सर्वाङ्गजं नृणाम् ॥ २ ॥

भूनिम्बादि कलक—चिरेता और सोंठि इनको सम भाग लेकर कलक कर खाकर कपर से पुनर्नवा का काथ पान करने से मनुष्यों के सर्वांग में हुए शोथ निक्षित ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥
काथः—हत्ताड़ी पथ्यादिः—

पथ्यामृताभास्त्रितुनर्नवाचिनिपादवक्षत्रितं हन्त्यचिरेण शोफम् ॥ ३ ॥
काथो निपीतोदरपणिपादवक्षत्रितं हन्त्यचिरेण शोफम् ॥ ३ ॥

पथ्यादि काथ—हरा, गुरुचि, बमनेठी, गदहपुरना, चित्त की जड़, दाशहरदी, दरदी, देवदारु, सोंठि, समभाग लेकर काथ कर पान करने से उदर, हाथ, पौव और सुख के आक्रम होने वाले शोथ शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

त्रिफलादि काथः—

त्रिफलाक्वाचथपानं हि महिषीसर्पिषा सह । हन्ति शोफं प्रमेहं च नाढीवणमगन्वरम् ॥ ३ ॥
त्रिफलादि क्वाच—आंबला, हरा, बडेवा, समान लेकर विधिवत् क्वाच बनाकर उसमें भैंस के घृत का प्रक्षेप देकर पान करने से शोथ, प्रमेह, नाढी ब्रण और भगन्दर रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

सिहास्यादिः—सिहास्यामृतभण्टाकीक्वाचं पीतिवा स्त्रमादिकम् ।

कृच्छ्रशोथं जयेतजन्तुः कासं रवासं उवरं वभिम् ॥ ३ ॥

सिहास्यादि क्वाच—अरुसा, गुरुचि, कटेटी छोटी सम भाग लेकर क्वाच कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कष साधु शोथरोग, कास, वास, ऊर और बमन रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥
चूर्णानि तत्रादौ पृष्पत्यादि—

कृच्छ्रामिवश्वचन्तीरकण्टकारीपाठानिकारिकणामगधार्दानाम् ।

चूर्णं कवोण्णसलिलेन विलोड्यं पीतं नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ १ ॥
पिपलत्यादि चूर्ण—पीपरि, चित्त की जड़, सोंठि, नागरमोथा, जीरा, छोटी कटेटी, पुरुषनपांडी, दरदी, गबपीपरि, पिपलमूल समभाग लेकर चूर्ण कर इसको कुछ गरम छक में बोल कर पान करने से शोथरोग नष्ट होता है । मनुष्यों के किये शोथरोग का नाश करने वाला इससे बढ़कर अन्य कोई और औषध नहीं है ॥ १ ॥

गूडाचं चूर्णम्—

गुडपिपललिशुण्डीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् । आमाजीर्णप्रशमनं शुल्दनं वस्तिशोधनम् ॥ १ ॥
गुडाचं चूर्ण—पुराना गुड, पीपर, सोंठि, समभाग लेकर चूर्णकर सेवन करने से शोथ नष्ट होता है और आमाजीर्ण शान्त होता है, शूल नष्ट होता है और वस्ति शुद्धि होती है ॥ १ ॥

अन्यच्च—

गुडापलत्रयं ग्राह्यं शृङ्खेवं पलत्रयम् । शृङ्खेवरसमा कृच्छ्रा लोहकिद्वायसोः पलम् ॥

चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वथुनाशनम् ॥ १ ॥

अन्य मत से गुडादि योग—पुराना गुड, सोंठि और पीपरि तीन रे पक, लेकर चूर्ण कर एकत्र कर उसमें शुद्ध मण्डूर भर्मस तथा लोहमस्म एक रे पक मिलाकर खरक कर सेवन करने से सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पुनर्नवाचं चूर्णम्—

पुनर्नवा दावर्यमृता पाठा विश्वा श्वदंत्विका । रजन्यो ह्वे दृष्ट्यायौ च पिपलत्यादिकं वृषः ॥ ३ ॥
समभागानि सन्त्वूर्णं गवां मूर्चेण वा पिवेत् । बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम् ॥

हन्ति चाऽऽमृदराण्यष्टौ भ्राणाश्चेयोऽमृतानपि ॥ २ ॥

पुनर्नवाचं चूर्ण—गदहपुरना, दाशहरदी, गुरुचि, पुरुषनपांडी, सोंठि, गोखल, दरदी, दाशहरदी, छोटी कटेटी, छोटी कटेटी, पीपरि, चित्त की जड़ और अरुसा समभाग लेकर चूर्णकर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करने से बहुत प्रकार के शोथ जो सम्पूर्ण शरीर में फैल गये हों सभको नष्ट करता है । तथा आठों प्रकार के उदर रोग और उद्दत ब्रण रोग को भी शीघ्र नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

विश्वक्रादिः—

विश्वक्रादिकटुकाश्रित्वित्रकद्वारचः । द्वयोर्ष सङ्कृष्णा त्रिफला समा देया श्वयोरजः ॥
द्विगुणं तस्पिवेन्द्रूर्णं पथसा शोफशान्तये ॥ १ ॥

विश्वक्रादिं चूर्ण—वाभीरंग, दन्तीमूल, कटुकी, निशोष, चित्त की जड़, देवदारु, सोंठि, मरिच, पीपरि, अदरा, हरा, बहेड़ा इन सभके चूर्ण को एक रे आग और लोहमस्म दो आग लेवे सभको एकत्र खरक कर दूध के अनुसार से सेवन करने से शोथ रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडाद्रिकादियोगः—

गुडाद्रिकं वा गुडनाशरं वा गुडाभयं वा गुडपिपलर्णीं वा ।

कर्वाचिवृद्धया श्रिपलप्रमाणं खादेज्ञरः पथ्यमथापि भासम् ॥ १ ॥

शोफप्रतिशयायगलास्वरेगान्वस्त्रासकासास्त्रचिपीनसादीन् ।

जीर्णउवराशेऽग्रहणीविकारान्वन्यास्त्रायाऽन्यानपि वातत्रोगान् ॥ २ ॥

गुडाद्रिकादिं योग—पुराना गुड और अद्रक अथवा पुराना गुड और सोंठि अथवा पुराना गुड और इर्दी अथवा पुराना गुड और पीपरि इनमें से किसी एक योग को कर्षं प्रमाण की मात्रा से प्रारम्भ कर कम से यथोत्तर प्रमाण दबाता दुआ तीन रेतक तक के प्रमाण की मात्रा तक सेवन करे और पथ्य सेवन करे । इस प्रकार एक मास तक करे तो इससे शोथ, प्रतिशयाय, गङ्गा तक मुख के रोग, श्वास, कास, अदरा, पीनसादि रोग, जीर्ण ऊर, अश्व, ग्रहणी के विकार तथा अन्यान्य वातरोग भी नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पुनर्नवादियोगः—पुनर्नवाचं मूलकदेवदारुचित्रोऽमृता । चित्रकमूलसिद्धाः ।

रसा यवागूचं पथ्यसि यूषाः योके प्रदेया दशमूलगम्भीः ॥ १ ॥

पुनर्नवाचं योग—गदहपुरना, मूली, देवदारु, गुरुचि, चित्त की जड़ समभाग लेकर सोंठह युने जल के साथ पाक करे जब आग देव रहे तो उसमें दशमूल का कलक देकर उसी जड़ में रस, यवागू, दूध, यूष आदि सिद्ध कर शोथ में देना चाहिये । इससे शोथ शमन होता है ॥ १ ॥

शीरम्—

शीरं शोफहरं दावर्याच्युनाशरैः शृतम् । पेयं वा चित्रकद्वयोष्चित्रिवृद्धालप्राप्तिश्वितम् ॥ ३ ॥

शीर—देवदारु, गदहपुरना, सोंठि इन द्रव्यों के साथ अथवा चित्त की जड़, सोंठि, मरिच, पीपरि, निशोष और देवदारु इन द्रव्यों के साथ शीरपाक की विपि से शीर सिद्ध कर पान करने से शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

आद्रेकरसः—

आद्रेकरसं पीतः पुराणगुडमिश्रितः । अजाहीराशिनः शीरं सर्वशोथहरो भवेत् ॥ १ ॥

आद्रेकरस—आद्रेक के रस में पुराने गुड को मिलाकर पान करने और बकरी के दूध का पथ्य लेने से शीघ्र ही सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गोमूत्रमण्डूरम्—

गोमूत्रसिद्धं गण्डूरं सुरभीरसभावितम् । माणकाद्रेककन्दानां रसेष्वपि च भ्रावयेत् ॥ ३ ॥

त्रिफलाकटुकव्यानां चूर्णं पाणितलद्वयम् ।

पिपेत् सुसिद्धे पाके तु मधुनश्च पलद्वृथम् । निहनित सर्वजं शोफं सर्वाङ्गं च विशेषतः ॥ २ ॥
गोमूर्मण्डूर—शुद्ध मण्डूर (दो पल) को गोमूर के साथ अग्नि पर सिद्ध कर गोमूर से भावित करे फिर मानकन्द और अद्रक के रस में पृथक् २ मावित करे पश्चात् मुखाकर उसमें आँवला, हरा, बड़ेड़ा, सोठि, पीपरि, मरिच और चव्य का समान मिलित चूर्ण दो पल ले मिला कर मर्दन कर दो पल मधु मिलाकर सेवन करने से सक्रियातज शोथ रुक्ष विशेष कर सम्पूर्ण अज्ञों के शोथ को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

कंसहरीतकी—द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसेऽभयानां च शतं तुडान्च ।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं ध्योषत्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ ३ ॥

प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चित्त्वं चूर्णादपि यावश्यकात् ।
एकाभयां प्राशय ततश्च लेहाच्छुकिनिहनित शवयर्थं प्रवृद्धम् ॥ २ ॥

कंसहरीतकी—दोनों पञ्चमूल (दशमूल) समान मिलित को एक आद्रक लेकर एक द्रोण जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वात् कर उत्तार-छानकर उसमें स्त्रम पके हुए हरद् संख्या में १०० और पुराना गुड़ सौ पल मिला धोल कर गुड़ छान कर हरद् समेत अग्नि पर रख कर अबलेह सिद्ध कर उसमें सोठि, मरिच, पीपरि के चूर्ण को एक २ पल ले और दाढ़ीबीनी, इलायची और तेजपात का पृथक् २ पल २ कर्षं चूर्ण को मिलावे और इसी प्रमाण से यवाखार भी मिलावे तथा शीतल हो जाने पर उसमें आधा प्रस्थ मधु मिला कर स्त्रियप्रथा में रख लेवे । प्रतिदिन एक हरद् खा कर और ऊपर से शुक्ति प्रमाण (आधा पल) इस लेह को चाट लेवे तो इससे बढ़ा दुधा शोथ नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

कासवररोचकमेहगुलमण्डीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।
काश्यर्थमिवातानसग्राम्पित्तवैवर्णयमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ३ ॥

कास, ज्वर, अरुचि, मैद, गृहम, प्लीहा, त्रिदोष, उदररोग, पाण्डुरोग, कुशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, वातदोष और शुक्रदोष वे सभी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥
दशमूलं हरीतक्या तु श्वयं कंसहरीतकी । मानं तेनात्र तत्रस्थं चरके प्राह जेऽजटः ॥ ४ ॥
दशमूल हरीतकी जो आगे लिखी गयी है उसी के समान यह कंसहरीतकी है । इस कंसहरीतकी में चरक ने मान नहीं कहा है परन्तु जेऽजट महाराज ने यहाँ दशमूल हरीतकी के समान ही मान प्रहण करने को कहा है ॥ ४ ॥

दशमूलहरीतकी—

दशमूलोकपाथस्य कंसे पथ्याशतं गुणान् । तु लां पचेद्वने तत्र ध्योषत्तारच्छुपलम् ॥ १ ॥
विजातं तु सुवर्णांशं प्रस्थार्थं मधुनो हिमे । दशमूलहरीतक्या शोफान्द्वनित सुदुरस्तरान् ॥ २ ॥

दशमूल हरीतकी—दशमूल के मिलित द्रव्यों को एक आद्रक लेकर एक द्रोण जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वात् कर उत्तार-छान कर उसमें सौ पल पुराना गुड़ मिला धोल छान कर उसम पके हुए संख्या में १०० हरद् मिलाकर अग्नि पर रख कर अबलेह सिद्ध कर उसमें सोठि, पीपरि, मरिच और यवाखार चार पल (एक २ पल पृथक् २) चूर्ण मिलावे और शीतल होने पर आधा प्रस्थ मधु मिलाकर स्त्रिय पात्र में रख उपर्युक्त कंसहरीतकी की मात्रा इस दशमूल हरीतकी को सेवन करने से कठिन शोथ नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पुनर्नेवासवः—पुनर्नेवे द्वे तु पक्ते सपाठा इन्ती गुडूची सह चिक्रकेण ।
निदिविधिका च विफला विपक्षा द्रोणावशेषे सलिले ततस्तम् ॥ १ ॥

पूर्वा रसे द्वे च शतं पुराणं गुडं मधुप्रस्थयुतं सुशीतम् ।
मासं निदध्याद्वृतभाजनस्थं पल्ले यवानां परतश्च मासम् ॥ २ ॥
चूर्णांकैरध्यपलांशकैस्तैर्हेमत्वगेलामिरिचाञ्जुपन्नैः ।
गन्धान्वितं द्वौद्युतं प्रदिवधं जीर्णे पिवेद्व्याघिवलं समीक्ष्य ॥ ३ ॥
हृष्पाण्डरोगं ध्ययुतं प्रवृद्धं धीभ्रमारोचकमेहगुलमान् ।
भगन्दरारोज्जटाणि कासश्वासप्रहण्यामयकुष्ठपद्मः ॥ ४ ॥
शास्त्रानिलं बद्धपुरीषतां च हिक्कां च कासं च हलीमकं च ।
त्विप्रं जयेद्वृण्वलायुरोज्जर्तेजोन्वितो मांसरसोश्च भुक्षवा ॥ ५ ॥

पुनर्नेवासव—दोनों पुनर्नेवा (लाल और इवत) एक २ पल पृथक् २, पुरान पाकी, दल्ती-मूल, गुरुचि, चित्त की जड़, छोटी कट्टोरी, आँवला, हरा, बड़ेड़ा, पृथक् २ पल २ पल केकर ४ द्रोण जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वात् कर उत्तार-छान लेवे और इसमें हो सौ पल पुराना गुड़ और शीतल होने पर प्रस्थ मिलावे तथा नागकेसर, दाढ़ीबीनी, इलायची, मरिच, सुगन्धवाला, तेजपात इन सब द्रव्यों को आधा २ पल उसम पूर्ण कर मिला स्त्रिय पात्र में रख मुख-सुद्रण कर आसव की विधि से एक मास रखके पश्चात् एक मास यव की राशि में रख कर सिद्ध किये हुए इस सुगन्धित मधुयुक्त आसव को रोग-बालादि को देखकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से हृष्पोग, पाण्डु, शोथ जो अथवन बढ़ा हुआ हो, प्लीहा, अम, अरुचि, मैद, गृहम, भगन्दर, अद्य, उदररोग, कास, श्वास, ग्रहणीरोग, कुछु, कण्डु, शाखा (इयांपेर आदि) के रहने वाले बातरोग, मलाबद्दता, हिक्का, कास, इलीमक, इन सब दोषों को शीतल नष्ट कर देता है । और बण, बक, आयु, ओज को बढ़ाता है । इसका मांसरस भक्षण करने के पश्चात् सेवन करना अधिक शाम-दायक है ॥ २-५ ॥

सर्वशोके वासासवः—

वासासवस्य तुले द्वे तु द्विदोषोऽपां विपाथ्येत् । द्रोणार्धेष्वं तं ज्ञात्वा पूर्ते शीते प्रश्वापयेत् ॥ १ ॥
गुद्धस्यैकं तुला तत्र धातक्यास्तु पलाष्टकम् । द्विपेच्छूर्णांकृतं तर्स्मस्वगेलापत्रकेसरम् ॥ २ ॥
कङ्गोलायोधतोशानि पालिकान्युपकल्पयेत् । निदध्याद्वृतभाज्वे तु पक्षाद्वृद्धं ततः पिवेत् ॥
वासासवस्व हृष्पेष सर्वशय्यशुक्रानाशनः ॥ ३ ॥

वासासव—मरुसा का पंचांग दो तुला (२०० पल) लेकर काथ की विधि से दो द्रोण जल में चतुर्थांशावशेष पाक कर उत्तार-छान कर उसमें पुराना गुड़ एक तुला (१०० पल), धात के कूछ आठ पल और दाढ़ीबीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, कङ्गोल, सोठि, मरिच, पीपरि, सुगन्धवाला, को एक २ पल ले चूर्णकर सबको पक्त्र मिला इत्पात्र में रख मुख-सुद्रण कर आसव की विधि से एक पक्त्र (१५ दिन) रख कर आसव सिद्ध होने पर पान करने से यह वासासव सब प्रकार के शोथ को नष्ट करता है ॥ २-६ ॥

दावादियोगः—

पिवेदुच्छान्तुना वासपद्याशुण्डीपुनर्नेवाः । विड्ज्ञातिविषावासाविष्वद्वृष्णानि च ॥
वर्षाभूम्भवेत्तरायां कलकं वा सर्वशोकन्तुत ॥ १ ॥

दावादियोग—१—देवदारु, हरा, सोठि और पुनर्नेवा, अथवा २-नामीरंग, अतीस, अरसा, सोठि, देवदारु, मरिच, अथवा ३-पुनर्नेवा और सोठि इनमें से किसी एक योग के विविद बने कलक के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के शोफ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

तकादियोगः—

तकं पिवेद्वा गुहभिज्ञवर्चाः सम्बोधसौवर्चलमाचिकं च ।

विड्वात्सज्जे पथसा रसैर्वा प्रागुणममध्यादुर्बुक्तैलम् ॥ १ ॥

तकादियोग—जिस शोध के रोगी का मल गुरु तथा द्रटा हुआ (आम) निकलता हो उसको सोंठि, मरिच, पीपरि, सोंचर नमक के चूंच और मसू भिलाकर तक पीना चाहिये और जितके मल और बात का अवरोध हो गया हो ऐसे शोध के रोगी को प्रथम दूध अथवा मांसरस के साथ परण्ड का तेल पीना चाहिये पश्चात उसमध्ये पीना चाहिये इससे शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

पुनर्नवादिष्ठृतम्—

पुनर्नवापत्ररसालमूलं संचुध तोयामर्णशेषसिद्धम् ।

चतुर्थभागेन घृतं विषद्वं प्रस्थं तु तत्करकपलाष्टकेन ॥ १ ॥

संसेवितं वातबलासरोगान्सर्वांश्च शोफानतिद्रुतरांश्च ।

गुस्मोदरप्लीहगुदोद्वार्ण्वांश्च निहनित वह्नि कुरुतेऽपि तुंसाम् ॥ २ ॥

पुनर्नवादि घृत—गदध्युपरना के पते और आम के छड़ की छाल इनको समझाग ले कूट कर मिलित एक प्रस्थ को १६ प्रस्थ जल के साथ काय कर चतुर्थीश (१ आढ़क) शेष रहने पर उतार छानकर जितना हो उसके चतुर्थीश (१ प्रस्थ) मूर्छित गोघृत और उसी पुनर्नवा पश्च और आम की छड़ का समान मिलित कल्क आठ पक मिलाकर घृत सिद्ध कर सेवन करने से सब प्रकार के बात तथा कफ के रोग अति कठिन शोध, गुरम, उदर, प्लोदा और अर्थ इन सब रोगों को नष्ट करता है और अरिन को बढ़ाता है ॥ २-२ ॥

पञ्चमूलादि तैलम्—

पञ्चमूलं सलवणं सरलं देवदारु च । हरितकर्णी पलाशस्य फलानि निचुलस्य च ॥ १ ॥

पलाशं काकनासा च गुड्ढी देवपुष्पकम् । अहिसा श्रेयसी हित्ता बस्तगन्धा पुनर्नवा ॥ २ ॥

कायस्था च वयस्था च दारुका अटिळा जटा । अलमुखोरुचूकं च प्रपुष्टां सनागरम् ॥ ३ ॥

शिग्रोघोचवनी भाङ्गी तकाँही पौष्करी जटा ।

एतैः सिद्धं वथालाभं तैलमध्यज्ञनेष्विभिः । निहन्त्युदीर्णं शयत्यु जन्तोर्वातकफात्मकम् ॥ ४ ॥

पञ्चमूलादि तेल—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सरिवन, पिठिवन और गोखरु तथा सेखननमक, सरक, देवदारु, हस्तिकर्ण, पलाश के फल, इजलक, पलाश, कौआ ठोटी, गुरचि, छवंग, कण्ट-कण्टाणी दृश, गबपीपरि, छोटी कटेरी, अमोदा, पुनर्नवा, दूरी, दावहस्ती, पिपारामूल, मुण्डी, परण्डमूल, पनवाह, सोंठि, सहिवन की छाल, पिठिवन, बम्बेठी, गनियार की छाल और पुष्करमूल इन द्रव्यों को यथाकाम (जितने प्राप्त हो सके) लेकर (जितते हो यही है कि सब) समान भाग का विधिपूर्वक कल्ककर जितना कल्क हो उसके बौगुना मूर्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ जल केकर सब को पकत कर तेल पाक करके तेल मात्र देष्ट रहने पर उतार छानकर इस तेल के मर्दन से तीनों दोषों से उत्पन्न शोध तथा वहे इष्ट बात-कफज शोध नष्ट होता है ॥ २-४ ॥

इष्टमूलकायतैलम्—

शुक्लमूलकवर्षामूदाहरास्नामहीवधैः । प्रवधमध्यज्ञने तैलं सम्बूङं शोफनाशम् ॥ १ ॥

शुक्लमूलादि तेल—सूखी मूँडी, पुनर्नवा, देवदारु, रासना और सोंठ समझाग ले कल्क कर पूर्ववर्त तिक का तेल और जल मिलाकर तेल सिद्ध कर मर्दन करने से शोध बढ़ से नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ सेकलेपस्वेदनानि ।

पुनर्नवादिष्ठैः—

पुनर्नवाशाहशुग्नीसिद्धार्थं शिप्रमेव च । पिष्टवा चैवाऽर्द्धनालेन ग्रसेषः सर्वशोधजित् ॥ १ ॥

पुनर्नवादिष्ठै—गदध्युपरना, देवदारु, सोंठ, इवेत सर्वी और सहिवन की छाल समझाग ले काँडी के साथ पीस कर लेप करने से सब प्रकार के शोध नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

कुञ्जादिष्ठैः—

कुञ्जापुरागविषयाकरित्रविशिष्टात्मसी । पलेषो मर्द्दे युञ्जयासुख्यो भूत्रकलिकतः ॥

कुञ्जादिष्ठै—पीपरि, पुरानी तिल की खरी, सहिवन की छाल, बनलोनिका और तीसी समझाग ले गोमूत्र के साथ पीस कर कल्क की भाँति बना कुञ्ज गरम कर लेप करने तथा मर्दन करने से शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

दार्ढादिः—

दार्ढागुम्बुलशुण्ठीनां कल्को मूत्रेण शोफजित् । गोमूत्रस्य च योगो वा द्विग्रं श्वयशुनाशनः ॥

दार्ढादिष्ठै—देवदारु, गुण्युल और सोंठ समान ले गोमूत्र के साथ पीसे कल्क कर लेप करने से शोध नष्ट होता है अथवा केवल गोमूत्र को ही शोध पर लगाने से शीघ्र नष्ट होता है ॥

अर्कादिः—

सेकस्तथाऽर्कवर्षाभूनित्ववधायेन शोफजित् । गोमूत्रेणापि कुर्वति सुख्योनावसेचनम् ॥

सौवर्चलसमं चृष्टं सर्वपैश्च प्रलेपनम् ॥ १ ॥

अर्कादियोग—मदारु, पुनर्नवा, लीम की छाल, समझाग ले काय कर शोध पर लगाने से (सेक करने अर्थात् सिंचन करने से) अथवा इस काय में गोमूत्र मिलाकर सुख्यो रहते इससे सिंचन करने से अथवा सोंचर नमक और इवेत सर्वी की समान पीसकर लेप करने से शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

न्ययोधादिष्ठैः—

न्ययोधादिष्ठै—दृष्ट, चद्मवर, अश्वत्य, पाकर और अश्वत्येत इनकी छाल को समान ले पीस कर घृत मिलाकर लेप करने से शोध शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोधूमपोलिका—

गोधूमकणिकायुक्ता निर्गुण्डीपत्रचूर्णिका । पोलिका तिलतैलेन युक्ता शोधविनाशनी ॥ १ ॥

गोधूम पोलिका—गेहूँ के अटे के साथ समालू (निर्गुण्डी) के पते के चूंच को मिलाकर दोटी बनाकर उसमें तिल का तेल चुपड़ कर शोध पर बांधने से शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

पुनर्नवादिष्ठैः—

पुनर्नवादिष्ठैनिर्गुण्डीपलितैरण्डजेद्वैः । सहाचर्वर्जलं तसं तत्स्वेदः शोफहा मरः ॥ १ ॥

पुनर्नवादिष्ठै—पुनर्नवा, चित, मैवडी, पके दुष्ट परण्ड के पते और कटसरैया समझाग लेकर जल में पाक कर उससे स्वेद लेने से (विधिपूर्वक भाफ देने से) स्वेद होकर शोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

कुटजादिस्वेदः—

कुटजाकरित्वरीयाणां विद्वैरुक्तं जलं तसं तत्स्वेदो दुष्टशोफहृत् ॥ १ ॥

कुटजादिस्वेद—कोरया के पते, मदारु के पते, चिरीष के पते, जलवेत, परण्ड के पते, नीम के पते समान लेकर जल में पाक कर स्वेद लेने से जो शोध दूषित हो गया है वह शीघ्र होता है ॥ १ ॥

विभीतकादिलेपः—विभीतकानां फलमध्यलेपः सर्वेषु दाहार्तिहरः प्रहास्तः ।
यथाद्वाहसुस्तैः सकपिथमूत्रैः सचन्दनैस्तरिपिटिकासु लेपः ॥ १ ॥

विभीतकादि लेप—बद्रेरे के बीज को जल के साथ पीसकर (चन्दन की माति) लेप करने से सभी प्रकार की दाह-पीड़ा नष्ट होती है। जेठी मधु, नागरमोथा, कैथ, गोमूत्र और आठ चन्दन इन सबको पीसकर शोथ की पिण्डिकाओं वर लेप करने से पिण्डिकायें नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

अथ रसाः ।

तत्रादौ शोफारिः—

हिङ्गुलं जयपालं च मरिचं टक्कणं कणाम् । संगमर्थं वशलं सघृतः सर्वशोफहरः परः ॥ १ ॥

शोफादि रस—शुद्ध सिंगरिक, शुद्ध अमालगोटा, मरिच, शुद्ध टक्कण, पीपरि सम भाग (एक २ भाग) लेकर मर्दन कर वशल प्रमाण अथवा अवस्थानुसार घृत के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के शोथ को नष्ट करता है ॥ १ ॥

श्वशुष्वाती रस—इसगच्छकलोहकणांत्रिवृत्तां-मरिचामरदारनिशाविफलाद् ।

जलितं शृद्ध गोसलिलेन पिके-दुनुरुपमसुं श्वशुद्वरहम् ॥ १ ॥

श्वशुष्वाती रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शोहभस्म, पीपरि के कूण, विषुवृत्त, मरिच, देवदार, हरदी, हर्दा, बद्रेरे और आंविका के चूर्ण समान (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कजली कर फिर अन्य औषधियों को मिला मर्दन कर यथोचित मात्रा से गोमूत्र के अनुपान से सेवन करने से शोथ तथा लदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

देयो श्वादयमार्त्तंद्वस्त्रैलोक्याद्वरोऽयदा । अभिकुमारको वाऽन्न देयः शोफविनाशनः ॥ १ ॥

शोथ रोग में अन्यान्य रस—शोथ रोग में अवस्थानुसार उदयमार्त्तंद रस अथवा ब्रैकोयाद्वमर रस अथवा अर्जिकुमार रस इनमें से किसी एक के सेवन करने से शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुरातनाः शालियवाः कुलथा सुद्राक्ष गोधाऽपि च शश्लकोऽपि ।

मुजङ्गभुक्तिरिताम्रचूडलावादयो जाङ्गलविभिकराश्च ॥ १ ॥

कूर्मोऽपि शृङ्गी प्रपुराणसर्पिस्तकं सुरा माचिकमासवश्च ।

निष्पावकाठिल्लकरक्षिप्रुरसोनककैटकवालमूलम् ॥ २ ॥

पुनर्नवं गुञ्जनकं पटीलं वेग्राग्रधात्रीफलमूलकानि ।

यथामलं पथ्यमिदं प्रयुक्तं शोफामयं सत्वरमुच्छिनति ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने शालियवान के चावल, जौ, कुलीय, मूंग, गोह का मांस, साही का मांस, मोर, तिचिर, मुर्गा और लावा आदि पक्षियों का मांस, जांगल जीवों का मांस, विभिकर जीवों का मांस, कछुआ, सिंगी मछली का मांस, पुराना घृत, मट्ठा, सुरा (मध्य), मधु, आसव, सेम, करैची, आठ सहिजन, कहसुन, बांकिकोड़ा, छोटी मूली, पुनर्नवा, गाजर, परवर, वेत के अथ माग, आंविका और मूली इन सब द्रव्यों को दोष के अनुसार विचार कर पथ्य में सेवन करने से शोथ शीघ्र नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं

गौडं पिईं दधि सकुशारं निर्जीरं मध्यमउलम् ।

धाना वल्लरमासं बह्वशनमथवा गुर्वसात्यं विदाहि

स्वप्नं राश्रीं श्वयथुगदवान् वर्जयेन्मेधुनं च ॥ ४ ॥

आम्यजीवों के मांस, आनूप जीवों के मांस, कच्चा मांस, नमक, सूखा शाक, नवे अन्न, गुड़ से प्रसुत मध्य, पिठौ, दही मलाई सहित, शरना का पानी, मध्य, अम्ल रस द्रव्य, धान, सूखा मांस, अधिक भोजन, युरु तथा असाम्य और दाहकारक पदार्थ का सेवन, रात को सोना और मैथुन इनको शोथ का रोगी स्थाग देवे ॥ ४ ॥

ब्रुद्धात पथ्यापथ्यम्—

पुराणयवशास्यन्नं दशमूलोपसाधितम् । अश्लमसृपकटुस्नेहं खोजनं शोफिनां हितम् ॥ १ ॥

ब्रुद्ध से पथ्यापथ्य—पुराने यव, शालियवान के चावल, इनको दशमूल के क्षय में सिद्ध कर देना चाहिये और योड़ा अम्ल, कटु तथा दिनवर्ष योजन शोथ के लिये लाभदायक है ॥ १ ॥

पिष्टाङ्गमुष्णं लवणानि मध्यं मूदं दिवा द्वचनमजाङ्गलं च ।

पयो गुड़ तैलमध्यो गुरुणि शोफं जिघासुः परिवर्जयेत् ॥ १ ॥

पिठौ के अन्न, उण द्रव्य, नमक, मध्य, मिठ्ठी साना, दिन में सोना, जांगल जीवों के अतिरिक्त अन्य जीवों का मांस, दूष, गुड़, तेल और युरु पदार्थ शोथ को नष्ट करने की इच्छा वाला स्थाग देवे ॥ १ ॥

इति शोथप्रकरणं समाप्तम्

अथ मुष्कान्त्रवृद्धिवर्ध्मरोगनिदानम् ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

कुद्दो रुद्धगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् । मुष्को वल्लद्वाणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ॥

प्रपीढव धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः ॥ १ ॥

बृद्ध की सम्प्राप्ति—अपर की ओर से अवश्व गति वाला तथा कुपित अपान वायु नीचे की ओर चलता हुआ शोथ और शूल को करता हुआ वक्षण स्थान से अण्डकोश में प्राप्त होकर फल-कोशाभिवाहिनी (अण्डकोशों के आधारभूत) धमनियों (नाडियों) को पीड़ित करता हुआ फलकोशों (अण्डकोशों—एक को अथवा दोनों) को बढ़ाता है ॥ १ ॥

वृद्धः संख्यामाह—

दोषाद्यमेदोमुत्रान्त्रैः स वृद्धिः ससधा गदः । मूत्रान्त्रवाजावप्यनिलादेतुभेदात् त्वेतः ॥ २ ॥

वृद्धि की संख्या—दोषो अर्थात् वातज, पिच्च और कफज इस भेद में से तीन, रक्त से एक, मेद से एक और मूत्रदोष तथा अन्य दोष से एक २ इस प्रकार वृद्धि रोग सात प्रकार का होता है । परन्तु इसमें मूत्रज और अन्त्रज जो वृद्धि है वह नात से ही होती है (यद्यां केवल कारण भेद से गणना में लिए गये हैं) ॥ २ ॥

वातजमाह—वातपूर्णद्वितीस्पशों रूक्षो वातद्वेतुरुक् ॥

वातज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में वायुयुणं चमड़े की थैली के समान अण्डकोश स्पर्श करने पर रक्ष-ज्ञात हो और उसमें अकारण पीड़ा हो उसे वात के कोप की वृद्धि जाननी चाहिये ।

पित्तजमाह—पक्वोदुखरसङ्क्षासः पित्ताद्वाहोम्पाकवान् ॥ ३ ॥

पित्तज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में अण्डकोश पक्वे हुए गूलर के फल के समान वर्ण का हो जावे तथा उसमें लभ्मा और पाक हो उसे पित्त के कोप की वृद्धि जाननी चाहिये ॥ ३ ॥

इलेघ्ममाह—कफाच्छ्रीतो गुरुः रित्तग्नः कण्डूमान्त्रकिनोऽलपहक् ॥

कफज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में अण्डकोश शीतल, गुरु, स्त्रिय (विकना), कण्डूयुक्त, कठिन और योड़ी पीड़ा हो उसे कफ के कोप की वृद्धि समझें ।

रक्तमाह—कृष्णस्फोटावृतः पितृवृद्धिलिङ्गश्च रक्तजः ॥

रक्त वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में अण्डकोश कृष्ण वर्ण के स्फोटों (फोड़ों) से विरा हुआ हो और पितृप वृद्धि के लक्षणों से युक्त हो उसे रक्त के कोप की वृद्धि जाननी चाहिये।

मेदोब्रमाह—कफवन्मेदसो वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ४ ॥

मेदोब्र वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में कफज वृद्धि के समान लक्षण हों और अण्डकोश मृदु तथा ताढ़ के फल के समान हों उसे मेद के कोप की वृद्धि जाननी चाहिये ॥ ४ ॥

मूत्रबारगशीलस्थ मूत्रजः स तु गच्छुतः । अः नोमिः पूर्णदतिव्योभं याति सहृद्य मृदुः ॥ ५ ॥

मूत्रबारगशीलस्थ मूत्रजः—जो मनुष्य मूत्र के वेग को रोकता है उसे मूत्रजवृद्धि होती है वह शुष्कि (अण्डकोश) उसके चलने पर बल से भरे हुए चमड़े की धैली के समान होती है, उसमें पीड़ा होती है और मृदु होती है, मूत्रकृच्छ्र होता है, और फलकोश दिलता हुआ नीचे की ओर टक्क आता है उसे मूत्रजवृद्धि कहते हैं ॥ ५ ॥

अन्त्रब्रमाह—मूत्रकृच्छ्रमधस्तारस्याच्चालयन् फलकोषयोः ।

वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनेः ॥ ६ ॥

धारणेणगभाशाखविषमाङ्गप्रवत्तनैः । स्त्रोभानः कुपितोऽन्यैश्च खुदान्नावयवं यदा ॥ ७ ॥

पयनो विगुणीकृत्य इवनिवेशादधो नयेत् । कुर्याद्वृक्षं गसनिधिस्थो ग्रन्थ्याभं ध्ययर्थुं तदा ॥ ८ ॥

अन्त्रब्र वृद्धि के निदानादि—वात को कुपित करने वाले (द्रव्य-तिक-कशावादि) आहार के सेवन करने से, अति शीतक जल में स्नान करने से, वात-मूत्रादि के वैगों को वारण करने से, वैगों को बछपूर्वक निकालने से, अधिक भार ढोने से, अधिक मार्ह सेवन करने से, अङ्गों का विषम चालन करने से, तथा वायु को शोषित करने वाले अन्य कामों (अधिक वल्लान से युद्ध, उच्चस्वर से बोकना आदि) को भी करने से कुपित हुई वायु खुदान्नके अवयव को विगुण कर अपने रथान से नीचे की ओर ले जाती है और वंशणसन्धि में गांठ के समान शोथ उत्पन्न कर देती है (आंत को छाकर शोथ कर देती है) उसे 'अन्त्रवृद्धि' कहते हैं (इसी को आंत उत्तरना कहते हैं) ॥ ६-८ ॥

उपेक्षमाणतयाऽन्त्रवृद्धिमाह—

उपेक्षमाणतय च मुखवृद्धिमाधमानरुक्तमवर्तीं स वायुः ।

प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान्प्रयाति प्राप्तमाप्यन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ ९ ॥

उपेक्षित अन्त्रवृद्धि के लक्षण—इसकी उपेक्षा करने से (चिकित्सा शीत्र नहीं करने से) वह वायु वंशण सन्धि से अण्डकोश में आकर आधमान, पीड़ा और स्तम्भ (मकादि का अवरोध) सहित कोशवृद्धि करती है। उस वायु के द्वारा उतरी हुई आंत को दबाने से शब्द करती वायु आंत के सहित भीतर प्रवेश कर जाती है और छोड़ देने पर पुनः आ जाती है ॥ ९ ॥

यस्यान्नावयवैः इलेघ्मा मुखयोर्थाति सञ्चायात् ।

अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽर्थं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ १० ॥

असाध्य लक्षण—जिस पुरुष के आंत के अवयवों से इलेघ्मा निकल कर अण्डकोशों में जाकर संचित हो जाती है और वातज वृद्धि के समान जिसका लक्षण होता है वह अन्त्रवृद्धि असाध्य है ॥

वर्धनिदानम्—

अस्यभिष्यविगुणवृक्षसेवतानिन्द्रियं गतः । करोति यन्त्रिच्छोर्थो दोषो वश्चूणसनिधिषु ॥

उवरशूलाङ्गसादाहरं तं वर्धमिति निर्दिशेत् ॥ १ ॥

वर्धम निदान—अस्यन्त अभिष्यन्दी (दही आदि) पदार्थों के अति सेवन से तथा अति गुरु

अत्र के अति सेवन करने से संचित हुआ दोष वंशण सन्धि में गांठ के समान शोथ उत्पन्न कर देता है और उसमें उवर, शूल, अङ्गों की शिथिलता आदि होती है उसे 'वर्धमरोग' कहते हैं ॥ १ ॥

अथ वृद्धिचिकित्सामाह—

वातवृद्धिचिकित्सा—सच्चीरं वा पिवेत्तैलं मासमेरण्वस्तम्बवम् ।

गुम्बुलुरुत्तेलं वा गोमूत्रेण पिवेत्तरः । वातवृद्धिनिहन्यात् चिरकालानुबन्धनीयम् ॥ १ ॥

वातवृद्धि चिकित्सा—एक मास तक दूध के साथ परण्ड के तेल की अथवा शुद्ध गुग्गुल की गोमूत्र के साथ पान अथवा गोमूत्र में परण्ड तेल मिला कर उसके साथ पान करने से अरथन्त पुरानी शी वातवृद्धि शीघ्र नष्ट होती है ॥ १ ॥

पितृवृद्धिचिकित्सा—

चन्दनं मधुकं पश्चमुक्तीरं नीकमुत्पलम् । शीरपिण्डः प्रदेहः स्यात्पितृवृद्धिरजापहः ॥ १ ॥

पितृवृद्धि चिकित्सा—लालचन्दन, मुलाठी, कमल, ऊस, नीकमल समाग ले दूध के साथ पीस कर लेप बनाकर लगाने से पितृवृद्धि की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

पञ्चवल्कलकषेन सञ्चुतेन प्रलेपनम् । पानं वायिः कवायस्थ पितृवृद्धी प्रशस्यते ॥ २ ॥

पञ्चवल्कलकषेन सञ्चुतेन प्रलेपनम् । पानं वायिः कवायस्थ पितृवृद्धी कर देते वातवृद्धि के काथ को पान करने से पितृवृद्धि में काम होता है ॥ २ ॥

कफवृद्धिचिकित्सा—

कफवृद्धौ मूत्रपिण्डैरुदण्डीयैः प्रलेपनम् । पाताध्यो मूत्रविंयुक्तः कवायः पीतदाहणः ॥ १ ॥

कफवृद्धि चिकित्सा—उण्डीर्य द्रव्यों को गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से अथवा दावहरी के काय को गोमूत्र के साथ पान करने से अथवा सोंठि, मरिच, पीपरि, अंवरा, हरा, बहेड़ इनको समान लेकर काय बनाकर उसमें यदाक्षार और सेंध नमक का प्रक्षेप देकर पान करने से कफ-वात के कोप को नष्ट करता है तथा विरेचन कराकर कफवृद्धि को नष्ट करता है ॥ १ ॥

विकटवृद्धिचिकित्सा—

रक्तवृद्धिचिकित्सा—रक्तपित्त के कोप से होने वाले वृद्धिरोग में अविदाही (दाह नहीं करने वाले) औषध तथा पथ्य को सेवन करना चाहिये और पितृ की नष्ट करने वाले सब कार्य करना चाहिये तथा रक्त से होने वाले वृद्धि में रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तवृद्धिचिकित्सा—

अविदाहि च भैषज्यं कर्तव्यं रक्तपत्तिके । सर्वं पितृहर्तुं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ ३ ॥

मुद्दमुर्हुर्जलौकामिः शोणितं रक्तजे हरेत् । शीतमालेपनं सर्वं पाको रक्तयः प्रयत्नतः ॥ २ ॥

रक्तवृद्धि में बार-बार ज्लोक के द्वारा रक्तमोक्षण कराना चाहिये तथा सब प्रकार के शीतल लेप क्षत पर करना चाहिये और पाक नहीं ही ऐसा यस्त करते रहना चाहिये ॥ २ ॥

निर्वृतं प्रपिवेष्टौद्वाक्षकरासहितं मुद्दुः । पितृग्रन्थिकम् कुर्यादामे पके च रक्तम् ॥ ३ ॥

निशेय के काथ में शीतल होने पर मधु और शर्करा का प्रक्षेप देकर बार-बार पिलाना चाहिये तथा इस रक्तवृद्धि में आम तथा पक दोनों अवस्था में पितृप्रन्थि की चिकित्सा के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

मेदोवृद्धिचिकित्सा—

द्विन्नन् मेदः समुद्धानं लेपते सुरसादिना । शिरोविरेचनद्रव्यैः सुखोण्डौ मूत्रसंयुतैः ॥ १ ॥

मेदोवृद्धि चिकित्सा—मेद से उत्पन्न होने वाले वृद्धि को सुरसादि गण की ओषधियों से विशृंखक स्वेदन करना चाहिये और शिरोविरेचन करने वाले द्रव्यों का पीस कर गोमूत्र मिलाकर धोड़ा गरम कर लेप करना चाहिये। इससे मेदोवृद्धि नष्ट होती है ॥ १ ॥

वृद्धिषणगुणगुलुः—

वृद्धिषणं चौदसमं गुणगुलं रथ्यसर्पिषा । प्रयुक्तं कुद्य भुजीत यथाविन विवसानने ॥
कटुतिक्कथायाशी मेदोवृद्धिग्राणशानम् ॥ ३ ॥

वृद्धिषण गुणगुलु—पीपरि, पिपरामूल, चब्य, चित्त की जड़, सोंठि और मरिच समझाए लेकर चूंचकर उसके समान भाग शुद्ध गुणगुल मिला कूटकर मधु और गोधूत मिलाकर अनिवार के अनुसार प्रातःकाल मक्षण करने से और कटु-तिक्क तथा कथाय रस वाले पदार्थ का ही पथ्य सेवन करने से मेदोवृद्धि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

मूत्रजेऽन्वृद्धौ च—

संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्राखण्डेन वेष्येत् । सीवन्याः पाश्वर्तोऽधस्ताद्विद्येद् ब्रीहिसुखेन वै ॥ १ ॥

मूत्रज तथा अन्वृद्धि चिकित्सा—मूत्रज तथा अन्वृद्धि में इदि का स्वेदन करके वज्र से बेहित कर देना चाहिये और सीवनी के पास नीचे 'ब्रीहिसुख' यन्त्र से सिरा का भेदन कराना चाहिये ॥ १ ॥

जुषककोशमगच्छुत्यामन्वृद्धौ चिचक्षणः । वातवृद्धिकमं कुर्याद्वाहस्तव्राग्निना हितः ॥ २ ॥

यदि अन्वृद्धि अण्डकोश की ओर नहीं जाती हो तो वातवृद्धि के समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये और अग्नि से दाढ़ करना यहाँ हितकर है ॥ २ ॥

शङ्खोपरि च कण्ठान्ते रथक्षवा सीवनिसादरात् । वयत्यासाद्वा शिरां विष्वेदन्वृद्धिनिवृत्तये ॥

शङ्ख स्थान के ऊपर कान के अनितम भाग में सीवनी की छोड़ कर वयत्यासाद्वा से अर्थात् यदि अण्डकोश में वृद्धि हो तो वायें कान की ओर वायें अण्डकोश में वृद्धि हो तो दायें कान की सिरा को भेदन करे तो इससे अन्वृद्धि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

अन्वृद्धौ योगः—

तैलमेरण्डजं पीतं बलासिद्धं पयोन्वितम् । आधमानशूलोपचितामन्वृद्धि जयेन्नरः ॥ ४ ॥

बरिआरा के साथ क्षीरपाक की विधि से सिद्ध दूध में परण्ड के तेल को मिलाकर पान करने से आधमान और शूल से युक्त अन्वृद्धि रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रासनादिः—

रासनायष्ट्यवृत्तैरण्डबलागोच्चुरसाधितः । क्षाथोऽन्वृद्धिं हन्त्याशु रुक्तेलेन मिथितः ॥ ५ ॥

रासनादि काप—रासना, जेठी मधु, गुरुचि, एरण्ड की जड़, बरिआरा और गोखल का सम भाग काप कर उसमें परण्ड तैल मिलाकर सेवन करने से शीघ्र अन्वृद्धि का नाश होता है ॥ ५ ॥

पिष्पली विष्पली की जड़ कुष्ठ वदरं शुष्कगोमयम् । काजिकेन प्रलेपोऽथमन्वृद्धिविनाशनः ॥ ६ ॥

पिष्पली जीरकं कुष्ठं वदरं शुष्कगोमयम् । काजिकेन प्रलेपोऽथमन्वृद्धिविनाशनः ॥ ६ ॥
पिष्पली जीरक लेप—पीपरि, बीरा, कूठ, बैर, सूखा गोदर इनको समान ले कूट पीस कर कांबी में मिलाकर लेप करने से अन्वृद्धि नष्ट होती है ॥ ६ ॥

देवदार्ढादि प्रलेपः—

देवदार्ढादि शीताकलीमूलसैन्धवैः । स्फीद्रयुक्तैश्च तैर्लेपो वृद्धिमन्वृद्धवां जयेत् ॥ ७ ॥

देवदार्ढादि लेप—देवदारु, सौफ, वासा, पनवाढ़ की जड़, और सेंधो नमक इनको समान ले कूटपीस कर मधु मिलाकर लेप करने से अन्वृद्धि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

अण्डवृद्धिचिकित्सा

तैलं नारायणं शोउयं पानाम्यज्ञनवस्तिषु । गोमूत्ररण्डतैलाभ्यां रसगन्धककुञ्जलीम् ॥ १ ॥

पीपवा निहन्ति सहसा वृद्धिवृष्टगसम्भवाम् ।

अण्डवृद्धि चिकित्सा—अण्डवृद्धि में नारायण तेल को पान करने, मर्दन करने और बट्टित कर्म में प्रयोग करने से और गोमूत्र में परण्ड तैल मिलाकर उसमें शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक की कुजड़ी मिलाकर पान करने से अण्डकोश की वृद्धि को इठात नष्ट करता है ॥ १ ॥

वातकफवृद्धौ फलत्रिकादिः—

फलत्रिकोद्धूषं कथाथं गोमूत्रेणैव पाचयेत् । वातश्लेषमकृतं हन्ति कथाथं वृष्टगसम्भवम् ॥ २ ॥

फलत्रिकादिकाय—इरां, बडेड़ा, आंवला सम भाग लेकर काय कर उसमें गोमूत्र मिलाकर पान करने से वृष्टग का वातकफज क्षोथ नष्ट होता है ॥ २ ॥

पक्षादिपिण्डी—

पक्षादिपिण्डीज्ञापुण्डीनिर्दीनां मिथः समैरच्छूर्णैः ।

शूरमधुसहिता पिण्डी न चमते सुष्कवृद्धिक्याम् ॥ ३ ॥

पक्षादिपिण्डी—पाकड़, बडेड़ी की गुठड़ी, सोंठि और निर्दीनी सम भाग लेकर चूंच कर घृत और मधु मिलाकर पिण्डी बनाकर विषित प्रयोग करने से अण्डकोश की वृद्धि को नष्ट करता है ॥

वातासांपक्षकेन प्रलेपः शोफनाशनः ।

दार्ढीच्छूर्णं गवां मूत्रैर्जिपीतं सुष्कवृद्धिलिप्तम् । आर्द्रकस्य रसः वृद्धयुक्तो वृष्टगवातजित् ॥ ४ ॥

वज्र और सर्तों को पीसकर लेप करने से अण्डकोश का क्षोथ नष्ट होता है, अथवा दाढ़-हरकी के चूंच को गोमूत्र के साथ पान करने से सुष्कवृद्धि नष्ट होती है अथवा अद्रक के स्वरस में मधु मिलाकर पान करने से वृष्टग वात नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ सामान्यविधिः ।

मास्यादिप्रवृत्तम्—

मासी कुष्ठं पश्चकैला रासना शूली च चित्रकद् । कृमिद्विग्नवृद्धवन्धा च शैलेयं कुदुरोहिणी ॥ ५ ॥

सैन्धवं तगरं चैव कुट्टातिविधैः समैः । एतैश्च कार्विकैः कलैर्ष्वृत्प्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

वृष्टमुण्डीतकैरण्डनिग्नवृद्धप्रस्थम् रसम् । कण्टकार्याद्यादि दुर्ग्र प्रस्थं प्रस्थं विनिविषेत् ॥ ६ ॥

सिद्धमेतद्धृतं पीतमन्वृद्धिं व्ययोहति । वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमयाद्यिवा ॥

सुष्कवृद्धिं च हन्त्येतस्याद्यात् ॥ ४ ॥

मास्यादि शूत—जटामासी, कूठ, तेजपात, इलायची, रासना, काकड़ासिंगी, चित्र की जड़, बाशीरंग, वसगन्ध, छैल छरीला, कुटकी, सेंधा नमक, तगर, कोरथा की छाल और अतीस को समान वा एक २ कर्षे केरक कर कर प्रस्थ मूत्रिंशत गोमूत्र में मिलाकर पान करे और इसमें पाचार्य अस्त्रस का स्वरस, मुण्डी का स्वरस, परण्ड के पत्तों का स्वरस, नीम के पत्तों का स्वरस, छोटी कटेरी के पंचाग का स्वरस और गाय का दूध प्रस्थेक एक २ प्रस्थ पृथक् २ दाढ़कर विषित वाक करे वृत्तमात्र देव रहने पर उतार-छानकर पान करने से अन्वृद्धिको नष्ट करता है और वातवृद्धि, पित्तवृद्धि, मेदोवृद्धि को यह धृत शीघ्र और निश्चय ही नष्ट कर देता है ॥ १-४ ॥

पुनर्नवादि तैलम्—

पुनर्नवाडमृता दान सचारं लवणग्रन्थम् । कुष्ठं शाटी च च मुस्तं रासना कट्टफलपुष्करम् ॥ १ ॥

दधानी हुत्या शिग्मः शताद्वा चाजमोदिका । विद्वातिविषायष्टीपञ्चकोलकसयुतैः ॥ २ ॥

एतैरप्सामैः कलैर्ष्वृत्प्रस्थं विपाचयेत् । गोमूत्रं द्विगुणं देवं काञ्जकं च तर्पय च ॥ ३ ॥

पुनर्नवादमैत्तु वस्त्रौ पाने तयोर्तमस्य । कट्टवृपृष्ठमेद्यु कुच्छी च दृष्टप्राणितम् ॥ ४ ॥

कफवातोज्जरं शूलमन्वृद्धिं विनाशनम् ॥ ४ ॥

पुनर्नवादि तैल—पुनर्नवा, गुरुचि, देवदारु, यवाखा, सेंधानमक, सोंधरनमक, विडनमक,

कूट, कचूर, बच, नागरमोथा, रासना, कायफर, पुहकरमूल, जवाइन, हाऊवेर, सहिवन, सौफ, अजमोदा, बाभीरंग, अतीस, जेठी मधु, पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्त की जड़ और सौंठि पृथक् २ पक २ अक्ष के प्रमाण से लेकर एक प्रस्थ कल्क मूर्छित. तेल के तेल में मिलाकर तेल पाक करे और इसमें गोमूत्र और काँची दो २ प्रस्थ देकर पाक करे। तेल मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर रख लेवे। यह 'पुनर्नवाद तैल' वर्सित कर्म तथा पान करने में उत्तम है। इससे कटि, ऊर, पीठ, शिशन, कुक्षि और अण्डकोष में उत्पन्न होनेवाले कफ और वात के शूल तथा अन्तर्वृद्धि नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अथ वर्ध्मचिकित्सामाह ।

विश्वादिचूणम्—

मूलं तिलवकपितथयोररलुकस्थानेवृहृत्योद्दृयोः
स्थामापृतिकरञ्जशिग्रकतरोविंशौषधारुक्तरम् ।

कृष्णाग्रन्थिकवेशलज्ज्ञ लवणं खाराज्ञमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोण्ठतोयमथितैश्चूर्णकृतं वर्ध्मजित ॥ १ ॥

विश्वादि चूर्ण—बेल की जड़, कैथ की जड़, सोना पाठा की छाल, पित्त की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, इयामा (काली निशोथ), पूतिकरज, सहिवन की छाल, सौंठि, शुद्ध मिलावा, पीपरि, पिपरामूल, बाभीरंग, पृथक् २ पांचों नमक, यवाखार, अजमोदा सम भाग (एक २ भाग) लेकर चूर्ण कर काँची अथवा उष्ण जल अथवा मथित (तक) के अनुपान से यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से वर्ध्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

भृष्टश्वैरुष्टतेलेन कल्पः पथ्यासमुद्धवः । कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वर्ध्मरोगहरः परः ॥ १ ॥

एरण्डतेलादि योग—एरण्ड के तेल के कल्प वा चूर्ण को भूबकर उसमें पीपरि का चूर्ण तथा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने से वर्ध्म रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

श्वदंश्वासिन्दुविष्वाददारुकमिहराशमभित् । लोच्चूर्णं वृत्तेनाद्याद्वात्वर्ध्महरं परम् ॥ २ ॥

श्वदंश्वादि चूर्ण—गोखरु, सेंधा नमक, सौंठि, नागरमोथा, देवदारु, बाभीरंग, पश्चन्त्रूर और लोब समभाग लेकर विष्विपूर्वक चूर्ण कर घृत के साथ मिलाकर सेवन करने से वर्ध्म नष्ट होता है ॥ सैन्धवं मदनं कुण्डं शाताद्वा निजुलं वचा । हीबेरं मधुकं भाङ्गी देवदारु सनागरम् ॥ ३ ॥

कट्फलं पील्करं मेदा चविका चिक्रं शती । विडङ्गतिविषे स्थामा हरेणुर्नीलिनी विथरा ॥ ४ ॥

विश्वाजमोदा रासना च दन्ती कृष्णा च तैः समैः । साध्यमेरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुद् ॥ वर्ध्मोदावर्तं गुरमार्णः प्लीहमेहाद्यमास्तान् । आनाहमशर्मर्णी चैव हृन्यात्तदनुवासनाद् ॥ ५ ॥

सैन्धवादि तेल—सेंधानमक, मैनकल, कूठ, सौफ, समुद्रफल, बच, हाऊवेर, मुलाइठी, बमनेठी, देवदारु, सौंठि, कायफर, पुहकरमूल, मेदा, चव्य, चित्त की जड़, कचूर, बाभीरंग, अतीस, काली निशोथ, रेणुका, नील, शालिपाणी, बेल की छाल, अजमोदा, रासना, दन्ती, पीपरि, समान लेकर विष्वित कल्क कर कल्प के चौगुना मूर्छित एरण्ड तेल अथवा तिल का तेल और पाकाये जल तेल से चौगुना लेकर तेल पाक कर सेवन करने से ये दोनों तेल कफ और वात को नष्ट करते हैं और वर्ध्म, उदावर्त, उथम, अश, प्लीहा, मेद, आळवात, आनाह, अशमरी, ये सभी रोग इस तेल का अनुवासन वर्सित के द्वारा प्रयोग करने से नष्ट होते हैं ॥ १-६ ॥

अजाज्वादि लेप—जीरा, हाऊवेर, कूठ, सूदा गोधर, बैर की छाल सम भाग लेकर काँची के साथ पीसकर लेप करने से वर्ध्म में काम होता है ॥ १ ॥

सथोमृतस्य काकस्थ मलेन परिलेपनम् । वर्ध्मरोगो पथास्याशु रविणा तिमिरं यथा ॥

पक्वेऽन्न दारणं कृत्वा प्रकर्त्तम्भा व्रणक्षिया ॥ २ ॥

काकमल (विषा) प्रलेप—शीघ्र ही मरे हुए काक की विषा का वर्ध्म पर लेप करने से वर्ध्मरोग शीघ्र इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सूर्य से अन्धकार। वर्ध्म के पक जाने पर चीरफाढ़ कर ब्रन के समान (शोचन-रोपण आदि) किया करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ कुरण्डचिकित्सा ।

यः वित्तदोषेण कुरण्डरोगो भवेच्छिशोर्वैच्छिणसुष्कभागे ।

तस्योर्ध्वभागं त्रवणस्य विध्येद्वामस्य वामप्रभवेऽपैरस्य ॥ १ ॥

कुरण्ड चिकित्सा—पित्त के विकार से यदि बालक को कुरण्ड रोग (अण्डवृद्धि) हावें अण्डकोष में हो तो दायें कान के ऊपर की ओर दायें अण्डकोष में हो तो बायें कान के ऊपर की सिरा बेष देना चाहिये ॥ १ ॥

एरण्डतेलादियोगः—

एरण्डतेलसमिश्रं कासीसं सैन्धवं पिवेत । वस्त्रेण वृष्णं बद्धं कुरण्डवरनाशयम् ॥ १ ॥

एरण्डतेलादि योग—एरण्ड तेल में शुद्ध कासीस का चूर्ण और सेंधा नमक मिलाकर पान करने से और बख से अण्डकोष को बाँधने से कुरण्ड जबर नष्ट होता है ॥ १ ॥

इन्द्रवारण्यादि—

इन्द्रवारण्यादि कासीलं तैलं पुष्करतं तथा । सम्मद्यं च सरोदुरुपं पिवेऽजन्तुः कुरण्डजे ॥ १ ॥

इन्द्रवारण्यादि योग—माहरि की जड़ का चूर्ण तिक का तेल अथवा एरण्ड का तेल, पुहकरमूल का चूर्ण सब समान लेकर मदनकर गोदुरुप के अनुपान से पान करने से कुरण्डरोग नष्ट होता है।

सैन्धवादिलेपः—

सैन्धविंतं सैन्धवमायुक्तं सम्मद्यं तोयस्थितमेव सोणम् ।

सुहुसुहुर्यः कुत्तेन प्रलेपं विलीयते तस्य कुरण्डरोगः ॥ १ ॥

सैन्धवादि लेप—सेंधा नमक के चूर्ण को गोधृत में मिलाकर जल में डालकर डण करे जब जल डण होगा तो घृत भी डण होकर फैल जावेगा। इस फैले हुए डण घृत का बार २ लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गद्बा घृतेन संयुक्तं चिपेत्सैन्धवचूर्णकम् । पिवेससप्तिनं यावत्ताववलेपः कुरण्डजे ॥ १ ॥

सैन्धवादि योग—गी के घृत में सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर सात दिन पान करने और इसीका लेप भी करने से कुरण्ड रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

तण्डुलवारिविभिन्नं घृतपुरसज्जं यद्युच्यते लोके । तन्मूलविभिन्नं कुरण्डगलगण्डयोः कुर्याद् ॥

घृतपुर लेप—चावल के बोअन के साथ बोअंकं की जड़ पोस कर कुरण्ड और गण्ड भी पर लेप करना चाहिये इससे कुरण्ड और गण्ड नष्ट होता है ॥ २ ॥

ईश्वरीमूलमेरण्डमूलं सूषकचर्मं च । प्रलेपः स्थावुरण्डानां रोगविच्छेषकारकः ॥ ३ ॥

ईश्वरीमूलादि लेप—बांक कोड़ी की जड़, एरण्ड की जड़, मूस का चमड़ा इनको समान ले पीस कर लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुयेषितं आश्वाण्यष्टिकाथा मूलं समं तण्डुलधावनेन ।

निहन्ति लेपाद्वलगण्डमालां कुरण्डमुख्यानस्तिकान्विकारान् ॥ ४ ॥

बाह्याणशृंगमूल प्रलेप—बाह्याणशृंगमूल (बमनेठी) की जड़ को पीस कर चावल का धोवन समान मिलाकर लेप करने से गण्डगण्ड, गण्डमाला और मुख्यतः कुरण्ड रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

वातारितैलभूदितं सुरवाहणीजं मूलं वरः पिवति यो मसृणं विचूर्णं ।

गड्ये निषाय परसि विदिनावसाने तत्त्वं प्रणश्यति कुरण्डकृतो विकारः ॥ ५ ॥

इन्द्रवारुणी मूल योग—एरण्ड के तेल के साथ माइरि की बड़ को पीस कर गाय के दूध में मिलाकर तीन दिन तक जो पीता है उसका कुरण्ड नामक विकार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

गोमूत्रसिद्धां खुत्सैलभूषां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम् ।

खादेन्नरः कोणजलानुपानाजिहन्ति कुरण्डमतीव वृद्धम् ॥ ६ ॥

सिद्ध हरीतकी—हरी को गोमूत्र में भिगो कर (मावित कर) एरण्ड के तेल में भूज कर सेंधा नमक के चूर्ण को उसमें मिलाकर उडणोदक के अनुपान से सेवन करने से अथवन्त बढ़ा दुधा भी कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शम्बूकोदरनिहितं गम्यं सप्ताहमातपे सर्विः ।

स्थितमपहरति कुरण्डं सैन्धवचूर्णान्वितं लेपात् ॥ ७ ॥

शम्बूक योग—शम्बूक (धौंधे) के भीतर गाय का घृत भर कर एक सप्ताह तक घृप में रखने के बाद उस घृत में सेंधा नमक का चूर्ण भिलाकर लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अथ पद्धत्यापद्धयम् ।

संशोधनं वस्तिरसुग्विभोजः श्वेतः प्रलेपोऽरुणशालयश्च ।

एरण्डतैलं सुरभीजलं च घन्वामिषं शिशुफलं पटोलम् ॥ १ ॥

पुनर्नवागोऽहुरकामिमन्थं ताम्बूलपथ्यारसनारसोनम् ।

वान्यथक्कनागृज्ञनकं मधूनि कौम्भं वृत्तं तसजलं च तक्कम् ॥ २ ॥

अर्धेन्दुवद्वृद्धृष्णयोथ द्वाहो व्यत्यासतो द्वाहुशिराव्यधश्च ।

यथामयं शश्विष्णिश्च चर्गः स्याद्वृद्धृष्णवृद्धथामयिनां सुखाय ॥ ३ ॥

पश्यापथ्य—संशोधन कर्म (वग्न-पिरेचनादि), वर्तिकर्म, रक्तमोक्षण, त्वेदकर्म, लेप कलाना लालशालिधान का चावल, एरण्ड का तेल, गौ का मूत्र, घन्वदेशीय (मरस्थल के) जीवों का मास, सहितन का फल, परवर, पुनर्नवा, गोखरु, गलियार, पान, इर्फा, रास्ना, छाइसुन, बम्ब कर्म, प्रियंगु, गाढ़र, मधु, सौ वर्ष का पुराना घृत, उडणबल, मटठा, अर्धचन्द्राकार छोहा तपाकर वंशुण सन्धि में दागना, बाढ़ु की सिराओं को व्यत्यासमाव से (दाहिने और के अण्डकोष के बढ़ने में बायें और बायें और के बढ़ने से दाहिने बाँह की सिरा का) भेदन करना, रोगनुसार शस्त्र चिकित्सा तथा रोगनाशक पदार्थों का सेवन करना आदि सभी उपाय वर्षमै तथा वृद्धि रोग में द्वितकर हैं ॥ १-२ ॥

आनूपमांसानि दधीनि माशाः पिण्डानि दुष्टाच्चमुपोदिका च ।

गुरुणि शुक्रोस्थितवेगरोधाः स्युवर्धमवृद्धथामयिनामयिवाः ॥ ४ ॥

आनूप जीवों का मास, दही, डह्ड, पिण्डी, दूषित अन्न, पोई का शाक, गुरु द्रव्य, वीर्य के छें दुष वेग को रोकना, ये सभी कर्म वर्षमै तथा वृद्धिरोग वालों के लिये अद्वितकर हैं ॥ ४ ॥

वृन्दावत—वेगाहर्ति पृथ्यानं व्यायामं मैथुनं तथा ।

अर्थशनमयाध्वानमुपवासं परिष्यजेत् ॥ ५ ॥

वेगों को धारण करना, पीठ पर (बोड़ा आदि की पीठ पर) चढ़ना (स्वारी करना), व्यायाम, मैथुन, अधिक योग्यता, मार्ग सेवन और उपवास इन सभीको त्याग देवे ॥ ५ ॥

इति सुष्कान्तवृद्धिवर्धमरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ गलगण्डगण्डमालापचीयन्थर्बुद्दनिदानम् ।

गलगण्डादिनिदानमाह—

विवद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लभते गले । महान् वा यदि वा हृस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥

गलगण्ड का रूप—जिस मनुष्य के गले में हृद (अचल) शोथ उत्पन्न होकर अण्डकोष के समान छटके और वह शोथ बढ़ा हो अथवा छोटा हो उसे 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ १ ॥

यथोक्तं भोजेनापि—

महान्तं शोथमर्पयं वा हजुमन्यागलाश्यम् । लम्बन्तं मुष्कवल्लभा गलगण्डं विनिर्दिशेत् ॥

बढ़ा अथवा छोटा जो शोथ हजु, मन्या और गला के आश्रय में अण्डकोष के समान लम्बा छटक जाता है उसे 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ १ ॥

तथा संप्राप्तिमाह—

वातः कफश्चापि गले प्रदृष्टो मन्ये तु संश्लिष्ट तथैव मेदः ।

कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं सं गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥

गलगण्ड की सम्प्राप्ति—वात, कफ और मेद गले में दूषित होकर दोनों ओर की मन्याओं का आश्रय लेकर कम से अपने लक्षणों से युक्त (वातज, कफब और मेदोब) गण्ड (शोथ) कर देते हैं उन्हें 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ २ ॥

तत्र वातिकमाह—

तोषान्वितः कृष्णशिरावनद्वः श्यावाहणो वा पवनात्मकस्तु ।

पाद्यथयुक्तश्चिरवृद्धयपाको अटड्डुया पाकमियाकदाचित् ॥ ३ ॥

वैरस्यमारयस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ।

वातज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में तोष (सूख जुमाने के समान पीड़ा) हो और वह काली नसों से विरा हो, तथा उसको वर्ण श्याम अथवा अरुण हो एवं वह रुक्ष हो, बहुत देर में बढ़े और पके नहीं, कोई २ स्वयं पक मी जावे और जिसको यह उत्पन्न होने उसके मुख का स्वाद विरस हो, तालु तथा गला सूखता रहे उसे वात के कोप का गलगण्ड (वातज गलगण्ड) कहते हैं ॥

श्लैषिकमाह—

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डः शीतो महाश्वापि कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥

चिराभिवृद्धं भजतेर्भिराद्वा प्रथम्यते मन्द्रुजः कदाचित् ।

मायुर्यमारयस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कफज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में स्थिरता तथा शरीर के समान वर्ण हो और जो गुरु हो, जिसमें अति कठिन कण्ड हो, जो शीतक तथा बढ़ा हो, बहुत देर में बढ़े पके तथा पाक के समय में भी पीड़ा अर्थ ही हो और मुख का स्वाद मधुर हो, तालु तथा गले में कफ किस रहे उसे कफ के कोप का (कफज) गलगण्ड कहते हैं ॥ ५-१ ॥

मेदोजमाह—जिस्यो गुरुः पाण्डुरनिष्ठगन्धो मेदोभवः कण्ड्युतोऽपरुक्त ।

प्रलम्बतेर्भावुक्तवद्यमूलो देहाजुरुरुपथ्यवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥

स्तिरग्रास्यतः तस्य भवेत्तच जन्तोर्भिरुद्धुन्द्रुद्धुतिमात्रम् ।

मेदोज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में स्तिरग्रास्ता तथा गुरुता हो, और जो पाण्डु वर्ण का हो, जिसमें दुर्गंध, कण्ड, अर्थ पीड़ा हो, अलाकू (छोड़ी) के समान मूल में पतला और लम्बा होकर लटकने वाला हो, शरीर के समान ही हो गण्ड का क्षय और वृद्धि हो अर्थात् शरीर दुर्बल होने पर क्षीण और सबल होने पर वृद्ध हो और उसका मुख स्तिरग्रास हो, गले में अनुनाद हो अर्थात् जो

बोले उसके ही अनुसार गले में भी शब्द होवे उसे मेद के प्रकोप का मेदोज गगण्ड जानन, चाहिये ॥ ६ ॥

असाध्यत्वमाह— कुच्छ्वाङ्गवसन्तं भृदुर्सर्वशान्त्रं संवस्तरातीतमरोचकार्तम् ।

हीं च वैथो गलगण्डयुक्तं निजस्वरं चापि विवर्जयेद्दि ॥ ७ ॥

असाध्य लक्षण— जिस गगण्ड में रोगी बड़े कष्ट से थास लेवे, सम्पूर्ण शरीर उसका शुद्ध (कोमल वा शिथिल) हो गया हो, रोग एक वर्ष का पुराना हो गया हो, रोगी को अस्थि हो, शरीर क्षीण और खरभेद हो, उस गगण्ड के रोगी को वैद्य स्थाग देवे ॥ ७ ॥

स्थानतुर्यतया गलगण्डमालामिहैवाह—

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कांसमन्यागलचक्षुणेषु ।

मेदःकफाभ्यो चिरमन्दपःकैः स्थाद् गण्डमाला वसुभित्ति गण्डैः ॥ ८ ॥

गण्डमाला का स्वरूप—मेद और कफ के कुपित होने के कारण कांख-कन्ता-मन्या (कणी मूल का निचला स्थान), गला और वक्ष्यान में बन दैर (झर बैर) वही बैर और आँवले के प्रमाण की बहुत सी गण्ड (गाँठे) उपर्युक्त हो जाती हैं वे गाँठे बहुत समय के बाद धीरे २ अथवा कम पक्के बाली होती हैं उसे 'गण्डमाला' कहते हैं ॥ ८ ॥

यदाह भोजः—

आतपित्तकफा वृद्धा मेदधापि समन्वितम् । जङ्घोः कण्डरां प्राप्य मरस्याण्डसदशान्वद्दून् ॥
कुर्वन्ति ग्रन्थीस्तास्तेभ्यः पुनः प्रकृपितोऽनिलः । तान्दोषानूर्ध्वर्गो वस्त्रःकहामन्यागलाभितः ॥
नानाप्रकारान्वृद्धते ग्रन्थीन्द्रिया स्वपची द्वच । अपची कण्ठमन्यासु कक्षावच्छणसम्भितुः ॥

गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥ ३ ॥

बड़े हुए वात-पित्त और कफ तथा संचित मेद भिला कर जङ्घाओं की कण्डराओं को प्राप्त होकर मरस्याण्ड (मछली के अण्डे) के सदृश बहुत सी ग्रन्थियों को उत्पन्न कर देते हैं फिर उनसे कुपित कवचीं वात उन दोषों को वक्षःस्थक, कांख, मन्या और गला के अथवा करके उनेक प्रकार की ग्रन्थी अपची की भाँति कर देता है। उसी अपची को, जो कण्ठ, मन्या, कांख और वक्ष्यान संरिप्यों में (माला की आकृति की) हो जाती है, उसे 'गण्डमाला' जानना चाहिये । ये (गण्डमालायें) अपची के समान ही लक्षणों वाली होती हैं ॥ १-३ ॥

गण्डमालातुर्यतयाऽपचीमाह—

ते ग्रन्थयः केचिद्वासपाकः स्वचन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ।

काळानुबन्धं चिरमाधाति सेवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १ ॥

गण्डमाला का मेद से अपची—गण्डमाला की ग्रन्थियों में यदि कोई एकती हो, कोई बहती हों (ग्रन्थियों में पूर्यादि का स्थाव होता हो), कोई नष्ट होती हो और कोई उत्पन्न होती हो इस प्रकार की अवस्था यदि बहुत समय तक रह जावे तो उस अवस्था को कोई २ 'अपची' कहते हैं ॥

तस्याः साध्यासाध्यतयाऽपचीमाह—

साध्याः स्मृताः पीनसपाश्वर्शूककासउवरच्छिद्युतास्त्वसाध्याः ॥

साध्यासाध्यता— ये उपर्युक्त ग्रन्थियों साध्य कही गयी हैं। परन्तु जिसमें पीनस, पाशशूक, कास, झवर और वमन भी हो ऐसी ग्रन्थियां असाध्य हैं ॥

अथपचीरूपगुणतया ग्रन्थिकानाह—

आतादयो मांसमदुक्षुण्डाः सम्पूर्ण मेदध्य तथा शिराद्य ।

वृत्तोक्तं विश्वितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

ग्रन्थि रोग— कुपित (वृद्ध) वातादिक दोष तथा मेद और सिरायें मांस और रक्त को दूषित करके गोल डटी हुई गांठदार शोथ को कर देती है उसे 'ग्रन्थि' (गांठदार होने से) कहते हैं ॥ १ ॥
वातिकमाह— आयस्यते वृक्षते तुश्चते च प्रथस्यते मथ्यति भिष्यते च ।

कुण्डो भृदुर्वस्तिरिवाऽऽततश्च भिक्षः स्वेच्छानिलज्ञोऽस्मच्छ्वाम् ॥ २ ॥

वातज ग्रन्थि— जिस ग्रन्थि में खींच कर बढ़ाने, छेदन करने, सूर्य तुमाने, फैकने, मधने, फौटने आदि की भाँति पीढ़ा होती हो और जो कुण्ड वर्ण की कोमल वस्ति के समान फैली हुई हो तथा फूटने पर जिससे वृक्ष रक्त का स्वाव हो उसे वातज ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ २ ॥

पैचिकमाह— दन्वद्वाते धूप्यति चूर्यते च पापचयते प्रज्वलतीव चापि ।

रकः स पीतोऽप्यथ वापि पित्ताङ्गिः स्वेदे दुष्टमतीव चापम् ॥ ३ ॥

पित्तज ग्रन्थि— जिस ग्रन्थि में अरथन्त दाह, धूंषा निकलने के समान वा अति सन्ताप, चूसने (सिंगी तुम्ही आदि से रक खींचने) के समान, भार से पकने के समान और अभिसे जड़ने के समान पीढ़ा हो और फूटने पर उससे लाल या पीत वर्ण का अथवन्त दूषित रक का स्वाव हो उसे पित्त के कोप की (पित्तज) ग्रन्थि समझनी चाहिये ॥ ३ ॥

इलेषिकमाह— शीतो विवर्णोऽऽप्यस्त्रज्ञोऽप्यक्षः पाषाणवस्त्रद्वन्नोपक्षः ।

चिरभित्तुद्वित्त कफप्रकोपाग्निः स्वेदेभुल्लघनं च पूर्यम् ॥ ४ ॥

कफज ग्रन्थि— जिस ग्रन्थि में शीतलता हो, शरीर के ही वर्ण के समान वर्ण हो, पीढ़ा अथवा तथा कण्डु हो और जो पत्तर के समान कठिन हो, बहुत देर में बड़े और फूटने पर उससे लवेत वर्ण का गाढ़ा पूर्य का स्वाव हो उसे कफ के कोप की (कफज) ग्रन्थि समझनी चाहिये ॥ ४ ॥

मेदोजमाह— शरीरवृद्धिलक्ष्यवृद्धिहानिः स्विनग्धो महान् कण्डुयुतोऽप्यहक् च ।

मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिं प्रतिमं च मेदः ॥

मेदोज ग्रन्थि— जिस ग्रन्थि में शरीर की वृद्धि होने से वृद्धि तथा शरीर के क्षीण होने से धातु हो वह चिकनी, अस्थन्त बड़ी, कण्डु, तथा अल्प पीढ़ायुक्त हो, और फूटने पर उसमें से पिण्याक (बोली हुई खींची) और घृत के समान मेद का स्वाव हो उसे मेद के कोप की (मेदोज) ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

उक्तं च भोजेन—

मेदो वायुर्दा मांसे निविपेदथवा त्वचि । तत्र मेदोभवो ग्रन्थिः स्थावो अवति पाप्त्वरः ॥

कृशः कृषो महान्स्थूले ग्रन्थिरिष्वच्छ धीदितः । तिक्तकलनिभः चाचो वृत्वचास्य जायते ॥

जब वायु कुपित होकर मेद को मांस अथवा त्वचा में फैकता है (जे जाता है) तब वह द्वयाम वर्ण वाली अवस्था पाण्डु वर्ण वाली मेद से ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। वह ग्रन्थि रोगी के दुर्बल होने पर सूक्ष्म और स्थूल होने पर बड़ी होती है तथा पीढ़ित होने और फूटने पर उससे तिक्त के कल्प के समान और घृत के समान स्वाव होता है इसे 'मेदोब ग्रन्थि' जाननी चाहिये ॥

सिराजग्रन्थिः सम्प्रातिमाह—

स्थायामजातैरबलस्य तैरत्तेऽद्विष्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ।

सङ्कृत्य संपीडय विशेष्य चापि ग्रन्थिं करोयुक्तमाशु वृत्तम् ॥

ग्रन्थिः शिराजः स तु कुच्छ्वासाध्यो भवेद्यदि स्थासरजश्चक्षश्च ॥ १ ॥

सिराजन्य ग्रन्थिः—जो निर्वल मनुष्य अधिक श्रम करते हैं उनके अम से कुपित वायु सिरा समूह को आक्षिस, संकुचित, पीढ़ित और विशेषित करके शीघ्र बड़ी हुई गोल ग्रन्थियों को उत्पन्न कर देती है। वह शिराज ग्रन्थि यदि पीढ़ा युक्त और चढ़ने वाली हो तो वह साध्य है ॥ १ ॥

तस्यासाध्यत्वमाह—

स आहजात्मचो महांश्च मर्मादियज्ञापि विवर्जनीयः ॥ १ ॥

और यदि पीड़ा रहित, अचल, शुद्धी, मर्मस्थान एवं अस्थि से उत्पन्न होने वाली हो तो वह स्थाने योग्य (असाध्य) होती है ॥ १ ॥

उक्त भाजेन—पञ्चानन्त्रो ग्रन्थीन्मर्मजानचलांस्यजेत् ।

असाध्यता—पीड़ा रहित, गर्भ स्थान से उत्पन्न और अचल पांचों प्रकार की अन्धियों को वैद्य स्थान देते ॥ १ ॥

कपोलगलमन्याखु दुष्किरित्यात्र संधिषु ॥ १ ॥

कपोल, गला, मन्या और सन्धियों में होने वाली अन्धियाँ दुष्किरित्य होती हैं उन्हें यी त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥

अर्बुदान्याह—तस्य संप्राप्तिमाह—

गान्ध्रप्रदेशो क्षिदेव दोषाः सरमूर्छिता मांसमस्प्रदूष्य ।

कृत्स्नं भृदुं मन्दरुजं महान्तमनक्षपमूलं चिरवृद्धिपाकम् ॥

कुर्वन्ति मांसोच्छ्रमन्यागां तद्वृद्धं शाव्यविवो चवन्ति ॥ १ ॥

अर्बुद की सम्प्राप्ति—कुपित वातादिक दोष शरीर के किसी भाग में मांस और रक्त को दूषित कर गोल, कोमल, अथं पीड़ा (धीरे २ पीड़ा) करने वाला, अस्थन्त वडा और वडे मूल वाला, गहुत समय में बढ़ने वाला तथा गहुतसमय में पकने वाला अति गम्भीर मांसोच्छ्रम्य (मांस का उठाव) कर देते हैं उसको शास्त्र वैद्य 'अर्बुद' कहते हैं ॥ १ ॥

तस्य संख्यामाह—

वातेन पित्तेन कफेन चापि इत्तेन मांसेन च मेदसा च ।

तज्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थे: समाननि सदा भवन्ति ॥ २ ॥

अर्बुद की संख्या—वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, और मेद से उत्पन्न होनेवाले हैं प्रकार के अर्बुद होते हैं उनके सभी अक्षुण सदा अन्धि के समान ही होते हैं ॥ २ ॥

रक्तार्बुदमाह—

दोषाः प्रदृष्टाः रुधिरं शिरांश्च सङ्कुच्य सर्पीड्य गतास्वपाकम् ।

सात्त्वाचमुक्तव्यति मांसपिण्डं मांसाङ्गेराचितमाशु वृद्धिम् ॥ ३ ॥

कुर्वन्त्यजलं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतद्वृद्धरामकं तु ।

रक्तचुयोपद्रवपीडितत्वाण्पूर्भवेद्वृद्धपीडितस्तु ॥ ३ ॥

रक्तार्बुद के कक्षण—दूषित (कुपित) हुए वातादिक दोष रुधिर और सिराभों को संकुचित और पीड़ित करके पाक रहित अथवा शोड़ा पाक कर के साव संहित जैव मांसपिण्ड कर देते हैं और वह मांसपिण्ड मांसाङ्गों से न्यास तथा शीत बढ़ने वाला होता है और उससे निरन्तर रक्त निकला रहता है इस प्रकार का अर्बुद रोग असाध्य होता है और रक्तचुय के उपद्रवों से पीड़ित होने के कारण रोगी पाण्डुरण का हा बाता है ॥ ३-४ ॥

मांसबस्य सम्प्राप्तिमाह—

मुष्टिप्रहारादिभिर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्य जनयेत्त शोथस्तु ।

अवेदनं चिन्त्यमन्वयवर्णमपाकमश्मोपममप्रचालयन् ॥

प्रदुष्मांसस्य नरस्य गाढमेतद्वेन्मांसपरायणस्य ॥ १ ॥

मांसार्बुद के कक्षण—मुष्टिप्रहारादि से अज्ञों के पीड़ित होने से दूषित हुआ मांस शोथ को उत्पन्न कर देता है वह शोथ पीड़ारहित, स्विन्धन, शरीर के बर्ण के समान वर्ण वाला, पाकरहित,

पथर के समान (कठिन) और अचल (स्थिर) होता है। दूषित मांस वाले और मांस अधिक अक्षुण करने वाले मनुष्य को यह शोथ (अर्बुद) गम्भीर होता है ॥ १ ॥

असाध्यत्वमाह—मांसाङ्गेरं त्वेतद्वसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत् ।

संप्रस्तुतं मर्मणि यथ्व जातं स्तोतःसु वा यच्च भवेद्वसाध्यम् ॥ २ ॥

अर्बुद के असाध्य कक्षण—यह मांसार्बुद असाध्य कहा गया है। तथा जो साध्य अर्बुद करे गये हैं उनमें भी ये (आगे कहे हुए) त्याज्य हैं (असाध्य हैं), अर्थात् जिस अर्बुद से ज्ञाव होता रहता हो, जो मर्मस्थान में उत्पन्न हुआ हो, जो ज्ञातों में (नासिकादि स्थान में) उत्पन्न हुआ हो अथवा जो अचल (स्थिर) हो वे सब त्याज्य (असाध्य) अर्बुद हैं ॥ २ ॥

अध्यबुद्धलक्षणमाह—

यद्यायतेऽन्यत्वलु दूर्वजाते ज्ञेयं तद्यवृद्धमर्वदज्ञे ।

यद्यद्वन्द्वजाते युगपत्रकमाद्वा द्विर्वृदं तत्त्वं भवेद्वसाध्यम् ॥ ३ ॥

अध्यबुद्ध-द्विर्वृद के कक्षण—पूर्व उत्पन्न हुए अर्बुद पर और भी अर्बुद एक साथ अथवा कम से दो उत्पन्न होते हैं उसे दो दोषों वाला 'द्विर्वृद' कहते हैं। वह असाध्य होता है ॥ ३ ॥

अर्बुदे रवृदं जातं हृन्द्वजं चानुजं च यत् । द्विर्वृदमिति ज्ञेयं तद्वासाध्यं विनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥

अर्बुदे रवृदं जातं हृन्द्वजं चानुजं च यत् । द्विर्वृदमिति ज्ञेयं तद्वासाध्यं विनिर्दिशेत् ॥ ३ ॥

अर्बुदाना पाकाभावे वैतुमाह—

न पाकमायन्ति कफाचिकवाचन्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।

दोषस्थिरत्वादग्रथनाच्च तेषां सर्वावदान्येव निसर्गतस्तु ॥ ३ ॥

अर्बुद में पाक नहीं होने के कारण—अर्बुद में कफ की अधिकता और मेद की बहुलता तथा विशेष कर दोष की स्थिरता (दोष के विरकाल तक स्थायी होने से) और अन्धिलय होने से सब प्रकार के अर्बुद में पाक स्वाभाविक ही नहीं होता है ॥ ३ ॥

अथ गलगण्डचिकित्सा ।

स्वेदोऽनिलोद्यो गलगण्ड आदौ नाद्यानिलग्नीश्वपनप्रयितौ ।

स्वेदोपनाहौ कफसरमवेदपि कृत्वा क्षमं रलेमहरं विद्यत्वात् ॥ १ ॥

गलगण्ड चिकित्सा—वात से उत्पन्न गलगण्ड में प्रथम नादों स्वेद देना चाहिये, तथा वात नाशक औषध, वातनाशक पत्रादि एवं वातनाशक बालुका पिण्डादि से स्वेद देना चाहिये। इसी प्रकार कफ से उत्पन्न होने पर स्वेद, उपनाह तथा कफनाशक किया करनी चाहिये ॥ १ ॥

वातगण्डे—

निचुलं शिग्मूलानि दशमूलमथापि च । आलेपनं वातगण्डे सुखोषणं संप्रशस्यते ॥ १ ॥

वातज गण्ड—समुद्रक, सहजन की जड़ वा ज्ञाल और दशमूल की दसों औषधियाँ प्रथमेक समान लेकर पीस कर कल्क बना गरम कर सुखोषण रहते लेप करने से वातगण्ड के लिये लाभदायक होता है ॥ १ ॥

कफगण्डे—

देवदार विशाला च कफगण्डे प्रलेपनम् । छर्दनं शीर्षरेकश सर्वो रेचनिको हितः ॥ १ ॥

कफब गण्ड—देवदारु और माइरि की जड़ को पीस कर लेप करने, बमन कराने, शिरो-विरेचन कराने और सभी प्रकार के विरेचन कराने से कफब गण्ड में लाभ होता है ॥ १ ॥

मेदोगण्डे—मेदःसमुत्थेऽत्र यथोपदिष्टां विध्येच्छिरां स्तिरध्वत्नोर्नश्य ।

श्यामासुधालोहपुरीचदन्तीरसाज्जनैश्चापि हितः प्रलेपः ॥ १ ॥

मेदोगण्ड—मेद से उत्पन्न गलगण्ड रोग में पूर्व कथित विधि से रोगी मनुष्य को रिनग्व करके बचित शिरा का बेपन करना चाहिये । तथा इयामलता अथवा काली निशेष, चूना, लौह किंदू (मण्डूर), दन्तीमूळ और रसवत इन सबको समग्राग के पीसकर लेप करने से मेदोज गण्ड में लाभ होता है ॥ १ ॥

सामान्ययोगः—

सण्डुलोदकपिष्ठेन मूलेन परिलेपितः । हितः कर्णं पलाशास्थ गलगण्डः प्रशास्यति ॥ १ ॥

सामान्य विधि—चावल के धोवन के साथ पलास की जड़ को पीसकर कान पर लेप करने से गलगण्ड शमन होता है ॥ २ ॥

खलकुम्भीकलं भस्म पक्षवा गोमूष्मगालितम् । पिवेस्कोद्वत्काशी गलगण्डनिवृत्तये ॥ २ ॥

खलकुम्भी की भस्म गोमूष्म में भिलाकर पाक कर पान करने तथा कोदो के चावल का भात और मट्ठा का पथ्य सेवन करने से गलगण्ड रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

महिवीमूत्रविभिन्नं लोहमलं संस्थितं चटे मासम् ।

अन्तर्धूमविद्युधं मधुना गलगण्डनाशनं लीढम् ॥ ३ ॥

मैस के मूत्र मण्डूर को भिलाकर खड़े में रखकर एक मास तक रख देवे पश्चात अन्तर्धूम विधि से मण्डूर का भस्म बनाकर मधु के साथ यथायोग्य मात्रा से चाटने से गलगण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सूर्यादिरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहनम् । स्फोटाद्यावैः शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥ ४ ॥

हुरहुर और कासुन दोनों को समान ले पीसकर इसके उपनाइ (अथवा पुष्टिस बांधने) से गलगण्ड फूटकर बहकर शमन हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४ ॥

सूर्यपाः शिग्रीजानि शाणीजातसीयवाः । भूलकस्य च बीजानि तक्रेणाभ्लेन देष्येत ॥ ५ ॥
गण्डानि ग्रन्थयश्च गण्डमालास्तथैव च । लेपनास्तेन शास्यन्ति विलयं धान्ति वाऽचिरात् ॥

सर्वो, सहिजन के बीज, सन के बीज, तीसी, जौ और मूली के बीज इन सबको समान लेकर खट्टे मट्ठा के साथ पीस कर लेप करने से गंड, (गलगण्ड), ग्रन्थियाँ और गंडमालायें शीघ्र ही शान्त और नष्ट हो जाती है ॥ ५-६ ॥

बीर्णकर्हकरसो विद्वैन्धवसंयुतः । नस्येन तरुणं हन्ति गलगण्डं न संशयः ॥ ७ ॥

नस्य—पुराने देवत कुम्भाण्ड का रस विद्वन्मक और सेवा नमक तीनों भिलाकर नस्य देने से तरुण (नूतन) गलगण्ड अवश्य नष्ट होता है ॥ ७ ॥

श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिट्ठा पिवेद्वाः । सर्पिष्वा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ ८ ॥

श्वेतापराजिता प्रयोग—श्वेत पुष्पबाली अपराजिता की जड़ पीसकर उसमें घृत भिलाकर पान करने तथा पथ्य से रहने से गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

तिक्कालाखुफले पके सप्ताहमुषितं जालम् । गलगण्डं निहन्याशु पानात्पथ्यानुशीलिनः ॥ ९ ॥

जलपान विधि—तिक्क अलाखु फल (तितलौकी का फल) जो पक कर पूर्ण हो उसका गूदा, औषध आदि निकाल कर उसमें जल मर देवे और सात दिन तक पर्युषित करे अर्थात् सात दिन

उसमें वह जल पक्षा रहने देवे पश्चात् उसका पान करे और पथ्य से रहे तो गलगण्ड शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

अमृतादितैकम्—

तैलं पिवेच्चामृतवस्त्रिहिङ्गुनिभ्वाभयावृक्षकपिष्पलीभिः ।

सिद्धं वलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नियं गलगण्डरोगे ॥ १ ॥

अमृतादि तैल—युरुचि, हींग, नीम की छाल, दर्रा, कोरया की छाल, पीपरि, बरिआरा, ककड़ी (गंगेन रन) और देवदारु सम भाग (एक २ भाग) लेकर कक्ष कर उसके चौगुना शूचित तिल का तेल और उससे चौगुना जल देकर तेल सिद्ध कर नियं पान करने से गलगण्ड रोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

तुम्हीतैलम्—

विड्धक्षारसिध्युग्रारासनामिद्योषदाद्यभिः । कदुतुम्हीकलरसैः कदुतैलं विपाचितम् ॥

विरोध्यमपि नस्येन गलगण्डं विवाशयेत् ॥ १ ॥

तुम्ही तैल—बामीरंग, वावाखार, सेवा नमक, बच, राला, चिरं की जड़, सोंठि, भरिच, पीपरि और देवदारु सम भाग लेकर कक्ष कर उसके चौगुना सर्वों का शूचित तेल और उससे चौगुना तिलोंकी के फल का रस मिलाकर सिद्ध तेल उतार-छानकर इस तेल का नस्य लेने से पुराना गलगण्ड रोग मी नष्ट होता है ॥ १ ॥

वैधविधिः—जिह्वाधःपार्श्वयोमूर्त्तालिङ्ग्रा द्वादशा कीर्तिः ।

तासां स्थूले शिरे द्वे च छिन्नाते च शनैः शनैः ॥ १ ॥

बुद्धिशेनैव संगृहा कुशपत्रेण बुद्धिमान् । सुते रक्ते व्रगे तस्मिन्दद्यास्तुगुडमार्दकम् ॥ २ ॥

ओजनं चानभिष्यन्द यूषः कौलत्थ दृष्टये । यवमुद्दपोलादिः कदु रुचं तु भोजनम् ॥

कुर्दिं च रक्तमुक्तं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

सिरादेव विधि—जिह्वा के नीचे दोनों ओर बारह सिरायें होती हैं उनमें दो सिरायें माझी होती हैं उन दोनों सिराओं को 'विद्विश्यन्त्र' से एकड़ कर 'कुशपत्र यन्त्र' से धीरें-धीरे बुद्धिमान् वैष छेदन करे और रक्त निकल जाने पर उस ब्रण में गुड और बदक का रस मिला कर लगावे । तथा जो पदार्थ अभिष्यन्दी न हो उसे देवे और कुलधी के यूष को पिलावे, यव-मूंग-पत्रवर आदि तथा कठुरस बाले एवं रुच पदार्थों का भोजन करावे और गलगण्ड में बमन करना तथा रक्तमोक्षण करावे । इससे गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ २-३ ॥

अथ गण्डमालापचीचिकित्सा ।

ब्रह्मदण्डीयमूलं तु पिष्टं तण्डुलवारिणा । स्फुटितां हन्ति लेपेन गण्डमालां न संशयः ॥ ३ ॥

गण्डमाला—अपची विकित्सा—ज्वादंडी की जड़ के चावल के धोवन के साथ पीस कर फूटे हुई गंडमाला पर लेप करने से गंडमाला ब्रणसंहित अवश्य ही नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

निजद्रवेण संपिण्ठं मुण्डीमूलं प्रलेपयेत् । गण्डमाला तथं याति तदूदवं च पिवेपलम् ॥ २ ॥

मुण्डीप्रलेप—मुण्डी की जड़ के उसी के ही स्वरस के साथ पीस कर लेप करने तथा उसी के रस को एक दल के प्रमाण से पान करने से गंडमाला नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

काज्जनारस्वचः क्वात्थः शुण्डीचूर्णेन नाशयेत् । गण्डमालां तथा क्वात्थः शौद्रेण वक्षणस्वचः ॥

कवनार की छाल का काथ बनाकर उसमें सोंठि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से अथवा बुरणा की छाल का काथ करके शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से गंडमाला नष्ट होती है ॥ ३ ॥

अलेन पेषयेत्तुत्यं काञ्चनीचित्रकं विषम् । सप्ताहं लेपयेत्यथ अदि स्थादूण्डमालका ॥
स्फुटन्ती नाम्रं सदेहः स्फोटे लेपयिमं कुव ॥ ४ ॥

आरवधशिक्षी पिण्डा सम्यक्षुद्धुवारिणा । तत्य नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्दरेत् ॥ ५ ॥

लेपविधि—कचनार की छाल, विष की जड़ और शुद्ध विष सम माग लेकर जल के साथ पीसकर एक सप्ताह (७ दिन) तक लेप करने से गण्डमाला पूर्ण जाती है । इसमें सन्देह नहीं, पूर्ण बनने के पश्चात् यह लेप करना चाहिये अर्थात् अमलकातास की जड़ को चावल के घोवन के साथ मलीमाति पीसकर लेप करना चाहिये और नस्य भी इसी का देना चाहिये । इससे गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ ४-५ ॥

विफलाद्यो गुणुङ्गः—

षटपलं त्रिकुटं ज्येष्ठं त्रिफलाऽन्नं पलद्यथम् । काञ्चनारस्वचाचूर्णं योजयेद्वादश पलम् ॥ ६ ॥
गुणुङ्गः सर्वतुत्यः स्थात्सर्वमेकत्र कुट्टयेत् । चौद्वं पलशतं देयं गुटिकां कर्पसभिताम् ॥

मच्छयेद्वगण्डमालातो गलग्रन्थिं च नाशयेत् ॥ ७ ॥

त्रिफलादि गुणुङ्ग सौठि, पीपरि और मरिच का सम माग मिलित चूर्ण छे पल, आँवला, हरी, बहेड़ा इनका सम माग मिलित चूर्ण ३ पल, कचनार की छाल का चूर्ण १२ पल और शुद्ध गुणुङ्ग सद्व चूर्णों के बराबर (२० पल) लेकर मलीमाति कूटकर एकत्र मर्दन कर उसमें मधु सौ पल मिला मर्दन कर एक कर्ष के प्रमाण की बटी बनाकर भक्षण करने से गण्डमाला, गड़ की ग्रन्थियां नष्ट होती हैं ॥ १-२ ॥

काञ्चनारगुणुङ्गः—

पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारस्वचो त्रुधेः । षटपला त्रिफला ग्राह्या अयोषं ग्राह्यं पलद्यथम् ॥
पलैकं वरुणस्यापि स्वयेलापत्रकं तथा । कर्पकर्षमितं ग्राह्यं सर्वायेकत्र चूर्णयेत् ॥ ८ ॥
सर्वं चूर्णमिदं यावत्तावन्मावस्तु गुणुङ्गः । संमर्द्य गुटिकाः कार्याः शान्मात्रास्ततो त्रुधेः ॥
एकेकां भज्येत्प्रातर्वेद्विमांश्च सदा नरः । गण्डमालां ज्येदुग्रामपचीर्मवृद्धिनि च ॥ ९ ॥
ग्रन्थीन्द्रिणां संगुरुमांश्च कुष्ठानि च भगवन्दरम् । अनुपाने प्रयोक्तव्यः वक्षाथो मुण्डीसमुद्धवः ॥
कवाथो वा खदिरस्यापि पथ्याकायोऽथ चालपकः ॥ १० ॥

काञ्चनार गुणुङ्ग—कचनार की छाल का चूर्ण दस पल, त्रिफला का चूर्ण समान मिलित है पल, सौठि, पीपरि, मरिच का समान मिलित चूर्ण ३ पल, वशण की छाल का चूर्ण एक पल, दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण पुष्टक् २ दो कर्ष लेकर सबको एकत्र मर्दन कर जितना हो उसके बराबर शुद्ध गुणुङ्ग को मिला मर्दन कर एक शाण (४ शाण) के प्रमाण की बटी बना कर प्रातःकाल नित्य एक २ बटी रोगी को खिलावे तो इसके निरन्तर सेवन करने से उपर्युक्त गण्डमाला, अपची, अदुर्द, ग्रन्थि, गुस्त, कुष्ठ और भगवन्दर वे सभी रोग नष्ट होते हैं । इसके सेवन के समय अनुपान में मुण्डी अथवा खैर का काय अथवा खोड़े प्रमाण में इरड़ का काय देवे ॥ १-५ ॥

अज्ञमोदादितैलम्—

अज्ञमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशादूयम् । चारहूयं फेनयुतं सार्थकं सरलोद्धवम् ॥ १ ॥
इन्द्रवारुण्यपामार्गकवलीकन्दकैः समैः । युभिः सार्वपक तैलमज्जामूत्राद्योजितम् ॥ २ ॥
सूद्धमौ पौचयेदेतरस्तुहर्क्षीरसंयुतम् । अज्ञमोदादिकिं तैलं गण्डमालां अयोहति ॥ ३ ॥
धाम्रां विकार्ष्वा तु पचेत्पवतो चैव विशोधयेत् । रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥

अज्ञमोदादि तैल—अज्ञमोदा, सिन्दूर, हरिताल, हरदी, दालहस्ती, यवाखार, सज्जीखार, समुद्रफेन, सरल काठ, माइरि, अपामार्ग और केले की जड़ सम माग (एक २ माग) ले कक्ष

कर उसके बौगुना ससीं के मूर्छित तेल और उससे अठगुना बकरी का मूत्र मिला कर मन्द २ अद्धि पर पाक करे तथा इसमें कक्ष के साथ सेहुड़ के दूध तथा मदार के दूध को भी कल्कीय द्रव्यों में से एक द्रव्य के प्रमाण से पुष्ट २ दोनों को मिला लेवे और पाक सिद्ध होने (तेल मात्र शेष रह जाने) पर उत्तर-छानकर रख लेवे । इस 'अज्ञमोदादि तैल' से गण्डमाला नष्ट होती है, गण्डमाला को विद्युत कर पका देता है और पके द्रुप को शुद्ध करता है तथा इससे व्रण का रोपण होता है और मृदुभाव होता है अर्थात् इस तैल से व्रण का रोपण और मृदुभाव करना चाहिये ॥

निर्गुण्डीतैलम्—

निर्गुण्डीतैल—निर्गुण्डी (मेडुडी) का स्वरस चार तेर, मूर्छित ससीं का तैल १ सेर लांगली (करिकारी) की जड़ का कल्क एक पाव ले एकत्र कर तेल सिद्ध कर उत्तर-छानकर रख ले । इस तैल के नस्य लेने से कठिन से कठिन गण्डमाला शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

चुच्छुन्दरीतैलम्—चुच्छुन्दरी विषकवं तु छणातैलवर्द्ध ध्रुवद्ध ।

अभ्यङ्गाक्षायेन्नृणां गण्डमालां सुदाहणम् ॥ २ ॥

चुच्छुन्दरी तैल—चुच्छुन्दर का मास लेकर उसके बौगुना ससीं का मूर्छित तैल और उससे बौगुना पाकार्थ जल मिलाकर तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कठिन गण्डमाला भी नष्ट हो जाती है ॥

गुजातैलम्—गुजामूलफलैरतैलं तोवद्विगुणितं पचेत् ।

तस्याभ्यङ्गेन शामयेद्वगण्डमालां सुदाहणम् ॥ ३ ॥

गुजा तैल—गुजा की जड़ और फल को समान लेकर कल्क कर उसके बौगुना ससीं का मूर्छित तैल और तैल के दुगुना जल (पाकार्थ) मिला कर तेल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कठिन गण्डमाला भी शमन हो जाती है ॥ १ ॥

गन्धकादियोगः—

गन्धकं टड्कणं सिन्धुकाञ्चनीनवसारकम् सौवर्चलं यवद्वारं काचं रक्तं सुवर्चलम् ॥ १ ॥

सितं रक्तं च पाण्याणं मूषकोद्य नियोजयेत् । जेपालबीजमज्जा च सर्वं जग्मीरपीडितम् ॥ २ ॥

शस्त्रेत्त्रिचुत्वा प्रदातात्यं वेष्ट्यमेरण्डपत्रकैः । एवं व्यहारस्फुटन्त्रयत्र दद्यक्षं बन्वयेत्ततः ॥ ३ ॥

गण्डमालाग्रन्थयोद्यो बहिनिर्यान्तिं नान्यथा । अभिमन्ययसितं सायं रक्तं प्रातः समाहरेत् ॥

पेटारीमूलकं धूपैर्धूपयिवाऽथ खण्डयेत् । चतुर्दशगुणाः सुत्रैर्वैद्यवा ग्रन्थिं गले स्थितम् ॥ ४ ॥

गन्धकादि योग—गन्धक, टड्कण, सेंचानमक, कचनार, नवसार, सौचरनमक, यवाखार, काचनमक (कचलोन), सिन्दूर, सौचरनमक, शुद्ध श्वेत संखिया, शुद्ध रक्त संखिया, ब्रजमालोटे की जड़ी की मज्जा, सममाग लेकर जमीरी नीबू के रस के साथ पीस कर गलगढ़ की शश से छेदन कर (पाल कर) उस पर इसका लेप लगाकर परण्ड के पत्तों को उस पर लपेट कर बांध देवे । इस प्रकार तीन दिन तक करने से गण्डमाला पूर्ण जाती है । फूटने के पश्चात् उस पर दही और अन्न मिला कर बांधना चाहिये । इस किया से (योग से) गण्डमाला, ग्रन्थि और अपची ये निश्चित ही बाहर निकल जाती है (नष्ट हो जाती है) । शनिवार की संध्या में इवेत पेटारी की जड़ को अभिर्माणित कर रविवार के प्रातः उसे उखाड़ लावे और साफ कर उसे धूप से धूपित खंड २ कर चौदहगुना सूत से बांध कर गले के ग्रन्थि पर बांध देने से ग्रन्थि नष्ट हो जाती है ॥ १-५ ॥

मन्त्रः—ॐ गुणं प्रसाहिति तिरि तिरि चित्रपुष्टकं शुगानाङ्गते पाप-

गालापरदशमूलवासुकालदेपालरेत् गुरुप्रसादात् ॥

पेटारी मूल को अभिमन्यत करने का मन्त्र उसी मन्त्र को पदकर अभिमन्यत करना चाहिये ।

गन्धकादिलेपः—

गन्धकं सूतकं तुल्यमर्कतीरं मसैन्धवम् । विष्णु च काञ्चनीमूलं लेपोदयं गण्डमालिके ॥ १ ॥

गन्धकादि लेप—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, मदार का दूध, सेवानमक, कचनार की जड़ को समान (एक २ मास) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कुजड़ी बनाकर फिर अन्य द्रव्यों को मिला लेप बना कर लेप लगाने से गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

जेपालपत्रवटी—

विष्णु जेपालपत्राणि स्वरसेन ततो वटी । छायाशुद्धका ततो लेपाद् गण्डमाला विनश्यति ॥ २ ॥

जेपालपत्र वटी—जमालगोटे के पत्तों को उसके साथ पीसकर वटी बना कर छाया में सुखा कर फिर उसे उसी के रस में विस कर लेप करने से गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

भलातकादिलेपः—

भलातकासीसहृताशादन्तीमूलं गुबस्तुग्रथिदुग्रथदिग्धैः ।

लेपनिवैरेगच्छति गण्डमाला समीरवेगादिव मेघमाला ॥ ३ ॥

अल्लातकादि लेप—मिलावा, कासीस, चित्त की जड़, दन्ती की जड़, शुद्ध, सेहुड़ का दूध और मदार का दूध सम भाग एकत्र खरल कर लेप बना कर गण्डमाला पर लेप करने से गण्डमाला इस प्रकार नष्ट होती है जिस प्रकार बायु के बेग से मेघमालायें नष्ट हो जाती हैं ॥ ३ ॥

गण्डमालाकण्डनो रसः—

कर्षसूतं शुद्धमस्य गन्धकं त्वर्धमुत्तमम् । सार्धकर्षं ताम्रभस्म मृतं किट्टं त्रिकर्षकम् ॥ ४ ॥

त्वयोर्धं त्वर्धकर्षतुलितमचार्यं सैन्धवं सितम् । काञ्चनारात्वचश्चर्चूर्णं पलत्रयमितं लिपेत् ॥ ५ ॥

पलत्रयं गुगुलोद्ध शुद्धस्य समुषाहरेत् । एतद्यवया तु संमेश्य दृढ़ सुरभिसर्पिष्या ॥ ६ ॥

गण्डमालाकण्डनो रसो माषत्रयात्मकः । भुक्तो निहन्ति गण्डनि गण्डमालां च दारणाम् ॥

गण्डमालाकण्डन रस शुद्ध पारद, एक कर्ष, शुद्ध गन्धक आधा कर्ष, ताम्रभस्म १/२ कर्ष मदूर भस्म १ कर्ष, सोंठि, मरिच और योपरि का समान मिलित चूर्णे छै कर्ष, इतेत वर्ण के सेवा नमक का चूर्ण आधा अक्ष (१ कर्ष), कचनार की छाल का चूर्ण तीन पल और शुद्ध गुगुल तीन पल एकत्र मर्दन कर गाय के घृत के साथ भलीमति घोट कर रख लेवे । यह 'गण्डमाला कण्डन' नामक रस कहा गया है । इसे ३ मासों के प्रमाण से सेवन करने से गलगंड और गण्डमाला जो अति बढ़ गयी हो वह भी नष्ट हो जाती है ॥ ४-५ ॥

अपचीचिकित्सा—अल्लातसुव्याया: स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ।

अपचीचिकित्सा—कामलायाश्च नाशनः ॥ ७ ॥

अपचीचिकित्सा—मुण्डो वृद्धी का स्वरस २ पल के प्रमाण की मात्रा से पान करने से अपची गण्डमाला और कामला रोग का नाश होता है ॥ ७ ॥

नवकार्पसिकामूलं तण्डुलेः सह योजितम् । एवत्वा च पोलिकां खादेदपचीनाशनाय च ॥

नवकार्पसिका मूल योग—नूतन कपास की जड़ चावल के घोबन के साथ पीसकर पोलिका (पूर्प) बना कर पका कर खाने से अपची नष्ट होती है ॥ ८ ॥

सौमालादि लेप—सौमालादि काञ्चिकेन तु वेषितम् । कोषणं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिकुस्तराय ॥ ९ ॥

सौमालादि लेप—सौमाला की छाल और देवदार वरावर २ लेकर काँची के साथ पीसकर घोड़ा गरम कर गरम २ लेप करने से कठिन अपची का नाश होता है ॥ ९ ॥

सर्पपरिष्ठपत्राणि दन्तया भलातकैः सह । छागमूत्रेण संपृष्ठमपचीद्वं विलेपनम् ॥ १० ॥

सर्पपदि लेप—ससी, नीम की पत्ती, दन्ती की जड़ और मिलावा को बकरे के मूत्र के साथ पीसकर लेप करने से अपची का नाश होता है ॥ १० ॥

अश्वथकाष्ठनिचुलं गवां दन्तं च दाहयेत् । वराहमउजसंयुक्तं भस्म हृत्यपचीवणाम् ॥ १ ॥

अश्वथकादि लेप—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, मदार का दूध, सेवानमक, कचनार की जड़ को समान (एक २ मास) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कुजड़ी बनाकर फिर अन्य द्रव्यों को मिला लेप बना कर लेप लगाने से गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

मणिबन्धोपरिष्ठाष्ठा कुर्याद्वात्रयं भिषक् । व्यकुलान्तरितं सम्यगपचीविनिवृत्यते ॥ १ ॥

उपायान्तर—हाथ के मणिबन्ध (कलाई) पर एक २ अंगुल के अन्तर से तीन रक्षा बाधे ।

इससे अपची नष्ट होती है ॥ १ ॥

चन्दनादितैलम्—चन्दन सामया लाला वचा कटुकरोहिणी ।

पत्तचैलं श्रुतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ १ ॥

चन्दनादि तैल—लालचन्दन, हरा, लाली, वच और कुटकी समान ले कलक कर उसके चौयुना ससी का मूर्छित तेल और उससे चौयुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर उतार-छानकर पान करने से अपची समूल नष्ट होती है ॥ १ ॥

व्योधां तैलम्—

व्योधं विढङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च । तैलमेथिः श्रुतं नस्यारक्षकामप्यपचीं जयेत् ॥ १ ॥

व्योधादि तैल—सौंठि, पीपरि, मरिच, वामीरंग, मुलहठी, सेवा नमक और देवदारु समान लेकर कलक कर उसके चौयुना ससी, मूर्छित तेल और उससे चौयुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर उतार-छानकर नस्य लेने से कठिन अपची भी नष्ट होती है ॥ १ ॥

अथ प्रनिधचिकित्सा ।

प्रनिधवामेषु कुर्वीत भिषकशोथप्रतिक्रियाम् । पक्षवानापाठ्य संशोध्यरो पयेद्वगमेषजैः ॥ १ ॥

प्रनिध रोग चिकित्सा—प्रनिध आम हो तो शोथ रोग के समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये और यदि एक गयी हो तो वैष्ण को उसका पाटन (चोरफाड़) कर शोधन करना चाहिये तथा ब्रण रोपक लीबों से उस ब्रण का रोपण करना चाहिये ॥ १ ॥

हिञ्चा सरोहिण्यसृताऽथ भार्डीं हयोनाक्षिलत्वागुरुकृणगन्धाः ।

गौमूत्रपिण्डाः सह तालपत्रा ग्रन्थो विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ २ ॥

छोटी कटेरी, कुटी, गुरुचि, वशेनेटी, सोनापाठा की छाल, बेल की छाल, अगर काली, सहिजन की छाल और काली मूसली समान लेकर गौमूत्र के साथ पीस वात के कोप से उत्पन्न होनेवाली ग्रन्थि पर लेप करने से वह वातज ग्रन्थि धीरे २ नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

जलायुक्तः पितकृते हिताः स्युः चीरोदकाभ्यां परिषेचनं च ।

द्रावारसेन्तुर्मेन चापि चूर्णं पिवेद्वाऽपि हरीतकीनाम् ॥ ३ ॥

पित्त के कोप से होने वाली ग्रन्थि में जौक के दारा रक्तमोक्षण करना चाहिये अथवा दूध और जल मिलाकर उससे अथवा दाख के रस से अथवा ईख के रस से ग्रन्थि पर सिंचन करना चाहिये अथवा दहरा का चूर्ण दाख के रस वा ईख के रस से धीना चाहिये ॥ ३ ॥

मधूकजम्बवर्जुनवेतसानां त्वरिभः प्रदेहानवचारयेत् ।

हतेषु दोषेषु यथानुपूर्वं ग्रन्थैभिषक् श्लेषमसमुत्थितेषु ॥ ४ ॥

कफ के कोप से होने वाली ग्रन्थि में दोषों का यथाकाम पहले इरण कर (वमन-विरेचन के दारा दोषों को नष्ट कर) मधुआ, आमून, अजुन और बेत की छालों को पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ४ ॥

अमर्भजातं शममप्रयत्नं तत्पन्नमेवापदरेत्प्रायं ।

देहस्थिते वाससि सिद्धकर्म सयः चतोकं च विष्णिं विद्यथात् ॥ ५ ॥

जो अनिय मर्म स्थान में उत्पन्न नहीं हुई हो: और शमन भी नहीं होती हो वह जब पक जावे तब विचार कर वैष्ण उसे चोर देवे और शुद्ध कर कपड़े से बांधना आदि सिद्ध कर्म करे तथा सथः उत्पन्न क्षत्र (त्रय) के समान सब विधि करे (स्थायण की किया करे) ॥ ५ ॥

शशेण चोरकृत्य सुपक्षमाशु प्रचालयेत्पथ्यतमः कषायैः ।

संशोधनैस्तं च विज्ञोधयेत् चौरोत्तरः छौद्रधृतप्रगाढः ॥ ६ ॥

सिव्वेच्च तैलं त्वपचारणीयं विडङ्गपाठारजनीविपक्षवम् ।

मेदःसमुत्थे तिळकरकदिग्धैः कृत्रोपरिष्टाद्विगुणं पटान्तम् ॥ ७ ॥

हुताशतसेन सुहुः प्रमृज्याक्लोहेन धीमात्रं च वर्धिताय ।

प्रलिसदर्व्या त्वथ लाहुया वा प्रतस्याऽऽश्वयोतनमस्य कार्यम् ॥ ८ ॥

पकी हुई अनिय (मलीभौति पकी हुई) को शब्द से छेदन कर शीघ्र पथ्यकारक (रक्तनाशक) कथायों से ब्रण को धोवे पश्चात छार युक्त मधु और धृत आदि संशोधन द्रव्यों से उस ब्रण का शोधन करे। फिर वायमिरंग, पुरहनपाढ़ी और इरदी के कलक से सिद्ध किये तेल से ब्रण का सिंचन करे और तेल की गही बनाकर ब्रण पर रख देवे। यदि मेद के कारण से अनिय हो और उसे छेदन किया गया हो तो तिळ का कलक बनाकर ब्रण पर लेप कर उस पर कपड़ा दो परत कर रखकर बाध देवे। पुनः बार र अनिय में तपाये हुए लोहे से उसपर स्पर्श करे और बुद्धिमान् वैष्ण कलछी (करछुक) पर लाइ को पीसकर लेप कर अप्ति पर तपाकर आश्चयोतन कर्म करे ॥

निपात्य वा शशमपोद्ध मेदो दहेसुपक्वं त्वथ वा विदार्थ ।

प्रचालय मूत्रेण तिलैः सुपिण्ठैः सुवर्चलाद्यहृर्तिलमित्रैः ॥ ९ ॥

सम्बन्धवैः छौद्रधृतप्रगाढः स्तारोत्तरैरेनमभिप्रशोध्य ।

तैलं विदध्याद् विकरञ्जगुआवंशावलीविङ्गुदमूत्रलिङ्गम् ॥ १० ॥

अथवा मेदोज अनिय को पकने पर शब्द से छेदन करके उससे मेद को निकाल कर जला देवे अथवा पकी हुई अनिय को शब्द से छेदन कर गोमूत्र से धोवे पश्चात तिल को मलीभौति पीसकर उसमें सोचर नमक, शुद्ध इरताल, सेंधा नमक, मधु, धृत और यवाखारादि ज्वार मिलाकर लेप कर ब्रण का शोधन करे पुनः दोनों (करज, पूतिकरज), गुज्जा, बास के पते, प्रियङ्गु वा मालाकन्द और हिंगोट समान ले कलक कर उसके चौगुना तिल का मूर्चिलत तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र मिलाकर तेल सिद्ध कर अनिय के ब्रण पर लगावे। इससे अनिय नष्ट होती है ॥ १० ॥

विष्णुकान्ता च पेटारी काजिने न सुप्रेषिता । कालस्फोटं हरेखलेपाद् दुष्टप्रनियु का कथा ॥ ११ ॥

विष्णुकान्ता (अपराजिता) और पेटारी इन दोनों को समान लेकर काँची के साथ मलीभौति पीसकर लेप करने से कालस्फोट (असाध्य स्फोट ब्रण) भी नष्ट हो जाता है तो दूषित अनिय आदि का कथा कहना है अर्थात् ये अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ठुवा प्रलेपयेत् । कालस्फोटं विष्टस्फोटं सधो हन्यासवेदनम् ॥

पुत्रजीवक (जियापोता वा पतञ्जल) के फल की गिरी को जल के साथ पीसकर लेप करने से वेदना सहित कालस्फोट और विष्टस्फोट (ये दोनों ब्रण असाध्य हैं) शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और इस लेप से कक्षा अनिय (काँच में होने वाली अनिय वा कखौरी), कणि अनिय और गले की अनिय नष्ट होती है ॥ १२ ॥

कच्चाग्रनियं कर्णग्रनियं गलग्रनियं च नाशयेत् । राजिकालगुनं पेत्यं लेपो हृष्टलग्रनियहा ॥

गन्धोऽकदुष्टतालेन जेपालेन च नाशयेत् ॥ १३ ॥

राई और छहसून इन दोनों को समान ले पीसकर लेप करने से हृदय और गले की अनियां नष्ट होती हैं और गन्धक, मदार का दूष, हरताल और जमालगोटा समान ले पीसकर लेप करने से भी अनियां नष्ट हो जाती हैं ॥ ३ ॥

अर्बुदचिकित्सा ।

ग्रन्थयर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशदेश्वाकुतिदोषदूष्यैः ।

तत्त्विकित्साद्विद्विष्टवर्जुदानि विधानविद् ग्रन्थयचिकित्सितेन ॥ १ ॥

अर्बुद चिकित्सा—ग्रन्थिय रोग और अर्बुद रोग में विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि स्थान, कारण, आकार, दोष और दूष ये सब दोनों के समान ही होते हैं, इसकिये वैष्ण अर्बुद रोग की चिकित्सा अनिय की चिकित्सा के समान ही करे ॥ १ ॥

वातार्बुदं छीद्रधृताम्लसिद्धैरुत्थैः सतेलैरुपनाहयेत् ।

कुर्यात् मुख्यान्युपनाहनानि सिद्धैश्च मासैरथ वेसवारैः ॥ २ ॥

वातिक अर्बुद को दूषधृत और अम्ल पदार्थों से सिद्ध किये हुए ब्रण तेलों से अथवा पके हुए मांस तथा वेसवार आदि से उपनाह करना चाहिये। ये मुख्य उपनाह हैं ॥ २ ॥

स्वेदं विदध्याकुशलश्च नाहया शृङ्गेण इर्षं बहुशो हरेच्च ।

वातध्वनिर्युहपयोग्लभागोः सिद्धां शामाह्नां त्रिवृतां पिवेद्वा ॥ ३ ॥

कुशलतापूर्वक नाहीं स्वेद देवे और सिंगी के द्वारा बहुत बार रक्तमोक्षण करावे तथा वात नाशक काय, दूष और अम्लादि से सिद्ध सौफ अथवा निशेय को पिलावे ॥ ३ ॥

स्नेहोपनाहा स्त्रदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनं च ।

विकृष्य सौदुम्बदशाकयोजीपत्रैर्भृशं छौद्रयुतैः प्रलिपेत् ॥ ४ ॥

पित्तज अर्बुद चिकित्सा—पित्त के कोप से होने वाले अर्बुद रोग में स्नेहकुमं तथा मुद्द उपनाह कर्म, पित्तनाशक काय सेवन और पिरेचन कर्म करना चाहिये ये सब पथ्य (हितकर) हैं। पश्चात युद्ध होने पर गूळर के शाक (पत्ते) और गोबी (गोभी) के पत्ते को समान ले जल के साथ पीसकर उसमें मधु मिलाकर लेप करना चाहिये इससे पित्तार्बुद शमन हो जाता है ॥ ४ ॥

शुद्धस्य जन्तोः कफजेऽर्बुदे च रक्ते च स्तिक्ते स्वतोर्बुदं यत् ।

मेदःकृते मांसकृतेऽपि कायं व्योदितं सर्वचिकित्सितं च ॥ ५ ॥

कफज अर्बुद में रोगी को शुद्ध करके (वसन-विरेचन कराकर शुद्ध कर), रक्तार्बुद में रक्त निकालते हुए रोगी को सिचन करके और मेदोज अर्बुद में मांस से उत्पन्न अर्बुद में भी ब्रण में कही हुई सम्पूर्ण चिकित्साओं को करनी चाहिये ॥ ५ ॥

लिंसं यवाखारविङ्गवीजं गन्धोपलैः स्यान्मसृणीकृतैर्यत् ।

रक्तेते चित्रैः सरटस्य सद्यतदर्बुदं शास्यति नान्यथैतत् ॥ ६ ॥

यवाखार, वाभीरंग के बीज, गन्धक समान लेकर भली भौति पीसकर गिरगिट का रक्त उसमें मिलाकर लेप करने से अर्बुद रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ ६ ॥

उपोदिकरसायन्यता तत्पत्रपरिवेत्तिता । प्रणश्यत्यचिरान्नणां पिटिकार्बुदजातयः ॥ ७ ॥

पोई शाक के स्वरस से अर्बुद की पिटिका को लिप्त करके और उसके पत्ते से वेष्टित करने से शीघ्र ही मनुष्यों की अर्बुदजात (अर्बुद से उत्पन्न) पिटिका नष्ट होती है ॥ ७ ॥

उपोदिका काजिनकतक्षपिण्ठा तयोपनाहो लवणेन साध्यम् ।

हष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ८ ॥

पोई को काजी और तक के साथ पीसकर सेंधा नमक मिला कर उपनाह करने से अर्बुद रोग

का शमन होता है। किसी रवैये का मत है कि इस उपनाह को दिन ही दिन में किया जाय तो साधारण अर्बुद नष्ट होता है और रात्रि में किया जावे तो इससे मरमस्त्यान में उत्पन्न अर्बुद नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गन्धशिलाविश्चौषधविडङ्गनागभस्मिः समैचूर्णम् ।

कूकलासरक्तयुक्तं लेपास्थोऽर्बुदध्वंसि ॥ ४ ॥

गन्धक, मैनसिल, सौठि, बामीरंग और नागभस्म (शीशे की भस्म) इन सब के चूर्ण को समझा ले गिरमिट के रक्त को उसमें मिलाकर लेप करने से अर्बुद रोग शोषित हो नष्ट होता है ॥

स्तुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च । लवणेनाथ वा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ ५ ॥

थूहर और त्रिकाण्ड थूहर दोनों को पीस गरम कर अथवा सेवानमक की पोटली बनाकर गरम कर अथवा शीशे को तथा कर उससे स्वेद देने से अर्बुद होते हैं ॥ ५ ॥

हरिद्रालोध्रपत्तजगुडधूमो मनःशिला । मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोर्बुद्धरः परः ॥

पृतामेव क्रियां कुर्यादैशां शार्करार्बुदे ॥ ६ ॥

इरदी, लोध, पतंग काठ की लकड़ी, गुह, गुडधूम (धूंआ के कारण से उत्पन्न धर में का शाका) और मैनसिल इन सबको समझा केर चूर्ण कर पक्का मर्दन कर मधु मिला कर लेप बना कर लगाने से अर्बुदरोग को नाश करने में यह योग उत्तम है। इसी प्रकार शर्करार्बुद में भी सब क्रियायें करनी चाहिये ॥ ६ ॥

अथ पश्यापश्यम् ।

पुराणधृतपानं च जीर्णलोहितशालयः । यवा मुद्राः पटोलं च रक्तशिश्रः कठिलकम् ॥ १ ॥
शालिं च शाकं वेत्रायं रुचाणि च कटूनि च । दीपनानि च सर्वाणि गुणगुलुश्च शिलाजतु ॥
गलगण्डे गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदान्तरे । यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्तिम् ॥ २ ॥

पश्यापश्य—पुराने धृत का पान, पुराने रक्तवर्ण के शालीवान के चावल, यव, मूंग, परवर, रक्तशिश्र, करौली, हिलिङ्ग का शाक, वेत्र के अन्यमाग का शाक, रुक्ष और कड़ द्रव्य, सब प्रकार के अनिनीयक द्रव्य, गुणगुल (शुद्ध) और शिलाजीत (शुद्ध) ये सब द्रव्य गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुद इन सभी रोगों में दोष और अवस्था के अनुसार पथ्य करे गये हैं ॥ १-२ ॥

दुखेन्द्रुविकृतिः सर्वा मांसं चानपसम्भवम् । पिण्डान्तमश्लं मधुरं गुर्वंभिष्यन्दकारि च ॥ ३ ॥
गलगण्डं गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान् । चिकित्सवदगङ्गारो यज्ञोऽर्थं पश्यियेत् ॥ ४ ॥

दूध, रुक्ष तथा दूध और ईस के बने सभी पदार्थ (दही, खोवा, गुड आदि), आनूप धीरों के मांस, पिठड़ी के पदार्थ, अम्ल द्रव्य, मधुर, गुड और अभिष्यन्दकारक सभी पदार्थ गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुदरोग में अपश्य जानकर रोगी को स्याग करा देवे ॥ ४-५ ॥

इति गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ श्लीपदनिदानम् ।

मेदोमासाश्रयं शोफं पादयोः श्लीपदं वदेत् । स्वलिङ्गस्त्रिभिर्दोषैस्त्रेष्वा स्वाद्य कफोत्तरम् ॥

श्लीपद-निदान—मेद और मास के आश्रय होकर जो पैरों में शोष होता है वह श्लीपद कहा जाता है, वह अपने लक्षणों को प्रकट करने वाले वातादिक धोरों से तीव्र प्रकार का होता है, इसमें (तीनों दोषों में) कफ की ही प्रवानता होती है ॥ १ ॥

तथ्य सम्प्राप्तिमाह—यः सज्वरो वल्लूणजो भृशार्तिः शोफो नृणां पादगतः क्रमेण ।

तद्वल्लीपदं स्यात्करकर्णेनविशिश्नोष्नासास्वपि क्षेचिद्वाहुः ॥ २ ॥

श्लीपद-सम्प्राप्ति—जो शोष ज्वर के साथ वंक्षण स्थान से उत्पन्न होकर अत्यन्त कष देता हुआ कम से मनुष्यों के पैरों की ओर (नीचे की ओर) जाता है उसे श्लीपद कहते हैं। किसी र आचार्य का कहना है कि यह शोष (श्लीपद) इथ, कान, नेत्र, लिंग, ओढ़ और नासिका में भी होता है (इसकी निश्चिक 'शिलावत् पदम् इति श्लीपदम्' ऐसी भी की जाती है जो युक्ति संगत है) ॥ २ ॥

वातजमाह—

वातजं कृष्णरूपं तु स्फुटिं तीव्रदेवनम् । अनिमित्तरूपं तथ्य बहुशो उवर पूव च ॥ ३ ॥

वातज श्लीपद—जिस श्लीपद में शोष का वर्ण कृष्ण वर्ण का हो, रुक्ष हो, फटा दुआ हो, अत्यन्त और अकारण हो पीड़ा करने वाला हो (जिना किसी आवात आदि के ही पीड़ा हो) तथा जिसमें बहुत ज्वर होता हो उसे वातज के कोप का वातज श्लीपद कहते हैं ॥ ३ ॥

पित्तमधामा—पित्तजं पीतसङ्काशं दाहज्वरयुतं स्फुटु ।

पित्तम श्लीपद—जिस श्लीपद में शोष का वर्ण पीला हो, दाइ हो, ज्वर हो तथा शोष में कोमरता हो उसे पित्त के कोप का पित्तज श्लीपद जानना चाहिये ॥ ३५ ॥

इलेघ्मजमाह—इलेघ्मिकं स्तिनश्ववर्णं च श्वेतं पाण्डुं गुरु स्थिरम् ॥ ४ ॥

कफज श्लीपद—जिस श्लीपद में शोष में स्तिनश्वता हो, श्वेत अथवा पाण्डुवर्ण का हो, भारी तथा स्थिर (अचल) हो उसे कफ के कोप का श्लीपद जानना चाहिये ॥ ४ ॥

प्रयाप्रसाध्यत्वमाह—वहमीकमिव सञ्जातं कण्टकैरिव सञ्जितम् ।

सर्वांश्मकं महत्तत्त्वं वर्जनीयं विशेषतः ॥ ५ ॥

असाध्य श्लीपद—जिस श्लीपद में वर्षमीक के समान ऊँचा-नीचा शिखर की भाँति धूदि हो और कण्टकाकार ग्रन्थियों से युक्त हो, तीनों दोषों के लक्षण जिसमें दिखाइ हैं तथा बहुत बढ़ गया हो उसे विशेषतः स्याग देना चाहिये। अन्य अन्यों [निदानादि] में 'सर्वांश्मकम्' के स्थान पर 'अब्दांश्मकम्' पाठ है। इससे एक वर्ष का पुराना श्लीपद असाध्य जानना चाहिये ॥ ५ ॥

श्लीपदे कफस्याव्यमिचारेण प्राधान्यमाह—

श्रीण्येतानि विज्ञानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्वाद् ।

गुरुवं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति कफाद्विना ॥ ६ ॥

कफप्रवान श्लीपद—ये तीनों प्रकार के (वातजादि) श्लीपद भी प्रायः कफ की ही अधिकता से होते हैं क्योंकि इसमें जो गुरुता और महानता होती है वह कफ के बिना नहीं हो सकती ॥६॥

श्लीपदनिदेशमाह—

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वतुषु च शीतलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ७ ॥

श्लीपद होने के कारण—जिस स्थान में पुराना (वर्ष का) जल भूमि पर पड़ा सहता रहे, कभी सूखे नहीं रहे आनूप देश और जिस देश में सब ऋतुओं में शीतलता रहती हो उस देश में श्लीपदरोग विशेष कर होता है ॥ ७ ॥

पुनरसाध्यत्वमाह—यच्छ्लेघ्मलाहारविहारज्ञातं पुंसः प्रकृत्या च कफांश्मकम् ।

साध्यावस्थयुक्तसर्वलिङ्गं सकाङ्करं श्लेघ्मयुतं विवर्जयम् ॥ ८ ॥

प्रकारान्तर से असाध्य श्लीपद—जिस श्लीपद की उत्पत्ति कफज आहार (मधुरादि युक्त विशेष द्रव्य) और विहार (दिवास्वापादि) आदि से हुई हो, रोगी की प्रकृति कफ की हो

(कफज प्रकृति के मनुष्य को श्लीपद हुआ हो), श्लीपद से स्वाव होता, अत्यन्त कंचा (शिखर आदि के आकार का) हो गया हो, सब दोषों के कक्षणों से युक्त हो, अत्यन्त कण्ठ से युक्त हो और कफयुक्त हो वह श्लीपद त्याज्य है ॥ ८ ॥

अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लहूनालेपनस्वेदरेचने रक्कसेचनैः । प्रायः श्लेष्मद्हरैरुण्डैः श्लीपदं समुपाच्छरेत् ॥ १ ॥

लहून, लेपन, स्वेदन, रेचन, रक्तमोक्षण और प्रायः करके कफनाशक चण्ड उपचार (आहार औषधादि) आदि से श्लीपद की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिले भिषणक । कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत् चतुरदुखे ॥ २ ॥

वात से उत्पन्न श्लीपद में वैद्य स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म और उपनाह कर्म करके गुरुक (गाठ) के कपर चार अंगुक पर सिराबेधन करे, इससे वात श्लीपद नष्ट होता है ॥ २ ॥

गुरुफलयाधःशिरां विध्येच्छलीपदे पित्तसंभवे । पित्तर्णीं च क्रियां कुर्यादिपत्तार्द्विसर्वदृ ॥

पित्त से उत्पन्न श्लीपद में गुरुक के नीचे की सिरा का बेधन करे तथा पित्त की नाशक क्रिया एवं पित्तश्वादुं और विसर्प के समान चिकित्सा (क्रिया) करे ॥ ३ ॥

मसिषामधुकं रासनामहिंसां सुवृन्नर्वाम् । पिष्ठाऽऽरनालेलेपोऽप्यं पित्तश्लीपदशान्तये ॥

शिरासु विदितां विद्येयदुखे श्लेष्मश्लीपदे ॥ ४ ॥

मज्जीठ, मुलहठी, रासना, छोटी कटेरी और गदहपुरना सम भाग काँची के साथ पीसकर लेप बना कर विचार श्लीपद को शमन करने के लिये लगावे तो पित्तज श्लीपद नष्ट होता है । कफ से उत्पन्न श्लीपद में अग्नठे की विदित सिरा (जिसमें श्लीपद हुआ हो उस) का बेधन करे ॥

सिद्धार्थशोभाज्ञनदेवदाहविश्वीष्वैर्मूर्वयुतैः प्रलेपयेत् ।

पुनर्नवानागरसर्वपाणां कलकेन वा काञ्जिकमित्रितेन ॥ ५ ॥

इवेत सर्वों, सहिजन, देवदार, सौठि समान लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर अथवा पुनर्नवा, सौठि, सर्वों समान लेकर कलक कर काँची मिलाकर लेप करने से कफज श्लीपद नष्ट होता है ॥

धस्तूरेरण्डनिरुण्डीवर्षभूशिग्रुसर्वपैः । प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दाहणम् ॥ ६ ॥

धस्तूर के पत्ते, एरण्ड के पत्ते वा मूलत्वक्, मेडी के पत्ते, पुनर्नवा, सहिजन और सर्वों समान लेकर कलक कर लेप करने से पुराना एवं कठिन श्लीपद भी नष्ट होता है ॥ ६ ॥

हितश्च ले रने निर्यं चित्रको देवदाह च । सिद्धार्थशिग्रुकलको वा सुखोत्पो मूर्वयेषितः ॥ ७ ॥

चित्र की बड़ी तथा देवदाह को गोमूत्र के साथ पीसकर अथवा सर्वों और सहिजन का कलक बनाकर थोड़ा गरम लेप करने से श्लीपद में हितकर होता है ॥ ७ ॥

प्रपिवेद्वा भयाकलकं मूर्वेणान्यतमेन वा । पिवेदेवं गुद्धचीं च नागरं भद्रदाह वा ॥ ८ ॥

पिवेत्सर्वपत्तेन श्लीपदानां निवृत्तये । पूरीकरञ्जन्धजं रसं वापि यथाबलम् ॥ ९ ॥

इरड़ का कलक बनाकर अथवा गुरुचि के स्वरस को गोमूत्र वा अन्य मूत्र के साथ पान करने से अथवा सौठि वा देवदार के कलक को सर्वों के तेल के साथ पान करने से श्लीपद नष्ट होता है । पूतिकरंज के पत्तों के स्वरस को यथाबल पान करने से श्लीपद रोग नष्ट होता है ॥ ८-९ ॥

अनेनैव विधानेन उत्त्रजीवकज्ञ रसम् । प्रयुञ्जीत भिषकग्राजः कालसार्थयिभागतः ॥ १० ॥

इसी प्रकार जियापोते के पत्तों के स्वरस का प्रयोग वैद्य काळ और साम्य का विचार कर उचित मात्रा से करे तो श्लीपद नष्ट होता है ॥ १० ॥

पलाशमूलस्वरसं पिवेद्वा तैलेन तुवयं वित्तसर्वपाणाम् ।

मूर्वेण पथ्यामरदाहविश्वं सगुणगुणं श्लीपदभिर्निर्वेष्यम् ॥ ११ ॥

पलाश की जड़ का स्वरस और इवेत सर्वों का तेल समान लेकर पान करे अथवा दर्द, देवदाह सौठि और शुद्ध गुणगुण समान भाग ले चूर्ण कर गोमूत्र के साथ श्लीपद का रोगी सेवन करे तो श्लीपद नष्ट होता है ॥ ११ ॥

बृद्धदारकचूर्णं वा मूत्रसौवीरकादिनिः । शीलितं श्लीपदं हन्ति कृच्छ्रं संवरसरोषितम् ॥ १२ ॥

विधारे के चूर्ण को गोमूत्र और सौवीर आदि से नित्य कुछ दिन तक सेवन करने से एक वर्ष के पुराने कष्टसाध्य श्लीपद को नाश करता है ॥ १२ ॥

पिपल्यादिचूर्णम्—

पिपली त्रिफला दाढ़ीं नागरं सपुनर्नवम् । भागैर्द्विपलिकैरत्तेषां तत्समं बृद्धदारकम् ॥ १ ॥

काञ्जिकेन तु तच्चूर्णं पिवेत्कर्षं प्रभाणतः । जीर्णं वा परिहीनं स्याङ्गोजनं सार्वकामिकम् ॥ २ ॥

श्लीपदं वातरोगांश्च प्लीहागुणमसरोचकम् । अश्वि च कुरुते घोरं भस्मकं च प्रयच्छति ॥ ३ ॥

पिपल्यादि चूर्णं-पीपरि, दर्द, वंड्हा, अंवरा, दालहरदी, सौठि, गदहपुरना, प्रत्येक दो दो पल और सब के समान भाग (१४ पल) विधारा लेकर चूर्णकर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से काँची के अनुपान से पान करने से और इस औषध के पच जाने पर विदोषनाशक अथवा आहार करने से श्लीपद, वातरोग, प्लीहा, गुरुम और अरुचि ये नष्ट होते हैं, अतिन की बृद्धि होती है और कठिन भस्मक रोग भी नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

कृष्णायो मोदकः—

कृष्णाचिन्नकदन्तीनां कर्षमध्यपलं पलम् । विशतिश्च हरीतकयो गुदस्य च पलदूयम् ॥

मधुना सह संयुक्तं श्लीपदं हन्ति दारुणम् ॥ १ ॥

कृष्णादि मोदक—कम से अर्धार्त पीपरि एक कर्ष, चित्र की जड़ अथवा पल और दन्तीमूल पक पल लेवे, उत्तम संख्या में २० सुपक दर्द और शुद्ध दो पल लेकर कूट पीस कर विधिपूर्वक मोदक बना कर मधु के अनुपान से सेवन करने से कठिन श्लीपद भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

विडङ्गादितैलम्—

विडङ्गसारिवाकेषु नागरे चित्रके तथा । अद्रदावैलकालयेषु सर्वेषु लवणेषु च ॥

तेलं पकवं पिवेद्वाऽपि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ १ ॥

विडङ्गादि तेल—बाभीरंग, सारिवा लता, मदार, सौठि, चित्र की जड़, नागरमोथा, देवदार, इलायची और पांचो नमक पृथक् २ समान भाग लेकर कलक कर उसके चौहुना मूर्च्छित सर्वों का तेल और तेल से चौहुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर मदनं तथा पान करने से श्लीपद नष्ट होता है ॥ १ ॥

सौरेश्वरघृतम्—

सुरसा देवकाद्यं च त्रिफला त्रिकटुर्गाजा । लवणानि च सर्वाणि विडङ्गान्यथ चिन्नकम् ॥ १ ॥

चिविका पिपलीमूलं गुणगुणं हुषुपा वसा । यवाग्रजः सपाठश्च चत्वयैले बृद्धदारकः ॥ २ ॥

कलकेश्च काञ्जिकैरेमिर्षत्प्रस्थं विपाचयेत् । दशमूलकाशयेण धान्ययुषद्वदेवणं च ॥ ३ ॥

दधिमण्डसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् । पकवं स्यादुद्धृतं कलकातिपवेत्कर्षयं हविः ॥ ४ ॥

श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्षाश्रितं च यत् । मेदाश्रिताभिघातोत्थं हन्त्यादेव न संशयः ॥ ५ ॥

अपचीगलगण्डानि अन्त्रवृद्धिं तथाऽर्द्धदम् । नाशयेद् ग्रहणीद्योषं श्वयं गुदजान्यपि ॥ ६ ॥

सौरेश्वरघृत—तुकसी, देवदार, हरड़, बैड़ा, आंवला, सौठि, पीपरि, मरिच, गजपीपरि, पृथक् २ पांचो नमक, वायविंग, चित्र की जड़, चाव, पिपरामूल, शुद्ध गुणगुण, दालबेर, वच, घवाखार, पुरहनपाढ़ी, चाव, इलायची और विधारा को एक २ कर्ष लेकर कलक कर, मूर्च्छित

कभी बड़े कभी घटे, अत्यन्त कठिन पीड़ा हो और वृद्धि तथा पाक में विचित्रता हो अर्थात् नाना प्रकार की वृद्धि और पाक होने उसे बात के कोप की विद्विज जाननी चाहिये ॥ २ ॥

पैत्तिकमाह—

पक्षोदुम्बरसङ्काशः पीतो वा उवरक्षाहवान् । त्रिप्रोथानप्रशाकश्च विद्विषः पित्तसंभवः ॥ ३ ॥

पैत्तिक विद्विष—जिस विद्विष का आकार पके हुए उम्बर (गूलर) के समान अथवा पीत वर्ण का हो, उवर तथा दाढ़ से युक्त हो, शीघ्र उत्पन्न होने वाली तथा शीघ्र पकने वाली हो उसे पित्त के कोप की विद्विष जाननी चाहिये ॥ ३ ॥

इत्येष्मजमाह—

शरावसदृशः पाण्डुः कीर्तः त्रिग्निःऽल्पवेदनः । चिरोऽथानप्रशाकश्च विद्विषः कफसंभवः ॥ १ ॥

कफज विद्विष—जिस विद्विष का आकार शराव (श्कोर) के सदृश, पाण्डु वर्ण का, शीतल, उत्तिरध, अल्प वेदना वाला हो और बहुत दिन में विद्विष का उत्थान (वृद्धि) और पाक हो उसे कफ के कोप की विद्विष जाननी चाहिये ॥ १ ॥

तनुपीतसिताशैवामाद्यावाः क्षमेशः समृताः ॥

विद्विषियों में जो स्राव होता है वह पतला—पीका और श्वेत वर्ण का कम से बात—पित्त और कफ के दोष से होता है ॥

सानिपातिकमाह—

नानावर्णक्षासावो घाटालो विषमो महान् । विषमं पद्यते चापि विद्विषः सानिपातिकः ॥

सानिपातिक विद्विष—जिस विद्विष से अनेक (कृणियोतादि) वर्ण का अनेक (तोददाहादि) पीड़ा से युक्त अनेक प्रकार का पतला पीका स्राव हो, आकार घट के समान उत्थान हो, कभी छोटा हो कभी बड़ा अथवा अत्यन्त बड़ा हो और पाक भी विषम हो अर्थात् किसी स्थान पर पके किसी स्थान पर नहीं पके अथवा कभी शीघ्र पके कभी देर में पके तो उसे सानिपातिक के कारण दुई विद्विष जाननी चाहिये ॥ १ ॥

अभिवातसम्प्रसिमाह—

सैस्तैभावैरभिहते चते वाऽप्यथकारिणः । चतोऽमा वायुविसृतः सरकं पित्तमीरयेत् ॥ १ ॥

उच्चरस्तृणा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः । आगन्तुर्विद्विषिणैष पित्तविद्विषलक्षणः ॥ १ ॥

अभिवातज और आगन्तुर विद्विष—दन २ वस्तुओं से जिनसे अभिवात होता है (लाठी, छोड़ा, पस्थर भादि से) आवात होने पर अथवा क्षत होने पर (रक्तावादि होने से) जो अपथ करते हैं उनकी वायु के द्वारा विस्तारित क्षत की कृष्णा रक्त के साथ पित्त में प्रवृद्ध हो उन्हें कुपित करती है, जिसे उवर, तुणा, दाढ़ उत्पन्न हो जाते हैं और पित्त के विद्विष के समान उसके क्षण होते हैं उसे 'अभिवातज' एवं 'आगन्तुर' विद्विष जानना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तजमाह—

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहृत्तजाऊरः । पित्तविद्विषिलङ्कस्तु रक्तविद्विषस्त्वयते ॥ १ ॥

रक्तज विद्विष—जो विद्विष कृष्ण स्फोटों (कृष्ण वर्ण की पिण्डिकाओं) से युक्त (विरा हुआ) हो, श्यामवर्ण की हो, अत्यन्त तीव्र दाढ़ और पीड़ा इव उवर से युक्त हो और पित्त विद्विष के क्षणों से युक्त हो उसे 'रक्तज विद्विष' कहते हैं ॥ १ ॥

उक्ता विद्विषयो होते तेऽवसाध्यस्तु सर्वजः ॥

जो ये विद्विषयों कपर कही गयी हैं इन सब में सानिपातिक विद्विष असाध्य है ॥

अन्तविद्विषकारणमाह—

आध्यन्तरविद्विषकारणमाह—

अतिव्यवायस्यायामवेगाधातविद्विषिः । पृथक्सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुरुमरुणिम् ॥

वशमीकवस्तुमुखदमन्तः कुर्वन्ति विद्विषम् ॥ २ ॥

आध्यन्तर विद्विष—अतिगुरु, असाध्य, विशुद्ध, शुष्क और संसृष्ट अन्नों के मोजन करने से, अत्यन्त मैथुन और व्यायाम आदि करने से, मलमूत्रादि के वेग को रोकने से, विद्विषयों के सेवन करने से बातादि दोष पृथक् २ अथवा एकत्र (समर्प मिळकर) कुपित होकर गुरुम के समान अथवा वशमीक के समान उन्नत अध्यन्तर प्रदेश में अर्थात् कोष्ठ या उदर में विद्विषयों को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १-२ ॥

संस्थानमाह—गुरु वस्तिमुखे नभ्यां कुर्वौ वङ्गुणयोस्तथा ।

वृक्षकयोः प्लीहि थक्तिक्लोडिन वाऽप्यथवा हृषि ॥ १ ॥

अन्तविद्विष का स्थान—अन्तविद्विष गुदा वरित के मुख, नाभि, क्षोख, दोनों वंश्यन स्थान दोनों युक्त, प्लीहा, यकृत, क्लोम अथवा हृदय में होता है ॥ २ ॥

एवं लक्षणम्—

एवमुक्तानि लिङ्गानि वाह्यविद्विषिशेषं लक्षणानि लिंगोध मे ॥ १ ॥

अन्तविद्विष के लक्षण—इन विद्विषयों के लक्षण बातादि दोषों के अनुसार जिस प्रकार वाया विद्विष के लक्षण हैं वैसे ही कहे हैं किन्तु स्थान विशेष से निम्न लक्षण कहे जाते हैं ॥ १ ॥

गुरु वातनिरोधस्तु बस्ती कुर्वन्ति लक्षणम् । नाभ्यां हिघमा तु साटोपः कुर्वौ मारुतकोपनम् ॥

कटीपुष्टग्रहस्तीबो वङ्गुणस्ये तु विद्विषः । वृक्षकयोः पार्श्वसङ्कोचः प्लीहि वासनिरोधनम् ॥ ३ ॥

सर्वांगप्रग्रहस्तीबो हृषि कासश जायते । शासो यकृति हिक्का च पिपासा क्लोमजेडिका ॥

गुदा में जब अन्तविद्विष होती है तो अधोवायु का अवरोध हो जाता है, वरित में होने से कष्ट से अल्पमूत्र होता है, नाभि में होने से हिक्का तथा आटोप (गुड़ गुड़ शब्द) होता है, क्षोख में होने से वायु का कोप (वायु विकार) होता है, वंश्यों में होने से कटि और पीड़ि में तीव्र स्तम्भ और पीड़ा होती है, वृक्ष स्थानों में होने से पार्श्वदेश में सङ्कोच होता है, प्लीहा में होने से शासोच्छ्रवास में अवरोध होता है, हृदय में होने से स्पृण अङ्गों में तीव्र स्तम्भ और पीड़ा तथा कास होता है, यकृत में होने से खास और हिक्का होती है और क्लोम स्थान में होने से तुपा अधिक होती है ॥ २-४ ॥

सावनिर्गममाह—

नाभेष्परिज्ञाः पक्षा यान्त्यूद्धंमितरे त्वधः । अधः ज्ञातेषु जीवेत्त स्त्रेषुपृथ्वे न जीवति ॥ १ ॥

अन्तविद्विष का स्थान—नाभि स्थान से ऊपर दुई (हृदय आदि की) अन्तविद्विष जब पक्षती है तब फूटने पर उसके स्थाव (पूयादि) कपर को जाते हैं अर्थात् मुखादि से निकलते हैं और नाभि से नीचे दुई (गुदादि की) अन्तविद्विष फूटने पर उसके स्थावादि नीचे की ओर (गुदादि से) जाते हैं। इसमें जिन मूर्खों के स्थाव नीचे के मार्ग से होते हैं वह तो जी जाता है परन्तु जिसके स्थाव ऊपर (मुखादि) से होते हैं वे नहीं जीते ॥ १ ॥

वक्त दारीतेन—ज्ञात्वं प्रपन्नेषु मुखाद्वाराणां प्रवर्ततेऽस्तुवसहितो हि पूयः ।

अधःप्रपन्नेषु च वायुमार्दद्वाभ्यां प्रवृत्तिस्तिवह नाभिज्ञे च ॥ १ ॥

अन्तविद्विष—यदि लक्षण होकर अथवा नाभि स्थान से ऊपर की फूटती है तो रक्त पूयादि सुख से निकलते हैं और यदि नीचे की ओर होकर नाभि स्थान से नीचे की फूटती है तो रक्त पूयादि गुदा के द्वारा निकलते हैं और यदि विद्विष नाभि स्थान में होती है तो ऊपर की फूटती है और गुदा दोनों से निकलती है ॥ १ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

हुचाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः । जीवेकदाचित्पुरुषो नेतरेषु कश्चाचन ॥ १ ॥

हृदय, नामि और वस्ति इन स्थानों में उत्पन्न अन्तविद्विधियों को छोड़ कर जो अन्तविद्विधि हों और उनका सुख बाहर की ओर हो तो कठाचित् वह पुरुष (रोगी) बच भी जाता है परन्तु इससे भिन्न होने पर अर्थात् हृदय-नामि और वस्ति स्थान में विद्रधि हो (इनका सुख भीतर या बाहर हो) मर्म स्थानों की अन्तविद्विधि भी जिनका सुख भीतर हो वह नहीं बचता है ॥ २ ॥

अथोक्तंमोजेन—असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पकाऽपकश्च विद्रधिः ॥

संविपातोरिथतोऽप्येवं पकव एव तु विस्तजः ॥ ३ ॥

मर्म स्थान में जो विद्रधि हुई हो वह तथा सन्निपातज विद्रधि यदि पके अथवा नहीं पके तो भी असाध्य है और वस्ति में जो विद्रधि हो वह यदि पक जावे तो असाध्य है ॥ ३ ॥

त्वरज्जो नाभेरधो यश्च साध्यो नोपरि नामिजः ॥ ४ ॥

जो विद्रधि त्वचा पर हो और नामि के नीचे हो वह असाध्य है और नामि स्थान से कपर होने वाली विद्रधि भी असाध्य होती है ॥ ४ ॥

पुनः साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्या विद्रधयः पञ्च चिवर्त्यः सांनिपातिकः । आमपकवचिद्रधयत्वं तेषां शोशवदादिशेषु ॥

साध्यासाध्यता—बातादिक तीन और आगन्तुज, अभिवातज तथा रक्तज ये पांच विद्रधियां साध्य होती हैं केवल सान्निपातिक असाध्य हैं । इन विद्रधियों की आम-पक और विद्रधय होने की अवस्था शोश की भाँति जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

तेषाम्भन्तरेभवसाध्यमाह—

आधमानवद्वनिष्यन्दं छर्दिहिककातुषान्वितम् । रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिनोशवेन्नरम् ॥

जिस अन्तविद्रधि में रोगी को अ-भान, मूत्रावरोध, वमन, हिक्का, तृष्णा, पीड़ा तथा श्वास हो वह विद्रधि उस मनुष्य का नाश कर देती है अर्थात् असाध्य है ॥ ५ ॥

आमो वा यदि चापक्षेषो महान् वा यदि वेत्रर । सर्वो मर्मोऽस्थितरवातु विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥

विद्रधि आम अथवा पक ही, महान् अथवा इससे इतर (छोटी) हो, किन्तु मर्म स्थान में उत्पन्न हुई सब प्रकार की विद्रधि कष्ट साध्य कही गयी है ॥ ६ ॥

हुचाभिबस्तिजः पक्षो वज्यो यश्च प्रिदोषजः ।

हृदय, नामि और वस्ति में उत्पन्न होनेवाली विद्रधि यदि पक जावे तो वह वज्य है (असाध्य है) और त्रिदोषज विद्रधि भी असाध्य है उसे त्याग देना चाहिये ।

मुष्ठिप्रमाणो गुरुमस्तु विद्रधिस्तु ततः परम् ॥ ७ ॥

विद्रधि का प्रमाण—गुरुम सुष्ठु के प्रमाण का होता है और विद्रधि उससे बड़ी होती है ॥ ७ ॥

गुरुमस्तिष्ठति कोष्ठेषु विद्रधिर्मासशोणिते । विद्रधिः पञ्चते यस्माद् गुरुमश्चात्र न पञ्चते ॥

गुरुम कोष्ठ में रित्यत रहता है और विद्रधि मास तथा रक्त में होती है, इसी कारण विद्रधि में पक होता है और गुरुम नहीं पकता ॥ ८ ॥

अथ स्तनविद्रधिनिदानम् ।

एवमेव स्तनविद्रधिः संवृता वाऽथ योषिताऽ । सूतानां गर्भिणीनां च सम्भवेच्छवयथुर्घनः ॥

स्तनविद्रधि का निदान—इसी प्रकार प्रसूता तथा गर्भवती स्त्रियों के स्तन की सिरायें संवृत होकर कठिन (अवरुद्ध होकर) शोश को उत्पन्न करती हैं उसे 'स्तनविद्रधि' कहते हैं (इसमें

अपने कुपित होने के कारणों से बातादि दोष (उचित विद्रधि के द्वारा के समान ही कुपित होते हैं) ॥ १ ॥

स्तने छियाः सुखमेव वा वाह्यविद्रधिलक्षणः । नाडीनां सूचमवक्षरवारकन्द्यानां च स जायते ॥

यदि छी का स्तन दूध से युक्त हो तो उसमें की उत्पन्न विद्रधि वाया के लक्षणों के समान लक्षण बाली होती है । कन्याओं की नाडी सूक्ष्म और टेढ़ी होती है, इसलिये कन्याओं को स्तन में विद्रधि नहीं होती है ॥ २ ॥

रसालफलतुल्यो यः शोफो वाह्योऽथ वाऽऽन्तरः । पृथग्वाहरुजानाहकारको विद्रधिः स्मृतः ॥

विद्रधि का लक्षण—जो शोष आम के फल के समान बाहर अथवा भीतर हो, पृथक् २ उत्पन्न हुआ हो, पीड़ा, दाढ़ और आनाह युक्त हो उसे 'विद्रधि' कहते हैं ॥ ३ ॥

अथ विद्रधिचिकित्सा ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ । सूदुर्विरेको लक्ष्यन्तं श्वेदः पितोत्तरं विना ॥२॥

सब प्रकार की विद्रधियों में जलौका (खोंक) दारा रक्तमोक्षण कराना चित्कर है और सूदुर्विरेकन, लघु अन्न और पित्तज विद्रधि को छोड़कर अन्य विद्रधियों में श्वेद मी देना चाहिये ॥२॥

बातविद्रधौ—व्याधीमूलककल्कैरस्तु वसतैलघुतन्वितैः ।

सुखोण्णो बहुलो लेपः प्रयोग्यो वातविद्रधौ ॥ ३ ॥

बातज विद्रधि की चिकित्सा—छोटी कटेटी की जड़ का कल्क करके उसमें वसा, तेल और घृत मिला कर कुछ गरम कर अनेक बार लेप कराना चाहिये । इससे बातज विद्रधि में काम होता है ॥ ४ ॥

स्वेदोपनाहाः कर्तव्यः शिश्यमूलसमिवतः । पुनर्नवादाश्विरवदशमूलाभयाम्भसा ॥

गुग्गुमूलवरण्डलैलं वा पिवेन्मासृतविद्रधौ ॥ २ ॥

सहिजन की जड़ के कल्क द्वारा श्वेद और तपनाह करना चाहिये और गद्धपुरना, देवदार, सौंठ, दशमूल की दसों ओषधियों पृथक् २ और दर्हा के क्वाय में शुद्ध गुग्गुल और परण्ड का तेल मिला कर बातज विद्रधि में पीना चाहिये ॥ २ ॥

पित्तविद्रधौ—पैतिके सारिवालाजामधुकैः शार्करायुतैः ।

प्रदिश्यार्चीरपिष्ठैर्वा पर्यस्योऽशीरचन्दनैः ॥ १ ॥

पैतिक विद्रधि चिकित्सा—पैतिक विद्रधि में सारिवा, लाजा (धान का लाघा), मुलाई और शर्करा सम आग लेकर पीस कर अथवा क्षीर काकोली या क्षीर विद्रधी, उस और लाल चन्दन सम आग लेकर गोदुर्घ के साथ पीस कर लेप कराना चाहिये, इससे पित्तज विद्रधि शमन होती है ॥ १ ॥

पिवेद्वा त्रिकलाकवायं त्रिवृक्षकलकलकैन श्वतमिश्रेण लेपनम् ॥ २ ॥

अथवा त्रिफला के क्वाय में निशोय का कल्क एक अक्ष के प्रमाण से मिला कर विद्रधी चाहिये और पञ्चवल्कल (वट, अश्वत्थ, पाकर, गूचर और वेत की त्वचा) के कल्क में गोदृष्ट मिला कर लेप करने से पित्तज विद्रधि नष्ट होती है ॥ २ ॥

इत्येभ्यविद्रधौ—

त्रिकलाशिश्यगृचरुणदशमूलाभया पिवेत् । गुग्गुलुं मूत्रसंयुक्तं विद्रधौ कफसम्भवे ॥ १ ॥

कफज विद्रधि चिकित्सा—दर्हा, बहड़ा, और वरा, सहिजन की जड़, वरणा की जड़ और दशमूल की दसों ओषधियों पृथक् २ सम आग लेकर क्वाय कर उसमें शुद्ध गुग्गुल और गोदृष्ट मिलाकर (अक्षेप देकर) कफज विद्रधि में पीना चाहिये, इससे कफज विद्रधि शमन होती है ॥ १ ॥

इष्टकसिकतालोहाशशक्तुषपांसुमिः । मून्त्रैरुणेश सततं स्वेदये च्छुलेष्मविद्रधी ॥ २ ॥
स्वेद विधि—ईट, बाल, कोहा, धोड़े की विषा, भूसा, धूलि और गोमूत्रादि को गरम कर निरन्तर कफज विद्रधि में स्वेद देना चाहिये, इससे भी कफज विद्रधि शान्त होती है ॥ २ ॥

रक्ताग्नन्तुजौ—

विद्रधी कुशलः कुर्याद्रक्षाग्नन्तुचिमित्सजे । पित्तविद्रधिवच्छुर्यादिकीर्था निरचेषतः ॥ ३ ॥
रक्तज और आगन्तुज विद्रधि चिकित्सा—रक्तज और आगन्तुज विद्रधि में कुशल चिकित्सक पित्तव विद्रधि के समान सम्पूर्ण चिकित्सा करे, इसी किया से रक्तज और आगन्तुज विद्रधि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

सामान्यविधि—शिशुदीप्यवरुणद्वियामिनीकुञ्जराशनकृतः कथायकः ।

बोलचूर्णसिद्धितोऽन्तरुथितं विद्रधि विवृलयेदसंशयम् ॥ ३ ॥

विद्रधि की सामान्य चिकित्सा—सहिजन की जड़ वा छाल, चिच की जड़ वा काली जीरी, वरुणा की छाल, दोनों जवाइन (जवाइन और अजमोदा) अथव वृक्ष की छाल सम भाग लेकर कथाय कर इसमें बोल (खनखरावा या मुसब्दर) के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से अन्तर्विद्रधि अवश्य नष्ट होती है ॥ ३ ॥

ब्रह्मादिकाथः—

कासीसस्यैन्धवशिलाजातुहिङ्कुचूर्णिमिश्रीकृतो वरुणवस्तुकलजः कथायः ।

अभ्यन्तरोरिथितमपकवमतिप्रमाणं नृणामयं जयति विद्रधिमुद्यशोकम् ॥ ३ ॥

वरुणादि कथा—शुद्ध कासीस, सेंधानमक, शुद्ध हींग समभाग लेकर एकत्र चूर्ण कर वरुण के छाल के कथाय में प्रक्षेप देकर पान करने से अन्तर्विद्रधि जो अपकव प्रमाण में बढ़ी और कठिन शोष से युक्त हो वह (विद्रधि) भी नष्ट होती है ॥ ३ ॥

स्वेतपुनर्नवादिः—

स्वेतवर्षासुवो मूलं मूलं च वरुणस्य च । अलेन कथितं पीतमपकवं विद्रधि जयेत् ॥ ३ ॥

स्वेतपुनर्नवादिकथा—स्वेत पुनर्नवा की जड़ और वरुणा की जड़ समान लेकर कथाय कर पान करने से अपकव विद्रधि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

यवादिलेपः—

यवगोधूमसुदैश्च सिद्धिपिष्ठैः प्रलेपयेत् । विलीयते खणेनैवमपकवश्चैव विद्रधिः ॥ ३ ॥

यवादिलेप—जी, गेहूं और सूंग को समान लेकर सिद्ध कर (पका कर या भून कर) पीस कर लेप करने से क्षण में ही (शीघ्र ही) अपकव विद्रधि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

दशमूलादिः—

दशमूली छिक्करुहा पथ्या दारु पुनर्नवा । उवरविद्रधिशोफेतु शिशुविश्युतो हितः ॥ ३ ॥

दशमूलादि कथा—दशमूल की पृथक् २ दसों ओषधियां, हुरचि, ईरी, देवदार, पुनर्नवा, सहिजन और सौंठि समभाग लेकर कथाय कर सेवन करने से ज्वर, विद्रधि और शोष में हितकर है ॥ ३ ॥

ब्रह्मणादिः—

ब्रह्मणादिगणकाथमपके मध्यविद्रधी । लघकादिप्रतीवापं पिवेद्दंशमनाय वै ॥ ३ ॥

ब्रह्मणादिकथा—ब्रह्मणादिगण की ओषधियों (ब्रह्मण, इवेत पुष्पकी कटसरैया, नीके पुष्पकी कटसरैया, शतावरि, चिच की जड़, बेल की छाल, मेषतिंगी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, करञ्ज, लताकरञ्ज, दोनों गनियार, सहिजन दोनों, पीले फूल की कटसरैया, अगस्त, अपामार्ग, मूर्चा

विरैता, अजसिंगी, दिम्बी को समान लेकर काथ कर उसमें लघकादि गण की (शुद्ध तृतीया, शुद्ध शिलाजीत, लोनी मिट्टी, इवेत तथा पीत कासीस, शुद्ध हींग, शुद्ध गुणगुल) ओषधियों को समान लेकर चूर्ण कर उसका प्रक्षेप देकर पान करने से अपक और मध्य विद्रधि शम्भ द्वारा होती है ॥ ३ ॥
मानकमूलादिः—शामयति मानकमूलं ज्वौद्रव्युतं तण्डुलामभसा पीतम् ।

अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाशेव मनुजस्थ ॥ ३ ॥

मानकमूलादि योग—मानकमूल (मान की जड़) को चूर्ण कर मधु में मिलाकर चाटकर तण्डुलोदक का पान करने से मनुष्यों की बढ़ी हुई अन्तर्विद्रधि भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

हरीतकयादिचूर्णम्—

हरीतकीसैन्धवधातीनां रजो धृतवृद्धियुतं प्रयुक्तम् ।

निहन्ति लीढ़ं प्रधमेव पुंसामन्तर्भवं विद्रधिमुद्रपूपम् ॥ ३ ॥

हरीतकयादि चूर्ण—हरी, सेंधा नमक, धाय के फूल, समभाग लेकर चूर्णकर मधु और धृत के अनुपान से लेन करे (चाटे) तो मनुष्यों की अस्थय बढ़ी हुई कठिन विद्रधि भी अवश्य ही नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

सौभाजनादिः—सौभाजनकनिर्युहो हिङ्कुसैन्धवसंयुतः ।

अचिराद्विद्रधि हन्ति प्रातः प्रातिनिषेचतः ॥ ३ ॥

सौभाजनादि योग—सहिजन की छाल अथवा मूल का काथ बनाकर उसमें शुद्ध हींग और सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर प्रातः पान करने से शीघ्र ही विद्रधि को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

शिशुमूलं जले धौतं दरिष्टप्रलेपयेत् । तद्वस्तु मधुना पीत्वा हन्त्यन्तविद्रधि नरः ॥ ३ ॥

सौभाजन लेपादि—सहिजन की जड़ को जल में धोकर शिला पर पीसकर लेप करने तथा उसके रस में मधु मिलाकर पान करने से मनुष्य की अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

त्रिफलायुग्मुङ्गुलुः—

त्रीणि पलानि फलनितयस्य द्वे तु पले तुलिते मगधायाः ।

पञ्च पलानि भवन्ति पुरस्य इयास्य फलत्रिकगुणगुलयोगः ॥ ३ ॥

पद्मेषु विद्रधिषु पूयमतिस्त्रवसु नाढीषु च बणगदेषु भगवद्वरेषु ॥

स्याद्युग्मालिषु फलत्रिकगुणगुलुः स्याद्यप्यथं फलत्रिकपुरे धृतभोजनं च ॥ ३ ॥

त्रिफला गुणगुलु—त्रिफला समान मिलित का चूर्ण तीन पल, पीपर का चूर्ण दो पल और शुद्ध गुणगुल पाँच पल लेकर एकत्र मर्दन कर बटिका के विधान से बटी बनावे इसे 'त्रिफला गुणगुल' कहते हैं। पके हुए विद्रधि में, पूय का अस्थय साथ होने वाले विद्रधि में, नाढी ब्रण में, अगन्तर में और गण्डमाला में इसे सेवन करना चाहिये। इस त्रिफला गुणगुल के सेवन करते समय धृत मिला दुधा भोजन (पथ्य) करना चाहिये ॥ ३-२ ॥

ब्रह्मणकादिधृतम्—सिद्धं ब्रह्मणिगणेन विधिना तत्कषकपाचितं सर्विः ।

अन्तर्विद्रधिमुद्रं मस्तकशूलं हृताशमान्यं च ॥ ३ ॥

गुज्मानपि पञ्चविधाज्ञाशयतीदं यथाऽन्तु वायुसखम् ।

पृतप्रातः प्रापिवेद्दोजनसमये निशास्येऽपि ॥ ३ ॥

ब्रह्मणकादि धृत—ब्रह्मणिगण की ओषधियों के काथ और उसी के कल्प के द्वारा सिद्ध किया धृत अर्थात् ब्रह्मणिगण की ओषधियों का काथ ४ प्रस्थ, मुचिंठत गोधृत एक प्रस्थ और ब्रह्मणिगण की ओषधियों का कल्प ३ प्रस्थ लेकर विधिपूर्वक धृत सिद्ध कर सेवन करने से अस्थय वढ़ी कठिन अन्तर्विद्रधि, शिरःशूल, मन्दादिन और पांचों प्रकार के गुलम इस प्रकार नष्ट होते हैं।

जिस प्रकार वल से अनिन् । इसको प्रातःकाल भोजन के समय और रात के प्रारम्भ में पान करना चाहिये ॥ २-२ ॥

रसगन्धकयोगः-

वरुणादिकथायेण रसगन्धककउजलीम् । शुवत्वा निहनित माषैकां बाह्यमन्तश्च विद्विष्म् ॥
रसगन्धक योग—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान लेकर कुंजली कर एक माषा की मात्रा लेकर वरुणादि योग की ओषधियों के अनुपान के साथ सेवन करने से बाह्य और अन्तविद्विष्म दोनों नष्ट होती है (पहले एक रसी से प्रारम्भ करना चाहिये) ॥ १ ॥

अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं एववे तद्वज्ञवस्त्रिया ॥ १ ॥

ये सब कियायें अपक्व विद्विष्म के लिये कही गई हैं, विद्विष्म के एक जाने पर त्रय की चिकित्सा के समान (अथवा त्रय की) सभी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम् ।

आमरथे रेचनं वैव लेपः स्वेदोऽस्त्वमोक्षणम् । जीर्णः श्वामाककलमाः कुलस्य लशुनानि च ॥
रक्षकशिश्रुत्त्वा निष्पादयः कारवेल्लं पुनर्नवा । श्रीपर्णचित्रकं लौद्रं शोथोक्तानि च सर्वशः ॥२३॥

पथ्यापथ्य—बव तक विद्विष्म आम (अपक्व) रहे तब तक रेचन किया, लेप, स्वेद, रक्तमोक्षण आदि करना चाहिये और पुराने सांवा, कल्प घान, कुलधी, लहसुन, लाल सहिजन, सेम, करौली, पुनर्नवा, गनियार, चित्की जड़ मधु और शोथ रोग में कहे हुए सभी पथ्य सेवन करना चाहिये अर्थात् अपक्व विद्विष्म में ये पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

पवक्वावस्थे शाङ्खकर्म पुराणा रक्षालयः । धूतं तेलं सुद्वारसो विलेपी धन्वजा रसाः ॥ ३ ॥

शालिङ्गशाकं कदली पटोलं हिमवालुका । चन्दनं तसुशीताम्बु रसवं चापि व्रगोदितम् ॥

जब विद्विष्म एक जावे तब शाक कर्म (चीर-फाड़) करना चाहिये और पुराने रक्त वर्ण के शालीयान का चावल, धूत, तेल, मूँग का रस, विलेपय तथा धन्वज (बिल में रहने वाले तथा मरवेशीय) जीर्णों का मांस रस, शालिङ्ग शाक (हिमवाला का शाक), केला, परवर, कपूर, चन्दन, औदा कर शीतल किया जल तथा त्रय रोग में कहे हुए सभी पथ्य सेवन करना चाहिये । नराणां विद्विष्म व्याधी चथोर्य उस्थं यथावलम् । पथ्याप्तेतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महविभिः ॥
मनुष्यों के विद्विष्म रोग में अवस्था और वल के अनुसार ये सभी पथ्य मध्विष्यों ने निर्दिष्ट किये हैं ॥ ५ ॥

शोफिनां यान्त्यपथ्यानि व्रित्तिनामपि यानि च । क्रमादाम्भे च पवक्वे च विद्विष्मै वर्जयेत्तरः ॥

शोथ रोग और त्रय रोग में जो अपथ्य कहे गये हैं वही क्रम से आम और पक्व विद्विष्म में वर्जित करना चाहिये अर्थात् जो शोथ में अपथ्य हैं वे आम विद्विष्म में और जो त्रय में अपथ्य हैं वे सभी पदार्थ पक्व विद्विष्म में अपथ्य हैं ॥ ६ ॥

इति विद्विष्मिकित्सारोगप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ ब्रणशोथनिदानम् ।

तस्य प्राय्यपम्—एकदेशोधितः शोफो व्याघानां पूर्वलक्षणम् ॥ १ ॥

ब्रणशोथ का पूर्वरूप—शरीर के एक स्थान पर डाठा हुआ शोथ त्रय रोग का पूर्वरूप है अर्थात् शरीर पर एक स्थान में शोथ होदे तो जानना चाहिये कि यही त्रय रोग का पूर्वरूप है ॥

तस्य संख्यामात्र—षड्विधाः स्यापूर्वकस्वर्द्धशोणिताग्नन्तुभेदतः ॥ १ ॥

ब्रण की संख्या—वह एक देश में वातादिक वृश्चक् २ दोषों से (वातज-पित्तज-कफज) तीन, विदोषज एक, रक्तज एक और आगन्तुज एक इस भेद से उत्पन्न शोथ छः प्रकार का होता है ॥१॥

तेषां लक्षणमाद—

शोफाः वहेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोफलक्षणैः । विशेषः कथ्यते चैषां पश्चात्प्रविनिश्चये ॥

ब्रण शोथ के लक्षण—ये छ प्रकार के शोथ जो हैं इसके लक्षण पहले कहे हुए शोथ रोग के लक्षण के समान ही जानना चाहिये । यहाँ पर इसका विशेष लक्षण पक्वापक्व के निश्चय के लिये कहते हैं ॥ १ ॥

विष्मयं पद्यते वातारिपत्तोथश्चाविरचिरद् । कफजः पित्तवद्व्योमो रक्ताग्न्यासुसुखदः ॥२॥

वात के कोप से जो ब्रण शोथ होता है उसका पाक विष्मय होता है अर्थात् शोथ कहीं (शोथ का कोई भाग) पक्ता है, कहीं नहीं पक्ता है, पित्त के कोप से जो होता है, वह शीघ्र पक्ता है, कफ के कोप से जो होता है वह बहुत विलम्ब से (अधिक दिन में) पक्ता है और रक्त तथा आगन्तुक शोथ पित्तज शोथ के समान अर्थात् शीघ्र पक्ता है ॥ २ ॥

मन्दोप्तालपशोफत्वं काठिन्यं त्वक्सर्वर्णता । मन्दवेदनता चैव शोफानामामलक्षणम् ॥२॥

आम शोथ के लक्षण—जिस शोथ में उभ्या मन्द हो, शोथ अव्यय हो, शोथ में कठिनता हो, वर्ण त्वचा के वर्ण का शो रोधा अव्यय हो उसे आम अर्थात् अपक जानना चाहिये ॥ ३ ॥

दद्धते दहनेव चारेणेव विपच्यते । पिलीलिकागणेनेव दश्यते द्विष्टते तथा ॥ ४ ॥

भित्ताते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते । पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरित्वं तु यते ॥ ५ ॥

सोष्योषो विवर्णः स्याद्वग्न्येवावपीड्यते । आसने शयने स्थाने शान्तिं दृश्यिकविद्युतवत् ॥

न गच्छेदाततः शोफो भवेदाम्भातवस्तितवत् । उवरस्तुणाऽरुचिश्चैव पथ्यमानरथ लक्षणम् ॥

पक्ते हुए शोथ के लक्षण—जिस ब्रण शोथ में अपिन से लक्षाने के समान दाढ़ हो, क्षार से पक्ते हुए कोई भाँति ज्ञात हो, चीटियों के समूह काट रहे हैं ऐसा ज्ञात हो, छेदने के समान, शुक्ल से भेदन करने के समान, दंडे से मारने के समान हो, हाथ से दबाने के समान अथवा सूई चुपाने के समान पीड़ा हो, दाढ़ हो, चूसने के समान पीड़ा हो, वर्ण विवरणं (त्वचा रक्तपीतादि) हो, अंगुली से पीड़ित करने की भाँति पीड़ा हो, बैठने में, सोने में, तथा स्थान स्थान में विच्छू काटे की भाँति व्याकुलता हो, शोथ बायु से पूर्ण दरित के समान फूला हुआ हो, फैलाव में न्यूनता नहीं हो और उत्तर, तुणा तथा असचि, वे सब लक्षण जिस शोथ में हों उसे पच्यमान अर्थात् पक्ता हुआ शोथ जानना चाहिये ॥ ४-७ ॥

बैद्यनोपशमः शोफो लोहितोऽश्यो न चोक्षतः । प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्ठसुर्मुहुसुर्हुः ॥

ब्रणद्रव्याणां प्रशमो चिक्षाता स्फुटनं त्वचाम् । वस्ताविवाऽञ्जुसञ्चारः स्याच्छोफऽङ्गुलिपीडिते ॥

पूर्वत्य पीड्यत्वेकमन्तमन्ते च पीडिते । भक्ताकाङ्क्षा भवेद्वचैव शोफानां पक्वलक्षणम् ॥ १०॥

पक्ते शोथ के लक्षण—जिस शोथ में वेदना की शान्ति (दाढ़ादि में न्यूनता) हो और शोथ का लोहित वर्ण होना (पाण्डु वा धूसर वर्ण का होना), अनन्त नहीं रहना (शोथ में न्यूनता), शोथ में सिकुड़न का उत्पन्न होना, सूई गडाने की भाँति ज्ञात होना, बार-बार कण्डु होना, उपर्दवी (दाढ़, चोष-तृष्णादि) की शान्ति, शोथ में नव्रता होना (नदुता होना), त्वचा पर स्फोट होना (कुछ फट जाना), अंगुली से दबाने पर शोथ का जल से भरे हुए चमड़े की थैली पर अंगुली दबाने की भाँति दबाना अर्थात् पूर्य से मरा होने से शुद्ध होना, शोथ के एक स्थान की पीड़ित करने (दबाने) से दूसरे स्थान का पीड़ित होना और भोजन की इच्छा होना वे सब लक्षण हो सो शोथ पका हुआ है यह जानना चाहिये ॥ ८-१० ॥

नर्तेऽनिलाद्रुद्धन विना च पित्तं दाहः कक्षं शापि विना न पूयः ।
तस्माद्बुद्धि सर्वं परिपाकाले दोषैविद्यिर्विभान्ति यदा विपाकम् ॥ ११ ॥

ब्रण में वायु के दिना पीड़ा (तोदादि) नहीं होती है, पित्त के विना दाह (पाक) नहीं होता है और कक्ष के विना पूय नहीं होता है इलिये सब प्रकार के ब्रण में (एक दोष से उत्पन्न ब्रण में) मी पाक होने के समय तीनों दोषों का संसर्ग होता है अर्थात् प्रत्येक ब्रण तीनों दोषों से पकते हैं वा प्रत्येक रोग तीनों दोषों के संसर्ग से पकते हैं ॥ ११ ॥

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृचा वशे वातकफौ प्रसद्धा ।

पच्यतः शोणितमेघ पाको मतः परेधां विदुषां द्वितीयः ॥ १२ ॥

अधिक समय हो जाने पर बढ़ा हुआ पित्त, वात और कफ को वश कर (हीन कर) रक्त को पचाता है (इसी से पूय बनता है) अर्थात् तीनों दोष और रक्त मिलकर, पक कर पूय होते हैं । पहले यह किसी के बोल कफ से पूय बनता है पर यह विद्वानों का दूसरा मत है ॥

कफजेतु च शोथेतु गडभीरं पाकमेत्यस्तु । पक्वलिङ्गं ततः स्पष्टं यथा स्याद्भ्युथशीतता ॥

स्ववसावपर्यं रुजोलपत्वं ध्वनस्पर्शत्वमस्मवत् ॥ १३ ॥

कफज शोथ में रक्त गम्भीर पाक को प्राप्त करता है । उसमें पाक होने का स्पष्ट लक्षण ये हैं कि शोथ में शीतलता हो, त्वचा के बर्ण के समान ही शोथ का बर्ण हो, पीड़ा अत्य हो और शोथ पत्थर के समान घन स्पर्श हो (इड शोथ हो) इस प्रकार के लक्षण से युक्त कफज शोथ को पक जानकर वैद्य उचित निकितसा (शब्द चिकित्सा) करे ॥ १३ ॥

कचं समासाध्य यथैव वद्विवर्तेति: सन्दर्भति प्रसद्धा ।

तथैव पूयोऽस्थविनिःस्तो हि मांसं शिशासनायु च खादतीह ॥ १४ ॥

जिस प्रकार कक्ष में (तृणपुंज में) प्राप्त हुई अनिन वायु से प्रज्वलित होकर भीतर ही भीतर भस्म कर देती है उसी प्रकार पके द्वय ब्रण का पूय आदि बाहर नहीं निकाला जावे तो वह पूय मांस, सिरा और स्नायु को खा जाता है ॥ १४ ॥

आमं विपच्यमानं च सर्वयकपकं च यो भिषक् । जानीयात्प भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १५ ॥

जो वैद्य ब्रण शोथ के आम, पच्यमान और सम्यक् पक की अवस्था को (अपक, पकता हुआ और भलीभाँति पका हुआ) जानता है वही वैद्य है, शेष तस्कर वृत्ति वाले हैं अर्थात् जिस वैद्य को इसका ज्ञान नहीं है वह वैद्य के नाम पर चोरी करके जीविका चलाने वाला वैद्य है । (वैद्य नहीं है) ॥ १५ ॥

यर्विष्ठन्त्याममज्जनानायश्च पञ्चमुपेद्वते । श्वपचाविव मन्त्रध्यै तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥

जो वैद्य अज्ञान से आम (अपक) ब्रण को छेदन कर देता है (चीरा दे देता है) और पके द्वय ब्रण की उपेक्षा करता है (नहीं चीरता है) उन अनिश्चितकारी (निश्चयपूर्वकार्य नहीं करने वाले वैद्यों को चापडाल के समान जानना चाहिये ॥ १६ ॥

द्विधा व्रणः परिज्येः शारीरागन्तुभेदतः । दोषैराच्यस्ततोऽन्यश्च शास्त्रादिच्छतसम्भवः ॥ १७ ॥

ब्रण का द्वय विचार—एक शारीर ब्रण और दूसरा आगन्तुज ब्रण इस भेद से ब्रण दो प्रकार का जानना चाहिये । इसमें आदि का जो ब्रण है अर्थात् शारीर ब्रण दोषों (वातादिकों) से होता है और अन्य अर्थात् आगन्तुज ब्रण शास्त्रादि से क्षत होने के कारण होता है ॥ १७ ॥

वातिकमाह—स्वदेशः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्त्रावो महाशजः ।

तुद्यते स्फुरति श्यावो वणो मारुतसम्भवः ॥ १८ ॥

वातिक ब्रण के लक्षण—जो ब्रण स्वाध्य (अचल) हो, स्पष्ट करने पर कठिन मालम हो,

स्नाव जिसमें से मन्द २ हो, पीड़ा अधिक हो, ब्रण में सूर्य चुम्हाने के समान ज्ञात हो, स्फुरण हो और ब्रण का वर्ण श्याम हो उसे वायु के कोप से उत्पन्न ब्रण जानना चाहिये ॥ १८ ॥

पैतिकमाह—

तृष्णामोहजवरभलेददाहदुखाचदारणैः । ब्रणं पित्तकृतं विद्यादृग्गम्धैः ख्वायैश्च पूर्तिकैः ॥ १९ ॥

पैतिक ब्रण के लक्षण—जिस ब्रण में तृष्णा, मोइ, ऊर, आर्द्रता, दाह, अवदारण (फटने) का दुख, कुर्मचि और पूतीक स्नाव (शब्द के गन्ध का स्नाव) हो उसे पित्त के कोप से ब्रण जानना चाहिये ॥

कफकमाह—

बहुपिच्छो गुरुः दिनभ्यः दिनमितो मन्दवेदनः । पाण्डुवर्णोऽल्पसंबलेदश्चिरपाकी कफव्याः ॥

कफज ब्रण के लक्षण—जिस ब्रण में अस्यन्त पिच्छलता (चिकनाहट या पूय), गुरुता, दिनभ्यता, निश्चलता और अस्प पीड़ा हो, ब्रण का वर्ण पाण्डु हो, योड़ी २ आद्रंता और बहुत समय (अधिक दिन) में ब्रण का पाक हो उसे कफ के कोप का ब्रण जानना चाहिये ॥ २० ॥

रक्तजमाह—

रक्तो रक्तस्ती रक्ताद् द्वित्रिजः श्याच्चद्व्ययः । रक्तमांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ॥ २१ ॥

भीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः । गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कुच्छो व्रणः स्मृतः ॥

रक्तज ब्रण के लक्षण—जिस ब्रण का वर्ण रक्त हो और रक्त का ही जिसमें से स्नाव होवे उसे रक्त के दोष का व्रण कहते हैं । द्विदोषज विद्रोषज लक्षण—इसी रक्तज में दोषों के समन्वय से (सम्बन्ध से) द्विदोषज और त्रिदोषज भी होता है अर्थात् दो २ दोषों के सम्बन्ध होने से द्विदोषज और तीनों के सम्बन्ध से त्रिदोषज होता है । इसमें द्विदोषज विद्रोषज के भी दो भेद द्वारा—एक भेद वात-पित्त, पित्त-कफ और कफ-वात का द्विदोषज तथा वात-पित्त और कफ मिश्रित विद्रोषज तथा दूसरा भेद रक्त-वात, रक्तपित्त और रक्त-कफ का द्विदोषज और वात-पित्त-रक्त, वात-कफ-रक्त और पित्त-कफ-रक्त का विद्रोषज तथा वात-पित्त-कफ और रक्त का साक्रियापात्रिक इसके उपरान्त पूर्वक्यित वातज, पित्तज, कफज और रक्तज होते हैं । इस प्रकार ब्रण के पन्द्रह भेद हैं । साध्यासाध्यता—जो ब्रण त्वचा और मांस में उत्पन्न हुआ हो, सुखकर त्थान पर हो अर्थात् मर्म-स्थान आदि से पृथक् हो, सुवा मनुष्य को हुआ हो (जो किया [चीर फाद आदि] सहने वाला हो), उपद्रव (उपरतुषादि) से रहित हो, बुद्धिमान् मनुष्य को हुआ हो, ब्रण नवीन हो, सुख कर समय में (हेमन्त, शिशिरादि ऋतु में) हुआ हो ऐसा ब्रण सुखसाध्य होता है । जो ब्रण सुखसाध्य ब्रण के गुणों से हीन गुण का हो अर्थात् कुछ लक्षणों में व्यून हो उसे कष्ट साध्य ब्रण कहा गया है ॥ २१-२२ ॥

सर्वैविहीनोऽसाध्यस्तु तथैवोपद्रवान्वितः । पूर्तिः पूर्यातितुष्टासृष्टसाध्ययुतसङ्गी चिरं स्थितः ॥

दुष्टव्यगोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः ।

दुष्टव्यग के लक्षण—जो ब्रण सुखसाध्य ब्रण के सब गुणों से हीन हो (सुखसाध्य ब्रण के गुणों से विपरीत हो) और उपद्रवों (ऊर-दाह-तृष्णादि) से युक्त हो, ब्रण में दुर्गंभि हो, अधिक पूय आता हो, अस्यन्त दूषित रक्त होता हो, अति ऊंचा हो अथवा छिद्रयुक्त हो, बहुत दिन का पुराना हो गया हो और अस्यन्त गन्ध आती हो तथा शुद्ध ब्रण के लक्षणों से विपरीत लक्षण हो उसको दुष्ट ब्रण कहते हैं ॥ २३ ॥

बिहातलाभः सुख्लक्षणः चिह्नधो विगतवेदनः । सुख्यवस्थो निरासावः शुद्धो ब्रण इति स्मृतः ॥

शुद्ध ब्रण के लक्षण—जिस ब्रण की आमा (कान्ति) बिहातल की आमा के समान हो, इलक्षण (पिच्छल), स्निग्ध और वेदना (पीड़ा) रहित हो, सुख्यवस्थित (सम हो अर्थात् ऊंचा

नीचा या छिद्रयुक्त न हो) हो तथा स्वाव रहित हो उसे शुद्ध ब्रण कहते हैं अर्थात् शुद्ध ब्रण के ये लक्षण हैं ॥ २४ ॥

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः । स्थिराश्च पिटिकाचन्तो रोहतीति तमादिशेत् ॥

भरते हुए ब्रण के लक्षण—जिस ब्रण के किनारे २ कपोत के वर्ण के (पाण्डु-धूसर) समान वर्ण हो और क्लेदरहित (सावरहित) हो, स्थिर वा अर्थात् ब्रण की छुट्ठि अवरुद्ध हो गई हो और पिटिका युक्त हो अर्थात् ब्रण पर खाखा दिखाई देवे उसे रुक्षमान (भरता हुआ) ब्रण जानना चाहिये ॥ २५ ॥

रुद्धवस्त्रमग्रन्थिमशून्मुखं ब्रणम् । स्वकस्वर्णं समतलं सम्यशुद्धं तमादिशेत् ॥ २६ ॥

भरते हुए ब्रण के लक्षण—जिस ब्रण का मार्ग अवरुद्ध हो गया हो (स्वावादि का बहना बन्द हो गया हो), ग्रन्थि आदि जिसमें नहीं हों, शोथ तथा पीड़ा नहीं हो, वर्ण त्वचा के वर्ण का हो गया हो और समतल हो गया हो उसे सम्यग्रुद्ध (भलीमांति मरा हुआ) ब्रण जानना चाहिये ॥

कुष्ठिनां विषुलुशानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।

ब्रणः कृच्छ्रे सिद्ध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ २७ ॥

साध्वासाध्यता—कुष्ठरोग, दूषी विष, शोष रोग और मधुमेह वाले के ब्रण और जिनको ब्रण के ऊपर ब्रण हुआ हो उनके ब्रण ये सब कष्ट साध्य होते हैं ॥ २७ ॥

वसां मेदोद्ध भजानं मस्तुलुङ्गं च यः खवेत् । आगन्तुजो व्रणः सिद्ध्येच्च स्वप्सम्भवः ॥

जिसके ब्रण से वसा, मेद, मज्जा और मस्तुलुङ्ग (मस्तक के भेजे वा मगज) का स्वाव होता हो और यदि वह ब्रण आगन्तुज (आघातादि के कारण) हो तो साध्य होता है तथा यदि ऐसा ब्रण दोष से (वातादिक से) हुआ हो तो साध्य नहीं होता है अर्थात् असाध्य होता है ॥ २८ ॥

मत्यागुर्वार्जियसुमनः पद्मचन्दनचर्षपकैः । सगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षुणां व्रणाः स्मृताः ॥ २९ ॥

जिस ब्रण में से सभ, अगर, घृत चमेली के फूल, कमल, चन्दन तथा चम्पा के फूल आदि का गन्ध (इनके समान गन्ध) आवे अथवा अन्य विलक्षण गन्ध आवे तो वह मरने वाले का ब्रण कहा गया है ॥ २९ ॥

ये च ममसु सम्भूता भवन्त्यर्थवेदनाः । दद्यान्ते चान्तरत्यर्थं वहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥ ३० ॥

प्राणमांसलुभ्यश्वासकासारोचकपीडिताः । प्रवृद्धपूर्यहिरा व्रणं येषां च ममसु ॥ ३१ ॥

क्रियाभिः सम्यगारधान लिद्यन्ति च ये व्रणाः । वर्जयेदेव तान् वैष्णः संरक्षासमनो यशः ॥

जो ब्रण मम—स्थान में नहीं उत्पन्न होने पर भी अस्यन्त पीड़ा करने वाले और आम्यन्तर में अत्यन्त दाह करने वाले हो तथा बाहर (ऊपर) से शीतल हो (इसी प्रकार जो ब्रण भीतर से शीतल और बाहर से दाह करने वाले हों) और जिस ब्रण में प्राण (बल) और मांस का क्षय हो, खास, कास और अस्थि से पीड़ा हो, पूय और रुधिर जिसमें अत्यन्त बढ़े हुए हो (नहीं हो) तथा जो ब्रण ममस्थान में उत्पन्न हुए हों और भलीमांति विकितसा करने पर भी सिद्ध नहीं होते हों उनको अपने यश की रक्षा करने वाला वैष्ण त्याग देवे, अर्थात् ये सब असाध्य ब्रण हैं ॥ ३०—३२ ॥

अथ ब्रणशोथचिकित्सा ।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम् । द्वितीयमुपनाहं च चतुर्थीं पाटनकिया ॥ १ ॥

पञ्चमं शोधनं कार्यं षष्ठं रोपणमिष्टते । एते क्रमाद् व्रणस्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ॥ २ ॥

ब्रणशोथ विकितसा— प्रथम ब्रणशोप्ते के प्रारम्भ में विम्लापन किया करे, द्वितीय में अवसेचन चतुर्थ में उपनाह, चतुर्थ में पाटन, पञ्चम में शोधन, षष्ठ में रोपण और सप्तम में वैकृत (विकार)

नाशक किया करे अर्थात् ब्रण चिकित्सा में क्रम से इन सात प्रकार की क्रियाओं को करनी चाहिये ॥ १—२ ॥

विम्लापनम्—

अभ्यउय स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या शनैः शनैः । विम्लः पनाथं गुह्णीत तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ ३ ॥

ब्रण शोथ उपरक्ष होते ही पहले ब्रण को धूत तेल आदि से अभ्यक्त कर बांस की नली के द्वारा और २ स्वेद देवे पश्यात् द्रुततल से अथवा अंगुठे से ब्रण को पकड़ कर मले, इससे ब्रण शोथ में विम्लापन होता है ॥ ४ ॥

अवसेचनम्—

रक्तावसेचनं कुर्यादावेव विचक्षणः । शोफे महति संवृद्धे वेऽनावति वा व्रणे ॥ १ ॥

यो न याति शर्मं लेपास्वेदसेकापतर्पणैः । सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोषणात् ॥

ब्रण शोथ के आरम्भ में वैष्ण रक्तमोक्षण किया को करे क्योंकि जो शोथ अधिक हो गया हो, ब्रण में पीड़ा अधिक होती हो जो लेप लगाने, स्वेद देने, सेक करने और अपतर्पण करने से भी शर्म नहीं होता हो वह शोथ रक्तमोक्षण कराने से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १—२ ॥

एकतश्च क्रियाः सर्वं रक्तमोक्षणमेकतः । रक्तं हि विक्रियां याति तन्मोक्षे नाशित विक्रिया ॥

ब्रण को विकितसा में एक और सम्पूर्ण क्रियाओं का योग और एक और केवल रक्तमोक्षण क्रिया दोनों में रक्तमोक्षण ही प्रधान है क्योंकि रक्त ही शोथ में विकृत होता है वसके निकाल देने से विकार नहीं रहता है (नष्ट हो जाता है) ॥ ३ ॥

लेपः—

मातुलुङ्गाद्धिमन्थो च सुरदारु महोषधम् धर्मिष्या चैव रादा च प्रलेपो वातशोथहा ॥ १ ॥

वातजशोथ में लेप—विलौरा नीबू, गनियार, देवदारु, सौंठि, कट्टेरी और रासना को समान लेकर दीसकर लेप बनाकर लेप करने से वातज शोथ (ब्रण) इस प्रकार नष्ट होता है जिस लेपकर दीसकर लेप बनाकर लेप करने से वातज शोथ (ब्रण) इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार गरुड से नाग (सर्प) नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चन्दनं तथा । शीतलैश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः वित्तशोफजित् ॥ ३ ॥

पित्तजशोथ में दूर्वादि लेप—दूर्वादल (हरी दूर्व), नरकट की बड़ी, मुलहठी, लालचन्दन और शीतल गण की सब शोषियां लेकर लेप बनाकर लेप करने से पित्तज शोथ नष्ट होता है ॥

अजगन्धाऽश्वगन्धा च चतुर्थं विकृतश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥

कफज ब्रण शोथ में अजमोदादि लेप—अजमोदा, असगन्ध, काली निशोय या काला जीरा, सरक काष, कबीला और काकड़ासिंगी समझाय लेकर लेप बनाकर लेप करने से कफज ब्रण शोथ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कृष्णा पुराणविषयाकं शिश्रुतविसकता शिवा । मूत्रविष्टः सुखोष्णोदयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥

कृष्णादि लेप—पीपर पुरानी तिल की खरी, सहिजन की छाल, बालू और हरी सम आग लेकर गोपूत्र के साथ दीसकर योड़ा गरम रक्त गरम २ लेप करने से कफज ब्रण शोथ नष्ट होता है ॥ चन्दनद्वयमज्जिष्ठायशीसूरणगैरिकैः ॥ ५ ॥

शतधूतधूतोनिमश्रीर्लेपो रक्तप्रसादनः । दाहपाकरुजासावशोफनिर्वापणः परः ॥ ६ ॥

रक्तज ब्रण शोथ में लेप—बट, गूलर, अस्थि, पाकार, वेत और लघुड़ा (छितोड़ा) इनकी छाल, रक्तचन्दन, खेतचन्दन, मजीठ, जेठीमधु, सूरणकन्द, गेहू मिठ्ठी समझाय लेकर लक के

साथ पीसकर उसमें सौ बार का शोया हुआ गोघृत मिलाकर लेप करने से रक्त का प्रसादन होता है और दाह, पाक, पीड़ा, स्राव और शोथ ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ६-७ ॥

आगन्तुजे रक्तजे च तूपलेपोऽतिपूजितः ॥ ८ ॥

आगन्तुज और रक्तज व्रण शोथ में यह अच्छिक्षित लेप अन्युत्तम माना गया है ॥ ८ ॥

कटुतैलान्वितैलेपः सर्पनिर्मांकभस्मभिः । चयः शास्त्र्यति गण्डस्थ प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् ॥
गण्डकोप में लेप—सांप की केचुल को जलाकर भस्म कर उसमें कटुतैल मिलाकर लेप बनाकर लेप करने से गण्ड (अनियं) का शोय शमन होता है और यदि गण्ड शोथ अथवा कुपित हो गया हो (वढ़ गया हो) तो शीत्र पूट या जाता है ॥ ९ ॥

न रात्रौ लेपनं द्वचाहत्तं च पतितं तथा । न च पर्युषितं नैव शूष्यमाणं च धारयेत् ॥ १० ॥

लेपक का निषेध—रात्रि में लेप नहीं लगाना चाहिये क्योंकि लगाया हुआ लेप गिर जाता है, पर्युषित (वासी) लेप और सूखा हुआ भी लेप नहीं लगाना चाहिये ॥ १० ॥

शूष्यमाणसुप्रेतेत् प्रदेहं पीडनं प्रति । न चापि सुखमालिप्पेत्तेन दोषः प्रसिद्धयते ॥ ११ ॥

यदि व्रण को पीडन करना हो तो सुखे हुए लेप की उपेक्षा करना चाहिये (नहीं उतारना चाहिये) तथा व्रण के मुख पर लेप नहीं लगाना चाहिये, इसमें दोष निकल जाते हैं अथवा भीतर हो रह जाते हैं ॥ ११ ॥

न प्रशास्यति यः शोफः प्रलेपादिविधानतः । द्रव्याणि पाचनीयानि द्रव्यात्त्रोपनाहने ॥ १२ ॥

उपनाह—विषि—जो शोथ प्रलेप आदि विषि (चिकित्सा) से नहीं शमन होते हों उसमें उपनाह के लिये (पुलिट्स के लिये) पाचनीय द्रव्यों को व्यवहार करना चाहिये (लगाना चाहिये) ॥

उपनाहनम्—स्तिळाः सातसीशीजा दध्यम्लैः सक्तुपिण्डिकाः ।

सकिञ्चकुष्ठलवणाः शास्त्राः स्युकृपनाहने ॥ १ ॥

तिळ, तौसी के बीज, दही, काजी, जौ के सत्तू का पिण्ड, सुराबीज, कूट और सेंचा नमक समान लेकर पीसकर उपनाह (पुलिट्स) करने से लाग्न होता है ॥ १ ॥

तैलेन सर्पिणा वाऽपि द्रव्याणां सक्तुकपिण्डिका ।

सुखोणः शोथपाकार्थसुपनाहः प्रशस्यते ॥ २ ॥

तेल अथवा घृत अथवा दोनों मिलाकर जौ के सत्तू के पिण्ड को गरम कर गरम २ ही उपनाह करने से शोथ का पाक करता है, यह शोथ का पाक करने में उत्तम है ॥ २ ॥

पाटनम्—अन्तःपृथिव्यववत्त्रेषु तथैवोरसङ्कवरस्त्वपि ।

गतिमस्तु च रोगेषु भेदनं शास्त्रसुख्यते ॥ १ ॥

भेदन के योग्य व्रण—जिस व्रण के भीतर पूर्य भरा हो, मुख नहीं हुआ हो (पूर्यादिनिकलने का मुह नहीं बना हो) व्रण उठा हुआ हो (पूर्य से चढ़ा हुआ हो) और चलायमान व्रण हो तो उसका भेदन करना (चीरा लगाना) उचित कहा गया है अर्थात् इस प्रकार के व्रण भेदन के योग्य होते हैं ॥ १ ॥

बालवृद्धासहस्रीणभीरुणां योग्यितामपि । मर्मोपरि च जातेषु पक्वे शोफे च दाहये ॥ २ ॥

चिरिविशेषोऽशिको दन्ती चिक्को ह्यमारकः । कपोतकङ्गवृग्राणां मललेपेन दारणम् ॥ ३ ॥

बालक, हृद, भस्मशील, क्षीण, भीरु और जियों के ज्यों तथा मर्मस्थान पर उत्पन्न व्रणों परं एके हुए कठिन शोथ पर चिरिविशेष (करज) की छाल, चित्त की छड़, दन्ती की छड़ अवमोद, कलेर की छड़, कदूतर की विडा, चीक पक्षी की विडा और गिर की विडा को समान

लेकर पीस कर लेप बना कर लेप करने से व्रण का दारण होता है अर्थात् इस लेप से व्रण फूट कर पूर्यादि बाहर निकल जाते हैं इस लेप को चिरिविशेषोऽशिको होते हैं ॥ २-३ ॥

स्वजिकाशावश्कृचाचाः खारा लेपेन दारणाः । हेमकान्त्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः ॥ ४ ॥

स्वजिकादिलेप—सज्जीखार और याखाखारादि क्षारों के लेप से व्रण का दारण होता है और दाकहरदी का लेप बना कर लेप करने से व्रण का अत्युत्तम दारण होता है ॥ ४ ॥

शणमूलकभिरुणां फलानि तिलसंबंधिः । सच्चवः किञ्चमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥ ५ ॥

शणादि प्रदेह—सन का मूल, सिंजन का फल, तिल, सरसों, जब के सत्तू, सुराबीज और तीसी समान लेकर पीस कर लेप करने से व्रण का पाचन (पाक) होता है ॥ ५ ॥

दन्तीत्तिक्रममूलत्वशुद्धक्षयसो गुडः । भद्रातकास्थिकासीसंसैन्धवैदर्यणः स्मृतः ॥ ६ ॥

दन्त्यादि दारण—दन्तीमूल, चित्त की छड़ की छाल, थूहर (सेंडुक) का दूध, मदार का दूध, गुड़, भिलावे के बीज कासीस और सेंचानमक समान लेकर पीसकर लेप बना कर लेप करने से व्रण का दारण (भेदन) होता है ॥ ६ ॥

हस्तिदन्तो जले शृष्टे विन्दुमात्रः प्रलेपितः । अत्यन्तकठिने चापि शोफे पाचनभेदनः ॥ ७ ॥

हस्तिदन्त लेप—हाथी के दाँत को जल के साथ विस कर (बिस प्रकार चन्दन विसा जाता है) एक बुन्द के प्रमाण से व्रण पर लेप करने से अत्यन्त कठिन व्रण शोथ का भी पाचन (पाक) और भेदन दोनों क्रिया को करता है ॥ ७ ॥

यवगोचूमचूर्णं च सबीरं दारणं पृथक् । हूरिंद्रिभस्मचूर्णाभ्यां प्रलेपो दारणः परः ॥

अजविट्कारमृग्जरच प्रलेपो व्रणदारणः ॥ ८ ॥

यवादि दारणयोग—यव का चूर्ण अथवा गेहूं का चूर्ण लेकर उसमें क्षार मिला कर लेप करने से व्रण का दारण होता है (व्यवहार—यव, गेहूं दोनों पृथक् २ करना चाहिये) इरदी का भस्म और चूना मिला कर लेप करने से व्रण का दारण होता है । दकरी की विडा, खारी मिट्टी का खार, उवण इनको ग्रिलाकर लेप करने से व्रण का दारण होता है ॥ ८ ॥

ततः प्रश्वालने काथः पटोलीनिवृपत्रजः । अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादिवशुद्धः ॥ ९ ॥

व्रण प्रश्वालन विषि—व्रण बद्ध फूट जावे तब (शुद्ध करने के लिये) परवल के पसे और नीम के पत्ते के काथ से धोकर शुद्ध करे । जब शुद्ध हो जावे तब न्यग्रोधादिवशुद्धण के त्वक् के काथ से व्रण को धोवे ॥ ९ ॥

पञ्चमूलीद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैसिके । आरवधादिको योउयः कफजे सर्वकर्मसु ॥ १० ॥

दोषानुसार वातन कवाय—दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल के काथ से वातज व्रण की धोना चाहिये । न्यग्रोधादि गण की ओषधियों के कवाय से पित्तज व्रण और आरवधादिवशुद्धण के कवाय से कफज व्रण की धोना चाहिये तथा इस कवाय का प्रयोग सब क्रियाओं में करना चाहिये अथवा अन्य सब प्रकार के व्रण को भी इसी आरवधादि गण के कवाय से धोना चाहिये ॥ १० ॥

अथ शोधनरोपणविधिः ।

तिलसैन्धव्यष्ट्याद्विनिवृपत्रनिशायुतैः । चिवृन्मधुयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ १ ॥

व्रण शोधक लेप—तिळ, सेंचानमक, जेठीमधु, नीम की पत्तियां, इरदी, निशोथ सम भाग लेहर पीस कर मधु मिला कर लेप बना कर व्रण पर लेप करने से व्रण का शोधन होता है ॥ १ ॥

तिलकलः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्धूष्टतम् । मधुकं निवृपत्रप्राणिं लेपः स्वाद् व्रणशोधनः ॥ २ ॥

तिळादि कलक—तिळ का कलक, सेंचानमक, इरदी, वातहरदी, निशोथ, धृत, मुलहठी, नीम

की पत्तियां इन सबको पीस कर कल्क बनाकर ब्रण पर इसका लेप करने से ब्रण का शोधन होता है ॥ २ ॥

निर्वद्वकोलकपत्राणां लेपः स्थाद्वयणशोधनः । निर्वपत्रतिलैः कल्को मधुना व्याघ्रशोधनः ॥३॥

निर्व पत्र लेप—नीम के पत्ते और बैर के पत्ते दोनों को समान लेकर पीसकर अथवा नीम के पत्ते और समान तिल के बने कल्क के साथ मधु मिलाकर लेप करने से ब्रण का शोधन होता है ॥

निर्वपत्रं तिला दन्तीश्चिवृत्सैन्धवमाचिकम् । बुद्ध्यणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥ ४ ॥

निर्व पत्रादि लेप—नीम की पत्तियां, तिल, दन्ती मूल, निशेय, सेन्यानमक समान लेकर पीस कर इसमें मधु मिलाकर लेप लगाने से दुष्ट ब्रण शमन होता है और ब्रण का शोधन और रोपण करता है ॥ ४ ॥

अभ्याश्चिवृत्तादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः । सुष्वीपत्रधत्तूरकर्मसोट्कुटेरिकाः ॥ ५ ॥

पृथगेते प्रलेपम गङ्गामीरव्यणशोधनाः । निर्वपत्रमधुर्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ॥ ६ ॥

गङ्गामीर ब्रण का शोधन—इरे के चूर्ण या निशेय के चूर्ण या दन्तीमूल के चूर्ण या करिआरी के मूल के चूर्ण या काले बीरे के या धतूर के या छोटी बरिआर के या काली तुलसी अथवा बाबूई तुलसी के पत्तों को पीसकर उसमें सेन्या नमक और मधु मिला कर इन प्रत्येक योगों के द्रुष्टक् २ लेप करने से गङ्गामीर ब्रणों का शोधन होता है और नीम की पत्तियों को पीसकर उसमें मधु मिलाकर लेप करने से ब्रण का संशोधन होता है ॥ ५-६ ॥

एङ्कं वा सारिवामूलं सर्वव्यगविशोधनम् ॥ ७ ॥

सारिवामूल लेप—केवल एक सारिवा की जड़ को ही पीसकर लेप करने से सब प्रकार के ब्रणों का शोधन होता है ॥ ७ ॥

न्यग्रोधोदुभवाशवस्थकद्वप्लववेत्साः । करवीराक्कटुकाकषायो रोपणे द्वितः ॥ ८ ॥

बट, गूलर, पीपरि, कदम्ब, पाकड़, बेत, कनेर, मदार और कुटकी सम भाग लेकर इससे ब्रण को लोगे से ब्रण का रोपण होता है ॥ ८ ॥

सप्तदलदुर्घककृष्णः शामयति दुष्टव्यणं प्रलेपेन । मधुयुक्ता शरपुज्ञा सर्वव्यगरोपणी कथिता ॥

सप्तदल करक—छितवन के दूध के कल्क का लेप करने से दुष्ट ब्रण शमन होता है (इसका दूध जम कर कल्क के रूप में होता है) । सरपोखा के चूर्ण को मधु में मिलाकर लेप करने से सब प्रकार के ब्रण का रोपण होता है ॥ ९ ॥

पञ्चवस्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः । धातकीलोध्यचूर्णैर्वा निःसारा यान्ति ते व्यणः ॥ १० ॥

पञ्चवस्कलादि योग—बट, पीपर, पाकड़, गूलर और बेत की छाल के समान मिलित चूर्ण का लेप करने अर्थात् ब्रण पर इस चूर्ण को लगाने से अथवा इनके चूर्ण में सीप का चूर्ण (मस्तम) भी मिलाकर लगाने से अथवा धाय के फूल और छोटे की समान लेकर चूर्ण कर ब्रण पर लगाने से ब्रण निःसार होते हैं अर्थात् पूर्वादि से रहित होकर ब्रण बच्छे हो जाते हैं ॥ १० ॥

निर्वपत्रधृत्तद्वद्वार्वीमधुकसंयुता । वर्तितिलानी कल्को वा शोधयेद्वेद्वयनम् ॥ ११ ॥

शोधनी तथा रोपणी वर्ति—नीम की पत्तियां, धृत, मधु, दाढ़ इरदी और मुख्हाठी समान लेकर पीसकर दर्ती बना कर लगाने से अथवा तिल का कल्क बनाकर ब्रण पर लेप करने से ब्रण का शोधन और रोपण होता है ॥ ११ ॥

निर्वशशयाकजास्थकसप्तपर्णीयमारकाः । कूमिष्ठा मूत्रसंयुक्ताः सेकलेपनधावनैः ॥ १२ ॥

कूमिष्ठा निर्वादि धावन योग—नीम, अमलकतास, चमेली, मदार, छितवन और कनेर सुग भाग लेकर काय अथवा कल्क बनाकर गोमूत्र मिलाकर ब्रण तिचन करने, लेप करने और लोगे से ब्रण के कूमि नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥

करआरिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद् व्यणक्रिमीन् । लशुनेनाथवा दण्डालेपनं कूमिष्ठाशनम् ॥ १३ ॥

कूमिष्ठा शुक्त योग—करज, नीम और निर्गुण्डी (मेडुही) इनके पत्तों का रस ब्रण पर लगाने से अथवा लहसुन को पीसकर लेप करने से ब्रण के कूमि नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

निर्वपत्रवचाहिङ्गुसर्विर्लवणसैन्धवैः । धूपनं कूमिरधोषनं व्यणकण्डुद्वजापहम् ॥ १४ ॥

निर्वादि धूप—नीम की पत्तियां, बच, ईंग, धृत, नमक साधारण और सेन्या नमक लेकर पीसकर धूप देने से यह धूप ब्रण के कूमि, कण्ठ और पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

ये कलेद पाकस्तिगन्धवन्धवैः व्यण महान्तः सहजाः सशोधाः ।

प्रथान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं श्रिकलाजलेन ॥ १५ ॥

गुग्गुल योग—शुद्ध गुग्गुल जो त्रिफला के काय में मिलाकर पान करने से कलेद युक्त पाक युक्त, स्वाव युक्त (जहते हुए), गन्धवाले (दुग्धवित ब्रण) अत्यन्त बढ़े हुए, पीड़ा करने वाले तथा शोध युक्त ये सभी त्रय नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

गुग्गुलवटकः—

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः । निषेवितो विवन्धनो व्यणशोधनरोपणः ॥ १ ॥

गुग्गुल वटक—त्रिफला समान मिलित का चूर्ण १ एक भाग और शुद्ध गुग्गुल १ भाग लेकर पक्त्र मदनं कर वटी बना कर सेवन करने से विवन्ध नष्ट होता है और ब्रण का शोधन और रोपण करता है ॥ १ ॥

विडङ्गविगुग्गुलः—

विडङ्गविगुग्गुलाद्योच्चौर्णं गुग्गुलुना समस् । सपिष्ठा वटकान् कुर्याद् स्खादेष्वा हितभोजनः ॥

त्रुष्टव्यणापच्चीमेहकुष्मानीविशोधनान् ॥ १ ॥

विडङ्गादि गुग्गुल—वायमिरंग, आंवला, ईरा, बड़ा, सौंठि, पीपरि, मरिच सम भाग लेकर चूर्ण कर उसके बराबर शुद्ध गुग्गुल मिलाकर मदनं कर धृत के सहारे वटी बनाकर सेवन करने तथा पथ्य में इनसे दुष्ट ब्रण, अपची, मेह, कुष्ठ और नाड़ी ब्रण ये सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अमृतापोलमूलत्रिकट्रिफलाकृष्मिष्ठानाम् ॥

प्रतिवासरमेकांगुटिकां स्खादेत्यत्तद्विषयिमाणाम् ।

जेतुं ब्रणवातास्तं गुरुमोदरपाण्डुशोधादीन् ॥ २ ॥

अमृतापोलमूलत्रिकट्रिफलाकृष्मिष्ठानाम्—जेतुं ब्रणवातास्तं गुरुमोदरपाण्डुशोधादीन् ॥ २ ॥

ब्रायमिरंग समभाग के चूर्ण कर सब एकत्र कर सभी के समान शुद्ध गुग्गुल मिलाकर मदनं कर धृत के सहारे वटी बनाकर एक अक्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन सेवन करने से ब्रण, वातरक्त, शुद्धम, वरद, पाण्डु और शोध आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

जात्यादिवृत्तम्—जातीपत्रपटोलनिर्वकटुकादीनिशासारिवा-

मसिष्ठाभ्युत्थसिक्षमसुकैर्नक्षाह्वीजान्वितः ।

सर्पिः सिद्धमेनेन सूक्ष्मवदना समर्पिताः स्खाविषो

गाम्भीरः सरुजो ब्रणः सर्पतिकाः गुग्ग्यनित रोहनित च ॥ ३ ॥

जात्यादि धृत—चमेली, परवर की जड़, कुटी, दाढ़हरदी, इरदी, सारिवा, मजोठ, ईरा, तूतिया, भोज, मुलठी, करज के बीज समभाग लेकर कल्क कर उसके चौगुना धूषिष्ठ गोधृत और धृत के चौगुना बल मिलाकर धृत सिद्ध कर सेवन करने से सूक्ष्म मुख वाले मध्य स्थान में वरपक्ष निरन्तर स्थित होने वाले गङ्गामीर, अत्यन्त पीड़ा करने वाले और गतिमान् ब्रण (जो नाड़ी आदि के दारा बढ़ने वाले ब्रण हैं) ये सभी शुद्ध होते हैं और भर जाते हैं ॥ ३ ॥

स्वर्जिकायं धृतम्—स्वर्जिका च यवचारः कुपिलं च हरेणुका ।

टङ्गं श्वेतखदिरं तुर्थं चूर्णं च गोवृतैः ॥ १ ॥

सर्वं समांशं संचूर्ण्य मर्दयेष्वहरं दृष्टम् । इवर्जिकाश्चाभिर्द सर्विः सर्वव्रणहरं परम् ॥

रोपणं कृमिकपृष्ठम् सर्वणकरणं परम् ॥ २ ॥

स्वर्जिकादि धृत—सज्जो, बवाखार, कबीला, रेणुका, टङ्ग, श्वेत खेर, तूरिया और चूला समान के एकत्र चूर्ण कर जितना हो उसके बराबर गय का धृत मिलाकर एक पहर तक इड़ता के साथ मर्दन कर कराने से यह ‘स्वर्जिकादि’ नामक धृत सब प्रकार के त्रिणों को नष्ट करने में उत्तम है, और यह त्रिणों को रोपण करता है, कृमि (त्रिणकमि) कण्ठ को नष्ट करता है तथा त्वचा को सर्वण करने में उत्तम है ॥ २ ॥

मनःशिलादिलेपः—

मनःशिला समभिष्टा सच्चारा इजनीकृयम् । प्रलेपः सधृत्वौद्रस्वविवशुद्धिकरः धृतः ॥ ३ ॥

मनःशिलादि लेप—मैनसिल, मजीठ, बवाखार, दृष्टी, दारदख्ती समान ले चूर्ण कर धृत और मधु के साथ मिलाकर लेप कराने से त्वचा की शुद्धि करने वाला कहा गया है ॥ ३ ॥

पारदादिमलहरः—

रसगन्धकथोरचूर्णं तरसमं मुर्द्धश्वकम् । सर्वतुर्थं तु कविष्वरलं किञ्चित्तुरथसमन्वितम् ॥ ३ ॥

सर्वं सम्मेलयेहरवा धृतं सर्वचतुर्गुणम् । पिञ्चप्लुतं प्रदातव्यं दुष्टव्रणविशेषधनम् ।

नाडीव्रणहरं चैव सर्वव्रणनिष्पृष्ठम् ॥ २ ॥

ये त्रिणा न प्रशास्यन्ति भेषजानां शतेन च । अनेन ते प्रशास्यन्ति सर्विषा स्वलृपकालतः ॥ ३ ॥

पारदादि मलहर—पारद, गन्धक एक २ भाग और दोनों के बराबर मुर्द्धसंग (दो भाग), सब के बराबर (४ भाग) कबीला तथा किञ्चित् मात्र तूरिया मिलाकर मर्दन कर जितना हो उसके बराबर धृत मिलाकर पिञ्च (रुई का फाला) में मरकर त्रण पर रखने से दुष्ट त्रण शुद्ध होते हैं । नाडी त्रण तथा सब प्रकार के त्रण नष्ट होते हैं । जो त्रण सैकड़ों ओषधियों से भी शमन नहीं होते हों वे सभी इस धृत से अश्व समय में ही शमन हो जाते हैं । इसमें प्रथम पारद-गन्धक को मर्दन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

द्वितीयपारदादिमलहरः—

रसगन्धकसिन्धूररालकुपिलमुर्द्धकम् । तुर्थं खादिरकं चूर्णं सर्वं धृतचतुर्गुणम् ॥ ४ ॥

युक्तया संमेलय पिञ्चुना त्रये देयं विज्ञानता । सर्वं ग्रन्थामनं धृतमेतत्र संशयः ॥ २ ॥

दूसरा पारदादि मलहर—पारद, गन्धक, सिन्धूर, राल, कबीला, मुर्द्धसंग, तूरिया और खेर सम भाग लेकर चूर्णकर जितना हो उसके लौगुना धृत मिला कर पिञ्च में मर कर त्रण पर रखने से इस धृत से सब प्रकार के त्रण अश्वय नष्ट होते हैं । (पारद-गन्धक पहले मर्दन करना चाहिये)॥

अयोरज आदिलेपः—

अयोरजः सकासीसं त्रिफला कुमुमानि च । प्रलेपः कुरुते दार्याः सत्य एव नवां त्वचम् ॥ १ ॥

अयोरजादि लेप—लोहप्रस्त, कासीस, खंवरा, इर्हा, बहेरा और दारुहरदी के पूर्ण समभाग ले चूर्ण और मर्दन कर त्रण पर की त्वचा पर लेप करने से त्वचा झींग्र नवीन हो जाती है ॥ १ ॥

अथ सद्यो व्रणनिदानमाह ।

नानाचारामुखः शक्तैर्नानास्थाननिपातितैः । भवन्ति नानाकृतयो व्रणस्तोस्ताक्षिकोध मे ॥

सद्यो व्रण निदान—अनेक प्रकार के धार वाले तथा अनेक प्रकार के मुखों वाले शखों के अनेक स्थानों पर गिरने और कराने से अनेक आकारों वाले (आगन्तुक) त्रण हो जाते हैं उनको ‘सद्योव्रण’ कहते हैं ॥ १ ॥

तेषां पद्मविष्वसमाह—

छिंन्म भिन्नं तथा विळं लूतं पिञ्चित्तमेव च । शृष्टमाहूरतथा षष्ठं तेषां वस्त्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥
छिंन्म, भिन्न, विळ, लूत, पिञ्चित्त और शृष्ट इस नाम के छ मेदवाले ‘सद्योव्रण’ होते हैं जिनके लक्षण कहते हैं ॥ २ ॥

तिर्थविष्वस ऋजुवर्वापि त्रयो यस्त्वायतो भवेत् । गात्रस्य पातनं तदिच्छुक्षमित्यभिक्षीयते ॥

छिंन्म त्रण के लक्षण—जो सद्योव्रण किसी शख से तिरछा कटा हुआ हो अथवा सीधा कटा हुआ हो और लम्बा अर्थात् अविक कटा हुआ हो तथा दाथपैर आदि शरीर के अक्ष कट कर गिर पड़े हो अथवा कट गये हों पर गिरे नहीं हों ऐसे को ‘छिंव त्रण’ कहते हैं ॥ ३ ॥

शक्तिकुन्तेषुख्वद्वाग्प्रविषाणैराशयो हतः । यर्तिक्वित्प्रस्त्रवेत्तद्वि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

मिन्न त्रण के लक्षण—जो त्रण शक्ति, कुन्त (भल), धाण, खड्ग के अग्रभाग और सींग इत्यादि शखों से आइत होकर आमाशय आदि आशय स्थानों का भेद दुष्ट हो और उसमें से कुछ स्थान होने लगे । यह स्थाव स्थान भेद से कई प्रकार का होता है अर्थात् वस्ति में भेदन होने से भेद वा रक्त, पुरीषाशय में होने से पुरीष आदि होता है उसे मिन्न त्रण कहते हैं ॥ ४ ॥

स्थानान्यामाशिपकानां मूर्वस्य यज्ञिरस्य च । हृष्टुण्डकः फुफ्कुसश्च कोष्ठ इत्यभिक्षीयते ॥ ५ ॥

आशयों के भेद—आमाशय (आम का स्थान), अग्न्याशय (अग्नि का स्थान), पकाशय (आम के पक्ष होने का स्थान), मूत्राशय (मूत्र का स्थान अर्थात् वस्ति), रक्ताशय (रक्त का स्थान अर्थात् यकृत-झींदा आदि), उण्डक (यह पुरीषावान अंतिडियों के भीतर रहता है), और फुफ्कुस (यह केफड़ा हृष्ट के बाम पार्श्व में रहता है) ये कोष्ठ अथवा आशय कहे जाते हैं । तस्मिन्भिन्नन्ते रक्तपूर्ण उवरो हाइत्य जायते । मूत्रमार्गपुद्वास्येभ्यो रक्तं ग्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥ मूर्ज्ज्वर्णा श्वासस्तृष्णाऽऽध्यानमभक्त्यन्दृष्ट एव च । विष्मूत्रवातसङ्गश्च रेदः श्वावोऽपित्तिरक्ता ॥ लोहगन्धित्वमास्त्रयस्य गात्रे दौर्गन्ध्यमेव च । हृष्टुलं पार्श्वोश्चापि विशेषं त्वच मे शृणु ॥ ७ ॥

मिन्न कोष्ठ के लक्षण—इन कोष्ठों (आशयों) के मिन्न होने पर कोष्ठ रक्त से पूर्ण हो जाता है, जब और दाढ़ होता है और मूत्रामार्ग (शिशन), गुदा, मुख तथा नाक से रक्त निकलता है तथा मूर्ज्ज्वर्ण, धास, तृष्णा, आधमान, भोजन से अवश्य और मल-मूत्र और अधो वायु का अवरोध हो जाता है, रवेद होता है तथा नेत्र लाल हो जाते हैं, मुख से लौह के गन्ध के समान गन्ध और शरीर से दुर्गन्ध आती है और हृष्टय तथा पार्श्व देश में शूल होता है ये सब कोष्ठ के भिन्न होने के सामान्य लक्षण हैं । विशेष आवे कहते हैं ॥ ६-८ ॥

आमाशयस्थे रुधिरं छृद्यत्यपि । आधमानमतिमात्रं च शूलं च मृशदारुणम् ॥ ९ ॥

आमाशय के भेद—जब किसी शख द्वारा आमाशय मिन्न हो जाने से उसमें रक्त भर जाता है तब रक्त का वमन होता है, उदर में अत्यन्त आधमान और अत्यन्त कठिन शूल होता है ॥ ९ ॥ पकाशयगते चापि श्वागैरवसेव च । अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥

पकाशय के भेद—जब किसी शख द्वारा पकाशय मिन्न हो जाता है और उससे उसमें रक्त भर जाता है तब पीड़ा होती है, शरीर भारी हो जाता है तथा विशेष करके शरीर के अधोभाग (नाभि से नीचे) में शीतलता होती है ॥ १० ॥

सूचमाहृष्टव्यायामिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना । उत्तरिष्टतं निर्गतं चा तद्विद्विमिति निर्दिशेत् ॥

विद्व त्रण के लक्षण—सूक्ष्म सुख वाले शस्य आदि से आशय को छोड़कर सूक्ष्म अंग यदि अभिहत हो जावे और कॅंचा हो जावे तथा उसमें से शस्य निकल गया हो अथवा नहीं निकला हो उस छिंदे हुए सद्यो व्रण को विद्व कहते हैं ॥ ११ ॥

नातिभिक्षुभयोर्लेखणान्वितम् विषमं ब्रणमङ्गे यत्तत्त्वतं तु विनिर्विशेत् ॥१२॥

क्षुत ब्रण के लक्षण—जो संघोव्रण शक्तादि के द्वारा न अथवा छिन्न हुआ हो न अथवा भिन्न हुआ हो प्रश्युत दोनों लक्षणों से युक्त हो पेस शरीर के विषम ब्रण को 'क्षुतब्रण' कहते हैं ॥

प्रहारपीडनाभ्यां तु यद्वं पृथुतां गतम् । सास्थितपिच्चितं विद्यान्मउरक्षपरिप्लुतम् ॥

पिच्चित ब्रण के लक्षण—जिस संघोव्रण में प्रहार और पीड़न से अर्थात् मुद्रर आदि से लग कर अथवा कपाट आदि से दब कर अङ्ग अस्थिं सहित चपटा हो जाता है और वह चिपटा हुआ स्थान मज्जा तथा रक्त से परिपूँण हो जाता है उसे 'पिच्चित' कहते हैं ॥ १३ ॥

• वृष्णिवादभिवाताद्वा यद्वं विगततत्त्वचम् । ऊपास्तावान्वितं तत्त्वं घृष्मित्यभिधीयते ॥ १४ ॥

घृष्मित्य के लक्षण—किसी रुक्ष वस्तु के घृष्मण से अथवा आधात से जब किसी अंग की त्वचा छिल जाती है और उसमें से रुष्णात्मक (जलन) पीड़ा होती है और सार होता है उस संघोव्रण को 'घृष्मित्य' कहते हैं ॥ १४ ॥

स्थावं संघोफं पिटिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ।

मुहु द्रुतं बुद्बुदतुल्यमांसं ब्रणं सशश्यं सरहं तद्विति ॥ १५ ॥

शश्युक्त ब्रण के लक्षण—जो संघोव्रण शयाम वर्ण का, शोथ तथा पिटिकाओं से युक्त हो, तथा बार २ उसमें से रक्त का स्राव हो, कोमल हो, बुद्बुद के समान (जल के बदूले के समान) कपर डठा हुआ मांस हो और पीड़ा हो उस ब्रण को 'शश्युक्त ब्रण' कहते हैं ॥ १५ ॥

श्वच्छोऽतीर्थ शिरादीनि भित्त्वा च परिहृय वा । कोष्ठे प्रतिष्ठितं शालयं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥

कोष्ठगत श्वल्य के लक्षण—जो श्वल्य त्वचा आदिकों (सप्त त्वचा) को पार कर तथा सिरा—स्नायु आदिकों को मेदकर अथवा इन सिरा-आदिकों को छोड़ कर कोष्ठ में रित्थत हो जाता है (विनष्ट श्वल्य जिसे सुशुत में कहा गया है) वह 'शश्यविज्ञानीय' अध्याय में कहे हुए (आयोप, आनाद, मूत्र-पुरीवादि का मुख से बाहर निकलना आदि) उपद्रवों को करता है ॥ १६ ॥

तत्रान्तर्लोहितं पाण्डु शीतपादकराननम् । शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानदं परिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

असाध्य कोष्ठ भेद के लक्षण—जिस कोष्ठ भेद वाले रोगी के कोष्ठ में रक्त रक्त जावे अर्थात् वाहर नहीं निकले (कोष्ठ भेद में रक्त सुंह आदि से बाहर निकलता है वह पहले के लक्षणों में कह दिया गया है) और उस रोगी के पौंछ, हाथ और सुंह पाण्डु वर्ण के और शीतल हो जावे तथा श्वास शीतल लेवे, नेत्र रक्त वर्ण के हो जावे और उसे आनाद होते तो उसको त्वाग देना चाहिये ॥ १७ ॥

अमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोणता च ।

स्वस्ताकृता भूच्छून्मूर्ध्ववातरतीवा लजो वातकृताश्च तास्ता ॥ १८ ॥

मांसोद्वकार्भं हृषिरं च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव ।

दशार्थसंख्येवपि विचेष्टु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गसुकम् ॥ १९ ॥

मांस, सिरा, स्नायु, अस्थिं और सन्धि मर्म में क्षत होने के सामान्य लक्षण—जब इन पांचों स्थानों में क्षत होता है तब रोगी को अम, प्रलाप (अक-बक बोलना), भूमि पर गिर जाना, मोह होना, चेष्टा का विकृत होना, गत्तानि, रुष्णाता, शिथिलता, भूच्छा, उद्धवेवत (डकार) और वात के कारण होने वाले दण्डापासानक एवं आयोपवादि तीव्र पीड़ाये होती हैं और ब्रण से मांस के धोधन के समान रक्त निकलता है और सब इन्द्रियों अपने कार्य में अक्षम रहती हैं (असमर्थ रहती हैं), इन दशार्थ (पांच) मर्म स्थानों में क्षत के बीच सामान्य लक्षण कहे गये हैं ॥ २८-२९ ॥

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं ज्वरेच्चत्तत्वम् वायुः ।

करोति रोगान्विविधान्यथोक्तान् शिरासु विद्यास्वयथा चतासु ॥ २० ॥

सिराविद के लक्षण—मर्म स्थानों को छोड़ कर अन्य स्थान की सिराये दब किसी शब्द (वाण) आदि से छिद्र हो जाती है अथवा खड्गादि से क्षत हो जाती है तब उसमें से शीरबद्धी के वर्ण का (लाल मखमल की भाँति वर्ण का) अधिक रक्त निकलता है, जिससे वायु दुष्प्रिय होकर अनेक प्रकार के (आयोप, शिरोविकारादि) रोगों को करता है ॥ २० ॥

कौड़जं शरीरावयवादसाक्षः कियास्वशक्तिस्तुमुला इज्ञथः ।

विराद् ध्वनो रोहिति वस्थ चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं ध्ववस्थेत् ॥ २१ ॥

स्नायुविद के लक्षण—जिस मनुष्य को शक्तादि के छगने पर उसकी पीड़ा से कुचलता और शरीर के अवस्थयों में अवसरता (शिथिलता) हो जावे, किया करने की (अंग-सञ्चालनादि की) शक्ति नहीं रहे, अस्थन पीड़ा और बहुत समय के पश्चात् ब्रण का रोपण हो (ब्रण पूरा हो) उसको स्नायुविद (स्नायु में क्षत) हुआ है पेसा जानना चाहिये ॥ २१ ॥

शोफाभिकृदिस्तुमुला रुज्ज्वलाच्छयः पर्वसु मेदशोफौ ।

क्षतेषु सन्धिव्यवहाराचलेषु स्यास्ववर्कमर्मपरमश्च लिङ्गम् ॥ २२ ॥

सन्धिविद के लक्षण—जब चल (हस्त-पादादि की) अथवा अचल सन्धियों में क्षत हो जाता है (शक्तादि का आधात हो जाता है) तब उसमें शोथ बढ़ जाता है, अस्थन पीड़ा, ब्रण का नाश, ओड़ों पर फोड़ने के समान पीड़ा तथा शोथ होता है और सभी कर्मों में (सन्धि के कार्यों में) असमर्थता होती है ॥ २२ ॥

घोरा छजो यस्थ निशादिनेषु स्वास्ववस्थासु न चेति शान्तिम् ।

भित्तिविद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविदं मनुजं ध्ववस्थेत् ॥ २३ ॥

अस्थिविद के लक्षण—जिस क्षत वाले मनुष्य को दिन-रात कठिन पीड़ा हो, तथा सभी अवस्थाओं (सोने-बैठने आदि) में शान्ति नहीं मिले अर्थात् किसी समय पीड़ा से शान्ति नहीं मिले तो उसको विदान् (सूक्ष्म) चिकित्सक अस्थिविद जाने ॥ २३ ॥

यथास्त्रमैतानि विभावयेच्च लिङ्गानि मर्मस्वभित्तिदेषु ।

सिरादि मर्मविद के लक्षण—सिरा आदि मर्मों के विद्र हो जाने पर उन स्थानों के क्षतों के जो लक्षण पहले कहे हैं वे सभी लक्षण उसमें होते हैं और यूक्त २ लक्षण जो सिराविद आदि के कहे हैं वे भ्रम-प्रलापादि सभी लक्षण सिरा आदि मर्मों के अभिहत होने से होते हैं ।

पाण्डुर्विर्वर्णश्च सुखं न वैति यो मांसमर्मण्यभित्तादितश्च ॥ २४ ॥

मांस मर्मविद के लक्षण—मनुष्य के मांस मर्म के विद्र होने पर उसका वर्ण पाण्डु वर्ण का अथवा विकृत वर्ण का हो जाता है और उसे सुख नहीं मिलता है ॥ २४ ॥

मर्मशित्तं व्रणं प्राप्य वायुर्यः सर्वदेहगः । वेगैरायामयेद् देहं ब्रणायामं तु तं ध्वजेत् ॥ २५ ॥

ब्रणायाम की असाध्यता—संबद्धे में संचरण करने वाला जो वायु है वह मर्म में हुय ब्रण में प्राप्त होकर शीघ्र ही शरीर की आयाम सुख कर देता है (फैला देता है) उसे 'ब्रणायाम' कहते हैं ॥ २५ ॥

विसर्पः पत्त्वातश्च शिरास्त्वभोऽपतानकः । योहोन्मादव्यग्रज्ञा उवरत्त्वादनुग्रहाः ॥ २६ ॥

कासश्चर्दिरतीसारो हिक्का रवासः स्वेष्टुः । योङ्गोपद्रवाः प्रोक्ता ब्रणिनां ब्रणचिन्तकैः ॥

ब्रणों के उपद्रव—विसर्प, पक्षावात, सिरास्त्वम्, अपतानक, मोह, उन्माद, ब्रण में पीड़ा, ज्वर, तृप्ता, हुन्मय वास, वमन, अतीसार, हिक्का, आस, वेष्टु (कम्पन) ये सोलह ब्रण रोग वालों के (ब्रण रोग के) उपद्रव होते हैं ऐसा ब्रण-विशेषज्ञों ने कहा है ॥ २६-२७ ॥

अथ सद्योब्रणचिकित्सा ।

बुद्ध्वाऽगमन्तुवणं वै शो वृत्तचौद्रसमन्विताम् । क्षीतां कियां चरेदाशु रक्षपित्तोष्मना शिनीम् ॥
सद्योब्रण चिकित्सा—वै य आगन्तुक ब्रण जान कर श्वीष रक्त-पित्त और ऊमा को नष्ट करने वाली वृत्त तथा मधु अिलित क्षीतक किया को करे ॥ १ ॥

कुदे सद्यो ब्रणे युज्याद्भूर्व चाऽधश्च शोष्णनम् ।
लङ्घनं च चलं ज्ञात्वा भोजनं चास्तमोज्ञनम् ॥ २ ॥

कुद सद्योब्रण चिकित्सा—सद्योब्रण अत्यन्त कुद (अत्यन्त बड़ा हुआ) हो तो उसमें अध्येशोषन और अध्योषन (उमन-विरेचन) पहले कराना चाहिये, बक के अनुसार लङ्घन और भोजन तथा रक्तोष्मण भी करना चाहिये ॥ २ ॥

शृष्टे विद्विले चैव सुतरामित्यते विभिः । तयोररप्य स्वत्यस्त्रं पाकस्तेनाऽऽशु आयते ॥३॥

घृष्ट और विद्विल ब्रण चिकित्सा—विसे हुए सद्योब्रण में विद्विल (पिच्छित) सद्योब्रण में उपर्युक्त (शोधनादि) विवि उत्तम है क्योंकि इसमें से रक्त अथव निकलता है जिससे शीघ्र ही ब्रण का पाक हो जाता है। शीघ्र पाक होने के कारण शोधनादि कर्म लाभदायक है ॥ ३ ॥

छिन्ने भिन्ने तथा विद्वे चतुर्चास्त्रवेत् । रक्तश्चात्प्रवृत्तं च माहृत्वांशधैः श्रृतैः ॥ ४ ॥
स्नेहपानपरीषेकलेपस्वेदोपनाहनम् । कुर्वात स्नेहवृत्तं च माहृत्वांशधैः श्रृतैः ॥ ५ ॥

छिन्नादि ब्रण चिकित्सा—छिन्न, भिन्न, विद्व तथा क्षत में रक्त का अधिक स्राव होता है जिससे रक्त के नष्ट होने के कारण वायु कुपित होकर अथवन्त कठिन पीड़ा करती है इसलिये इन ब्रणों में स्नेहपान परीषेक (ओधियों के जल का सिंचन), लेप, स्वेद और उपनाद करना चाहिये तथा वातनाशक औधियों के काथ से स्नेह वस्ति देना चाहिये ॥ ४-५ ॥

उक्तं च ग्रन्थान्तरे—

छिन्ने भिन्ने तथा विद्वे चतुर्चास्त्रवेत् । पट्टसूत्रेण संस्वेदं कुर्याद् ब्रणविशारदः ॥ ६ ॥

छिन्न-भिन्न-विद्व और क्षत इन सद्योब्रणों में ब्रण-चिकित्सक वै य पट्टसूत्र वाले वस्त्र (रेखासी वस्त्र) से स्वेद करे तो लाभ होता है ॥ ६ ॥

सुहुमुहुर्यथा दुःखं न प्राप्नोति ब्रणी नरः । अथवा दीप्यलवणपोद्दृश्या स्वेदयेन्मुहुः ॥ ७ ॥

बार २ स्वेद इस प्रकार देवे कि रोगी को कष नहीं होने पावे अथवा ज्वाइन और नमक की पोटी बनाकर उससे बार २ स्वेद देवे। इस प्रकार करने से इन (छिन्नादि) ब्रणों में लाभ होता है ॥ ७ ॥

संतसया तप्तलोहपात्रसंयोगतः क्रमात् । हुं एव रक्तं रिथतं चापि शङ्खलाद्वादिभिर्भैरेत् ॥ ८ ॥

उन पोटलियों (पट्टसूत्र अथवा अजवायन नमक आदि की पोटलियों) को तपे हुए छोड़े के पात्र पर तपा कर सेक करना चाहिये और दूषित स्थिररक्त को सिंगी अथवा तुम्बी के द्वारा निकला देना चाहिये ॥ ८ ॥

सत्त्वत्वं वैथः सशूलं परिषेचयेत् । यष्टीमधुकमिश्रेण नातिशीतेन सर्पिषा ॥ ९ ॥

सद्यः क्षत शूलयुक्त ब्रण चिकित्सा—शीघ्र ही कटे हुए और पीड़ा वाले ब्रण में लेठी मधु मिले हुए वृत्त से जो अथवन्त क्षीतक नहीं हुआ हो उससे सिंचन करना चाहिये ॥ ९ ॥

क्षयायमधुराः क्षीताः क्षियाः सर्वास्तु योजयेत् । सद्योब्रणानां सप्ताहाप्यश्चातपूर्वोक्तमाचरेत् ॥ १० ॥

सामान्य विधि—सद्यो ब्रणों में क्षया रस और मधुर रस वाली ओधियों से युक्त सब प्रकार की ज्वाल चिकित्सा (किया) सात दिन तक करनी चाहिये पश्चात पूर्व कथित (ब्रण चिकित्सा में कथित) कियायें करनी चाहिये अर्थात् सद्यो ब्रण में सात दिन के पश्चात ब्रण रोग में कही हुई

सभी सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये, सात दिन तक ही क्षत किया करनी चाहिये ॥ ५ ॥
चिकित्सितं तु तरसव॑ सामान्यव्यवनाशनम् । आमाशयस्थै रुधिरे उमनं पद्यमुद्यते ॥

पकाशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम् ॥ ६ ॥

आमाशय और पकाशय के क्षत में चिकित्सा—आमाशय में क्षत होकर रुधिर से उसके अर जाने पर उमन करना पद्य कहा गया है और यदि पकाशय में क्षत होकर रुधिर भर गया हो तो निःसन्देह विरेचन देना चाहिये ॥ ६ ॥

वंशत्वगादिकाथः—

क्षायो वंशत्वगेरण्डश्वं द्युश्मभिदाकृतः । हिरुगुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्रावयेदसुक् ॥ १ ॥

वंशत्वगादिकाथ—बांस की छाल, परण की जड़, गोखरु और पाषाण भेद (पत्थरन्तर) सम भाग लेकर क्वाय कर उसमें शुद्ध हींग और सेंधा नमक के समान मिलित चूंग का प्रसेप देकर पान करने से क्षत होकर स्थित जो रक्त है वह गिर जाता है अर्थात् बाहर निकल जाता है ॥ १ ॥

यवादिः—

यवकोलकुलथानां निस्नेहेन रसेन च । भुजीतान्नं यवामूः वा पिवेत्यैन्धवसंयुताम् ॥ ११ ॥

यवादि योग—जौ, दैर तथा कुलथी इनके रस बना कर यिना रनेह के (घृतादि यिना भिलाये) अव्र के साथ भक्षण करने से अथवा जवामू में सेंधा नमक मिलाकर पान करने से क्षोष के रक्त निकल जाते हैं ॥ १ ॥

गौराद्यं वृत्तम्—

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च । प्रपौण्डरीकं हीवेरं नतं सुरतं च चन्दनम् ॥ १२ ॥

जातीनिःश्वपटोलं च करञ्जं कटुरोहिणी । मधुच्छिष्ठं मधूकं च महामेदा तथैव च ॥ १२ ॥

पञ्चवक्तलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् । एतद्वौरादिकं सर्पिः सर्वव्रणविशोधनम् ॥ १३ ॥

आयन्त्रुकाश्च सहजाः सुविशेष्यत्वा ये ब्रणाः । नाडीव्रणश्च विषमो नाशयेत्तान् न संशयः ॥

गौराद्य वृत्त—इवेत सर्सो, हरदी, मधीठ, जटामांसी, मुलाठी, पुण्डरिया काष, हालवेर, तगर, नागरमोथा, चन्दन, चमेली, नीम, परवर इनके पत्ते, करञ्ज, कुटकी, मोम, महुषा और महामेदा सम भाग ले कल्प कर द्ये प्रस्थ मूर्छित गोवृत एक प्रस्थ लेवे और पञ्चवक्तल (वट, पीपल, पाकर, गूलर और बेत के छाल) के क्वाय को वृत्त से चतुर्युण लेकर वृत्त सिद्ध कर लेवे। इस गौरादि वृत्त नामक वृत्त के व्यवहार से सब प्रकार के ब्रण झुट होते हैं और आगन्तुक, सहज, पुराने, नाडी और विषम प्रकार के ये सभी ब्रण अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

तिक्तादिवृत्तम्—

तिक्तासिवथनिशायष्टीनक्ताहुफलपत्तेवैः । पटोलमालतीनिःश्वपटेवर्ण्यं शृतं वृत्तम् ॥ १५ ॥

तिक्तादि वृत्त—कुटकी, मोम, हरदी, लेठी मधु और करञ्ज के फल तथा पश्लव (कोमल पत्ते) सम भाग लेकर कल्प कर उसके चतुर्युण गोवृत और वृत्त से चतुर्युण पटोलपत्र, मालती (चमेली) पत्ते और निःश्वपत्र के क्वाय को मिलाकर वृत्त सिद्ध कर लगाने से वर्णकारक होता है अर्थात् त्वचा पर लगाने से त्वचा का विकृत वर्ण नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

जात्यादित्वैलम्—

जातीनिःश्वपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः । सिंकथकं मधुकं कुटुं द्वे निशो कटुरोहिणी ॥ १६ ॥

मञ्जिष्ठा पञ्चकं लोध्रमभया नीलमुखपत्रम् । तुथ्यकं सारिवा शीजं नक्तमालस्य च विषेत् ॥

एतानि समभागानि पिष्ठवा तैलं विपाचयेत् । विषव्रणसमुपत्तौ स्फोटेषु च सकच्छुषु ॥ १६ ॥

कण्ठविसर्परोगेषु कीटदेषु सर्वथा । सथाशब्दप्रहारेषु दधविद्वलतेषु च ॥ ४ ॥
नस्तदन्तत्त्वते देहे तुष्टमासावधर्षणे । अद्वायार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ५ ॥

आत्यादि तैल—चमेली, नीम, परवर, और बड़े करज के पत्ते, गोम, सुलाइठी, कूठ, हरदी, दावहरदी, कुट्को, मधीठ, पदुमकाठ, लोध, हर्दा, नीलोपल, तूतिया, सारिवा और करज के छीब सम भाग ले कल्क कर उसके चौंगुना मूर्छित तिल का तेल और तेल से चौंगुना जल मिलाकर तेल पका कर लगाने से विषज ब्रण की उत्पत्ति, रसोट (फोड़े), कच्छु, कण्डु, विसर्प, सद प्रकार के कीड़ा आदिकों के काटने, सधप्रहार से कट जाने, आग से जल जाने, विद्ध तथा क्षत ब्रण, नख तथा दाँत से क्षत हो जाने, दूषित मास के घर्षण होने में लाभ करता है तथा यह तेल ब्रण का शोधन और रोगण भी करता है ॥ २-५ ॥

विपरीतमल्लतैलं चक्रदत्तात्—

सिन्दूरकुष्ठविषहित्तुरसोनचिव्रशाणाङ्ग्रिलाङ्गलिककरकविपक्षतैलम् ।
प्रासादमण्डनयुतश्च सतुर्थफेनः विलक्षणवणप्रशमने विपरीतमल्लः ॥ १ ॥
खड्गामिभातगुणगण्डमहोपदेशानादीवाचिचिक्कुष्ठपामाः ।
एताञ्जिहन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्त्वा ॥ २ ॥

विपरीत मल्ल तैल—सिन्दूर (जो व्याया लगाती है) कुष्ठ, विष (शुद्ध माठा लेलिया), हींग, लहसुन, चित्त को जड़, सरफोक और करिआरी तथा हरताक, शुद्ध तूतिया, शुद्ध और समुद्रफेन समभाग ले कल्क बनाकर उसके चौंगुना मूर्छित तिल का तेल और तेल से चौंगुना जल मिलाकर तेल सिद्धकर लेके, इस तेल का नाम 'विपरीत मल्ल तेल' है । इससे कलेद युक्त (आद्रं वा पूय देने वाले) ब्रण शमन होते हैं और इस तेल के व्यवहार से तलवार के आधात के ब्रण, अत्यन्त गुरुगण्ड (गण्डगण्ड) महा उपर्दश, नाडीवण, ब्रान्विचिकांक, कृष्ण, पामा इन सब रोगों को यह तेल नष्ट करता है । इसके व्यवहार के समय सोना, बैठना और भोजन आदि इच्छानुकूल करना चाहिये । (व्यवहार में इस योग में तेल सभी का लिया जाता है और पाठ में हरताल, तूतिया और समुद्रफेन वे पाठान्तर में नहीं हैं) ॥ १-२ ॥

दूर्वादितैलम्—

दूर्वास्वरससंसिद्धं तैलं करियस्तकेन च । दूर्वास्तिवचश्च करकेन प्रधानं व्यजरोपणम् ॥ ३ ॥
दूर्वादितैल—कबीला अथवा दावहरदी की त्वचा का कल्क और कल्क के चौंगुना मूर्छित तिल का तेल, तथा तेल से चौंगुना दूर्वा वास का स्वरस मिलाकर तेल सिद्ध कर व्यवहार में लाने से ब्रण को रोगन करने में यह प्रयोग है ॥ १ ॥

सप्तविशतिको गुणगुणः—

त्रिकटुत्रिकामुस्ताविडङ्गामृतवित्वकम् । पटोलं पिष्पलीमूलं हपुषा सुरदाह च ॥ १ ॥
तुग्रहुः पुष्करं च चयं विशाला रजनीद्वयम् । विंडं सौवर्चलं चारं सैन्धवं यज्ञपूष्की ॥ २ ॥
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावद्विगुणगुणगुणः । कोलप्रसाणां वटिकां भञ्जयेन्मधुना सह ॥ ३ ॥
कासं शासं तथा शोफमशास्यि च भग्नदरम् । हृस्त्रूलं पार्खशूलं च कुचिविस्तुगुदे रुजम् ॥
अशर्मीं मूत्रकुच्छं च अन्तर्बुद्धि तथा कूमीन् । चिरजवरोपसृष्टानां चतोपहतचेतसाम् ॥ ४ ॥
आनाहं च तथोन्मादं कुष्टान्यष्टोदराणि च । नाडीदुष्टगानस्वर्वाप्न्यमेहाजश्लीपदं तथा ॥ ५ ॥
सप्तविशतिको नाम गुणगुणः प्रथितो महान् । धन्वन्तरिकृतो ह्येष सर्वरोगनिशूदनः ॥ ६ ॥

सप्तविशति गुणगुण—सोठि, मरिच, पीपरि, बैंवरा, हर्दा, बहेडा, नागरमोथा, बायमिरण, युश्चि, चित्त की जड़, परवर के पत्ते, पिपरामूल, हाङ्कडेर, देवदाह, तेजवल के फक (तुम्हर), पुरकरमूल, चव्य, माहरि, हरदी, दावहरदी, विडनमक, सोचरनमक, यवाखार, सेवानमक और

गजपीपरि, प्रत्येक एक २ भाग ले चूर्ण कर उसके दोनों शुद्धगुणगुण मिला कूट कर एक कोण (ई कर्व) के प्रमाण की बटी बना मधु के साथ मक्षण करने से कास, व्यास, शोथ, अश्व, भग्नदर, हृदयशूल, पादवंशूल, कुक्षिशूल, वरिशूल और गुदाशूल, अश्मरी, मूत्रकुच्छ, अन्तर्बुद्धि और कूमि इनको नष्ट करता है तथा पुराने ज्वर से पीड़ित और क्षत से यीड़ित रोगियों के लिये हितकर है और आनाह, उन्माद, कुष्टरोग, आठो प्रकार के उदररोग, नाडीवण, दुष्टवण और सभी प्रकार के ब्रण, प्रमेह, दलोपद इन सब रोगों को यह सप्तविशति नाम का गुणगुण नष्ट करता है । सब रोगों को नष्ट करने वाला इसको धन्वन्तरि महाराज ने बनाया था ॥ १-७ ॥

अपथ्यम्—ब्रणे श्यथुरायासास्त्वं च रागश्च जागरात् ।

तैलं च सूक्ष्म दिवास्वापात्ते च मृग्युश्च मैतुवात् ॥ १ ॥

धन्वलं दधि च शाकं च मांसमानूपवारिजम् । जीर गुरुणि चाक्षानि वणी च परिचर्जयेत् ॥

सध्यवण में अपथ्य—ब्रणरोग में परिश्रम करने से शोथ हो जाता है इसलिये परिश्रम नहीं करना चाहिये और रात में जागे ते ब्रण में शोथ तथा राग अर्थात् पाक के लक्षण हो जाते हैं । इसलिये रात्रिभागरण भी ब्रण के रोगी को नहीं करना चाहिये, ब्रणरोग से दिन में सोने से शोथ, राग और पीड़ा होती है इसलिये दिनमें नहीं सोना चाहिये, तथा ब्रणरोग में मैतुन करने से शोथ, राग, पीड़ा और मृत्यु भी हो जाती है इसलिये मैतुन नहीं करना चाहिये, और अम्लरस, दैही, शाक (पत्रशाक), आनूप तथा चलोय जीवों का मांस, दूष और गुह अन्ध ये सब ब्रण के रोगों को त्याग देना चाहिये क्योंकि ये सब अपथ्य हैं इनको नहीं करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथाग्निदध्वरणनिदानमाह ।

तत्र दिनग्रंथं रूतं ब्राह्मणित्य दध्यमित्यहंति । अग्निसंतसो हि स्नेहः सूक्ष्मार्गानुसारिं त्वारवगादीन्दुप्रविश्याऽस्यु दहति । तस्मारस्नेहदध्येदधिका द्वो भवन्ति ।

तत्र प्लुष्टं दुर्दधं सम्यग्दध्यमतिश्वरमिति चतुर्विधं भवत्यिनदध्यम् । तत्र विवर्णमात्रं प्लुष्टसे तर्प्लुष्टम् । यत्रोत्तिष्ठिन्ति इकोटास्तीव्राद्वाहवेदनाश्चिराच्चोपशास्यन्ति तद्दुर्दध्यम् । सम्यग्दध्यमत्वगाढं तांकफलउर्णं सुस्थितं पूर्वललंगयुक्तं च । अतिदधं तु त्वच्मासावलम्बन-गात्रविश्लेषणं शिरास्नायुम्न्यस्थित्यापादनमतिमात्रवेदनाभवरदाहपिपासामूर्च्छाश्चासोप-द्रवा भवन्ति । हृति प्लुष्टादभेदेनाग्निदध्वश्चतुर्विधो वणो भवति ।

अग्निदध्य ब्रण निदान—दिनग्रंथ (स्नेहरुक) अथवा रुक्ष द्रव्यों को ग्रहण कर अग्नि दहन करता है अर्थात् दिनग्रंथ अथवा रुक्ष पदार्थों को अग्नि जलाता है । अग्नि से तपा हुआ स्नेह सूक्ष्ममांसों का अनुसरण करने वाला होने से त्वचा आदि में प्रवेश कर शीघ्र दहन करता है । इसलिये स्नेह (घृत-नेत्र आदि) से दधं होने पर अधिक पीड़ा होती है ।

अग्निदध्य के भेद—अग्निदध्य प्लुष्ट, दुर्दध, सम्यग्दध्य और अतिदध्य के भेद से चार प्रकार के होते हैं ।

प्लुष्ट अग्निदध्य के लक्षण—जिस अग्निदध्य में जलने पर केवल जला हुआ स्थान विवर्ण हो जावे उसे 'प्लुष्ट' अग्निदध्य कहते हैं ।

दुर्दध अग्निदध्य के लक्षण—जिस अग्निदध्य में जलने पर फकोले हो जावे, तीव्र दाह, तीव्र वेदना (पीड़ा) और बहुत समय के पश्चात शमन हो उसे दुर्दध नाम का अग्निदध्य कहते हैं ।

सम्यग्दध्य के लक्षण—जिस अग्निदध्य में भलीभांति और अधिक अच गया हो,

ताढ़ के फल के वर्ण का जले हुए स्थान का वर्ण हो, रितर तथा पहले कहे हुए (हुदंगवादि के) लक्षणों से युक्त हो (स्फोट, दाहादि हो) तो उसे 'सम्यग्रदृश' कहते हैं।

अतिदंगव के लक्षण—विस अनिदंगव में जलने पर खचा-मांस जल कर गाढ़ को ढोला कर दें, सिरा-स्नायु-सन्धि और अस्तियां जल कर नष्ट हो जावें, अत्यन्त पीड़ा हो, ज्वर, दाह, रुधा, मूर्छा और शास आदि उपद्रव हो उसे 'अतिदंगव' कहते हैं।

इस प्रकार पुष्टादि (प्लूट, दुर्दंग, सम्यग्रदृश और अतिदंगव) के भेद से अनिदंगव व्रण चार प्रकार के होते हैं।

अथाभिदंगवचिकित्सा ।

एषुदृश्याग्निप्रतपनं कायंमुखीं तथौदंगवे क्रियां कुर्यात् तु: पुनः ॥ १ ॥
दृतालेपनसेकांस्तु शीतानेवास्थ कारयेत् । अतिदंगवे विशरीणानि मांसान्युदस्य शीतलास्थ ॥
क्रियां कुर्याच्चूर्णकाले शालितप्तुलुकण्डनैः । तिन्दुक्यास्त्वरकषायं चृतमित्रैः प्रलेपयेत् ॥

पुष्टादि भेद से सामान्य चिकित्सा—'कुष्ट नामक अनिदंगव में आग पर बक्के हुए स्थान को तपाना अर्थात् सेकना चाहिये और उच्च आवश्यकों का व्यवहार करना चाहिये ।

दुर्दंग नामक अनिदंगव में शीतल तथा उष्ण क्रिया करनी, चाहिये, घृत का लेप तथा शीतल द्रव्यों का सिंचन करना चाहिये ।

अतिदंगव नामक अनिदंगव में गले हुए मांस आदि को अलग कर शीतल क्रिया करनी चाहिये । शाकि के चावलों के चूर्ण को लगाना (छिड़कना) चाहिये, तिन्दुक (तेंदू) की छाल के चूर्ण अथवा काथ में घृत मिलाकर लेप करना चाहिये ।

सम्यग्रदृश नामक अनिदंगव में वैद्य को चंश्लोचन, पाकड़ की छाल, लालचन्दन, गेल और गुरुचि के समान मिलित चूर्ण को घृत में मिलाकर लेप बना लेप करना चाहिये ॥ १-४ ॥

पथ्यादिलेपः—पथ्याकृमजीरकमधुसिक्कथकसर्जिमिश्रितं लेपात् ।

गच्छं घृतमपहरति च पावकजनितं चर्णं स्थाः ॥ १ ॥

पथ्यादि लेप—हरा का चूर्ण, कीचड़ की मिट्टी, जीरा का चूर्ण, मधु, मोम और राश समान ले चूर्ण कर गाय के घृत के साथ लेप बना कर लेप करने से अस्ति से बछ कर उपन्त्र हुए व्रण शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अन्तर्धूमकुठेरको दहनजं लेपाच्चेहन्ति व्रणः ।

मध्यरथस्य विशुष्कवलकलमवं चूर्णं तथा गुण्ठनादात् ।

अस्यकाद्विनिहन्ति तैलमस्तिं गण्डपदैः साचितं ।

पिष्टा शालमलितूलकर्जलगतां लेपात्तथा बालुकाम् ॥ २ ॥

कुठेरकादि योग—कुठेरक (थंत तुलसी) को अन्तर्धूम की विधि से भस्म करके घृत अथवा जल के साथ लेप बनाकर लेप करने से अस्ति से बछ कर उपन्त्र हुए व्रण नष्ट होते हैं । अस्त्रथ वृक्ष के सूखे वरकल को चूर्णकर लगाने से (छिड़कने से) अनिदंगव व्रण नष्ट होते हैं । गण्डपद (केचुवे) से सिद्ध क्रिया तैल (तैल पाक की विधि से सिद्ध क्रिया तिल का तैल) लगाने से सभी प्रकार के अनिदंगव व्रण नष्ट होते हैं और सेमर की रुई के साथ पानी के बालु की पीसकर लेप करने से अनिदंगव व्रण नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

दंगवभम्मचूर्णं तिलतैलाङ्कं प्रलेपनादचिरात् ।

हरति शिखिदाहदंगवं भूयोऽभ्यङ्काद् व्रणं चाऽऽशु ॥ ३ ॥

दंगवचिकित्सा—यव की जलाकर भस्मकर व्रण भस्मचूर्ण में तिल का तेल मिलाकर लेप करने से शीघ्र अस्ति से बछ कर हुए व्रण नष्ट होते हैं और इसके बारे मर्दन करने से अन्य व्रण भी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

मधुचिंडिष्टाद्यं तैलम्—

मधुचिंडिष्टं समधुकं लोध्रं सर्जरसं तथा । मूर्वाचन्दनमस्तिष्ठाः पिष्टा सर्विचिपाच्येत् ॥
सर्वेषामपि दध्यानां व्रणरोपणसुत्तमम् ॥ १ ॥

मधुचिंडिष्ठादि—मोम, मुलहठी, लोध, राल, मूर्वामूल, चन्दन (लाल) और मजीठ समग्रा ले कलक कर उसके चौगुना मूर्चिंडत गोघृत और घृत से चौगुना बछ मिला घृत तिल कर लगाने से सब प्रकार के अनिदंगव व्रणों का रोपण होता है ॥ १ ॥

पटोलीतैलम्—

सिद्धं कषायकहकास्यां पटोलयाः कहुतैलम् । दंगवचिकित्सावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ १ ॥

(१) पटोली तैल—परवर का कलक और काथ बनाकर उसके द्वारा कहवा तेल सिद्धकर अर्थात् परवर का कलक १ भाग, मूर्चिंडत कर तेल ४ भाग, परवर का काथ तेल के चौगुना लेकर सब को एकत्र कर तेल सिद्ध कर लगाने से अनिदंगव व्रण, पीड़ा, साव, दाह और फकोले ये सब नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

चन्दनाद्य यमकम्—

चन्दनं वटशङ्काश्च मस्तिष्ठा मधुकं तथा । प्रपौण्डरीकं दूर्वा च पतङ्गं धातकी तथा ॥ १ ॥

एतैरतैलं विपक्वन्यं गोचीरेण समायुतम् । अग्निदंगवणे श्रेष्ठं तत्त्वान्द्रोपणं परम् ॥ २ ॥

चन्दनादि यमक—लालचन्दन, वटकावसी, मर्जीठ, मुलहठी, पुण्डरियाकाठ, दूर्वा घास, पतंग और धाय के फूल समग्रा ले कलक कर उसके चौगुना मूर्चिंडत तिल का तेल और तेल से चौगुना धाय का दूध मिला तेल सिद्ध कर लगाने से अस्ति से बछकर हुए व्रण को रोपण करने में श्रेष्ठ है अर्थात् शीघ्र रोपण करता है । (इस योग में अन्यान्तर में दूर्वा के स्थान पर मूर्वा और गोदुर्व के साथ घृत को भी मिलाकर पाक करने का विधान है) ॥ १-२ ॥

उभे हरिद्रेष्ट मस्तिष्ठा मधुकं लोधकटफलं । कण्पिञ्चकमुमे मेदे लाङ्गलीमूलमेव च ॥ ३ ॥

पिष्टली त्रिफला चैव निदध्यन्तं च कवित्कम् । कपिलाया घृतं प्रस्तं पचेत्तद्विद्विष्टुं पथः ॥ ३ ॥

पलद्वयं च सिक्खस्य सिद्धे पूते च दापदेव् । लाङ्गलीकं घृतं नाम व्रणानां रोपणं परम् ॥ ३ ॥

अग्निदंगवे विसर्पं च कीटलतावणेषु च । चिरोत्थेषु च दुष्टेषु नाडीमर्माश्रितेषु च ॥ ४ ॥

लाङ्गलीघृत—हरदी, दारहरदी, मर्जीठ, मुलहठी, लोध, कायफर, कबीला, मेदा, महामेदा, कलिहारीमूल, पीपरि, बैंबरा, हरा, वैंबरा और नीमकी परियां ये प्रत्येक द्रव्य एक २ कर्षे लेकर कलक करे और मूर्चिंडत गोघृत एक प्रस्त, गाय का दूध घृत से दिग्युण (२ प्रस्त) लेकर एकत्र कर घृत सिद्ध कर उसमें मोम दो पक्के मिला देवे । यह 'लाङ्गली' नामक घृत व्रणों का रोपण करने में श्रेष्ठ है और अनिदंगव, विसर्प, कीट-लुतादि व्रण, पुराने तथा दुष्ट नाडी व्रण तथा मर्माश्रित व्रण इनमें यह लाभ करता है ॥ १-४ ॥

अग्निदंगवणे देवं धातकीचूर्णसुत्तमम् । अतसीतैलसमिक्षं वह्निदंगवणापहम् ॥ ५ ॥

धातकीदाह योग—अस्ति से बछकर हुए व्रण में धाय के फूलों का चूर्णकर तीसी के तेल में मिलाकर लगाने से अनिदंगव व्रण को नष्ट होने में उत्तम है ॥ ५ ॥

(१) पटोली तैल अन्यान्तर में पाटली तैल से प्रसिद्ध है जिसमें पटोल के स्थान में पाटल का ग्रहण है ।

अन्तर्धूमविद्वधं निफलाचूर्णं विमिथितं तैलैः । शौमैः शीघ्रं शमयस्य विनश्ननमाशु लेपेनाऽथ ॥
निफलादि योग—निफला को अन्धवूम विधि से मरम कर उस मरम चूर्ण को तीसी के तेल में मिलाकर लेप करने से अभिदृश ब्रण शीघ्र ही नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

पित्तचिद्रिवीसर्पशमनं लेपनादिकम् । अग्निदृशव्यग्रे सर्पयवग्रुजीत विचक्षणः ॥ ७ ॥
अन्य लेपादि—पित्तच विद्रवित तथा वीसर्प को शमन करने वाले लेप अभिदृश ब्रण में भक्ती-मांति प्रयुक्त करना चाहिये ॥ ७ ॥

सुधा पुरातनी दध्नो वारिणा परिपेषिता । लेपनं तैलदृशस्य विस्फोटाद्याधिनाशनम् ॥ ८ ॥
सुधा लेप—पुराने चूने को दही के पानी में पीसकर लेप करने से तेल से जैके इए विस्फोट (कफोले) आदि व्याधि नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

अधिस्थेषु च कर्तव्यमिदमाश्चयोतनं हितम् ।
शेलुरवक्त्रफलादार्चीकाथो रोचनया युतः । स्तुह्यर्क्तीरसिक्तेऽचिण गव्यं सर्विनिषेचयेत् ॥

अद्विदृश में योग—आंख में अश्वि से दहन होने पर (कफोले आदि पड़ने पर) लिसोडे की छाल, निफला और दाखदरदी तथा वंशलोचन इनका काथ करके आंख में डालने से लाभ होता है, थूंडर अथवा मदार के दूध आंख में पड़ने पर थूंडर तथा मदार के दूध यदि आंख में पढ़ गये हों तो गाय के धीसे सिंचन करना या आंख में छोड़ना चाहिये ॥ ९ ॥

अथ भगवन्निदानमाद् ।

भग्नं समासाद् द्विविधं हुताशकाण्डे च सन्त्वौ च हि तत्र सन्धौ ।
उपिष्ठविशिलष्टविवर्तितं च तिर्थक्षयतिविशमधश्च योद्धा ।

प्रसारणाकुञ्चनवर्तनोद्या दक्षपर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ॥ १ ॥

सामान्यतः सन्धिवगतस्य लिङ्गमुपिष्ठसन्धेः शयथुः समन्तात् ।
विशेषतो रात्रिभवा रुजश्च विशिलष्टे तौ च रुजा च निरयम् ॥ २ ॥

सम्भ का हैविध्य—हे अश्विवेश ! सम्भ ब्रण संक्षेपतः दो प्रकार का होता है, पहला काण्ड में सम्भ होना अर्थात् कहीं बीच से अस्थि का टूट जाना और दूसरा सन्धि में सम्भ होना अर्थात् सन्धिवगत पर का सम्बन्ध टूट जाना । इसमें सन्धिमध्य छ प्रकार के होते हैं जिनके ये नाम हैं—बृत्पिष्ठ, विशिलष्ट, विशिल, तिर्थक्, प्रतिक्षिप्त और अधःक्षिप्त ।

सन्धिमध्य के सामान्य लक्षण—ब्र उपिष्ठ में सम्भ ही जाता है तथा अङ्ग को पसारने, समेटने और परिवर्तन में (अङ्ग की परिस्थिति बदलने में) अस्थन्त पीड़ा होती है और स्थर्य नहीं सहन होता है यह सब सन्धिमध्य के सामान्य लक्षण है ॥

बृत्पिष्ठ के लक्षण—ब्र सन्धि में सम्भ ही जाता है तथा अङ्ग को पसारने, समेटने और परिवर्तन में (अङ्ग की परिस्थिति बदलने में) अस्थन्त पीड़ा होती है तो उसे 'बृत्पिष्ठ सन्धिमध्य' जानना चाहिये ॥

विशिलष्ट के लक्षण—जिस सन्धिमध्य में सन्धि विशिल हो जाती है सब और शोथ, रात को भी पीड़ा और विशेषतः नित्य ही पीड़ा होती है उसे 'विशिलष्ट' सन्धिमध्य कहना चाहिये ॥ १-२ ॥

विवर्तिते पारश्वरुजश्च तीव्रास्तिर्थगते तीव्ररुजो भवन्ति ।

विष्ठेऽतिश्लूलं विषभं च सवधनो विष्ठे रवधोक्तिविश्वट्ट सन्धेः ॥ ३ ॥

विवर्तित भग्न के लक्षण—जिस सन्धिमध्य में सन्धि विषरीत हो जाती है और पारश्व स्थान में तीव्र पीड़ा होती है उसे 'विवर्तित' सन्धिमध्य जानना चाहिये ।

तिर्थगत के लक्षण—जिस सन्धिमध्य में सन्धि की अस्थियाँ तिरछी हो जाती हैं और तीव्र पीड़ा होती है उसे 'तिर्थक्' सन्धिमध्य कहते हैं ॥

प्रतिक्षिप्त के लक्षण—जिस सन्धिमध्य में सन्धि की अस्थियाँ क्षिप्त (पृथक्) हो जाती हैं, अत्यन्त शूल होता है और अस्थियाँ विषम हो जाती हैं उसे 'प्रतिक्षिप्त' कहते हैं ॥

अधःक्षिप्त के लक्षण—जिस सन्धिमध्य में सन्धि की अस्थियाँ नीचे लटक जाती हैं, पीड़ा होती है और अस्थियाँ परस्पर विसा करती हैं उसे 'अधःक्षिप्त' कहते हैं ॥ ३ ॥

काण्डे स्वधः कर्कटकाश्च कर्णविचूर्णितं पिच्छतमस्थितं च ।

काण्डेषु भग्नं द्वितिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्षम् ॥ ४ ॥

द्विनन्द्रिया द्वादशाधा च काण्डे द्विस्ताङ्गता शोथहन्तिवृद्धिः ।

सर्वीडयमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहस्रनदनतोदशशुलः ॥ ५ ॥

सर्वाद्ववश्वस्थासु न शार्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ।

भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासातो नामभिरेव तुल्यम् ॥ ६ ॥

काण्डमध्य के भेदादि—काण्डमध्य कर्कटक, अश्वकण, विचूर्णित, पिच्छत, अस्थित (पाठान्तर में इसे 'अस्थिष्ठलिका' कहते हैं), काण्डमध्य, अतिपातित, मज्जागत, स्फुटित, वक्त और द्विधा छिप्त इन भेदों से बारह प्रकार के होते हैं । जिस काण्डमध्य में दोनों ओर से दबाने पर गाठ के ऐसा कर्कट के समान बठ जावे उसे 'कर्कटक', जिसमें अस्थि का माग अस्थि के कान के समान निकल जावे उसे 'अश्वकण', जिसमें अस्थि भीतर ही चूर्ण हो अर्थात् जो टटोलने से चूर्ण शात होवे उसे 'विचूर्णित' जिसमें अस्थि चिपटी हो जावे और शोथ ही उसे 'पिच्छत', जिसमें अस्थि वक्षल की भाँति पृथक् हो जावे उसे 'अस्थित' जिसमें काण्ड के भग्न होने से (दाय पैर की नली वा अस्थि विशेष के टूट जाने से) प्रसारण, अकुञ्चन आदि किया नहीं हो सके उसे 'काण्डमध्य', जिसमें अस्थि कटकर पृथक् हो जावे उसे 'अतिपातित', जिसमें अस्थि में अस्थि का अंश प्रविष्ट होकर मज्जा को निकाले उसे 'मज्जागत', जिसमें अस्थि फूटकर काटी से भरे हुए स्थान के समान पीड़ा देवे उसे 'स्फुटित', जिसमें अस्थि ढेढ़ी हो जावे उसे 'वक्त' जिसमें अस्थि फट कर लगी रहती है और जिसमें अस्थि कटकर पृथक् हो जाती है उसे इन दोनों को 'छिप्त' कहते हैं अर्थात् छिप्त दो प्रकार के होते हैं । इस प्रकार काण्डमध्य बारह प्रकार के होते हैं ॥

काण्डमध्य के सामान्य लक्षण—जिस मध्य में अङ्ग में शिथिलता, शोथ, पीड़ा की अतिवृद्धि, भग्न स्थान पर दबाने से शब्द होना, स्पर्श में असहिष्णुता, स्पन्दन (फरकना), तोद (सूर्य तुम्हाने) वी पीड़ा और शूल की पीड़ा तथा किसी भी अवस्था में सुख नहीं मिलना ये सब लक्षण हो उसे 'काण्डमध्य' जानना चाहिये ।

काण्डमध्य की बाध्यता (बहुविधत्व) —काण्डमध्य बहुत प्रकार के होते हैं इनके संक्षेप से भग्न के अनुरूप ही नाम जानने चाहिये ॥

(काण्डमध्य बहुत से नलक, कपाल, बल्य, तरुण और इच्छ इन नामों की अस्थियों का विष होता है अर्थात् इन्हीं के भग्न को भेदानुसार काण्डमध्य समझना चाहिये और जिस प्रकार ये अस्थियों भग्न हो उसी प्रकार उनका नाम समझना चाहिये, बारह भेद तो केवल गणना मात्र के हैं, इनके अनेक भेद हैं) ॥ ४-६ ॥

अष्टपाशिनोऽनामवतो जन्तोर्यातामकस्य च । उपद्रवैर्चाँ जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ॥

भग्न की कहसुधायता—अल्प आहार (शक्ति से कम) करने वाले और कुपथ्य करने वाले, वात प्रकृति वाले और उपद्रवों से युक्त (जवर, आम्लान, मलमूत्र का अवरोध आदि उपद्रवों से युक्त) मनुष्य का भग्न वड़े कटे से सिद्ध होता है ॥ ७ ॥

मिळं कपालं कटयाँ तु सन्धिमध्यसं तथा एयुतम् । भग्नं प्रतिपिष्ठं तु बज्जयेष्व विचक्षणः ॥ ८ ॥

असाध्य कक्षण—कपाळ नाम की अस्थि के भग्न होने पर, कटि देश की अस्थि के भग्न होने पर, कटि देश की सन्धि के टूट जाने पर, कटि देश की अस्थि के टूट कर नीचे गिर जाने पर और जघन (कुड़े) की अस्थि के प्रतिपिण्ड (पिण्ड-उत्तिपिण्डादि) होने पर वैष्व उसे त्याग देवे अर्थात् इन अस्थियों के सम होने पर उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये । ये असाध्य कक्षण हैं ॥

इलेष रहित (सन्धिवन्धनों से रहित) कपाल नाम की अस्थि (जो अस्थि जानु, कटि, स्कन्ध, गण्ड, तालु, शङ्ख, वैष्वण और मस्तक की हैं) को अर्थात् कपाल भग्न को लालाट के अस्थि चूर्ण होने पर, स्तनों के मध्य की (छाती की) अस्थि के भग्न होने पर और शङ्ख, पौठ तथा सिर की अस्थि के भग्न होने पर त्याग देना चाहिये अर्थात् ये असाध्य हैं ॥ ९ ॥

सम्यक्संहितमप्यस्थिद्वुर्निःसेपनिवन्धनात् । सङ्कुमोभाद्वाऽपि यद्गृच्छेद्विक्षियां तत्त्वं वज्ज्येत् ॥ १० ॥

भग्न के कारण असाध्य—भग्न देह की अस्थि भली भाँति जोड़ देने पर भी दुर्निःसेप से पर भी बन्धन में विकार हो जाने से (बन्धन उचित नहीं होने से) और भली भाँति जोड़ सब उचित होते हुए भी संशोभ (आवात आदि) होने से यदि भग्न में विकार था जावे तो उसको त्याग देना चाहिये अर्थात् ये फिर नहीं जुटते अतः असाध्य हैं ॥ १० ॥

तद्वाणास्थीनि नाम्यन्ते भिद्यन्ते नलकान्ति तु । कपालानि विभिद्यन्ते रुक्टनित रुचकानि च ॥

तद्वाण नाम की (नाक-कान-आँख-कोषों और ग्रीवा की) अस्थि नन्द्र (टेढ़ी) हो जाती है (इनका वक्त होना ही भग्न है), नलक नाम की अस्थि फूट जाती है, कपाल नाम की अस्थि डुकड़े २ हो जाती है और रुचक तथा बलय नाम की अस्थियां फूट जाती हैं । इनके इन्हीं प्रकारों को भग्न कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ भग्नचिकित्सा ।

भग्नान्युपचरेद्वीमान्सेकलेपनवन्धनैः । शीतलैरेव विविधैः प्रयोगैश्च समीरितैः ॥ १ ॥

भग्न की चिकित्सा—भग्न हुए ग्रन्थों पर बुद्धिमान् वैष्व सेक (ओषधियों के रसों का सिंचन), लेप और बन्धन करे तथा अनेक प्रकार के शीतल प्रयोगों को कार्य में लावे अर्थात् इस प्रकार की चिकित्सा से भग्न में लाभ होता है ॥ १ ॥

तत्रातिशिथिले बन्धे सन्धिस्थैर्यं न जायते । गाढेनापि त्वगादीनां शोफो रुक्षपाक एव च ॥

तस्मात्साक्षाराणं बन्धं भग्ने शासन्ति सद्विदः ॥ २ ॥

बन्धन विधान—भग्न स्थान को जोड़ कर यदि बन्धन शिथेण बाँधा जावे (ढोला रहे) तो सन्धि रितर नहीं रहती है तथा यदि बन्धन गाढ़ (कठिन) बाँधा जावे तो त्वचा आदि में शोथ पाक आदि हो जाते हैं इसलिये भग्न स्थान को जोड़ कर साक्षात् बन्धन (न ढोला न कठिन) बाँधना चाहिये । यह बैधों ने कहा है ॥ २ ॥

आदौ भग्नं विविधा तु पेत्रयेऽक्षीतलाम्बुद्ना । पद्मेनाऽऽलेपनं कुर्याद्बन्धनं च कुशान्वितम् ॥

प्रथम भग्न की जान कर शीतल जल से सिंचन करना चाहिये, पक्क (कीवड़) का लेप करना चाहिये और कुशा से बाँध देना चाहिये ॥ ३ ॥

अवनामितमुक्षास्येकुञ्जतं चावपीडयेत् । चिसं द्विघाऽपि च स्थाने संस्थाप्य चिधिमाचरेत् ॥ ४ ॥

जो भग्न होकर अस्थि नीचे झुक गयी हो तो उसको कम्पर डाका कर मिला देवे और जो ऊपर उठ गयी हो उसे नीचे झुका कर मिला देवे और बाँध देवे तथा ऊपर अस्थिवा नीचे की ओर गिरी अस्थि को उचित स्थान पर रखकर बाँध देवे ॥ ४ ॥

आलेपनार्थं मसिष्ठामधुर्कं चाइलपेषितम् । शतशौत्रैतूतोन्मश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् ॥ ५ ॥

भग्न पर भज्जीठ, मुक्काठी समान लेकर काँची के साथ पीसकर लेप करना चाहिये और सौ बार का बोया हुआ धृत शालिधान्धों को पीसकर उसमें मिलाकर लेप करना चाहिये । (धृत का पृथक् लेप भी लाभ करता है) ॥ ५ ॥

न्यग्रोधादिकषायं तु शीतलं परिषेचने । पद्ममूलीविपक्वं तु शीरं दद्यारसवेदने ॥ ६ ॥

न्यग्रोधादिगण की ओषधियों के क्वात्र को शीतल कर के भग्न पर सिंचन करना चाहिये और लघु पश्चमूल की ओषधियों से शीर पाक की विधि शीर सिद्ध कर पीड़ा युक्त भग्न में पीने को देना चाहिये ॥ ६ ॥

मूलं श्वालविद्वायाः षीत्वा मांसरसेन तु । चूर्णकृत्य तु सप्ताहादस्थिभङ्गमपोहति ॥ ७ ॥

श्वालविद्वा मूलं योग—श्वालविद्वा (पृष्ठपर्णी) के मूल को ले चूर्ण कर मांसरस के अनुपान से पान करने से अस्थिभङ्ग रोग अर्थात् भग्नवृण नष्ट होते हैं (दूटी हुई अस्थि जुट जाती है) ॥ ७ ॥

आभाचूर्णं मधुयुतमस्थिभङ्गेन्यहैं पिवेत् । पीत्वा चास्थि अवेत्सम्यग्वज्ञसारनिमं दृढम् ॥ ८ ॥

आभादियोग—बदूक की छात का चूर्ण मधु मिलाकर अस्थिभङ्ग में ३ दिन पीना चाहिये इसके पीने से अस्थि ठीक हो जाती है और वज्रसार के समान इड़ हो जाती है ॥ ८ ॥

गृष्णिशीरं सप्तपिण्डं मधुयुताष्वसाधितम् । शीतलं लाल्हया युक्तं प्रातर्भग्ने पिवेत्सरः ॥ ९ ॥

गृष्णिशीर योग—पहली बार प्रसूता गौ का दूध मधुर वर्ग की ओषधियों द्वारा सिद्ध कर धृत मिलाकर शीतल कर उसमें छात के चूर्ण का प्रक्षेप देकर प्रातःकाल अस्थिभग्न वाले मनुष्य को पान करना चाहिये । इससे अस्थिसन्धान होता है ॥ ९ ॥

सशूतं चास्थिसन्धानं लाल्हारोधूममर्जुनम् । सन्धिमुक्तेऽस्थिभग्ने च पिवेत्स्वीरेण मानवः ॥

लाल्हागोद्यमादि—लाल्ह का चूर्ण, गेहूँ का चूर्ण और अजुन वृक्ष की छाल का चूर्ण समान ले धृत मिलाकर सन्धिमुक्त (सन्धिभग्न) और अस्थिभग्न (काण्डभग्न) में मनुष्य दूध के अनुपान से पान करे तो भग्न का सन्धान होता है ॥ १० ॥

रसोनमधुलाल्हायसिताकलं सुमित्रितम् । छिन्नभित्तच्युतास्थीनां सन्धानमचिराज्ञवेत् ॥

रसोनादि योग—छहसुन, मधु, लाल्ह, धृत और मिश्री समान ले कल्प वनाकर सेवन करने से छिन्न-भिन्न और च्युत (पृथक्) हुई अस्थियों का शीघ्र सन्धान होता है ॥ ११ ॥

लाल्हायुग्मुकुः—

लाल्हास्थिसंहृक्कुभाषणन्वचूर्णीकृता नागवलाः पुरश्च ।

सरभग्नमुक्तास्थिर्जन्मनिहन्यादङ्गानि कुर्याद्कुलिशोपमानि ॥ १ ॥

लाल्ह गुरगुलु लाल्ह, इसंवारी (इडजीरवा), अजुन की छात, अस्थग्न, नागवला और शुद (१) गुरगुलु इन सबको सम भाग लेकर चूर्णकर मिलाकर सेवन से सम्भग्न (दूटी हुई) अस्थि शीघ्र सन्धान होता है और मुक्त (सन्धिमुक्त) इन दोनों की पीड़ा का नाश होता है अर्थात् अङ्ग वज्र के समान होते हैं ॥ १ ॥

सवणस्य तु भग्नस्य द्रवणः सप्तिर्थूत्तरः ।

प्रतिसार्थः कवाचैस्तु शेषं भग्नवद्वाचरेत् । वातस्थिविनिर्दिष्टं स्नेहं तत्रापि योजयेत् ॥ २ ॥

सप्तव्रण भग्न की चिकित्सा—प्रग्नयुक्त भग्न में अर्थात् विस भग्न में क्षत के कारण व्रण भी हो

(१) यहाँ गुरगुल समान लिया गया है परन्तु सब चूर्ण के समान-गुरगुल विधि से लेना चाहिये ।

गया हो उसमें व्रण शोधक कथायों (कार्यों) में घृत और मधु मिला कर पहले प्रतिसारण करना चाहिये पश्चात् भग्न की किया करनी चाहिये और वात-व्यादि में कहे हुए तैल-घृत आदि स्तेंडों का प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

वर्षिलजभस्मादि—

वस्त्रिजं भस्म मधुना पातर्थं हितभोगिना । सनिभभङ्गेऽस्थिभङ्गे च विशेषेण प्रशस्यते ॥ ३ ॥

वर्षिलज भस्मादियोग—मरिच का विषिपूर्वक भस्म बना कर मधु के अनुपान से पान करने तथा पथ्य सेवन करने से सन्धिभग्न और अस्थिभग्न में विशेष लाभ होता है ॥ ३ ॥

आभाद्यो गुग्गुलः—

आभाफलत्रिकद्योगः सर्वैरेतैः समाशकैः । हुलयं गुग्गुलुना योउर्यं भग्नसन्धिप्रसाधकम् ॥ ४ ॥

आभाद्य गुग्गुल—बबूल की छाल, हर्दी, बड़ेहा, आँवला, सौंठि, मरिच, पीपरि प्रत्येक समान शुद्ध गुग्गुल मिलाकर मर्दन कर सेवन करने से भग्न का सन्धान होता है ॥ ४ ॥

गोधूमप्रयोगो—

ईच्छिद्वयगोधूमचूर्णं पीतं समाचिकम् । कटिसन्धिषु भग्नेषु भग्नेष्वस्थिषु पूजितम् ॥ ५ ॥

अविदाहिभरजीव्य पिटकैः समुपाचरेत् ॥ ५ ॥

गोधूम प्रयोग—थोड़े जले आधा भूजे गेहूँ का चूर्ण कर मधु के अनुपान से पान करने से कटिसन्धि का भग्न और अस्थिभग्न (अस्थिओ टेडा होना) जलमें लाभ करता है ॥ ५-२ ॥

मांस मांसरसं चीरं सपियूर्ध्वं च मुद्रजय् । वृंहणं चाक्षपानं च सन्धिभग्नान्य दापत्रेत् ॥ ६ ॥

पथ्यापथ्य—अविदाही अज्ञ (जिसके सेवन से दाह नहीं हो), पिण्डी आदि, मांस तथा मांस-रस, दूध, घृत और मूंग का जूस तथा वृंहण अज्ञ और पेयादि सन्धिभग्न में देना चाहिये अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ ६ ॥

लवणं कटुकं खारं साउलं मेशुनमातपम् । व्यायामं च न देवेत भग्नोरुचान्नमेव च ॥ ७ ॥

परन्तु नम्रक, कटुरस पदार्थ, क्षारद्रव्य, अम्लरस वाले द्रव्य, मैथुन, धूप-सेवा, व्यायाम और रुक्ष अज्ञ नहीं सेवन करना चाहिये ॥ ७ ॥

बालानां तरुणानां च भग्नान्याशु भवन्ति वै ।

समीचीनानि वृद्धानां भग्नानां न विशेषतः ॥ ८ ॥

बालक तथा तरुण मनुष्यों के भग्न का शीघ्र सन्धान होता है अर्थात् नवीन रक्त का प्रवाह इनसे से शीघ्र जुट जाता है, परन्तु वृद्धों का भग्न विशेष कर नहीं जुटता है अथवा शीघ्र नहीं जुटता है ॥ ८ ॥

ध्यथ नाडीवणनिदानम् ।

यः शोफमाममतिपक्षमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूर्यमसामुवृत्तः ।

अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्थं तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूर्यः ॥ ९ ॥

नाडीव्रण की सम्प्रसिः—जो अज्ञ (मूर्छे) रोगी अथवा वैद्य एके हुए शोध को (व्रण को) आम समझ कर उसकी उपेक्षा करता है अर्थात् पूर्य-नित्सारक किया नहीं करता है अथवा जो अस्थन्त पूर्य वाले व्रण की उपेक्षा करता है (शोधनादि कर्म नहीं करता है) और जो रोगी असाधुवृत्त है (अद्वित आहार-विहार करने वाला है) उसका वह अवश्य पूर्य पूर्वकथित स्थानों (त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि, शोष और मर्द) को विद्धीण कर भीतर प्रवेष करता है ॥ ९ ॥

तस्यातिमात्रगमनादूर्गतिश्वयते तु नाडीव यद्यहति तेन मता तु नाडी ॥ १ ॥

पूर्य की अन्तर्गति अथवा—नाडी व्रण की निश्चिति—उस (उक्त स्थान) को विदीण करने वाले पूर्य के अतिमात्रा में गमन करने से यति हो जाती है (मार्ग बन जाता है) और उससे (गति से कारण) वह पूर्य नाडी की तरह बहता है इसकिये उसे नाडी कहा जाता है ॥ २ ॥

संख्यामाद—दोषेभिरभिर्भवति सा पृथगेकश्च समूर्च्छितैरपि च शश्यनिमित्तोऽन्या ।

नाडी व्रण की संख्या—नाडीव्रण वातादि दोषों के इथक् २ कोप से ३, सन्धिप्राप्त से एक और शश्य आदि के गढ़ जाने के कारण (आगन्तुक) एक इस प्रकार पौचं मेद के होते हैं । (सुश्वतादि में द्वन्द्व भी माना गया है जिससे ८ मेद का नाडीव्रण होता है) ॥ ३ ॥

वातिकामाद—तत्रानिलापस्थसूचमसुखी सशूला केनानुचिद्धमित्क्रियते च प्राप्तु ॥ ४ ॥

वातिक नाडीव्रण—जिस नाडी व्रण में कवंशता हो, छिद्र सूक्ष्म हो, शुक्र संदित केन से युक्त (शाग युक्त) स्नाव और रात में अधिक स्नाव हो वसे वात के कोप का जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पित्तकामाद—

पित्तात् तुडुवरकरी अमदाहयुक्ता पित्तं च्छव्यविक्षुणमहःसु चापि ॥ ६ ॥

पेतिक नाडी व्रण—जिस नाडी व्रण में अधिक तूषा, ज्वर, भ्रम, दाह, पित्त युक्त अथवा पीत वर्ण का उष्ण स्नाव तथा दिन में अधिक स्नाव हो उसे पित्त के कोप का जानना चाहिये ॥ ६ ॥

द्वेषमकामाद—

ज्येष्ठा कफाद् बहु घनार्जुनपिच्छिलाल्पा स्तव्या सकण्डुरक्षा रजनीप्रवृद्धा ॥ ७ ॥

कफज नाडी व्रण—जिस नाडी व्रण में अस्थन्त घना (गाढ़ा), इवेत वर्ण का तथा पिच्छिल लाल्प होता है, स्तव्यता, कण्डु और पीड़ा कम होती है और रात में इदि होती है उसे कफ के कोप का जानना चाहिये ॥ ७ ॥

द्विविदोषजामाद—

दोषद्वयाभिहितलघुणदर्शनेन तिसो गतीष्वितिकप्रभवाश्वतु विशात् ॥ ८ ॥

दिविदोषज नाडी व्रण—जिस नाडी व्रण में दो दोषों के मिलित लक्षण दिखाई देवे उसे द्वन्द्व और जिसमें तीनों दोषों के मिलित लक्षण दिखाई देवे उसे द्विदोषज जानना चाहिये ॥ ८ ॥

स्वाहूवरस्थसमूच्छनवक्षब्रोषा यस्यां भद्रस्थभिहितानि च लक्षणानि ।

तामादिशेषपवनपित्तकफ्रकोपाद्वारा गतिं त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ॥ ९ ॥

सन्निपातज नाडी व्रण—जिस नाडी व्रण में दाह, ज्वर, स्नास, मूर्छा और मुख शोष (मुंह का सूखना) हों और वात, पित्त तथा कफ के नाडी व्रण के लक्षण जो पहले कह चुके हैं वे सब प्रकट हों उसे सन्निपातज नाडीव्रण कहते हैं । वात, पित्त और कफ के (सन्निपात के) घोर प्रकोप वाला कालरात्रि के समान यह नाडीव्रण प्राणाशक होता है ॥ ९ ॥

शश्यनिमित्तजामाद—

नष्टं कथश्चिद्गुमार्गमुद्दीरितेषु स्थानेषु शश्यमचिरेण गतिं करोति ।

सा फेनिलं मधितपुरुणमसूचिविमित्रं त्वचं करोति सहसा सरुजा च निष्यन् ॥ १० ॥

शश्यज नाडी व्रण—यदि कदाचित् त्वचा आदि पूर्वोक्त स्थानों से शश्य आदि (सूची कण्टकादि) गढ़ जावे और उसमें से निकल नहीं सके तो वह योड़े ही दिनों में वा शीघ्र ही चक्कन-शील होकर (पक कर पूर्वकथित नियमानुसार त्वचा मांसादि को विदीण कर भीतर प्रवेष करते हुए यति (मार्ग) कर) नाडी व्रण को उत्पन्न कर देता है, जिसमें से फेनिल शश्य के कारण उन्मयित रक्त संचार अधिक होने के कारण उष्ण तथा रक्त मिथित स्नाव को सहसा निकालता है और उसमें नित्य पीड़ा होती है ॥ १० ॥

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिद्धेच्छेषाक्षतवः स्वलु यरनसाध्याः ॥ २ ॥

नाडी व्रण के साध्यासाध्यता—नाडीत्रण त्रिदोषव असाध्य होता है और शेष चार यरन करने पर साध्य होते हैं ॥ २ ॥

अथ नाडीत्रणचिकित्सा ।

नाडीनां गतिमन्त्रीष्य शस्त्रेणोरपाठव कर्मवित् ।

सर्व व्रणक्रमं कुर्याद्व्योधनारोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाडीत्रण चिकित्सा—क्रियाकुशल वैद्य नाडी व्रण की अति प्रवाह को देखकर शख से ऊर कर के सब प्रकार की शोषण-रोपण आदि क्रिया जो व्रण रोग में कही गयी है वह करे ॥ कृशदुर्बलभीरुणां नाडी मर्माश्रिता तु या । चारसूत्रेण संचिन्द्रन्याज शस्त्रेण कदाचन ॥ २ ॥

कृशादि के क्रिये शख निषेध—कृश, निर्वल तथा भीरु मनुष्यों के नाडी व्रण तथा मर्म स्थान के अवित व्रण हो उसे भी क्षार सूत्रादि से छेदन करना चाहिये । कभी शख से नहीं छेदना (चीरना) चाहिये ॥ २ ॥

नाडी वातकृत्ता साधु पाटितां लेपयेद्विषक् । प्रत्यक्तुष्टीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥

वातज नाडी व्रण चिकित्सा—वात से उत्पन्न नाडी व्रण को भलो भाँति चौरफाइ कर उसमें अपासार्ग के बीज तथा तिळ को पीसकर बनाये हुए लेप को लगाना चाहिये ॥ ३ ॥

पैसिकी तिलमजिष्ठानागदन्तीनिशाद्वयैः ।

पित्तज नाडी व्रण चिकित्सा—पित्त से उत्पन्न नाडी व्रण को चौरकर उसमें तिळ, मैंजीठ, नागदन्ती (नागदमन) और हरदी की समान ले पीसकर लेप करना चाहिये ।

रैलैषिमीर्कीं तिलयष्टाद्वन्द्वनिकुञ्जमारिष्टसन्ध्यैः ॥ ४ ॥

कफज नाडी व्रण चिकित्सा—कफज नाडी व्रण को चौरकर उसमें तिळ, जेठीमधु, दन्ती-मूल, नीम की छाल तथा सेंधा नमक सब समान मिलाकर लेप बनाकर लेप करना चाहिये ॥ ५ ॥

शस्त्रयज्ञां तिलमजिष्ठामध्वायद्वयैलेपयेनमुद्दुः । वारग्वधनिशाकोलचूर्णियज्ञौद्रसंयुता ॥ शस्त्रयज्ञ नाडी व्रण चिकित्सा—शस्त्रयज्ञ नाडी व्रण को चौर कर शुद्ध कर (शास्त्रादि निकाल शोषन कर) तिळ, मैंजीठ, मधु और घृत का लेप बनाकर बार २ लेप करना चाहिये ॥ ५ ॥

सूत्रवर्तिर्वये षोडया शोधनी गतिनाशिनी ॥ ५ ॥

सामान्य चिकित्सा—अमलतास की जड़, हरदी और वैर का चूर्ण (पाठान्तर में कोल के स्थान में काला है जिससे निशोथ का चूर्ण ब्रह्म है) समान लेकर घृत और मधु मिलाकर सूत में लपेट कर नाडी व्रण में देने से (वक्ती देने से) शोषन होता है और स्नावादि का नाश होता है ॥ ५ ॥

जात्यर्कशस्याककरञ्जदन्तीसिन्धूरूपसौवच्छयावश्यकैः ।

वर्तिः कृता हन्त्यचिरेण नाडीः स्तुक्षीरपिष्ठा सह संन्धवेन ॥ ६ ॥

जात्यादि वर्ति—चमेली के पत्ते, मदार की जड़ वा पत्ते, अमलतास की जड़, करंज, दन्ती-मूल, सेंधा नमक, सोचर नमक, यवाखार इनको समान ले चूर्ण कर उसमें सेंदृह का दूध और सेंधा नमक मिलाकर बच्ची बनाकर नाडी व्रण में देने से शोषन नाडी व्रण नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

समूलपत्रां निरुण्डीं षोडयित्वा रसं हरेत् । तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ ७ ॥

निरुण्डी तैल—निरुण्डी को मूल पत्र सहित कुचल कर रस निकाल कर उसमें समान भाग तिलका तैल मिलाकर विषयूक वका कर इस तैल के व्यवहार से नाडी व्रण और दृष्ट व्रण नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

गुणगुलुक्रिफलाद्वयोर्वैः समर्पशशाऽऽज्ञयोजितः । नाडी शुद्धव्रणं चापि ज्येदपि भगन्दरम् ॥ ८ ॥

गुणगुलु योग—शुद्ध गुणगुलु, आवला, इर्दा, बदेहा, सौंठि, मरिच, पीपरि, सम भाग लेकर मदनं कर घृत मिलाकर सेवन करने से नाडी व्रण, दृष्ट व्रण और भगन्दर को भी नष्ट करता है । (ग्रन्थान्तर या गुणगुलु विषि में त्रिकटु क्रिफला चूर्ण के समान गुणगुल देने का विवान है) ॥ ८ ॥

अथ सर्वब्रगरोगाणां पथ्यापथ्यम् ।

यववश्टिकगोधूमाः पुराणाः सितशालयः । मसूरतुवरीमुद्धूयश्च मधुशर्करा ॥ १ ॥

विलेपी लाजमण्डश्च जाङ्गला मृगपचिणः । घृतं तैलं पदोलं च वेत्रां बालमूलकम् ॥ २ ॥

वातांकं कारवेलं च कक्षोर्टं तण्डुलीयकम् । एतत्पथ्यं जरैः सेड्यं यथावस्थं यथामलयम् ॥

ज्ञागशोथे व्रणे सूक्ष्मे व्रणे नाडीवर्णेऽपि च ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—जौ, साठी के चावल, गेहूं, पुराने इवेत वर्ण के शालिवान का चावल, मसूर, अरहर और मूंग का यूष, मधुशर्करा (मधु से बनी चीनी), विलेपी, लावा (लाव की खील) का मांड, जाङ्गल मृग तथा जांगल पक्षियों का मांस, घृत, तेल, परचर, वेत का अग्रमाग, छोटी, कोमळ मूळी, वैगन, करैली, वाला कोडा चौराई इन सभ से मनुष्य अवस्था और वल के अनुसार व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण और नाडी व्रण में भी पथ्य में सेवन करे ॥ १-३ ॥

रुचालशीतं लवणं व्यवायमायासामुच्चैः परिभाषणं च ।

प्रियासमालोकनमह्नि निद्रां प्रजागरं चलक्षमणं नितान्तम् ॥ ४ ॥

शोकं विशदाशामंगुपानं ताम्बूलशाकानि च पत्रवन्निति ।

आज्ञाहूङ्मं मासमसालयमन्तीविवर्जयेत्संततमप्रमत्तः ॥ ५ ॥

रुक्ष पदार्थं, अम्ल रस वाले पदार्थं, शीतक द्रव्य, लवण, मैथुन, परिक्षम, उच्च त्वर से बोलना, जियों को देखना (काम इंडिकरना), दिन में सोना, रात में जागना, अधिक अमण करना, शोक करना, सभ मिरद्द भोजन करना, अधिक बल पीना, पान खाना, पत्ते वाले साग खाना, जांगल के अतिरिक्त अन्य (आनूपादि) जीवों का मांस खाना, असाम्य (अद्वितकर) अन्य का भोजन करना वे सब साधानी के साथ स्थान देवे ॥ ४-५ ॥

अथ भगन्दरनिदानम् ।

गुदस्य दृथजूले देत्रे पाशवंतः पिदिकाऽतिकृत् । भिज्ञा भगन्दरो ज्येः स च पञ्चविधो मतः ॥

भगन्दर का सामान्य रूप—गुदा के दो अगुल के आसपास के स्थान में पिदिका होती है, वह पीड़ा करती है और जड़ कूटी है तब भगन्दर कही जाती है । (भग को दारण करने वाली वह पीड़िका होती है इसलिए उसे 'भगन्दर' कहते हैं और यद्याँ भग शब्द से गुदा बस्ति का भी ग्रहण होता है) । वह भगन्दर पांच प्रकार का होता है ॥ १ ॥

संख्यामाह—

वातपित्तकफैवेधा चतुर्थः सञ्चिपाततः । उन्मागर्गः पञ्चमः स्थादेवं पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥

भगन्दर की संख्या—वात, पित्त और कफ के पृथक् २ कोष से तीन और चौथा सञ्चिपात से तथा पांचवा उन्मागर्ग अर्थात् शस्त्रादि के लगाने के कारण, इस प्रकार पांच सेव का भगन्दर होता है ॥ २ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरजादयः । भवन्ति पूर्वरूपपाणि भविष्यन्ति भगन्दरे ॥ ३ ॥

भगन्दर का पूर्वरूप—जब भगन्दर होने को होता है तब प्रथम कटि के कपाल में अर्थात्

कटिदेश में जो कपाकास्ति है उसमें सूर्य तुषाने के समान पीड़ा गुदा में दाढ़, कण्ठ और पीड़ा आदि होती है ॥ ३ ॥

वातिकमाह—कथाय रुचैरतिकोपितोऽनिलस्वपानदेशे पिटिकां करोति सा ।

उपेच्छात्पाकमुपैति दाढ़गं रुजा च भिन्नाऽहुणफेत्वाहिनी ॥ ४ ॥

तत्राऽग्नमो मूलपुरीषरेतसां वृण्णरेनकैः शतपोनकं वदेत् ।

वातिक भगन्दर—कथाय रस वाले और रुक्ष जो अत्यन्त वायु को कुपित करने वाले द्रव्य हैं उनके अतिसेवन से कुपित हुआ वायु गुदा स्थान में पिटिका उत्पन्न कर देता है उसकी यदि उपेच्छा की जावे (सेकादि किया कर दवाया नहीं जावे) तो वह पाक जाती है, अधिक पीड़ा करती है तथा जब वह फूटती है तब उसमें से रक्तदण्ड का फेन वहता है और मूत्र, पुरीष और शुक्र निकलने लगता है तथा अनेक व्रण (अनेक छिद्रोंवाले) हो जाते हैं । इस लक्षण वाले वातिक भगन्दर को 'शतपोनक' कहते हैं ॥ ४-४२ ॥

पितृबमाह—प्रकोपणैः पितृमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिटिकां गुदार्तिदाढ़ ।

तदाशुपाकां हिमपृथवाहिनीं भगन्दरं तृष्णशिरोधरं वदेत् ॥ ५ ॥

पैतिक भगन्दर—पितृ प्रकोपक आहार विहार से अतिकुपित हुआ पितृ गुदा में रक्तदण्ड की और पीड़ा देने वाली पिटिका उत्पन्न करता है, वह पिटिका जीव पक्के वाली होती है और जब फूटती है तब उसमें से लघु पूर्य बहता है । इस लक्षण वाले पैतिक भगन्दर को 'तृष्णशिरोधर' या 'ठट्टशीव' कहते हैं । (इसकी पिटिका ऊँट की ओर के आकार की होती है इसीके ठट्टशीव कहते हैं) ॥ ५ ॥

लेखमज्जमाह—

कण्ठूष्मनो घनस्त्रावी कठिनो मन्दवेदनः । श्वेतावभासः कफजः परिच्छावी भगन्दरः ॥ ६ ॥

कफज भगन्दर—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित हुआ कफ गुदा में पिटिका उत्पन्न करता है वह पिटिका अधिक कण्ठू तथा गाढ़ा स्नाव करने वाली, कठिन, मन्द (अल्प) पीड़ा करने वाली इतेतरण की होती है । इस लक्षण वाले कफज भगन्दर को 'परिच्छावी' भगन्दर कहते हैं ॥

सन्निपातजमाह—

श्वुवर्णं दजाक्षावीः पिटिका गोस्तनोपमः । श्वम्बूकावर्तस्वशावीं श्वम्बूकावर्तको मतः ॥ ७ ॥

सन्निपातज भगन्दर—जिस भगन्दर में अनेक दोषों से अनेक प्रकार के वर्ण यीड़ा तथा स्नाव हो तथा पिटिका गाय के स्तन वा द्राक्षा के समान हो और उसका छिद्र (मुख) नाई रुप श्वम्बूक के मुख के समान अवर्तित (बुझा हुआ) हो उस तीनों दोषों वाले भगन्दर को 'श्वम्बूकावर्त' कहते हैं ॥ ७ ॥

दन्तमार्गमाह—

स्त्राद्रुतिः पायुगता विवर्धते उपेच्छात्पासा कृमिभिर्विद्यर्यते ।

प्रकृत्वै मार्गमनेकधा मुख्यर्वैस्तद्बृन्मार्गि भगन्दरं वदेत् ॥ ८ ॥

क्षतज भगन्दर—श्वय आदि से क्षत हो जाने के कारण जब उद्ग्रवेश में पिटिका होकर नाई की गति से वह जाती है और यदि उसकी उपेक्षा की जाती है तो उसमें कृमि उत्पन्न होकर उस स्थान को (काटकर) अनेक प्रकार के मार्ग (अनेक छिद्रों वाला) बना देते हैं उस को 'दन्तमार्ग भगन्दर' कहते हैं (कृमियों के बनाये हुए मार्ग से बात-मूत्र-पुरीषदि भी निकलते हैं इसी कारण इसको दन्तमार्ग भगन्दर कहते हैं) ॥ ८ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

दोरः साध्यितुं दुःखाः सर्वं एव भगन्दरः । तेज्वसाध्यविदोषोत्थः क्षतजस्त्र विशेषतः ॥ ९ ॥

भगन्दर की असाध्यता—सब प्रकार के भगन्दर कठिन और दुःसाध्य होते हैं, परन्तु उसमें भी विशेष करके विदेशज और क्षतज तो असाध्य ही हैं ॥ ९ ॥

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च । भगन्दरः स्वन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ १० ॥

जिस भगन्दर में से वात, मूत्र, पुरीष, किमि और शुक्र आदि का स्नाव होता हो वह भगन्दर दोगी को मार देता है ॥ १० ॥

अथ भगन्दरचिकित्सा ।

गुदपिटिकायामादौ कुर्याद्रक्षावसेचनं मतिमान् ।

जलसदनाभिरवेषं सा पाक न प्रयाति यथा ॥ १ ॥

भगन्दर-चिकित्सा—युदा में जब पिटिका होते तब प्रस्तर उद्दिमान् वैष रक्त मोक्षण करा देवे और जल में बैठना आदि दर्शन करे विसेवे पाक आदि नहीं होने पावे ॥ १ ॥

अपानमार्गपिटिकां द्वैरस्वर्णशलाक्याः । अविनप्रतस्थापा पश्चाक्षर्याद्विनिवाणक्षिप्ताम् ॥ २ ॥

पिटिकादाहविषि—युदा में होने वाली पिटिका को अरिन में तपाकर सोने की सकारी से दाग देवे पश्चात अग्निवर्ण की चिकित्सा करे ॥ २ ॥

पिटिकानामपकानामपत्पैषानूर्वकम् । कर्म कुर्याद्विरेकान्ते भिष्मानां धर्यते क्रिया ॥ ३ ॥

अपक पिटिका-चिकित्सा—युदा की पिटिका जब तक अपक हो तभी तक रोगी को अपतर्पण (लहून) तथा विरेचन करा कर अन्त में अन्य चिकित्सा करनी चाहिये । आगे भिन्न (कुटी दुई) की चिकित्सा कहते हैं ॥ ३ ॥

प्रत्यासां पाठनकारवहिदाहाविकं क्रमस् । विधाय व्रणवस्कायं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

भिन्न वा एक की चिकित्सा—युदा की पिटिका जब एक जावे उसका पाठन (चीरना) करना, क्षार वा अरिन से दाढ़ करना आदि कर्म क्रम से कर त्रण के समान दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

वटपत्रादिलेपः—

वटपत्रेष्टिकाशुपृष्ठीगुदूचीसपुनर्नवाः । सुपिष्ठाः पिटिकावस्त्रे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १ ॥

वटपत्रादि लेप—वट के पत्ते, ईंठ के चूर्ण, सौंठ, युरवि और पुनर्नवा सम्मान लेकर भाँति पोस्त कर युदा की पिटिका के मुख पर लेप कर देना भगन्दर में उत्थम है ॥ १ ॥

खदिरत्रिफलाक्याथो महिषीवृत्संयुतः । विद्वन्नर्चूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः ॥ २ ॥

खदिरादि काथ—द्येव, अंबरा, हर्वा, वहेहा समान ले काथ करके उसमें भैस का पूत और माजीरंग के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से भगन्दर का नाश होता है ॥ २ ॥

त्रिफलारससंयुक्त विदालास्थिप्रलेपनम् । भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्ट्रवणहरं परम् ॥ ३ ॥

विदालस्थिलेप—त्रिफला के विषपूर्वक बने हुए स्वरस में विदाली की अस्थि को विस कर लेप करने से भगन्दर शीत्र नष्ट होता है और दुष्ट्रवण भी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

शुनोऽस्थिभूलता तक्षैः पेषिता खररक्युक् । लेपो भगन्दरं हन्याज्ञरास्मान् तैलमेव च ॥ ४ ॥

शुनोस्थ्यादि लेप—शान की अस्थि और केचुआ (कीट) दोनों को तक के साथ पीस कर गदहें के रक्त में मिला कर लेप करने से अस्था गन्तव्य की अस्थि का तेल (जो पाताल बन्द्रादि से निकाला गया हो) लगाने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कुष्ठेत्रिवित्ता दन्ती मार्गावी सैन्धवं मधु । रजनीत्रिफलातुर्घैर्हितं स्याद् व्रणयोपमम् ॥ ५ ॥

कुष्ठादि लेप—कूट, निशोथ, तिल, दन्तीमूल, पीपरि, सेन्ध्वानमक, मधु, इर्ली, अंबरा, हर्वा, वहेहा और तूतिया सम्मान के पीसकर कगाने से त्रण का रोपण होता है ॥ ५ ॥

तिलप्रिवृत्तागदन्तीमलिष्ठायैः क्षसैन्धवैः । सचौद्रैश्च प्रकेपोऽयं भगन्दरकुलान्तकृत् ॥६॥
 तिलादि लेप—तिल, निशोथ, नागदन्ती (नागदवन), मलीठ, सेन्धवमक समान के पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से भगन्दर को समूल नष्ट करता है ॥ ६ ॥
 रसाजनन्दि कल्क—रसवत, हरदी, दारहरदी, मलीठ, नीम की कोमल पत्तियाँ, निशोथ, तेजमक की छाँड़ और दन्तीमूल समभाग लेकर कल्क बनाकर लेप करने से नाड़ी ब्रण नष्ट होते हैं (भगन्दर मी इससे नष्ट होते हैं) ॥ ७ ॥

तिलाभयालोधमरिष्टपत्रं निभावचाकुष्ठमगारभूमः ।

भगन्दरे नावधृपदंशयोश्च दुष्टवणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ ८ ॥
 तिलाभयादि लेप—तिल, हरदी, लोध, नीम की पत्तियाँ, हरदी, वच, कूठ और गृहधूम (झोला जाला आदि जो घरों में धूम से होते हैं) सबको समभाग लेकर पीस कर लेप करने से भगन्दर नाड़ीब्रण, उपदंश, दुष्टवण इन सब में शोधन और रोपण करता है ॥ ८ ॥

नवकार्षिको गुणगुणः—त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चककर्षयोजिता गुटिका ।

कुष्ठभगन्दरनाडीदुष्टवणशोधिनी कथिता ॥ १ ॥

नवकार्षिक गुणगुण—त्रिफला समान भिलित का चूर्ण तीन कर्ष, शुद्ध गुणगुण ५ कर्ष और पीपरि का चूर्ण एक कर्ष के मर्दन कर बटी बनाकर सेवन करने से कुष्ठ, भगन्दर, नाड़ी ब्रण, दुष्ट वण इन सबका शोधन करता है ॥ १ ॥

जम्बूकप्रकारः—जम्बूकस्याऽस्मिंश्च भुक्तवा प्रकारैर्द्युक्तनादिभिः ।

अजीर्णवर्जीं भासेन मुच्यते तु भगन्दरात् ॥ १ ॥

जम्बूक प्रकार—सियार का मांस व्यञ्जन आदि के प्रकार से या किसी प्रकार से भोजन कर अजीर्ण नहीं होने देवे अर्थात् इतना ही भोजन करे जितना भली भासि पच जावे तो ऐसा एक भास तक करने से भगन्दर से मुक्ति हो जाती है । (भगन्दर नष्ट हो जाता है) ॥ १ ॥

सप्तविंशतिको गुणगुणः—

त्रिकटु त्रिफला सुस्तं विहङ्गमृतचित्रकम् । चध्यैले पिष्पलीमूलं हुपुषा सुरदारु च ॥ १ ॥
 तुग्बरं पुष्करं चध्यं विशाला रजनीद्वयम् । बिंदुं सौवर्चंलं द्वारं सैन्धवं गजपिष्पली ॥ २ ॥
 चावन्न्येतानि चूर्णोन्ति तावद्विगुणगुणगुणः । कोलप्रबाणगुटिका भच्छेन्मधुना सह ॥ ३ ॥
 कासं श्वासं तथा शोफमश्वासि च भगन्दरम् । हृच्छूलं पाश्वर्शूलं च कुचिक्षितगुदे वज्रम् ॥
 अश्वर्णं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धि तथा छूमीन् । चिरवरोपसृष्टानां लयोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥
 आनाहं च तथोन्मादं सकुष्ठान्युदराणि च । नाडीदुष्टवणान्सवर्णप्रमेहं श्लीपदं तथा ॥ ६ ॥

सप्तविंशतिको द्वौष शर्वरोगनिषुद्धनः ॥ ६ ॥

सप्तविंशति गुणगुण—सौठ, मरिच, पीपरि, आंवला, हरा, बड़ेहा, नागरमोथा, माझीरंग गुरुचि, चित्त की छड़, चध्य, इलायची, पिपरामूल, हाल्केरे, देवदार, तुग्बर (तेज बल का फल), पुष्कर मूल, चध्य, माहरि, हरदी, दारहरदी, विठ्ठलमक, सौवर्चंल नमक, यवाखार, सेन्ध्वा नमक, गज पीपरि, समान लेकर चूर्ण जितना होवे उसके दुगुना शुद्ध गुणगुण मिला मर्दन कर एक २ कोल के (इ कर्ष) प्रमाण की बटी बनाकर मधु के अनुपान से भक्षण करने से—कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, छूय का शूल, पाश्वर्शूल, कुचिक्षित और गुदा का शूल, अश्वरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमि आदि रोग नष्ट होते हैं और पुराने ज्वर से पीड़ित और क्षय रोग से पीड़ित मनुष्यों के लिये लाभदायक होता है तथा आनाह, उन्माद, कुष्ठ रोग, उदर रोग, नाड़ी

ब्रण, दुष्ट ब्रण, सब प्रकार के प्रमेह और इलीपद रोग को यद्यं प्रायः सभी रोगों को यह सप्तविंशति गुणगुण नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

करबीराद्यं तैलम्—

करबीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः । मातुलुङ्गार्कपथसां पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ ॥

करबीरादि तैल—कनेर की छड़, हरदी, दन्ती, करियारी, सेन्ध्वा नमक, चित्त की छड़, बिंदुरा नीबू, मदार का दूध इनको एक २ भाग ले कल्क कर चौगुना मूर्चित तिल का तैल और तैल के चौगुना जल मिलाकर तैल पका कर लगाने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ १ ॥

विष्णवन्दनं तैलम्—

चित्रकाकौं ग्रिवृपाठे मलयूहयमारकौ । सुधां वचां लाङ्गलिकां हरितालं सुवर्चिकाम् ॥ १ ॥
 ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् । एतद्विष्णवन्दनं नाम तैलं द्वाङ्गंदरे ॥

शोधनं रोपणं चैव सर्वणकरणं तथा ॥ २ ॥

विष्णवन्दन तैल—चित्त की छड़, मदार की जड़, निशोथ, पुरशन पाढ़ी, कठगूलर, कनेर की छड़, सेंदुड, दध, करियारी, हरताल, सज्जी और मालकांगनी समभाग ले कल्क करे, पूर्वोक्त रीति से चौगुना तिल का तैल और जल मिलाकर बुद्धिमान् तैल सिद्ध कर लेवे, यद्य 'विष्णवन्दन' नाम का तैल भगन्दर में लगाना चाहिये और इससे शोधन, रोपण और सर्वणता (खचा का सामान्य रूप) होती है ॥ १-२ ॥

निशादितैलम्—

निशार्कद्वीरसिन्धवग्निपुरालाङ्गलिवसकैः । सिद्धमध्यञ्जने तैलं भगांदरविनाशनम् ॥ १ ॥

निशादि तैल—हरदी, मदार का दूध, सेन्धानमक, चित्त की जड़, गुणगुण, करियारी और कुट्ट उल्ल समभाग ले कल्क पूर्ववत् तिल का तैल और जल मिलाकर तैल सिद्ध कर अन्धजन (मर्दन) करने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ १ ॥

पश्यापथ्यम्—

आमे संशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोचणम् । पक्षे पुनः शब्दविधिरत्था चाराग्निकर्म च ॥ १ ॥

भगन्दर की पिडिका जब तक आम (अपक) रहे तब तक संशोधन कर्म विरेकादि, लेप, लङ्घन (उपवास) तथा रक्तमोक्षण कराना चाहिये और पक जाने पर शब्दविधि अर्थात् चीर कर क्षार सूक्ष्म से तथा अग्नि से (शलाकादि तपाकर) जलाना चाहिये, जैसा कि पहले कहा जा चुका है ॥ १ ॥
 सर्वत्र शालयों मुद्दा विलेपी जाङ्गलो रसः । पटोलं शिश्रुवेत्राग्रं धत्तरो बालमूषकम् ॥ २ ॥
 तिलसर्वपथोस्तैलं तिक्ष्वगों धृतं मधु । पतरपथ्यं नरैः सेद्यं व्यादोषं भगन्दरे ॥ ३ ॥

पश्यापथ्य—भगन्दर की सब अवस्थाओं में शालिखन का चावल, मूंग, विलेपी जाङ्गल जीवों का मांसरस, परवर, सहिजन, वेत का अग्रमाग, धत्तर, कोमलमूषी, तिल और सरसों के तैल, तिक्त वर्ग की प्रायः सभी ओषधियाँ वा द्रव्य, धृत और मधु वे सब दोषानुसार भगन्दर रोग में भूत्यों को सेवन करना चाहिये ॥ २-३ ॥

द्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरुणि च । संवसरं परिहेत्यावद्वृद्वयोः नरः ॥ ४ ॥

द्यायाम कर्म, मैथुन, युद्ध, पृष्ठयान (वोडे आदि के पीठ की सवारी), गुरु द्रव्य, इन सबको ब्रण के रोपण हो जाने के एक वर्षे बाद तक त्याग देना चाहिये जब तक ब्रण भली-मांति अछाना न हो, भगन्दर के ब्रण के रोपण हो जाने के पश्चात् वर्षों तक इन द्रव्यों का व्यवहार नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

अथोपदंशनिदानम् ।

तस्य हेतुमाह—हस्ताभिवाताश्चदन्तपातादध्वचनाद्रथ्यतिसेवनाद्वा ।

योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधापच्चादैः ॥ १ ॥

उपदंश का हेतु—हाथ के आधात से (हाथ से किसी प्रकार का आधात हो जावे अथवा हस्त मैथुन आदि में शिश्न पर आधात होने से), नख, दाँत आदि के लगने से, शिश्न को नहीं खोने से, अश्यन्त मैथुन करने से और योनिदोष से (अल्पदार, महादार योनि के साथ एवं अन्यरोग से युक्त वा रक्तस्वका आदि के साथ मैथुन करने से) तथा और अनेक प्रकार के अपचारों (शार, इष्ण आदि जल से शिश्न धो देने से ब्रह्मचारिणी आदि से मैथुन) के करने से शिश्न में पांच प्रकार के अर्थात् वातज, पित्तज, कफज, सन्त्रिपातज और रक्तज उपदंश होते हैं ॥ १ ॥

वातजपित्तजककानाम्—

सतोदभेदस्फुरणैः संकृष्टैः रूपोट्यर्थवस्थेत्यवनोपदंशम् ।

पीतैर्बृहूक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तैः पिशितावभासैः ॥ २ ॥

सकण्डुरैः शोकयुतैर्महस्तिः शुभलैर्वर्णैः स्वावयुतैः कफेन ।

वातज उपदंश—जिस उपदंश में सूई गड़ने की, मौति और फाड़ने के समान पीड़ा हो, लिङ्ग में स्फुरण (फड़कन) हो और जो रक्तोट (फोड़े) हो उनका वर्ण कृष्ण हो उसे वातज उपदंश जानना चाहिये, पित्तज उपदंश जिस उपदंश में रूपोटों का वर्ण पीला हो, बहुत लंबे वाले हों (साव अधिक हो) और दाढ़ हो उसे पित्तज उपदंश जानना चाहिये, रक्तज उपदंश जिस उपदंश में फोड़ों का वर्ण मास के सूक्ष्म लाल हो उसे रक्तज उपदंश जानना चाहिये (अन्यान्तर में फोड़ों का वर्ण कृष्ण और रक्तसावी तथा पित्तज के अन्य लक्षणों के समान लक्षण वाला रक्तज उपदंश का लक्षण बताया गया है)। कफज उपदंश—जिस उपदंश में फोड़ों में कण्डु अधिक हो, शोथ हो, फोड़े कड़े हों, वर्ण उनका इवेत हो और स्वाव होता हो उसे कफज उपदंश जानना चाहिये ॥ २३ ॥

संनिपातजमाह—

तानाविध्वावहृजोपयष्ठमसाद्यमाहुच्छिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

सन्त्रिपातिक उपदंश—जिस उपदंश में से अनेक प्रकार का स्वाव होता हो (तीनों दोओं के लक्षणों से मिलित) और अनेक प्रकार की पीड़ा होती हो वसे प्रिदोषज उपदंश जानना चाहिये, वह असाध्य है ॥ ३ ॥

अथासाध्यत्वमाह—

विश्वीर्णमांसं कृमिभिः प्रजाधं सुक्षकवशेषं परिवर्जयेच्च ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रिया नरो यो विषये प्रसक्तः ॥ ४ ॥

कालेन शोफकिमिदाहपाकैः प्रशीर्णक्षिणो नियते स तेन ॥ ५ ॥

असाध्य उपदंश लक्षण—जिस उपदंश में लिङ्ग का मास ज्योर्ण-शीर्ण (गल गथा, सङ् गथा) हो अथवा कृमि उरपन होकर खा गयी हों और जिसमें शिश्न गल कर नष्ट होकर केवल अण्डकोश ही शेष हो उसे स्थान देना चाहिये अर्थात् असाध्य है ॥

उपेक्षा का फल—जो विषयी मनुष्य उत्पन्न होते ही मूर्खतावश इसकी किया (चिकित्सा) नहीं करता है, कुछ समय के पश्चात् शोथ, कृमि, दाढ़, पाक आदि से युक्त होकर उसका शिश्न सङ् भ जाता है और वह मर जाता है ॥ ५-५१ ॥

एकस्थानस्वेनात्र लिङ्गार्थं आह—

अङ्गरैव संवातैरपर्युपरि संस्थितैः । क्षेत्रं जायते व्रतिभ्यान्नचूलशिखोपमा ॥ ६ ॥

अब स्थान एक होने के कारण अर्थात् जिस स्थान (लिङ्ग) पर उपदेश होता है उसी स्थान पर होने के कारण लिङ्गार्थं वा लिङ्गवर्ति का लक्षण भी कहते हैं ।

लिङ्गार्थं के लक्षण—शिश्न के आगे (सुंधपर) अङ्गर के समान (धात्य के अङ्गर के समान) मास के अङ्गर कुछ बड़े पक दूसरे के कपर बड़े हुए कुकुर के शिखा के समान कप से उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

कोशस्थान्यन्तरे सन्धौ सर्वसंविगताऽपि वा । सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्सा त्रिदोषजा । लिङ्गवर्तिरिति व्याता लिङ्गार्थं द्वितीया परे ।

इह वर्ति कोष में, मैदू के रम्भ की सन्धि में अथवा सभी सन्धियों में प्रिदोष के कोप से हो जाती है उसमें पीड़ा और पित्तिलक्षण होती है तथा यह दुश्चिकित्सा होती है (प्रिदोषज होने के कारण कह साध्य होती है) इसको 'लिङ्गवर्ति' कहते हैं, कोई र आचार्य इसे 'लिङ्गार्थं' कहते हैं ॥

मेडसंखौ व्रणः केचिकेचित्पश्चात्यावतथा ॥ ३ ॥

कुलस्थाकृतयः केचिकेचित्पश्चात्यावलेदसमन्विताः ॥

स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते उपदंशाश्च दाहयाः ॥ ४ ॥

जियों के उपदेश—मैदू की सन्धि में कुछ व्रण हो जाते हैं, कुछ व्रण सम्पूर्ण मैदू में हो जाते हैं । उनमें से कितने कमल के कुलयों की आकृति के और कितने कमल के पत्ते के आकार के होते हैं, उन व्रणों से (व्रणों के कारण) पीड़ा होती है तथा दकुत आनाह, तृष्ण और कलेद अर्थात् पूर्यादि का स्वाव होता रहता है इस प्रकार के कृठिन उपदंश जियों और पुरुषों को होते हैं ॥

अथोपदंशचिकित्सा ।

दिनधस्तिवज्ञस्य तेष्वादौ ध्वजमध्ये शिराद्यधः ।

जलौकांपातनं वा स्यादूर्धाधः शोधनं तथा ॥ ५ ॥

उपदंश चिकित्सा—प्रथम रोगी को स्नेहन देकर स्वेदन कर्म करे और शिश्न के मध्य में सिरा का वेष करे अथवा जोक लगाकर रक्तप्रेक्षण करावे तथा उर्ध्व और अधःशोधन को करे (वमन-विरेचन देवे) ॥ १ ॥

सद्योपहृतदोषस्य रुक्षोक्तावृपशास्यतः । पाको रचयः प्रथमेन शिरमन्त्यकरश्च सः ॥ २ ॥

दोषों को शीघ्र निकाल देने से (वमन-विरेचन और रक्त मोक्षण आदि करा कर दोष निकाल देने से) पीड़ा शोथ आदि शान्त हो जाते हैं । इस रोग में यसन ऐसा करना चाहिये कि पाक नहीं हो क्योंकि पाक होने पर शिश्न नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

कायः—पटोलिन्मव्विफलाकिरातैः काथं पिवेद्वा खदिरासनाभ्याम् ।

सरुग्गुलं वा त्रिकलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥ ३ ॥

पटोलादि काय—परवर के डार-पात, नीम की छाल, आंवरा, दर्पा, बहेड़ा और चिरैता समझाले क्षाय बनाकर पान करना चाहिये अथवा खेर और विजैसार की कलही का काय बना कर उसमें ज्वर गुग्गुल अथवा त्रिकला के न्तुर्ण का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये । इस प्रयोग से सब प्रकार के उपदंश नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गैरिकाज्जनमलिङ्गामधुकोशीरपचैः । सचन्दनोपयः हिनश्चैः पेयः पित्तोपदंशाह ॥ २ ॥

गैरिकादि काय (पित्तज उपदेश में)—गैरि, रसवत वा कृष्णजन, मजीठ, मुलहठी, खस, पहुंचकाठ, लाल चन्दन और नील कमल समझाले क्षाय कर घृतादि के प्रक्षेप से स्त्रिय बनाकरने से पित्तज उपदंश नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ लेपः ।

सपौण्डरीकैमधुकरासनाकुष्ठुनर्नवैः । सरलागुरभद्राख्यैर्लेपः पातोपदंशहा ॥ १ ॥

पुण्डरीकादि लेप—पुण्डरिया काष, मुळठी, रासना, कूठ, पुनर्नवा, सरल काठ, अगर, नागरमोथा अथवा देवदार समभाग ले जल के साथ पीस कर लेप बना कर लेप करने से बातज उपदंश नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

बबूलवलचूर्णेन दाढिमत्वप्रजोड्यवा । गुण्डने लिङ्गदेशस्थ लेपः पूरफलेन वा ॥ २ ॥

बबूलदि योग—बबूल के पत्तों का चूर्ण अथवा अनार की छाल का चूर्ण लिङ्ग के ब्रणों पर छिड़कने या लगाने से लाभ होता है अथवा सुपारी को जल के साथ विस कर लेप करने से उपदंश नष्ट होता है ॥ २ ॥

बटप्रोहार्जुनजम्बुपथ्या लोध्रं हरिद्रासहितः प्रलेपः ।

सर्वोपदेशेषववरोहणार्थं च तउजं विमलास्तेने ॥ ३ ॥

बटादि योग—बट के अङ्कुर, अजुन की छाल, जामुन की छाल, हरा, लोध और हरदी समभाग ले जल के साथ पीस कर लेप करने से उपदंश के ब्रण नष्ट होते हैं और सरक प्रकार के उपदेश के ब्रणों के रोपण के लिये इन्हीं उपर्युक्त द्रव्यों के चूर्ण और कुण्डाजन वा रसवत का चूर्ण मिलाकर छिड़कना चाहिये, इससे ब्रण भर जाते हैं ॥ ३ ॥

बहेटकाहे त्रिफलों तां मर्ची मधुसंयुताम् । कृत्योपदंशलेपोऽयं सधो रोपयति ब्रणम् ॥ ४ ॥

त्रिफलामधी लेप—कढ़ाही में रखकर त्रिफला को बला देवे, उस राख में मधु मिलाकर उपदंश पर लेप करने से शीघ्र उपदंश के ब्रण का रोपण होता है ॥ ४ ॥

स्वचो दाहहरिद्रायाः शङ्खनाभी रसाज्जनम् । लाला गोमयनिर्यासस्तैलं चौद्रं धृतं पथः ॥

एभिः सुपिष्टैर्द्वयांशैरुपदंशं प्रलेपयेत् । ब्रणाश्च तेन शास्यन्वित श्वयशुर्दृहं एव च ॥ ५ ॥

दाहहरिद्रादि योग—दाहहरदी की छाल, शङ्खनाभी, रसवत, लाल, गोमर का रस, तिक का तेल, मधु, गोधृत और गोदुख समभाग ले मलीमाति पीसकर उपदंश पर लेप करने से उसके ब्रण शान्त होते हैं अर्थात उपदंश के ब्रण शोथ और दाह भी शान्त होते हैं ॥ ५-६ ॥

नीलोरपलानि कुमुदं पश्चासौगन्धिकानि च । उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽयं ग्रशस्थते ॥ ७ ॥

नीलोरपलादि योग—नील कमल, कुमुदनी और लाल कमल समभाग ले चूर्ण कर उपदंश पर लगाने वा छिड़कने से लाभ होता है ॥ ७ ॥

रसाज्जनं शिरीषेण पथयथा च समन्वितम् । सचौदं लेपयं योउदं लेपयति ब्रणम् ॥ ८ ॥

रसाज्जनादि योग—रसवत, शिरीष की छाल, हरा समभाग ले मधु में मिला लेप बनाकर लेप करने से उपदंश ब्रण का शीघ्र रोपण होता है ॥ ८ ॥

गोपीचन्दनतुथे च समभागेन मर्दयेत् । कज्जली जलसंयुक्ता ब्रणानां लेपने हिता ॥ ९ ॥

गोपीचन्दनादि लेप—गोपीचन्दन और तूतिया समान ले मर्दन कर कज्जली करे और उसमें जल मिलाकर लेप करने से उपदंश के ब्रण में लाभ होता है ॥ ९ ॥

मोचापूर्णभूर्तं च कोलस्वक्षशङ्खजीरकम् । पिण्डोपदंशे लेपोऽयं पथसा पान्मेव च ॥

नाशयेदुष्णतां तूर्णं शुष्कान्कुर्याद्वणानपि ॥ १० ॥

मोचादि योग—मोचा (केले की सूखी पत्तियां वा तना) और सुपारी को जला कर उसका अस्त्र, वैर की छाल शङ्ख और जीरा का चूर्ण सब एक २ माग लेकर जल के साथ लेप बना कर लेप करने से और दूध के अनुपान से पान करने से उपदंश ब्रण की उष्णता को शीघ्र नष्ट करता है और आर्द्र ब्रणों (पूर्युक्त) को शीघ्र सुखा कर नष्ट कर देता है ॥ १० ॥

पारदादिलेपः—पारदं गन्धकं तालं दशं च मनःशिलाम् ।

पूरुषकर्वं द्विकर्वं च मुद्दादां शङ्खजीरकम् ॥ १ ॥

विषाय कज्जलीं शलचाणां मर्दयेत्सु रसारसैः । छायाशुष्कां ततः कृत्वा पुनरुन्मत्तजद्रवैः ॥ २ ॥

विमर्शार्थं वटी कार्या उपदंशे प्रयोजयेत् । गोधृतेन प्रलेपोऽयं ब्रणानां रोपणे हिताः ॥ ३ ॥

पारदादि लेप—पारद, गंधक, दृताल, सिगरिफ और मैनसिल पक २ कर्वं मुर्दासंग, शङ्ख और जीरा दो २ कर्वं लेकर पहले पारद—गन्धक की कज्जली कर सबको एकत्र मिलाकर तुलसी के रस में मर्दन कर छाया में सुखा लेवे । पुनः धूतू के रस के साथ मर्दन कर वटी बना लेवे ।

इस वटी को गोधृत के साथ मिलाकर लेप करने से उपदंश के ब्रण के रोपण करने में हितकर है ॥

स्वरसाः—आग्रहत्वचं विनिष्पव्यीदयं विगृह्य द्वरसं पकम् ।

चतुर्पलं द्वराद्वीरं संयुक्तं प्रपिवेत्प्रगे ॥ १ ॥

एवं मुनिविनं कुर्यादुपदंशे व्रणे हितम् । यथा चीरं तथा जीरं गोधूमं पथमाचरेत् ॥ २ ॥

आग्रहत्वं द्वरस—योग—आम के वृक्ष की छाल को कूट-पीस, उस निकाल कर पक पक और बकरी का दूध ४ पल ले मिलाकर प्रातः पान करे, इस प्रकार सात दिन तक करने से उपदंश के ब्रण में शाम होता है । दूध और पुराने गेहूं का पथ्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

जातीप्रवालास्वरसं पलार्धं धेनोधृतं सर्जरसेन सुकम् ।

प्रिवेत्प्रगे प्रद्वाविष्वोपदंशे चारादते गोधूमसर्पित्यम् ॥ ३ ॥

जातीप्रवाल द्वरस—चमेली के कोमल पत्तों का आधार पक द्वरस में गो का धृत और राल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर प्रातः पान करने से पांची प्रकार के उपदंश शमन होते हैं । छाया शारयुक्त द्रव्य को छोड़कर गेहूं और धृत का पथ्य करना चाहिये (इसमें नमक भी समिलित है) ॥

प्रक्षालनम्—निर्बाजुनां शास्यकदम्बवशालजम्बूवटोदुम्बवरवेत्सादिः ।

प्रद्वालालोपदंशतानि कुर्यादुपदंशे चित्तास्मभवापदंशे ॥ ३ ॥

निर्बाजुनादि प्रक्षालन योग—नीम, अजुन, पीपल, कदम्ब, शालवृक्ष, जामुन, वटगूलर और वेत इनके छालों का समभाग ले काथ कर लिङ्ग खोवे, इनको पीसकर लेप करे, इनके ककड़ के द्वारा धृत सिद्ध कर सेवन करे और इनके चूर्ण को ब्रण पर लगावे (लिङ्के) तो इससे पित्त-रक्त से उत्पन्न उपदंश ब्रण में लाभ होता है ॥ १ ॥

त्रिफलायाः कषायेण भृत्यराजरसेन वा । ब्रणप्रद्वालालं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ २ ॥

त्रिफलादि प्रक्षालन—त्रिफला के काथ से अथवा आंगरे के द्वरस से उपदंश के ब्रण को धोना चाहिये । इससे उपदंश का शमन होता है ॥ २ ॥

ब्रणशोथोपदंशानां नाशनः चालनारस्तुतः ॥ ३ ॥

अथस्थादि योग—पीपल, गुलर, पाकर, वट और वेत के छाल के काथ से ब्रण को धोने से उपदंश का शोथ (उपदंश) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

जयाजात्यक्षमाराक्षम्याकानां दलैः पूर्यक । कृतं प्रक्षालने काथं मेदूपाके प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

जयादि योग—जनियार, (१)चमेली, कनेर, मदार और अमलतास इनमें से किसी एक के पत्तों को लेकर काथ कर मैदूपाक को धोने में प्रयुक्त करना चाहिये अथवा इससे प्रक्षालन करने से उपदंश नष्ट होता है ॥ ४ ॥

उपदंशे लिङ्गलेपाः—

रसकूरगच्छाणं मर्दयेत्प्रविराम्भुना । प्रद्वालयेद्वारिणा च शुष्के लेपस्तु चारिणा ॥ १ ॥

(१) जयासे आंग का भी ग्रहण होता है पर यहां अरणी शोथनाशक होने से गृहीत है ।

लिङ्गलेपो व्रणं हन्ति त्रिदिनाकाश्र संशयः ॥ २ ॥

उपदंश में लिङ्गलेप—रस कपूर एक गद्याण (६ मासा वा ई कर्ष) लेकर खैर के काथ के साथ मर्दन कर जल से धोवे और सुखा देवे। इस सूखे हुए रसकपूर को जल के साथ लेप वा कर लेप करने से लिङ्ग के ब्रण (उपदंश ब्रण) तीन दिन में निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ २-२ ॥

ब्रणोपदंशे पूणादिष्ठेषः—

पूणं सुवर्धमेकं तु रसगन्धमहिङ्गुलम् । खदिरं तुत्यकं चैव मर्दयेजिरभुनीरकैः ॥ ३ ॥
समभागानि सर्वाणि गुटिकां कारवेदत्वुधः । उपदंशे धृतैर्लेपस्त्रिविनादव्यज्ञरोपणः ॥ ४ ॥

उपदंश ब्रण में पूणादि लेप—एक द्विपारी को आग में भली अंति बला कर पीस ले और उसी के समान आग पारद, गन्धक, हिंगुल, खैर और तूतिया को (बरावर २) लेकर प्रथम पारद-गन्धक को धोट कर (कज्जली कर) फिर अन्य ओषधियों को मिलाकर नीबू के रस में धोट कर वटी बना लेवे। इस बटी को धृत के साथ मिलाकर लेप करने से तीन दिन में उपदंश के ब्रण का रोपण होता है ॥ ४-२ ॥

उपदंशस्फोटे लेप—

जातीकलविडङ्गानि रसकं देवपुष्पकम् । समभागानि सर्वाणि नवनीतेन मर्दयेत् ॥

स्फोटानामुपदंशानां व्रणशोधनरोपणः ॥ ५ ॥

उपदंश के स्फोटों (फोड़ों) पर लेप—जायफर, वायमिरंग, खपरिया दिव और लंबंग इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर मस्तकन के साथ मर्दन कर लेप करने से उपदंश के फोड़ों और नरों का शोषण और रोपण होता है ॥ ५ ॥

धृतानि—भूनिम्बनिम्बविनिकलापटोलकरज्जातीखिरासनानाम् ।

शृतेष्व करकैधृतमाशु पकं सर्वोपदशपद्वरं प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

भूनिम्बादि धृत—चिरैता, नीम की छाल, अंवरा, हर्दा, बहेडा, परवर का ढाल-रत्र, करज, चमेली के पत्ते, खैर और विजयसार इनके काथ और कल्क से धृत सिद्ध कर (इनको सम भाग लेकर विविवत् काथ कर जितना प्रस्तुत काथ हो उसके चतुर्थश्श मूर्च्छित गोधृत और धृत के चतुर्थश्श इन्हीं द्रव्यों का समान मिलित कल्क मिलाकर धृतपाक की विधि से धृत सिद्ध कर) सेवन करने से (खाने से और लगाने से) सब प्रकार के उपदंश शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

करज्जनिम्बार्जुनशालजवृत्तव्यटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ।

सर्विनिहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं खुतिरागयुक्तम् ॥ ७ ॥

करज्जादि धृत करज, नीम की छाल, अर्जुन की छाल, शालवृत्त की छाल, जामुन की छाल और बट की छाल इनके कल्क और काथ से पूर्ववत् सिद्ध कर सेवन करने से यह धृत उपदंश के दोष तथा दाह, पाक, साव और रागयुक्त (कृष्ण रक्तादि वर्ण से युक्त) उपदंश को नष्ट करता है ॥

अगारधूमो इन्नी सुराकिष्वं च तैखिभिः । भागोत्तरैः पचेत्तर्लं कण्ठशोथहजापहम् ॥

शोधनं रोपणं चैव सर्वणकण्ठं तथा ॥ १ ॥

अगारधूमादि तेल—गृहधूम एक आग, इरदी २ मास और सुराकिष्व तीन मास ले कल्क कर तेल में देखकर तेल सिद्ध कर (कल्क से चतुर्थश्श मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चतुर्थश्श पाकाथ जल देकर सिद्ध कर) लगाने से कण्ठ, शोय और पीड़ा नष्ट होती है, ब्रण का शोषण और रोपण होता है और ब्रण के स्थान के त्वचा का विकृत वर्ण त्वचा के वर्ण के समान होता है ॥

चोपचिन्याश्चूर्णम्—

कुडवं चोपचिन्याश्च शक्तरायाः पलं तथा । पिपली पिपलीमूलं मरिचं देनपुष्पकम् ॥ १ ॥
आकशलं चुरकं शुण्ठी जन्मत्तुर्णं च वराक्षकम् । पृथक्कोलमितं ग्राहमेतच्चूर्णकृतं शुभम् ॥ २ ॥
सर्वमेकत्र संयोजयं कर्वार्थं प्रतिवासरम् । भजयेन्मधुसर्विभ्यां युक्तं पथ्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥
शावयोदनं तथा सूपस्तुवरीणां धृतं मधु । गोधूमः सैन्धवं शिग्रविष्वी कोशातकीफलम् ॥ ४ ॥
आद्रेकं जलमन्दोषणं हितमत्र प्रकीर्तिम् । पञ्चोपदंशरोगाणां प्रमेहाणां तथैव ॥

ब्रणानां वातरोगाणां कुष्ठानां च विनाशनम् ॥ ५ ॥

चोपचीन्यादि चूर्ण—चोपचीनी एक कुडव (२६ तोला), शक्कर १ पल, पीपरि, पिपरामूल, मरिच, लंबंग, अकरकरा, गोखरा, सौंठि, वायमिरंग, दालचीनी इनको पृथक् २ पक २ कोल की मात्रा (ई कर्ष) से लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण को एकत्र मर्दन कर आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन मधु और धृत के अनुपान से सेवन करने से और पथ्य से रहने से अर्थात् शालीधानके चावल का मात, तुवर (अरहर) की दाल, धृत, मधु, गेहूँ, सैवानमक, सदिभन का फल, विम्बीफल, तरोरी का फल, अद्रक, कुछ गरम बल यहाँ पर ये सब हितकर कहे गये हैं। इन्हीं के सेवन करने से पांचों प्रकार के उपदंश रोग, प्रमेह, ब्रण, वात के रोग और कुष्ठ इन सबको नष्ट करता है ॥

चोपचीनीपाकः—

चोपचिन्युम्बवं चूर्णं पलद्वादशमेव च । पिपली पिपलीमूलं मरिचं नागरं त्वचम् ॥ १ ॥

आकशकं लवङ्गं च प्रथेकं कर्षसंमितम् । शक्तरामचूर्णं च पावयेत्सर्वमेकतः ॥ २ ॥

मोदकं कारवेत्तत्त्वं कर्षं कर्षं प्रमाणतः । सायं प्रातनिवेद्यस्तु पथ्यं पूर्वोक्तचूर्णवत् ॥ ३ ॥

उपदंशे धृणे कुष्ठे वातरोगे भगन्दरे । धातुव्यक्तृते कासे प्रतिशयाये च यथमणि ॥

सर्वान् रोगाच्छिहन्त्याशु ततः पुष्टिकरो भवेत् ॥ ४ ॥

चोपचीनी पाक—चोपचीनी का चूर्ण १२ पल, पीपरि, पिपरामूल, मरिच, सौंठि, दालचीनी, अकरकरा और लंबंग का चूर्ण पृथक् २ पक २ कर्ष और इन सबों का बरावर (५५ कर्ष) शक्कर लेकर पाक की विधि से उसे जल के साथ गोलाकर चाशनी बना उसमें सब चूर्ण मिलाकर एक २ कर्ष के प्रमाण का विधिवत् मोदक बनाकर प्रातः सायं सेवन करे और पूर्वोक्त चोपचीनी चूर्ण के साथ कहा इथा पथ्य सेवन करे तो उपदंश, ब्रण, कुष्ठ, वातरोग, भगन्दर, धातुव्यक्ति के कारण से उत्पन्न कासरोग, प्रतिशयाय, यक्षमा इन सभी रोगों को शीघ्र नष्ट करता है और पुष्टि करता है ॥

बालधूरीतकीयोगः—

बालपथ्या पलैकं च तुथं शाणमितं तथा । निम्बुद्वेण संमर्द्धं द्वालं सस्त दिनानि वै ॥ १ ॥

गुटिकां चणकप्रायां छायाशुष्ककृतु कारयेत् । शीतोदकामुपानेन निरयमेका प्रदापयेत् ॥ २ ॥

चालाणामेकविशाल्या सुच्यते तृपदंशतः । शालिगोधूमसुद्धाश्च गोसर्पिः पथ्यमीरितम् ॥ ३ ॥

बाल दृतीतकी योग—छोटी दृत का चूर्ण एक पल, शुद्ध तृतिया एक शाण (४ शासा) दोनों को एकत्र नीबू के रस के साथ सात दिन तक भलीभांति मर्दन करे पश्चात चने के प्रमाण की बटी बना छाया में सुखा शीतक जल के अनुपान से निर्य पक बटी सेवन करे। इस प्रकार २१ दिन सेवन करने से उपदंशरोग छूट जाता है। इसके सेवन के साथ शालिघान के चावक, गेहूँ, मूग और गोधृत का पथ्य सेवन करना कहा है ॥ १-३ ॥

रसगन्धकजल्लाङ्गी—

कर्षमात्रो रसः शुद्धो द्विकर्षो गन्धकस्तथा । चिधिवरकजल्लाङ्गी कूरवा तां च गोधृतसंयुताम् ॥

माषमात्रां प्रतिदिनं द्वयादेवं त्रिसप्तकम् । गोधूमात्रं धृतं पथ्यं कारयेत्त्वयां विना ॥

उपदंशापहः श्रेष्ठो योगोदयं मुनिभिः स्मृतः ॥ ३ ॥

रस गन्धक कजली योग—शुद्ध पारद एक कर्ण और शुद्ध गन्धक आवलासार दो कर्ण दोनों को ले विधिपूर्वक कड़जली कर गोधृत के अनुपान से एक मात्रा के प्रमाण की मात्रा से निष्ठा तीन सप्ताह (२१ दिन) सेवन करे और गेहूँ तथा धृत इसी का पथ्य विना नमक के सेवन करे तो उपदंश को नष्ट करने वाला वह थेष्ट (उत्तम) योग मुनियों ने कहा है ॥ १-२ ॥

महाकाशरणीः—महाकाशरमाकल्लकं स्वादिरं च क्रमादृश्वितं वारिणा पिष्ठमेतद् ।

निषेद्येत माषप्रमाणं धृतेन महारोगनिन्द्वं त्रिगेहु त्रिग्निम् ॥ ३ ॥

गोधूमं गोधृतं पथ्यं मन्दं लवणमाचरेत् । द्विवारं प्राहयेष्टिव्यमुपदंशनिधृत्यते ॥ ४ ॥

महाकाशर गुटी—कम से १-२ मात्र बढ़ा कर महाकाशर (साड़ुन) १ मात्र, अकरकरा २ मात्र और छीर तीन मात्र लेकर जड़ के साथ घोट कर एक मात्रा के प्रमाण से धृत के अनुपान से सेवन करने से महारोग (कुष्ठ) को नष्ट करता है एवं व्रण में सेवन करने से व्रण को नष्ट करता है । इसके सेवन के साथ गेहूँ, गोधृत तथा मन्द (अख्य) छड़ण का पथ्य करना चाहिये और उपदंश रोग की निवृत्ति के लिये इस ओषधि को दो बार प्रातः साथं सेवन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

सर्वैषदंशे रसधृतमुच्यते—

शुद्धं रसं पिञ्चुमितं द्विवल्लिप्रमर्थं सर्वद्विभागनवनीतमपि प्रमर्थं ।

बद्धे प्रलिप्य पिञ्चुमन्दविपर्यंशाखां संवेष्टेष्वत्तमुखीं परिदीप्य वर्तिम् ॥ ५ ॥

तस्या धृतं च वर्तति काशमये च पात्रे शृष्टाऽहिविलद्वलसाकमिदं प्रदेयम् ।

सर्वैषदंशकरिकेसरिणं व्रणमन्दं पट्टादिकं रसधृते च विवर्जनीयम् ॥ २ ॥

रसधृत—(सब उपदंशों में) शुद्ध पारद एक अक्ष (१ कर्ण) शुद्ध गन्धक दो अक्ष लेकर विधिवत् कड़जली कर जितना हो उसके दुगुना (६ अक्ष) गाय का मक्खन मिळाकर अली भाँति मर्दन कर एक वज्र पर इसका लेप कर देवे पश्चात वह वज्र पत्र रहित नीम की ढाल पर लपेट कर वत्ती हना कर नीचे मुंह कर उसे बार देवे, उससे जो धृत चूंचे उसे एक काच के पात्र में रखता आये या काच पात्र में ऊआये । इस ऊये हुए धृत को पान के पत्ते में रखकर उचित मात्रा से सेवन करने से सब प्रकार के उपदंशरूपी हाथी के लिये सिंह के समान है अर्थात् सब प्रकार के उपदंशों को नष्ट करता है, ब्रणों को नष्ट करता है । इस रसधृत के सेवन के सभी लवणादिक वर्ज्य पदार्थों को खाया देवे (उचित गेहूँ और धृत का ही पथ्य करे) ॥ १-२ ॥

पथ्यापथ्यम्—

दिवा निदां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुर्वन्नं । आयासमम्लं तकं च वर्जयेद्वपदंशवान् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—दिन में सोना, मूत्रवेग का धारण, गुरु अन्न, मैथुन, गुड, परिषम, अम्ल रस वाले द्रव्य और तक इनको उपदंश का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये सब अपथ्य हैं ॥ १ ॥

द्विपलं चिककणं पूर्णं द्विकर्णं सिन्हुस्तस्यकम् । कर्काहत्वकर्कर्षमिता धृष्टमेतत्रिकं भवेत् ॥ २ ॥

जम्भोद्धरगतं तुर्थं पुटपाकविधानतः । पवकं चणकमानं तु सर्वमेतत्सुखद्वके ॥ ३ ॥

जम्भीरसलिलैर्मर्थं गाढं सिद्धं दिनवायात् । उपदंशं चन्द्रकं च व्रणं पूतिप्रमेहकम् ॥ ४ ॥

पृथाकुवीरुद्धद्वलिलं प्सातं निवारयेत् । शार्करासहितं पथ्यं गोधूमान्नं धृतप्लुतम् ॥ ५ ॥

पूणादि योग—चिकनी सुपारी दो पल (८ तो०) निरुण्डी के बीज २ कर्ण, कर्कार (वेत कुमारी) का छिलका एक कर्ण, तीनों को मिलाकर भूज लेवे और जम्भीरी नीदू में तृतीया रख कर पुटपाक की विधि से पाक किया दुआ अर्थात् तृतीया को नीदू चीरकर उसमें रखकर सुख मुद्रण कर मिट्टी से लेवे कर पुटपाक की विधि से अग्नि में पका लेवे, वह पुटपाक तृतीया पक चना के प्रमाण लेकर उपर्युक्त पूणी आदि ओषधियों में मिलाकर अच्छे स्तर में रख कर जम्भीरी नीदू के रस के साथ तिन दिन तक अली भाँति मर्दन कर चिकनके पत्ते में लगा कर सेवन

करे (खावे) तो उपदंश, चन्द्रक, व्रण और पूतिमेह इन सबको नष्ट करता है । इसके सेवन के समय पथ्य में शक्कर सहित धृत से युक्त गेहूँ अन्न सेवन करना चाहिये ॥ २-५ ॥

पल्पात्रे कदुतैले धृथं सिकं च कर्षमेव पृथक् ।

करिपलकं विरोजा च सिन्दूरः सौरकं चैव ॥ ६ ॥

मुद्रादकं च सर्वं पितलपात्रे त्रिपाचितं शिखिना ।

सन्दं पचेत्रप्रमथं स्वपाणिनोदधृथं तत्सिद्धम् ॥ ७ ॥

सितवच्छे संलिप्य ब्रणोपरि स्थापयेत्सम्यक् । चतुभूदेशं सर्वं सशूकदोषं विश्वजं हन्यात् ॥ ८ ॥

शश्कृतं नखजातं दन्तजमामु व्रणं शिखिजम् । इष्वा प्रथयमेतत्रपकाशितं बालबोधाय ॥ ९ ॥

उपदंश में और दूसरा लेप—कट्ट तेल (सरसों का तेल) एक पल, मोम दो अक्ष, कदोका, विरोजा, सिन्दूर, सोरा और मुर्दा शंख प्रस्त्रेक एक २ कर्ण के तेल में मिला पीतल के बर्तन में रखकर अग्नि पर मन्द २ अँच से पकावे और कलंडी वा लकड़ी से चलाता रहे जब सब पक कर मिल जावे तब उतार लेवे शीतल होने पर उसमें से निकाल कर उवेत (स्वच्छ) वज्र पर लेप कर के भली भाँति व्रण पर रख देवे तो इस लेप से क्षत स्थान, शूकदोष और फिरजव व्रण ये सभी नष्ट होते हैं और शश से होने वाले, नख से होने वाले, दाँत से होने वाले तथा अद्धि से जड़ कर हुए व्रण ये सभी शोष नष्ट होते हैं । इस योग को सिद्ध देख कर बालमति (अख्य बुद्धि वाले) वैद्यों के ज्ञान एवं लाभ के लिये प्रकाशित किया गया है ॥ ६-९ ॥

इति इत्युपदंशरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ शूकदोषनिदानम् ।

तस्य सम्प्राप्तिमात्—अक्रमाच्छेकसो वृद्धिं योऽभिवाल्प्यति भूदधीः ।

ध्यायाप्रथमस्तस्य जायन्ते दश चाष्टीं च शूकजाः ॥ १ ॥

शूकदोष निदान—जो मूर्ख मनुष्य अनुचित कम से शिशन को बढ़ाना चाहता है (विष युक्त जलशकादि ओषधियों का प्रयोग करता है) उसे शूकदोष से उत्पन्न होने वाली १८ प्रकार की (सर्वपिका, अष्टोलिका, ग्रथित, कुम्भिका, अलजी, मृद्धित, समूद्र पिण्डिका, अवमन्य, पुष्करिका, स्पर्शदानि, उत्तमा, शतपोनक, त्वक्पाक, शोणितार्दुद, मांसार्दुद, मांसपाक, विद्रुषि और तिलकालक नाम की) व्याधियां हो जाती हैं ॥ १ ॥

सर्वपिकामात्—

गौरसर्वपर्यन्थाना शूकदुर्भन्देतुका । पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्येष्ठा सर्वपिका तु सा ॥ २ ॥

सर्वपिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुर्प्रयोग के कारण कफ और वात के कोप की (कफवात प्रवान) श्वेत सरसों के समान शिशन पर पिण्डियों हो जाती हैं उसे 'सर्वपिका' जाननी चाहिये ॥ २ ॥

अष्टोलिकामात्—कटिनैविषमैभूर्जैर्व्युनाष्टीलिका भवेत् ।

अष्टोलिका के लक्षण—जिस शूकदोष में शूक के विषम प्रयोग करने से (शूक मिश्रित लेप के बराबर नहीं लगाने से अर्थात् कभी कम कभी अधिक लगाने से) वायु के कुपित होने के कारण कठिन पिण्डिया (अष्टोला के समान परन्तु वाताष्टीला के लक्षणों से भिन्न लक्षण वाली) हो जाती है उसे 'अष्टोलिका' कहते हैं ।

ग्रथितमात्—शूकैर्यरूपरितं शक्षद्ग्रथितं नाम तत्कात् ॥ ३ ॥

प्रथित के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के निरन्तर प्रयोग करने से (लेप निरन्तर छगाये रहने से) कफ का कोप होकर गाठ के समान पिण्डिका हो जाती है उसे 'प्रथित' कहते हैं ॥ ३ ॥

कुम्भिकामाह—कुम्भिका रक्तपितोथा जाम्बवास्थिनिभा शुभा ।

कुम्भिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि लेप से कुपित हुए रक्त और पित के कारण जामुन के फल की अस्थि के समान एवं अद्युम वेष वाली (काढ़ी) पिण्डिका शिशन पर हो जाती है उसे 'कुम्भिका' कहते हैं ।

अलजीमाह—तुश्यजां खलीजीं विद्याशयोक्तां च विच्चरणे ॥ ४ ॥

अलजीमाह के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अवैधानिक व्यवहार के कारण प्रमेह पिण्डिका में कही हुई 'अलजी' नाम की पिण्डिका के समान लिङ्ग पर पिण्डिका हो जाती है उसे 'अलजी' कहते हैं (मेद उसमें और उसमें वही है कि इसका कारण शूक दोष है तथा यह केवल लिङ्ग पर ही होती है और उसका कारण प्रमेह तथा दुष्ट मेद है और वह सन्तुष्टमय तथा मांसल स्थानों में होती है) ॥ ४ ॥

मृदितमाह—मृदितं पीडितं यत्त संरब्धं वातकोपतः ॥

मृदित के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक प्रयोग के पश्चात पीडित करने से वायु कुपित होकर शिशन में शोथ उत्पन्न कर देता है उसे 'मृदित' कहते हैं ।

सम्मूढपिण्डिकामाह—पाणिभ्यां भृशसंरुद्धे सम्मूढपिण्डिका भवेत् ॥ ५ ॥

सम्मूढ पिण्डिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के प्रयोग के पश्चात शिशन को हाथों से अधिक मल देने से (अधिक मदनं कर लेप करने से अथवा लेप के पश्चात कण्ठ आदि होने पर अधिक मदनं कर देने से) वात के कुपित होने से ऊँचा-नीचा शिशन हो जाता है अथवा ऐसी पिण्डिका हो जाती है उसे 'सम्मूढ पिण्डिका' कहते हैं ॥ ५ ॥

अवमन्यमाह—

दीर्घा व्याध्यश्च पिटिका दीर्घन्ते मध्यतस्तु याः । सोऽवमन्यः कफासृग्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥

अवमन्य के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक प्रयोग के पश्चात अविधि होने से कफ और रक्त कुपित हो जाता है, जिससे कमक के कोष के आकार की अनेक पिण्डिकाओं से मिश्रित (एक पिण्डिका उस रूप की) लिङ्ग पर ही जाती है उसे 'अवमन्य' कहते हैं ॥ ६ ॥

पुष्करिकामाह—

पिटिकामिश्रिता या तु पित्तशोणितसम्भवा । पद्मकणिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥

पुष्करिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि प्रयोग होने से पित्त और रक्त कुपित हो जाता है जिससे कमक के कोष के आकार की अनेक पिण्डिकाओं से मिश्रित (एक पिण्डिका उस रूप की) लिङ्ग पर ही जाती है उसे 'पुष्करिका' कहते हैं ॥ ७ ॥

स्पर्शहानिमाह—

स्पर्शहानिं तु अनयेच्छोणितं शूकदूषितम् । वातपित्तकृतो ज्ञेयस्वपाको उवरदाहकृत् ॥ ८ ॥

स्पर्शहानि के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि प्रयोग होने से रक्त दूषित होकर स्पर्श जात की हानि कर देता है (शिशन पर स्पर्श करना नहीं जात होता है) अर्थात लिङ्ग में प्रसूति कर देता है उसे 'स्पर्शहानि' कहते हैं ॥ ८ ॥

उत्तमामाह—

मुद्रमाषोपमा रक्ता रक्तपितोद्वाचा च सा । अयामिरेषेत्तमा वाम शूकाजीर्णिमित्तजः ॥ ९ ॥

मुद्रमाषोपमा के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि प्रयोग से अर्थात वार २ शूक का अधिक

प्रयोग करने से रक्तपित्त कुपित हो जाता है जिससे मूंग और उड्ड के समान रक्त वर्ण की पिण्डिका लिङ्ग पर ही जाती है उन्हें 'उत्तमा' कहते हैं ॥ ९ ॥

शतपोनकमाह—

छिद्रेण्यमुखेलिङ्गं चित्तं अस्य समन्ततः । वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः ॥ १० ॥

शतपोनक के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण वात और रक्त कुपित होकर लिङ्ग पर चारों ओर से सूक्ष्म मुख वाले छिद्रों से तुक ब्रण (पिण्डिकाओं) को उत्पन्न छार देता है (चलनी के समान पिण्डिका कर देता है) उसे 'शतपोनक' कहते हैं ॥ १० ॥

त्वक्पाकमाह—वातपित्तकृतो ज्ञेयस्वपाको उवरदाहकृत् ॥

त्वक्पाक के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग से वात और पित्त कुपित होकर लिङ्ग की त्वचा में पाक कर देते हैं तथा ज्वर और दाइ भी उसमें होता है उसे 'त्वक्पाक' कहते हैं ॥

शोणितारुदमाह—कूण्डः इष्टोटै स्वरक्षाभिः पिटिकार्थिनीपीडितम् ॥ ११ ॥

शोणितारुद के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण रक्तकुपित होकर अरुद के समान लिङ्ग पर कूण्ड वर्ण के फोड़ों और रक्त वर्ण की पिण्डिकाओं को कर देता है तथा उसमें अतिपीड़ा होती है उसे 'शोणितारुद' कहते हैं अर्थात् शोणितारुद के ये लक्षण हैं । (रक्तारुद और भी होता है पर उसके लक्षण स्थानादि में भिन्नता होती है यह शिशन पर ही फोड़े और फुनिसीयों से युक्त होता है) ॥ ११ ॥

मांसारुदमाह—यस्य वास्तुरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितारुदम् ।

मांसदोषेण जानीयारुदरुदं मांससंस्थवस्थ ॥ १२ ॥

मांसारुद के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण प्रद्वारादि होने से मांस दूषित होकर अरुद के समान लिङ्ग पर व्रण उत्पन्न कर देता है उसे 'मांसारुद' कहते हैं । (मांसारुद जो अन्य अरुद रोग में कहा गया है उसके निदान स्थानादि से इसमें भिन्नता होती है) अर्थात् शूक दोषज मांसारुद के ये लक्षण हैं ॥ १२ ॥

मांसपाकमाह—

शीर्घन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वश्च वेदनाः । विद्यान्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥

मांस पाक के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण तीनों दोष कुपित होकर शिशन के यांस को शीर्घा कर देते हैं (पकाकर गांठ देते हैं) और तीनों दोषों में होने वाली सब पीड़ायें होती हैं उसे 'मांसपाक' कहते हैं (यह विद्रोषज है) ॥ १३ ॥

विद्रधिमाह—विद्रधि सञ्जिपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥

विद्रधि के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग से तीनों दोष कुपित होकर शिशन पर विद्रोषज विद्रधि के समान लक्षणों वाली (नाना प्रकार के वर्ण, पीड़ा और स्नाव से युक्त) विद्रधि उत्पन्न कर देते हैं उसे शूकदोषज विद्रधि कहते हैं ॥

तिलकाळकानाह—

कूण्डानि चित्राण्यथ वा शूकानि सविषाणि तु । पातितानि पच्चरथाणु मेद्भनिरवशेषतः ॥

कालानि भूत्वा मांसानि शीर्घन्ते यस्य देहिनः ।

सञ्जिपातसमुत्थान्त तान्विद्यान्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

तिलकाळक के लक्षण—जिस शूकदोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण तीनों दोष कुपित होकर अर्थात् काला चित्रित (काले पीले नीले इवैतादि) तथा अधिक विषयुक्त ज्वल शूक के लेप करने से तीनों दोष कुपित होकर संपूर्ण शिशन (लिङ्ग) को शीघ्र ही पका देते हैं जिससे उस स्थान का

धपवास और आहारों का अनियन्त्रित धूप-परिश्रम तथा अथ से पीडित होने से शीघ्र ही शोषक जल का सेवन (पीने वा स्नान) करने से, अजीर्ण में भोजन वा अध्यशन करने से, पञ्चकर्म (बमन विरेचनादि) के विधिपूर्वक न रहने से नवीन अन्न दही, मछली, अमरुद्रव्य और लवण रस के अतिसेवन करने से, उड्ड, मूळी, पीठी, तिल, क्षारद्रव्य और गुड़ के अधिक सेवन करने से, अन्न के अजीर्ण अवस्था में मैथुन करने से, दिन में सोने से बाह्यण एवं गुरुजनों की अवहेलना करने से तथा अन्य (गो-ब्रह्म-हस्तादि) पाप कर्मों को करने से और अन्यान्य पूर्व जन्मान्तित पापकर्मों से प्रेरित होकर वातादि तीनों दोष कुपित होकर त्वचा, रक्त, मांस और शरीर सम्बन्धी लक (लसीका) को दूषित कर देते हैं ॥ १६ ॥

दूषयन्ति स कुषानीं स्पसको द्रव्यसंग्रहः । त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुषमुशन्ति लत् ॥७॥

कुषों का द्रव्यसंग्रह सात प्रकार का है, उन सातों में वास, पित्त, कफ ये तीनों दोष हैं तथा त्वचा, मांस, रक्त और लसीका ये चारों दूष हैं । वातादि के दूषित होने पर (पहले) त्वचा विवर्ण हो जाती है और अतिदूषित होने पर (पश्चात्) कुष हो जाता है ॥ ७ ॥

कुष की संख्या—धपयुक्त कारणों से सात महाकुष और अन्य भी र्यारह क्षुद्र कुषरोग मिलकर अठारह प्रकार के कुषरोग होते हैं ॥

अतः कुषानि जायन्ते सप्त वैकादशैव तु । कुषानि सप्तभावो दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ॥ ८ ॥

सर्वेष्वपि विदोषेषु दृष्टपदेशोऽधिकर्तवतः ।

कुषों की संख्या—(महा) कुष सात और क्षुद्र कुष र्यारह इस प्रकार १८ प्रकार का कुषरोग होता है । उनमें वातिक, पैत्तिक, कफज, वातपित्तज, कफपित्तज तथा वातपित्तकफज, ये सात महाकुष हैं । वस्तुतः सभी कुषों में तीनों दोष कुपित रहते हैं किन्तु दोष की प्रवानता के अनुसार उनका पृथक् २ नाम रखा जाता है । जैसे 'कपाल' कुष में तीनों दोष कुपित रहते हैं किन्तु वात की अधिकता से इसकी गणना वातजुषों में होती है ॥ ८ ॥

अतिशलश्चरस्पर्शः स्वेदाद्वेदौ विवर्णता ॥ ९ ॥

दाहः कण्ठद्रव्यस्वच्छ्वापस्तोदः कोठोचति श्रमः । व्यानानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥
स्फुलानामपि रुच्छ्वरं निमित्तेऽपि ग्रकोपणम् । रोमदर्शोऽस्तुजः कार्यं कुषलच्छणमग्रजम् ॥११॥

कुष का पूर्वरूप—जब कुष होने को होता है तब उसके उस स्थान पर अत्यन्त चिकनाइट, रुक्षता और स्वेद (पसीना) अधिक होता है अथवा नहीं होता है तथा शरीर की विवर्णता दाह, कण्ठ, त्वचा में शूलयता, सूई चुम्बने के समान पीड़ा, कोठ (चक्के) का होना, परिश्रम नहीं करने पर भी यकान, ब्रणों का शीघ्र र उत्पन्न होना और बहुत दिन तक रहना तथा अधिक शूल होना, ब्रणों के रुक्ष होने (पूर्ण भर जाने) पर भी उनमें रुक्षता, होना और योद्धे ही कारणों से ब्रणों में अधिक कोप हो जाना, रोमाङ्ग होना और रक्त का काला पृष्ठ जाना ये कुष रोग के पूर्वरूप हैं ॥ ९-११ ॥

तत्र कपालकुषमाह—

कुण्डाणां कपालाभं यद्युधं पृष्ठं तनु । कापालं तोद्वश्वुलं तत्कुषं विषमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

कपाल कुष—जिस कुष का वर्ण काला, लाल अथवा कपाली अर्थात् घड़ के ढकड़ों के समान वर्ण का रुक्ष, कठोर, पतला अर्थात् जिसकी त्वचा पतली ही गया हो और सूई चुम्बने के समान जिसमें बहुत पीड़ा हो वस कुष को कपाल कुष कहते हैं । वह कुष विषम (दुष्यिकरित्य) है ॥ १२ ॥

उद्गुर्वरमाह—

उद्गुर्वरागकण्डमिः परीतं रोमपिभरम् । उद्गुर्वरस्फलाभासं कुषमौदुम्बरं चदेत् ॥ १३ ॥

उद्गुर्वर कुष—जिस कुष में पीड़ा, दाह राग (ललाई) कण्ड होता हो तथा उस स्थान के

रोम कविश वर्ण के हों और वो गूलर के फल समान पीत रक्त मिथित वर्ण का हो उसे उद्गुर्वर कुष कहते हैं ॥ १३ ॥

मण्डलकुषमाह—श्वेतं रक्तं विश्वरं स्थ्यानं लिङ्गसुत्सन्नमण्डलम् ।

कुष्ठ्यमन्योन्यसंयुक्तं कुषं मण्डलसुच्यते ॥ १४ ॥

मण्डल कुष—जिस कुष का वर्ण श्वेत रक्त, सिर (कठिन), गढ़ या दलवाला चिकना, उठे हुए और परस्पर मिले हुए मण्डल वाला अर्थात् जिसके चक्कते उठे हुए और परस्पर मिले हुये हों उस कुष को मण्डल कुष कहते हैं । यह कष साध्य है ॥ १४ ॥

ऋष्यविहृमाह—

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तःस्थार्वं स्वेदनम् । अथव्यजिह्वासंस्थानसूष्यजिह्वं तदुपस्थते ॥ १५ ॥

ऋष्यविह—जिस कुष का स्थान कर्कश (खर स्पर्श) और किनारे में रक्तवर्ण के तथा मध्य में इयाम वर्ण हो, पीड़ा हो तथा नीचे अण्डकोष वाले हरिण की विहा के समान ही उसे ऋष्यविह कहते हैं (जहाँ 'ऋष्यजिह्व' पाठ है वहाँ ऋष्य की विहा के समान अथ समश्नान चाहिये) ॥ १५ ॥

पुण्डरीकमाह—

सुश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकद्वलोपमम् । रक्तान्तर्द्वाहकपश्चालयं चितं पश्चमिवाम्बुद्धिः ॥

सोस्तेष्वं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ॥ १६ ॥

पुण्डरीक कुष—जिस कुष का वर्ण अर्थात् श्वेत सुख काल किनारो वाला पुण्डरीक नामक कमल के पत्तों के समान हो, किनारे पर रक्त वर्ण हो, उसमें दाह और कण्ठ हो, जल में रखने हुए कमल की आपि प्रतीत होता हो और कुष उभावा हुआ हो तथा राग युक्त (आकृति लिये) हो उसे पुण्डरीक कुष कहते हैं ॥ १६ ॥

सिद्धमकुषमाह—

सिद्धं ताञ्च तनु च यद्वज्जो वृष्टं विमुचति । प्रायश्चोरसि तस्मिमसलाद्युक्तुमोपमम् ॥ १७ ॥

सिद्धम कुष—जिस कुष का वर्ण श्वेत तथा ताङ्च के रंग के ऐसा ही, पतला चर्म वाला हो और उसके स्थान पर विसने से धूल की तरह लूटता हो और प्रायः वह वक्षस्थक पर तुम्बी (लौकी) के पुष्प के समान हो उसे सिद्धम कहते हैं ॥ १७ ॥

काकणनितकामाह—

पूर्वं रक्तं च कुण्डं च काकणन्तीफलोपमम् । सदाहमस्पृशसंहं सपाकं तीव्रेदनम् ॥ १८ ॥

थक्काकणनितकावर्णं सपाकं तीव्रेदनम् । श्रिदोषिक्षुं तत्कुषं काकणं नैव सिध्यति ॥ १९ ॥

काकणनितिका कुष—जिस कुष का वर्ण रक्त और मध्य में कुण्ड, शूष्वची के आकार का दाह युक्त हो, वही स्पर्श नहीं सहा जाते, उसमें पाक और पीव अधिक हो तथा शूष्वची के वर्ण का एक युक्त तीव्र वेदना वाला हो और तीनों दोषों के प्रबल लक्षणों से युक्त हो वह कुष काकणनितिका कुष है ॥ १८-१९ ॥

अथैकादशा कुषकुषानि

तत्र चर्मकुषमाह—

अस्वेदनं अहावास्तु अन्यरस्यशक्लोपमम् । तदेककुषं चर्माद्यं लवृलं हस्तिचर्मवत् ॥ २० ॥

चर्म कुष—जिसमें स्वेद नहीं हो, बहुत स्थान में ध्यास हो, जो मछली के ढकड़ों के समान छिलकेदार और इसी के चर्म के समान योग्य हो वसे चर्मकुष कहते हैं ॥ २० ॥

किटिमाह—श्यावं किणस्वरस्पर्शं पृष्ठं किटिभं मतम् ।

किटिम् कुष—जिसका वर्ण श्याम हो तथा जिसका स्थान खरस्पशी (रक्ष) और कठोर हो उसे किटिम् कुष कहते हैं ॥

वैपादिकमाह—वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥ २१ ॥

वैपादिक कुष—जिसमें इथ-पौद आदि फट जाते हैं और तीव्र पीड़ा होती है उसे वैपादिक कुष कहते हैं ॥ २१ ॥

अक्षसकमाह—कण्ठमधिः सरागैश्च गण्डेरलसकं चदेत् ॥

अक्षसक कुष—जिसमें कण्ठ और राग युक्त (रक्षवर्ण के) गण्ड वा फोड़े हों उसे अक्षसक कुष कहते हैं ।

ददुमण्डलमाह—सकण्ठुरागपिटिकं ददुमण्डलमुद्गतम् ॥ २२ ॥

ददुमण्डल कुष—जिसमें कण्ठ और लाकिमा लिये दुये पिङ्किका युक्त मण्डलाकार त्वचा के ऊपर मण्डल हो उसे ददुमण्डल कुष (दाद) कहते हैं ॥ २२ ॥

चर्मदलमाह—रक्षसंशुल्कं कण्ठमूर्त्यकोटं यद् दलयस्यपि ।

तद्वर्मदलमायथात्तमस्पर्शसहस्रुच्यते ॥ २३ ॥

चर्मदल कुष—जिसका वर्ण रक्त हो, उसमें शुल्क हो, कण्ठ हो, फोड़े हों और पूट भी बाते हों और किसी प्रकार का रक्षी असश्च हो उसे चर्मदल कुष कहते हैं ॥ २३ ॥

पामामाह—सूचमा बहुयः पिङ्किकाः स्नाववस्थः पामेयुक्ताः कण्ठमध्यः सदाहाः ।

पामा कुष—जिसमें छोटी २ बहुत सी पिङ्किकायें हो स्नाव और दाह होता रहे उसे पामा कुष कहते हैं ॥

सैव स्फोटैस्तीव्रद्वाहैहरेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुस्प्रा स्फिजोश्च ॥ २४ ॥

कच्छुकुष—वही पामा वज्र तीव्र दाह और पिङ्किकाओं से युक्त होकर हाथों और स्फिक्क प्रदेश (कुषहे) में उच्चरूप से हो जाते हैं तब उन्हें कच्छु कहते हैं ॥ २४ ॥

विस्फोटमाह—स्फोटाः श्यावाक्षणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुतवचः ॥

विस्फोटक कुष—जिस में पिङ्किकायें श्यामा अथवा अश्व वर्ण की हों और उन पर की त्वचा पतली हो उसे विस्फोटक कुष कहते हैं ॥

रक्षामाह—कण्ठचित्ता या पिङ्किका शरीरे संसाध्यमाणा रक्षसेच्यते सा ॥ २५ ॥

रक्षा कुष—जिस में शरीर पर पिङ्किकायें कण्ठ तथा स्नाव युक्त बहुत रहे उसे रक्षा कुष कहते हैं ॥ २५ ॥

शतारमाह—रक्षसं सदाहाति शतारुः श्याद्वृत्तवर्णम् ॥

शतारकुष—जिसमें रक्त अथवा श्याम वर्ण के दाह युक्त बहुत से ब्रण हो उसे शतारु कुष कहते हैं ॥

विचर्चिकामाह—सकण्ठः पिङ्किका श्यावा बहुस्त्रावा विचर्चिका ॥ २६ ॥

विचर्चिका कुष—जिस कुष में कण्ठ युक्त, श्यामवर्ण की बहुत स्नाकवाली पिङ्किकायें हो उसे विचर्चिका कुष कहते हैं । यह विपादि का कुष का नेद है, स्वतः इसकी गणना कुषों में नहीं है ॥

पाण्डुरं शिव्रमिरयुक्तं सस्तावं कण्ठसंयुतम् ।

शिव कुष—जो पाण्डुवर्ण का स्नाव और कण्ठ युक्त हों उसे शिव कुष कहते हैं ॥

अनन्तिनदवधजं साध्यं शिव्रं वृद्धंमतोऽन्यथा ॥ २७ ॥

साध्यासाध्यता—यद शिव यदि अविन से जलने के कारण नहीं हुआ हो तो साध्य है और अन्य सभी असाध्य हैं ॥ २७ ॥

कुषानां दोषव्रतस्य नियतलिङ्गमाह—

खरं श्यावाक्षणं रुद्धं वातकुषं सवेदनम् ।

वातजकुष—जो स्पर्श में कर्कश हो, वर्ण श्याम अथवा अक्ष हो, रक्ष हो और पीड़ा जिसमें अधिक हो उसे वातज कुष जानना चाहिये ॥

पित्तजकुष—जिसमें दाह, राज (लाकिमा) और स्नाव हो उसे पित्तज कुष जानना चाहिये ॥

कफाक्लेदि घनं स्निग्धं सकण्ठसैरयगैरवम् ।

कफजकुष—जिसमें क्लेद (पूय) हो, घन गाढ़ापन हो, स्निग्धज (पिछिलकता) हो, कण्ड हो, शीतलता हो और गुहता हो उसे कफज कुष कहते हैं ॥

द्विलिङ्गं द्रन्दजं कुषं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् । स्पश्चान्निरखेद्वयमीषरकण्ठश्च जायते ॥ २९ ॥

द्रन्दज और सान्निपातिक कुष—इन उपर्युक्त लक्षणों में दो दोषों के मिलित लक्षण वाले कुष को द्रन्दज और तीनों दोषों के मिलित लक्षण वाले को सान्निपातिक कुष कहते हैं । सान्निपातिक कुष में स्पर्श का ज्ञान तथा कष नहीं होता और योड़ी २ खुजली होती है ॥ २९ ॥

इदानीमुत्तरोत्तरं सप्तवतुगतकुषलक्षणं कर्मेणोच्यते—

तत्रादौ रसगतमाह—त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुषे रौचयं च जायते ।

त्वक्स्थापो रोमहर्षश्च स्वेदस्थापि प्रवर्तनम् ॥ ३० ॥

त्वचागत कुष के लक्षण—कुष जब रक्त धातु के आश्रय से होता है तब उसमें अक्ष का वर्ण विवर्ण, त्वचा में चतुर्यता, रोमाङ्ग और स्वेद अधिक होता है (इसमें धातु त्वचा में ही रहता है इसी कारण इसे त्वचागत भी कहते हैं) ॥ ३० ॥

रक्षगतमाह—

कण्ठविषयकश्चैव कुषे शोणितसंश्रिते ।

रक्षगत कुष—जिसमें खुबली और पूय अधिक होता है उसे रक्षगत कुष जानना चाहिये ॥

बाहुश्च वक्त्रशोश्चकार्कश्यं पिटिकोद्गमः ॥ ३१ ॥

तोदः स्फोटः स्थिरत्वं च कुषेण मांससमाश्रिते ।

मांसगत कुष—मांसगत कुष में बाहुश्च (मोटे मोटे मण्डल) हो जाते हैं, सुंदर सूखता है, मांस कर्कश हो जाता है और पिङ्किकायें निकलती हैं, मुख तथा सूर्दे चुम्हाने के समान पीड़ा और स्फोट होता है । यह मांसाश्रित कुष अचल होता है ॥ ३१ ॥

मेदोगतमाह—दौर्मन्द्यं गाष्ठ्रदोषश्च पूरोत्थः कूपयस्तथा ॥ ३२ ॥

गात्राणां भेदनं चापि कुषेण मेदःसमाश्रिते । कौण्यं गतिच्योऽङ्गानां सम्भेदः चतुर्सपणम् ॥ ३३ ॥

मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥

मेदोगत कुष—जिस कुष में दुर्मन्द्य हो, शरीर के अक्ष दूषित हो, पूये में क्रमि उत्पन्न हो, शरीर का भेदन हो, दाय टेहे हों, चक्कने की शक्ति का नाश हो, अक्ष दूर्वते हों, क्षत (कुष मण्डल) फैलता हो और पूर्व कथित रसादि धातुगत कुष के सभी लक्षण भी होते हों उसे मेद-स्थान गत कुष जानना चाहिये ॥ ३२-३३ ॥

अस्थिमज्जाद्रयगतमाह—

नासाभङ्गोऽचिरागश्च चतुर्षु क्रिमिसम्भवः । स्वरोपवातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३४ ॥

अस्थिं और मज्जागत कुष—जिस कुष में नासिका भंग हो, नेत्र रक्त वर्ण के हों, क्षत में क्रमि उत्पन्न हो और स्वर का नाश हो जावे उसे अस्थिं और मज्जा गत कुष जानना चाहिये ॥

शुक्रगतमाह—

दृष्टपत्थोः कुष्ठवाहुव्याद् द्वृष्टशोणितशुक्रयोः। अच्छव्यं तयोर्जातिं ज्येयं तद्युपि कुष्ठितम् ॥३५॥
शुक्रगत कुष्ठ—पति-पत्नी के कुष्ठ वाहुव्य से दृष्टित रज और वीर्य से उत्पन्न सन्तान कुष्ठ से अवश्य युक्त होती है। अतः जिसे जन्म से ही कुष्ठ हो चुके शुक्र गत कुष्ठ कहते हैं (रस वातु पत से लेकर शुक्र वाहुगत के कुष्ठों से जो सन्तान होती है वह उस दोष से युक्त होती है) ॥३५॥
साध्यासाध्यमाह—साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत्।

मेदोगं द्वृष्टद्वृजं याप्य वर्त्य मज्जास्थिसंश्चितम् ॥३६॥

साध्यासाध्यता—त्वचागत (रसगत), रक्तगत, मांसगत तथा वात और कफ की अधिकता से होने वाले कुष्ठ साध्य होते हैं तथा मेद वाहुगत कुष्ठ और द्वृष्टद्वृज कुष्ठ याप्य और मज्जा तथा अस्थिगत कुष्ठ असाध्य होते हैं ॥३६॥

पुनरसाध्यलक्षणम्—

कृमिकृद्वाहमन्दागिनसंयुक्तं यत्विदोषजम्। ग्रिभिन्नं प्रखुताङ्गं च रक्तलेन्द्रं दृतस्वरम् ॥३७॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठितम् ॥

जिस कुष्ठ में किमि हो गये हों, दाइ हो, मन्दविन हो, जो तीनों दोषों की प्रबलता के मिलित लक्षणों वाला (विदोषज) हो, जो फूट गया हो, जिससे साव अधिक होता हो, तेव रक्तवर्ण के हो गये हों, स्वर नष्ट हो गया हो पञ्चकर्म (वमन विरेचनादि) के गुणों को निष्फल करके जो उत्पन्न हुआ हो वह कुष्ठरोगी को मार डालता है अर्थात् ये सब कुष्ठ असाध्य हैं ॥३७॥

कुष्ठेषु चिकित्सार्थं दोषप्राप्त्यमाह—

वातेन कुष्ठं कापालं विच्छादौद्वृज्वरं कफात्।

मण्डलाखर्यं विच्चर्चीं च वृष्ट्याखर्यं वातपित्तजम् ॥३८॥

कुष्ठरोग में वातादि दोषों की प्रधानता—दाइ की प्रधानता से कापालकुष्ठ, पित्त की प्रधानता से औद्धवर कुष्ठ, कफ की प्रधानता से मण्डल तथा विचिकिका कुष्ठ और वातपित्त उभय की प्रधानता से वृष्ट्यविह कुष्ठ होता है ॥३८॥

चमेकुष्ठकिटिभसित्मालसविपादिकाः। वातश्लेष्मोद्धवाः रक्तेष्मपित्ताहुदुशताहृषी ॥३९॥

वात-कफ की प्रधानता से चमेक, किटिभ, सिध्म, अलस और विपादिका कुष्ठ होते हैं ॥३९॥
पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा। सर्वैः स्थात्काकाणं पूर्वं त्रिकं दक्षु सकाकणम् ॥४०॥

पुण्डरीकमूष्यजिह्वं महाकुष्ठानि सप्त हु ॥

कफ-पित्त की प्रधानता से ददु, शतारु, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदल नामक कुष्ठ होते हैं, सब विदोषों की प्रधानता से काकण कुष्ठ होता है। इस ग्राकार पइके के त्रिक अर्थात् कपाल, उदुव्वर और मण्डल कुष्ठ तथा ददु, काकण, पुण्डरीक और ऋष्य विह ये सात महाकुष्ठ होते हैं ॥४०॥

शित्रमाह—

कुष्ठेकसञ्चर्वं चित्रं किलासं दारुणं च चतुः। निदिष्मपरिक्षावि विधातुज्ज्वरसंश्चयम् ॥१॥

चित्र कुष्ठ के लक्षण—कुष्ठ के ही समान कारणों से उत्पन्न होने वाले अर्थात् जिन २ विशुद्ध औजन, पाप कर्मादि से कुष्ठ होता है उन्हीं सब कारणों से उत्पन्न होने वाला चित्र, किलास अथवा दारुण कुष्ठ होता है। इसमें साव नहीं होता। यह विदोष से अथवा विधातु (रक्त-मांस-मेद) से उत्पन्न और त्रिवातु का अत्रय करके रहता है ॥१॥

वाताद्वृजाहृणं विच्छात्तात्रं कमलप्रवत्। सदाहं लोमविधवंसि कफाद्यवेत धनं गुह ॥२॥
सकण्डुरं क्षमादक्तमांसमेदःसु चाऽदिशेषु। वर्णेनवेद्यगुरुयं कृषकं तत्त्वोत्तरोत्तरम् ॥२॥

वातादि भेद से शिवत्र के लक्षण—वात कोप से उत्पन्न शिवत्र स्पर्श में रुक्ष तथा लाल वर्ण का होता है, पित्त कोप से उत्पन्न तात्र वर्ण के लाल कमल पत्र समान दाह युक्त और रोम को नष्ट करने वाला होता है। कफ कोप से उत्पन्न व्येत वर्ण का, धन (दृढ़) और युर (मारी) और कण्डु युक्त होता है। यह कुष्ठ रोग कम से रक्त, मांस और मेद के आवश्य रहता है अर्थात् वातज अरुण वर्ण का रक्त गत होता है, पित्तज तात्र वर्णादि का मांस गत और कफज व्येत वर्णादि का मेदो गत होता है। इसके दो भेद और भी हैं एक व्रण (अनशिद्धव्रण व्रण) होने वाला और दूसरा वातादि दोषों से होने वाला। ये दोनों प्रकार के (मण्ज, दोषज) कुष्ठ उत्तरोत्तर कष्ट साध्य होते हैं ॥२-३॥

तस्य साध्यासाध्यत्वमाह—

अशुष्यलोमाद्वृजमसंसृष्टमयो लवम्। अनगिनहृष्टजं साध्यं चित्रं वर्त्यमतोऽन्यथा ॥४॥

चित्र कुष्ठ की साध्यासाध्यता—जिस शिवत्र के रोग अधिक सकेत न हुए हों, त्वचा पतली हो, परस्पर सदा हुआ न हो, नवीन हो और अनशिद्धव्रण (अग्नि से जलने के कारण नहीं हुआ) हो वह चित्र कुष्ठ साध्य होता है और इसके विपरीत लक्षण वाला चित्र कुष्ठ असाध्य होता है ॥४॥
गुह्यपाणितलोष्टेषु जातमप्यविचरन्तम्। वर्जनीयं विशेषण किलासं सिद्धिमिष्ट्युता ॥५॥

गुह्य स्थान (लिंग-योनि-युदा आदि) में हाथ की इयेली तथा पांव के तलवों और ओडों में हुए चित्र कुष्ठ यदि नवीन भी उत्पन्न हुआ हो तो वह असाध्य है ॥५॥
कुष्ठादिसंसर्गज्ञान् रोगानाह—

स्पैशैकाहरशय्यादिसेवनात्प्रायशो गदाः। सर्वे स्वाद्वारिणो नेत्रविग्विकारा विशेषतः ॥६॥

कुष्ठ आदि संसर्गज रोग—स्पैश करने से, जूठा खाने से और शया पर सोने से संसर्गज रोग संसर्ग के कारण फैल जाते हैं। विशेष कर नेत्र और त्वचा के रोग तो अवश्य ही फैल जाते हैं ॥६॥

प्रसङ्गाद्वात्रासंस्पर्शात्त्वांश्वासासहोजनात्। सहस्रयासनाचापि वस्त्रमालयानुलेपनाद् ॥७॥
कुष्ठं उत्तरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसर्विकरोगाश्च सङ्क्रामन्ति नशधरम् ॥७॥

परस्पर पक दूसरे का रोग, शरीर के स्पैश से, शास प्रशास के परस्पर-संयोग से, एक साथ भोजन या शया पर शयन करने और बैठने से तथा एक दूसरे के वस्त्र-माला आदि के धारण करने से कुष्ठ, ऊर, शोष, नेत्राभिष्यन्द और औपसर्विक (शीतकादि रोग) एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को हो जाते हैं ॥७-८॥

मरणं यदि कुष्ठेन पुनर्जातस्य तद्वेत । नातो निन्द्यतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ॥९॥

पुनर्जन्म में भी कुष्ठी होने का वचन—यदि कुष्ठ रोग की अवस्था में हो यृत्यु हो जावे तो पुनः जन्म होने पर भी कुष्ठ रोग अवश्य हो जाता है। कुष्ठ से बढ़कर निन्दा वाला दूसरा रोग नहीं है ॥९॥

अथ कुष्ठचिकित्सा

शातोत्तरेषु सर्विवर्मनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु । पित्तोत्तरेषु मोषो रक्तस्थ विरेचनं विहितम् ॥

कुष्ठ की सामान्य चिकित्सा—वात की अधिकता से होने वाले कुष्ठ में (औषध सिद्ध) पृत्तजा पान कराना चाहिये, कफ की अधिकता से होने वाले कुष्ठ में वमन कर्म कराया चाहिये और पित्त की अधिकता से होने वाले कुष्ठ से रक्तमोक्षण और विरेचन कराना चाहिये ॥१॥
प्रभूतं वा जलौकाभिः शङ्कालाङ्गुशिराध्यैः। स्निग्धस्थ मोषयेष्वर्कं मुच्छं कुष्ठे पुनः पुनः ॥१॥

यदि रक अधिक दृष्टित हो गया हो तो रोगी को पहले स्नेहन देकर लोंगो से, तिंगो से, सुम्भी से और शिरामोक्षण कर के रक निकलवा देवे। कुष्ठरोग में बार २ ऐसा करना चाहिये ॥

कुषे रक्त कुषे योषे स्नेहैः संसमिसेऽनिके । रसायनानि पाशाद्य प्रशस्ताः कुषिनां मद्भाः ॥३॥
कुषे रोगे का रक्त मोक्षण कराकर (विरेचनादि से) दोष को हरण कर स्नेहन आदि से वायु का शान्त होने पर रसायन और प्राश (अवकेह) आदि देना सचित है ॥३॥

वसनम्—

यथवासापदोलानां निष्ठस्य फलिनीवच्चः । कषायो मधुना पीतो वानिकुन्नमदनानिवतः ॥
वमन विधि—जो, वासा (अहसा) परवक पत्र, नीम तथा सोजा पाठा की छाल और मैन फल (को समभाग लेकर विषिपूर्वक क्षय कर शहद के साथ पान करने से वमन होता है ॥
विरेचनम्—विरेचन प्रयोक्त्वाद्य श्रिवृहन्तीफलिक्ष्मीः ।

विरेचन विधि—निशोथ, दन्तीमूल और फलत्रिक (आंवला, हरड़, बहेड़ा) का क्षय पिण्डाने से विरेचन होता है ॥

घटे मःसे शिरामोहं प्रतिमासं विरेचनम् । प्रतिपञ्च च वमनं कुष्टे लेपं श्यहाच्चरेत् ॥१॥

चिकित्सा-क्रम—कुषे रोग में प्रत्येक छे महीने पर शिरामोक्षण हारा रक्त निकलवाना और प्रत्येक महीने में विरेचन देना, प्रत्येक पक्ष में वमन करना और तीन २ दिन पर लेप कराना चाहिये ॥२॥

अथ लेपाः

पथ्याकरञ्जसिद्धार्थनिशावरुग्जसैन्धवैः । विढङ्गसहितैः पिष्टैर्लेपमात्रेण कुषजित् ॥३॥
पथ्यादि लेप—हरड़, करंज, श्वेत सरसों, इलदी, कुण्ड जीरक, सेंधानमक और वायविंग को समभाग लेकर जल के साथ विषिपूर्वक पीसकर लेप लगाने से कुष नष्ट होता है ॥३॥

पृष्ठाकुष्टविढङ्गानि शाताह्ना चित्रकं बला । दन्ती रसाज्ञनं चेति लेपः कुषविनाशनः ॥२॥

दलादि लेप—इलायची, कुट, वायविंग, सौफ़, चित्रक मूल, बरिआरा, दन्तीमूल और रसैत को समभाग लेकर जल के साथ विषिपूर्वक पीसकर लेप लगाने से कुष रोग नष्ट होता है ॥

मनःशिलाले मरिचानि तैलमार्कं पथः कुषहरः प्रदेहः ।

मनःशिलादि लेप—मैनसिल, हरताल, मरिच, सरसों का तैल और मदार का दूध समभाग लेकर विषिपूर्वक पीसकर लेप लगाने से कुष रोग नष्ट होता है ॥

करञ्जबीजैडगं सकुष्टं गोमूत्रपिष्टश्च परः प्रदेहः ॥३॥

करञ्ज बीजादि लेप—करञ्ज के बीच, चक्रमर्द के बीज और कुट को समभाग लेकर गोमूत्र के साथ विषिपूर्वक पीस कर लेप लगाने से कुष रोग नष्ट होता है ॥३॥

चिकित्सादिनभलातदन्तीशयाकनिष्ठवैः । काञ्जिकैः पेषितैर्लेपः श्वेतकुषविनाशकृत् ॥४॥

श्वेत कुष में वश्यादि लेप—गन्धक, वायविंग, चीता, भिलावा, दन्ती, अमृतास की जड़ और नीम की छाल को समभाग लेकर काञ्जी के साथ विषिपूर्वक पोस कर लेप लगाने से श्वेत कुष नष्ट होता है ॥४॥

श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जत्वचो वायर्थ्यः । सुमनःप्रवालयुक्तो लेपः कुषापहः सिद्धः ॥५॥

श्वेत करवीरादि लेप—श्वेत करने की जड़, कुड़े की छाल, करञ्ज की छाल, दारुहल्दी और चमेली के कोमल पत्र को समभाग लेकर जल के साथ विषिपूर्वक पीसकर लेप लगाने से निष्ठय ही कुष रोग नष्ट होता है ॥५॥

शैलेयकम्पिष्टकयष्टिसाह्नसीराष्ट्रिकासर्जंरसोपलानि ।

शिला च चूर्णों नवनीतयुक्तः कुषे स्वरथभ्यधिकः प्रदिष्टः ॥६॥

शैलेयादि लेप—छैक छोरीला, कमोला, जेठी मधु, फिटकरी, राल, नीक कमल और मैनसिल

को समभाग लेकर विषिवद्य चूर्ण कर मख्खन में भिलाकर गादा लेप लगाने से स्नाव देने वाला कुष नष्ट होता है ॥६॥

रसगन्धकयोः पिष्टं कुष्टतैलेन भृजजैः । द्रवैः संमर्थं तल्लेपासर्वकुष्टं विनशयति ॥७॥

सब प्रकार के कुष में लेप—पारद और गन्धक को समभाग लेकर विषिपूर्वक खरल कर कज्जली बना कर सरसों के तेल के साथ मर्दन कर लेप लगाने से सब प्रकार के कुष नष्ट होते हैं ॥

अथ काथाः

गुहूचीत्रिफलादार्वाकाथ उष्णोश्च वारिभिः । त्वग्दोषवर्णशोफः वीतो मासं सगुणगुणः ॥१॥

गुहूच्यादि काथ—गुहूचि, आंवला, हरड़, बहेड़ा और दारहरवी समभाग लेकर विषिपूर्वक काथ करके इसमें शुद्ध गुणगुण का प्रक्षेप देकर उष्णोदक के साथ एक मास तक पान करने से सभी प्रकार के त्वचा के दोष (कुष विसर्पादि) और ब्रण नष्ट होते हैं ॥१॥

खदिरविष्टलानिष्टपदोलाद्यतवासकैः । अष्टकोऽर्थं यजेकुष्टकण्ठविस्फोटकानपि ॥२॥

खदिराष्ट्रक—खेर की छाल, आंवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल, पटोलपत्र, गुहूची और अरसा इन आठों औषधियों को समभाग लेकर विषिपूर्वक काथ कर पान करने से कुष, कण्ठ और विस्फोटक रोग नष्ट होते हैं ॥२॥

महाकथायः—शुण्ठीनिष्टविकराततिकक्कणापाठाहरिद्राद्वयम्

त्रायन्ती त्रिफलाऽमृताऽऽज्ञकदुक्कावामा वचा वाकुची ।

मञ्जिलाऽतिविषादुरालभमहानिर्वागिनिष्टद्यग्निथिका

द्याधिज्ञा गज्जिभंडा सैकुटज्ञा भाङ्गीं समुस्तायवा ॥१॥

मूर्चा चैव पटोलपत्रसहिता रक्तं तथा चन्दनं

द्यामा पर्पटसारिवा कृमिहरा गायत्रिकासंयुता ।

गोमूत्रेण महाकथायमण्डोद्भूतं पिषेयः पुमाः

इत्यस्याषाद्या यान्ति नाशमचिरात् कुष्टानि दुष्टान्पिः ॥२॥

महाकथाय—सोठ, नीम की छाल, चिरायता, पीपल, पुरेन पाढ़ी, इस्ती, दारहरवी, त्रायन्ती, अंवला, हरड़, बहेड़ा, गुहूचि, कमल अथवा हिज्जत, कुटकी, अरसा, वच, बाकुची, मजीठ, अतीस, जागासा, बकायन, चीते की जड़, वच, अमृतास की शुद्धी, माझरि, क्षोरया की छाल, बमलेठी, नागरमोशा, जी, मूर्चामूल, परवक के पत्ते, रक्त चन्दन, द्यामलता (कुण्ठ सरिया) पित्त पापड़ा, श्वेत सरिवा, वायविंग और खेर को समभाग लेकर विषिपूर्वक काथ बना कर इसमें गोमूत्र का प्रक्षेप देकर सूर्योदय के समय जो मनुष्य पान करता है उसके अठारहो प्रकार के दूषित कुष शीत्र नष्ट होते हैं ॥१-२॥

नवकक्षायः—त्रिफला विष्टपदोलं मञ्जिला रोद्दिनी वचा रजनी ।

एष कथायोऽम्यस्तो निहन्ति कफपित्तज्ञं कुष्टम् ॥३॥

नवक कथाय—वैंदरा, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल, परवक के पत्ते, मजीठ, कुटकी, वच और हल्दी को समभाग लेकर विषिवद्य काथ बना कर सेवन करने से कफ-पित्त से उत्पन्न दुष्ट कुष नष्ट होते हैं ॥३॥

खदिरोदकम्—

प्रलेपोद्दृत्तनस्नानपानभोजनकर्मसु । शीलितं खदिरं चारि सर्वत्वद्योषनाशम् ॥४॥

खदिरोदक—खेर का त्वरस, काथ और चूर्ण आदि विषिपूर्वक बना कर लेप, खट्ठन, स्नान, पान और भोजन करने से सब प्रकार के त्वचा के दोष (कुष-विसर्पादि) नष्ट होते हैं ॥४॥

दद्ममानाद्युतः कुम्हे समुलखदिरादसः । सायधाशीरसचौद्रो हन्याकुष्ठं रसायनम् ॥२॥
खदिरस रस—खेर की जड़, छाल तथा लकड़ी (पञ्चाङ्ग) लेकर ढुकड़े २ करके जड़ के साथ एक बड़े में रखकर पकावे जब रस मली औंति जड़ में आ जावे तब उस रस में अथवा विशुद्ध खेर के रस में गोचूत, आँवले का रस और शहद का प्रसेप देकर पान करने से कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २ ॥

निष्पत्तिकलक्षणः—

निष्पत्तिकलक्षणं पिष्ठावा निर्बामलकमेव च । विडङ्गावाकुचीकलकं पिवेदऽकुष्ठनाशनम् ॥ ३ ॥
निष्पत्तिकलक्षण—नीम के एक सो पत्तों को अथवा नीम और आँवला मिलाकर पीसकर पान करे अथवा वायविंग और बाकुची का कलक बनाकर तब तक सेवन करे जब तक कुष्ठ नष्ट नहीं हो जावे ॥ ३ ॥

अथ चूर्णानि

त्रासाद्यो पञ्चनिष्पत्तिचूर्णम्—

पिञ्चुमन्दकलं पुष्पं त्वदपन्नं मूलमेव च । पञ्चैतानि च सूचमाणि समचूर्णानि कारयेत् ॥ ४ ॥
अष्टभागावशेषेण खदिरासनवारिणा । भावयित्वा तु संयोज्य द्रव्याण्येतानि दापयेत् ॥ ४ ॥

पञ्चनिष्पत्तिचूर्ण—नीम के कल, पुष्प, छाल, पत्र और जड़ इन पांचों को समझाग लेकर विधिपूर्वक महीन चूर्ण कर लेवे पश्चात खेर और विजय सार समान भाग का विचिवट अष्टभाग शेष काथ बनाकर उस काथ से उस चूर्ण को भावित करे । किर इस भावित चूर्ण में इसके आधा आंगे लिखे हुए द्रव्यों के चूर्ण को लेकर पहले नीम के चूर्ण से मिला लेवे ॥ ४-२ ॥

चित्रकोऽथ विडङ्गानि व्याधिवातकशकराः । भलातकहरीतक्यौ शुण्ड्यामलकगोम्भुराः ॥ ५ ॥
चक्रमर्दकबाकुचीपिष्ठलीमरिचं निशा । लोहचूर्णसमायुक्तं समझागं प्रमाणतः ॥ ५ ॥

वे द्रव्य ये हैं—चित्रक मूल, वायविंग, अमलतास की गुदी, शर्करा, शुद्ध मिलावा, इरड़, सोंठ, आँवला, गोखरू, चक्रमर्दक का बीज, बाकुची, पीपल, मरिच, इलदी और लोहमस्त प्रत्येक समझाग लेकर चूर्ण करे ॥ ५-४ ॥

भावयेद्भुज्जराजेन पुनः शुष्काणि कारयेत् । निर्गवार्धचूर्णमेतामेकीकृत्य निष्पत्तिचूर्णम् ॥ ५ ॥
विडङ्गलपदमानं सु सर्विष्या पद्यसाऽपि वा । ग्रातः ग्रातिषेवत खदिरासनवारिणा ॥ ६ ॥

पुनः समस्त चूर्ण को आंगे के स्वरस में भावित कर सुखा कर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से घृत अथवा गो दुग्ध के अनुपान से प्रातःकाल सेवन करे और खेर तथा विजयसार को विधिवत् काथ बनाकर पान करे ॥ ५-५ ॥

परिहारो न चात्रास्ति पञ्चनिष्पत्तिचूर्णम् । मासमात्रप्रयोगेण कुष्ठं हन्ति रसायनम् ॥ ७ ॥

इस पञ्चनिष्पत्तिचूर्ण को सेवन करते समय किसी विशेष पद्यापद्य अथवा किसी विशेष वस्तु के राय की आवश्यकता नहीं है । इस रसायन के एक मास प्रयोग करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥

स्वप्नोषं नीलिकाव्यज्ञं तथैव तिलकालकान् । अष्टादशविधं कुष्ठं सप्त चैव महाल्पयान् ॥

सर्वध्याधिविनिर्मुको जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ८ ॥

त्वचा के दोष, नीलिका, व्यज्ञ, तिलकालक, अटारह प्रकार के कुष्ठ और सात प्रकार के महाल्पय सभी रोग इससे नष्ट होते हैं और सौ वर्ष तक वह मनुष्य सुखपूर्वक (निरोग कहकर) जीवित रहता है ॥ ८ ॥

उद्धूलने सर्वपादिचूर्णम्—

सर्वपकरभरजनीवायनिशाकाशमिष्ठाः । त्रिफलाशटीपटीरश्वेतामूर्च्छियकुकाशापि ॥ ९ ॥

त्रिकटुत्रिग्रन्थकेसरलाभाश्चेषां कृतं रजः रुद्धणम् ।

उद्धूलने रक्तजपित्तज्वातोष्ठितं चाऽपि ॥

निस्तोदभेदपिदिकं कुष्ठं स्फुटनं विनाशयति ॥ २ ॥

सर्वपादि चूर्ण—सरसो, करज, हशी, दारहशी, मजीठ, इरड़, बहेड़ा, आँवला, कचूर, चन्दन, शेत सारिवा अथवा अतीस, मूर्च्छूल, प्रियज्ञु, सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नामकेसर और लाख को समझाग लेकर विधिपूर्वक महीन चूर्ण कर कुष्ठ के व्रणों पर छिह्नने से रक्तज, पित्तज और वातज कुष्ठ नष्ट होते हैं तथा तोद (सुई नुभाने के समान पीड़ा) और मेद (टूटने के समान पीड़ा) से युक्त कुष्ठ त्रण, पिडिका, कुष्ठ और कुष्ठ का फूट २ कर बहना ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

विडङ्गादिचूर्णम्—

विडङ्गत्रिफलाकुरुणाचूर्णं लीढ़ं समाज्जिकम् । हन्ति कुष्ठं कृमीन्मेहाज्ञादीदुष्टभगन्दरान् ॥

विडङ्गादि चूर्ण—वायविडङ्ग, इरड़, बहेड़ा, आँवला और पीपल को समझाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के अनुपान से चाटने से कुष्ठ, कृमि, प्रमेह, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण तथा भगन्दर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ गुटिका:

त्रादौ सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका—

भज्जातकसहस्रैकं त्रिफलावारिणि लिपेत् । द्रोणमात्रे पचेत्तावश्वावरपादावशेषितम् ॥ १ ॥

शर्कराया दश पलान्येकं बाकुचिकापलम् । तथा चैवात्र देयानि पलानि दश गुण्डुलोः ॥ २ ॥

खदिरारिष्टमिष्ठावीजकं चेन्द्रवारणी । चित्रकं द्वे हरिद्रे च देवदारहरीतकी ॥ ३ ॥

भार्कीं वचेति सर्वेषां प्रथेकं च पलार्थकम् । प्रत्यक्ष्य गुटिका कार्या नाडना सर्वाङ्गसुन्दरी ॥

प्रथयं भज्येत्कुष्ठी त्वेतां बदरमात्रया । सर्वांप्येवोग्रुक्षानि शीघ्रमेव व्यपोहृति ॥ ५ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका—एक इजार शुद्ध मिलावा एक द्रोण त्रिफला के स्वरस अथवा कवाय में डाल कर पकावे जब चौथाई शेष रह जावे तब उतार-छानकर उसमें शर्करा दस पल, बाकुची का चूर्ण एक पल, शुद्ध गुण्डुल दस पल और खेर तथा नीम की छाल मजीठ विजयसार माहरि, चीते की जड़, इरड़ी दारहशी देवदार, इरड़, बमनेटी और वच प्रत्येक का चूर्ण आधा २ पल मिलाकर गुटिका के विधान से वैर के समान बटी बनावे इस सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका को प्रतिदिन कुष्ठ का दोगी खावे तो इससे सब प्रकार के उप्र कुष्ठ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १-५ ॥

त्रिफलागुटिका—

त्रिफलागुटिकरलोहे: सावण्युजभुज्जलाङ्गलीध्योवैः । सगुडैवराहकन्दैः पलिकैरेकत्र सम्भिष्ठैः ॥

गुटिकां प्रकल्प्य खाद्येदेकामस्तुतिमितां प्रातः ।

कुष्ठं दद्रुकिलासं जित्वा चर्वेण सर्वथा पलितम् ।

जीवति चर्वेणशतं त्रै दीसहुताशो युवेष सोत्साहः ॥ २ ॥

त्रिफला गुटिका—इरड़, बहेड़ा, आँवला, शुद्ध मिलावा, लोहमस्त, कुष्ठ और कीरक, (लघु) आंगरा, शुद्ध कलिहारी, सोंठ, मरिच, पीपल, उराना शुद्ध तथा बारहाइकन्द प्रत्येक एक २ पल लेकर विधिपूर्वक कुष्ठ पीसकर एक अक्ष के प्रमाण की बटी बनाकर एक वर्ष तक प्रतिदिन प्रातः: एक २ बटी खाने से कुष्ठ, दहु, किलास, एवं पक्षित रोग की सर्वथा नष्ट हो जाता है । इससे अग्नि दोष रहती है और युवा के समान उत्साह सहित मनुष्य सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहता है यह निश्चित है ॥ १-२ ॥

एकविशिष्टको गुणगुलुः—

विप्रक्विकलाद्योपमजाजीकारवीवचाः । सैन्धवातिविषा कुष्ठं चृदैलायावशूकजम् ॥ १ ॥
विडङ्गान्थजमोदा च मुस्तान्थमरदाह च । यावन्येतानि सर्वाणि तावन्मावस्तु गुणगुलः ॥ २ ॥
सहूट्य सर्पिषा सार्थं गुटिकां कारयेद्विषक् । प्रातभोजनकाले वा भक्षयेत् यथाबलम् ॥ ३ ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि कृगिदृष्टवणानपि । ग्रहण्यश्चोविकारांश्च सुखामयगलग्रहात् ॥ ४ ॥
गुप्रसीमथ भग्नं च गुणं चापि नियच्छ्रुतिः । इथाधीनकोष्ठगतश्चान्याजयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥

एकविशिष्ट गुणगुलु—वित्रक, हरड, घैडा, आविला, सौठ, मरिच, पीपल, जीरा, वच, सेवानमक अतीस, कट, चव्य, इलायची, वाखार, वायविडङ्ग, अमोदा, नागरमोथा और देववार को समझाए लेकर विषिष्ट चूर्ण बनाकर जितना हो बसके समान आग शूद गुणगुल मिकाकर सबको दूट ले पक्षात घृत मिलाकर गुटिका के विषान से बटी बना ले प्रातः काल अथवा भोजन के समय बलानुसार मात्रा से सेवन करने पर अठाह फ्रकार के कुष्ठ, कृमि, दुष्प्रजन, ग्रहणी, अर्ण, सुखरोग और गलग्रह को नष्ट करता है परं गृहसी, भग्नरोग तथा शुद्धरोग नष्ट होते हैं तथा कोष्ठ गत व्याधियों को यह गुणगुल इस फ्रकार नष्ट करता है जिस फ्रकार विष्णु भग्नान से अनुर नष्ट होते हैं ॥ १-५ ॥

त्रिफलामोदकः—

त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दश पञ्च च । सप्त चैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पञ्चदृशम् ॥ १ ॥
शतं भद्रातकानां च पलानि दश वाकुची । शिलाजतु पलार्थं तु द्वे पचे गुणगुलोस्तथा ॥ २ ॥
पलं पुष्कन्धूलस्य पलार्थं विवृतस्य च । सविक्रं समरिचं पिष्पली विषधभेषजम् ॥ ३ ॥
स्वप्वयं कुड्हुमं मुस्ता कार्षिकानुपकदयेत् । यावन्येतानि चूर्णाणि तावरक्षण्डं प्रदायेत् ॥
पालिकान्मोदकान्कुरवा प्रातदध्याय नियशः । एकैकं भव्ययेत्प्राज्ञो यथेष्ट चात्र भोजनम् ॥
कुष्ठान्थष्टादशापीह प्लीहगुणमभग्नदरान् । अशीर्ति वातज्ञान्मोगांश्वारिंश्च पैत्तिकान् ॥
विषांति श्लैषिकांश्चापि संस्थान्स्त्रिप्रातिकान् । शालाक्यगतरोगांश्च शिरोविद्ध्यतांस्तथा ॥
कण्ठतालुगतांश्चापि जिह्वायामुषविद्धकम् । ऊर्ध्वजनुगते रोगे मुक्तस्योपरि दायेत् ॥ ८ ॥
शारीरे दायेत्पूर्वमौद्रे मध्यभोजने । निर्विद्वरोगाज शमयेकियमाणं रसायनम् ॥ ९ ॥

त्रिफला मोदक—त्रिफला (हरड, घैडा, आविला) का समान मिलित चूर्ण १५ पल, वाय, विंडिंग का चूर्ण ७ पल, लोहमस्त दो पल, शूद सुपक भिलावा एक सौ, वाकुची का चूर्ण दसपक, कुष्ठ शिलाजीत २ कर्ण, शूद गुणगुल दो पल, पुष्करमूल का चूर्ण एकपल, निशोथ का चूर्ण २ कर्ण, वित्रकमूल, मरिच, पीपल, सौठ, दालचीनी, तेलपात, केसर और नागरमोथा का चूर्ण पुष्कर ३ एक २ कर्ण और सभी मिलित चूर्ण के बराबर शुक्कर मिलाकर मोदक की विषि से एक २ पल प्रमाण का मोदक बनाकर नियत्य प्रातः काल एक २ मोदक का भक्षण तथा इच्छानुकूल (पथ्य) भोजन करे तो इससे अठाह फ्रकार के कुष्ठ, घैडा, गुरुम, भग्नदर, ८० फ्रकार के बातरोग, ४० फ्रकार के पित्तरोग, २० फ्रकार के कफरोग तथा संसर्गम (द्वन्द्व) सन्निपातज, शालाक्यगत (ऊर्ध्वजनुगत) शिरोगत अक्षिगत भ्रूगत, कण्ठगत, तालुगत, उपजिह्वा और ऊर्ध्वजनुगत रोगों में लाभ होता है। इन रोगों में भोजन के पश्चात मोदक सेवन करना चाहिये। शरीर के अन्य रोगों में भोजन के पूर्व और डदर रोगों में भोजन के मध्य में ही इस त्रिफलामोदक का सेवन करना चाहिये। इस रसायन के सेवन से क्षपण करे गये सभी रोग अवश्य ही नष्ट होते हैं ॥ १-९ ॥

अथवावलेहः

तत्रादौ भद्रातकावलेहः—

निर्विगोपाकृणाकट्वीश्वान्तीत्रिफलावलेह । पर्षटावलगुजानन्तावच्चालविरचन्द्रनम् ॥ १ ॥

याठा शूण्ठी शटी शार्ही वासाभूनिववधसकच । श्वामेन्द्रवाहणीमूर्वीविडङ्गातिविषानलम् ॥
दस्तिकर्णावृतावलाहं पटोलं रजनीदूधयम् । कृष्णारवधसप्राह्णिरीषं ओच्चाफलम् ॥ २ ॥
मसिष्ठ लाङ्गली राज्ञा नक्कमालः पुनर्नवा । दन्ती बीजकसारस्य अृक्षराजकुरण्टकम् ॥ ३ ॥
पूतान्त्रिष्ठलिकान्माराजालद्वोषे विषाचयेत् । अष्टभागावशिष्ठं च कथायमवतारयेत् ॥ ४ ॥
भद्रातकसहस्राणि विषेच्छावाऽमर्णेऽभसित । चतुर्भागावशिष्ठं तु कषायमवतारयेत् ॥ ५ ॥
तौ कथायौ समादाय वस्त्रपूतौ तु कारयेत् । एकीकृत्य कथायौ तौ पुनरशावशिष्ठयेत् ॥ ६ ॥
गुदस्त्रेकतुलां दत्तवा लेहवरसावयेद्विषक । भद्रातकसहस्रस्य तत्र बीजानि दायेत् ॥ ७ ॥
त्रिकटु त्रिफला सुस्तं विडङ्गं वित्रकं तथा । चन्दनं सैन्धवं कुष्ठं दीप्यकं च पलं पलम् ॥ ९ ॥
चातुर्णातं च सध्वर्ण्य घृतमाण्डे निषापयेत् । सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुर्दृशम् ॥ १० ॥
महाभद्रातको द्येष महादेवेन निमितः । प्राणिनां तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव च ॥ ११ ॥
विष्मीदुभ्वरं ददुम्ब्यजिह्वं सकाकणम् । पुण्डरीकं च चमार्हयं विस्फोटं रक्षमण्डलम् ॥ १२ ॥
कुष्ठं कूपालिक कुष्ठं पासां चापि विषादिकाम् । वातरक्सुदावतं पाण्डुरोगं चमीन्कमीन् ॥
अशांसि पद्म प्रकाशणि शासं कासं भग्नदरम् । भनुपानेन दातव्यं छित्रातोयेन तं भिषक् ॥
ओजने न सदा योउयसुण्ठं चाम्लं विशेषतः । अन्यान्यपि च कुष्ठानि नाशयेच्छात्र संशयः ॥

मस्तकात्कावलेह—नीम की छाल, दयमलता, अतीस, कुटकी, श्रायमाणा, हरड, घैडा, आविला, नागरमोथा, पित्तापद्मा, बाकुची, अनन्तमूल, वच, खेर, चन्दन, पुरुषपादी, सौठ, कच्चर, दधनेटी, अरसा, चिरायता, कुटज की छाल, काली निशोथ, माइरि, मूर्वा, वायविंग, अतीस, चीते की बढ़, हसितकण, पलास की बढ़ अथवा गजकणकन्द, गुरुम, नागरमोथा, परवल के पक्ष इक्कदी, दारुहलदी, पीपल, अमलतास की गुही, छित्रवन की छाल, सीरीप की छाल, धूधची का फल, मजीठ, शूद कलिहारी, रासना, बृद्धत्वरंज, पुनर्नवा, दन्तीमूल, विजयसार भांगरा और कदसरेया (पियावासा) को पुथक २ दो हो पल लेकर एकव लौ कुट कर एक द्रोण (४ आड़क) बल के साथ पाक कर अन्तमांश शेष काथ बनाकर छान लेवे और सुपक एक हस्त शूद मिलावे को छीकर एक द्रोण जल में डाल कर चतुर्थीश शेष काथ बनाकर छान लेवे और दोनों कारों को लेकर वस्त्र से आनकर एकत्र कर पुनः अभिन पर रख कर पाक करे और इसमें पुराना शुद्ध १२ तुला (सौ पल) मिलाकर घोकर छान लेवे और अबलेह पाक की विषि से पुनः इसका पाक करे चव अबलेह सिद्ध होने के समय आवे तत्र उसमें उपरोक्त मिलावे के एजार भीजों को कूट-पीस कर डाल दे और त्रिकटु, सौठ, मरिच, पीपल, का चूर्ण एक पल, त्रिफला (भाँवाला, हरड, घैडा) का चूर्ण एक पल और नागरमोथा, वायविंग, चीते की बढ़, चन्दन, सेवानमक, कुट और लवाइन प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल और चातुर्णात (दालचीनी, इक्कायची, तेलपात, नागकेसर प्रत्येक समझाम) का चूर्ण एक पल तथा शूद्ध गन्धक का चूर्ण चार पल मिलाकर यहीमांति मर्दन कर शूद्ध से रिंगप बाल में रख लेवे। इस महाभद्रातक का नाम के अबलेह को महादेव जो ने पहले पहल प्राणियों के हित के लिये निर्माण किया था। इसके सेवन करने से शीष ही विष, ददुभ्वर, ददु, महूष्यजिह्वा, काकण, पुण्डरीक और चमं कुष्ठ तथा विस्फोट, रक्षमण्डल, कष साध्य कूपालिक कुष्ठ, पासा, विषादिका, वातरस्तु, उदावत्तं, पाण्डु, बमन, कूमिरोग, ही प्रकार के अर्ण रोग, श्वास, कास, भग्नदर आदि सभी रोग नष्ट होते हैं। इसको गुरुम के स्वरस अधिवा काथ के अनुपान से सेवन करना चाहिये तथा इसके सेवन करने के समय पथ्य जो भोजन करने को दिशा जावे उसमें विशेष कर वृष्ण तथा अम्लरस पदार्थ की नहीं खाना चाहिये। इसके सेवन करने से उत्किञ्चित कुष्ठों के अतिरिक्त अन्य कुष्ठ भी अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-१५ ॥

शशाङ्कुलेखादिलेहः—शशाङ्कुलेखास विष्णुसारा सविष्टपलीका सहुताशमूला ।

सायोमला सामलका सत्तेला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति छीडा ॥ १ ॥

शशाङ्कुलेखादि लेह—बाकुची, बायविडंग के घोज, पीपल, चीते की जड़, मण्डूरमस्म और आंवला इन सबके चूणे को पृथक् २ समझाग लेकर सबको तिळ के तेल में मिलाकर चाटने से सब प्रकार के कुछरोग नष्ट होते हैं । इस लेह का नाम शशाङ्कुलेखादि लेह है ॥ १ ॥

धात्र्यवलेहः—धात्र्यवलेहस्विष्णवहिभवलातकावशुगुजलोहभृजङ्गः ।

भागाभिन्नद्वैस्तिलतेलमिथ्रैः सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेहः ॥ १ ॥

धात्र्यवलेह—आंवला, बडेहा, इरड़, बायविडंग, चीते की जड़ शुद्ध मिलावा, बाकुची, लोहभस्म और भागरा इन सबको कम से मात्र शुद्ध कर अर्थात् आंवला १ मात्र, बडेहा २ मात्र, इरड़ तीन मात्र, बायविडंग ४ मात्र, चीते की जड़ ५ मात्र, मिलावा छै मात्र, बाकुची ७ मात्र, लोहभस्म ८ मात्र और भागरा ९ मात्र लेकर विष्पूर्वक चूर्णकर तिळ के तेल में मिलाकर लेह बनाकर चाटने से सब प्रकार के कुछ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अश्व धृतानि

तिक्तष्टपलं धृतम्—निम्बं पटोलदाच्चौ दुरालभां तिक्तरोहिणीं विफलाभ् ।

कुर्यादधृपलांशान्पर्षटं व्यायमाणां च ॥ १ ॥

सलिलादकसिद्धानां रसेऽभागस्थिते पूर्ते । अन्धनकिराततिक्तकमागधिकाश्वायमाणां च ॥

मुख्तं वस्तकबीजं कल्कीकृत्वा धृक्तार्थिकार्थिकाश्वायमाणां च ॥

कुष्ठज्वरशुगुमार्णीपाण्डवामयान्हन्ति । पामाविसपंपिटिकाकण्ड्वाणानिसद्भूम् ॥

तिक्त षट्पल धृत—नीम की छाल, परवल के पत्र, दारहड्डी, जवासा, कुट्की, आंवला, इरड़, बडेहा, पित्तपापड़ा और व्यायमाणा प्रत्येक आधा-आधा पल (दो २ कर्ण) लेकर एक आड़क (४ प्रस्थ) जल के साथ विष्पूर्वक काथ करे जब अष्टमांश शेष रहे तो उतार-छानकर रख लेवे और लालचन्दन, चिरायता, पीपल, व्यायमाणा, नागरमोथा और इन्द्रजी प्रत्येक अधारा २ कर्ण पृथक् २ लेकर विष्पूर्वक कल्क कर लेवे, तथा नवीन धृत छै पल लेकर मूर्च्छित कर सबको एकत्र मिलाकर धृत पाक विषि से धृत सिद्ध कर पान करने से कुछ, जवर, गुक्षम, अर्श, प्रदृशी, पाण्डुरोग, पामा, विसपे, पिटिका, कण्डु, गण्ड और ब्रजरोगादि नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

पञ्चतिकं धृतम्—

निम्बं पटोलं व्याग्रीं च गुहुच्चीं वासकं तथा । कुर्यादशपलांभागानेकैकस्थ सुकृष्टितान् ॥ १ ॥

जलद्रोणे विषक्तव्यं यावपादावशेषितम् । धृतप्रस्थं पचेतेन विफलागर्भं संयुतम् ॥ २ ॥

पञ्चतिकमिति ख्यातं सर्विः कुष्ठविनाशनम् । अशीतिं वातजान्त्रोगांश्वत्वारिंशत्वं पैतिकान् ॥

विश्वातिं श्लैषिकांश्वैव पानादेवापकर्त्ति । दुष्क्रवणकुमीनर्णःपञ्चकासांश्व नाशयेत् ॥ ३ ॥

पञ्चतिक धृत—नीम की छाल, परवल के पत्र, छोटी कटेरी, गुरुच, अरसा इन सबको कटा हुआ पृथक् २ दस २ पक लेकर द्रोण (४ आड़क) जल में काथ की विषि से पाक कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छानकर लेवे और मूर्च्छित गोधृत एक प्रस्थ तथा विफला समान विलित का कल्क ३ है प्रस्थ मिलाकर धृत पाक की विषि से धृत सिद्ध कर लेवे । एकत्र व्याय पञ्चतिक धृत है यह कुछरोग नष्ट करने के लिये प्रसिद्ध है । इसके पान करने से अस्तीति प्रकार के वातज रोग, चालिस प्रकार के पित्तज रोग, बीस प्रकार के कफज रोग नष्ट होते हैं तथा दुष्क्रवण, कूमि, अर्श तथा पांचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

महातिकं धृतम्—सप्तसच्छदं प्रतिविषं शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाभ् ।

सुस्तामुशीरं विफलां पटोलपित्तुमन्दपर्षट्कम् ॥ १ ॥

धन्वयवासकचन्दनमुपकुलयापद्मकरजन्यौ च । षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिवे चोमे वस्तकबीजं वासां मूर्च्छिमृतां किराततिक्तं च । कल्कान्कुर्यान्मतिमान्यष्टवाहू व्यायमाणं च ॥

कल्कस्थ चतुर्थभाग्यो जलमधुगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।

द्विगुणो धृतात्पद्यस्तसर्विः प्राशयेत्सद्भूम् ॥ ४ ॥

कुष्ठानि रक्षपितं प्रवलान्यशार्सिस्तक्तवाहीन । वीसपरमलपित्तं वातासुक्षपाण्डुरोगं च ॥ ५ ॥

विस्फोटकान्सपामानुमादं कामलां ज्वरं कण्ठम् ।

हृदोगं गुरुमपिटिकां भगन्दरं गण्डमालां च ॥ ६ ॥

हन्यादेतरस्थं पीतं काले यथावलं सर्विः । योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥

महातिक्तक धृत—छितवन की छाल, अतीस, अमलतास की छाल, कुटकी, पुरहनपादी नागरमोथा, खस, कांवला, इरड़, बडेहा, परवल के पत्ते, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, जवासा, लालचन्दन, पीपल, पदुमकाठ, इलटी, दारहड्डी, वच, माइरि, सतावरोमूल, सारिवा, कृष्णसारिवा, इन्द्रजी, अरसा, मूर्च्छमूल, गुरुच, चिरायता, जेठीमधु और व्यायमाणा प्रत्येक के एक २ मात्र लेकर विषिवत कल्क कर रख लेवे और पृथक् इन्हीं ओषधियों के कल्क में अठगुना जल मिलाकर पकावे, जब चतुर्थांश शेष रहे जावे तब उतार-छानकर रख लेवे और पूर्वोक्त कल्क से चौगुना मूर्च्छित गोधृत और धृत के दुगुना आंवले का स्वरस तथा डपरोक्त सिद्ध काथ सब मिलाकर धृत पाक की विषि से धृत सिद्ध कर धृत मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर चाटने से कुछ, रक्त पित्त, प्रबल अर्श जिनमें रक्त बहता रहता ही, विसपे, अम्लपित्त, वातरक, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, डमाद, कामला, ज्वर, कण्ठ, हृदोग, गुरुम, विडिका, भगन्दर और गण्डमाला शीघ्र नष्ट होते हैं । इसको समय पर बलानुसार मात्रा से पान करना चाहिये । सैकड़ों योगों से भी जो महारोग नष्ट नहीं हुए ही उनको भी यह महातिक्तक धृत शीघ्र नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

महाखदिरधृतम्—

सदिरस्य तुला: पञ्च शिशपासनयोस्तुले । तुलार्धं सर्वं एवैते करञ्जारिष्टवेत्याः ॥ १ ॥

पर्षटः कुटजरचैव वृषः कृमिहरस्तथा । हरिद्रे कृतमालश्च गुद्धची त्रिफला त्रिवृत् ॥ २ ॥

सप्तपर्णश्च संज्ञुणो दशद्रोणे तु वारिणि । अष्टभागागवशेषं तु क्षायमवतारयेत् ॥ ३ ॥

धात्रीशसं च तुल्यांशं सर्पिंश्वास्त्रङ्गकं पचेत् । महातिक्तकलक्षेस्तु यथोक्तैः पलसमित्येत् ॥ ४ ॥

निहन्ति सर्वं कुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात् । महाखदिरमिष्टेतत्परं कुष्ठविकारनुत् ॥ ५ ॥

महाखदिर धृत—खेर पांच तुला (५०० पल), सीसम की छाल एक तुला (१०० पल), विजयसार की छाल एक तुला (१०० पल), करंज, नीम की छाल, वेत की छाल, पित्तपापड़ा, कोरया की छाल, अरसा, व्यायविडंग, इलटी, दारहड्डी, अमलतास की गुही, गुरुच, इरड़, बडेहा, आंवला, निशोय और छितवन की छाल इन सबको समान मिलित आधा तुला (५० पल) लेकर कूट कर दस द्रोण (४० आड़क) जल में मिलाकर काथ की विषि से अष्टमांश शेष रहने पर उतार-छानकर रख लेवे और आंवले का स्वरस काथ के समान लेवे, नवीन पवं मूर्च्छित गोधृत एक आड़क (४ प्रस्थ) लेवे तथा महातिक्तक धृत की कल्कीय ओषधियां अर्थात् छितवन की छाल, अतीस, अमलतास की जड़ वा छाल, कुटकी, पुरहनपादी, नागरमोथा, खस, इरड़, बडेहा, आंवला, के पत्ते, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, जवासा, लालचन्दन, पीपल, पदुमकाठ, इलटी, दारहड्डी, वच, माइरि, सतावरि, सारिवा, कृष्णसारिवा, इन्द्रजी, अरसा, मूर्च्छमूल, गुरुच, चिरायता, मुलहडी और व्यायमाणा प्रत्येक एक २ पल लेकर विषिपूर्वक कल्क कर सबको विषिविषि मिलाकर धृत पाकविषि से धृत सिद्ध कर पान करने से सब प्रकार के कुछ रोग नष्ट होते हैं । यह महाखदिर धृत सभी प्रकार के कुछ के विकारों को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

योगरत्नाकरः

अथ तैलानि ।

विश्रकादितैलम्—

शुभ्रस्य करवीरस्य रसो वेलं च चित्रकम् । विभिन्न पाचितं तैलमभ्यङ्गाकृष्णजातिज्ञुष ॥ १ ॥

चित्रकादि तैल—इवेत पुष्प वाले कनेर का स्वरस, वायविडंग और चौते की जड़ को समान भाग लेकर विधिवत कूट कर जितना कूल हो उसके चौगुना मूर्चिष्ठ सरसों का तैल और तैल से चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से कुछ नष्ट होता है ॥

वत्रतैलम्—

सप्तपर्णकरञ्जाकंमालतीकरवीरजान् । मूलं शुद्धैशिरीघार्थां चित्रकास्फोटयोरपि ॥ २ ॥

करञ्जबीजं श्रिफलां शिकटुं रजनीद्वयम् । सिद्धार्थं विडङ्गं च प्रपुषार्थं च संहरेत् ॥ २ ॥

मूर्चिष्ठः पचेतैलमेति: कुष्ठविनाशनम् । अभ्यङ्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टवणाप्रहम् ॥ ३ ॥

जल तैल—छित्रन, करञ्ज, मदार, मालती छाता, कनेर, शूदर, सीरिस, चौता और मदार की जड़, करञ्ज का बीज, इरड़, वेहेवा, आंवला, सोंठ, पीपल, मरिच, इलदी, दारहरदी, इवेत सरसों, वायविडंग और चकवड़ के बीज को समझाग लेकर विधिपूर्वक गोमूत्र के साथ पीस कर कूट कर जितना हो उसके चौगुना मूर्चिष्ठ सरसों का तैल तथा तैल से चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध करे यह जल तैल लगाने से सभी प्रकार के कुछ तथा नाडीवण और दुष्ट वर्ण नष्ट होते हैं ॥ २-३ ॥

मञ्जिष्ठार्थं तैलम्—

मञ्जिष्ठादितैलः । तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं परम् ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठादि तैल—मञ्जिठ, कूट, इलदी, चकवड़ और अमलतास के पत्ते प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कूट कर जितना हो उसके चौगुना मूर्चिष्ठ सरसों का तैल, तैल के समान भाग तृणक (गन्ध तृण वा गुणावकण्डा) का स्वरस और तैल के चौगुना जल मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से कुछ नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथाऽऽसवाः ।

त्रिग्राही खदिरासवः—

खदिरस्य तुलार्थं तु तत्त्वस्थं देवदार्वपि । वराया विशतिर्दीर्घ्याः पलानां पञ्चविशतिः ॥ १ ॥

बाकुच्या द्वादशा पकान्यष्टद्वोगेऽभसः: पचेत् । द्वोणशेषे कषाये तु पूतशेषे विनिविषेत् ॥ २ ॥

बातशया विशतिपत्ते मालिकस्य शतद्वयम् । शकरधारास्तुलामेकां चूर्णानीमानि दापवेत् ॥

कक्षोलकं छवङ्गं च पृष्ठाजातीफलत्वचम् । केशरं मरिचं पत्रं पलिकान्युपकरपयेत् ॥ ४ ॥

पिण्डीनां तु कुडवं स्थापयेद्वृत्तमाजने । मासादृध्वं पिवेन्मात्रामनयेष्य बलाबलम् ॥ ५ ॥

सर्वकुष्ठहरो द्वाप पाण्डुहृद्वेगकासनुत् ।

कूमिग्रन्थ्यवृद्धप्रविष्टगुमस्त्वंहोदरान्तकृत् । पृष्ठ वै खदिरादिष्टः कुष्ठान्त्रेण पूजितः ॥ ६ ॥

खदिरासव—खेर आधा तुला (५० पल), देवदारु खेर के समान अर्थात आधा तुला (५० पल), त्रिफला समान मिलित २० पल, दारहरदी २५ पल और वाकुची १२ पल सरसों कूटकर आठ द्रोण (३२ आदक) जल में मिलाकर काष की विधि से काष करे जब अष्टमांश पक द्रोण लेप रह जावे तब उत्तार-छानकर एक बड़े मिट्टी के पात्र में रख लेवे और इसमें धाय का फूल २० पल, शहद २०० पल तथा शकर एक तुला (१०० पल) और आगे लिखी लोपधियों का चूर्ण अर्थात कंकोक, मरिच, लवंग, इकायची, आयफर, दालबीनी, नागकेसर, मरिच, तेजपात्र प्रत्येक का चूर्ण २ पल और पीपल का चूर्ण एक कुडव (२ मालिका) मिलाकर घृत से चिकने

किये हुए पात्र में रख कर आसव की विधि से एक मास तक रखें पश्चात आसव सिद्ध हो जाने पर वज्र के अनुसार मात्रा से पान करने से यह सब प्रकार के कुछ को नष्ट करता है और पाण्डु, द्विदेव, कास, कूमि, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, ग्रन्थिगुलम, लीहा और उदररोग को भी नष्ट करता है । १-६ ॥

कनकारिष्ट—खदिरकषायं द्रोणं सर्विङ्गुम्भेन निधापयेन्मध्ये ।

पलिकामात्रान्तेष्यान्कृत्वा तानेव सूचमचूर्णं तु ॥ १ ॥

त्रिफला त्रिकटुरजनीकनकरवग्बाकुची गुहृची च ।

सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्वयं प्रविषेत्सवंम् ॥ २ ॥

धातक्यास्थं पलान्यष्टौ काथेऽस्मिन्प्रदेयानि ।

प्रातः प्रातर्तु पिवेन्मात्रायति चिरोत्थितं कुष्ठम् ॥ ३ ॥

मासेन सर्वरोगान्विनिहन्ति च सर्वशोकमेहांशः ।

निर्जितकासस्थासो गुदकीलभग्नदर्शन्मुक्तः । कनकारिष्ट प्रविषेन्मध्यति पुमान्कनककान्तिक्षम् ॥

कनकारिष्ट—खेर का काथ एक द्रोण (४ आदक) लेकर घृत से स्त्रिनव पात्र में रख देवे और उसमें त्रिफला समान मिलित, विकट समान मिलित, एकदी, घटूर की छाल, वाकुची, गुरुच और वायविड़क प्रत्येक के एक २ पल चूर्ण उसमें मिला देवे और शहद २०० पल, तथा धाय का फूल आठपल मिलाकर अरिष्ट की विधि से एक मास तक बन्द रखें । अरिष्ट सिद्ध हो जाने पर प्रति दिन प्रातः बलानुसार मात्रा से पान करने पर पुराना कुछ नष्ट होता है । एक मास निरन्तर इसके सेवन करने से सब प्रकार के शोष, प्रसेह, कूस, शास, अर्द्ध और अग्नदर आदि नष्ट होते हैं । इस कनकारिष्ट के पान करने से मनुष्य स्वर्ण के समान कान्तिवाला हो जाता है ॥ १-४ ॥

ददुचिकित्सा—

कासमदंकमूलानि सौबीरेण तु पेवयेत् । ददुकिटिभकुष्ठानि जयेदेतप्रलेपनात् ॥ १ ॥

ददुचिकित्सा—कसोदी (वडे चकवड) की जड़ को सौबीरफल के साथ पीसकर लेप करने से ददु तथा किटिमनाम के कुछ आदि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वीजानि वा मूलकसर्वयाणां लालारजन्मयौ प्रपुनाटवीजम् ।

श्रीवेष्टकं व्योवविडङ्गकुष्ठं पिट्ठा च मूल्येण विलेपनं स्वादत् ।

ददुणि सिध्यमें किटिभानि पामां क पालकुष्ठं विषमं च हन्त्यः ॥ २ ॥

मूलकबीजादि योग—मूली के बीज, सरसों के बीज, काख, इलदी, दारहरदी, चकवड़ के बीज, चौल की लकड़ी का टूप (गोद या लासा), सोंठ, मरिच, पीपल, वायविड़क और कूट प्रत्येक समझाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से ददु, सिद्धम, किटिम नाम का कुछ, पामा और कपाल कुष्ठ यदि विषम भयद्वारा भी हो गये हों तो नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

आरब्धवस्थ्य प्राणिं आरानालेन पेवयेत् । ददुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिध्यमसंशयः ॥ ३ ॥

आरब्धवस्थ्य प्रत्योग—अमलतास के पत्तों को कांबी के साथ पीसकर लेप करने से ददु, किटिम कुष्ठ अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

प्रपुनाटस्य वीजानि धात्री सर्जरसः स्तुवी । सौबीरपिण्डं ददुगामेतद्वृत्तं परम् ॥ ४ ॥

ददु में प्रपुनाट योग—चकवड़ के बीज, आंवला, राख और शूदर प्रत्येक समझाग लेकर सौबीराम्ब के साथ पीस कर लेप तथा उडवन करने से ददु नष्ट होता है । ददु के लिये यह उच्चम योग है ॥ ४ ॥

दूर्वाभयासैन्धववचकमदंकुठेरकाः कालिकतक्षिष्ठाः ।

त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलं हृदं च कण्ठं च विनाशयन्ति ॥ ५ ॥

कण्ठे मैं दूर्वादि योग—दूर, हरड़, सेषानमक, चकवड़ के बीज, इवेत तुलसी, प्रत्येक समान भाग लेकर कांजी और तक के साथ पीस कर तीन बार ही लेप करने से हृद एवं घन मूलकण्ठ अर्थात् पुरानी जमी दुई भी कण्ठ (खुल्ली) नष्ट होती है ॥ ५ ॥

विद्वादित्येषुः प्रिण्डादेवाजाकुष्ठनिशासिन्धूथसर्षपैः । धान्याम्लपिण्डेष्टयं ददुकुष्ठनिषूदनः ॥ ६ ॥

विद्वादित्येषुः चायविड़क, चकवड़ के बीज, कूट, हलदी, सेषानमक और सरसो प्रत्येक समभाग लेकर धान्याम्ल के साथ पीस कर लेप करने से ददु तथा अन्य कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

लघुमरीचाद्यं तैलम्—

मरिचालशिलादार्कपयोऽशारिजटाश्रिवृत् । शकृदसविशालाहृषिनशायुग्दाकृष्णदनैः ॥ १ ॥
कटौतेलं पचेत्प्रथं दृध्येषु विषपलान्विते । सगोमूत्रं तदभ्यङ्गाद ददुष्यित्रविनाशकृत् ॥ २ ॥

लघुमरिचाद्य तेल—मरिच, हरताल, मैनसिल, नागरमोया, मदार का दूध, कनेट की जड़, निशोथ, गोबर का रस, मादरि, कूट, हलदी, दाशहलदी, देवदाह और लालचन्दन प्रत्येक एक २ अण्ठ (एक २ कर्ष) और मीठा विष एक पक्के लेकर सबका विषिष्युवंक करक कर जितना कर्षक हो उसके चौगुना मूर्जित सरसो का तेल और तेल के चौगुना गोमूत्र ढाक कर तेल सबकी विषि से तेल सिद्ध कर लगाने से ददु और विष कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

दरदादित्येषुः—दरदगन्धकपारदपिष्पलीविषविड़कनिशागिनमरीचाद्यम् ।
अभयगुणित्यनादिकवाकुचीकदुपहुमेदग्नामित्रम् ॥ ३ ॥

समयिदं स्तुलु निश्वरसैर्युतं हरति ददुकुष्ठविदुर्पात्र ।

हृति लूतभग्नान्दरमण्डलं तजुविलिसमहो त्यजतो तुणाय ॥ ३ ॥

दरदादित्येषुः—दिगुल (तिगरिक), गन्धक, पारद, पीपल, मीठाविष, वायविड़क, हलदी, बीते की जड़, मरिच, हरड़, सोंठ, नागरमोया, समुद्रफेन, बाकुवी बीज, कुट्टी, राजवृक्ष (अमलतास) के पत्ते, चकवड़ के बीज, प्रत्येक समभाग लेकर एहें पारद-गन्धक की कजाई कर सबको एकत्र कर नीम के पत्ते के स्वरस अथवा छाक के काष के साथ सबको पीसकर लेप करने से ददु, कण्ठ, विसर्प, लूताविष, ग्रन्थन्दर, मण्डलकुष्ठ आदि रोग झाँप नष्ट हो जाते हैं ॥

चर्माल्यविकित्सा—

सूतगन्धकयोः पिष्टवा कउपलीकां विधाय च । अद्येन विमर्द्याथ करित्वत्येषु द्वितम् ॥

चर्माल्य कुष्ठ चिकित्सा—पारद और गन्धक समभाग लेकर विषिष्युवंक छाल्ली बनाकर (मर्दन कर) मक्खन के साथ लेप करने से गज चमोरोग (चर्माल्य कुष्ठ वा चर्मटीग) नष्ट होता है ॥
कृषावारीगौरीगदत्यनीरवेलोऽन्वं कर्षमिदं पृथक्च ।

शिलाबली तौ रविकर्षसंसर्यौ साधों विभागः किल पारदस्य ॥ २ ॥

कर्षेत्रं विशालप्रभितैर्द्युतस्य सर्वं विमर्द्य किल तात्रपात्रे ।

ततोऽङ्गलेपात्रिविनं च तीव्रां हरेच्छ रोगी गजचर्मपात्राम् ॥ ३ ॥

कवादादित्येषुः—कवाद चीनी, हलदी, कूट, तूतिया, भीरा और मरिच प्रत्येक पृथक् २ एक २ कर्ष लेवे और मैनसिल तथा गन्धक पृथक् २ पारद २ कर्ष लेवे तथा पारद छोड़कर प्रथम पारद-गन्धक की कजाई कर सबको एकत्र मर्दन कर उसमें २० कर्ष गोधृत मिळाकर ताम्बे के पात्र में मलीमोति मर्दन कर (विस कर) लेप करे तो तीन दिन तक ही इसके लेप करने से तीव्र गवर्चर्म रोग और पामा रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

गुजारादित्येषुः मस्मरजनीदूर्वाम्यालाङ्गलीस्तुविसन्धूथकुमारिकाजलधरकंडीरधूमेशजैः । वस्त्रपूर्णग्राविड़कमरिचसौद्रैश्च खारीयुतैः कार्यं वै गजचर्मद्वुरकसाकण्ठमुद्धर्तनम् ॥ ४ ॥

गुजारादित्येषुः वदर्त्तन—गुजा (रत्तिया) चीते की जड़, शङ्खमस्तम, हलदी, दूध, हरड़, करियारी विष, सेंडू, सेषानमक, बिंकुंबार, नागरमोया, मदार का दूध, गुह धूम (शाला) पारा, बाकुवी, चकवड़ के बीज, वायविड़क, मरिच, शहद और खारी (बड़ी खनूर) प्रत्येक समान भाग पीसकर दबान करने से गज चमं कुष्ठ, ददु, रक्सा और कण्ठ नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

आरथधदलैः प्रिष्टेषुः काजिकयुक्ततः । करियारदहुकुष्ठानि हन्ति पामां विचर्चिकाम् ॥ ५ ॥

अरथधदलैः प्रिष्टेषुः अमलतास के पत्तों को कांजी के साथ पीस कर लेप करने से गज चमं, ददु तुष्टादि, पामा और विचर्चिका नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

किटिमचिकित्सा—

चक्राङ्गुबीजं त्वक्तीरभावितं मूष्प्रसंयुतम् । रविवेत्सकन्दं च लेपनं किटिमधम् ॥ १ ॥

किटिम विकित्सा—चकवड़ के बीज और दालबीनी को समान भाग लेकर दूध से भावित करे और मदार तथा बेत की जड़ को भी उसी के समान लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से किटिम कुष्ठ नष्ट होता है ॥ १ ॥

पिष्पलीपूतिकायस्थकुष्ठयोपित्तचित्रकैः । लेपं सम्यक्प्रशंसन्ति किटिमधम् चिकित्सकाः ॥ २ ॥

पिष्पलीपूतिकायस्थकुष्ठयोपित्तचित्रकैः । लेपं सम्यक्प्रशंसन्ति किटिमधम् चिकित्सकाः ॥ २ ॥

गोमूत्रवारित्येषुः शिलाकासीसत्युत्थकैः । लेपः किटिमधम् चिकित्सकाः ॥ ३ ॥

गोमूत्रवारित्येषुः गोमूत्र, मैनसिल, कासीस और तूतिया प्रत्येक समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर लेप करने से किटिम कुष्ठ, वीसर्प तथा अन्य कुष्ठ रोग भी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सिध्मचिकित्सा—

धान्नीफलं सजंसरो यावशूकस्तिवदं च्रथम् । सौबीरीप्रेषितं सर्वं सिध्मशूलविदारणम् ॥ १ ॥

धान्नीदित्येषुः अवले के फल, राल और जडाखार प्रत्येक के समान भाग लेकर सौबीरीराम अथवा कांजी के साथ पीस कर लेप करने से सर्व प्रकार के सिध्म शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्मम् ।

चारेण कदल्या वा रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २ ॥

शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्मम् । अध्यवृक्ष के क्षार में हरदी का चूर्ण मिलाकर लेप करने से सिध्म नष्ट होता है ॥ २ ॥

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियद्रवः सर्वपादुरालम्भा । एतत्तेसरप्रिष्टं निहन्ति चिरकालजं सिध्मम् ॥

कुष्ठादित्येषुः कूट, मूली का बीज, पूर्ण प्रियद्रव, सरसो, जवासा और केसर प्रत्येक समभाग दीप कर लेप करने से पुराना तिधं रोग भी नष्ट होता है ॥ ३ ॥

गन्धपाषाणमिश्रेण यवद्वारेण लेपितम् । सिध्मं नाशमुपैत्याशु कदुतेलयुतेन च ॥ ४ ॥

गन्धपाषाणदित्येषुः गन्धक और यवाखार समान भाग पीस कर तेल में मिलाकर लेप करने से शीघ्र ही सिध्म रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च । गन्धपाषाणमिश्रानि सिध्मानां परमौषधम् ॥ ५ ॥

कासमर्दकबीजेषु—कसौदी (बड़े चकवड़) के बीज और मूली के बीज तथा गन्धक प्रत्येक समभाग पीस कर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट होता है । यह असुखम औषध है ॥ ५ ॥

बीजं मूलकं निम्बपत्राणि सिद्मसर्षपात्र । गृहधूमं च संतिप्रथं जलेनाङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥

उद्धरथं नवनीतेन छालयेदुष्यगवादिणः । उद्यादनेन सिध्मानि शास्त्रयन्त्याशु शारीरिकाम् ॥ ७ ॥

मूल बीजादित्येषु—मूली के बीज, नीम के पत्ते, इवेत सरसों, गृहधूम (शाला) प्रत्येक

समभाग जल के साथ पीस कर बिस अङ्ग पर सिध्म हुआ हो उस अङ्ग पर लेप करे पश्चात् मक्खन से उबटन कर के उण जल से धो दे । इस प्रकार तीन दिन तक करने से सिध्म रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६-७ ॥

लाला श्रीवेष्टकं कुष्ठं हरिदा गौरसर्वपाः । व्योषं मूलकबीजानि प्रपुचाटफलानि च ॥ ८ ॥
पृतान्यन्त्र प्रदिष्टानि कुष्ठेष्टुर्तनं परम् । सिध्मानां किटिभानां च ददूरां च विशेषतः ॥ ९ ॥

लाक्षादि लेप—लाख, राख, कूठ, इलडी, वेत सरसों, सोंठ, मर्टच, पीपल, मूली के बीज और चकवड़ के फल (बीज) प्रत्येक समभाग लेकर जल के साथ पीस कर उबटन करने से कुष्ठ, सिध्म, किटिभ और ददुर में विशेष लाभ होता है ॥ ८-९ ॥

कार्पासिकापत्रविमिश्रकाकजङ्घाकृतो मूलकबीजयुक्तः ।

तकेण लेप—वितिपुत्रवारे सिध्मानि सधो नयति प्रणाशम् ॥ १० ॥

कार्पासपत्र लेप—कपास के पत्ते, काकजङ्घा और मूली के बीज प्रत्येक समभाग लेकर मट्टे के साथ संभगवार को लेप करने से सिध्मरोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १० ॥

गोमूत्रेणाथ तकेण जीर्णसौवीकेण वा । पिष्ठमूलकबीजानां लेपनासिध्मनाशनम् ॥ ११ ॥

सिध्महर लेप—गोमूत्र से अथवा मट्टे से अथवा पुराने काँबी से मूली के बीजों को पीस कर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

विपादिकाचिकित्सा—

धन्त्रूबीजकषेन माणकज्ञारवारिणा । कटुतैलं विषकं तु द्रुतं हन्याद्विपादिकाम् ॥

विपादिका-चिकित्सा—धन्त्रू के बीजों का विषिवद कलक बना उसके चौयुना मूर्छित सरसों का तेल और तेल के चौयुना मानकन्द के श्वार का जल मिलाकर विषिवद तेल सिद्ध कर लगाने से विपादिका रोग नष्ट होता है ॥

तुष्ठीरसेन संसिर्द्धं धृतं हन्ति विपादिकाम् ॥ १ ॥

तुष्ठी धृत—तुष्ठी (विषाक्षल) के स्वरस से विषिवद सिद्ध किया धृत सेवन करने से विपादिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

पामाकण्डकञ्जुविसंपूर्विस्फोटचमंदलविचर्चिकाचिकित्सा क्रमेण व्याख्यास्यामः—

सिन्दूरजीरदूर्यराजियुग्ममनःशिलाविलजगमधकानाम् ।

रसान्वितानां बूजयोजितानां पामा बजेद् दूरतरं त्रिलेपात् ॥ १ ॥

सिन्दूरादि योग—सिन्दूर, वेतजीरा, कूण्डजीरा, इलडी, दारुहस्ती, मैनसिल, मरिच, गन्धक और पारद प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कड़जली बना कर उसमें अन्य सभी आवश्यिकों के चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर धृतमें मिलाकर तीन बार लेप करने से पामा रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

सेन्वादि चक्रमदं च सर्वपं पिष्पलीं तथा । सेवयेदारनालेन पामाकण्डविनाशनम् ॥ २ ॥

सेन्वादि योग—सेन्वानमक, चक्रवड़ के बीज, सरसों और पीपल इन सबको पीस कर काँबी मिलाकर लगाने से पामा और कण्डु नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

जीरकस्य पलं पिष्टवा सिन्दूरार्घ्यपलं तथा । कटुतैलं पचेदाभ्यां सद्यः पामाहरं परम् ॥

वृद्धवैयोपदेशोन पाद्यं तैलं पलाष्टकम् ॥ ३ ॥

जीरक तैल—जीरा एक पल लेकर पीस ले और सिन्दूर आया पल (२ कर्ष) के पश्चात् इन दोनों को ८ पल सरसों के तेल में पकावे । इसके लगाने से ज्योति ही पामा रोग नष्ट होता है । वृद्ध वैयों के उपदेश से वहाँ आठ पल तेल लेना चाहिये । (इसलिये वृद्ध वैय का नाम लिया

गया है कि योग के अनुसार तेल छे पक ही किया जाता क्योंकि कलक के ज्युग्मण ही मूर्छित तेल ग्रहण करने का विधान है) ॥ २ ॥

वृद्धसिन्दूरार्घ्य तैलम्—

सिन्दूरं धन्दनं मांसी विद्धं रजनीदूधयम् । प्रियंकु पश्चकं कुष्ठं मजिष्ठां खदिरं वचाम् ॥ ३ ॥

जात्यक्षित्रिवृत्तानिविडकरञ्जं विषमेव च । कूण्डजित्रकलोधं च प्रपुज्ञां च संहरेत् ॥ २ ॥

श्लचनपिष्ठानि सर्वाणि योजयेत्तेलमात्रया । अध्यज्ञेन प्रयोग्य तद्वृण्कुकृष्टानशनम् ॥ ३ ॥

पामां विचर्चिकां कच्छुं विसर्पं विषमेव च । रक्षपित्तोरिथितान् हन्ति रोगानेवंविधान् वहन् ॥

लिन्दूरार्घ्यमिदं तैलमस्त्वां निर्मितं पुरा ॥ ४ ॥

वृद्ध सिन्दूरार्घ्य तैल—सिन्दूर, लालवट्ठन, जटामासी, इलडी, दारुहस्ती, फूलप्रियजु, पट्टम-काठ, कुर्ढ़ी, मजीठ, खैर, दब, चमेली के पत्ते, मदार के पत्ते, निशोय, नीम के पत्ते, करंब के पत्ते, मीठा विष, पीपल, चौती की जड़, ओष और चकवड़ के बीज प्रत्येक समभाग लेकर विषिपूर्वक सूक्ष्म पीस कर उसके चौयुना मूर्छित सरसों का तेल और तेल से चौयुना पाकार्थ जल मिलाकर तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से शरीर का वर्ण सुन्दर होता है और कुष्ठ का नाश होता है । यह पामा, विचर्चिका, कच्छु, विसर्प, विषरोग और रक्तपित्त से उपचार हुए अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है । इस सिन्दूरार्घ्य तैल को सर्वप्रथम अधिनीकुमारों ने निर्माण किया था ॥ २-४ ॥

वृद्धन्मरिचार्घ्य तैलम्—

मरिचं त्रिवृता दन्ती चीरमार्कं शकृद्रसः । देवदारु हरिद्रे द्वा मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १ ॥

विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला । चिक्रको लाङ्गूली चव्यं विद्धं चक्रमर्दकम् ॥ २ ॥

शिरीषकुट्टौ निष्ठः सपुष्पोऽमृता स्नुही । शम्याको नक्तमालोऽडदः खदिरः पिष्पली वचा ॥

उयोतिष्मती च पलिका विषस्य हृष्पलं भवेत् । आढ़कं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥

पामाविचर्चिकाकण्डदुविस्फोटकानि च । वलयः पलितं छाया नीला व्यङ्गं तथैव च ॥

अध्यज्ञेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ ६ ॥

वृद्ध मरिचार्घ्य तैल—मरिच, निशोय, दन्तीमूल, मदार का दूष, गोबर का रस, देवदारु इलडी, दारुहस्ती, जटामासी, कूठ, लालचन्दन, माइरि, कनेर की जड़, हरताल, मैनसिल, चीता की जड़, करियारी विष, चाव, वायविद्ध, चकवड़ के बीज, शिरिष की छाल, दुटं की छाल, नीम की छाल, छितवन की छाल, गुरुच, सेहुड़, अमलतास, करंज, नागरमोथा, खैर, पीपल, वच और मालकांगनी प्रत्येक एक २ पल और विष दो पल लेकर विषिपूर्वक कलक बनाकर उसमें एक आढ़क सरसों का मूर्छित तेल और तेल के चौयुना गोमूत्र मिलाकर तेलपाक की विधि से मिली के अथवा लोहे के पात्र में रख कर धीरे २ मन्द २ अधिन पर पका कर तेल मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर रख ले । इसके मर्दन से कोठरोग, ब्रह्मरोग, पामा, विचर्चिका, कण्ड, ददु, विस्फोटक, बलो-पलिक, छाया (छाई), नील, वर्णग आदि सभी रोग नष्ट होते हैं और सुकुमारता होती है ॥ १-६ ॥

माइरेश्वरं धृतम्—कृत्वा कज्जलिकां रवै कुनटिका द्वे जीरके द्वे निशे

गोदन्तोषणानां एदग्जिका बाकुचिक्का सर्पिषा ।

लौहे लोहविमर्दितं धृतरं माइरेश्वरम् धृतं

कण्डकुष्ठविचर्चिकादिभानं पामाहरं लेपनात् ॥ १ ॥

मादेश्वर धृत—पारद-गन्धक को समान लेकर कड़बली कर उसमें मदार का दूध, मैनसिल, सफेर चीरा, कृष्णजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, गोदन्ती (हरताल), मरिच, सौसा का भस्म, चकवड़ के बीज, बाकुची के बीज और धृत समान भाग लेकर चूर्ण कर लोहे के पात्र में लोहे से ही भली-भाँति मर्दन कर रख ले। इस मादेश्वर धृत के लेप करने से कण्ठ, कुण्ड, विचर्चिका आदि शमन होते हैं और पामारोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

मांसीचन्दनशम्भ्याकरञ्जारिष्टसर्वप्रथम् । यष्टीकुटजदार्वीभिर्हन्ति कण्डमयं गणः ॥ २ ॥

कण्ठ नाशक मस्त्यादि योग—जटामासी, लालचन्दन, अमलतास के पत्ते, करंज के पत्ते, नीम के पत्ते वा छाल, सरसी, जेठीमधु, कुरीशा की छाल तथा दारुहल्दी प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् पीसकर मर्दन करने से कण्ठ नष्ट होता है ॥ २ ॥

अवश्युजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम् । मणिमन्थेन तुलयांशं मस्तुकालिकपेषितम् ॥

कण्ठं कच्छुं जयस्युग्रां सिद्धं पृष्ठं प्रशोगराट् ॥ ३ ॥

अवश्युजादि योग—बाकुची के बीज, कसौंजर (बड़े चकवड़) के बीज, चकवड़ के बीज, हल्दी प्रत्येक समान भाग लेवे और इन सबके समान सेंधानमक लेकर एकत्र कर दही के पानी और कांजी के साथ पीस कर लेप करने से उप्र कण्ठ तथा कच्छु आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

कोमलसिंहास्यदलं सनिश्चं सुरभीजलेन सस्तिष्ठम् ।

दिवसत्रयेण नियतं शमयति कच्छुं विलेपनतः ॥ ४ ॥

सिद्धास्त्यपलव लेप—अरुसे के कोमल पत्ते और हल्दी दोनों को समभाग लेकर गोमूत्र में पीस कर तीन दिन लेप करने से कच्छु रोग निश्चय नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

हरिद्राक्तकमंयुक्तं गोमूत्रस्य पलदूष्यम् । पिबेचरः कामचारी कच्छुपामाविनाशनम् ॥ ५ ॥

हरिद्रादि योग—हल्दी के कल्क में दो पल गोमूत्र मिलाकर पान और इच्छातुकूल आहार व्यवहार करने से पाया और कच्छु रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

गन्धपापादाण्चूर्णं तु कटुतैलेन योजितम् । लेपनादथ पानाद्वा कच्छुपामाविनाशनम् ॥ ६ ॥

गन्धकादि योग—गन्धक के चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर लेप अथवा पान करने से कच्छु और पाया रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

सिन्दूरादि तैलम्—

सिन्दूरपुग्गुलुरसाक्षनसिक्षयुत्थैः कच्छकीकृतैः कटुकतैलमिदं सुपक्षम् ।

कच्छुं स्वरतिपटिकिकामथ वाऽपि शुष्कामध्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसक्ष ॥ १ ॥

सिन्दूरादि तैल—सिन्दूर, गुग्गुल, रसवत, मधु का स्रोम और तूतिया प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना ही उसके चौगुना सरसों का तेल लेकर तेल पाक का विधि से तेल सिंदूर मर्दन करने से कच्छु, स्नायुक्त अथवा शुष्क समी प्रकाट के पिंडिकायें एक बार के द्वारा मर्दन करने से नष्ट होती है ॥ १ ॥

अर्कतैलम्—

अर्कपत्ररसे पक्षं रजनीकच्छकसंयुतम् । कटुतैलं हरेचूर्णं पामाकच्छुविचर्चिका: ॥ १ ॥

अर्कतैल—मदार के पत्तों के स्वरस को मूर्छित सरसों के तेल से चौगुना और हल्दी के कल्क को तेल से चतुर्थीश लेकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर लगाने से पाया, कच्छु और विचर्चिका रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

राजिकागुण्डयुक्तेन स्नैन्धवेन प्रलेपितम् । विजलं चर्मणा बद्धं नाशं चर्मदलं व्रजेत् ॥ २ ॥

चर्मदल पर लेप—राई, गुड़ और नमक प्रत्येक समान भाग लेकर पीसकर लेप करने से निमैल शुष्क तथा चमड़े से जड़ पकड़े हुये भी चर्मदल का नाश होता है ॥ २ ॥

अथ रसाः

त्रिपास्त्रदी विजयेश्वरो रसः—

शुद्धतालं मृतं सूतं दुल्यं तास्यां चतुर्गुणाम् । भर्जित्वा विजया योज्या सर्वतुल्यं गुडं विषेत् ॥
श्वेतकुष्ठहरं निष्कं रसोऽयं विजयेश्वरः । दार्ढीलदिरनिष्वानां कार्यं तद्वु पाययेत् ॥ २ ॥

विजयेश्वर रस—शुद्ध हरताल और पारद भस्म दोनों समान भाग और दोनों के चौगुना भूजा भाग तथा सबके समान पुराना गुड मिलाकर घोट लेवे । यह विजयेश्वर रस प्रतिदिन पक्ष निष्क (३ मास) खाकर कपर से दाशहल्दी, खैर और नीम की छाल का काथ पीवे तो इवेत कुष्ठ (विवश) का नाश होता है ॥ १-२ ॥

शिवाण्याह—

शिविणो हृतदोषस्य हृतशक्तस्य वा सकृत । खदिरास्त्रुयवाज्ञानां तृप्तस्य मलयूरसः ॥

समुद्रः शाश्वते पाने शबागूपण्डभोजिनः ॥ ३ ॥

शिव की चिकित्सा—दिवत्र के रोगी के दोषों का (विरेचनादि) हरण कर एक बार रक्त मोक्षण करावे और खैर के जल से सिद्ध किया जौ अन्ध के बने पदार्थों का भोजन कराकर मलयूर के स्वरस (कठूमर या जंगली अजीर) में पुराना गुड मिलाकर पान करने से इस रोग में शबागू तथा मांड का भोजन कराना चाहिये ॥ १ ॥

खदिरामलककथायं वाकुचिद्वीजानिवतं पिवेष्टिरथम् ।

शङ्खेन्दुकुष्ठन्दध्वलं शिवं हन्तीह तच्चित्रम् ॥ २ ॥

खदिरामलककथाय—खैर और आंवला की विधिपूर्वक काथ बना कर बावची के बीजों के चूर्ण का प्रक्षेप देकर नियत पान करने से शङ्ख, चन्द्रमा और कुन्द के पुष्प के समान भी इवेत वर्ण के शिव कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २ ॥

शिलापामार्गभसितलेषाच्चुप्रवं विनाशयेत् । किं पुनर्यदि युजेत धनञ्जयजटारवचा ॥ ३ ॥

शिलादि लेप—मैनसिल और अपामार्ग के भस्म दोनों समभाग पीस कर लेप करने से इवेत कुष्ठ नष्ट होता है । यदि इसमें अजुन दृष्ट की जड़ के छाल भी समान भाग मिला दिया जाय तो शिव अवश्य ही नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

त्रिफला नीलिनीपत्रं लोहचूर्णं रसाज्ञनम् । श्वेतगुज्जा दन्तिदन्तभस्म तुरथं च मार्कवम् ॥
सेवीहुधेन सम्पित्य रथापेष्योहभाजने । हितमेकं ततो लिघ्नेन्सुहुः शिवेष्वनुक्रमात् ॥

शिवाण्यनेन लेपेन निजदण्ठं रथजनित वै ॥ ५ ॥

दिवत्र नाशक त्रिफलादि लेप—हरड़, बड़वा, आंवला, नील के पत्ते, लोहे का चूर्ण, रसवत, इवेत वर्ण की रसियाँ, हाथी दाँत का भस्म, तूतिया, भांगरा प्रत्येक समभाग लेकर मेड़ी के दूध के साथ पीसकर एक दिन लोहे के पात्र में रहने दे पश्चात कम से शिव पर लेप करे तो शिव अपने वर्ण (इवेत) को त्याग देता है ॥ ५ ॥

सायोरेकःकृष्णतिलाज्ञनानि सावलगुजान्यामलकानि दण्डवा ।

पिष्टानि भृङ्गरथं सकृदसेन हृन्याकिलासं परिष्वष्टलैपात् ॥ ६ ॥

अयोरज्ञादि लेप—लोहे का चूर्ण, कृष्णवर्ण का तिल, रसवत, बाकुची के बीज और आंवला प्रत्येक समान भाग जलाकर पीसकर भांगरे के स्वरस में मिलाकर किलास कुष्ठ पर धिसकर बार २ लेप करने से किलास कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

विषतैलम्—

नष्टमालो हरिद्रेष्टे अर्कं तगरमेव च । करवीरवचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥ १ ॥

मालती सप्तपर्ण च मसिष्ठा सिन्धुवारिका । एषामध्येष्टलान्भागाविवषस्य द्विपलं भवेत् ॥
चतुर्युगे गवां मून्मेत्तेलप्रथं विषाच्येत् । शिवश्रिविस्कोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः ॥ ३ ॥
कण्ठूकच्छुविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः । विषतैलमिदं जाम सर्ववृणविशोधनम् ॥ ४ ॥

यिष्टेल—करज के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, मदार के पत्ते, तगर, कनेर, वच, कूठ, अपराजिता, लालचन्दन, मालौं के पत्ते, छितवन की छाल, मंडी, सिंधुआर (सेहुड) प्रत्येक आधा २ पल, मौठा विष दो पल लेकर विषधूपवृक्त कलक बनावे और मुँहित सरसों का तेल एक प्रथं लेवे तथा तेल के चौमुना (४ प्रथं) गोमूत्र लेकर सबको मिलाकर तेलवाक की विष से तेल सिद्ध कर लगाने से विषत्र, विस्फोटक, किटिभकुष्ठ, कीट, लूता, विचिका, कण्ठू, कच्छु के विकार और विष से दूषित होने के कारण उत्तरव्रण ये सभी इस विष तेल से नष्ट होते हैं और सभी प्रकार के त्रौं का इससे शोधन होता है ॥ १-४ ॥

योतिभूतीतैलम्—

मयूरकचारजले सप्तकृतम् । सिद्ध योतिभूतीतैलमध्यङ्गच्छुव्रनाशनम् ॥ १ ॥
योतिभूतीतैल—मालकांगनी के तेल की अपामार्ग के ज्ञारबाले जल के साथ तेल पाकविष से (तेल के चतुर्युग क्षारोदक मिलाकर) सातवार तेल सिद्धकर मर्दन करने से विषरोग नष्ट होता है ॥

शशिलेखावटी—

शुद्धसूतं समं गन्धं तुरथं च मृतताम्रकम् । मर्दितं बाकुचीकाथैर्दिनैकं वटकीकृतम् ॥ १ ॥
निष्कमात्रां सदा खदेच्छुव्रधर्णीं शशिलेखिकाम् । बाकुचीतैलकर्षेकं सखौद्रमनुपाययेत् ॥

शशिलेखर वटी—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर विषवट कउबली कर उसमें एक भाग ताम्रमस्त्र मिलाकर मर्दन कर बाकुची के काथ के साथ एक दिन भर मर्दन कर विषवट एक निष्क के प्रमाण की वटी बनाकर नियत सेवन करने से वह शशिलेखर नाम की वटी विष को नष्ट करती है इस वटी को खाकर बाकुची का तेल एक कर्ष के प्रमाण से लेकर मधु मिलाकर अनुपान में देना चाहिये ॥ १-२ ॥

पद्धयापथ्यम्—

अन्नपानं हितं कुषे न त्वम्ललवणोषागम् । द्विषुद्धगुडानूपतिलमाषांस्त्यजेत्तशम् ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—कुष रोग में साधारण अन्नपान करना हितकर है । परन्तु अम्लरस, लवण, मरिच, अथवा अन्य तीक्ष्ण पदार्थ, दही, दूध, गुड, आनूप मांस, तिल, और उड़द कभी नहीं खावे ॥
इति कुषविषप्रकरणं समाप्तम्

अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम्

आदी तस्य दोषव्यञ्जन्यत्वमाह—

शीतमाहत्तसंस्पर्शाप्रकुष्ठौ कफमाहती । पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥

शीतपित्त का निदान—शीतल वायु के लग जाने से कुपित हुए कफ और वायु पित्त के साथ मिलकर त्वचा में और रक्तादि वातुओं में फैल जाते हैं, इसी से शीत पित्त रोग होता है ॥ १ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—

पिपासाऽहुचिह्नासदाहसादाङ्गौरवम् । रक्तलोचनता तेवां पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ २ ॥

शीतपित्त का पूर्वरूप—जब शीतपित्तादि रोग होने को होते हैं तब उसके पहले प्यास, अरुचि, उवर्काई, दाढ़, अङ्गों की अवसन्नता और गुरुता होती है तथा नेत्र रक्तवर्ण के हो जाते हैं ॥

लक्षणमाह—

वरटीदृष्टसंस्थानः शोफः सखायते बहिः । सकण्ठूतोदवहुलरच्छुर्विषवदिवाहवान् ॥ ३ ॥

उदर्दमिति तं विद्याज्ञीतपित्तमशापरे । वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

उदर्द के लक्षण—जिसमें बर्ते के काटने के कारण होने वाले कोठ मण्डल के समान कोठ (ददोरे) बर्ते पर हो जावे और उस शोथ (ददोरे) में कण्ठू, सूई तुमाने के समान अधिक पीड़ा, वमन, ज्वर और दाह हो डेसे उदर्द कहते हैं । कोई आचार्य इसे ही शीतपित्त कहते हैं परन्तु वात की अधिकता हो तो शीतपित्त और कफ की अधिकता हो तो उदर्द आनना चाहिये ॥

उदर्दरस्य वर्मान्तरमाह—

सोत्सङ्घैश्च सरागैश्च कण्ठूमन्त्रिश्च मण्डलैः । वैशिरः कफजो व्याधिरुद्धर्दः परिकीर्तिः ॥ ५ ॥

उदर्द का वर्मान्तर लक्षण—जिस ददोरे में उसके मण्डल के किनारे डेसे उदर्द अर्थात् गहरे राग्युक्त (ललाई सहित) और कण्ठू युक्त हो डेसे उदर्द कहते हैं । यह विशिर अंतु में कफ के कोप से होने वाला रोग कहा गया है ॥ ५ ॥

त्वम्बोधसामान्यादत्रैव कोठः प्रोच्यते—

असम्यग्वम्बोदीर्णपित्तश्लेष्माक्षनिग्रहैः । आरनालैश्च शुक्तेश्च आसुरीलवणेन च ॥ १ ॥

वर्षाकाले प्रकृष्टेष्व तथा दुष्टैश्च कारणैः । मण्डलानि सकण्ठूनि रागवन्ति बहुनि च ॥ २ ॥

कोठ रोग—मलीमौति वमन नहीं होने से (वमन के मिथ्या प्रयोग होने से) बड़े हुए पित्त तथा कफ के अवरोध हो जाने से यवं अन्न के वमन के अवरोध (उपस्थित वेग के रोकने) से और कांजी के अधिक सेवन से, सिरका के अधिक सेवन से, आसुरी लवण (विडलवण) के अधिक सेवन से अथवा राई और लवण के अधिक सेवन करने से तथा अन्य दूषित कारणों से वर्षाकाल में वह (कोठरोग) कुपित होता है इसमें जो मण्डल होते हैं उसमें कण्ठू होता है और राग्युक्त (ललिमा सहित) बहुत से मण्डल (गोल-कमल आदि के समान) होते हैं उन्हें कोठ कहते हैं ॥ १-२ ॥

उत्कोठः सामुद्रन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

उत्कोठ के लक्षण—जिस कोठरोग में अनुबन्ध होता है उसे उत्कोठ कहते हैं । जिस कोठ में अनुबन्ध नहीं होता है वह क्षण में उत्पन्न और नष्ट होता रहता है ॥ ३ ॥

अथ शीतपित्तादीनां चिकित्सा।

अभ्यङ्गः कदुतैलेन स्वेदश्वोषेन वारिणा । तथाऽसु वमनं कार्यं पटोलारिष्टवासकैः ॥ १ ॥

शीतपित्तादि चिकित्सा—सरसों के तेल का अभ्यङ्ग करने से, उष्ण जल से स्वेद देने से और परवल के पत्र नीम की छाल तथा अहसे के काथ की पिला कर शीत वमन कराने से शीतपित्तादि रोगों में लाम होता है ॥ १ ॥

त्रिफलापुरकृष्णभिर्विरेकश्च प्रशास्यते । सर्विः पीत्वा महातिर्कं कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥

सच्चारसिन्धुतैलैश्च गात्राम्यङ्गं प्रकृष्टप्रयेत् ॥ २ ॥

अथवा आंवला, हरड़, वहेड़ा, शुद्ध गुरुता और पीपल प्रत्येक समान भाग लेकर उसका काथ पिला कर विरेचन कराना हितकर है, अथवा कुष्ठाधिकार में कण्ठू महातिर्क घृत को पिला कर रक्तमांक्षण करावे और क्षार, सेवानमक और सरसों का तेल समान भाग लेकर शरीर में मर्दन करने से लाम होता है ॥ २ ॥

गदभारिकाफलं पक्कं शुष्कमुरस्वेदितं युनः । शीरेण शीतपित्ताद्यन्तं खादितं पथ्यसेविना ॥ ३ ॥

गदभारिकाफलादि योग—गद्यारी के मलीमौति पक्के हुए फल को जल में उत्पाल कर दूध के साथ खाने से और पथ्य से रहने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ३ ॥

यष्टी मधूकपुर्वं च सरासनं चन्द्रनद्यम् । निर्गुण्डी सकणाकार्यं शीतपित्तहरं पिवेत् ॥ ४ ॥

यष्ट्यादि योग—जेठीमधु, महुआ का फूल, रासना, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, निरुण्डी तथा पीपल को समसाग लेकर विधिपूर्वक क्राय कर पान करने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ४ ॥
अमृतारजनीनिरुद्धवधन्वयासैः पृथक् शृतम् । प्राणिनां प्राणादं चैतच्छ्रीतपित्ते समाचरेत् ॥५॥

अमृतादि योग—गुरुच, हलदी, नीम की छाल और धमासा इनमें से किसी एक का क्राय बनाकर पान करावे यह जीवों को जीवन देने वाला और शीतपित्त को नष्ट करने वाला है ॥ ५ ॥
सगुडं दीप्यकं यस्तु खाद्येष्याचाभुल्नः । तस्य नश्यति सप्ताहादुदृदः सर्वदेहजः ॥ ६ ॥

सगुडं दीप्यकयोग—गुड के साथ अजवाइन खाने से और पथ्य सेवन करने से एक सप्ताह में सभूर्ण शरीर में व्यास उदर्दं नष्ट होता है ॥ ६ ॥

यवानीं पाययेद्वाऽपि सब्योषां छीरसंयुताम् । पिष्पलीवर्धमानं वा लशुनं वा प्रयोजयेत् ॥
यवान्यादि योग—अजवाइन, सौंठ, मरिच, पीपल प्रत्येक समसाग लेकर चूर्ण कर दूध के साथ सेवन करने से अथवा वर्धमान पिष्पली का सेवन करने से अथवा लहसुन सेवन करने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अशिमन्थभवं मूलं पिण्डं पीतं च सर्पिषा । शीतपित्तेद्वद्कोठान्सप्ताहादेव नाशयेत् ॥ ८ ॥
अशिमन्थ योग—गनियार की जड़ को पीस कर घृत में मिलाकर पान करने से एक सप्ताह में शीतपित्त, उदर्दं और कोठ नष्ट होता है ॥ ८ ॥

निरुद्धस्य पत्राणि सदा घृतेन आश्रीविमिश्राण्यथ वा ग्रयुञ्जयात् ।
विस्फोटकोट्चतक्षीतपित्तं कण्ठवस्त्रपित्तं सकलं निहन्यात् ॥ ९ ॥

निर्वपन योग—नीम की पत्तियों के चूर्ण को सदा घृत के साथ सेवन करने से अथवा नीम की पत्तियों और आंवले के चूर्ण को घृत में मिलाकर सेवन करने से विस्फोटक, कोठ, क्षत, शीतपित्त, कण्ठ और रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

कुण्ठं हरिद्रे सुरसं पटोलं निर्वाष्वान्वये सुरदारु शिर्यः ।
ससर्वपं तु रुद्धवस्त्रान्वयं त्वक्काण्डावच्यूर्णानि समानि कुर्यात् ॥ १० ॥
तैरत्कपिष्टैः प्रथमे शरीरं तेलाक्षमुद्वर्तयितुं यत्वेत् ।
तथा सकपृदृः पिटका सकोठा कुष्ठानि शोफथ शमं ब्रजन्ति ॥ ११ ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूठ, हलदी, दारुहलदी, तुलसी, परवल, नीम, असगन्ध, देवदारु, सहिजन, सरसों, तेज वल के फल और धनियाँ इनमें से किसी की त्वचा, किसी का काण्ड आदि समसाग लेकर चूर्ण कर एकत्र कर मटठे के साथ पीसकर पहले शरीर पर कड़वा तेल लगा कर इसका बटटन करने से कण्ठ, पिण्डिका, कोठ, कुण्ठ और शोफथ शमन हो जाते हैं ॥ १०-११ ॥
ससैन्धवेन कुष्ठेन सर्पिषा लेपमाचरेत् । सुरसास्वरसैर्वाऽथ लेपयेष्यरमौवधम् ॥ १२ ॥

सैन्धवादि योग—सैन्धानमक और कूठ दोनों समान लेकर चूर्ण कर घृत में मिलाकर लेप करने से अथवा तुलसी के स्वरस का शरीर पर लेप करने से शीतपित्त, उदर्दं और कोठ रोग नष्ट होते हैं । यह अति उत्तम योग है ॥ १२ ॥

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रुद्धाटिलैः सह । कटुतेलेन संमिश्रमेतदुदृतं हितम् ॥ १३ ॥

सिद्धार्थादि योग—श्वेत सरसों, हलदी, कूठ, चकवड के बोज और तिळ इनको समसाग लेकर चूर्ण कर कुडवा तेल में मिलाकर बटटन करने से शीतपित्तउदर्दं और कोठ में लाभ होता है ॥
शीतपित्ते उदर्दं च तथा कोठाभिये गदे । कूमिददुहरः कार्यः शीतपित्तेऽखिलः क्रमः ॥ १४ ॥
सिन्धूस्विक्षस्य संयुक्तिमादौ कोष्ठे समाचरेत् । ततः कुष्ठहरः सर्वो विधेयो विभिरादरात् ॥
शीतपित्तादि चिकित्सा—शीतपित्त, उदर्दं और कोठ रोगों में कूमि तथा दद्रनाशक सभी

प्रयोग करने के पश्चात् स्नेहन तथा स्वेदन कर के प्रथम कोष्ठ की शुद्धि करनी चाहिये तत्पश्चात् उठ नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १५ ॥

पथ्यापथ्यम्—

शालिसुद्रकुलथांश्च कारवेलमुपोदिकाम् । वेत्राङ्गं तस्मीरं च पित्तश्लेष्महराणि च ॥ १ ॥
शीतपित्तोद्वद्कोठोरोगिणां पथ्यमीरितम् । स्नानमातपमरलं च गुरुवन्नं च विवर्जयेत् ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—शालिधान के चावल, मूंग, कुलधी, करैली, पोई शाक, वेत का अग्रभाग (पछव), डण जल और पित्त-कफ नाशक पदार्थ ये सभी शीतपित्त, उदर्दं और कोठ रोग के रोगियों के लिये पथ्य कहे गये हैं । स्नान, आतप (धूप) सेवन, अम्लरस वाले पदार्थ का मोजन और गुरु अन्न यह शीतपित्तादि रोग के रोगी को त्याग देना चाहिये ॥ १-२ ॥

इति शीतपित्तोद्वद्कोठोरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथाम्लपित्तनिदानम्

तस्य संप्राप्तिमाह—विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिषानान्नभुजो विदधम् ।

पित्तं स्वहेतुपूचितं पुरा यत्तद्म्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

अम्लपित्त का निदान—परस्पर विरोधी (क्षीर-मस्त्यादि) पदार्थों के, दूषित पदार्थों के, अम्लरस वाले पदार्थों के, विदाही (दाहकारक) पदार्थों के और पित्त को कुपित करने वाले (तक्कुरा आदि) पान और अन्न के अतिसेवन करने से विदर्थ (अम्लत्व को प्राप्त) हुआ पित्त तथा पूर्व से ही अपने कारणों से (वर्षा क्रतु में पित्ताकारक अस, औषध तथा अन्न आदि के अधिक सेवन से) कुपित हुआ पित्त अम्लपित्तरोग को उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

तस्य किञ्चमाह—

अविपाककलमोक्तेशतिकाम्लोद्रारगौरवैः । हृष्टकण्ठदाहाहिचिभिश्वाम्लपित्तं वदेन्द्रिष्क् ॥ २ ॥

अम्लपित्त के रक्षण—जिस रोग में अन्न नहीं पचे, बलान्ति (विना परिश्रम के ही यान) हो उड़काई जावे, तिक्त अथवा अम्लरस युक्त डकार आवे, शरीर गुरु हो, दृढ़य और कण्ठ में दाह हो और अन्न में अरुचि हो उसे अम्लपित्त आनना चाहिये ॥ २ ॥

तस्य कदाचिदधोगतिमाह—

सुद्धाहमूर्ख्याभ्यमोहकरि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।

हृष्टासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीत्यत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥

अचोगामी अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में तुषा, दाह, मूर्छा, भ्रम और मोह (विपरीत यान) हो, नीचे की ओर जाने वाला हो और अनेक प्रकार के (हरा, पीला, काला, लाल आदि) वर्ण का, गंध युक्त, गुदा के मार्ग से मल विकलता हो, हृष्टास (उड़काई) होता हो, कोठरोग हो, मण्डाग्नि हो, रोमाञ्च हो, स्वेद हो और कभी २ अङ्ग को भी पीला कर देता हो, उसे अचोगामी अम्लपित्त कहते हैं ॥ ३ ॥

कदाचिद्दूर्घट्यतिमाह—

वान्तं हरिष्पीतकनीलकृष्णमारकरकाभसतीव चाम्लम् ।

मांसोदकाभं वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुयातं विविधं रसेन ॥ ४ ॥

मुक्ते विदग्धेऽन्यथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवर्भिं कदाचित् ।

उद्धारमेवंविधमेव कण्ठे हृष्टुचिदाहं शिरसो रुजं वा ॥ ५ ॥

कर्त्तव्यमासी अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में हरा, पीला, नीला, काला, धोड़ा अथवा अत्यन्त लाल, खट्टा, मास के खोबन के समान, अत्यन्त पिच्छिल, स्वच्छ, कफयुक्त तथा अनेक (लवण तिक्तादि) रससुक वमन हो, भोजन करने पर भोजन के बिदमध अवस्था में अथवा भोजन नहीं करने पर भी तिक्त अथवा अम्लरस का कभी र वमन होता हो तथा इसी प्रकार का तिक्त अम्ल र सादियुक्त डकार होता हो और कण्ठ, हृदय तथा कुक्षि स्थान में दाढ़ हो तथा शिर में पीड़ा हो उसे कर्त्तव्यमासी अम्लपित्त कहते हैं ॥ ५-६ ॥

कफपित्तजन्यमाह—करचरणदाहमौष्यं महतीमरुचिं उवरं च कफपित्तम् ।

जनयति कण्ठमण्डलपित्तिकाचित्तगात्रोगच्यम् ॥ ६ ॥

कफपित्तज अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में हाथ, पौव में दाढ़, उण्ठता, अत्यन्त अरुचि, उवर, कण्ठ, मण्डल, पिंडकाये और इसी प्रकार के शरीर पर अन्यान्य रोग उत्पन्न हो उसे कफपित्तज अम्लपित्त कहते हैं ॥ ६ ॥

रोगोऽथमण्डलपित्ताख्यो यत्नासंसाध्यते नवः ।

चिरोदिथितो भवेषाप्यः कष्टसाध्यः स कश्यचित् ॥ ७ ॥

साध्यासाध्यता—अम्लपित्तरोग यदि नवीन हो तो यज्ञ से साध्य और पुराना हो तो असाध्य होता है किन्तु द्वितीय आहार-विहार करने वाले का पुराना भी अधिक यज्ञ करने से साध्य हो जाता है ॥ ७ ॥

तस्मिन्निलकक्षंसंरग्माह—

सानिलं सानिलकफं सकफं तच लघयेत् । दोषकिङ्गेन मतिमान्विष्टमोहकरं हि तद् ॥ ८ ॥

वात-कफयुक्त वाला अम्लपित्त—यह अम्लपित्त वात सुक्त, वात-कफ सुक्त और केवल कफ युक्त भी होता है । इसे दैय दोषों के लक्षणों से जाने । यह रोग दैयों को मोइ में डाल देता है क्योंकि इसमें वमन और अतिसार होने से बहुत रोगनात्र का अम होने लगता है ॥ ८ ॥

करप्रगलापूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशुल्कानि । तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षाभनिलयुते ॥

वात सुक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में कृष्णन, प्रलाप, मूर्छार्दी, चिमिचिमाहट (चोटी काटने के समान पीड़ा), शरीर में रक्तानि, शूल, नीत्रों में अन्वकार, अग्न, मोइ (अक्षान) और हृषे (रोमाच्च) हो उसे वातसुक्त अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ ९ ॥

कफानुगतमाह—

कफनिष्ठीवनगौरवजडताहुचिशीतसादक्षिलेपाः । दद्वन्वलसादकण्ठनिदाचिह्नं कफानुगते ॥

कफयुक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में अधिक कफ शूक्र में आवे, शरीर गुरु हो, स्तन्धन हो (शरीर जड़ जावे), अरुचि हो, शीतकृता ज्ञात हो, रक्तानि हो, वमन हो, मुख में कफ किस रहे, अग्नि और दृढ़ की दानि हो, कण्ठ हो और गिदा हो उसे कफ की अधिकता वाला अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ १० ॥

वातश्लेष्मानुगतमाह—उभयभिमित्र चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यग्ने ।

कट्वञ्चवलणसासेविते कोपं भजयेत् । तिक्ताम्लकटुकोद्वारविमिहृष्टकण्ठदाहकृत् ॥ ११ ॥

वात-कफयुक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में उपसुक्त वात और कफ के भिन्ने हुए कक्षण दिखाई दे उसे वात-कफ अम्लपित्त जानना चाहिये । यह कट्व-अम्ल और लवण रस के अधिक सेवन से होता है और इसमें तिक्त-अम्ल और कट्व रस सुक्त डकार और वमन होता है तथा हृदय और कण्ठ में दाढ़ होता है ॥ ११ ॥

कफपित्तमाह—

अग्नो मूर्छार्दीचिरक्षुद्रिरालस्यं च शिरोक्षा । प्रसेको मुखमाधुर्यं श्वेषपित्तस्य लक्षणम् ॥

कफपित्त युक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में भ्रम, मूर्छार्दी, अरुचि, वमन, आलस्य, शिर में पीड़ा, लालाञ्चावे और मुखमाधुर्य (मुख का मधुर रद्दना) हो, उसे कफ-पित्त युक्त अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ १२ ॥

अथाम्लपित्तस्य चिकित्सा

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवारिणा । कारयेन्मद्वन्द्वौद्विनिषुक्तं ततोऽभिषक् ॥

विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुना त्रिफलाद्वैः ॥ १ ॥

अम्लपित्त की सामान्य चिकित्सा—अम्लपित्त में परवल के पत्र और नीम को उचाल कर उनके काथ में मैनफल का चूर्ण, मधु और सेवानमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करा कर वमन कराना चाहिये और त्रिफला के काथ में निशेथ के चूर्ण और मधु का प्रक्षेप देकर पान कराकर विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

कृतव्यमनविरेकस्यापि दोषोपशान्तिर्भवति न यदि कार्ये रक्तमोद्धश्य युक्त्या ।

कृतशिशिरविलेपस्थाग्लपित्तश्वद्वयौद्वनसमुद्दिततृप्तेवातरच्चाच कार्या ॥ २ ॥

यदि वमन-विरेचन आदि कराने पर भी रोगों की शान्ति नहीं हो तो युक्तिपूर्वक रक्तमोक्षण कराना चाहिये और शीतल द्रव्यों का लेप करना चाहिये तथा अम्लपित्तनाशक भक्ष्य पदार्थों तथा चावल के भात को खिलाकर तुस करना चाहिये और वात से रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥

क्षमणात्सात्—उवल्त्तमिव चाऽस्तमानं मन्यते योऽम्लपित्तवान् ।

तस्य संशोधनं पूर्वं कार्यं पश्चात्त्वं भेदज्ञम् ॥ ३ ॥

लक्षमणोत्सव से उद्धृत चिकित्सा—जो अम्लपित्त वाला रोगी अपने आप को जलता हुआ मानता हो (अधिक दाढ़ जिसे होता हो) उसको प्रथम संशोधक ओषधियों द्वारा संशोधन करा कर पश्चात् अन्य ओषधियों का प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

पूर्वं तु वमनं कार्यं पश्चात्मृदु विरेचनम् । कृतव्यान्तिविरेकस्य सुस्तिनश्वस्यानुवासनम् ॥ ४ ॥

अम्लपित्त के रोगी को सर्वपथम वमन तत्पत्तात् मुदुबीर्यं ओषधियों से विरेचन और वमन-विरेचन कराने के पश्चात् स्नेहन ओषधियों से मलीमौति स्तिथ कर अनुवासन कराना चाहिये ॥ आस्थापनं चिरोद्धैस्मिन्देवं दोषाद्येवया । दोषसंसर्गजे कार्यमौषधाहारकृपनम् ॥ ५ ॥

अम्लपित्त यदि पुराना हो गया हो तो उसमें आस्थापन कर्म करना चाहिये, दोषों के संसर्गज (मिलित) होने पर दोष आदि को अपेक्षा कर के उसमें ओषध और आहार देना चाहिये ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वदेवस्थिते वान्याऽप्यवस्थं देवतान्हैरेत् । पाचनं तिक्तश्वहलं पृथ्यं च परिकृपयेत् ॥ ६ ॥

दोष यदि उच्च देह में अधिक कुपित हो तो वमन करा कर और यदि अधोभाग में अधिक कुपित हो तो विरेचन कराकर तिक्त रस की अधिकता वाले द्रव्यों का पाचन और पथ्य सेवन कराना चाहिये ॥ ६ ॥

विकाशान्यवगोधमकूर्तास्तीषणविर्भिर्जितान् । भृद्येलाजसकृत्यस्तिताहौद्वयुतानिवेत् ॥ ७ ॥

जो और गैरूं के बने पदार्थ और तीक्ष्ण द्रव्य (मरिच आदि) छोड़कर अन्य भक्ष्य पदार्थों को अवश्य कराना चाहिये और लाजा (धान के खोल) के सत्तू में शर्करा और मधु मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ७ ॥

पृथ्याद्—

अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः । गुडकूप्याण्डकं चैव तथा खण्डामलकथपि ॥ ८ ॥

बृद्य मत से चिकित्सा—अम्लपित्त रोग में कफ-पित्त नाशक किया और गुडकूप्याण्ड तथा खण्डामलकी का सेवन करना चाहिये ॥ ८ ॥

गुडलीकणासिद्धं सर्पिरत्र प्रयोजयेत् । सवाते सविश्वन्देऽर्मनिहता कंसहीतकी ॥ २ ॥
अम्लपित रोग में पुराना शुद्ध, गौ का दूध और पीपल से विधिपूर्वक सिद्ध किया धृति और यदि
इसमें विवन्ध भी हो तो 'कंसहीतकी' का सेवन करना दित्कर है ॥ २ ॥

अथ काथाः

यच्छुष्णापटोलानां काथं चौद्रयुतं पिवेत् । नाशयेद्भूपितं च इश्वर्च च वर्मि तथा ॥ ३ ॥
यवादि काथ—जौ, पीपल और परवल के पत्र, प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ
बनाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त, अरुचि और वमन
नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

निरतुष्यवृषधाक्रीकाथं त्रिसुगन्धिमधुयुतं पीत्वा ।
अपहरत चाम्लपित्तं यदि भुड्के मुद्रयूषेण ॥ २ ॥

निरतुष्यवादि काथ—छिलका रहित जौ, अरुसा और आँवला प्रत्येक समझाग लेकर विधिवत
काथ कर उसमें त्रिसुगन्धित (दालचीनी, इलायची, तेजपात) का समान मिळित चूर्ण और मधु
का प्रक्षेप देकर मूँग के साथ पान करे तो अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ २ ॥

गुडच्छीचित्रकारिष्टपटोले: वृथितं पिवेत् । चौद्रयुक्त निहन्त्येत्तच्छर्दि पित्तमलसंभवाम् ॥३॥
गुडच्छादि काथ—गुरुच, चीते की जड़, नीम की छाल और परवल के पत्र प्रत्येक समझाग
लेकर विधिपूर्वक काथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त से
उत्पन्न वमन नष्ट होता है ॥ ३ ॥

भूनिम्बनिरुचिफलापटोलवासामृतापर्पटमार्कवाणाम् ।
वदाथो हरेत्त्वौद्रयुतोऽम्लपित्तं चित्तं यथा वारवृक्ताच्चैः ॥ ४ ॥

भूनिम्बादि काथ—चिरायता, नीम की छाल, हरड़, वहेड़ा, आँवला, परवल के पत्र, अरुसा,
गुरुच, पित्तपापड़ा और भांगरा प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक काथ कर शीतल होने पर उसमें
मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार युवती वेश्या के
कट्टास से चित्त नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

पटोलादि काथ—परवल के पत्र, हरड़, वहेड़ा, आँवला, नीम की छाल प्रत्येक समान भाग
लेकर विधिवत काथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त,
वमन, दाह, शूल और कफ का नाश होता है ॥ ५ ॥

कण्टकार्थमृतावासाकाथां मधुसंयुतम् । अम्लपित्तं जयेष्ठीत्वा भासं कासं वर्मि उवरम् ॥६॥
कण्टकार्थादि काथ—छोटी कट्टे, गुरुच, अरुसा प्रत्येक समझाग लेकर विधिवत काथ
बनाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त, भास, कास, वमन
और ज्वर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

चित्रकैण्ठमूलानि यवाक्ष सयवासकाः । जलेन क्षयितं पीतं कोष्ठद्वाहाम्लपित्तजित् ॥ ७ ॥
चित्रकादि काथ—चीते की जड़, परण्ड की जड़, जौ और जवासा प्रत्येक समझाग लेकर
विधिवत काथ बनाकर पान करने से कोष्ठ का दाह और अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

एरण्डादिचूर्णम्—एलातुगा चोचशिवाभयानां स्वरनिध्यादीरदलाश्लकानाम् ।
चूर्णं सितातुश्यमपाकरेति ग्रांदाम्लपित्तं दिवसास्यमुक्तम् ॥ १ ॥
एलादि चूर्ण—इलायची के दाने, वंशलोचन, दालचीनी, आँवला (शिवा हरड़ या आँवला)
हरड़, पिपरामूल, चन्दन, तेजपात और अकरकरा प्रत्येक समझाग लेकर विधिवत चूर्ण कर उसके

समान भाग शक्ता मिलाकर मर्दन कर उचित मान से प्रातःकाल सेवन करने से पुराना भी
अम्लपित रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिकटुकाचं चूर्णं लेहश—

त्रिकटुकसकण्टकारी-पर्पटवारिकुटजवीजानाम् । सौराष्ट्रिकापटोली-त्रायन्तीदारुमूर्चाणाम् ॥ १ ॥

तिक्कामृणालमलयज-कलिङ्गकैलिकिरातिक्कानाम् ।

सवचातिविषाकेसर-दीप्यकमुशिश्युवीजानाम् ॥ २ ॥

चूर्णं पटघृष्टमिदं पीतं शिशिरेण वारिणा प्रातः । चौद्रेण चाथ लीढं प्रायेणाघोरतं हन्ति ॥

अतिविषममध्लपित्तं पथ्यमुजो वासदैः कैश्चित् ॥ ३ ॥

त्रिकटुकादि चूर्ण—सौंठ, मरिच, पीपल, छोटी कट्टे, पित्तपापड़ा, सुगन्धवाला, इन्द्रजौ,
किंदिकीरी पटोलपत्र, त्रायमाणा, देवदारु, मूर्वमूल, कुटकी, डमलनाल, इवेत्वन्दन, कोरथा
की छाल, इलायची के दाने, विरायता, वच, अतीत, नागकेसर, अम्बाइन और मीठे सहिजन
के बीज, प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर कपड़े में छान कर उचित मात्रा से प्रातःकाल
शीतल जड़ के साथ पान करने से अथवा मधु के साथ लेह बनाकर बाटकर शीतक जड़ पाने से
अधोगामी अम्लपित्त यदि अति विषम भी हो तो कुछ ही दिनों में नष्ट होता है । इसके सेवन करते
समय पथ्य से रहने से विशेष लाभ होता है ॥ १-३ ॥

द्राक्षादियुटिका—द्राक्षापथ्य समे कृत्वा तथोस्तुत्यां सितां चिपेत् ।

संकुट्याद्वद्यमितां तत्पिण्डीं कारेयन्धिष्क ॥ १ ॥

तां खादेद्भूपित्तार्तीं द्वक्षण्ठदहनापहामै । तुष्मच्छ्वाद्रममन्दाग्निनीमामवात्हाम् ॥

द्राक्षादि युटिका—दाख और हरड़ बरावर २ लेकर उसमें दोनों के समान शक्ता मिलाकर
कूट कर दो अक्ष के प्रमण की बटी बनाकर खाने से अम्लपित्त की पीड़ा और हृदय तथा कण्ठ की
दाह नष्ट होती है तथा तृष्णा, मूर्च्छा, अम, मन्दाविन और आमवात नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

अभयाद्यवलेह—अभया पिपली द्राक्षा सिता धन्दयवासकम् ।

मधुना कण्ठद्वाहमूर्च्छार्शलेभाम्लपित्तनुत् ॥ १ ॥

अभयाद्यवलेह—हरड़, पीपल, दाख, शक्कर और जवासा प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक
चूर्ण कर मधु के साथ सेवन करने से कण्ठ और हृदय का दाह, मूर्च्छा और कफयुक अम्लपित्त
नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

खण्डपित्तश्यवलेहो योगरत्नावत्याः—

पिपलाः कुडवं चूर्णं धृतस्य कुडवद्यम् । पल्लोदशकं खण्डाद्वक्तावयाः पलाष्टकम् ॥ १ ॥

शिवायाः स्वरसस्यापि पल्लोदशकं मतम् । चौरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽन्न निचिपेत् ॥ २ ॥

शिजातकाभयाजाजीधान्यमुस्तशिवातुगाः । एतेषां कार्षिकं चूर्णं कर्षार्थं कूण्डजीरकम् ॥ ३ ॥

नागरं नागकं जातिकलं समरिच्च हिमम् । दत्त्वा पलत्रयं चौद्रेण स्विनधभाण्डे विनिचिपेत् ॥ ४ ॥

प्रातश्यथावलं लिहाद्भूपित्तप्रशान्तये । दृष्टासासारोचकड्कर्दिपियासाद्वाहनाशनम् ॥

शूलहृदोगशमनं हृण्यं चेदं रसायनम् ॥ ५ ॥

खण्डपिपली-अभयलेह—पीपल का चूर्ण एक कुडव (आवा मानी), गोधृत दो कुडव, शक्कर
१६ पल, शतावरी का चूर्ण ८ पल, आँवले का स्वरस १६ पल और गोदुम्ब दो प्रथ्य लेकर एकव
कर अबलेह पाक की विधि से पाक करे । पाक आसन होने पर इसमें दालचीनी, इलायची,
तेजपात, हरड़, जीरा, धनियां, नागरमोथा, हरीतकी और वंशलोचन प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष
कूण्डजीरा का चूर्ण ई कर्ष, नागकेसर, जायफर, मरिच और कंपूर का चूर्ण आवा २ कर्ष मिला

कर मर्दन कर उतार ले और शोतल होने पर उसमें तीन पल शहद मिळाकर धृत से रित्यव्यापार में रख दें। इस अवलेह को ब्रह्मानुसार मात्रा में प्रातःकाल सेवन करने से अम्लपित्त, हङ्गास, अरुचि, वमन, तुषा, दाह, शूल तथा हृदयेग शमन होते हैं। यह हृदयेग के लिये विशेष हितकर और रसायन है ॥ १-५ ॥

नारिकेलखण्डवाको योगरत्नावल्याः—

कुडवित्तमिह स्थानारिकेलं तुषिष्ट-पलपरिमितसर्पिः पचित् तुलयखण्डम् ।

निजपथसि तदेतत्प्रथमात्रे विपक्वं कुहवमध्य सुशाते शाणमात्रं चिपेच्च ॥ १ ॥

धान्याकपिष्ठपित्तयोदतुग्राद्विजीरैः-साकं त्रिजातमिम्भेसरवः द्वचूर्णं ।

हन्त्यवलपित्तमहीनं खयमच्छित्तं शूलं चमि सकलपौष्टकरि तुंसाम् ॥ २ ॥

नारिकेल खण्ड पाक—नारियल का मलोभूति पोषकर एक कुडव (इ मानिका) लेवे, गोधृत एक पल लेवे और नारियल के समान शश्कर मिलाकर पकाने और इसमें एक प्रथ्य नारियल का जल मिलाकर अबलेह पाक की विधि से पाक सिद्धकर शोतल होने पर उसमें धनियाँ, पीपल, नागरमीथा, वंशलोचन, जीरा, कुणजीरा, दाढ़चोना, इक्षयची रुदाने और नाशकेसर, प्रत्येक का पृथक् २ इलक्षण चूर्ण एक २ शाण (३, ३ माशा) मिलाकर रख ले इसको यथा बछ मात्रा से सेवन करने पर अम्लपित्त, अरुचि, शूल, रक्तपित्त, शूल और वमन, नष्ट होता है। यह पाक पुरुषों के सम्पूर्ण पुरुषार्थ (शक्ति) को देने वाला है ॥ १-२ ॥

गुडायो मोदकः—

गुडपित्तपित्ताभिस्तुर्याभिर्मोदकः कृतः । पित्तश्लेष्महरः प्रोक्तो मन्दाभिनवं च नाशयेत् ॥

गुडादि मोदक—पुराना गुड, पीपल और दूरद का चूर्ण समसामय लेकर विधिपूर्वक वटी बनाकर सेवन करने से पित्त-कफ और मन्दाभिन नष्ट होता है ॥ २ ॥

खण्डकूडमाण्डः—

कूडमाण्डस्य रसो ग्राहः पलानां शतमात्रकः । रसतुरुद्यं गवां ऊरं धात्रीचूर्णं पलाष्कम् ॥ १ ॥

लघ्वग्निना पचेत्तावद्यावद्वत्तिपिण्डतंम् । धात्रीतुरुद्या सिता योज्या पलाद्दु लेहयेदनु ॥

खण्डकूडमाण्डकं ख्यातमस्तुपित्तं नियच्छ्रुतिः ॥ २ ॥

खण्ड कूडमाण्ड—इवेत कूडमाण्ड का स्वरस सौ पल (४०० तो ०) और स्वरस के समान (१०० पल), याच का दूध तथा आँवले का चूर्ण आठ पल सबको मिलाकर मुदु अचिन पर अवलेह की विधि से पकाने और पाक सिद्ध हो जाने पर उसमें आँवले के चूर्ण के समान (आठ पल) शक्ति मिलाकर आधा पल के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन चाटने पर यह कूडमाण्ड खण्ड अम्लपित्त को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मधुपित्तपित्तादियोगः—पित्तली मधुसंयुक्ताप्यस्तुपित्तविनाशिनी ।

जाग्नीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यप्तपित्तकम् ॥ १ ॥

मधुपित्तपित्तादि योग—पीपल के चूर्ण में मधु मिलाकर चाटने से और ज्ञामीरी नीबू के स्वरस को वित्य सार्योकाल पान करने से अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

पित्तलीधृतम्—

पित्तलीकाथकरकेन धृतं सिद्धं मधुप्लुतम् । पित्तेष्वातः समुथाय अम्लपित्ततिधृतये ॥ १ ॥

पित्तली धृत—पीपल के काथ और कल्क से धृत सिद्ध कर अर्थात् पीपल का कल्क विधि पूर्वक बनाकर जितना ही उसके चौगुना मूर्च्छित गोधृत और धृत से चौगुना पीपल का विधिवत बना काथ लेकर धृत पाक की विधि से धृत सिद्ध कर उसे मधु के अनुपान से प्रातः नियत सेवन करने से अम्लपित्त की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

द्राश्वादिधृतम्—द्राश्वाभयाशकपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीयवच्छन्दनैश्च ।

त्रायनितकापद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्तापिरुतेष्वमेभिः ॥ १ ॥

भुजीत मात्रां सह भोजनेन सर्वं तु पाने ह्यमृतोपमं च ॥ २ ॥

द्राश्वादि धृत—दाख, दूरद, इन्द्रजौ, परवल के पत्ते, खस, आवला, जौ, लाल चन्दन, ब्रायमाणा, पदुमकाठ, चिरायता और धनिया प्रयोग समसामय लेकर विधिवत् कल्क कर जितना कल्क हो उसके चतुर्गुण मूर्च्छित गोधृत और धृत से चतुर्गुण पाकार्थं जल मिलाकर धृत पाक की विधि से धृत सिद्ध कर जोजन के साथ यथोचित मात्रा से सेवन करने पर अम्लपित्त नष्ट होता है। सभी अवस्थाओं में यह धृत अमृत के समान आमदायक है ॥ १-२ ॥

शतावरीधृतम्—

शतावरीमूलकलके धृतं प्रस्थं पयः समस् । पचेन्मृदुर्विनना भग्यव्योरं दद्वा चतुर्गुणम् ॥ १ ॥

नाशयेद्भूलपित्तं च वातपित्तोद्भवान्दान् । रक्तपित्तं तुषां मूर्च्छी श्वास सन्तापमेव च ॥ २ ॥

शतावरी धृत—शतावरी मूल का कल्क है प्रस्थ और गोधृत एक प्रस्थ इसमें एक प्रस्थ पानी और ४ प्रस्थ गोधृत मिलाकर मन्द २ जरिन पर धृत पाक की विधि से धृत सिद्ध कर सेवन करने से अम्लपित्त, वातपित्त, रक्तपित्त, तुषा, मूर्च्छा, श्वास और सन्ताप (दाहादि, रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

नारायणधृतम्—

जले दशगुणे काथ्यं पित्तलीनां पलाष्कस् । पादशेषं हरेष्कार्थं काथतुरुद्यं धृतं लिपेत् ॥

अडलपित्तहृवं श्रेष्ठं धृतं नाशयणं महत् । गुडचीरकणासिद्धं सर्पिश्चात्रापि योजयेत् ॥ २ ॥

महानारायण धृत—८ पल पीपल को कूट कर उसमें दशगुणे (८० पल) जल डाल कर विधिवत् काथ करे। चतुर्थीश (२० पल) शेष रहने पर उतार कर छान ले। उसमें काथ के समान (२० पल) मूर्च्छित गोधृत मिलाकर धृत पाक की विधि से धृत सिद्ध कर सेवन करने से यह अम्लपित्त नष्ट होता है। इसमें युक्त, दूध और पीपल से पकाया हुआ धृत सेवन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अथ रसा आरभ्यन्ते

तत्राऽस्त्रौ लीलाविलासो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मृततामाभ्रोचनम् । तुलयोंशं मर्दयेद्यामं रूदपत्रा लघुपुटे पचेत् ॥ १ ॥

अच्छवात्रीहरीतकीः क्रमवृद्धया विपावयेत् । जलेनाशृगुणेनैव ग्राहामष्टावशेषवकम् ॥ २ ॥

वनेन भावयेत्पूर्वं पक्षसूतं पुनःयुनः । पञ्चविंशतिवारं च तावता भृहज्जवैः ॥ ३ ॥

शुद्धं तच्चूर्णिं खादेपञ्चगुर्जं मधुप्लुतम् । रसो लीलाविलासोऽयस्मधपित्तं नियच्छ्रुतिः ॥४॥

लीलाविलास रस—शुद्ध पारद, शुद्धगन्ध, ताप्रभस्म, अन्नरुक्षस्म और वंशलोचन प्रत्येक समान याग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर सब मिलाकर एक पहर तक भलीभूति मर्दन कर शराव सम्पुर्ण में रख कर लघुपुट में फूंक दे और बहेड़ा एक याग, आवला दो याग और दूरद २ याग लेकर जो कुट कर अठगुणे जल के साथ विधिवत् काथ कर अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे तथा इस काथ से विधिपूर्वक उपरोक्त पुरुषक पारदादि को बार २ करके पचीस बार भावित करे और फिर मांगरे के स्वरस से पचीस बार भावित करे तत्पवात्र सुखाकर चूर्ण कर ले। इसको ५ रक्ती प्रमाण मात्रा से मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १-४ ॥

रसामृतम्—

त्रिकटु त्रिफला मुस्ता विद्धश्चित्रकं तथा । एवां सञ्चूर्णितानां तु प्रथेकं तु पलं भवेत् ॥ ५ ॥

कर्वद्वयं गन्धकस्य तद्दर्थं पारदेशं च । विद्वालपदमात्रं तु लिङ्गात्मन्मधुसर्पिषा ॥ २ ॥
शीतोदकं चानुपिवेकमादारायं पयस्तथा । अग्लपित्तमनिमान्धं परिणामरूपं तथा ॥
कामलां पाण्डुरोगं च हन्यादेतद्सामृतम् ॥ ३ ॥

रसामृत—सोठ, मरिच, पीपल, हरड, बड़ेड़ा, आवला, नागरमोथा, वायविंडग और चीत की जड़ का चूर्ण पुथक्, २ एक २ पल लेकर इसमें शुद्ध गन्धक २ कर्ष और शुद्ध पारद १ कर्ष भिन्न कर विधिपूर्वक कंजली करके भूलीभूति मर्दन कर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से अथवा यथा बड़ा मात्रा से मधु और गोधृत के साथ चाट कर शीतल जल का अनुपान करे पश्चात् गौ का दूष पान करे। इस कम से इस रसामृत सेवन करने से अम्लपित्त, मन्दाद्यि, परिणामशूल, कामथा और पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

सूतशेखररसः सारसंग्रहाद—

शुद्धं सुतं सूतं स्वर्णं टट्ठणं वसनागकम् । व्योवसुन्मत्तबीजं च गन्धकं तात्रभ्रस्मकम् ॥ १ ॥
चतुर्बातं शूद्धभ्रस्म विलवमठजा कचोरकम् । सर्वं समं लिपेत्स्वल्वे मर्य शूद्धरसैर्दिनम् ॥ २ ॥
गुजामात्रां वर्दीं शूद्धा द्विगुजे मधुसर्पिषा । भज्येदमूलपित्तम्भो वानितशूलामयापहः ॥ ३ ॥
पञ्च गुलमान्पद्म कासान्ग्रहण्यामयनाशनः । त्रिदोषोत्थातिसारधनः शासमन्दानिनाशनः ॥
उप्रहिक्कामुदावर्तं देहयाप्यगदापहः । मण्डलाशात्र सदेहः सर्वरोगहरः परः ॥

राजयचमहरः साक्षाद्सोऽयं सूतशेखरः ॥ ५ ॥

सूतशेखर रस—शुद्ध पारद, स्वर्णमस्म, शुद्ध टट्ठण, शुद्ध वसनाग, विष, सोठ, मरिच, पीपल, शुद्ध घटूर के बोल, शुद्धगन्धक, तात्रभ्रस्म, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, शूद्धभ्रस्म, कंजली बैल की गुही और कचूर प्रस्त्रोक समझान लेकर प्रथम पारद गन्धक की कंजली कर अन्य द्रव्यों का चूर्ण और भ्रस्मादि सब लेकर एकत्र कर फिर मांगरू के स्वरस के साथ दिन भर मर्दन कर एक रत्ती के प्रमाण की विधिपूर्वक बटी बनाकर दो रत्ती मधु और घृत के साथ सेवन करने से अम्लपित्त, वमन, शूद्ध पांचो प्रकार के गुलम तथा कास, ग्रहणी, त्रिदोषज, असीसार, शास, मन्दाद्यि, उद्य हिक्का, उद्दावर्त तथा शरीर के अन्य याप्तरोग भी नष्ट होते हैं। एक मण्डल (१८ दिन तक) सेवन करने से यह सूतशेखर रस राजयक्षमा को भी नष्ट करता है। यह रस प्राणी के भी रोगों को नष्ट करने में महोपचय है ॥ १-५ ॥

अथ पद्धयापथयम्

बद्धगोधमसुद्राद्यु पुराणा रक्षशालयः । जलानि तस्मीतानि शर्करा मधु सक्तवः ॥ १ ॥
कफोटकं कारवेलं रुमापुष्पं च वास्तुकम् । वेत्रांश्च शूद्धकूप्याण्डं पटोलं दाढिमं तथा ॥ २ ॥
पानामानि समस्तानि कफपित्तहराणि च । अम्लपित्तमये निर्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ ३ ॥

पद्धयापथ—जौ, गेहूं, मूंगा, पुराने लाल चावल, तपा कर शीतल किया जल, शकर, मधु, सच्च, बांसककोडा, करैकी, केळे का फूल, बकुबा का शाक, वेत के पलव, पुराना श्वेत कुप्याण्ड, परबल, बनार और कफ-पित्त नाशक सभी अन्न-पानादि अम्लपित्त रोग में सेवन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

घमिवेगं तिलात्माषाम्कुलस्थानस्तिलभ्रहणम् । अविहुरधं च धात्वात्मलं लवणामूलकट्टनि च ॥

गुर्वन्तं दधि मर्य च वर्जयेदमूलपित्तवान् ॥ ४ ॥

वमन का वेग, तिल, उड्ड, कुलधी, तिल के बने पदार्थ, भेंडी का दूष, धान्यामूल (कांबी), छवण, अमूल तथा कुड़ रस वाले द्रव्य, शुद्ध अन्न, दही और मध्य ये सब अम्लपित्त का रोगी त्याग देवे ॥ ४ ॥

इत्यन्मूलपित्तप्रकरणं समाप्तम्

अथ विसर्पनिदानमाह

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

लवणामूलकट्टणाविसंसेवादोषकोपतः । विसर्पः सप्तष्ठा शेषः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

विसर्पनिदान—लवण और छण पदार्थ के अतिसेवन से बातादि दोष कुपित होकर सात प्रकार के विसर्परोग उत्पन्न करते हैं। यह सम्मूल शरीर में फैलने वाला होने से यह विसर्परोग कहलाता है ॥ १ ॥

तस्य संख्यामाह—

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सांनिपातिकः । चरवार युते वीसर्पी वयवन्ते दृढ़जायायः ॥ २ ॥

विसर्प के भेद और लक्षण—वातिक, पैत्तिक, कफज तथा सांनिपातिक और तीन प्रकार के दृढ़ज भेद से सात प्रकार के विसर्परोग होते हैं ॥ २ ॥

आमेयो वातपित्तम्भयो ग्रन्थयायः कफवातजः । यस्तु कर्वमको ओरः सपित्तकफसंभवः ॥ ३ ॥

दृढ़ज विसर्प के भेद वात और पित्त दोष के मिश्रण से बाग्नेय विसर्प वात और कफदोष के मिश्रण से ग्रन्थिय, विसर्प और पित्त तथा कफ के दोष के मिश्रण से कर्वमक विसर्प होते हैं । वे तीन प्रकार के दृढ़ज विसर्प कठिन होते हैं ॥ ३ ॥

रक्तं लसीका त्वक्मांसं दूष्यं दोषाक्षयो भला । विसर्पाणां समुत्पत्तौ विशेषाः सप्त भातवाः ॥

विसर्प के कारण—विसर्प में रक्त, लसीका, त्वक और मास ये दूष्य हैं तथा वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं । ये सातों विसर्पों की वरपरि के कारण हैं ॥ ४ ॥

तत्र वातिकमाह—

तत्र वातारपरीसर्पो वातपरवरसमध्ययः । शोफस्फुरणनिस्तोद्येदायामार्तिर्षवान् ॥ ५ ॥

वातिक विसर्प—जिस विसर्परोग में वात ऊर के समान पीड़ा, शोथ, रुकुण (फङ्फङ्फाइट) तोड़ (सूई चुमाने के समान पीड़ा) और भेद फटने के समान व्यथा हो, तथा जो फैलने वाला हो, पीड़ा से युक्त हो और जिसमें रोमाङ्ग हो उसे वात कोप का वीसर्प ज्ञानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकमाह—पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तजवरलिङ्गोदतिलोहितः ॥

पैत्तिक विसर्प—जो विसर्प शोषी बढ़ने वाला हो, जिसमें पित्त ऊर के लक्षण के समान लक्षण हो और जो अंत्यन्त रक्त वर्ण का हो उसे पैत्तिक विसर्प कहते हैं ॥

कफजमाह—कफारकण्डूयुतः स्निग्धः कफउवरसमानरुक् ॥ ६ ॥

कफज विसर्प—जिस विसर्प में खुबलाइट, चिकनाइट और कफ ऊर के समान पीड़ा हो उसे कफज विसर्प कहते हैं ॥ ६ ॥

सांनिपातिकमाह—

संनिपातसमुत्पत्त्य सर्वलिङ्गसमन्वितः । सच्चात्मात्वर्द्धेद्भाद्रिद्विसर्पः पठितो द्विधा ॥ ७ ॥

सांनिपातिक विसर्प—जिस विसर्प में तीनों दोषों के सब लक्षण एकत्र हों उसे सांनिपातिक विसर्प कहते हैं । यह सांनिपातिक विसर्प अन्तर वाया भेद से दो प्रकार का होता है ॥ ७ ॥

मर्मोपतापास्मोदादयनां विषद्वनात् । तथा तृष्णादिवेगानां विषमं च प्रवत्तनात् ॥ ८ ॥

विषादिविषमन्तर्जामाशु चारिनवलव्यात् । अतो विसर्पणाद्वायामन्यं विषादुक्षणैः ॥ ९ ॥

अन्तर्ज और वाया भेद विसर्प—मर्म स्थानों में ताप अथवा अवात होने से, मोह होने से, अरनों अथवा उत्तरायण और दक्षिणायण के विषद्वन से अथवा ज्वों के बन्द होने से, अविक तृष्णा से, वेगों के उचित प्रवृत्त नहीं होने से और अरिन वल के क्षय (मन्दानिन) होने से शीघ्र अन्तर्ज विसर्प हो जाता है और इससे विदरीत लक्षण होने पर वाया भेद विसर्प हो जाता है ॥ ८-९ ॥

କବିତାମାଳ

वातपित्ताद्वररुद्धिर्मृद्धीतीसारतुड्डमैः । अस्थिभेदाभिन्सदनतमकारोचकैर्युतः ॥ १० ॥
करोति सर्वमङ्गलं च दीप्ताक्षारावकीर्णवत् । यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ॥ ११ ॥
शान्ताक्षारासितो नीलो रक्तो वास्त्रं च चीयते ।

अग्निदध्य इव स्फोटः क्षीघ्रात्वाद् द्रुतं च सः ॥ ४२ ॥
 मर्मानुसारी चौपर्ये: श्याद्वातोऽतिवलस्ततः । अथेताङ्गं हरेसंज्ञा निद्रां च शासमीरयेत् ॥
 हिधमां च स गतोऽवस्थामीदर्शी लभते न च ।

क्षचिच्छमारितिग्रस्तो भूमिशश्यासनादिषु ॥ १४ ॥
 वेष्टमानस्ततः विलष्टो मनोदेहश्वरमोऽवाम् । दुष्प्रबोधोऽशनुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥
 आग्नेय विसर्प—जिस विसर्प में उवर, वमन, मूर्छा, अतीसार, तृष्णा, अम, अस्तिमेद, मन्दाविन, तमक थास और अरुचि होता है और सभ्यण अक्ष ऐसे हो जाते हैं मानो जलते हुए अक्षरे छिड़क दिये गये हों, जिस २ स्थान पर विसर्प रोग फैलता है उस २ स्थान पर ऐसा बात होता है मानो तुकाये हुए कृष्णवर्ण के अङ्गार हैं अथवा नील वर्ण के अथवा रक्त वर्ण के फकोले पड़ जाते हैं और वे फकोले शीघ्रामी होने के कारण हृदयादि मर्मों को भोर फैलते हैं जिसके कारण वात अति वलवान हो जाता है और अङ्गों को पीड़ित तथा संसा (चेतना) और निद्रा का नाश होता है, एवं थास और दिक्का की बुद्धि कर देता है। इस प्रकार की अवस्था होने पर मनुष्य व्याकुल होकर भूमि, शश्या तथा आसन इत्यादि किसी स्थान पर शान्ति नहीं पाता है। इस कष्ट से शान्ति भिलने की चेष्टा करने पर वसे मन-देह के थकित होने के कारण दुष्प्रबोध-निद्रा अर्थात् मरण तुश्य निश्चेष्ट साव का हो जाता है। ऐसे विसर्प को वात-पित्त के कोप का प्रयोजन विसर्प कहते हैं ॥ १०-१५ ॥

कफमारुतज्ञनिधविसर्पमाह—

कफेन रुद्धः पवनो भिरता तं बहुधा कफम् । रक्तं वा ब्रुद्धरक्तस्य इत्वकिशाराद्नायुर्मासगम् ॥
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्ताथ्यूलखरामनाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्रहउवराम् ॥
थासकासासास्यवैरस्य शोषणिहृष्मावभित्रमैः । मोहवैवर्ण्यमुच्चाङ्गभङ्गिनिसदनंयंताम् ॥१८॥

इत्यर्थं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोषजः ॥

कफवातज ग्रन्थि—विसर्प जिस विसर्प में कुपित कफ से अवरोधित कुपित वायु उस कफ को अनेक प्रकार से भेदित कर अथवा बढ़े हुए रक्त वाले मनुष्यरक्त को भी भेदित कर के उसकी त्वचा, शिरा, स्नायु और मांस में स्थित रक्त को दूषित करके बड़ी, छोटी, गोल, मोटी और कठिन गाढ़ी की माला को बत्पन्न कर देता है वह ग्रन्थिया रक्त होती है उसमें तीव्र पीड़ा और ऊंचा ऊंचा होता है तथा ध्वास, कास, सुख की वीरसता, शोष, दिक्का, वमन, भ्रम, मोइ, विवर्णता, मूर्छा, अझों का दृटना और मन्दाग्नि आदि होते हैं उसको कफ और वायु के कोप का ग्रन्थि विसर्प कहते हैं ॥ १६-१८ ॥

कफपित्तात्मककदंमविसंपर्माइ—

कफपित्ताजवरः स्तम्भो निदा तन्द्रा शिरोहजा ॥ १९ ॥
 अङ्गावसादविषेपप्रलापारोचकभ्रमाः । मूर्च्छाविनाहानिर्भेदोऽस्थनां पिपासेन्द्रियगोरवम् ॥
 आमोपवेशनं लेपः स्त्रीतसां स च सर्पति । प्रायेणाऽमाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ २१ ॥
 पिटकेरवक्तीर्णोऽति पीतलोहितपाण्डुरैः । स्तिनधोऽस्मितो मेचकामो मलिनः शोधवन्नगुरुः ॥
 गम्भीरपाकः प्राइयोधमा ॥ २२ ॥ विलशोऽवद्यार्थते । पद्मवच्छीर्णमांसश्च स्पृष्टस्नायुशिरागणः ॥
 शवगन्धिः स वीसर्पः कर्दमाख्यमुखन्ति तम्भ । अग्निकर्दमको धोरः स पित्तकफसंभवः ॥

कफ पित्तज्ञ कर्दम विसर्प—जिस विसर्प में उवर, स्तनधता, निद्रा, तन्द्रा, शिर में पीड़ा, अङ्गों में शिथिलता, विक्षेप, प्रलाप, अस्ति, अम, मूर्छा, मन्दापिन, अस्थि भेद (इड्डियों का दृटना), तृष्णा और इन्द्रियों में गुहता हो तथा मन व्याय के समय ओत्र निकलता हो, नासिकादि में कफ लिपटा हुआ हो, आमाशय को ही प्रहण कर फैलता हो, उसमें पीड़ा भी अति-नहीं हो, तथा अत्यन्त पीत, लोहित और पाण्डु वर्ण की पिण्डिकायें व्यास हो गयी हों, दिनधता हो, श्वासता हो, अज्जन के वर्ण का वर्ण हो, मलिन हो, शोय युक्त हो, गुर हो, बद्ध भोतर से पक्के बाला हो, अत्यन्त उष्ण हो, स्पृशन करने पर आद्र ज्ञात हो, फटा हो, कीचड़ के समान वर्ण का सड़ा हुआ मांस निकलता हो और मांस निकल जाने से शिरा, रुक्षु आदि स्वष्ट दिशाएँ देता हो और शव के समान गन्ध निकलता हो तो उसे कफ-पित्त के कोप से होने वाला कर्दम नाम का विसर्प कहते हैं। यद्युभायंकर होता है ॥ १९-२४ ॥

क्षतजमाइ—

बाह्यहेतोः इतात्कद्गुः सरक्तं पित्रमीरयेत् । विसप॑ मारुतः कुर्याद्कुलत्थसङ्घैश्चित्तम् ॥

स्फोटैः द्वोधउवरस्जादाहाठयं श्यावलोहितम् ॥ १५

क्षतज विसर्पं—क्षतज विसर्प में बाह्य आघात से क्षत हो जाने पर रक्त के अधिक स्राव होने से बायु कुपित होकर रक्त के साथ पित्त को लेकर विसर्प रोग को उत्पन्न कर देता है जिसमें विसर्प की पिण्डिकायें कुछदूरी के आकार की व्यास हो जाती हैं तथा शोथ, ऊर, पीड़ा और दाढ़ की डसमें अधिकता होती है तथा वर्ण दयाम अथवा लोहित होता है (मोज ने इसे पित्तज विसर्प ही माना है) ॥ २५ ॥

विसर्पौपद्रवानाइ—

ज्वरातिसारवमथुत्वङ्मांसदरणकलमा: । अरोचकाविपाको च विसर्पणासुपद्रवाः ॥ २६ ॥

विसर्प के उपद्रव—विसर्पीय में ज्वर, अतीसार, वमन, त्वचा तथा सौंस का फटना, कलान्त अरुचि और अविषाकं (मोजन का न पचना) आदि उपद्रव होते हैं ॥ २६ ॥

साध्यासाध्यमाइ—सिद्धनित वातकफपित्तकृता विसर्पः सर्वारमकः क्षतकृतश्च न सिद्धमेति ।

पित्तात्मकोऽनन्दवृत्तम् भवेदसाध्यः कृच्छ्राच्च मर्मसु भवन्ति हि सब एव ॥२७॥
विसर्प के साध्यासाध्यता—वात-पित्त और कफ के दोषों से होने वाला विसर्प साध्य है। साक्षिप्तिक और क्षतज विसर्प असाध्य हैं। पित्त के अत्यन्त बढ़ जाने से काले अजन के समान कृष्ण वर्ण वाला अविन विसर्प अनाध्य है। यमस्थानों से होने वाले सभी विसर्प कड़ साध्य होते हैं॥

अथ विसर्पचिकित्सा

पूर्वमेव विसर्पेषु कथर्याखलङ्घनस्थाणे । विरेकवमनालेपसेचनासुग्रिवमोषणैः ॥

उपाचरेष्यादोषं विसर्पनविदाहिभिः ॥ १ ॥

विसर्प चिकित्सा—विसर्परोगों में सर्वप्रथम लहून और रुक्षण कर्म तथा विरेचन, बमन, लेप, सेक (तिनचन) और रक्तमोक्षण कराना चाहिये और दोषों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये । विशेषकर अविदाही पदार्थों का सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

विरेचनम्—

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिष्मिवृतया सह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्जवशान्तये ॥

विरेचक योग—आौवला, बैद्ध के स्वरस अथवा काथ में धृत और निशोय का चूर्ण भिलाकर प्रयोग करने से अथवा त्रिफलादि के योग से विधिपूर्वक धृत सिद्ध कर सेवन करने से विरेचन हो कर विसपे और उबर शमन होता है। अथवा निशोय और हरड़ के चूर्ण के सेवन करने से भी विसपे शोधन होता है॥ २॥

वमनम्—

पटोलपितुमन्दाभ्यां पिण्ठल्या मदनेन वा । विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रयज्वैः सह ॥ १ ॥

वमनकारक योग—परवल और नीम की छाल का काथ पान कराने से अथवा पीपल और मैनफल के चूर्ण को जल से सेवन कराने से अथवा इन्द्रजी के चूर्ण का जल से पान कराने से विसर्परोग में वमन होता है ॥ १ ॥

शक्तिमिकेऽन्न वस्त्रिः कार्या पूर्वं रेचनकं ततः । मदनं मधुकं निम्बं वस्त्रकस्य फलानि च ॥

पतैर्विविष्टातव्या विसर्पे कफसम्भवे ॥ २ ॥

कफज विसर्परोग में पहले वमन पश्चात् विरेचन कराना चाहिये । मैनफल, मुलाठी, नीम की छाल और इन्द्रजी प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ अथवा चूर्ण बना कर सेवन करने से कफज विसर्प में वमन होकर लाभ होता है ॥ २ ॥

अथ लेपः

रासना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला । विष्णुप्रस्त्रयचीरवाल्लेपो वातवीसर्पं नाशनः ॥ ३ ॥

रासनादि लेप—रासना, नीलकमल, देवदारु, रक्तचन्दन, मुलाठी, वरिभारा प्रत्येक सममाग छेकर धूत और दूध के साथ पीस कर विधिपूर्वक लेप करने से वातज विसर्प नष्ट होता है ॥ ३ ॥
अपौण्डरीकमञ्जिष्ठापश्चकोशीरचन्दनैः । सयष्टैन्दीवरवैः पैते शीरपिण्डे प्रलेपनम् ॥ २ ॥

प्रपौण्डरीकादि लेप—पुण्डरिया काठ, मंबीठ, पदुमकाठ, खस, रक्तचन्दन, जेठीमधु, नील-कमल प्रत्येक सममाग लेकर दूध के साथ पीसकर लेप करने से पित्तज विसर्प में लाभ होता है ॥

कसेशश्चकटकपश्चुज्ञाः सशैवलाः सोरपलकदर्मसाम्राद् ।

वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सधूताः सुशीताः ॥ ३ ॥

क्षर्वादि लेप—कसेल, सिंघाड़ा, कमल, रत्तिया, सेवार (जल की काई), नीलकमल और कीचड़ प्रत्येक समान पीसकर गांवूर मिलाकर विधिपूर्वक लेप बना कर शीतल ही शीतल वस्त्र पर लगाकर लेप लगाने से पित्तज विसर्प में लाभ करता है ॥ ३ ॥

गायत्रीसप्तण्डिवासारगवधवादूभिः । कुटबैठं वेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे ॥ ४ ॥

गायत्र्यादि लेप—खैर, छितवन की छाल, नागरमोश, अरसा, अमलतास, देवदारु, आल (सोना, पाठा) की छाल प्रत्येक सममाग पीस कर विधिपूर्वक लेप लगाने से कफज विसर्प में लाभ होता है ॥ ४ ॥

त्रिफलापश्चकोशीरसमझाकरवीरकम् । नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ५ ॥

त्रिफलादि लेप—हरड़, बड़ेड़ा, आंवला, पदुमकाठ, खस, मजीठ, कनेर की जड़, नरकट की जड़ और अनन्तमूल प्रत्येक सममाग पीस कर विधिपूर्वक लेप करने से कफज विसर्प नष्ट होता है ॥
सर्पिषा शतधौतेन कृतो लेपो सुहुर्सुहुः । निहिन्ति सर्ववीसर्पं सर्पं पतगराढिव ॥ ६ ॥

शतधौतसर्पिण्डे—धूत को सोवार शीतल जल से बोकर बार २ लेप करने से सर्व प्रकार के विसर्प इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार गरुड़ से सर्प नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

दशाङ्कलेपः—शीरपिण्डीनतचन्दनैला-मांसीहरिद्राद्ययकुष्ठजालैः ।

लेपो दशाङ्कः सधूतः प्रयोजयो विसर्पदुव्वगशोथहारी ॥ १ ॥

दशाङ्कलेप—शीरों की छाल, जेठीमधु, तगर, रक्तचन्दन, छोटी इलायची, जटासासी, इलदी, दाशहड़ी, कूट, सुगन्धबाला प्रत्येक सममाग जल से पीस कर धूत मिलाकर लेप करने से विसर्पे, दुष्टव्य और शाय (ब्रग शोथ) नष्ट होते हैं । (यहाँ लेपविधि) के अनुसार धूत सब द्रव्यों के पञ्चमांश ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥

मास्त्यादिलेपः—

मांसी सज्जरसो लोधं मधुक सहरेणकम् । मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुम्भमनि च ॥

पतैः ग्रदेहः कथितो वह्निर्विसर्पनाशनः ॥ १ ॥

मास्त्यादि लेप—जटासासी, राल, लोध, मुलाठी, रेणुका, मूर्वामूल, नील कमल (निलोकर), कमल और शीरीष के फूल प्रत्येक सममाग छेकर जल के साथ पीस कर लेप करने से अथवा विसर्प नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतधौतधूतविमिश्रः कल्कस्ववपश्चकस्य लेपेन । बहुदाहकरमुच्चकैरशिविसर्पं विनाशयति ॥

पञ्चत्वगादि लेप—सौ बार धुके द्वार धूत में पञ्चवक्कल (वट, पीपर [अदवत्य], गुल, पाकड़ और बेत के छाल) के समान भाग चूर्ण को मिलाकर लेप करने से अत्यन्त दाह करने वाला और उच्च (उठा दुआ) अचिन विसर्प नष्ट होता है ॥ २ ॥

न्यग्रोधपादो गुज्जा च कदलीगर्भं पूर्व च । एनैग्निथिविसर्पं लेपो धौताद्यसंयुतः ॥ ३ ॥

न्यग्रोधपादादि लेप—वट धूत की जड़, गुज्जा (रतियाँ) और केले के बीच का गुदा प्रत्येक समान भाग पीस कर सौ बार धुके द्वार धूत में मिलाकर लेप करने से अथवा विसर्प नष्ट होता है ॥

शतधौतधूतोनिमिश्रः शिरीषवगरजःकृतः । लेपः शमयति चिप्रं विसर्पं कर्दमाभिधम् ॥ ४ ॥

शिरीषवगादि लेप—सौ बार धुके द्वार धूत में शीरीष की छाल के चूर्ण को मिलाकर लेप करने से कदम नाम का विसर्प नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ काथाः

कनीयः पञ्चमूलस्य यववरक्कलकस्य च । कथायः पित्तवीसर्पे पाने सेकेऽपि शस्यते ॥ १ ॥

लघुपञ्चमूलादि काथ—लघुपञ्चमूल (शालिदणी, पृष्ठिदणी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखल) और यव का छिलका समान भाग लेकर बनाया दुधा विधिपूर्वक काथ के पान अथवा तिचन करने से पित्तज विसर्प में लाभ होता है ॥ १ ॥

पटोलादि—कुलकवृष्किरातारिष्टिक्षाहपथ्या-३३मलकमलयजानां कौशिकाद्यः कथायः ।

सकलगदसमुखं हन्ति वीसर्पमुग्रं इवरवभिविषदाह्वानिततृष्णाशजाभिः ॥ १ ॥

पटोलादि काथ—परवल के पत्र, अरसा, चिरायता, नीम की छाल, कुट्की, बड़ेड़ा, आंवल, चन्दन प्रत्येक सममाग छेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर उसमें शुद्ध गुग्गुल का प्रक्षेप देकर पान करने से उच्चर, वमन, विष, दाह, ब्रम, तुषा और पीड़ा सुक कठिन रोग तथा विसर्प नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गुहृच्यादिः—

अमृतवृष्पपटोलं निर्बकवर्कैरपेतं-त्रिफलज्जिदिसारं व्याधिघातं च तुश्यम् ।

कथितमिदमशेषं गुग्गुलोः पादयुक्त-हरति विषविसर्पन्कृष्णसङ्घातमायुः ॥ १ ॥

गुहृच्यादि काथ—गुहृची, अरसा, परवल पत्र, नीम की छाल, आंवल, हरड़, बड़ेड़ा, चन्दन और अमलतास प्रत्येक समान भाग लेकर विषविष वात कर उसमें चतुर्थीश शुद्ध गुग्गुल मिलाकर पान करने से विष रोग, विसर्प रोग और कुछ समूह शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूनिम्बादः—भूनिम्बवासाक्षट्कापटोलं फलत्रिक्ष इन्दननिम्बलिङ्गः ।

विसर्पदाहजवरशोकफण्ड-विस्फोटवृष्णावमिनुक्तवायः ॥ १ ॥

भूनिम्बादि काथ—चिरायता, अरसा, कुट्की, परवल पत्र, आंवल, हरड़, बड़ेड़ा, चन्दन और नीम की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर पान करने से विसर्प, दाह, ज्वर, शोथ, कण्ठ, विस्फोट, तृष्णा और वमन नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दुरालभावं—

दुरालभावं गुह्यं चित्रं भेषजम् । निशापर्युषितं दयात्मणावीसर्पशान्तये ॥ १ ॥

दुरालभावित योग—जवासा, पित्तपट्टा, गुरुनी और सौंठ प्रत्येक समान माग लेकर जौ कुट कर जल में भिजा कर रात भर पढ़ा रहने हैं। प्रातःकाल छानकर पान करने से तृष्णा और विसर्प नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पटोलं पित्तुमन्दं च दावीं कटुकरोहिणीम् । यथाहं व्रायमाणां च दयाद्वौसर्पशान्तये ॥ १ ॥

द्वितीय पटोलादि काथ—परवल पत्र, नीम की छाल, दाँड़ हल्दी, कुटकी, जेठीमधु, व्रायमाणा प्रत्येक समान माग लेकर विधिवत् काथ करके सेवन करने से विसर्प शान्त होता है ॥ १ ॥

मुस्तादिः—

मुस्तादिं काथः सर्वविसर्पनुत् । धात्रीपटोलमुदानामधवा घृतसंयुतः ॥ १ ॥

मुस्तादिं काथ—नागरमोथा, नीम की छाल, परवल पत्र प्रत्येक समान माग लेकर विधिवत् काथ पान करने से अथवा आंवला, परवल पत्र और मूँग प्रत्येक समान माग लेकर विधिवत् काथ कर घृत का प्रक्षेप देकर पान करने से विसर्पे रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

त्रावीदी गौराद्यं सर्पिः—

त्रे हरिदेस्थिरा मूर्च्चा सारिवा चन्दनद्वयम् । मधुरं मधुपर्णीं च पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ १ ॥

दशीरमुख्यलं मेदा त्रिफला पञ्चवल्कलम् । कलूकैरवसमैरेत्यैतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

विषवीसर्पिस्त्रोटकीटलूतावण्यापहम् । गौराद्यमिति विषवातं सर्पिः श्लेष्ममहृप्रणुत् ॥ ३ ॥

गौरादिं घृत—हल्दी, दारहल्दी, शलिपर्णी, मूर्च्चामूल, सारिवा, रक्तचन्दन, इवेतचन्दन, मुलाइडी, गुह्यी अथवा गम्भार की छाल, पदुमकाठ, पदुमकेसर, खस, नीलकमल, मेदा, आंवला, हरड़, बड़ेड़ा और वट, अश्वथ, गूलर, पाकड़ तथा बेत की छाल प्रत्येक एक २ अक्ष लेकर विधिपूर्वक कलूक कर उसमें एक प्रत्यं मूँछित गोघृन और पाकार्ध जल चार प्रस्थ मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से विष, विसर्प, विस्फोटक, कोट, लूता (मकड़ी) का विष और व्रण को नष्ट करता है। यह घृत गौरादिं नाम से विख्यात है तथा कफ और बायु के दोषों को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

दूषादिसर्पिः—वृषखदिपटोलपत्रनिम्बः सममूत्रामलकीकथायकलैः ।

घृतमभिन्नवमेतदाशु पद्मं जयति सदाऽत्मविसर्पकुष्ठगुलमान् ॥ १ ॥

दूषादिं घृत—धूरसा, खेर, परवल पत्र, नीम की छाल, गुरुनी और आंवला प्रत्येक समान माग लेकर विधिपूर्वक कलूक बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूँछित गाय का नया थी और घृत से चौगुना धूरसा आदि कल्कीय द्रव्यों का प्रस्तुत व्राय लेकर एकत्र कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से रक्तविसर्प, कृष्ण तथा गुरुम शोषण हो जाते हैं ॥ १ ॥

दूर्वादिसर्पिः—दूर्वावटोदुम्बरजम्बुलाल सप्तच्छुदायाथकथायकलैः ।

सिद्धं विसर्पवरदाडपाकविस्फोटशोकान् विनिहनिति सर्पिः ॥ १ ॥

दूर्वादिं घृत—दूष तथा वट, गूलर, जामुन, माल, लितवन और पीपल की छाल प्रत्येक समान माग लेकर विधिपूर्वक कलूक बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूँछित गोघृत और घृत से चौगुना दूष आदि कल्कीय द्रव्यों का विधिवत् प्रस्तुत काथ एकत्र कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से विसर्प, ज्वर, दाह, पाक, विस्फोट और शोषण नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

करजादितेष्म—करजससच्छुदलाङ्गलीका स्तुद्वाकुष्ठधानलमुङ्गराजैः ।

तैलं निशामूलविषैर्विपकं विसर्पविश्फोटविचिकित्साम् ॥ १ ॥

करजादितैल—करज, लितवन की छाल, करियारी विष, सेंडुड का दूध, चीता, भांगरा, हल्दी, गोमूत्र और मीठा विष प्रत्येक सममाग लेकर विधिवत् कलूक कर जितना हो उसके चौगुना मूँछित सरसों का तेल और तेल से चौगुना पाकार्ध जल लेकर सबको एकत्र कर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से विसर्प, विस्फोट और विचर्विका रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

मजिष्ठामया—

मजिष्ठा कुटजो मुस्ता गुह्यं च रजनीद्वयम् । कण्ठकारी वचा शुण्ठी कुष्ठारिष्टपटोलकम् ॥ १ ॥

नारी विद्वान्कामाची मोरटा ष्ठलदारुकम् । कलिङ्गमृग्नवायनतीपाठाकाशमरिका विलः ॥ २ ॥

गायत्री त्रिफला तिक्ता सारिवा नक्तमालकः । वासीसीरमहावृत्तसोमराजीप्रियंगुकः ॥ ३ ॥

चन्दनं पर्पटानन्तविशालाविवृता जलम् । कटुत्रिकं खुरासानं पलमेकं पृथक्-पृथक् ॥ ४ ॥

द्वाविंशतिपलां पथ्यां जलद्रोगे विपाचयेत् । अष्टावशेषः कर्तव्यः काथः सद्विषज्ञा ततः ॥ ५ ॥

वस्त्रपूता शिवा कार्या तीक्ष्णगलोहेन वेधयेत् । मधुमध्ये विनिविष्य क्रिःसप्तदिनसंख्यया ॥ ६ ॥

विनष्टं मधु संख्यय मधु श्रेष्ठं पुनः विषेत् । ततः सुखवादसंपत्ता प्रभाते भव्यतेच्छिवाम् ॥ ७ ॥

विसर्पाक्षाशयेत्सर्वान् कुष्ठान्यष्टादशापि च । खुडं पामां च कण्ठं च द्वद्विस्फोटविधीन् ॥

अन्यांस्त्रवद्वोषजान् रोगांस्तथा रक्तसमुद्वान् ॥ ८ ॥

मजिष्ठामया—मंजीठ, कोरया की छाल, नागरमोथा, गुह्यी, हल्दी, दारहल्दी, छोटी कटेरी, बच, सौंठ, कूट, नीम की छाल, परवल पत्र, बांझ ककोड़ा, वायविंडग, छोटी मकोय, अद्वौल की बहू, पाकड़ की जड़, देवदारु, इन्द्रजी, भांगरा, व्रायमाणा, पुरहनपादी, गम्भार की छाल, शुद्ध गम्भक, खेर, हरड़, बड़ेड़ा, आंवला, कुटकी, सारिवा, करज, असासा, खस, अमलतास, बाकुवी, बोज, प्रियंगु, रक्तचन्दन, पित्तपापड़ा, अनन्तमूल, माहरि, निशोय, सुगन्धवाला, सौंठ, पीपल, नरिच और खुरासानी खजवाइन, प्रत्येक एक २ पल और हरड़, ३२ पल एकत्र कर एक द्रोण (४ आड़क) जल के साथ काथ करे। अष्टमांश शेष रहने पर उत्तर-छानकर हरड़ को पृथक कर छोड़े के तीक्ष्ण-कटि से छेद कर २१ दिन तक मधु में रखे, २१ वें दिन जब वह मधु खराद अथवा घट जावे तब हरड़ों को उससे निकाल कर दूसरे उत्तम मधु में डुबा देवे पश्चात् उस सुखवाद हरड़ों को नित्य प्रातःकाल भक्षण करने से सब प्रकार के विसर्प, अठारहों प्रकार के कुड़ और बातरक, पामारोग, कण्ठ, ददु, विस्फोट, विद्रुषि और अन्यान्य त्वचा के दोष नाले रोग तथा रक्त दोष से होने वाले रोग सभी नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

त्रिवोषज्ञी कियां कुर्याद्विसर्पे द्वृद्धसम्भवे । इसायनानि कुण्ठेषु सर्पिषि क्षायनानि च ॥

त्रूपादीन्यपि सर्वांगि विसर्पेऽध्वपि तान्यलम् ॥ १ ॥

द्वन्द्व विसर्प चिकित्सा—द्वन्द्व विसर्प में विद्रोष नाशक किया करनी चाहिये तथा कुष्ठ रोग में कदे हुए रसायन योग, घृत, काथ और चूर्णादि सभी विसर्प रोग में देना चाहिये अर्थात् कुष्ठ की सम्पूर्ण चिकित्सा विसर्प में करनी चाहिये ॥ १ ॥

अथ पद्मयापद्यम् ।

विरेको वमनं लेपो लहूनं रक्तमोक्षणम् । पुराणयवगोधूमकुष्ठषिकशालयः ॥

सुदूरा मसूराश्रमकास्तुवर्यो जाङ्गो रसः ॥ १ ॥

नवनीतं घृतं द्राक्षा दाढ़िमं कारवेल्लकम् । वेत्राद्यं कुलकं धाक्षी खदिरो नागकेसरम् ॥ २ ॥

द्राक्षां शिरीषकपूर्वं चन्दनं तिललेपनम् । यथादोषं पद्ममिदं सेवितव्यं विसर्पिभिः ॥ ३ ॥

पद्मयापद्य—विरेचन, वमन, लेप, लहून और रक्तमोक्षण तथा पुराणे यव, गेहूं, कंगनी, साड़ी

योगरत्नाकरः

और शालिवान के चावल, मूँग, मेसूर, चना, अरद्दर, जागल जीवों का मांसरस, मक्खन, घृत, दाल, अनार, करैली, बेन का अप्रभाग, परबल, आंदाज, खैर, नागकेसर, मुनक्का, सिरोप और कहुर का सेवन तथा चन्दन और तिळ का लेप विसर्प वालों के लिये पथ्य कहा गया है।

व्यायाममहि शयनं सुरतं प्रवातं क्रोधं शुचं च मनवेगविभाशणं च ।

गुर्वश्चपानमस्तिलं लुशने कुलित्थान्माणस्तिलान्सकलमाणसमजाङ्गलं च ।

स्वेदं विद्वाहिलुच्चन्मलकट्टनि मध्यमक्षप्रभामयि विसर्पयदी त्यजेच ॥ ४ ॥

व्यायाम, दिन में सोना, मैथुन, कड़ी बायु का सेवन, क्रोध, शोक, वमन तथा अन्याय वेगों को भी रोकना, सब प्रकार के गुरु अन्ध तथा पानादि का सेवन करना, लहसुन, कुलधी, उड़द, तिळ, जागल जीवों के अतिरिक्त सभी जीवों के मांस, स्वेदकर्म, विदाही पदार्थ, छवण, अन्ध तथा कड़ रस वाके पदार्थ, मदिरा और धूप इन सबको विसर्प का रोपी त्याग देवे ॥ ४ ॥

इति विसर्पप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ विस्फोटनिदानम् ।

कट्टव्यमल्तीष्गोषणविद्वाहिलुच्चद्वारैरजीर्णाद्यवानातपैश्च ।

तथर्तुदोषेण विपर्ययैश्च कुप्यन्ति दोषाः पदवनादयस्तु ॥ ५ ॥

विस्फोटक निदान—अत्यन्त कड़, अन्ध, तीक्ष्ण, उड़ग, दाकारक, रुक्ष और क्षार द्रव्य के अतिसेवन करने से तथा अशीर्ण में भोजन करने से अथवा कच्चे पदार्थ के सेवन से और अध्यशन (भोजन करने पर पुनः भोजन करने) से, अधिक ताप (धूप) सेवन से, कठुन के दोष (शीत उषण आदि के अधिक लगने) से और कठुन के विपरीत आचरण करने से वातादिक दोष कुपित होकर विस्फोटक रोग को उत्पन्न करते हैं ॥ ५ ॥

त्वचमात्रिय ते रकमांसास्थिनि प्रदूष्य च ।

घोरान् कुर्वन्ति विस्फोटान् सवर्ज्जवरपुरुःसरान् ॥ २ ॥

विस्फोटक की सम्प्राप्ति—उत्पुक्त कारणों से कुपित वातादिक दोष त्वचा के आक्रित होकर रक्त, मांस और अस्थि को दूषित करके ऊंचर के पूर्वरूप के समान लक्षणों को करते हुए ऊंचर सहित और विस्फोट को उत्पन्न कर देता है ॥ २ ॥

तेषां लृपमाद—

अभिकर्षनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः । कच्चिरसर्वव्र वा देहे विस्फोटा इति संस्मृताः ॥

विस्फोट के रूप—शरीर पर अविन से जले हुए के समान फक्कों और उसके साथ ऊंचर अथवा रक्तपित्त के कारण जो स्फोट किसी रसान पर अथवा सम्पूर्ण शरीर पर हो जाते हैं उन्हें विस्फोट कहते हैं ॥ ३ ॥

वातिकमाद—

शिरोस्वश्चलभूयिष्ठवरतृपर्वभेदनम् । सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

वातिक विस्फोट—जिस विस्फोट में शिर में पीड़ा, उदर में अधिक शूल, ऊंचर, तृष्णा, संधि-स्थानों में भेद (दूटने के समान पीड़ा) और फक्कों का वर्णकण हो उसे वातिक विस्फोट कहते हैं ॥ ४ ॥

पैत्तिकमाद—

व्यवरदाहकजात्याव रक्तपूर्वभेदनम् । यीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

पैत्तिक विस्फोट—जिस विस्फोट में ऊंचर, दाह, पीड़ा, तृष्णा, शोक, तुष्णा और विस्फोट का वर्ण पीत अथवा लोहित हो उसे पित्तिक विस्फोट कहते हैं ॥ ५ ॥

विस्फोटचिकित्सा

द्वैषिमिकमाद—

छ्यायोचकजाड्यानि कण्ठकाठिन्यपाण्डुताः । अवेदनश्चिरपाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥६॥

कफज विस्फोट—जिस विस्फोट में वमन, अव्यव, जड़ता, विस्फोट में कठिनता और वर्ण पाण्डु हो, पीड़ा नहीं हो और बहुत दिन में विस्फोट में पाक हो उसे कफ के कोप का विस्फोट जाना चाहिये ॥ ६ ॥

कफपैत्तिकमाद—कण्ठदूर्वाहो उवरश्छुद्दिरेतेस्तु कफपैत्तिकः ॥ ७ ॥

कफ-पित्तज विस्फोट—जिस विस्फोट में कण्ठ, दाह, ऊंचर और वमन हो उसे कफपित्तज, कहते हैं ॥ ७ ॥

वातपित्तजमाद—वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥

वात-पित्तज विस्फोट—जिस विस्फोट में तीव्र वेदना हो उसे वात-पित्तज कहते हैं ॥

कफवातिकमाद—कण्ठस्तैमित्यगुरुभिर्जीवात्कफवातिकम् ॥ ८ ॥

कफ-वातज विस्फोट—जिस विस्फोट में कण्ठ हो, आद्रता हो (भीजे हुए बख से आच्छादित हुए की मात्रा हो), और गुरुता हो उसे कफ-वातज विस्फोट कहते हैं ॥ ८ ॥

त्रिदोषजमाद—

निमनमध्य उक्तोऽन्ते कठिनोऽत्यप्रयाकवान् । दाहरोगत्यामोहच्छुद्दिमूच्छुरुहो उवरः ॥

ग्रालापो वेष्पुस्तन्दा सोऽसाध्यस्तु त्रिदोषजः ॥ ९ ॥

त्रिदोषज विस्फोट—जिस विस्फोट का मध्य गहरा और किनारा ऊँचा हो, तथा कठिन हो, थोड़ा पाक जिसमें हो, दाह हो, वर्ण कुछ रूलाल हो और तृष्णा, मोह, वमन, मूर्छा, पीड़ा, ऊंचर, प्रलाप, कम्पन, तथा तन्द्रा हो उसे त्रिदोषज विस्फोट कहते हैं । यह असाध्य होता है ॥ ९ ॥

रक्तजमाद—

रक्ता रक्तसुख्याना गुआविद्वुमसनिभाः । वेदितच्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ १० ॥

न ते सिद्धिं समायानित सिद्ध्यैर्योगवरैरपि ।

रक्तविस्फोट—जिस विस्फोट का वर्ण गुज्जा के समान अथवा मूर्गे के समान लाल हो उसे रक्तज विस्फोट कहते हैं । ये विस्फोट रक्त-पित्त के दोष से उत्पन्न होते हैं और उसमें सिद्धयोगों से भी नहीं छूटते हैं ॥ १०-१०२ ॥

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ ११ ॥

सर्वरूपान्वितो घोरस्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १२ ॥

साध्यासाध्यता—एक दोष से उत्पन्न होने वाला विस्फोट साध्य और दो दोषों से उत्पन्न होने वाला कठ साध्य तथा त्रिदोष अथवा अनेक उपद्रवों वाला कठिन विस्फोट असाध्य होता है । हिंद्वा शासोऽहचित्यृष्णा चाङ्गमद्यो हृदि व्यथा । दिसर्पञ्चरहस्यासविस्फोटानामुपद्रवाः ॥

विस्फोट के उपद्रव—विस्फोट रोग में दिक्का, श्वास, अहनि, तृष्णा, अक्षमद (शरीर का दूटना), हृदय में पीड़ा, विसर्प, ऊंचर, हल्लास (उवकार्द) आदि उपद्रव कहे गये हैं ॥ १३ ॥

अथ विस्फोटचिकित्सा

तत्राऽदी लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यमेजनम् । यथादोषं वर्ण वीचय ग्रोक्तं युक्तं च रेचनम् ॥

विस्फोट चिकित्सा—विस्फोट रोग में चिकित्सा के पूर्व प्रथम लहून, वमन, पथ्य सेवन और दोषवालानुसार विरेचन करना चाहिये ॥ १ ॥

हिंपञ्चमूर्छी रास्तां च दाढ़युक्तीरुद्वालभास् । सामृतं धान्यकं मुस्तां काथयित्वा शृतं पिवेत् ॥

विस्फोट वातसंभूतं निहन्येतच संशयः ॥ १ ॥

दिपब्रम्लादि कवाय— दिपब्रम्ल (इस मूल की पृष्ठक २ दसों ओषधियाँ), रासना, दाशहलदी खस, जवासा, गुहचि, धनिया और नागरमोथा प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक काय कर कुछ उष्ण रहते ही पान करे तो बात के कोप से उत्पन्न विस्फोट अवश्य ही नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्राक्षादि—

द्राक्षाकाशमर्यखर्जूरपटो भरिष्ववासकैः । कटुकालाजदुश्पश्चैः काथः शकरया युतः ॥ १ ॥

विस्फोट पित्तज्ञ हनित सोषद्वमसंशयम् ॥ १ ॥

द्राक्षादि कवाय— दाख, गम्भारी के कल, खजर, परवल के पत्र, नीम की छाल, अरुसा, कुटकी, धन की खील और जवासा प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कवाय करके शुर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से उद्धर्वों से युक्त पित्तज विस्फोट अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूनिम्बनिम्बवासाश्च त्रिफलेन्द्रयवासकाः । पित्तुमन्दः पटोली च फाथमेषां सशकरम् ॥

पीत्वा विमुच्यते नूनं कफविस्फोटकाशरः ॥ १ ॥

भूनिम्बादि कवाय— चिरायता, नीम की छाल, अरुसा, हरड़, बड़ेड़ा, आंवला, इन्द्रजी, जवासा, नीम की छाल, परवलपत्र प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कवाय बना उसमें शुर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से कफ के कोप से उत्पन्न विस्फोट अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्रादशकः—

किराततिक्कारियष्टयद्याहाम्बुदपर्षटैः । पटोलवासकोशीरत्रिफलाकौटजैः श्रुतम् ॥ १ ॥

द्वादशाङ्कं नरः पीत्वा विस्फोटेभ्यो विमुच्यत । द्वन्दजेभ्यस्त्रिदोषोथाद्रक्तजात्त्वं हिताशनः ॥

द्रादशक काय— चिरायता, नीम की छाल, जेठी मधु, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, परवल पत्र, अरुसा, खस, हरड़, बड़ेड़ा, आंवला और इन्द्रजी प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कवाय करके पीने से इन्द्रज, त्रिदोषज, रक्तज और अन्यथा दोषों से उत्पन्न विस्फोट नष्ट हो जाते हैं । इसमें द्वितीय पथ्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अमृतवादिकवाय—

अमृतवृष्पपटोलं सुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेन्नं निघपत्रं हरिदे ।

श्रुतमिति स विसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्ठैरपत्तयति मसूरीं शीतपित्तजवरं च ॥ १ ॥

अमृतादि कवाय— गुरुची, अरुसा, परवल पत्र, नागरमोथा, छतवन की छाल, खेर, काली गंत, नीम के पत्ते इलटी, दाशहलदी प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कवाय कर पान करने से विसर्प, कुछ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पटोलादिवैन्द्रादि—

पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्षटैः । खदिराबद्युतैः काथो विस्फोटजवरशान्तये ॥ १ ॥

पटोलादि कवाय— परवल पत्र, गुरुच, चिरायता, अरुसा, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, खेर, नागरमोथा प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कवाय कर पान करने से विस्फोट और ज्वर शान्त होते हैं ॥ १ ॥

निष्ठादिः—

निम्बवत्ववादिः सारो गुह्यची शक्रजोथं चाः काथो मात्तिकसंयुक्तो विस्फोटादिजवरापहः ॥

निष्ठादि काय— नीम की छाल और खेर दोनों को समान आग लेकर विधिवत् कवाय कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर शोतुल होने पर पान करने से अथवा गुरुच और इन्द्रजी को समझाग लेकर विधिवत् कवाय कर शोतुल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से विस्फोटादि ज्वर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूनिम्बवादिक्षिकित्सासारात्—

भूनिम्बवासाकटुकपटोलं फलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः ।

विसर्पद्वाहजवरशोफकण्ठविस्फोटवृण्णावमिनुक्तव्यायः ॥ १ ॥

द्वितीय भूनिम्बादि कवाय— चिरायता, अरुसा, कुटकी, परवलपत्र, आंवला, हरड़, बड़ेड़ा, रक्तचन्दन और नीम की छाल प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कवाय कर पान करने से विसर्प, ज्वर, शोथ, कण्ठ, विस्फोट, तुण्डा और वमन रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पद्मकं धृतम्—

पद्मकं मधुकं लोध्रं जागपुष्पस्य केशरम् । हरिदे द्वे विडकानि सूक्ष्मेला तगरं तथा ॥ १ ॥

कुष्ठ लाला पत्रकं च सिक्षिकं तुथमेव च । ताथेनाऽलोद्य तत्सर्वं धृतप्रस्थं विषाचयेत् ॥

यांश्च रोगाचिह्न्याद्वा तात्रिवोध महामुने । सर्पकीटाखुदृष्टेषु नाढीदुष्टविसर्पिषु ॥ ३ ॥

विविधेऽपि च विस्फोटे लुतामूष्टक्तेषु च । नाढीषु गण्डमालाद्वु प्रभिन्नासु विशेषतः ॥

आस्तीकविहितं धन्यं पद्मकं तु महद् धृतम् ॥ ४ ॥

पद्मकं धृतम्— पद्मसुकाठ, सुलहटी, लोध, नागकेसर, इलटी, दाशहलदी, वायविडंग, छोटी इलायची, तगर, कूट, लाख, तेजपत, मोम और तूनिया प्रत्येक समझाग लेकर विधिपूर्वक कल्प करके एक प्रस्थ मूलित गोधृत में मिलाकर धृत से चौमुना जल में धोल कर धृत पाक की विधि से धृत सिद्ध कर लेवे । आस्तीक मुनि के कडे इस धृत को सर्प दंश, कीट दंश, मूषक दंश, नाढी व्रण, दुष्ट व्रण, विसर्प, अनेक प्रकार के विस्फोट, लता मूत्र रोग (मकड़ी के मूत्र से उत्पन्न व्रण), क्षत, नाढी व्रण और गण्डमाला में तथा विशेष कर गण्डमाला के फूटने पर लगाने से ये सभी रोग दूर होते हैं ॥ १-४ ॥

पद्मतिकं धृतम्—पटोलसप्तच्छृद्धनिम्बवासा-फलत्रिकच्छृद्धहाविषकम् ।

तत्पञ्चतिकं धृतमाशु इन्द्रात् त्रिदोषविस्फोटसर्पकण्ठः ॥ १ ॥

पद्मतिकं धृत— परवल पत्र, छितवन की छाल, नीम की छाल, अरुसा, आंवला, हरड़, बड़ेड़ा तथा गुरुच, प्रत्येक समझाग लेकर उसके चौमुना मूलित गोधृत और धृत के चौमुना पाकार्थ छल मिलाकर धृत पाक की विधि से धृत सिद्ध कर सेवन करने से त्रिदोष विसर्प और कण्ठ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

चन्दनादिलेपः—

चन्दनं नागपुष्पं च तण्डुलीयवारिणा । शिरीषवलक्लं जाती लेपः स्याद्वाहनाशनः ॥ १ ॥

चन्दनादि लेप— कालचन्दन, नागकेसर की छाल, चमेली के पत्ते इन सबको चौराई के स्वरस से पीस कर लेप करने में दाइ नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

शोधिते लङ्घिते वान्ते जीर्णशालियवादिभिः । मुद्रादकीमसूराणां रसैर्वा विश्वसंयुतः ॥ १ ॥

सुनिष्ठणकवेत्राग्रतण्डुलीयकठिभिः । कुलकाभीस्कैरेभिः सपर्पटसीतीनकैः ॥ २ ॥

टङ्गावेलैः कुसुमैर्निम्बविस्फोटविलवजैः । तिक्कयूषसमायुक्तमौजनं संप्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य— रोगी को शोधन, लङ्घन, और वमन करकर पुराने शालिशान के चावल, जी आदि का भोजन करावे । मूंग, अरड़र और मसूर के रस (यूज) में सौंठ मिलाकर पान करने तथा मुनिष्ठणक (चनपत्ती) का शाक, वेत के अग्ने माग का शाक, चौराई का शाक, कैडी, परवल, शतावर, पित्तपापड़ा और मटर के शाक, टेकारी झुप का शाक, वायविडंग, नीम की कोमल पत्तियाँ, वेत के फूल और तिक्क रस वाले पदार्थों के यूज से युक्त भोजन विस्फोट रोग में पथ्य है ॥

तिलान्मासान्कुलितथांश्च लवणाम्लकद्रुनि च । विदाहि रुद्रमुण्डं च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥
तिल, उड्ड, कुलधी, लवण, अम्ल, कड़, दाहकारक, रुद्र और उष्ण प्रदायी को विस्फोट का
रोगी त्याग देवे अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ४ ॥

इति विस्फोटप्रकरणं समाप्तम्

अथ स्नायुकनिदानम्

पूर्वरूपमाह—शास्त्रासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवस्तु ।

स्त्रिनिति तत्त्वते तत्र स्त्रोमा स्नायुं विशेष्यते च ॥ १ ॥

कुयोत्तन्तुनिभ्यं जीवं वृत्तं रवेत्यृतिं बहिः । शनैः शनैः वृत्तायति छेदाकोपमुपैति सः ॥२॥
तत्पातार्ष्णोफशानितः स्यात्पुनः स्थानान्तरे अवेत् ।

स स्नायुकेति विश्यातः कियोक्तास्तु विसर्पवत् ॥ ३ ॥

स्नायु का पूर्वरूप—हाथ पैर आदि में कुपित हुए बातादि दोष त्वचा पर विसर्प के समान
शोथ (फफोले वा फुसिया) करके उन शोथों को योद्धन कर देते हैं और वहाँ पर उष्णता बढ़कर
स्नायु को सुखा कर उसमें तन्तु के समान, गोल, श्वेत वर्ण का जीव उत्पन्न कर देते हैं, वह जीव
धीरे उस ते बाहर निकलता है और यदि उसका छेदन हो जाता है तो वह कुपित होकर
दुःखदार्ह होता है उसके निकल जाने से शोथ समन हो जाता है और फिर दूसरे स्थान में होता
है । इस रोग को स्नायुकरोग (नहरुआ) कहते हैं । इसकी चिकित्सा विसर्प के समान करनी
चाहिये ॥ २-३ ॥

यदि बाहुओं अथवा जङ्घाओं में उत्पन्न दुःख यह स्नायुक कदाचित् अम वा असावधानी से
दृट जाता है तो उससे बाहु में संकोच और पैर में उजाता हो जाती है ॥ ४ ॥

वातेन इयावरुद्धः सूर्याश्वदहनाचीलपीतः सदाहोऽ-

य श्वेतः श्लेष्मणा स्यात्पुण्यारिमयुतोऽथ द्विदोषो द्विलिङ्गी ।

रक्तेनाऽऽरक्तकान्तिः समधिकवृहनोरथाखिलैः सर्वलिङ्गो

रोगोऽसावहृष्टेयं मुनिभिरमिहितः स्नायुकस्तन्तुकीटः ॥ ५ ॥

बातादि भेद से लक्षण—बात के अधिक कोप से जो स्नायुक होता है वह श्याम, रुद्र और
अधिक पीड़ायुक्त होता है । पित्त के अधिक कोप से जो स्नायुक होता है वह पित्त से दहन होने
के कारण नीका अथवा पीछा और दाहयुक्त होता है । कफ के अधिक कोप से जो स्नायुक होता
है वह मोटा और भारी होता है । दो दोषों के द्वारा से जो स्नायुक होता है उसमें दो दोषों के
मिलित लक्षण होते हैं । रक्त के अधिक कोप से जो स्नायुक होता है उसका वर्ण कुछ लाली लिये
होता है तथा उसमें दाह होता है । सनिनिपात (विदोष) के कारण जो स्नायुक होता है उसमें
तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं । इस प्रकार स्नायुक रोग को मुनियों ने आठ प्रकार का
कहा है तथा इसको तन्तुकीट अथवा लोक में नहरुआ कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ स्नायुकचिकित्सा

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथामलम् । अहिंसामूलगोमूष्मकद्रवकलेपस्तु वातजे ॥ १ ॥

स्नायुक चिकित्सा—स्नायुक रोग में स्नेहन, स्वेदन तथा लेपन कर्म करना चाहिये । बातजे
स्नायुक रोग में कट्टकपाली वृष्ण की जड़ को गोमूत्र के साथ पीस कर विशिष्टवंक कल्प बनाकर
लेप करना चाहिये ॥ १ ॥

पञ्चवक्त्रकलेपके न हितो लेपोऽन्नं पित्तजे । श्लेष्मजे स्नायुके लेपः प्रशस्तः काञ्चनारजः ॥२॥
पित्तज स्नायुकरोग में पञ्चवक्त्र (बद्ध, अश्वस्थ, गूरुर, पाकड़ और बेत की छाल) को पीसकर
विशिष्टवंक कल्प बनाकर लेप करना चाहिये । कफज स्नायुकरोग में कचनार की छाल को पीसकर
लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

तद्वद्वाभ्यां द्वावजे लेपः सर्वजे हितः । रक्तजे स्नायुके लेपो वटप्पलवस्त्वजो हितः ॥
विसर्पेकाः क्रियाः स्वर्वाः स्नायुके तु हिता भवताः ॥ ३ ॥

इन्द्रज स्नायुकरोग में दो दोषों के नाशक द्रव्यों को विभाकर लेप करना चाहिये ।
विदोषज (सविपातज) स्नायुक रोग में तीनों दोषों की मिलित ओषधियों का लेप करना चाहिये ।
रक्तज स्नायुकरोग में वड और पाकड़ की छाल को पीस कर लेप करना चाहिये । विसर्परोग में
कहीं हुई सभी चिकित्सा स्नायुकरोग में हितकारी है ॥ ३ ॥

बबूलबीजावादिलेपः—

बबूलबीजं गोमूत्रपिण्ठं हनित प्रलेपनात् । स्नायुकानि समस्तानि सशोथानि सद्विति च ॥ १ ॥

बबूलबीजावादि लेप—बबूल के बीजों को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के
शोथ, पीड़ा युक्त स्नायुकरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिग्रमूलादिलेपः—

शिग्रमूलदलैः विष्टैः काञ्जिकेन ससैन्धवैः । लेपः स्नायुकरोगाणां शमनः परमः स्मृतः ॥ १ ॥

शिग्रमूलादि लेप—सहितन की जड़ और पत्तों की कांबों के साथ पीस कर उसमें सेंधानमक
का चूर्ण मिलाकर लेप करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है । यह स्नायुकरोग की शमन करने के
लिये अति उत्तम कदा गया है ॥ १ ॥

सुधावा सह लोणारं शमनः परमः स्मृतः । अनेन तु प्रयोगेण त्रिदिनादेव नश्यति ॥ २ ॥

सुधादि लेप—सुधा (चूने) के साथ लोनी मिट्टी का छार (लवणक्षार) समान शग भिला
कर जल के साथ धोकर लेप करने से तीन दिन में स्नायुकरोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

पातालगहडीमूलं पिवेत्स्नायुकनाशनम् ।

पाताल गारुडीमूल योग—पातालगारडी की जड़ को जल के साथ पीस कर पान करने से
स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥

तिलपिण्याकलेपो वा द्वारानालेन पेतितः ॥ ३ ॥

तिलपिण्याक लेप—तिळ की खाली को कांबी के साथ पीस कर लेप करने से स्नायुकरोग
नष्ट होता है ॥ ३ ॥

तक्केण वाताद्धं स्तेलेम श्वशरान्धां प्रलेपयेत् । श्वेतविष्णुकान्तया वा शिग्रमूलेन वा पुनः ॥ ४ ॥

असान्धादि लेप—मट्ठा अथवा तेल के साथ असगंध को पीस कर अथवा श्वेत अपराखिता
को मट्ठे अथवा तेल के साथ पीस कर अथवा सहितन की जड़ को मट्ठे अथवा तेल के साथ
पीस कर लेप करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पुंमूलैः काञ्जिनीं पिष्ट्वा लेपः स्नायुकरित्येवत् । वातर्कमूलं पुंमूलैः पत्रैर्दृश्यथज्ज्वेत् वा ॥

सुतान्देवन्धयेष्टीत्रं शमयेत्स्नायुकं गदम् ॥ ५ ॥

काञ्जनी लेप—पुरुष के मूत्र के साथ कवनार की जड़ अथवा वैगन की जड़ को पीस कर लेप
करने से स्नायुक रोग नष्ट होता है अथवा पीपल के पत्तों को पुरुष के मूत्र के साथ पीस कर
गरम गरम कर के स्नायुकरोग पर बाये तो स्नायुकरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५ ॥

रामठादियोगः—

रामठं द्वाक्षं वारं प्रस्येकं शाणसम्मितम् । चूर्णयित्वा सप्तदिनं खादेत्संध्याद्वये नरः ॥

अनेन योगराजेन स्नायुको नश्यति ग्रवम् ॥ १ ॥

रामठादि योग—शुद्ध हींग, टड्डण और वालार प्रत्येक एक २ शाण (३= माशा) लेकर चूर्ण कर प्रातः साथ दोनों संध्या सात दिन तक सेवन करने से स्नायुकरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अतिविषाद्यं चूर्णं—अतिविषसुस्तकभाङ्गविश्वैषधपिष्पलीविभोतानम् ।

चूर्णं तनुकमिधनं तुंसामुष्णेन वारिणा पीतम् ॥ १ ॥

अतिविषादि चूर्ण—अतीस, नागरमोथ, भारंगी (बमनेदी), सोंठ, पीपल और बहेड़ा प्रत्येक समभाग लेकर विषपूर्वक चूर्ण बनाकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से स्नायुकरोग का नाश होता है ॥ १ ॥

कुषादिकल्पः—

कुष्ठरामठशुण्ठोभिः कल्पकं शिश्रुतमन्वितम् । पानलेपनयोगेन तनुकोटविनाशनम् ॥ १ ॥

कुषादि कल्प—कूठ, हींग, सोंठ और सहिजन की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विषपूर्वक कल्पक बनाकर पान और इसी कल्प का लेप करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

ग्राह्यं संविष्ट्यहं पीतवा निर्दुष्टीस्वरसं ज्यद्धम् । पीतवा स्नायुकमयुग्मं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥

गोदृतादि योग—यों का घृत और निर्दुष्टा के पत्तों के स्वरस को तीन दिन पान करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ स्नायुकरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

मूलं सुषव्या हिमवारिपिष्टं पानाद्दानन्ते तु गदं प्रचण्डम् ।

शान्तिं नयेत्सवणमाशु तुंसां गन्धर्वगन्धश्च घृतन पीतः ॥ ३ ॥

सुवधीमूलादि योग—सुवधी (काला जीरा अथवा करेले) की जड़ को हिमवारि (वरफ के छाल) अथवा सुगन्धवाला के स्वरस के साथ पीस कर दिन के अन्त में (सायंकाल) पान करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ त्रणों से युक्त स्नायुकरोग शोषण शमन हो जाता है । अथवा असर्गं जो चूर्ण कर घृत में मिलाकर पान करने से स्नायुकरोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

पारावतपुरीषस्य मधुना कविकतस्य च । गिलिता गुटिका हन्ति स्नायुकामयमुद्धतम् ॥४॥

पारावतपुरीषादि योग—कबूतर की विषा को मधु के साथ कल्प कर बटी बना कर निगल जाने से अत्यन्त बढ़ा हुआ स्नायुकरोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

निर्भवशम्याकजात्यकससपर्णश्वमारकाः । किमिद्वा मूर्खंयुक्ताः सेकलेपनधावनैः ॥ ५ ॥

निर्भवशम्यादि योग—नीम की छाल, अमलतास की छाल, चमेली, मदार, छितवन और कनेर प्रत्येक समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर सिंचन, लेपन और धावन (धोने) से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

द्वन्ताक भजितं भाष्टे कृत्वा दध्ना सहोपरि, दध्नयेत्स्नायुको बहिः पतति एवं सप्तविनं कार्यम् ॥

द्वन्ताकयोग—बैगन की दही के साथ एक पात्र में रख कर भूज कर स्नायुकरोग पर बाँधने से स्नायुक का कोट बाहर निकल जाता है । इस प्रकार की किया सात दिन तक करने चाहिये ॥

शागवीजचूर्णं भागमेकं गोधूमपिष्टं भागमेकं द्वयमेकीकृत्य घुरेन पक्कद्यं गुडेन भचयेत् । एवं त्रिविनं कार्यं स्नायुको नश्यति ।

शाणीजादि योग—सनई के बीजों का चूर्ण और गेहूं का आडा समभाग घृत में पकाकर (भून कर) पुराने गुड़ के साथ मिलाकर तीन दिन तक भक्षण करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥

इति स्नायुकरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ मसूरिकानिदानम्

तत्राऽस्त्रौ तत्संप्राप्तिमाह—

कट्वमल्लवण्डारविहृद्यशनाशनैः । दुष्टनिष्वावशशाकायैः प्रदुष्टैः पवनोदकैः ॥

क्रुद्यग्रहेचणाद्वाऽपि देहे दोषाः समुद्धताः ॥ १ ॥

जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन सङ्क्रान्ताः । मसूराकृतिसंस्थानाः पिटिकाः स्युर्मसूरिकाः ॥२॥

मसूरिका रोग—अत्यन्त कठु, अन्ध, लवण और श्वार रस के सेवन, विहृद भोजन, अध्यशन, तथा अत्यन्त दूषित सेम और पत्र शाकादि के अधिक खाने से, दूषित वायु और जल के सेवन से, कुद्दु दुष ग्रह (शनि आदि) की इष्टि पड़ने से शरीर में (वातादि) कुपित द्वेषकर दूषित रक्त से भिलकर शरीर पर मसूर के आकार की जो पिटिकायें उत्पन्न कर देते हैं उन्हें मसूरिका कहते हैं ।

तासां पूर्वं ज्वरः कण्ठगांश्चक्षेऽहस्तिर्यमः । त्वचि शोधः स्वैरवण्यो नेत्रोगाश्तथैव च ॥३॥

मसूरिका के पूर्वरूप—मसूरिका रोग होने के पहले ज्वर, कण्ठ, शरीर का दूटना, अरचि, अम, त्वचा पर शोध, विवर्णता और नेत्र रोग (अविष्यन्दादि) हो जाते हैं ॥ ३ ॥

वातावामाद—

स्फोटाः कृष्णारुणा रुक्षास्तीव्रेदन्याऽन्विताः । कठिनाश्विरपाकाश्च अवन्त्यचिलस्थमवाः ॥ सन्ध्यस्थित्यपर्णां भेदः कातकश्वारतिश्वामाः । शोश्यस्ताल्वोष्टजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥

वातज मसूरिका—जिस मसूरिका के फोड़े कृष्ण वर्ण के अथवा रक्त वर्ण के हों, रुक्ष हों, तीव्र पीड़ा करने वाले हों, कठिन (स्पर्श में कठिन) हों और बहुत देर में पकड़ने वाले हों और संविधि, अरिय, तथा पर्वी में टूटने के समान पीड़ा हों और क्रास, कम्पन, अरति, (विकलता), अम, तथा तालु, भोठ और बिहा में शोध हो, तृष्णा हो और अरुचि हो उसे वात के कोप से उत्पन्न मसूरिका कहते हैं ॥ ४-५ ॥

पित्तज्वामाद—रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रेदनाः ।

मृद्वेदश्वाङ्गमद्वंश्च दाहस्तुष्णाऽहस्तिर्यमः ॥ ६ ॥

विहृमेदश्वाङ्गमद्वंश्च दाहस्तुष्णाऽहस्तिर्यमः । मुखपाकोऽचिपाकश्च उवरस्तीव्रिः सुदारुणः ॥७॥

पित्तज मसूरिका—जिस मसूरिका के फोड़े रक्त, पीत, अथवा श्वेत वर्ण के हों उनमें दाह हो, तीव्र पीड़ा हो और स्पर्श में वृद्धु (कोमल) हो, शोष पकड़ने वाले हों और मल पतला हो, शरीर दूटे, दाह हो, तृष्णा हो, अरुचि हो, मुख पक आये तथा नेत्रों में पाक हो और भयद्वारा तीव्र वेग वाला ज्वर हो उसे धूति के कोप से उत्पन्न मसूरिका कहते हैं ॥ ६-७ ॥

रक्तज्वामाद—रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥

रक्तज मसूरिका—जिस मसूरिका में पित्तज मसूरिका के सभी लक्षण (विहृमेदादि) उपस्थित हों उसे रक्तज मसूरिका कहते हैं अथवा पित्तज मसूरिका के समान हो रक्तज मसूरिका के लक्षण होते हैं ॥

कफजामाद—कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोहमग्रामैरवम् ॥ ८ ॥

हृष्णालश्वाचिर्चिन्द्रा तन्द्राऽस्त्वस्यसमन्विताः ।

श्वेताः श्विष्वास्त्वृणः रुक्षाः कण्ठारा मन्दवेदनाः ।

मसूरिका: कफोत्थाय चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥

कफब मसूरिका के लक्षण—जिस मसूरिका में कफ का प्रसेक हो (मुख से कफ गिरे), शरीर आई रहे, शिर में पीड़ा हो, शरीर भारी रहे, इक्कास (बमनेच्छा) हो, अरुचि हो,

निद्रा अधिक हो, तन्द्रा हो और आकस्य हो तथा इवेत वर्ण के स्फोट (फोड़े) स्तिर्घ हों, अस्थम्त स्थूल हों, कण्डु युक्त हों, मन्द (अल्प) पीड़ा करने वाले हों और बहुत दिन में पकने वाले हों उसे कफ के कोप से उत्पन्न मसूरिका जाननी चाहिये ॥ ८-९ ॥

सत्त्विपातजामाह—

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निभाना महाश्वासः । प्रभूत्वचिरपाकाश्च पूतिक्षावाच्चिदोषजाः ॥

सत्त्विपातज मसूरिका—जिस मसूरिका का वर्ण नीला हो, आकार चिपटा और फैला हुआ हो तथा बीच में दबा हुआ हो, पीड़ा अधिक हो, बहुत पिण्डिकायें हों, बहुत दिन में उनका पाक हो और दुर्गम्भित स्राव हो उसे तीनों दोष के कोप से उत्पन्न मसूरिका जाननी चाहिये ॥ १० ॥

चर्मपिटिकामाह—

कण्ठरोधोऽहश्चिरतन्द्राप्रलापारतिसंयुताः । दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिटिकाश्रमसंज्ञिताः ॥ ११ ॥

चर्मपिटिका के लक्षण—जिस पिण्डिकाओं के होने में कण्ठ का अवरोध, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और विकलता होती है उसको चर्मपिटिका कहते हैं वह दुश्चिकित्स्य है ॥ ११ ॥

रोमान्तिकामाह—

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफ्पित्तजाः । कासारो चक्कसंयुक्ता रोमान्त्यो उवरपूर्विकाः ॥

रोमान्तिका के लक्षण—जिस मसूरिका में पिण्डिकाओं का आकार रोम के समान क्वाही हो, रागकुक्त (कुछ लाली लिये) हो, कफ और पित्त के दोष से उत्पन्न होने वाली हो, उसमें कास और अरुचि हो तथा उसके उत्पन्न होने के पूर्व ज्वर हो उसे रोमान्तिका मसूरिका कहते हैं ॥ १२ ॥

अथ संप्रधातुगताः

तत्र रसजाः—

तोथ्युद्बुद्वसङ्काशास्वगतास्तु मसूरिकाः । इवसप्तोषाः प्रजायन्ते भिक्षास्तोषं स्ववनित च ॥

रसगत मसूरिका—जिस मसूरिका का आकार जल के बुलबुले के समान हो, अवशेषों के कारण ही उत्पन्न हुई हो और फूटने पर उससे जल निकले ऐसी मसूरिका को रस खातुं में अथवा त्वचा में प्राप्त मसूरिका कहते हैं ॥ १ ॥

रक्तजामाह—रक्तस्य लोहिताकारः शीघ्रपाकास्तनुवृच्छः ।

साध्या नारथर्थदुष्टाश्च भिन्नान् रक्तं स्ववनित च ॥ २ ॥

रक्तगत मसूरिका—जिस मसूरिका का वर्ण लोहित हो, शीघ्र पकने वाली हो, त्वचा जिसकी पतली हो, जिसमें दोष अस्थन्त दूषित नहीं हों अथवा साध्य हो और फूटने पर जिसमें रक्त निकले उसे रक्त खातुं गत मसूरिका कहते हैं ॥ २ ॥

मांसस्थामाह—मांसस्थाः कठिनाः स्तिर्घचिरपाकास्तनुवृच्छः ।

गाढ़शूलोऽतिकण्ठुतिस्तुष्णाऽउवरसमन्विताः ॥ ३ ॥

मांसगत मसूरिका—जो मसूरिका स्पर्श में कठिन, चिकनी, देर में पकने वाली और जिस की त्वचा पतली हो, उत्पत्तिकाल में शरीर में पीड़ा, बैचैनी, खुजली, तुषा, ज्वर हो उसे मांसगत मसूरिका कहते हैं ॥ ३ ॥

मेदोगतामाह—

मेदोजा मण्डलाकारा सूदवः किञ्चिद्ब्रह्मताः । घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्तिर्घाः स्वेदनाः ॥

समोहारतिसन्तापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ ४ ॥

मेदोगत मसूरिका—जिस मसूरिका का आकार मण्डलाकार हो, स्पर्श में सूदु हो, कुछ बढ़ा हुआ हो, घोर ज्वर से पीड़ित हो, पिण्डिकायें स्थूल (मोटी), लिघ्य और पीड़ा से युक्त हों, रोगी को मोह,

मसूरिकानिदानम्

व्याकुलता और सन्ताप हो उसे मेदोगत मसूरिका कहते हैं । इससे कोई सौभाग्यशाली ही सुक होता है अर्थात् यह असाध्य है ॥ ४ ॥

अस्तिमञ्जगतामाह—

इद्वा गाव्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिद्ब्रह्मतः । मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः ॥ ५ ॥

जिन्धनित भ्रमंशामानि प्राणानाशु हरन्ति च । ऋमरेष्व विद्वानि कुर्वस्यस्थीनि सर्वतः ॥ अस्थि और मज्जागत मसूरिका—जो मसूरिका लोटी आकार वाली हो, शरीर के वर्ण के समान वर्ण की हों, रुक्ष हों, कुछ ऊँची हों, अस्थन्त मोह-पीड़ा और व्याकुलता करने वाली हों, मर्मस्थानों को छेदन करने वाली हों, वह सम्पूर्ण अस्थियों को भ्रमर के काट हुए काष की तरह कर देती है तथा प्राणों को शोष दर लेती है इसे अस्थि और मज्जागत मसूरिका कहते हैं ॥ ५-६ ॥

शुक्रगतामाह—पक्षाभाः पिटिकाः स्तिर्घाः इलच्छाश्चात्यर्थवेदनाः ।

स्तैमिथारतिसंमोहद्वाहोन्मादसमन्विताः ॥ ७ ॥

शुक्रआयां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि । निर्दिष्टे केवलं चिह्नं हृष्टयते न तु जीवितम् ॥

शुक्रगत मसूरिका—जिस मसूरिका की पिण्डिकायें पकी हुई हीं (पीली और नरम) हों, रिनगद हों, चिकनी हों, अस्थन्त पीड़ा करने वाली हों, आई हों, व्याकुलता करने वाली हों, मोह-दाइ और उन्माद करने वाली हों, उसे शुक्रगत मसूरिका कहते हैं । ये असाध्य हैं ॥ ७-८ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह ।

दोषमिश्राश्च सप्ततै द्रष्टव्या दोषलक्षणैः । स्वगता रक्तनाश्वै पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा ॥ १॥

श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः ।

एता विनाडपि कियथा प्रशास्यन्वितं शारीरिणाम् ॥ २ ॥

साध्यासाध्यत्वा—वातादि दोषों के लक्षणों के अनुसार उपर्युक्त सातो प्रकार की मसूरिकाओं को यथासम्बद्धोषयुक्त जानना चाहिये अर्थात् दोषों के लक्षणों को देख कर दोष का ज्ञान कर लेना चाहिये । त्वचागत मसूरिका, रक्तज मसूरिका, पित्तज मसूरिका, कफज मसूरिका और कफ-पित्तज मसूरिका, ये सब मसूरिकायें सुख-साध्य हैं । ये विना विनिक्तिसा के भी स्वयं शमन हो जाती हैं ॥ १-२ ॥

वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः । कृच्छ्रसाध्या भवास्तरमायत्तादेता उपाचरेत् ॥

वातज मसूरिका, वात-पित्तज मसूरिका और कफ-वातज मसूरिका काटसाध्य होती हैं इनकी विनिक्तिसा अति यत्न ने करनी चाहिये ॥ ३ ॥

अतोऽन्यास्तु विनिर्दिष्टा यास्तु सम्यविक्षयां विचारा ।

न मिध्यन्वितं यतस्तरमात्ताश्च यस्तापुष्पाचरेत् ॥ ४ ॥

इनके अतिरिक्त लो मसूरिकायें कही गयी हैं वे सभी मली भाँति चिकित्सा नहीं करने से सिद्ध नहीं होतीं इसलिये यत्नपूर्वक उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

असाध्याः सचिपातोथास्तासां च चयामि लक्षणम् ।

प्रवालसदाशाः काश्चिक्षिद्भग्नबूक्फलोपमाः ॥ ५ ॥

लोहजालनिभाः कश्चिद्वदत्सीफलसन्विभाः । आसां बहुविद्या वर्णां जायन्ते दोषमेवदतः ॥ ६ ॥

सचिपातज मसूरिका असाध्य होती है । कोई २ सत्त्विपातज मसूरिका मूर्गों के सदृश होती है, कोई २ जामुन के फल के समान होती है, कोई लोह गोलक के समान कृष्ण वर्ण की होती है और कोई तीक्ष्णी के फल के समान होती है तथा दोषों के भेद से इनके बारे प्रकार के वर्ण दीर्घ हैं ॥ ५-६ ॥

कासो हिङ्का प्रमोहश्च उवरस्तीवः सुदारणः । प्रलापश्चारतिमूर्छां तुष्णा दाहोऽतिथूर्णता ॥
सुखेन प्रस्त्रवेदकं तथा ध्राणोन चहुषा । कण्ठे धुर्षस्कं झूर्त्वा असित्यर्थारुणम् ॥ ८ ॥

मसूरिकाभिभूतस्य यस्येतानि भिषगवरः । लंषणानीह दश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ९ ॥

जिस मसूरिकावाले को कास हो, हिङ्का हो, मोइ हो, तीव्रजवर हो, दारण प्रलाप हो, व्याकुलता हो, मूर्छा हो, तुषा हो, दाह हो, अत्यन्त तुमडी आती हो और सुख, कान तथा आँख से भी रक्तस्राव होता हो, कण्ठ में धुर्षाइट होता हुआ अत्यन्त कठिन शास आता हो तो वैद्य औषध नहीं देते क्योंकि ये अस्याध्य हैं ॥ ७-९ ॥

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं ध्राणेन निःश्वेत् । स भृशं त्यजति प्राणोऽस्तुष्णातो वायुदूषितः ॥

मसूरिका के आकान्त जो मनुष्य वायु के दृष्टिं होने के कारण नाक के द्वारा अत्यन्त इकास लेते और तुषा से अत्यन्त पीड़ित रहे वह अवश्य मर जाता है ॥ १० ॥

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्पे भगिवन्धके । तथाऽसफलक वाऽपि दुश्चिकित्स्यः सुदारणः ॥

मसूरिका रोग के अन्त में कूर्पर (केहनी), मणिवन्ध पहुँचा और कन्धे पर कठिन शोथ का होना धीर उपद्रव है । अतः यह दुश्चिकित्स्य है ॥ ११ ॥

अथ मसूरिकाभिकित्सामाह ।

मसूरिकायां कुषोक्ता लेपनादिकिया हितः । पित्तश्लेष्मविसर्पेत्का किया वाऽत्र प्रशस्यते ॥

मसूरिकाभिकित्सा—मसूरिका रोग में कुष में कही हुई लेपन आदि किया अथवा पित्त-कफज विसर्पे रोग में कही हुई चिकित्सा हितकारी है ॥ १ ॥

सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टवासकैः । कथायश्च वचावस्यश्याहृकलकविकतैः ॥ २ ॥

सच्चौदं पाथयेद् ब्राह्मीरसं वा हिलमोचकम् । वमनस्य रेचनं देयं शमनं त्वबले नरे ॥

उभायां हृतदोषस्य विशुद्धनित मसूरिका ॥ ३ ॥

सब प्रकार की मसूरिकाओं में प्रथम परवल, नीम तथा अरुसे के काथ में वच, इन्द्रजी, जेठी मधु, आँवला, हर्ड, और ज्वेडा का कल्प मिलाकर पान करना चाहिये । अथवा शाही के स्वरस में मधु मिलाकर अथवा हुरदुर के स्वरस पिलाना चाहिये । वमन कराये हुए रोगी को विरेचन और तिबड़ रोगी को संशमन औषध देना चाहिये । वमन-विरेचन के द्वारा दोषों के हरण होने पर मसूरिका सूख जाती है अर्थात् नष्ट हो जाती है ॥ २-३ ॥

वेणुत्वगादिभूपः—

वेणुत्वक्सुरसालालाच्चाकार्पासास्थिमसूरिकाः । चवपिष्टं विषं सर्पिंवचा ब्राह्मी सुवर्चला ॥ १ ॥

धूपनां चथालाभ्यं धूपमेनं प्रयोजयेत् । आदादयं प्रयोक्तव्यो नश्यन्त्यस्मान्मसूरिकाः ॥

न गृह्णन्ति विषं केचिद्यथालाभ्यं श्रुतेरिह ॥ २ ॥

वेणुत्वगादिभूप—बांस की छाल, तुलसी, लाख, कपास की गिरि (बीज), मसूर की दाल, बीं की पीठी, मिठा विष, धी, वच, ब्राह्मी और सुवर्चला (हुरहुर) इनमें से जितने द्रव्य प्राप्त हो सके उन्ने का धूप मसूरिका रोग के आरम्भ में देने से मसूरिका रोग नष्ट होता है । कोई वैद्य विष को नहीं लेते, शेष औषधियों में ही जो प्राप्त हो जाती है उसको लेकर धूपित करते हैं ॥ १-२ ॥

श्वेतचन्दनादिः—

श्वेतचन्दनकल्पकाठयं हिलमोचाभवं द्रवम् । पिवेन्मसूरिकारम्भे नैस्वं वा केवलं रसम् ॥ १ ॥

श्वेत चन्दनादि योग—श्वेत चन्दन के कल्प में हुरदुर का स्वरस मिलाकर अथवा मसूरिका रोग के आरम्भ में केवल नीम का स्वरस ही पिलावे तो लाभ होता है ॥ १ ॥

गुह्यची मधुक द्रावा मोरट दाढ़िमैः सह । पाककाले ग्रदातव्यं भेषजं गुह्यसंयुतम् ॥

तेन कुप्यति नो वायुः पाकं यान्ति मसूरिकाः ॥ २ ॥

गुह्यच्यादि योग—गुरुच, मुलहठी, द्राक्षा और अंकोल के चूर्ण को अनार के स्वरस में गुड मिलाकर मसूरिका के पक्ने के समय पिलाने से वायु कुप्यति नहीं होती और मसूरिकाये पक जाती है ॥ २ ॥

वृद्धपटोलादिकाथः—

पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकतुरोहिणी । खदिरः पित्तुमन्दश्च वला धात्री विकङ्कृतः ॥

पृष्ठां कथायपानं तु हन्ति वातमसूरिकाम् ॥ १ ॥

वृद्धपटोलादि काथ—परवल के डालपत्र, सारिवालता, नागरमोथा, पुरस्नपाढी, कुट्की, खैर, नीम की छाल, बिरारा, आँवला और विकङ्कृत (राम बवूर) की छाल, इन सब औषधियों को समझाए लेकर विविपूर्वक काथ बनाकर पान करने से वातज मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

दशमूलादिः—

हे पञ्चमूलयौ रास्ना च धायुशीरं हुरालभा । सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् ॥ १ ॥

दशमूलादि काथ—दशमूल की पृथक् २ दसो औषधियां, रास्ना, आँवला, खस, यवास, गुरुच, धनिरा, नागरमोथा प्रत्येक समान भाग का विविपूर्वक बना काथ पान करने से वातज मसूरिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

न्यग्रोधादिलेपः—

न्यग्रोधपलक्षमजिष्ठशिरीयोदुम्बरस्वचाम् । ससर्पिष्कं मसूर्या तु वातजायो प्रलेपनम् ॥ १ ॥

न्यग्रोधादि लेप—वट और पाकड़ की छाल, मजीठ, शिरीष और गूलर की छाल प्रत्येक समझाए लेकर विविपूर्वक पीसकर डसमें घृत मिलाकर वातज मसूरिका में लेप करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

शोधनं पित्तजायां न कार्यं देयेन जानना । तत्राऽऽद्वौ तर्पणं कार्यं लाजच्छः सर्शकरैः ॥

पित्तज मसूरिकाभिकित्सा—पित्तज मसूरिका में शोधन किया जर्जित है । उसमें पहले धान्य के सोल (लावा) के चूर्ण और शर्करा मिलाकर रोगी को तर्पण के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

आदावेव मसूर्या तु पित्तजायां प्रयोजयेत् । निम्बादिकथितं तेन प्रशास्यति मसूरिका ॥ ३ ॥

पित्तज मसूरिका के आदि में ही (निम्बोक) निम्बादि का काथ प्रयोग करना चाहिये इससे मसूरिका शान्त हो जाती है ॥ ३ ॥

तथाथ—

निम्बः पर्पटकं पाठा पाटोलं चन्दनद्रवम् । वासा हुरालभा धात्री सेव्यं कटुकरोहिणी ॥ ४ ॥

यूतेषां कथितं शीतं सितया मसूरीकृतम् । मसूरिकां पित्तकृतां हन्ति रक्तोत्तरामपि ॥ ५ ॥

निम्बादि काथ—नीम की छाल, पित्तपाढ़ा, पुरस्नपाढी, परवल पत्र, लालचन्दन, इवेत चन्दन, अरुसा, यवासा, आँवला, खस और कुट्की प्रत्येक समझाए लेकर विविपूर्वक काथ कर शीतल होने पर शर्करा मिलाकर पान करने से पित्तज और रक्तज मसूरिका भी नष्ट होती है ॥

द्राक्षादिः—

द्राक्षाकाशमर्याद्वर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । लाजामलकदुस्पशेः कथितं शार्करान्वितम् ॥

मसूरिकां पित्तकृतां रक्तजां च विनाशयेत् ॥ १ ॥

द्राक्षादि काथ—दाल, गम्भार का फल, चजूर, परवल पत्र, नीम की छाल, अरुसा, यवासा, आँवला और जवासा प्रत्येक समझाए लेकर विविपूर्वक काथ कर डसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तज और रक्तज मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

पञ्चमूलकादिकाथः—

शुद्धतः पञ्चमूलकथ वृचपत्रयुतस्य च । कथायः सामयेश्वीतः कफोथां तु मसूरिकाम् ॥ १ ॥
पञ्चमूलादि काथ—इहूद पञ्चमूल (वेल, गम्भार, सोनापाठा, पाढ़ और गनिशार की छाल) एक २ भाग और असूता का पत्ता ५क भाग मिळाकर विषिपूर्वक काथ कर पान करने से कफज मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

वृचपत्रसं दृश्यापानार्थं मधुसंयुतम् । कफजायां मधुर्यां तु कठिनासां विशेषतः ॥ २ ॥

वृचपत्र रस योग—अरुसे के पत्तों के बने स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कफज कफज मसूरिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

खदिरारिष्टपत्रैष्व शिरीषोदुष्वरवचाम् । कुर्यालेपं कफोथानां मसूर्यां भिषणुतमः ॥ ३ ॥

खदिरादि लेप—खेर, नीम की पत्तियाँ, शिरीष और गूरु गूरु की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विषिवत् पीस पर लेप करने से कफज मसूरिका में उत्तम लाभ करता है। वैद्यों को यह प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

दुरालभादिः—

दुरालभा पर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी । पित्तपामसूर्यमितेषां कवाथं पित्तकफास्मनि ॥

दुरालभादि काथ—जवासा, पित्तपापदा, परबल के पत्र और कुट्टीकी प्रत्येक को समभाग लेकर विषिवत् कवाथ बनाकर पान करने से पित्तकफज (दन्दब) मसूरिका नष्ट होती है ॥ ४ ॥

युद्धच्यादिः—

युद्धच्चीपर्पटानन्ताकटुकाकथितं पिवेत् । वातपित्तमसूर्यां तु घोरोपद्रवभाजि च ॥ ५ ॥

युद्धच्यादि काथ—गुरुच, पित्तपापदा, अनन्तमूल और कुट्टीकी प्रत्येक समभाग लेकर विषिवत् कवाथ कर पान करने से वात पित्तज मसूरिकाये जो अस्त्यन्त उपद्रव बाली भी होती है, वे सभी शान्त हो जाती हैं ॥ ५ ॥

नागरादि—नागर सुरत्तयुद्धच्चीधान्यकभार्ङ्गीवृष्टैः कृतः कवाथः ।

वातश्लेषमसूर्यी दूरीकुरुतेऽनुपानतः सरथम् ॥ ६ ॥

नागरादि काथ—सोंठ, नागरमोथा, गुरुच, चिरियाँ, बमनेठी और असूता प्रत्येक समभाग लेकर विषिपूर्वक कवाथ कर पान करने से वात कफज मसूरिका अवश्य ही नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

निम्बादिकाथः—

निम्बः पर्पटकं पाठा पटोलं कटुरोहिणी । वासा दुरालभा धात्री संसेव्य चन्दनदूयम् ॥ ७ ॥

एषनिम्बादिकः कवाथः पीतः शर्करयाइनिवतः । मसूरीं सर्वज्ञां हन्ति उवरवीसर्पसंयुताम् ॥

निम्बादि कवाथ—नीम की छाल, पित्तपापदा, पुराइनपादी, परबल पत्र, कुट्टी, असूता, जवासा, आँवला, खस, रक्त चन्दन और इवेत चन्दन प्रत्येक समभाग लेकर निम्बादि कवाथ बनावे। इसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के ज्वर, वीसर्प आदि से युक्त भी मसूरिका नष्ट हो जाती है ॥ ७-८ ॥

काञ्चनारादिकाथः—

काञ्चनारादिकः काथस्ताप्यच्चूर्णवच्चूर्णितः । निर्गत्यान्तः प्रविष्टां तु मसूरीं वाद्यतो नयेत् ॥

काञ्चनारादि कवाथ—कचनार की छाल का विषिपूर्वक कवाथ बनाकर उसमें त्वां मिलिक मसम मिलाकर पान करने से निकल कर पुनः अन्दर बैठ गयी हुई मसूरिका की पिडिका बाहर निकल जाती हैं और दोष शमन होकर मसूरिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

पटोलादिः—

पटोलकुण्डलीमुस्तावृष्टव्यव्यवासकैः । भूनिम्बनिदबकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ ९ ॥

मसूरिकाचिकित्सा

मसूरीं शमयेदायां पक्षां चब विशेषयेत् । मातः परतरं किञ्चिद्वृत्तिशाउवरशामत्ये ॥ २ ॥
वाहे उवरे विषपै च ब्रणे पित्ताधिकेष्विषे च । मसूर्यो रक्षजा नानां पानित शोणितमोक्षणैः ॥

पटोलादि कवाथ—परबल के पत्र, गुरुच, नागरमोथा, असूता, जवासा, चिरायता, नीम की छाल, कुट्टी और पित्तपापदा प्रत्येक समभाग लेकर विषिपूर्वक पान करने से वाम (अपकम) मसूरिका शमन ही जाती हैं और पक्ष मसूरिका शुद्ध ही जाती हैं। इससे उचम और कोई योग शीतलाऊवर (मसूरिका) को शमन करने के लिये नहीं है। मसूरिका के दाइ में, ऊपर में, विषपै में, ब्रण में और पित्त की अधिकता में यी यह पटोलादि कवाथ उचम है। रक्तब मसूरिका रक्तमोक्षण करने से (लिंगो आदि लगाने से) नष्ट हो जाती है ॥ २-३ ॥

धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् । मुखे कण्ठे ब्रणे जाते गण्डवार्थं प्रशास्यते ॥ ४ ॥

कण्ठस्थ मसूरिका चिकित्सा—आवले और कण्ठ के ब्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अवधोः लेकं प्रशांसनित गवेधममुकाम्बुम् । मधुकं त्रिकला मूर्वी दार्दीवक्कु नीलमुखलम् ॥
उत्तरार्लोधमजिह्वा: प्रलेपाश्रोतने हिताः । नश्वन्नयनेन इज्जाता मसूर्यों न भवनित च ॥

नेत्रस्थित मसूरिका-चिकित्सा—आँख में यदि मसूरिका ही जावे तो उसे गेड़हरुआ (चान में होनेवाले पौधे का फल) और मुलहड़ी के कवाथ से स्तिवन करना चाहिये और मुलहड़ी, आँवला, हरक, बहेड़ा, मूर्वामूल, दालहड़ी, दालचीनी, तीक्कमण (तीलोफर), खस, लोब और मंबीठ प्रत्येक समभाग लेकर विषिपूर्वक पीसकर लेप करने से अथवा इन भोजयियों को समभाग लेकर विषिपूर्वक कवाथ बनाकर आश्वीतन (आँखों में प्रक्षेप) करने से आँखों में उपकम हुई मसूरिकाये नष्ट हो जाती हैं। अगर पैहले से ही इसका प्रयोग किया जावे तो आँखों में मसूरिकाये होती ही नहीं ॥ ५-६ ॥

अव्यन—धात्वकमांसवस्वरसेन नेत्रे समधुयेत्तेन मसूरिकाध्यः ।

न जावते तत्र भवनित नेता: प्रजातास्तु शमं प्रयानित ॥ ५ ॥

अव्यन—शम्बू (बौद्धे) के मांस का त्वरस नेत्रों में डालने से मसूरिकाये नहीं होती हैं विशेष कर नेत्रों में मसूरिका पौने का भय नहीं रहता है और यदि मसूरिका उत्पन्न हो भी गवी होती है तो वे शमन ही जाती हैं ॥ ६ ॥

प्रलेपं चतुर्शोर्द्धान्दुवारस्य वस्तकः ।

नेत्र लेप—नेत्रों की मसूरिका में क्लिस्ट्रे की छाल को पीसकर लेपन करना चाहिये ॥

पञ्चवस्तकलच्छूर्णेन कलेचिन्मवधूलयेत् ॥ ७ ॥

अवधूकन—जिस मसूरिका में अधिक नेत्र (सावादि) निकलता हो उस पर पञ्चवस्तक (वट, अस्त्य, पाकड़, गूरु और बेत की छाल) का समान मिलित शलक्षण चूणे छिड़कना चाहिये। इससे ब्रण सूखकर नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

भस्मना केचिद्विष्ट्रिनिति केचिद्वोमवरेणुना ।

कोई २ वैद्य गोवर का भस्म और कोई सूखे गोवर का चूणे ब्रण पर छिड़कते हैं। इससे आम दोता है ॥

निर्गतातिमुक्तकास्त्रोताविष्ट्रीवेतसवस्तकलम् ॥

ब्रण धावन योग—नीम, माधवीलता, अपराजिता, विम्बी और बेत के वस्तक प्रत्येक समभाग लेकर विषिवत् कवाथ बनाकर मसूरिका के ब्रोने के बोते से ब्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ ८ ॥

श्रतश्चीतं प्रयोक्तव्यं मसूरीव्रणधावने । रात्तहिङ्गुरसोनैश्च धूपयेत्ता मसूरिकाः ॥

साध्यासाध्यता—कोई शीतला विना यत्न किये ही सुखसाध्य होती है और कोई दूषित शीतला कष से सिद्ध होती है। कोई सिद्ध भी होती है और नहीं भी होती है और कोई चिकित्सकों के यत्न करते रहने पर भी सिद्ध नहीं होती है। इस प्रकार की कृष्ण और असाध्य शीतला होती है ॥ ५-६ ॥

अथ पद्ध्यापद्ध्यम्

जीर्णः पिटिकशालयोऽपि चणका मुद्रा मसूरा यवाः
सर्वेऽपि प्रतुदाः कपोतचटकामुष्टयाहृदायूहकाः ।
कर्कोटकं कदलं च शिग्रं कुलकं द्राष्टाक्लं ददिमं
मेध्यं वृहणमल्पानमिलिं कोलानि मालो रसः ॥ १ ॥

अथोः सेकविधौ गविषुमधुकोद्भूतं सुशीतोदकं
शब्द्यकोदरकोशनीरमपि वा करूरचूर्णाचि वा ।
एको मुद्ररसोऽपि जाक्लशसं शालिङ्गशाकं घृतं
धूपो गोमयभस्मगुणठनमधो शेषा व्रणोक्तकियाः ॥ २ ॥

हृष्यं सर्वदशा विभागविहितं पथ्यं यथादोषतः ।
संयुक्तं मुद्रमातनोति नितरां नृणां मसूरीगदे ॥ ३ ॥

पद्ध्यापद्ध्य—पुराने शाठी और पुराने शालिवान के चावल, चना, मूँग, मसूर, जौ, सभी प्रकार के प्रतुद (चौच से कुरेद कर खानेवाले) जीवों (हारिल आदि) का मास रस, पपोत चटक (गोरैया), पुष्टि नामक जीव, तोता, कलोडा, केला, सहिजन, परबल, दाल, अनार तथा मेवावर्धक और वृहण सभी प्रकार के अन्नपानादि, बेर, फल, मासरस आदि पथ्य हैं। इस रोग में गेड़हर आ और मुळहट्टो के जल से आँखों को सिंचन करना चाहिये, पकाकर बनाया जाए अथवा कर्पूर का चूर्ण आँखों में देना चाहिये, शीतल जल पिलाना चाहिये, पकाकर बनाया हुआ मूँग का रस (घूप), जागल जीवों का मासरस, शालिङ्ग शाक, घृत, धूप, वन के फलों की मस्त छिक्कना तथा उपर्युक्त व्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिये। इस प्रकार सभी इन से विचार करके दोष के अनुसार मसूरिका रोग में पथ्य देने से लाभ होता है ॥ ४-५ ॥

वातं स्वेदं श्वासं तैलं गुरुवंशं क्रोधमातपम् । कटवग्लं वेगरोधं च मसूरीगदवांस्त्यजेत् ॥ ४ ॥

वायु सेवन, स्वेदकर्म, परिश्रम, तेल, गुरु अथ, कोष, धूप या अचिनताप, कड़ और अम्लरस वाले पदार्थ, वेगावरोध आदि को मसूरिका का रोगी त्वाग है। ये सब उसके लिये अपथ्य हैं ॥ ५ ॥

इति मसूरिकाशीतलारोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ क्षुद्ररोगनिदानम्

ते समासेन चतुश्चत्वारिंशत्कुद्रोगा भवन्ति, तथा

अवगतिका—

हिन्दूश्च सर्वर्णा ग्रथिता नीहत्रा मुद्रसञ्चिभा । कफवातोत्थिता शेया बालानामवगविलका ॥
क्षुद्ररोग—निदान—संक्षेप से क्षुद्ररोग ४४ होते हैं। (वैसे तो इनकी संख्या असंख्य है परन्तु इस ग्रन्थ में ४४ प्रकार के ही लिये गये हैं)

अवगतिका के लक्षण—बालकों को जो पिटिका चिकनी, त्वचा के वर्ण के समान रंग वाली गाँठदार, पीड़ादरित और मूँग के आकार की कहानी वाले प्रकोप से उत्पन्न होती है उसे अवगतिका कहते हैं ॥ ६ ॥

यवप्रस्त्वामाह—

यवाकारा सुकिना ग्रथिता पांससंक्रिता । पिटिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रस्त्वेति सोष्यते ॥
यवप्रस्त्वा के लक्षण—जो पिटिका जी के आकार की, कठिन गाँठदार तथा पांस के आश्रय होने वाली और कफवात के मिकित प्रकोप से उत्पन्न होती है उसे यवप्रस्त्वा कहते हैं ॥ २ ॥

अन्वालजीमाह—

घनामवक्त्रां पिटिकामुक्तां परिमण्डलाम् । अन्वालजीमलपूर्णां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥

अन्वालजी के लक्षण—जो पिटिका मुखरहित अर्थात् अवप वा सूक्ष्म मुखवाली, उठो दुर्दृ, मण्डलाकार (गोल) और अवप पूर्ण वाली हो उसे कफवात के प्रकोप से उत्पन्न अन्वालजी पिटिका कहते हैं ॥ ३ ॥

विवृतामाह—

विवृतास्यां महादाहां पकोद्धुउवरसंनिभाम् । विवृत्तामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम् ॥

विवृता के लक्षण—जो पिटिका खुले मुखवाली, अत्यन्त दाह करने वाली, पके हुए गूलर के फल के आकार की और मण्डलाकार (गोल) हो उसे पित्त प्रकोप से उत्पन्न विवृता नाम की पिटिका कहते हैं ॥ ४ ॥

कच्छपिकामाह—ग्रथिताः पञ्च वा षष्ठं वा दारणाः करूरोद्धताः ।

कफानिलाभ्यां सम्भूता लेयाः कच्छपिका दुधैः ॥ ५ ॥

कच्छपिका के लक्षण—जो पिटिका ग्रथित (गठीली) परस्पर मिली हुई एक साथ पांच अथवा है उत्पन्न हों, अत्यन्त कठिन हो और कल्प के समान हों उसे वायु के बोप से उत्पन्न कच्छपिका पिटिका कहते हैं ॥ ५ ॥

वस्मीकमाह—ग्रीवांसकद्वाकरपाददेवो सम्बन्धी गले वा त्रिभिरेव द्वोषः ।

प्रथिः स वस्मीकवदकियाणां जातः क्लेषेण वातः स वृद्धिम् ॥ ६ ॥

मुखैरनेकैः चतितोदवद्विर्विसंपर्वसंपर्वति चोक्तांग्रैः ।

वस्मीकमाहुर्निञ्जितो विकारं निध्यत्यनीकं विरजं विशेषात् ॥ ७ ॥

वस्मीक के लक्षण—जो पिटिका गदन, कन्वा, कौल, दाय, पैर, सन्धियों तथा गले में गाँठ दार, वस्मीक के समान उत्पन्न हो जाती है और किया (चिकित्सा) नहीं करने से जो वृद्धि होती जाती है वह अनेक मुखों वाली होकर ज्ञावित होती रहती है तथा सूई तुमाने के समान धीड़ा होती है और यह उन्हें मुख वाली विसर्प के समान फैलती है उसे वस्मीक कहते हैं। यह असाध्य है विशेष कर पुराना हो जाने पर अत्यन्त असाध्य हो जाती है ॥ ६-७ ॥

इन्द्रवृद्धामाह—

पश्चाकिंकवम्मद्ये पिटिकापिटिकाचित्ताम् । हन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां निष्क् ॥

इन्द्रवृद्धा के लक्षण—कमल की गट्टियों (दानों) की भाँति चारों तरफ से पिटिकाओं से विर कर मध्य में एक बड़ी पिटिका हो, उसे वात-पित्त के बोप से उत्पन्न इन्द्रवृद्धा नाम की पिटिका कहते हैं ॥ ८ ॥

गर्दभिकामाह—

मण्डलं वृत्तमुख्यं सरकं पिटिकाचित्तम् । हन्द्राकारं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

गर्दभिका के लक्षण—जो पिटिका मण्डलाकार (गोल), उठो दुधा, रक्तवर्ण की छोटी २ अवय पिटिकाओं से विरी हो और पीड़ा करने वाली हो उसे वात-पित्त के प्रकोप से उत्पन्न गर्दभिका नाम की पिटिका कहते हैं ॥ ९ ॥

पाणगदंभमाह—

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः । स्थिरो मनुशः स्थिरो ज्ञेयः पाणगदंभः ॥
पाणगदंभ के लक्षण—जो शोथ (पिण्डिका) हनु की सम्बि में उत्पन्न, स्थिर (अचल)
मन् २ पीड़ा करने वाली और स्थिर (चिकनी) हो उसे वात-कफ के कोप से उत्पन्न पाणग-
दंभ नामक शोथ (पिण्डिका) कहते हैं ॥ १० ॥

पनसिकालक्षणमाह—

कर्णस्थाभ्यन्तरे जातां पिण्डिकासुग्रवेदनाम् । स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वन्तःप्रपाकिनीम् ॥
पनसिका के लक्षण—जो पिण्डिका कान के भीतर उत्पन्न, अत्यन्त पीड़ा करने वाली स्थिर
(अचल) और भीतर से पहने वाली हो उसे पनसिका पिण्डिका कहते हैं ॥ ११ ॥

आलगदंभमाह—

विसर्पवत्सर्पति यः शोफस्तनुरपाकवान् । दाहज्वरकरः पित्तास्त ज्ञेयो जालगदंभः ॥ १२ ॥
जालगदंभ के लक्षण—जो शोथ, विसर्परोग की भाँति फैलने वाली, पतली, पाकरहित तथा
दाह और ज्वर करने वाली हो उसे वित्त प्रकोप से होने वाली आलगदंभ पिण्डिका कहते हैं ॥ १२ ॥

इरिवेलिकामाह—

पिण्डिकासुत्तमाङ्गस्थां वृत्तासुग्रस्तज्जावराम् । सर्वार्थिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेलिकाम् ॥
इरिवेलिका के लक्षण—जो पिण्डिका उत्तमाङ्ग (शिर) में उत्पन्न, गाल, अत्यन्त कठिन पीड़ा
करने वाली, ज्वर युक्त, तीनों दोषों के कोप से उत्पन्न और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त हो
उसे इरिवेलिका कहते हैं ॥ १३ ॥

कक्षालक्षणमाह—

वाहुकक्षां सपार्थेषु कृष्णस्कोटां स्वेदनाम् । पित्तप्रकीपसंभूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

कक्षा के लक्षण—जो पिण्डिका वाहु, काँच, कक्षा और पसकियों में क्रणवर्ण के फौलों से युक्त
तथा पीड़ा करने वाली हो उसे वित्त प्रकोप से उत्पन्न कक्षा नाम की पिण्डिका कहते हैं ॥ १४ ॥

युक्तामेताहर्षी इष्टा पिण्डिकां स्फोटसंनिभाम् । त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनार्णीं प्रचक्षते ॥ १५ ॥

गन्धनानी के लक्षण—जो पिण्डिका कक्षा के समान फौलायुक्त त्वचा के क्षयर पक्की ही
दिखाई दे उसे वित्त प्रकोप से उत्पन्न गन्धनानी कहते हैं ॥ १५ ॥

अभिरोहिणीलक्षणमाह—

कक्षाभागेषु ये स्कोटा जायन्ते मांसदाराणाः । अन्तर्द्वाहज्वरकरा दीप्तपावकसंनिभाः ॥ १६ ॥
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा ग्रन्ति मानवम् । तामभिरोहिणीं विद्याद्वसाध्यां संनियातजाम् ॥

अभिरोहिणी के लक्षण—जो पिण्डिकायें काँच के भाँतों में मांस को विदीर्ण करने वाली अथवा
मांस को विदीर्ण कर उत्पन्न होती है तथा जिनमें अन्तर्द्वाह, ज्वर और स्कोट होते हैं और वे
जलते हुए अभिरोहिणी के समान होती है उसे अभिरोहिणी पिण्डिका कहते हैं । यह सात, दस, अथवा
पन्द्रह दिन में मनुष्य को मार डालती है ॥ १६-१७ ॥

चिप्पलक्षणमाह—

नखमांसमधिष्ठाय वातः पित्तं च देहिनाम् । कुचाते दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत् ॥

चिप्प के लक्षण—जो मनुष्यों के नख के नीचे के मांस में वात-पित्त कुपित होकर दाह और
पाक ज्वर कर देते हैं उस व्याधि को चिप्प कहते हैं ॥ १८ ॥

कुनखस्त्य लक्षणमाह—

अभिघाताप्तदुष्टो यो नखो रक्षासितः खरः । भवेत्तं कुनखं विशाकुलीरमिति संज्ञितम् ॥

कुनख के लक्षण—किसी प्रकार के आवात आदि से जो नख दूषित होकर रक्ष, कृष और
कठोर हो जाते हैं उन्हें कुनख कहते हैं । इसकी संज्ञा कुलीर भी है ॥ १९ ॥

अनुशयीलक्षणमाह—

ग्रन्थीरामवप्संसरभ्यां सर्वण्मुपरि स्थिताम् । पादस्थानुशयीं तां तु विद्याद्वतःप्रपाकिनीम् ॥

अनुशयी के लक्षण—जो पिण्डिका अन्तः प्रपाक के कारण गम्भीर हो, अस्पश्य वाली हो,
उसका वर्ण त्वचा के वर्ण के समान हो तथा पाद के ऊपर मत्तक पर स्थित हो और भीतर ही
भीतर पक्के वाली हो उसे अनुशयी नाम की पिण्डिका कहते हैं ॥ २० ॥

विदारिकालक्षणमाह—

विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षावङ्गसनिधिषु । विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ २१ ॥

विदारिका के लक्षण—जो पिण्डिका विदारीकन्द की भाँति गोल, काँख और बंक्षण की सनिधियों
में रक्तवर्ण की हो, सब दोषों के मिलित प्रकोप से उत्पन्न हो और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त
हो उसे विदारिका कहते हैं ॥ २१ ॥

शक्करार्बुदस्य लक्षणमाह—

प्राप्य मांसं शिरास्त्वयुर्मेदः श्लेष्मा तथाऽनिडः ।

ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसिर्विसानिभम् ॥ २२ ॥

शक्करा के लक्षण—कफ और वात जब मांस, शिरा, स्तन्य और मेद में जाकर दूषित होते हैं
तब ग्रन्थि (गांठ) उत्पन्न कर देते हैं और जब वह गांठ फूटता है तो उससे मधु, वृत और वसा
के समान स्त्राव होता है तथा स्त्राव अत्यन्त छोड़े से पूर्णकृत कुपित वात और मी बहकर मांस को
सुखाकर गांठ वाला शक्करा (अशमशक्करा) उत्पन्न कर देता है । इस अवस्था को शक्करा कहते हैं ।
स्त्रावात्यस्त्रवमर्थर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः । मांसं विशोष्य ग्रन्थितां शक्करां ज्वन्येततः ॥ २२ ॥

दुर्गन्धि विलक्षणमर्थर्थं नानावर्णं ततः शिराः । ज्वन्यन्ति सहस्रा रक्तं तं विद्यार्बुद्धुकर्मार्बुद्दम् ॥

शक्करार्बुद के लक्षण—उपर्युक्त शक्करा में शिरायें जब दुर्गन्धि और अत्यन्त क्लेद युक्त तथा
अनेक वर्णों के रक्त को रक्त को सहसा गिराने लगती हैं तब उसे शक्करार्बुद कहते हैं ॥ २४ ॥

पाददार्या लक्षणमाह—

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूपयोः । पादयोः कुरुते दारीं सहजां तलसंश्रिताम् ॥ २५ ॥

पाददारी के लक्षण—अधिक ध्रमण करने वाले विना जूते के पैदल चलने वाले के पांवों के
तलवे में वायु कुपित होकर तलवों को रक्षकर उसमें दरार उत्पन्न कर देता है और उसमें पीड़ा
होती है । इस रोग को पाददारी कहते हैं ॥ २५ ॥

कदरस्य लक्षणमाह—

शक्करोन्मयिते पादे ज्वरे वा कण्ठकादिभिः । ग्रन्थिः कोलवङ्गस्त्रो जायते कदरं तु तत् ॥

कदर के लक्षण—पैर के तलवे रेत, वालु, तथा कदर आदि से पीडित अथवा काटे आदि से
क्षत विश्रृत हो जाने से उसमें वैर के समान जो ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है उसको कदर कहते हैं ।
(यदा कदा यद रोग हाथ में भी उत्पन्न होता है) लोक में इसे गोखरू रोग भी कहते हैं तथा
शाल में शक्कराकदर और वातकण्ठक कहने हैं, इसमें वायु और कफकुपित होते हैं ॥ २६ ॥

अलसस्त्य लक्षणमाह—

विलक्ष्माङ्गुष्ठयन्तरौ पादौ कण्ठुदाङ्गुजान्वितौ । दुष्टकर्मसंस्वर्णशीलवलसं तं विमावयेत् ॥ २७ ॥

अलस के लक्षण—पैर की अञ्जुलियों के मध्य में निरन्तर आद्र रहने से अथवा दूषित की चढ़ा
आदि के लगते रहने से पैर की अञ्जुलियों सड़ जाती है और उनमें कण्ठु, दाह और पीड़ा होती है
उसे अलसरोग कहते हैं ॥ २७ ॥

इन्द्रलुप्सस्य लक्षणम्—

रोमकूपातुर्गं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् । प्रवचावथि रोमणिं सतः इलेखा सशोणितः ॥
कृष्णद्वि रोमकूपात्स्तु ततोऽन्ये वामसम्बन्धवः । तदिन्द्रलुप्सं खालित्यं दद्यति च विभाष्यते ॥

इन्द्रलुप्स के लक्षण—रोमकूपों में गया दुआ पित्त वात से मूर्च्छित होकर रोमों को गिरा देता है । पश्चात कफ रक्त के साथ मिलकर रोमकूपों को बन्द कर देता है जिससे वालों के गिर आने पर पुनः उनकी उत्पत्ति नहीं होती । इस रोग को इन्द्रलुप्स, खालित्य और रुद्धा कहते हैं । यह रोग कियों को कम होता है ॥ २८—२९ ॥

दारुणकस्य लक्षणमाह—

दारुणा कण्ठदुरा रुद्धा केशभूमिः प्रपाठथते । कफमातृतकोपेन विद्यादारुणकं तु तत् ॥ ३० ॥
दारुणक के लक्षण—जिस रोग में केश बमने की जगह कफ-वायु के कोप से कठिन (कर्कश), कम्फू युक्त और स्थ तथा कफ आवे या उस स्थान पर पपड़ियों उत्तरने लगे उस रोग को दारुणक कहते हैं ॥ ३० ॥

अरुंधिकालक्षणमाह—

अरुंधिका बहुवक्त्राणि बहुवलेदोनि मूर्धनि । कफासुक्लमिकोपेन तानि विद्यादरुंधिकाम् ॥
अरुंधिका के लक्षण—मस्तक में अनेक मुखों और बहुत कलेदों वाली (अतिसाव करने वाली) जो पिडिकायें कफ, रक्त और किमियों के कोप से उत्पन्न हो जाती हैं उन्हें अरुंधिका रोग कहते हैं ॥

पलितस्य निदानसम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह—

क्रोधसोक्त्रमकृतः शरीरोद्धा विरोगतः । पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ ३३ ॥
पलित के निदान—क्रोध, शोक और परिश्रम के कारण उत्पन्न शरीर की कष्टा तथा पित्त श्विर में जाकर केशों को पका देते हैं उससे पलित रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ३३ ॥

सातिकं विचमं रुचं पीतं पित्तास्तिकं कफात् । सर्वरूपान्वितं विद्यादस्तिकात्समुद्दितम् ॥

पलित के लक्षण—अधिक वात प्रकोप के कारण जो पलित होता है उसमें वाल विषम (व्यूनाधिक) रूप से पकते हैं, पित्त प्रकोप के कारण जो पलित होता है उसमें वाल पीछे होते हैं और कफ प्रकोप के कारण जो पलित होता है उसमें केश इवेत हो जाते हैं । तथा सतिकात के कारण जो पलित होता है उसमें तीनों दोषों के मिलित रूप होते हैं ॥ ३३ ॥

यौवनपिटिकालक्षणमाह—

शालमलीकण्टकप्रवृद्धाः कफमातृतरक्तजाः । आयन्ते पिटिका यूना विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥
यौवनपिटिका के लक्षण—जो सेमल के काटे के समान कफ-वायु और रक्त के प्रकोप से युवा पुरुषों के मुख के सौन्दर्य को दूषित कर देती है उन्हें मुखदूषिका या यौवनपिटिका कहते हैं ॥

पश्चिमीकण्टकमाह—

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्टकमप्यहुमण्डलम् । पश्चिमीकण्टकप्रवृद्धैस्तद्यात्यं कफवातजम् ॥ ३४ ॥
पश्चिमीकण्टक के लक्षण—जो पिटिका कमलिनी के काटों के सदृश काटों से घिरी हुई, गोलाकार, कण्टकयुक्त, पाण्डु वर्ण की होती है उसे पश्चिमीकण्टक कहते हैं यह कफ और वात के प्रकोप से उत्पन्न होती है ॥ ३४ ॥

जटुमणिमाह—

समसुखमरुर्ज मण्डलं कफरक्तजम् । सहजं लघ्मं चैकेशां लघ्यो जटुमणिस्तु सः ॥ ३५ ॥
जटुमणि (लहसन) के लक्षण—जो मण्डलाकार चिह्न त्वचा के समान ही उमड़ा हुआ पीड़ा रहित और चिकना होता है उसे जटुमणि कहते हैं यह कफ और रक्त के प्रकोप से होता

है । कोई र आचार्य इसे जन्म से उत्पन्न होने वाला एवं शाश्वोक शुभाशुभ लक्षण वाला मानते हैं । इसे लोक में लहसन कहते हैं ॥ ३५ ॥

मस्य त्रिदोषबल्वं चरकेणोक्तं तथाच—

कृष्णः शिवधो जटुमणिज्ञेयो वातोत्तरेज्ञिभिः । अरुंजं त्वचरे इसं लक्ष्मेत्याहुर्भिष्वरवाः ॥
चरक के मत से कृष्ण वर्ण का, शिवध और पीड़ा रहित चिह्न वातादि तीनों दोषों से जो शरीर पर उत्पन्न होता है उसे जटुमणि कहते हैं । कोई (सुश्वादि) इसे रक्त वर्ण का और शुभा-शुभ लक्षणों वाला मानते हैं ॥ ३७ ॥

माषमाह—

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन्नामे प्रदृशते । माषवत्कृष्णसुरसञ्चमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३८ ॥

माष के लक्षण—जो शरीर के किसी भाग में पीड़ा रहित, स्थिर (अचल) माष (उड्ढ) के समान आकार का, कृष्ण वर्ण और डाढ़ा दुआ मांसाङ्कुर दिखाई देता है वह वायु के कोप से उत्पन्न होता है । उसे माष (मस्ता) कहते हैं ॥ ३८ ॥

तथा च योजः—

वातेतिरिते त्वचि यदा दूधेते कफमेदसी । शलचं मृदु स्वर्णं च कुर्यात्तं माषकं चवेत् ॥ ३९ ॥

वात से प्रेरित कफ और मेद अव त्वचा में जाकर दूषित हो जाते हैं तथा चिकना, कोमल, माष के समान अथवा त्वचा के समान वर्ण का मांसाङ्कुर उत्पन्न कर देते हैं । योज के मत से उसे माषक (मस्ता) कहते हैं ॥ ३९ ॥

तिलकाळकमाह—

कृष्णानि तिलमात्राणि नीहजानि समानि च । वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकाळकान् ॥

तिलकाळक के लक्षण—त्वचा के लपर तिल के प्रमाण कृष्णवर्ण के, पीड़ा रहित, त्वचा की दी समता में वात, पित्त तथा कफ के कोप से जो चिह्न उत्पन्न होते हैं उसे तिलकाळक कहते हैं, लोक में इसे तिल कहते हैं ॥ ४० ॥

न्यच्छमाह—महद्वा यदि वा चालपं श्यावं वा यदि वा सितम् ।

नीहजे मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिष्वीयते ॥ ४१ ॥

न्यच्छ के लक्षण—शरीर में मुख के अतिरिक्त किसी भी भाग में वडा अथवा छोटा, कृष्ण अथवा धूसर वर्ण का, पीड़ा रहित जो मण्डल हो जाता है उसे न्यच्छ (लाञ्छन वा कक्षण) कहते हैं । यह भी जटुमणि (लहसन) के भावि ही माना जाता है ॥ ४१ ॥

मुखव्यज्ञस्य लक्षणमाह—

क्रोधायासप्रकृषितो वायुः पित्तेन संयुतः । मुखमागत्य सहसा मण्डलं विस्तज्यतः ॥ ४२ ॥

नोरुंजं ततुकं श्यावं मुखव्यज्ञं तमादिशेत् ॥

मुख व्यंग के लक्षण—क्रोध, परिश्रम आदि से कुपित दुआ वात, पित्त मुख पर सहसा मण्डल बना देता है जो पीड़ा रहित, पतला और श्याम (धूसर) वर्ण का होता है उसे व्यज्ञ कहते हैं । लोक में इसे जाई या छाई कहते हैं ॥ ४२ ॥

नीलिकामाह—कृष्णमेवंगुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४३ ॥

नीलिका के लक्षण—उपरोक्त व्यज्ञ के गुणों वाला ही चिह्न यदि कृष्णवर्ण का शरीर अथवा मुख पर हो तो उसे नीलिका कहते हैं । (लोक में इसे नीली झाँई कहते हैं यह न्यच्छ तथा व्यज्ञ दोनों से अधिक कृष्णवर्ण की होती है) ॥ ४३ ॥

परिवितिकमाह—

मर्दनात्पीडनाहुर्भित्यैवाप्यभिघाततः । मेदूर्चर्मं यदा वायुरुभजते सर्वतश्चरन् ॥ ४४ ॥

१८ यो० उ०

तथा वातोपद्युष्टवाचम् तस्प्रिवर्तते । सवेदनं सदाहै च पाकं च व्रजति कथित् ॥ ४५ ॥
मणीरधस्ताकोशस्तु अनियहपेण लभते । सस्जां वातसम्भूतं विशासां परिवर्तिकाम् ।

सकण्डः कठिना चापि सैव श्लेषमसमुचिता ॥ ४६ ॥

परिवर्तिका के लक्षण—लिङ्ग को अत्यन्त मर्दन या अधिक दबाने से अथवा इसी प्रकार के अन्यान्य वातादादि से गुरीरों में चलने वाली कुपित व्यान वायु शिश्न के चर्म में प्रवेश कर चर्म को उलट देती है जिससे वेदना, दाह और कदाचित पाक भी हो जाता है और शिंगमुण्ड के नीचे मासिकोश ग्रन्थि (गांठ) के रूप में लटक जाता है इस रोग को वात से उत्पन्न पीड़ायुक्त परिवर्तिका कहते हैं । यदि इस रोग में और ग्रन्थि में कठिन्य हो तो कफ के प्रकोप से उत्पन्न परिवर्तिका जाननी चाहिये । (इसमें विशिकार भी स्थित रहता है जिससे दाइन्पाकिदि होते हैं पर विशेष वात और कफ ही दूषित रहते हैं) ॥ ४४-४६ ॥

अवपाटिकालक्षणमाह—

अल्पीयस्यां यदा हर्षाद्युलाद्युखेरिक्षयं नरः । हस्तभिवातादपि वा लर्मपुद्धर्तिते वलात् ॥
मर्दनात्पीडनाद्वापि शुकवेगविधाततः । यथावपाठ्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४७ ॥

अवपाटिका के लक्षण—अथव संकुचित (छोटी) योनि में इष्ट अथवा बलपूर्वक मैथुन करने से अथवा हाथ आदि के ही अधिकात (उत्समैथुन) से अथवा हाथ से बलपूर्वक लिङ्ग के सुख को खोलने से अथवा मर्दन करने से अथवा दबाने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से जो लिङ्गमुण्ड के चर्म फट जाते हैं उसे अवपाटिका कहते हैं । इसमें वातादि दोषों का पृथक् २ क्रोप रहता है । उसे दोषों के लक्षणानुसार जानना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

निरुद्धप्रकशस्य लक्षणमाह—

वातोपद्युषे मेढे वै चर्म संश्रयते मणिम् । मणिश्चमीवनद्युस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्वि च ॥ ४९ ॥
निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिविचित्रते न च ॥

निरुद्धप्रकशं विद्यादसर्जं वातसम्भवम् ॥ ५० ॥

निरुद्धप्रकश के लक्षण—लिङ्गेन्द्रिय में वायु के कुपित होने से लिङ्ग के सुख पर का चर्म लिङ्गमुण्ड पर चढ़ जाता है और मणि के चर्म से आच्छादित हो जाने से मूत्र का स्रोत अवरुद्ध हो जाता है उसे निरुद्धप्रकश कहते हैं । इस निरुद्धप्रकश रोग में मन्द २ धार से पीड़ारहित मूत्र निकलता है और लिङ्गमुण्ड नहीं खुलता है । इसे पीड़ायुक्त होने से वात से उत्पन्न निरुद्धप्रकश जानना चाहिये ॥ ४९-५० ॥

सनिरुद्धगुदस्य लक्षणमाह—

वेगसंधारणाद्युर्विहृतो गुदसंस्थितः । निरुणदि महाद्योतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५१ ॥
मार्गस्य सौक्ष्याद्युक्तेण पुरीषं तस्य गच्छति । संनिरुद्धगुदं व्याधिमेवं विद्यादसुहृत्तरम् ॥

सनिरुद्धगुद के लक्षण—मलादि वेग को रोकने से गुदा में स्थित अपान वायु कुपित होकर मलमार्ग को अवरुद्ध कर सूक्ष्म दार कर देती है । जिससे मल का निकलना कठ से होता है । इस प्रकार के कठिन व्याधि को सनिरुद्धगुद जानना चाहिये ॥ ५१-५२ ॥

अहिपृतनस्य लक्षणमाह—

शक्तन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् । स्विन्ने वा स्नायमानेऽस्य कण्डूरक्तफोलवा ॥
कण्डूयनात्ततः चिंप्रस्फोटः स्नावश्च जायते । एकीभूतं द्रवं घोरं तं विद्यादहिपृतनम् ॥ ५३ ॥

अहिपृतन के लक्षण—बालकों के भल्मूत्रादि सुक गुदा को नहीं धोने से अथवा स्वेदादि के गुदा में आ जाने से अथवा बालकों को स्नान नहीं करने से रक्त और कफ से गुदा में कण्डू उत्पन्न हो जाती है और उससे शीघ्र ही गुदा में फकोले पड़ जाते हैं तथा ग्नाव होने लगता

है और कदाचित वे सब फकोले पक्त होकर बड़े कठिन ब्रण के रूप में हो जाते हैं । उस धोर ब्रण को अहिपृतन कहते हैं । (बच्चों को ये रोग अस्वच्छता एवं दूषित दूध के पान से भी होता है) ॥ ५३-५४ ॥

वृषणकण्डूलक्षणमाह—

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंधितः । यदा प्रविलयते स्वेदाकण्डूजनयते तदा ॥ ५५ ॥
कण्डूयनात्ततः चिंप्रस्फोटः स्नावश्च जायते । प्रादुर्वृषणकण्डू तां श्लेषमरक्तप्रकोपाम् ॥ ५६ ॥

वृषणकण्डू के लक्षण—जो स्नान आदि नहीं करते अथवा उट्टन आदि नहीं लगते हैं उनके वृषण में स्थित मल स्वेदादि से आई होकर कण्डू उत्पन्न कर देता है, इस कण्डू से शीघ्र ही पिण्डिकाये हो जाती हैं और उनसे ग्नाव होने लगता है । इस रोग को वृषणकण्डू कहते हैं । इसमें जो पिण्डिकाये होती है उनमें कफ और रक्तदात्र का प्रकोप होता है ॥ ५५-५६ ॥

गुदभ्रशस्य लक्षणमाह—

प्रगाहाणतिसाराभ्यां विगंधकृति गुद वदिः । रुद्दुर्वृलदेहस्य तं गुदभ्रशमादिशेष ॥ ५७ ॥

गुदभ्रश के लक्षण—लक्ष्य और दुर्बल शरीर वाले के प्रवाहण करने से (बल्पूर्वक मल निकालने से) और भतीतार से जो गुदा को नाड़ी बहार निकल जाती है उसे गुदभ्रश रोग कहते हैं ॥ ५७ ॥

सूकरदंष्ट्रस्य लक्षणमाह—

सदाहो रक्षपर्यन्तस्वकपाकी तीव्रवेदनः । कण्डूमाङ्गवरकरारी च स्यात्सूकरदंष्ट्रः ॥ ५८ ॥

सूकरदंष्ट्र के लक्षण—जो मग्न सूक्ष्म के द्वादश के आकार का दाह युक्त, रक्त वर्ण के किनारों वाढ़ा, त्वचा को पकाने वाला, तीव्र पीड़ा करने वाला, कण्डू करने वाला और ज्वर करने वाला होता है उसे सूकरदंष्ट्र कहते हैं ॥ ५८ ॥

अथातः क्षुद्रोगचिकित्सा

अजाग्निकाचिकित्सा—

तत्राजग्निकामां जलैकामिस्पावरेत् । शुक्सिरौराष्ट्रिकाद्वारकवैश्वाऽलेपयेन्मुहूः ॥

अजग्निलिङ्ग क्षिकित्सा—अजग्निलिङ्ग जल पक्ती नहीं हो तब उसमें जोक लगाकर रक्त निकला देना चाहिये और सीप तथा फिंडिरी और बावालार प्रयोग समयाग लेकर विधि-पूर्वक कठक बनाकर वात २ लेप लगाने से अजग्निलिङ्ग का रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कठिना चार्योगेश द्रावयेदजग्निलिङ्गाम् । रथामाळाङ्गिलिङ्गमूर्द्वकरैपि विलेपयेत् ॥

पक्तां अग्निविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ २ ॥

जो अजग्निलिङ्ग कठिन हो उसे क्षार द्रव्यों के प्रयोग से द्रवित करना (बहाना) चाहिये और इयामालंता, कलिलारी विष, मूर्चमूल प्रयोग समान लेप विधिपूर्वक कठक बनाकर लेप करते रहना चाहिये । जब अजग्निलिङ्ग का पक जावे तब ब्रण प्रकरण में कही दुई विधि के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

यवप्रसाधान्धालज्जिक्षित्सा—

अन्धालज्जी यवप्रसाधान्धालज्जिक्षित्सा—मनःशिलादेवदारकुषकरैः प्रलेपयेत् ॥

पक्तां अग्निविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत् ॥ ३ ॥

अन्धालज्जी और यवप्रसाधा की चिकित्सा—अन्धालज्जी और यवप्रसाधा को पहले स्वेदन करना चाहिये । पक्तात् मैनशिल, देवदारु और कूठ तीनों समयाग लेकर विधिपूर्वक कठक बनाकर लेप करना चाहिये । इनके पक जाने पर जैसी ब्रण की चिकित्सा कही गयी है जैसी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

विवृतेन्द्रगदंभिकाजालगदंभाना चिकित्सा—
विवृतमिन्द्रवृद्धां च गद्यीं जालगदंभम् । पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्विषक् ॥३॥
पके तु रोपयेदाज्ये: पकमेहुरभेषजैः । नीलीपटोलमूलाभ्यां साडयाभ्यां लेपनं हितम् ॥

जालगदंभरूपं तु सधो हन्ति स्वेदनम् ॥२॥

विवृतादि की चिकित्सा—विवृता, इन्द्रवृद्धा, गद्यिका और जालगदंभ रोगों में पित्तज विसर्प में कही चिकित्सा करनी चाहिये । पके जाने पर मधुर वर्ग की ओषधियों द्वारा सिद्ध किये हुए घृत से रोपण तथा नीक और परवल की बड़ को समान भाग पीसकर उससे घृत निलाकर लेप करना चाहिये । इस प्रयोग से जालगदंभ यदि थोड़ा सहित भी हो तो शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥१-२॥

कच्छपिकाचिकित्सा—

कच्छपी स्वेदयेत्पूर्वं तत् प्रभिः प्रलेपयेत् । कल्कीकृतैनशाकुष्ठशिलातालकदार्थिः ॥
तां पक्षां साधयेचक्षीं भिषग्वर्णचिकित्सवा ॥१॥

कच्छपिका चिकित्सा—कच्छपिका को पहले स्वेदन करके इल्दी, कूठ, मैनशिल, हरताल और देवदांश प्रयोक्त समाधान कर विषपूर्वक कल्क बनाकर लेप करना चाहिये और पक जाय हो शीघ्र ही ब्रण की चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥१॥

बलमीकचिकित्सा—

शब्देणोक्तस्य बलमीकं चाराविनम्यां प्रसाधयेत् । विधानेनार्दुदोकेन शोधयित्वा च रोपयेत् ॥
बलमीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममरणि । तत्र संशोधनं कूर्वा शोणितं मोड्येद्विषक् ॥२॥
कुछस्थकानां मूलेश्च गुहच्या लवणेत् च । आरग्वधस्य मूलेश्च दन्तिमूलैस्तथैव च ॥३॥
रथ्यामामूलैः सपल्लैः सकुम्भिः प्रलेपयेत् । सुखिष्येत् सुखोष्णेश्च भिषक्तमुपनाहयेत् ॥४॥
बलमीक-चिकित्सा—बलमीक को शब्द से काट छीलकर क्षार और अग्नि से प्रसाधन करे तथा अर्दुद रोग में कही हुई विधि से शोधन और रोपण करना चाहिये । जिसका बलमीक छोटा हो और मर्मस्थान में नहीं हो उस रोगी का पहले बमन-विरेचन द्वारा संशोधन कराकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये । कुल्यी की बड़ से गुरु और सेपोनामक से अथवा श्यामाला की जड़ से अथवा सत्तु मिला हुआ तिल कल्क से लेप करके सुस्तिनग्न अर्थात् घृत या तेल से चिकना करके सुखोष्ण अर्थात् थोड़ा २ उपनाह करना चाहिये ॥१-४॥

मनःशिलादितैलम्—

मनशिलाक्तभृत्यात्सूक्ष्मैलागुह्यचन्दनैः । जातीपल्लवकल्कैश्च निष्पत्तैलं विपाचयेत् ॥१॥
बलमीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिदं बहुव्याप्तम् । पाणिपादोपरिष्टात्तच्छ्रद्धैर्बहुभिरावृतम् ॥
बलमीकं ग्रस्तशोफं स्याद्वृद्ध्यं तद्विविजानता ॥२॥

मनःशिलादि तैल—मैनशिल, हरताल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और बलमीक के पत्तों को समाधान लेकर विधिवत् कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूँछित नीम का तेल और पाकार्द्ध चौहुता बल देकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर लगाने से यह तेल बलमीक रोग को नष्ट करता है चाहे वह बलमीक रोग बहुत छिर्दीं वाला अथवा बहुत ब्रणों वाला भी न हो, किन्तु जो बलमीक रोग हाथापैरों के कंपर हो, उसमें बहुत से छिर हो गये हों और शोधयुक्त हो उसकी चिकित्सा दैव नहीं करे क्योंकि वह असाध्य है ॥१-२॥

पाषाणगदंभचिकित्सा—

सुरदारशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् । कफमारस्तशोथाद्धनो लेपः पाषाणगदंभे ॥३॥

पाषाणगदंभ-चिकित्सा—पाषाणगदंभ रोग में पहले स्वेदन करके देवदारु, मैनशिल और कूठ इनको समान भाग लेकर विधिवत् कल्क बनाकर लेप करना चाहिये । यह लेप पाषाणगदंभ रोग में कफ, बातब शोथ को नष्ट करने वाला है ॥१॥

पनसिकाचिकित्सामात्—

भिषक्षपनसिकां पूर्वं स्वेदयैरपतपंजैः । यजेद्विद्वाद्विवल्लेपैः यिग्रदेवद्वमोज्ज्वैः ॥१॥

पनसिका चिकित्सा—पनसिका रोग में पहले स्वेदन और अपतर्पण कराकर विदारी की चिकित्सा के समान सहित और देवदारु के विधिवत् बने कल्क का लेप करना चाहिये ॥२॥

इरिवेशिलकाचिकित्सा—

पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता । तथैव भिषगेतां च चिकिसेदिरेशिलकाम् ॥

इरिवेशिलका चिकित्सा—पैत्तिक विसर्प की जो चिकित्सा (लेप-सेकादि) कही गयी है वही चिकित्सा इरिवेशिलका की भी करनी चाहिये ॥१॥

कक्षागन्धनयोश्चिकित्सा—

कक्षां च गन्धनां तां च चिकित्सेत् चिकित्सकः । पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्त्या ॥

कक्षा और गन्ध चिकित्सा—कक्षा और गन्ध की चिकित्सा पूर्वोक्त पैत्तिक विसर्प चिकित्सा के समान ही करनी चाहिये ॥१॥

अग्निरोहिणीचिकित्सा—

पित्तवीसर्पचिह्निना साधयेद्विनरोहिणीम् । रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्विक्तमोद्दण्डण्डणम् ॥१॥

शरीरस्य च संशुद्धिं तां तु वृद्धां परित्यजेत् ॥२॥

अग्निरोहिणी चिकित्सा—पित्तज विसर्प की चिकित्सा से अग्निरोहिणी को सिद्ध (नष्ट) करके लङ्घन, रक्तमोक्षण, रक्षण और शरीर की शुद्धि कराना चाहिये । किन्तु यदि अग्निरोहिणी अधिक वढ़ जावे तो उसे असाध्य समझ कर त्याग देवे ॥१-२॥

चिप्पकुनखयोश्चिकित्सा—

चिप्पं रुधिरमोषेण शोधनेनाप्युपाचरेत् । गतोष्माणमयैनं तु सेचयेद्वृणवारिणा ॥३॥

चिप्प चिकित्सा—चिप्प रोग में रक्तमोक्षण और शोधन कराकर जब वह उष्मा रहित हो जावे तब उसे उष्मा बल से सिंचन कराना चाहिये ॥१॥

शस्त्रेणापि यथायोग्यसुचिक्ष्य श्वावयेत्ततः । व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत् विच्छणः ॥२॥

अवसर आजे पर शब्द से यी चिप्प का छेदन कर ज्ञाव कराकर व्रण रोग में कही हुई विधि से व्रणरोपक उपचार करना चाहिये ॥२॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कुर्वताऽयसेऽभयाय । घृष्णा तज्जेन कल्पेन लिपेडिच्छप्यं पुनः पुनः ॥

लोहे के पात्र में इरड़ को रखकर उसमें इल्दी के स्वरस को डाल कर विसने से जो कल्प बने उसका लेप बार २ करना चाहिये ॥३॥

काशमर्याः सप्तमिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टिः । अङ्गुलीवेष्टकः पुंसां ध्रुवमाशु प्रशान्त्यति ॥४॥

गम्भार के सात कोमल पत्तों को लेकर चिप्प रोग वाली ऊँगली पर लपेट दे तो इससे शीघ्र ही चिप्प रोग निश्चय नष्ट हो जाता है ॥४॥

श्लेष्मविद्विक्षकपैयेन कुनखं समुपाचरेत् । नखोदिप्रविष्टेन टङ्गेन न शान्त्यति ॥

कुनखश्वेतद्वावा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च ॥५॥

कुनख-चिकित्सा—कफज विद्रवि में कही हुई चिकित्सा के अनुसार कुनख की चिकित्सा करनी चाहिये । कुनख रोग टंकण (मुहाग) से निश्चय छूट जाता है । यदि नख के क्षेत्र में

प्रविष्ट सुहागे से भी कुनख रोग शान्त न हो तो मानो पश्चल भी जल में तैरने लगेगा । अर्थात् जैसा जल में पश्चल का तैरना असंभव है वैसा सुहागे के प्रयोग से कुनख रोग का नहीं छूटना भी असंभव है ॥ ५ ॥

दादिमकुमुमयवासैरभया सुश्लचणचूर्णिता लेपात् ।
नखकोटिपूतिमार्वं शमयति शूलं च तरचणादेव ॥ ६ ॥

अनार के फूल, जबासा और इरड़ तीनों समान भाग का दलक्षण चूर्ण बनाकर लेप करने से नख के कोने का सड़ा हुआ अंश नष्ट हो जाता है और वोडा भी शून्य हो नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

अनुशशीचिकित्सा—हुरेदमुशार्यो वैद्यः क्रियथा श्लेष्मविद्धिः ॥ १ ॥

अनुशशी—चिकित्सा—अनुशशी रोग में कफज विद्धि में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

विदारिकाचिकित्सा—

विदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम् । पाटनं च विपकायां ततो ब्रणविधिः स्मृतः ॥

जयेद्विदारिकां लेपैः विश्रुतेवद्वुमोऽध्वैः ॥ १ ॥

विदारिका—चिकित्सा—विदारिका रोग में पहले जोक लगाकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये । यदि विदारिका पक गयी हो तो उसे चिराकर ब्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये । सहिजन की छाल और देवदार दोनों को समान भाग पीस कर लेप करने से विदारिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

शर्करारुद्धं-चिकित्सा—मेदोऽरुद्धं विद्यानेन साधयेच्छकर्करारुद्धम् ॥ १ ॥

शर्करारुद्ध-चिकित्सा—मेदोऽरुद्ध चिकित्सा के अनुसार शर्करारुद्ध को चिकित्सा करनी चाहिये ।

पाददार्यांश्चिकित्सा—पाददार्यां सिरां प्राङ्गो मोच्येत्तलशोधिनीय ।

स्नेहस्वेदोपचौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः ॥ ३ ॥

मधूचिलुष्वसामञ्जाघृतैः चारविमिश्रितैः । सज्जोर्थसिन्धूज्वरयोश्चूर्णं मधुष्टप्लुतम् ॥

निर्मधू कटुतेलाकं हितं पादप्रमार्जने ॥ २ ॥

पाददारी—चिकित्सा—पाददारी रोग में तलशोधनी सिरा का मोक्षण और पैरों को स्नेहन स्वेदन करा कर मोम, बसा, मज्जा, धूत और यवशार प्रत्येक समान भाग मिलाकर लेप करना चाहिये तथा राल, सेवानमक, मधु और धूत प्रत्येक समान भाग और सरतों का तेल पक भाग मिलाकर बार बार लगाना चाहिये ॥ १-२ ॥

मधुसिन्धकसैन्धवघुटगुडमहिषाशालिनिर्यसैः । गैरिकसहितैलेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः ॥

मधु, सेवानमक, धूत, गुड, गुग्गुल, शाल का निर्यास (गोद) और गेह प्रत्येक समान को पीसकर लेप करने से पैर का फटना (पाददारी रोग) अवश्य नष्ट होता है ॥ ३ ॥

उपेदिकाचिकित्सा—उपेदिका (पोई शाल), सरसे, नीम की छाल अथवा पत्ती, मोचरस, ककड़ी और खीरा के बीज प्रत्येक समयाग लेकर विधिपूर्वक बलाकर मस्त को छाल में घोल देके पक्षात उस क्षारोदक में चतुर्थीश मूँछित सरसों का तेल मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर उसमें सेवानमक मिलाकर लेप करने से पाददारी रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

मधूनं च तथा सिक्थं सामुद्रलवणं तथा । महिषीनवनीतेन सततं लेपनं हितम् ॥ १ ॥

सप्ताहान श्फुटितो पादौ जायेते कमलोपमौ ।

मदनकलादि लेप—मैनफल, मोम और सामुद्र लवण को समभाग लेकर पीसकर भैंस के मधुखन में मिलाकर निरन्तर लेप करना चाहिये । इस मदनफलादि लेप के सात दिन लगातार भगाने से फटे हुये पैर कमल के समान को मल और सुन्दर हो जाते हैं ॥ १ ॥

सैन्धवं चन्दनं रालं मधु सर्पिः पुरो गुडः ॥

गैरिका श्फुटितौ पादौ लिसौ स्तः पङ्कोपमौ ॥ ३ ॥

सैन्धवादि लेप—सेवानमक, रक्त चन्दन, राल, मधु, धूत, गुग्गुल, गुड और गेह प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से फटे हुए पैर कमल के समान हो जाते हैं ॥ २ ॥

मधूनसैन्धवगुग्गुलगैरिका-इड्ड्यमधुरालगुडांग्रिविलेपनात् ।

श्फुटितमध्यस्तिलं चरणद्वयं-विकचतामरसप्रतिमं भवेत् ॥ ३ ॥

मदनादि योग—मैनफल, सेवानमक, गुग्गुल, गेह, धूत, मधु, राल, गुड प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से फटे हुए पैर कमल के समान हो जाते हैं ॥ ३ ॥

कदरस्य चिकित्सा—देवेकदरसुद्धयं तेलेन बहनेन वा ॥ ३ ॥

कदर-चिकित्सा—कदर को डाला खुरच कर तेल से अथवा अचिन से जलाना चाहिए ॥ १ ॥

अलसस्य चिकित्सा—

पादौ सिवरक्ताऽरनालेन लेपनं त्वलसे हितम् । पटोलकुनटीनिभवरोचनामरिचेस्तिलैः ॥ १ ॥

अलस-चिकित्सा—अलस रोग में पैर को काँची से सिंचन कर पटोल पत्र, मैनसिल, नीम, बैश्लोचन, मरिच और तिल प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से आम होता है ॥ १ ॥

इन्द्रस्वरससिद्धेन कटुतेलेन लेपयेत् । ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैविचूर्णैयेत् ॥ २ ॥

छोटी कटी के स्वरस में चतुर्थीश मूँछित सरसों का तेल विधिपूर्वक सिद्ध कर लेप करके कासीस, मैनसिल और तिल प्रत्येक समान भाग का चूर्ण छिकने से यह अलस रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

करञ्जीजरजनी कासीसं पश्चकं मधु । रोचना हरितालं वा लेपोऽयमङ्गसे हितः ॥ ३ ॥

करञ्जके बीज, हलदी, कासीस, पद्म काठ, मधु, बैश्लोचन और इरताल प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से अलस रोग में आम होता है ॥ ३ ॥

इन्द्रलुसस्य चिकित्सा—

इन्द्रलुसापहो लेपो मधुना बृहतीरसः । गुआमूलं फलं वाडिपि भश्लातकरसोऽपि वा ॥ १ ॥

लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्चुरजा मवी । हस्तिदन्तमर्थी छूरवा छागदुर्घं रसाअनम् ॥

रोमाण्येतेन जायन्ते लेपतपाणितलेवपि ॥ २ ॥

इन्द्रलुस-चिकित्सा—बड़ी कटी के स्वरस में मधु मिलाकर लेप करने से अथवा गुजार (रसी) की जड़ किंवा फल को पीसकर लेप करने से अथवा मिलाने के स्वरस का लेप करने से अथवा मक्खन के साथ इतेत वर्ण के बोड़े के खुर को अन्तर्धूम विधि से भस्म कर मसी बनाकर लेप करने से इन्द्रलुस रोग नष्ट हो जाता है । तथा हाथी के दाँत को अन्तर्धूम विधि से भस्म कर मसी बनाकर रसवत और बकरी के दूध में मिलाकर लेप करने से हाथ के ताल में भी रोग उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् इस लेप से इन्द्रलुस रोग नष्ट होकर उस स्थान पर केश निश्चय अस जाते हैं । इन्द्रलुस रोग की यह महीयं विधि है ॥ १-२ ॥

तिक्कपटोलीपत्रस्वरसेष्ठृष्टा शमं याति । चिरकालजाऽपि निरजा नियतं दिवसत्रयेणैव ॥ ३ ॥

कडुबे पटोल पत्र के स्वरस को इन्द्रलुस पर मर्दन करने से पुरोना सी पोड़ा रहित इन्द्रलुस रोग तीन दिन में अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

गोक्खुरस्तिलपुष्पाणि तुलये च मधुपरिषो । शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ४ ॥

गोखरू, तिल के फूल, मधु और धूत प्रत्येक समभाग पीसकर शिर पर लेप करने से इन्द्रलुस नष्ट होकर केश जम जाते हैं ॥ ४ ॥

आतीकरञ्जवहणकरबीराग्निपाच्छितम् । तैलमध्यजनाद्वन्यादिलद्वलुसं च संशयः ॥ ५ ॥
जात्यादि तैल—चेष्टी के पचे, करज के पचे, बरणा की छाल, कनेर और चित्रकमूल प्रथेक समभाग का विधिपूर्वक कक्ष बनाकर कल्क के चौयुना मूर्छित तिळ का तेल और तेल से इन्द्रलुप रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

स्तुहीपथः पयोडकंस्य मार्कवो लाङ्गली विषम् । अजामूत्रं सगोमूत्रं एकिका सेन्द्रवाहणी ॥
विषाधार्थकस्तीषणगन्धा सम्यगेभिविषपाचितम् । तैलं सवति नियमात्मालित्यवदाधिनाशनम् ॥

स्तुहीदुग्धादि तैल—थूर का दूध, मदार का दूध, आंगरा, करियारी विष, वरतनाय विष, बकरी का मूत्र, गाय का मूत्र, रसियाँ, माहरि, इवेत सरसो और बब प्रथेक समभाग का विधिपूर्वक कक्ष बनाकर कल्क के चौयुना मूर्छित तिळ का तेल और तेल से चौयुना जल मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर नियम विषपूर्वक कगाने से खाकिस्य (इन्द्रलुप) रोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ६-७ ॥

दारणस्य चिकित्सा—

कार्यो दारणके मूर्दिन प्रलेपो मधुसंयुतः । प्रियालबीजमधुक्कुष्ठमष्टैः ससैन्धवेः ॥ १ ॥
काञ्जिकस्तु त्रिसप्ताहं केषो दारणकापदः । आञ्जबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वारम् ॥
दुष्टपिष्ठप्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारणम् ॥ २ ॥

दारण चिकित्सा—दारणरोग में प्रियाल के बोज (चिरोंजी), मुखहठी, कूठ, सेंधानमक तथा कांजी प्रथेक समभाग पीसकर मधु मिलाकर शिर में लेप करने से दारण रोग नींद बसाद (२१ दिन) में नष्ट हो जाता है नवा आम की गुठली और इरु के बोजों का चूर्ण समान लेकर दूध के साथ पीस कर लेप करने से कठिन दारणरोग नष्ट हो जाता है ॥ १-२ ॥

भृङ्गराजतैलम्—

भृङ्गराजरसेनैव लोहकिं फलत्रिकम् । सारिवां च एचेकलकैतैलं दारणनाशनम् ॥

अकालयलितं कण्ठमिन्द्रद्वलुतं च नाशयेत् ॥ ३ ॥

भृङ्गराज तैल—आंगरे का रस ४ सेर, तिल का तेल १ सेर और लोहे की मैल, आंवला, इरु, बड़ेहा और सारिवा प्रथेक समान भाग का कक्ष १ पाव लेकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर इस तेल की मालिश से दारण रोग, अकाल में दुष्टा पक्षित (असल में केशों का पक्ना) कण्ठ और इन्द्रलुप नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गुजारातैलम्—

गुजाराफलैः शूर्तं तैलं भृङ्गराजरसेन च । कण्ठद्वाराहगहाकुष्ठ-कपालदयाधिनाशनम् ॥ १ ॥

गुजारा तैल—गुजारा फल (रत्तियों) का विधिवत बना कक्ष एक पाव, तिल का तेल एक सेर और आंगरे का स्वरस चार सेर मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से कण्ठ, दारणरोग, कुष्ठ तथा शिर की सभी व्याधियाँ नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

दुष्टेन खालसं वीजं प्रलेपादारुणं हरेत् । कण्ठकारीफलतरसेस्तुश्यं तैलं विपाचयेत् ॥

जपापुष्पद्वैर्वैर्डित्य तत्त्वेषो दारणप्रणुष् ॥ २ ॥

खालस के बीजों को दूध के साथ पीसकर लेप करने से तथा छोटी कटेरी के फलों के स्वरस के साथ अथवा जपापुष्प (जोड़तल) के स्वरस के साथ विधिपूर्वक तिळ तेल सिद्धकर लेप करने से दारणरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

अर्घ्यिकायाधिकित्सा—

नीलोत्पलस्य किञ्चको धात्रीफलसमन्वितः । यष्टीमधुक्युक्तश्च लेपाद्वन्यादरुचिकाम् ॥ १० ॥

अर्घ्यिका चिकित्सा—नील कमल केसर, आंवला और जेठीमधु तीनों समान भाग पीस कर लेप करने से अर्घ्यिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

विफलांय तैलम्—

विफलांय रजो यष्टी मार्कवोपलसादिवाः । सैन्धवं पक्षमेतैश्चु तैलं हन्यादरुचिकाम् ॥ १ ॥

विफलांय तैल—आंवला, इरु, बड़ेहा, जेठीमधु, आंगरा, नीलकमल, सारिवा लता और सेंधानमक प्रथेक समान भाग के कक्ष का चौयुना मूर्छित तिळ तेल और तेल से चौयुना पाकार्थ बक्क-देक्क तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से अर्घ्यिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अर्घ्यिकार्थी इविरेऽप्सिके शिराद्यवेनाय जलोकया वा ।

नियमाभ्युसिते शिरसि प्रलेपो देश्य वर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ २ ॥

अर्घ्यिका रोग में शिरादेश अथवा जोक से रक्तमोक्षण कराकर नीम के पत्तों के काथ से शिर का सिंचन और गोवर के रस में सेंधानमक मिलाकर लेप करना चाहिये । इससे अर्घ्यिका रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पुराणमथ पिण्डाकं पुरीषं कुक्कुटस्य च । भूत्रपिण्डः प्रलेपोऽयं सीम्रं हन्यादरुचिकाम् ॥ ३ ॥

पुराणी पिण्डाक (तिळ की खरी) और मुर्गे की विषा को गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से अर्घ्यिका शीघ्र नष्ट होती है ॥ ३ ॥

एरिदावं तैलम्—

हरिद्राद्यभूनिद्वन्द्वनिकलारिष्टचन्दनैः । पत्तचैलमंधीणां सिद्धमध्यजने हितम् ॥ ३ ॥

एरिदाव तैल—इलटी, दारहलटी, विरायता, आंवला, इरु, बड़ेहा, नीम की छाल और रक्तचन्दन प्रथेक समभाग कक्ष का चौयुना तिळ का तेल और तेल के चौयुना पाकार्थ बक्क तेक्क तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से अर्घ्यिका रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

खिरारिष्टज्ञानां स्वपिभव्या मूर्त्रसंयुते । कुरज्यवक सैन्धवं वा लेपाद्वन्यादरुचिकाम् ॥ ३ ॥

खैर, नीम, और जामुन की छाल तीनों समान भाग गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से अथवा कुट्टज (कोरेया) की छाल और सेंधानमक पीस करने से अर्घ्यिका रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पक्षितस्य चिकित्सा—

अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिकला कृष्णमृतिका । स्थितमिहुरसे मासं लेपनारपलितं जयेत् ॥ १ ॥

पक्षित चिकित्सा—लौहीचूर्ण, आंगरा, इरु, बड़ेहा, आंवला और काली मिठी प्रथेक समान भाग को पीस कर गन्ने के रस में मिलाकर यक मास लक रखा रहने दे पक्षाद उस रस का लेप करने से पक्षित रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

धात्रीफलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं विभीतकम् । पञ्चाम्रमउजा लोहस्य क्षेत्रं च प्रवृत्यते ॥ २ ॥

पिष्टा लोहमये भाण्डे स्थापयेदुवित्त निशि । लेपोऽयं हन्ति नविराद्यकालपलितं महत् ॥ ३ ॥

आंवला दो नग, इरु दो नग, बड़ेहा एक नग, आम की गुठली की गिरी ५ कर्ष और लोहे का चूर्ण एक कर्ष लेकर भलीमांति पीसकर लोहे के पाथ में रखकर उसमें लक ढाल कर रात मर पड़ा रहने दे प्रातः केशों पर मलने से शीघ्र ही महान् अकाल पक्षितरोग नष्ट हो जाता है ॥ २-३ ॥

नियमस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्य विशेषं विधिना यथावद् ।

मासेन गोर्चाराभुजो नरस्य चिरातप्रभूतं पक्षितं निहन्ति ॥ ४ ॥

शुद्ध नीम के तेल का नस्य लेने से तथा पथ्य में गोदुग्ध ही केवल मोजन करने से एक मास में पुराना से पुराना पक्षितरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

काशमर्यादी सहचरकुसुमं केतकस्थापि भूलं
लौहं चूणं सघृङ्गं विफलजलयुतं तैलमेभिः पचेयुः ।
कृत्वा लोहस्य भाषणे वितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं
केशाः काशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्वन्ति ॥ ५ ॥

काशमर्यादी तैल—गम्भार की जड़, शटु के आदि (वसन्त) में ही निकले हुए आम के फूल (मंजरी), केतकी की जड़, लोहे का चूण और भांगरा प्रत्येक समभाग का विधियुक्त बना कल्प जितना ही उसके चौगुना तिळ-तैल और तैल से चौगुना पाकार्थ विफला का जड़ (काथ वा स्वरस) मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लोहे के पात्र में मुख बन्द कर भूमि में गाढ़ दे और एक मास के पश्चात निकाल कर केशों पर लगाने से काश के पुष्प के समान भी इतें केश भौंरे के समान काले हो जाते हैं ॥ ५ ॥

विफला नीलिकापत्रं भृङ्गराजो द्वयोरजः । अविमूलेण सरिपदं लेपाकृष्णीकरं परम् ॥ ६ ॥

इरड़, बडेवा, आँवला, नील के पत्ते, भांगरा और लोहचूर्ण प्रत्येक समभाग लेकर भेड़ के मूक के साथ पीस कर लेप करने से केश काले हो जाते हैं ॥ ६ ॥

यौवनपिटिकान्यच्छुभ्युङ्गनीलिकाचिकित्सामाद—

यौवनपिटिकादि चिकित्सा—यौवनपिटिका, न्यच्छ, नीलिका, व्यङ्ग और शब्दरा रोग सिरा वेष, प्रलेप और अन्यज्ञ (तैल मदन) से नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

आतीफलं च्छन्दनं च मरिचैः सह वित्तम् । मुखलेपेन हन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्धवाम् ॥

आयफर, लालचन्दन और काली मरिच को विस कर मुख पर लेप करने से यौवनपिटिका शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

लोभधान्यवचालेपस्तारुच्यपिटिकापहः । तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ॥ ३ ॥

ओध, बनियाँ और बच तीनों समभाग पीस कर अथवा गोरोचन और मरिच तीनों समान भाग पीस कर लेप करने से यौवनपिटिका नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

सिद्धार्थकवचालोभ्यैन्धवैश्च प्रलेपनम् । गाथ्येन चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समादिका ॥ ४ ॥

कण्ठकैः शारमलीयैश्च लीरपिण्डैः प्रलेपयेत् । मुखे तस्यापि पिटिकाः सङ्कुर्यं यान्त्यसंशयम् ॥

थेत सरसों, बच, लोध और सेधानमक प्रत्येक समभाग पीस कर अथवा गाय के दूध के साथ अजुन की छाल को पीसकर अथवा मजीठ को मधु के साथ पीसकर अथवा सेमल के कटीं को दूध के साथ पीस कर लेप करने से मुख पर की पिटिका नष्ट हो जाती है ॥ ४-५ ॥

त्रिमुखवलविजयापत्रं मूलं स्थिरस्थ शिशपा चेभिः ।

उद्धर्तनं विरचितं न्यच्छुभ्युङ्गपदं सिद्धम् ॥ ६ ॥

भांग के पत्ते, विधारा की जड़ और शीशम की जड़ को पीसकर छब्दन करने से न्यच्छ और व्यङ्ग रोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

चटाङ्गुरा मसूराश्च प्रलेपाद् व्यङ्गनाशनाः । व्यङ्गे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ७ ॥

वटवृक्ष के अड्डर (वरोह) और मसूर को पीस कर लेप करने से तथा मजीठ को पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनत्ववच मञ्जिष्ठा वृषमाचिकैः । लेपः सनवनीतो वा श्रेताश्वसुरजा भवी ॥ ८ ॥

व्यङ्ग रोग में अजुन वृक्ष की छाल, मजीठ और अरसा प्रत्येक समान भाग पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से अथवा थेत वर्ण के थोड़े के खुर को अन्तर्घृत विधि से भर्त्व बना मक्खन मिलाकर लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

व्यङ्गानां लेपनं शस्तं शाश्वस्य लेपिरेण वा । वशणस्य कषायेण मुखं प्रकाशय लेपयेत् ॥ ९ ॥
वटस्य पाठ्मुपत्राणि मालती रक्तचन्दनम् । कुष्ठं कालीयकं लोधमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
यौवनपिटिकानां तु व्यङ्गानां च विनाशनम् । मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिला गोशकृतो रसः ॥
मुखकान्तिकरो लेपः पिटिकाव्यङ्गकालजित् । जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यङ्गं नीलिकाम् ॥

शशक के रक्त का लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है और वशण के काथ से मुख थोकर वट के पीले पत्ते, चमेली के पत्ते, रक्त चन्दन, कूट, अगर और लोध को पीस कर लेप करने से यौवनपिटिका और व्यङ्ग रोग नष्ट होते हैं तथा विजौरे नीबू की जड़, गोधृत, मेनशिल और गोबर के रस को पीस कर मुख पर लेप करने से मुख की कान्ति बढ़ती है और पिटिका तथा व्यङ्ग का नाश होता है और जायफर को पीस कर लेप करने से भी व्यङ्ग और नीलिका नष्ट होती है ॥ अर्कचीरहरिद्राम्यां मर्दयित्वा प्रलेपयेत् । मुखकाण्ड्यं शामं याति चिरकालोद्धरं भ्रवम् ॥ १३ ॥

मदार के दूध और हल्दी को मदनं (पीस) कर (अथवा दूध में हल्दी घिस कर) लेप करने से पुराना भी मुखकाण्ड्यं निश्चय ही नष्ट हो जाता है ॥ १४ ॥

मसूरः चीरसिंधैलित्समास्यं षुतान्वितैः । ससरात्राद्वावेस्तर्यं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ १४ ॥

मसूर को दूध के साथ पीस कर घृत मिलाकर लेप करने से सात दिन में ही मुख कमलप्रकृति के समान ल्वच्छ हो जाता है ॥ ४ ॥

कुकुमं च्छन्दनं लोधं पतझं रक्तचन्दनम् । कालीयकमुशीरं च मञ्जिष्ठा मधुयषिका ॥ १ ॥

पत्रकं पश्चकं पश्च कुष्ठं गोरोचनं निशा । लाचा दारुहरिद्रा च गैरिकं नागकेशरम् ॥ २ ॥

पलाशकसुमं आपि प्रियजुश्च वटाङ्गुराः । मालती च मधुच्छिर्लेपं सर्पाः सुरभिर्वचा ॥ ३ ॥

चतुर्मुण्डपयः पिटिरेतैर्वितैः पृथक् । पचेन्मन्दाग्निना वैशस्तैलं प्रस्थद्वयोनिमरम् ॥ ४ ॥

चदनाम्यज्ञनादेतद्व्यङ्गं नीलिकया । सह । तिलकं मांवकं न्यच्छं नाशयेन्मुखदूषिकाम् ॥ ५ ॥

पश्चिमीकण्ठकं वाऽपि हरेज्ञतुमणि तथा । विद्युत्वदनं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम् ॥ ६ ॥

कुकुमादि तैल—केशर, शेतचन्दन, लोध, पतझ (पतझ काठ), रक्तचन्दन, अनार, खस, मजीठ, जेठीमधु, तेजपात, पदुमकाठ, कमल, कूठ, गोरोचन, इल्दी, लाख, दारुहली, गेह, नागकेसर, पलाश पुष्प, फूल प्रियजुश्च, वट के अड्डर (वरोह), मालती के फूल, मोम, शेत सरसों, शिलाजीत और बच तथा प्रत्येक एक २ कर्षं चौगुने दूध में पीसकर कल्प बनाकर उसमें दो प्रस्थ तिल का तेल और ८ प्रस्थ पाकार्थं जल देकर तेल पाक की विधि से मन्द २ अस्ति पर तेल सिद्धकर इस तेल को मुख पर मदनं करने से व्यंग, नीलिका, तिल, मासा, न्यच्छ, मुखदूषिका, पश्चिमीकण्ठक, अतुमणि आदि सभी रोग नष्ट होते हैं और मुख पूर्णचन्द्र-मण्डल के समान ल्वच्छ दूध सुन्दर हो जाता है ॥ १-६ ॥

मञ्जिष्ठाद्यं तैलं योगतरक्षिण्याः—

मञ्जिष्ठं मधुकं लाचा मातुलुङ्गं सर्यष्टिकम् । कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥ १ ॥

आजं पश्च द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । नीलिकापिटिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ २ ॥

मुखं प्रसादोपचितं वलीपलितवजित्सम् । ससरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसञ्जिमम् ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठादि तैल—मजीठ, मुलहठी, लाख (लाझी), विजौरे नीबू की जड़ और जेठीमधु, प्रत्येक एक २ कर्षं का कल्प तथा तिल का तेल एक कुडव (आचामान) और वकरी का दूध दो कुडव मिलाकर तेल पाक की विधि से मन्द २ अस्ति पर तेल सिद्ध कर मदनं करने से नीलिका, पिटिका (यौवनपिटिका) और व्यङ्ग आदि रोग नष्ट होते हैं और मुख प्रसाद तथा उपचित रहता है अर्थात् यह तेल मुख को पिचकने नहीं देता वलीपलित रोग से बचाता है । केवल सात दिन के प्रयोग से मुख सुवर्ण के समान सुन्दर हो जाता है ॥ १-३ ॥

चूहे की वसा को गुदभ्रंश पर लेप करने से अथवा चूहे के मास को रपाकर युदा पर स्वेद करने से गुदभ्रंश नष्ट होता है ॥ ३ ॥

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरवारसंयुतम् । धृतमुख्यितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ॥ ४ ॥

चाङ्गेरी, बेर, दही, काँबी, सोंठ और यवाखार प्रत्येक समान भाग का कल्क उना कर उसके चौमुना पाकार्यं जल मिलाकर धृतपाक की विधि से धृत सिद्ध कर पान करने से गुदभ्रंश की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

वृद्धागलानलचाङ्गेरीविवृतपाठायवाग्रजय । तकेग शीलयेपायुधंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ ५ ॥

वृक्षाग्नक (कोकम), चित्रकम्ल, चाङ्गेरी (अम्लोनी), वेल, पुरुषपाढ़ी और यवाखार प्रत्येक समान लेकर चूर्ण कर तक के अनुपान से सेवन करने पर अग्नि दीप होती है और गुदभ्रंश नष्ट होता है ॥ ५ ॥

मूषक तैलम्—

मूषकान् दशमूलानि गृहीयाद्भूमयं समम् । तथोः क्षाथेन कलेन पचेत्तैलं यथोदितम् ॥ ६ ॥
अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति । विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभग्नदराः ॥ ७ ॥

मूषक तैल—चूहे का मास एक भाग, दशमूल की मिलित ओषधियों एक भाग लेकर विधिवत् कल्क बनाकर जितना ही उसके चौमुना तिल का तैल और तेल के चौमुना उन्हीं कल्क द्रव्यों का काथ लेकर सबको मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल तिल कर मर्दन करने से गुदभ्रंश और गुदशूल और भग्नदर रोग भी नष्ट होता है ॥ ६-७ ॥

गुरुं च गद्यपयसा वेशयेद्विशङ्कितः । दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याग्नु न संशयः ॥

गुदा की नाड़ी जो बाहर निकल गयी हो उसको गाय के दूध से तरक कर निःशंक होकर विशेष कर इसवत का पान और लेप हितकर होता है ॥ ८ ॥

शूकरदंष्ट्रस्य विकितसा—

भृगुराजकमूलस्य इजन्या सहितस्य च । चूर्णं तु सहसा लेपाद् वाराहिंशत्राशनम् ॥ १ ॥

सूकरदंष्ट्र चिकित्सा—मांगरे की छड़, हल्दी दोनों के समान गा चूर्णकर लेप लगाने से सहसा (हठात) शूकरदंष्ट्र रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

राज्ञीवमूलकलकः पीतो गव्येन सर्विषा प्रातः । शामयसि शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं उवर्ण घोरम् ॥

कमल की जड़ का कल्क बनाकर गो धृत के अनुपान से प्रातः काढ़ पान करने से सूकरदंष्ट्र रोग तथा इससे उत्पन्न भयकुर जर भी शुभन होता है ॥ ३ ॥

रजनी मार्कवं मूलं पिण्डं शीतेन वारिणा । तश्लेषाद्वन्ति वीसर्पं वाराहवक्षनाहृद्यम् ॥ ३ ॥

हल्दी और मांगरे की जड़ को समान लेकर शीतक जल के साथ पीस कर लेप करने से वीसर्पं रोग और सूकरदंष्ट्र रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्यम्—

जुद्रोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु । दोषान्दूष्यानवस्थां च निरीचय मतिमानिभवक् ॥ १ ॥
तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वशः । यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—सभी प्रकार के क्षुद्र रोगों में जो प्रायः अनेक रोगों के पीछे हो जाया करते हैं उनमें बुद्धिमान् वैद्य द्वेष, दूष्य, रोग तथा रोगों की अवस्था देखकर रोगों के अनुसार पथ्यापथ्य का विचार करे ॥ १-२ ॥

इति शुद्धरोगप्रकरणं समाप्तम्

मुखरोगनिदानम्

अथ मुखरोगाणां निदानाम्याह

तत्र मुखका स्वरूपमाह—

ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्ता जिह्वा च तालु च । गलो गलादि सकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥

मुख का स्वरूप—दोनों ओठ, दाँतों के मूल (मसूडे जबड़े), दाँत, बीम, तालु और गला ये सातों अंग मिलकर मुख कहे जाते हैं ॥ १ ॥

आनूपविशितचीरदविभाषिदेवनाश् । मुखमध्ये गदान् कुर्युः कुद्रा दोषाः कफोत्तराः ॥ २ ॥

मुख रोग की सम्प्राप्ति—आनूप देश के जीवों का मास, दूष, दही तथा उड्ड आदि के अधिक सेवन करने से कफ आदि दोष कुपित होकर मुख में रोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ २ ॥

मुखरोगाणी संख्यामाह—

स्युरद्वावोष्ठयोः न्तमूलेषु दश षट् तथा । दन्तेष्वधृष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युरन्त तालुनि ॥ ३ ॥

कष्टे त्वष्टादृशा प्रोक्ताज्ञयः सर्वसराः स्मृताः । पूर्वं मुखमयाः सर्वं सप्तष्टिर्मता दुष्टैः ॥ ४ ॥

मुख रोग की संख्या—ओठों में आठ, दन्तमूल में सोलह, दाँतों में आठ, जिह्वा में पांच, तालु में नीं, कण्ठमें अठारह और सम्पूर्ण मुख में विचरने वाले तीन, इस प्रकार मुख के सब रोग मिलकर ६७ होते हैं ॥ ३-४ ॥

त्रिष्ठूरोगास्तेषां निदानपूर्विकां संख्या चाइऽह—

पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तज्ञो मासजस्तथा । मेदोजश्चाभिभातोत्थं एवमष्टौष्ठजा गदाः ॥ ५ ॥

ओष्ठ रोग—ओष्ठ पर होने वाले रोग आठ प्रकार के होते हैं बातज, पित्तज, कफज, इन्नपातज, रक्तज, मासज, मेदोज और अग्नितुङ्ग ॥ ५ ॥

तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

कर्कशी पृष्ठौ स्तवधृष्टौ कृष्णौ तीव्रक्षान्वितौ । द्वाषयेते परिपाट्येते ओष्ठौ मारुतकोपतः ॥

वातिक ओष्ठ रोग—बिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ पिण्डिकाओं से युक्त हो जावे और उसमें धीड़ा तथा दाह हो, पाक हो और पिण्डिकाओं का वर्ण पीत हो उसे पिच के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ २ ॥

पैतिकमाह—

चीयेते पिटिकाभिस्तु सखजानिः समन्ततः । सदाहपाकपिटिकौ पीताभासौ च विचत्तः ॥ ६ ॥

पैतिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में पिटिकाओं से युक्त हो जावे और उसमें धीड़ा तथा दाह हो, पाक हो और पिण्डिकाओं का वर्ण देवत हो, शीतलता हो, पिचिंचलता हो और गुहता हो उसे कफ के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ३ ॥

इलैमिकमाह—

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिटिकाभिरवेदनौ । कण्ठमन्तौ कफाच्छ्वेतौ शीतलौ पिचिंचलौ गुरु ॥

कफज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठ के वर्णों के समान वर्ण की पिण्डिकाओं उत्पन्न हो जावे और उनमें वेदना कम हो, कण्ठ हो, पिण्डिकाओं का वर्ण देवत हो, शीतलता हो, पिचिंचलता हो और गुहता हो उसे कफ के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ५ ॥

सान्निपातिकमाह—

सकृकृष्णौ सकृपीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च । संनिपातेन विज्ञेयावनेकपिटिकाचितौ ॥ ७ ॥

सान्निपातिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में कभी कृष्ण, कभी पीत और कभी देवत वर्णों की ओठ हो जावे और उनके प्रकार की पिण्डिकाओं से युक्त तथा अनेक वर्णों की पिण्डिकाओं हो जावे उसे सान्निपात के कोप का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ५ ॥

रक्तजमाह—

खर्जस्फलवर्णभिः पिठिकासिनिषीदित्तो । रक्तोपसूष्टौ सूधिरं स्वतः शोणितप्रभौ ॥ ६ ॥

रक्तज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठों पर खजूर फल के समान वर्ण की पिठिकायें हों और उससे पीड़ित होने से ओठ का वर्ण रक्त के समान हो जावे तथा उससे रक्त का स्वाव हो, उसे रक्त के कोप का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ६ ॥

मांसबमाह—

मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिण्डवदुद्रतौ । दन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ७ ॥

मांसब ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ गुरु, स्थूल, भास के पिण्ड के समान उमरे, हुए हों और मुख के छिद्र के दोनों ओर (सूक्ष्मी प्रदेश में) कृमि उत्पन्न हो जावे उसे मांस के कोप का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ७ ॥

मेदोजमाह—

सर्पिंश्चद्वप्रतीकाशौ मेदसा कण्ठुरै मृदू । स्वच्छंस्फटिकसंकाशमासावं स्वतो भृशम् ॥ ८ ॥

मेदोज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठ का वर्ण धृत के मण्ड के समान हो, कण्ठु युक्त हो, मृदू हो और उससे स्वच्छ स्फटिक के समान अधिक स्वाव होता हो उसे मेद के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अभिवातजमाह—

चतुर्जासौ विदीयेते पीढ़ियेते चाभिवाततः । मथितौ च समाख्यातावोष्टौ कण्ठुसमन्वितौ ॥

अभिवातज ओष्ठरोग—आधात आदि से ओठ जब क्षत होने के आकार के अर्थात् रक्तवर्ण के हो जाते हैं, फट जाते हैं, पीड़ित हो जाते हैं, अन्यियुक्त हो जाते हैं और उसमें कण्ठु होने लगते हैं तब उसे अभिवातज ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ९ ॥

उक्तं मोजेन—

उत्तावभिहत्तौ चापि रक्तावोष्टौ सवेदनौ । भवतः सपरिस्तावौ रक्तपित्तप्रदूषितौ ॥ १० ॥

क्षत अथवा आधात होने से ओष्ठ रक्तवर्ण के हो जाते हैं तथा पीड़ा और स्वाव होता है, इसमें रक्त और पित्त दूषित होते हैं। भोज के मत में अभिवातज ओष्ठरोग के ये लक्षण हैं ॥ १० ॥

अथ दन्तवेष्टरोगः

तत्र दन्तवेष्टरोगाणा नामानि संख्यां चाऽऽह—

शीतादो गदितः पूर्वं दन्तपुष्टुकस्ततः । दन्तवेष्टः सौषिरश्च महासौषिर एव च ॥ १ ॥

ततः परिकरः प्रोक्तस्तत्स्वपुकुशः स्मृतः । वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः स्त्रिवर्धनं एव च ॥ २ ॥

अधिमांसकनामा च दन्तनाड्यश्च पञ्च च । दन्तविद्विषरप्यत्र दन्तवेष्टेषु षोडशः ॥ ३ ॥

दन्तवेष्ट रोगों के नाम—शीताद, दन्तपुष्टु, दन्तवेष्ट, सौषिर, महासौषिर, परिदर, उपकुश, वैदर्भ, खलिवर्धन, अधिमांसङ्, पांच दाँत की नाडियाँ और दन्तविद्विष इन नामों से दन्तवेष्टरोग (दाँत के मसूदों के रोग) १६ प्रकार के होते हैं इनमें पांच तो दन्तनाडी ही होती हैं ॥ १-२ ॥

तत्र शीतादस्य लक्षणमाह—

शोणितं दन्तवेष्टयो यत्राकस्माप्वत्तंते । हुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेषीनि मृदूनि च ॥ ४ ॥

दन्तमांसानि शीर्यन्ते पच्चिति च परस्परम् । शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥

शीताद के लक्षण—जिस रोग में मसूदों से अकस्मात् रक्त निकलने लगे मसूदे दुर्गंध युक्त, कृष्ण वर्ण के, क्लेद युक्त (गोला) और कोमल हो जावे तथा दाँत की जड़ के मांस सड़ जावे एवं परस्पर पक जावे उस रोग को कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न होने वाला शीतादरोग जानना चाहिये ॥ ४-५ ॥

दन्तपुष्टुकमाह—

दन्तयोक्तिषु वा यत्र श्वयथुर्जायते महान् । दन्तपुष्टुको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥ ६ ॥

दन्तपुष्टु के लक्षण—जिस रोग में दो-तीन दाँतों के मूल में शोथ उत्पन्न हो जावे उस रोग को कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न दन्तपुष्टु रोग जानना चाहिये। इसमें पीड़ा और लाकासावादि नहीं होते हैं ॥ ६ ॥

दन्तवेष्टमाह—

स्ववन्ति पूर्यं सूधिरं चला दन्ता भवन्ति च । दन्तवेष्टः स विज्ञेयो हुष्टशोणितसंभवः ॥ ७ ॥

दन्तवेष्ट के लक्षण—जिस रोग में दन्तमूल से पूर्य और रक्त निकलते हों दाँत हिलते हों उसे दूषित रक्त के दोष से उत्पन्न दन्तवेष्ट रोग जानना चाहिये ॥ ७ ॥

सौषिरमाह—

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफवातजः । लालाद्वावी सकण्ठुश्च स श्वेयः सौषिरो गदः ॥ ८ ॥

सौषिर के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल में शोथ, पीड़ा, लालाद्वाव और कण्ठु हो उसे कफ और वात के दोष से उत्पन्न सौषिर रोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

महासौषिरमाह—

दन्ताश्वलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते । यस्मिन्स सर्वज्ञो व्याविर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ ९ ॥

समरात्रान्मारकथायम्, यत आह मोजः—

सदाहो दन्तमूलेषु श्वेयः पित्तकफानिलात् । महासौषिर हृत्येष सप्तरात्रान्निहत्यसून् ॥ १० ॥

महासौषिर के लक्षण—जिस रोग में दाँत हिलने लगे और तालु फट जावे उसे त्रिदोषों से उत्पन्न महासौषिर रोग जानना चाहिये। यह महासौषिर रोग सात दिन में मार देने वाला है। जैसा कि मोज ने कहा है कि दाँतों के मूल में पित्त और वात-कफ के कोप से उत्पन्न होने वाला दाह सहित शोथ होता है वह महासौषिर कहा जाता है और यह सात रात्रि में प्राणों को नष्ट कर देता है ॥ ९-१० ॥

परिदरमाह—

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्स्वति चाप्यसूक्त । पित्ताप्यकज्ञो व्याविज्ञेयः परिदरो हि सः ॥

परिदर के लक्षण—जिस रोग में दाँत की जड़ के मांस फट जावे और उससे रक्त निकले उसे पित्त-रक्त तथा कफ के दोष से उत्पन्न परिदर रोग कहते हैं ॥ ११ ॥

उपकुशमाह—

वैष्टेषु दाहः पाकश्च ताम्यां दन्ताश्वलन्ति च । अथर्दिताः प्रस्ववन्ति श्वोणितं मन्दवेदनम् ॥

आध्मायन्ते लूते रक्ते मूलं पूति च जायते । यस्मिन्तुपुकुशः स र्यास्पित्तरक्तसमुज्ज्वः ॥ १२ ॥

उपकुश के लक्षण—जिस रोग में मसूदों में दाह और पाक हो तथा इसी दाह-पाक के कारण दाँत हिलने लगे, तथा दाँतों में अत्यन्त पीड़ा हो एवं योड़ी र पीड़ा के साथ रक्त निकले और मसूदे मूल जावे तथा मूल से दुर्गम्ब आने लगे वह पित्त और रक्त दोष से उत्पन्न होने वाला उपकुश नामक रोग कहा जाता है ॥ १२-१३ ॥

वैदर्भमाह—

षष्ठेषु दन्तमूलेषु संरभो जायते महान् । चलन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिवातजः ॥

वैदर्भ के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल दन्तवातन आदि से विस जाने के कारण महान् शोथ, पीड़ा अथवा पाक युक्त हो जावे और दाँत हिलने कर्ते वह वैदर्भ नामक अभिवातज रोग कहलाता है ॥ १४ ॥

खलिवर्धनमाह—

माहतेनाभिको दन्तो जायते तीव्रेदनः । खलिवर्धनसंज्ञोऽसौ संज्ञाते रुपप्रशास्यति ॥१५॥

खलिवर्धन के लक्षण—कभी २ किसी मनुष्य को वायु के कोप से बित्तने दाँत होने चाहिये उससे अधिक एक दाँत उत्पन्न होने कागता है उसमें वही पीड़ा होती है और वह वह दाँत निकल जाता है तब पीड़ा शान्त हो जाती है उसको खलिवर्धक नामक रोग कहते हैं ॥ १५ ॥

अधिर्मासकमाह—

हानम्ये पश्चिमे दन्ते महान् शोथो महाहजः । लालासावी कफकूतो विज्ञेयः सोऽधिर्मासकः ॥

अधिर्मासक के लक्षण—जिस रोग में हनु कोने में अन्तिम जो दाँत है उसमें महान् शोथ हो जाता है, उससे पीड़ा और लालासाव छीता है उसे कफ के कोप से उत्पन्न अधिर्मासक रोग जानना चाहिये ॥ १६ ॥

पञ्च दन्तनाडीराह—दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च शेया अथेरिताः ॥ १७ ॥

पञ्चदन्त नाडी के लक्षण—दाँतों के मूल में पांच प्रकार की नाडियाँ होती हैं उन्हें प्रथम कहे दुए नाडी ब्रण के अनुसार वातज, पित्तज, कफज, सनिनपातज और आगन्तुज जानना चाहिये । इसमें सनिनपातज दन्तनाडी असाध्य है ॥ १७ ॥

दन्तविद्रिघमाह—

दन्तमांसमलैः साक्षेर्वाहातः शवथथुर्महान् । सदाहरुश्लवेन्निक्षः पूयास्तं दन्तविद्रिघिः ॥१८॥

दन्तविद्रिघ के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल के मल आदि अथवा वातादि दोषों के साथ रक्त कुपित होकर बाहर की ओर महान् शोथ उत्पन्न कर देता है जिसमें दाह तथा पीड़ा होती है और उसके फूटने पर पूय तथा रक्त बहते हैं उसे दन्तविद्रिघ कहते हैं ॥ १८ ॥

तत्र दन्तरोगाणा नामानि संख्या चात्तह—

अथ दन्तरोगः

दालनः कथितः पूर्वं कृमिदन्तक एव च । प्रोक्तो भजनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा ॥ १ ॥

कपालिकाऽत्र कथिता श्यावदन्तक एव च । करालसंज्ञा दूर्यंश्टौ दन्तरोगः प्रकीर्तिताः ॥२॥

दाँत के रोगों के नाम—दालन, कृमिदन्त, भजनक, दन्तहर्ष, दन्तशर्करा, कपालिका, श्याव-दन्तक और कराल ये आठ प्रकार के दन्तरोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र दाळनस्य लक्षणमाह—

शीर्यमाणविवर रुजा अत्र दन्तेषु जायते । दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥३॥

दालन के लक्षण—जिस रोग में दाँतों में फटने के समान पीड़ा हो वह वायु के कोप से उत्पन्न दालन नाम का रोग है ॥ ३ ॥

कृमिदन्तमाह—

कृष्णचिकृतश्चलः द्वावी संसरमो महाहजः । अनिमित्तरुजो वातास्त ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥४॥

कृमिदन्त के लक्षण—जिस दन्त रोग में दाँतों में कृष्ण वर्ण के छिद्र हो, दाँत हिकने लगे, द्वाव, शोथ और अस्थन पीड़ा हो उसे वायु के कोप से उत्पन्न कृमिदन्तक रोग जानना चाहिये ॥

भजनकमाह—

वक्त्रं वक्त्रं भवेद्यस्य दन्तभजश्च जायते । कफवातकूतो व्याधिः स भजनक उच्यते ॥ ५ ॥

भजनक के लक्षण—जिस दन्त रोग में मुख टेढ़ा हो जावे और दाँत दूट जावे उसे कफ-वात के कोप से उत्पन्न भजनक रोग जानना चाहिये ॥ ५ ॥

दन्तहर्षमाह—

शीतरुप्रवातात्तरस्पर्शानामसहा द्रिजाः । तत्र स्थुर्वात्तिवित्ताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तिः ॥

दन्त हर्ष के लक्षण—जिस दन्तरोग में शीत, रुक्ष वायु और अङ्गरस का स्पर्श दाँतों में नहीं सहा जावे उसे वात और पित्त के कोप से उत्पन्न होने वाला दन्तहर्ष रोग जानना चाहिये ॥ ६ ॥

दन्तशर्करामाह—

मछो दन्तगतो यस्तु कफश्चनिलोकितः । अर्करेव खरस्पर्शा सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥७॥

दन्तशर्करा के लक्षण—जिस रोग में दाँतों का मैल, कफ और वायु से शोषित होकर शर्करा (बाल) की माँति खर स्पर्श हो जाता है उसे दन्तशर्करा रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

कपालिकामाह—

कपालेष्विव दीर्घरस्तु बन्तेषु समलेषु च । कपालिकेति विज्ञेया दन्तचिकृहन्तशर्करा ॥८॥

कपालिका के लक्षण—जिस दन्त रोग में दन्तशर्करा होने के पश्चात दाँत कपाल (ठीकरे) की माँति विदीर्घ हो जावे उसे कपालिका रोग कहते हैं । यह रोग दाँतों को नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

श्यावदन्तकमाह—

योऽस्तुक्षमित्रेण पित्तेन दृशो दन्तस्ववशेषतः । श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः स श्यावदन्तकः ॥

श्यावदन्तक के लक्षण—जिस दन्तरोग में रक्त पित्त कुपित होने से दाँत सम्पूर्ण दग्ध होकर श्याम अथवा लोलवर्ण के हो जाते हैं उसे श्यावदन्तक रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

करालमाह—

शनैः शनैः प्रकृषितो यत्र दन्ताश्रितोऽनिलः । करालनिवकटान्दन्तान्स करालो न सिध्यति ॥

कराल के लक्षण—जिस दन्तरोग में दाँतों के आश्रय में रहने वाला वायु धीरे २ कुपित होकर दाँतों को कराल (विषम) और विकट (कंचा, नीचा, टेढ़ा, मेढ़ा विकृत) कर देता है उसे कराल कहते हैं । यह असाध्य है ॥ १० ॥

हनुमोक्षमाह—

चातेन तैस्तं भैस्तु हनुसंधिविसंहितः । हनुमोक्ष हृति ज्ञेयो ज्याविरदितलक्षणः ॥ ११ ॥

हनुमोक्ष के लक्षण—जिस रोग में वात कुपित होकर हनु की सन्धि को ढोली कर देता है इसे हनुमोक्ष जानना चाहिये । यह रोग अदित रोग के लक्षणों वाला होता है । इसकी चिकित्सा अदित के समान करनी चाहिये ॥ ११ ॥

तन्त्रान्तरे—

भाराभिवातात्तजन्तोश्च हनुसंधिविसुच्यते । निरस्तजिह्वः कृष्णेण भाषितुं तत्र गच्छति ॥

सकृच्छ्रमनिलव्याधिं हनुमोक्षं विनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

तन्त्रान्तर से हनुमोक्ष के लक्षण—अत्यन्त भार आदि के ढोने से अथवा आवातादि से मनुष्य की हनुसंधि ढोली होकर हूट जाती है जिससे उसकी जिहा असर्मर्थ हो जाती है और वह कष्ट से बोलता है वह कष्टदायक वातव्याधि हनुमोक्ष कही जाती है ॥ १२ ॥

अथ जिह्वारोगः:

तत्र जिह्वारोगाणा निदानं नामानि संख्या चात्तह—

वातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाभसंज्ञः । उपजिह्विका च गदा जिह्वायां पञ्च कीर्तिः ॥

जिह्वा रोगों के नाम—वातज, पित्तज, कफज, अलास और उपजिह्विका ये पांच जिह्वा के रोग कहे गये हैं ॥ १ ॥

वातजमाह—जिह्वाऽनिलेन स्फुटिका प्रसुसा भवेद्वच शाकच्छुदनप्रकाशः ॥

वातज जिह्वा रोग—इस रोग में वायु के कोप से जिह्वा फटी, रसादि जान शून्य और शाक के पत्तों की तरह रुक्ष रहती है ॥

पित्तजमाह—पित्तासदाहैरनुचीयते च दीर्घैः सरकैरपि कण्ठकैश्च ॥ २ ॥

पित्तज जिहा रोग—इस रोग में पित्त के कोप से जिहा दाइ युक्त और वडे र रक्तवर्ण के कण्ठकों से युक्त रहती है ॥ २ ॥

कफजमाह—कफेन गुर्वा बहुलानिवता च मासाच्छ्रौयैः शास्मलिकण्ठकामैः ॥ ३ ॥

कफज जिहा रोग—इस रोग में कफ के कोप से जिहा युरु, स्थूल और सेमक के लौटों के समान मांसाहुरों से व्याप्त रहती है ॥ ३ ॥

अक्षासमाह—जिह्वात्तेथ च्यथ्युः प्रगाढः सोउलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ।

जिह्वा स तु अत्यन्धिति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ॥ ४ ॥

अक्षास जिहा रोग—इस जिहा रोग में जिहा के नीचे कफ और रक्त के कोप से कठिन शोथ उत्पन्न हो उसे अक्षास नामक जिहा रोग कहते हैं। इसमें जिहा स्तम्भित (कार्य में असमर्थ) हो जाती है और शोथ बढ़ जाने पर जिहा के मूल भाग में अत्यन्त पाक हो जाता है ॥ ४ ॥

उपजिह्वामाह—जिह्वाप्रस्फृष्टः च्यथ्युर्हिं जिह्वामुच्चय जातः कफरक्तयोनिः ।

प्रसेककण्ठपृष्ठपरिदाहयुक्तः प्रकाश्यते सा उपजिह्वारूपता ॥ ५ ॥

उपजिह्वा रोग—इस रोग में जिहा के नीचे जिहा के अध्रभाग के आकार का शोथ हो जाता है जिससे जिहा उठी हुई रहती है और उसमें लाकास्त्रा, कण्ठू और दाइ होता है। यह कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न होता है। इसको देख लोग उपजिह्वा रोग कहते हैं ॥ ५ ॥

अथ तालुरोगाः

तालुरोगाणां नामानि संख्यां चाऽस्ति—

गलशुण्डीतुषिङ्करेयध्रुवाः कण्ठपृष्ठ च । तालुर्बुद्ध्य कथितो मांससंघात एव च ॥ १ ॥

तालुपुष्टवामा च तालुशोषस्तथैव च । तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ २ ॥

तालु रोगों के नाम—गलशुण्डी, तुषिङ्करेय, अध्रुव, कण्ठपृष्ठ, तालुर्बुद्ध, मांससंघात, तालु पुष्ट, तालुशोष और तालुपाक ये नौ प्रकार के तालु रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र गलशुण्डीलक्षणमाह—

उलेष्मासूद्ध्यां तालुमूलाप्रवृद्धो दीर्घैः शोको व्यासवस्तिप्रकाशः ।

तुषिङ्कासम्भासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैथाः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ॥ ३ ॥

गलशुण्डी के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न तालु के मूल से उठकर बढ़ी हुई लंबी शोथ ओ वायु से पूर्ण चमड़े की कुपी के समान हो और उसमें रुणा, कास और श्वास हो उसे कण्ठशुण्डी अथवा गलशुण्डी रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

तुषिङ्करेयमाह—शोथः शुलुस्तोदाहप्रपाकी प्रागुक्तामयां तुषिङ्करेय मता तु ॥

तुषिङ्करेय के लक्षण—जिस रोग में पूर्व कथित कफ और रक्त के कोप से तुषिङ्करेय (वन कपास के फल) के समान तालु मूल से उत्पन्न शूल युक्त, सूई चुमाने के समान पीड़ा, दाइ और पाक करने वाला शोथ उत्पन्न होता है उसे तुषिङ्करेय कहते हैं ॥

अध्रुवलक्षणमाह—शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोरथो ज्येष्ठोध्रुवः सञ्चरसीत्रस्तच्च ॥ ४ ॥

अध्रुव के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में रक्त के कोप से स्तब्ध और क्लोहित वर्ण का शोथ हो जावे और उसमें ऊवर तथा तीव्र पीड़ा हो, उसे अध्रुव तालु रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

कण्ठप्रसादमाह—कूमोर्तसचोदनोऽशीघ्रजन्माः रोगो ज्ययः कण्ठपृष्ठः श्लेषणां च ॥

कण्ठप्रसाद के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में कफ के कोप से कण्ठप्रसाद के आकार का उठा पुणा पीड़ा रहित एवं चिरकाल में उत्पन्न होने वाला शोथ हो उसे कण्ठप्रसाद रोग कहते हैं ॥

तालुर्बुद्धमाह—पदाकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रकाद्वृद्धं प्रोक्तलिङ्गम् ॥ ५ ॥

तालुर्बुद्ध के लक्षण—जिस रोग में तालु के मध्य में कमल के आकार का रक्त कोप से शोथ हो उसे पूर्व कथित अर्बुद रोग के लक्षणों के समान लक्षणों वाला तालुर्बुद्ध रोग जानना चाहिये ॥

मांससंघातमाह—दुष्टं मांसं श्लेषणां नीहजं च तालुवन्तःस्थं मांससंघातमाहुः ॥

मांस संघात के लक्षण—जिस रोग में कफ के कोप से तालु के मध्य में दूषित मांस शोथ की भाँति हो जाता है और उसमें पीड़ा नहीं होती है उसे मांस संघात रोग कहते हैं ॥

तालुपुष्टमाह—नीहस्थायी कोलमात्रः कफास्थायमेदोयुक्तपुष्टस्तालुदेशे ॥ ६ ॥

तालु पुष्ट के लक्षण—जिस रोग में कफ और मैद के दोष से उत्पन्न गोल पीड़ा रहित, स्थिर, वैर के फल के प्रमाण का शोथ हो जाता है उसे तालु पुष्ट नामक रोग कहते हैं ॥ ६ ॥

तालुशोषमाह—शोषोऽत्यर्थं दीर्घ्यते चापि तालु श्वासो वातात्तालुशोषोऽत्यर्थमुक्तः ॥

तालु शोष के लक्षण—जिस रोग में तालु अत्यन्त सूखता रहता है और फट जाता है तथा उसमें श्वास भी बढ़ जाता है वह वायु कोप से उत्पन्न तालु शोष रोग कहा जाता है ॥

तालुपाकमाह—पित्तं कुर्यात्प्रापकमर्याद्यद्वोरं तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ ७ ॥

तालुपाक के लक्षण—जिस रोग में पित्त के कोप से तालु में अत्यन्त कठिन पाक उत्पन्न हो जाता है उसे तालुपाक रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ गलरोगाः

तत्र गलरोगाणां नामानि संख्यां चाऽस्ति—

रोहिणी पञ्चाश्रोक्ता कण्ठशालुक एव च । अविजिह्वश्च वलयोऽलासनामैकवृन्दकः ॥ १ ॥

ततो वृन्दं शतधनी च गिलायुः कण्ठविद्रिष्टिः । गलौष्मी च्वरण्नश्च मांसतानस्त्वयैव च ॥

विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ २ ॥

गलरोगों के नाम—वांच प्रकार की रोहिणी, कण्ठशालुक, अविजिह्व, वलय, अक्षास, एक वृन्दक, वृन्द, शतधनी, गिलायु, कण्ठविद्रिष्टि, गलौष्मी, च्वरण्न, मांसतान और विदारी नाम के कण्ठ देश में अठारह रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र पञ्चानामपि रोहिणीना सामान्यां संप्राप्तिमाह—

गलेनिलः पित्तकौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।

गलोपसंरोधकरैस्तथाद्वृन्दरेनिहन्त्यसून् व्याधिरयं तु रोहिणी ॥ ३ ॥

रोहिणी की सम्प्राप्ति—गले में वात, पित्त, कफ कुपित होकर मांस और रक्त को दूषित करके गले को रोकने वाले मांसाहुरों को उत्पन्न कर गले को रोक देते हैं जिससे प्राणों का नाश हो जाता है इस व्याधि को रोहिणी कहते हैं ॥ ३ ॥

तत्र वातजलक्षणमाह—

जिह्वा समन्तादभृशवेदनास्तु मांसाहुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः ।

सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातत्यकोपद्रवगाढजुष्टा ॥ ४ ॥

वातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर अत्यन्त पीड़ा युक्त कण्ठ को अवश्य करने वाले मांस के अहुर उत्पन्न हो जाते हैं और वात के कोप के सभी उपद्रव अतिवेग से उत्पन्न हो जाते हैं उसे वातज रोहिणी कहते हैं ॥ ४ ॥

पित्तजमाह—जिप्रोदूमा प्रिविदाहपाका तीव्रजवरा पित्तनिमित्तजाता ॥

पित्तज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर शीघ्र उत्पन्न होने वाले, शीघ्र

दाह करने वाले, शीघ्र पाक होने वाले और तीव्र ज्वर करने वाले मांसाद्धुर उत्पन्न हो जाते हैं तथा कण्ठ को अवरुद्ध कर देते हैं उसे विचार रोहिणी कहते हैं ॥

श्लेषमजामाह—ज्ञोतेनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुरुः स्थिरा सा कफलंभवा तु ॥ ५ ॥

कफज रोहिणी—जिस रोग में जिहा के निकट चारों ओर कण्ठ के स्तोतों को रोकने वाले, मन्दपाक वाले युक्त और स्थिर (अचल) मांसाद्धुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे कफजरोहिणी कहते हैं ॥ संनिपातजामाह—गद्भीरपाङ्किन्यनिवार्थवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रिभवा भवेत्सा ॥

संनिपातज रोहिणी—जिस रोग में जिहा के निकट चारों ओर मांस के अद्धुर कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले गम्भीर (अन्दर तक) पक्के वाले, चिकित्सा से शमन नहीं होने वाले और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त उत्पन्न हो जाते हैं उसे विदोषज रोहिणी कहते हैं ॥

रक्तजामाह—श्लोटेश्चिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरारिमका तु ॥ ६ ॥

रक्तजरोहिणी—जिस रोग में जिहा के चारों ओर कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले छोटे रफकोलों से युक्त और पित्तज रोहिणी के लक्षणों के समान लक्षण वाले मांसाद्धुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे रक्तज रोहिणी कहते हैं ॥ ६ ॥

सद्विद्विदोषजाहन्ति उद्धारकफसुमुद्रवा । पञ्चाहापित्तसमूता सप्ताहात्पवनोर्थिता ॥ ७ ॥

असाध्य रोहिणी की मर्यादा—पित्तोषज रोहिणी, रोगी को शीघ्र मार डालती है और कफज रोहिणी तीन दिन में पित्तज रोहिणी पांच दिन में तथा वातज रोहिणी सात दिन में रोगी को मार डालती है ॥ ७ ॥

कण्ठशालुकमाह—कोलार्थिमात्रः कफलंभवो यो ग्रन्थिर्गले कण्ठकशूलसूतः ।

खरः स्थिरः शाळनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालुकमिति ब्रुवन्ति ॥ ८ ॥

कण्ठशालुक के लक्षण—जिस रोग में गले में बेर की गुठली के प्रमाण की (शोथ) गांठ उत्पन्न हो जाती है और कण्ठक या बलशक कीट के समान गले का अवरोध कर रहती है वह गांठ कठिन, स्थिर और श्वर कर्म में (चीर फार करने में) साध्य होती है उसे कफज कण्ठ शालुक रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

मधिजिहमाह—जिहाग्रहणः श्वयथुः कफातु जिहोपरिष्टादसुजैव मिथात् ।

ज्ञेयोऽधिजिह्नः खलु रोग एष विकर्जयेवागतपाकमेनम् ॥ ९ ॥

अधिजिह्न के लक्षण—जिस रोग में जिहा पर जिहा के अग्रमाग के समान कफ के कोप से और रक्त के कोप से शोथ हो जाता है उसे अधिजिह्न जानना चाहिये । इस रोग में जब पाक हो जावे तब इसकी चिकित्सा त्याग देनी चाहिये (असाध्य हो जाता है) ॥ ९ ॥

बलयमाह—बलास पूर्वाऽथतमुलतं च शोर्थं करोत्यच्चर्ति निवार्य ।

तं सर्वथैवाप्रतिवार्थवीर्यं विवर्जनीयं बलयं बदन्ति ॥ १० ॥

बलय के लक्षण—जिस गल रोग में कफ कुपित होकर अन्त बहन करने वाली नाड़ी के मार्घ का अवरोध कर विस्तृत और उन्नत शोथ उत्पन्न कर देता है वह रोगी के सहने के सामर्थ्य से बाहर होता है उसकी चिकित्सा त्याग देनी चाहिये (असाध्य है) इस रोग को बलय कहते हैं ॥

अलासमाह—गले तु शोर्थं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपचम ।

मर्मच्छुदं हुस्तरमेनमाद्धुरलाससंज्ञं भिषजो विकारम् ॥ ११ ॥

अलास के लक्षण—जिस गल रोग में हुए कुपित कफ और वात श्वास और पीड़ा युक्त मर्मच्छुद कठिन (दुःसाध्य) शोथ को गले में उत्पन्न कर देते हैं उस रोग को अलास कहते हैं ॥ ११ ॥

एकवृद्धमाह—वृत्तोद्धन्तोऽन्तःश्वयथुः सदाहः सकण्ठुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुरुच ।

नाडेकबृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्वलासद्वतजप्रसूतः ॥ १२ ॥

एकवृद्ध के लक्षण—जिस रोग में कफ रक्त के कोप से गले के अन्दर गोलाकार डठा दुधा, दाह युक्त, कण्ठयुक्त, पाकरहित वा योद्धा पक्के वाला, कठिन, अथवा योद्धा मृदु और युक्त शोथ उत्पन्न होता है उसे एक बृद्ध नामक रोग कहते हैं ॥ १२ ॥

बृन्दमाह—समुच्चर्तं वृत्तसमन्वदाहं तीव्रज्वरं बृन्दमुदाहरन्ति ।

तज्जापि पित्तज्वरजप्रकोपाद्विद्यारसतोदं पवभास्मकं तु ॥ १३ ॥

बृन्द के लक्षण—जिस रोग में पित्त और रक्त के कोप से गले में अधिक उठा दुधा, गोक, तीव्रज्वर तथा तीव्र ज्वर करने वाला शोथ उत्पन्न हो जाता है उसे बृन्द नामक रोग कहते हैं । इसी रोग में यदि सूई चुम्बने के समान पीड़ा हो तो उसमें वात की प्रवानता रहती है ॥ १३ ॥

शतज्ञोमाह—वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चितादतिमात्रं पित्तितप्ररोहैः ।

अनेकशक्तप्राणहरा त्रिदोषज्ञेया शतज्ञोसद्धशी शतज्ञी ॥ १४ ॥

शतज्ञी के लक्षण—जिस गल रोग में त्रिदोष के कोप से गले में बत्ती के आकार की, घनी, कण्ठ को अवरुद्ध करने वाली, मासाद्धुरों से अत्यन्त विरो हुई, अनेक प्रकार के प्राणनाशक तोद, दाह, कण्ठ आदि तीनों दोषों की कठिन पीड़ा युक्त शतज्ञी (छोड़े के कांटों से विरी हुई महान् शिला को शतज्ञी कहते हैं) के समान (असाध्य) रोग जानना चाहिये ॥ १४ ॥

गिलायुमाह—ग्रन्थिर्गले त्वामलकाद्यित्यमात्रः स्थिरोऽल्पस्त्रक्ष्यात्करकमूर्तिः ।

संलग्नस्यते सकर्मिवाशनं च स शक्तसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ १५ ॥

गिलायु के लक्षण—जिस रोग में कर्क और रक्त के कोप से गले में आवले की गुठियों की गाँति स्थिर (अचल), अल्प पीड़ा करने वाली और भोजन किया पदार्थ गले में रक्त है ऐसा प्रतीत होता है उसे गिलायु नामक रोग कहते हैं । यह शक्त साध्य होता है ॥ १५ ॥

सर्वं गलं व्याध्य समुच्चितोऽयः शोकोऽजः सन्ति च यत्र सर्वाः ।

स सर्वदोषैर्गलविद्यित्यस्तु तस्यैव तुरयः खलु सर्वजस्य ॥ १६ ॥

गलविद्यिति के लक्षण—जिस रोग में विदोष के कोप से सम्पूर्ण गले में व्याध शोथ उत्पन्न हो जावे और उसमें सब दोषों (वात-पित्त-कफ) की मिलित पीड़यें (तोद दाह कण्ठ आदि) होवें उसे सब दोषों से होने वाली गलविद्यिति कहते हैं । इसे संनिपातज विद्यिति के समान जानना चाहिये किन्तु इसकी चिकित्सा मिन्न होती है । इसी कारण इसकी गणना संनिपातज विद्यिति से पृथक् की गयी है ॥ १६ ॥

गलौषमाह—शोथो महानन्दलावशोधी तीव्रज्वरो वायुगतेनिहन्ता ।

कफेन जातो रुधिरनिवेदन गले गलौषः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ १७ ॥

गलौष के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त कोप से गले नें महान् शोथ उत्पन्न हो जाने से अन्न जल का अवरोध हो जाता है अर्थात् शोथ से गले का छिद्र और उसमें तीव्र ज्वर तथा उस शोथ के कारण उदान वायु की गति भी रुक जाती है (बद्धार आदि का अवरोध हो जाता है) उस रोग को गलौष कहते हैं ॥ १७ ॥

स्वरधनमाह—यश्ताऽध्यमानः इवमिति प्रसक्तं भिन्नन्दवरः शुष्कविसूक्तकण्ठः ।

कफोपदिष्टवैष्वनिलायनेषु ज्येषः स रोगः श्वसनारस्वरधनः ॥ १८ ॥

स्वरधन के लक्षण—जिस रोग में बायु के अधिक कोप के कारण गले में महान् शोथ होता है, जिससे रोगी अन्धकार के समान देखता हुआ अथवा मृच्छित होता हुआ निरन्तर श्वास लेता है ।

और उसका स्वर मंग हो जाता है, गला शुष्क रहता है एवं अपने कार्य में स्वाधीन नहीं रहता (अन्नादि को निगलने असमर्थ रहता है) तथा बायु के स्रोतों में कफ भर कर उसे अवश्य कर देता है जिससे आस आदि कष से आते हैं इस रोग को स्वरब्ध कहते हैं ॥ १८ ॥

मांसतानमाह—प्रतानवान्यः अथयुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ।

स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणग्रन्थसर्वकृतो विकारः ॥ १९ ॥

मांसतान के लक्षण — जिस रोग में विदेश के कोप से सम्पूर्ण गले में पसरी दुर्द महाकदायक शोथ उत्पन्न होकर कम से गले का अवरोध कर लटकती रहती है उसे मांसतान रोग कहते हैं वह प्राण का नाशक है ॥ १९ ॥

विदारीलक्षणमाह—सदाहृतोदंश्ययुं प्रसक्तमन्तर्गले शूतिविशीर्णमांसम् ।

पित्तेन विचाहृदने विदारीं पार्थेव विशेषारप्तु येन शेते ॥ २० ॥

विदारी के लक्षण — जिस रोग में पित्त के कोप से गले के भीतर जिस पार्श्व में मनुष्य विशेष सोता है उस पार्श्व में शोथ उत्पन्न हो जाती है और उसमें दाह सूखे चुमाने के समान पीड़ा और गले का मांस दुर्घन्ति एवं विशीर्ण (फटा हुआ या सड़ा हुआ) हो जाता है उसे विदारी रोग कहते हैं वह कभी २ दूसरे पार्श्व में भी हो जाता है ॥ २० ॥

अथ समस्तमुखरोगः

तत्र तेषां निदानं संख्या चाइऽह—

पृथग्दोषैस्थयो रोगाः समस्तमुखजाः स्मृताः ॥ १ ॥

समस्त मुख रोगों के निदान — बातादि दोषों से होने वाले समस्त मुखरोग तीन प्रकार के (वातिक पैत्तिक और कफज) कहे जाते हैं ॥ १ ॥

तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

स्फोटैः सतोदैवंदनं समन्ताद्यस्याऽचितं सर्वसरः स वातात् ॥

वातिक सर्वसर — जिसमें ओष्ठादि सातो स्थानों के सहित सम्पूर्ण मुख सूखे चुमाने के समान पीड़ा युक्त कफोलों से भर जावे उसे बातज सर्वसर रोग कहते हैं ॥

पैत्तिकमाह—रक्तैः सदाहैः पिङ्केः सपीतैर्यस्याचितं वाऽपि स पित्तकोपात् ॥ १ ॥

पैत्तिक सर्वसर — जिस रोग में मुख रक्तवर्ण दाह युक्त पिङ्किकाओं से अथवा पीतवर्ण दाह युक्त पिङ्किकाओं से भर जावे उसे पित्तज सर्वसर रोग कहते हैं ॥ १ ॥

इैषिमिकमाह—ओष्ठेनैः कण्डुयुतैः सवर्णर्यस्याचितं वाऽपि स वै कफेन ॥

कफज सर्वसर — जिस रोग में मुख पीड़ा रहित अथवा अश्व पीड़ाकारक, कण्डुयुक्त और मुख की त्वचा के वर्ण की पिङ्किकाओं से व्याप्त हो उसे कफज सर्वसर कहते हैं ॥

कैथिन्मुखपाकरोग एक एव प्रदिष्टः—

इक्केन पित्तोद्दित एक एव कैश्चित्प्रदिष्टो मुखपाकरोगः ॥ २ ॥

कई आचार्यों ने मुखपाक रोग को एक ही माना है और कई आचार्यों ने रक्त के कोप से भी उत्पन्न मुखपाक रोग माना है । इसके लक्षण पित्तज मुखपाक के समान ही होते हैं । मुख के ओष्ठादि सातो स्थानों में होने के कारण इस रोग को सर्वसर कहते हैं ॥ २ ॥

मुखरोगेष्वसाध्यानाह—

ओष्ठप्रकोपे वज्याः स्युमांसरक्तश्चिदेषाः । दन्तवैष्टेषु वज्यां तु श्रिलङ्घगतिसौविरौ ॥ ३ ॥

मुखरोग की असाध्यता — ओष्ठ रोगों में मांसज, रक्त और त्रिदोषज ओष्ठरोग असाध्य है । इन्तवैष्ट (दन्तमुक) के रोगों में त्रिदोषज नाड़ी और महासौविर रोग असाध्य है ॥ ३ ॥

दन्तेषु च न सिद्धयन्ति रथावदालनभञ्जनाः । जिह्वारोगे बलासस्तु तालुज्जेवर्वर्द्धं तथा ॥२॥

दन्तरोगों में रथावदालन, दालन और भञ्जन संजक रोग असाध्य हैं ॥ २ ॥

श्वरझो वलयो वृन्दो बलासः सविदारिकः । गलौघो मांसतानश्च शतधनीरोहिणी गले ॥३॥

गलरोगों में श्वरझ, वलय, वृन्द, बलास, विदारी गलौघ, मांसतान, शतधनी और रोहिणी संजक रोग असाध्य हैं ॥ ३ ॥

असाध्याः कीर्तिता द्वेते रोगादश नवोत्तराः । तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रथावद्याय समाचरेत् ॥

उस प्रकार मुख रोगों में १९ रोग असाध्य हैं । इनमें यापनार्थ यदि वैद्य को चिकित्सा करनी भी हो तो असाध्य कह कर चिकित्सा करे ॥ ४ ॥

अथ मुखरोगाणां चिकित्सा

तंत्रौष्ठरोगेषु—

गलदन्तमूलदशनच्छुदेषु रोगाः कफाद्यभूयिष्ठाः । तस्मादेतेष्वसङ्कुधिरं विद्यावयेददुष्टम् ॥

नलादि रोग चिकित्सा — गला, दन्तमूल और ओष्ठ में प्रायः कफ और रक्त के कोप से रोग उत्पन्न होते हैं । इस लिये इनमें से बार २ दूषित रक्त का स्राव कराना चाहिये ॥ १ ॥

बातजे—स्नेहांस्तथोष्णान्परिषेकलेपान्धृतस्य पानं रसभोजनं च ।

अभ्यञ्जनस्वेदनलेपनं तदोषे विद्यात्पवनाभिमृते ॥ १ ॥

बातज ओष्ठरोग चिकित्सा — बातज ओष्ठरोग में स्नेह, तथा डण परिषेक और लेप आदि तथा पान मांसादि रसों का भोजन, अभ्यञ्ज (मदन) स्वेदन और लेपन करना चाहिये ॥ २ ॥

तैलं धृतं सर्जरसं समिक्षणं रासनागुडं सैन्धवगैरिकं च ।

पक्षवा समांसं दशनच्छुदानां त्वरमेदहन्तु व्याप्तरोपणं च ॥ २ ॥

तैलादि योग — तैल का तैल, गाय का धृत, राज, मोम, रासना, गुड, सेंधानमक और गेल प्रत्येक समभाग मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर ओठों पर क्लाने से यह ओठ की फटी दुर्द त्वचा को नष्ट करता है और त्रण का रोपण करता है इस तैलादि योग की विधि में राज आदि का कल्प कर विधिपूर्वक धृत अथवा तैल सिञ्च कर लगाना अति उत्तम योग है ॥ २ ॥

रालं मधूच्छुद्धुरुदेन पक्वं तैलं धृतं वा विनिहन्ति लेपत ।

स्वत्कोदपारुद्यरुजोऽवरस्य पूयास्तसंज्ञावमपि प्रसद्य ॥ ३ ॥

रालादि तैल वा धृत — राल, मोम, गुड तीनों समान मांस का कल्प बनाकर कल्प के चौगुना तिल तैल अथवा धृत और इसके चौगुना जल मिलाकर पाक करके लेप लेने से त्वचा में सूखे चुमाने के समान होने वाली पीड़ा, कठोरता और ओठ की पीड़ायें नष्ट होती हैं तथा पूय और रक्त का स्राव होना भी कद होता है ॥ ३ ॥

पित्तजे—वैधं शिराणां दमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च ।

शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ ३ ॥

पित्तज ओष्ठ रोग चिकित्सा — पित्तज ओष्ठ रोग में शिरा मोक्षण कराना, वमन और विरेचन कराकर तिक्त रस वाली ओषधियों से सिञ्च पेय (काथ वृत्तादि) मांस रसादि, शीतल लेप और परिषेक करना चाहिये । इससे पित्तज ओष्ठ रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

कफजे—

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च । हते रक्ते प्रयोक्तव्य ओष्ठकोपे कफात्मके ॥ १ ॥

कफज ओष्ठ रोग चिकित्सा — कफज ओष्ठ रोग में रक्तमोक्षण, शिरोविरेचन (नस्य कर्म),

धूमपान स्वेद कर्म और कवल धारण कराना चाहिये । इससे कफज ओष्ठ रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥
मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते कवलो हितः । प्रियंगु त्रिफला लोध्र सच्चौद्र प्रतिसारणम् ॥

मेदोज ओष्ठ रोग चिकित्सा—मेदोज ओष्ठ रोग में स्वेदन, भेदन, करके शोधन कर्म करे और पश्चात् कवल धारण करे और फिर प्रियंगु, बॉवला, हरड़, बडेड़ा, लोध्र प्रत्येक समभाग का चूर्ण कर मधु मिलाकर शनैः २ प्रतिसारण (मर्दन) करना चाहिये ॥ २ ॥

प्रतिसारणस्य चिकित्सा—

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णकल्पावलेहकैः । शनैर्घर्षणमंगुल्या तदुक्तं प्रतिसारणम् ॥ ३ ॥

प्रतिसारण की विधि—दाँत, जिह्वा और और मुख इन स्थानों में चूर्ण, कल्प अथवा अवलेह (यथा कथित) को शनैः २ अंगुलियों से घर्षण करने को प्रतिसारण कहते हैं ॥ ३ ॥

ओष्ठरोगेवदशेषेषु इष्टवा दोषमुपाचरेत् । तेषु व्याघ्रवं यातेषु व्याघ्रवस्मुपाचरेत् ॥ २ ॥

अवशिष्ट ओष्ठ रोगों की चिकित्सा—शेष ओष्ठ रोगों में दोषादिकों को देखकर यथोचित चिकित्सा करनी चाहिये । ओष्ठ में जब ब्रण हो जावे तब ब्रण के समान उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

दन्तमूरुरोगाणां चिकित्सा—

दन्तमूलसमुद्धेषु दन्तोरथेषु गदेषु च । रक्तमोत्तं प्रशंसन्त जलौकालानुशङ्ककैः ॥ १ ॥

दन्तमूल चिकित्सा—दन्तमूल (मसूड़े) में होने वाले तथा दाँतों में होने वाले रोगों में जौँक, तुम्बी अथवा सिंगी आदि के द्वारा रक्तमोक्षण कराना लाभदायक है ॥ १ ॥

शीतादस्य चिकित्सा—

शीतादेऽखस्ति कुर्यात्तथा गण्डूषधारणम् । शुण्ठीर्षट्कवायैः कवोष्णैश्च मुहुसुर्दुः ॥ १ ॥

शीताद चिकित्सा—शीताद दन्त रोग में रक्त निकलवा कर सौंठ और पित्तपापड़ा के उष्ण कथासे बाहर २ गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्वपान् । निष्काथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥ १ ॥

भावप्रकाश के मत से शीताद रोग में रक्तमोक्षण कराकर सौंठ, सरसो, हरड़, बडेड़ा और अंवला के काथ का गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

कासीसलोधकृष्णामनःशिलासप्रियंगुतेजोह्नाः । एषां चूर्णं मधुयुक्तशीतादे पूतिमांसहरम् ॥

कासीस, लोध, पीपल, गुद्ध मैनसिल, प्रियंगु और तेज बल प्रत्येक समभाग के चूर्ण को मधु मिलाकर मसूड़ों पर लगाने से दुर्गन्धित (सड़े हुए) मसूड़े के मास को नष्ट करता है ॥ १ ॥

तैलं धृतं वा बातव्वनं शीतादे संप्रशस्यते ॥ २ ॥

शीताद रोग में बात नाशक तेल अथवा धृत का व्यवहार लाभदायक होता है ॥ २ ॥

दन्तपुष्पुटकस्य चिकित्सा—

दन्तपुष्पुटके कार्यं तश्चे रक्तमोत्तमम् । सपञ्चलवणज्ञारः सच्चौद्रैः प्रतिसारणम् ॥ १ ॥

दन्तपुष्पुट चिकित्सा—नवीन, दन्त पुष्पुट रोग में रक्तमोक्षण कराकर पांचों लवण और यवक्षार आदि क्षारों को मधु में मिलाकर अंगुलियों से मसूडों पर शनैः २ मर्दन करना चाहिये ॥ १ ॥

दन्तवेष्टे विधिः कार्यो रक्तपित्तनिबहर्णः । शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्तिर्गं च भोजनम् ॥

दन्तवेष्ट चिकित्सा—दन्तवेष्ट रोग में रक्त पित्त नाशक विधि करनी चाहिये । शिरोविरेचन, नस्य कर्म और स्तिर्गं भोजन करना चाहिये ॥ १ ॥

विस्त्रिते दन्तवेष्टे ब्रणं तु प्रतिसारयेत् । लोध्रपत्तङ्गमधुकलाचाचूर्णं मधुप्लुतैः ॥ २ ॥

दन्तवेष्ट रोग में रक्तमोक्षण कराकर लोध्र, पतझ काठ, मुलाढी और लाख प्रत्येक समान भाग का चूर्ण मधु मिलाकर ब्रण पर अंगुलियों से शनैः २ मर्दन करना चाहिये ॥ २ ॥

गण्डूषे चीरिणो योज्याः सच्चौद्रधृतशर्कराः । चलहन्तस्थैर्यकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ॥ ३ ॥

गण्डूष धारण करने के लिये क्षीरी (पञ्चलक्ळ) वृक्षों के काथ में मधु, धृत एवं शर्करा का प्रक्षेप देकर प्रयोग करना चाहिये और (मौलसरी) की छाल अथवा फल का चर्वण करना चाहिये । इससे हिलते हुए दाँत बैठ जाते हैं ॥ ३ ॥

मदमुस्तादिवटिका—

मदमुस्ताभयाद्योषविदङ्गारिष्टपञ्चैः । गोमूत्रपिष्ठैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकरपयेत् ॥ १ ॥

तां निधाय मुखे स्वाध्याज्जलदन्तातुरो नरः । नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ २ ॥

मदमुस्तादि वटिका—मदमोथा, हरड़, सौंठ, मरिच, पीपल, वायविंग और नीम के पत्र प्रत्येक समभाग गोमूत्र के साथ पीस कर विधिपूर्वक वटी बनाकर लाया में सुखा कर रख लेवे । इस वटी को जिसके दाँत हिलते हो वह मुख में रख कर सो जावे तो इससे दाँत बैठ जाते हैं । चल दन्त की यह सर्वोत्तम व्योधविधि है ॥ २-२ ॥

सहावरादितैलम्—तुल्या धृतां नीलसहा वरस्य दोणेऽम्भसः संश्रपयेच्यावत् ।

ततश्शतुभीगरले तु तैलं पचेच्छैव र्धपलग्रमाणैः ॥ १ ॥

कक्षकैरनन्तालिदिरारिमेदजउवाग्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।

तत्त्वलमाशवेव धृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विद्धार्ति सद्यः ॥ २ ॥

सहचरादि तैल—नीली कटसरैया १५ तुला (१०० पल) लेकर एक द्रोण (चार आड़) जल में डालकर विधिपूर्वक कथाथ करे जब चतुर्थशश शेष रह जावे तब उतार कर छान लेवे और उसमें चतुर्थीश (एक प्रस्थ) तिल का तैल तथा अनन्तमूल, खीर, विट्खदिर, जामुन की छाल, जेठीमधु और नील कमल प्रत्येक आधा २ पल लेकर विधिपूर्वक कल्प बनाकर सबको एकत्र कर तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर उस तेल को मुख में धारण करने से दाँतों को शोष्र ही स्थिर करता है ॥ १-२ ॥

जीरकादं चूर्णम्—

जग्नलजग्नपथ्याशाक्षमलीकण्ठकालामनुदिनमनुवृष्टं दन्तमूलेषु चूर्णम् ।

जग्नदण्णरुहग्रस्त्रव्याज्जलयशोथानपनयति विवस्वानन्धकारानिवास्यु ॥ १ ॥

जीरकादि चूर्ण—जीरा, सेवानमक, हरड़, तथा सेमर के कटि प्रत्येक समभाग का विधिपूर्वक चूर्णकर प्रतिदिन दन्तमूल में विसने से मसूडों के ब्रण, मसूडों का फटना, पीड़ा, रक्तसाव, दाँतों का हिलना और शोथ शोष्र ही इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार अन्धकार को सूर्य नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

कणाद्य चूर्णम्—

कणासिन्धूरुथजग्नचूर्णं तूर्णं व्यपोहति । वर्षणादन्तचाज्जलयब्यथाशोथस्तंचवान् ॥ १ ॥

करादि चूर्ण—पीपल, सेवानमक और जीरा प्रत्येक समभाग चूर्ण कर दाँतों तथा मसूडों पर विसने से शोष्र ही दाँतों का हिलना, पीड़ा, शोथ तथा रक्तसाव बन्द हो जाते हैं ॥ १ ॥

दशमूलादितैलघृते—

दशमूलीकषये तैलं वा धृतमेव वा । विषकं केवलं शस्तं सच्चौद्रं दन्तचालने ॥ १ ॥

दशमूलादि तैल वा धृत—दशमूल की ओषधियों को पुथक् २ लेकर विधिपूर्वक उनका काथकर उसमें चतुर्थशश तिल का तैल अथवा धृत मिलाकर सिद्ध कर उसमें मधु मिलाकर लगाने से दाँतों का हिलना बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

सौषिर स्य चिकित्सा—

सौषिरे हृतरके तु लोभमुस्तारसाज्जनैः । सच्छैदैः शश्यते लेपो गण्डुचे चीरिणो हिताः ॥१॥
सौषिर-चिकित्सा—सौषिर रोग में रक्तमोक्षण कराकर लोध, नागरमोथा और रसवत के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर लेप करने से और क्षीरी वृक्षों के काथ विधिपूर्वक बनाकर गण्डुच धारण करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

परिदरोपकुशयोश्चिकित्सा—

कियां परिदरे कुर्याच्छीतादोकां विचलणः । संशोध्योभयतः कायं शिरश्चोपकुशे तथा ॥२॥

परिदर और उपकुश की चिकित्सा—परिदर और उपकुश रोग में शीताद में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये और वमन-विरेचन आदि से शरीर का शोधन और नस्यादि से शिर शोधन प्रथम ही कर लेना चाहिये ॥ २ ॥

काकोदुम्बविकापत्र्यर्वणं विचावयेऽनिष्टक् । लवणः शौक्रयुक्तैश्च सध्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

कट्टमर के पत्रों से ब्रण को विष कर रक्त का स्राव कराकर पश्चात् सेवानमक, सोठ, मरिच और पीपल समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर उस पर अड्डुलियों से शनैः २ मर्दन करे, इससे परिदर और उपकुश रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

वैदभैस्त्विवर्धनविमासकदन्तविद्विधरोगाणं चिकित्सामाह—

शस्त्रेणोक्त्य वैदर्भं दन्तमूलानि शोधयेत् । ततः त्वारं प्रयुज्येति किथाः । सर्वाक्षं शीतलाः ॥

वैदमीदि रोग चिकित्सा—वैदर्भ रोग को शाख से उखाड़ कर मसूदों को शुद्ध करना चाहिये । पश्चात् त्वार का उस पर प्रयोग करना चाहिये तथा सर्पणं शीतल क्रियाओं को करना चाहिये ॥ ३ ॥

उद्धर्याचिकदन्तं तु ततोऽधिनमवचारयेत् । कुमिदन्तकवचात्र विधिः कार्यो विजानता ॥३॥

अविकदन्त (खलिवर्धन) रोग में अधिक दाँत को उखाड़ देना चाहिये और दन्तमूल को अग्नि से दाग कर क्रिमिदन्त रोग में कही हुई चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

छित्वाऽधिमांसं सच्छैद्रैतैश्चृणैरुपा वरेत् । वचातेजोवतीपाठाश्चर्जिकायावशुकजैः ॥ ३ ॥

चौद्दितीयपिष्पलयः कवचे चात्र कीर्तिताः । पटोलनिष्प्रिकलाकषायश्चात्र भावनः ॥ ४ ॥

अविमास रोग में अधिमांस को काट कर उस पर बच, तेज वल, पुराइनपाढ़ी, सज्जीखार और यवाखार के समान मिलित चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर लगाना चाहिये तथा पीपल के काथ में मधु मिलाकर कवल धारण और पटोलपत्र, निष्पत्र, इरड़, वैड़ा, तथा आंवज्जा का विधिपूर्वक काथ कर उससे अधिमांस को धोना चाहिये ॥ ३-४ ॥

विद्धयुक्तं च विधिवद्विद्ध्यादन्तविद्धौ । शश्यर्क्म नररत्नश्च कुशलेनैव कारयेत् ॥ ५ ॥

दन्तविद्विधि रोग में कही हुई चिकित्सा और कुशल वैद्य से शश्यर्क्म करना चाहिये ॥ ५ ॥

नाडीवाणहर्वं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् । यहन्तमये जायेत् नाडीदन्तं तसुखरेत् ॥ ६ ॥

दन्तनाडी चिकित्सा—नाडीवाण नाशक चिकित्सा दन्तनाडी रोग में करनी चाहिये और जिस दाँत में नाडी उत्पन्न हो जावे उसे उखाड़ देना चाहिये ॥ ६ ॥

छित्वा मांसानि शश्येण यदि नोपरमो भवेत् । उद्धर्य च दहेचापि चारेण उवलनेन वा ॥७॥

शश्य से मांस को छील देने पर भी यदि शान्ति नहीं होते तो दाँत को उखाड़ कर क्षार से अथवा अग्नि से उस ब्रण स्थान को जला देना चाहिये ॥ ७ ॥

मिनत्युपेचिते दन्ते हनुं सास्थिगतिर्द्वृक्षम् । उद्धर्यते तृते दन्ते शोणितं प्रस्त्रवेदिति ॥ ८ ॥

दाँत की उपेक्षा करने से वह दाँत अस्थि की गति के साथ २ हज़ार को भी मेद देता है ऊपर के दाँत को उखाड़ने से अत्यन्त रक्त का स्राव होता है ॥ ८ ॥

इक्षाति सेकापूर्वोंका घोरा रोगा भवन्ति हि । काणः संजायते जन्तुरदितं तस्य जायते ॥९॥
षालमध्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेऽनिष्टक् । समूलं दशनं दस्मादुद्धरेऽनमस्थि च ॥ १० ॥

रक्त के अधिक स्राव होने से (अनेक प्रकार के) भयङ्कर रोग होते हैं । इससे मनुष्य काना हो जाता है तथा उसे अदिति रोग हो जाता है इसलिये कपर के दाँत यदि दिलते भी हो तो वैद्य उड़ते नहीं उखाड़े । दाँत को मूलसहित और टूटी हुई हड्डी सहित उखाड़ना चाहिये ॥ १-१० ॥

जात्यादितेलम्—

कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः । मजिष्ठालोभ्रुखदिरयष्ट्वाहैश्चापि यस्तत्वं ॥

तैलं यसाधितं तत्र हन्याददन्तगतां गतिम् ॥ १ ॥

जात्यादि तैल—चमेली के पत्र, मैनफल, छोटी कटोरी और विकंकत को समग्रा लेकर विधिपूर्वक काथ कर जितना प्रस्तुत कवाय द्वे उसके चतुर्थांश तिलका तेल और तैल के चतुर्थांश मजीठ लोध, खेर तथा जेठोमधु का समान मिलित कल्क मिलाकर तेल पाक को विधि से तैल सिद्ध कर सेवन करने से दाँत की नाडी नष्ट होती है ॥ १ ॥

दन्तरोगाणा चिकित्सा—

दन्तरोगेषु सर्वेषु शस्तो वातहरो विधिः । पक्वं तैलं कवोणं शस्तं कवलधारणे ॥ १ ॥

दन्तरोग-चिकित्सा—सम्पूर्ण दन्तरोगों में वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् वात-नाशक औषधियों द्वारा वातनाशक सिद्धतैल को कुछ उष्णकर कवल धारण करना चाहिये इससे दन्तरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

जयेद्विज्ञावणैः स्विन्नमचलं कुमिदन्तकम् । तथाऽवर्णीदैर्वतिष्ठनैः स्नेहगण्डवधारणैः ॥ २ ॥

क्रिमिदन्त-चिकित्सा—अचल कुमिदन्तभ्यं स्वेद देकर विद्वावण करना चाहिये और वात-नाशक अवपीड़न नस्य देकर एवं वातनाशक स्नेहों का गण्डवध धारण करा कर क्रिमिदन्त को नष्ट करना चाहिये ॥ २ ॥

भद्रदार्वादिवर्षभूमिलैपैः रिनग्रस्त्रै भोजनैः । कुमिदन्तापहं कोणं हिङ्गु दन्ताप्वरे स्थितम् ॥

भद्रदार्वादि गण की औषधियों तथा पुनर्नवा को पीस कर लेप करने से, स्त्रिय पदार्थों के भोजन करने से स्त्रिय पथ्य सेवन करने से और कोण (कुछ गरम २) हींग की दाँतों में रखने से क्रिमिदन्त रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

बृहतीभूमिकदव्यीप्ताङ्गुलकण्टकारिकाथः । गण्डवधस्तैलयुक्तः कुमिदन्तकवेदनाशमकः ॥४॥

बड़ी कटोरी, गोरखमुण्डी, एरण्डमूल और छोटी कटोरी को समग्रा लेकर विधिपूर्वक काथ कर इसमें तेल का प्रश्नेप देकर गण्डवध धारण करने से क्रिमिदन्त की पीढ़ी नष्ट होती है ॥ ४ ॥

नीलीवायसजङ्घातकदुत्स्वीमूलमेककम् । संचूर्ण्य दशनविष्टं दशनक्रिमिपातनं प्राहुः ॥५॥

नीली की जड़, काजङ्घा और कड़वी तरोई की जड़, इनमें से किसी एक को लेकर चूर्ण कर दाँतों में रखने से दाँत के कीड़े गिर जाते हैं ॥ ५ ॥

पिण्डवा च सारिवापणं हठं दन्तेषु धारयेत् । पतनित दन्तकीटाश्च चञ्चलयं हरति चणात् ॥६॥

सारिवा के पत्तों को पीस कर इटता के साथ दाँतों में धारण करने से दाँत के कीड़े गिर जाते हैं और दाँतों का हिलना भी शीघ्र ही बन्द हो जाता है ॥ ६ ॥

कासीसं हिङ्गु सौराष्ट्री देवदारु समं जलैः । गुणिकां धारयेदन्तकुमिशूलहरां पराम् ॥ ७ ॥

कासीस, हींग, किटकी और देवदारु इनको समग्रा लेकर जलके साथ बटी बनाकर दाँतों में धारण करने से दन्त कुमि और दन्तशूल नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

दन्तदर्भचिकित्सा—

स्नेहानां कवलाः कोणाः सर्पिष्विवृतस्य च । नियूहाश्चनिलव्वानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥८॥

दन्तहर्ष चिकित्सा—दन्तहर्ष रोग में स्नेह पदार्थों को कुछ २ उण्ठ करके उनका कवच धारण तथा निशोय के कल्प के साथ सिद्ध किया हुआ घृत का व्यवहार करना चाहिये और बात नाशक द्रव्यों के बने हुए काथ का सेवन करना चाहिये। इससे दन्तहर्ष रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥
स्नैहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च । रसा रसयावश्च दीरं संतानिकावृतम् ॥

शिरोबस्तिहियश्चिक्रमो थश्चानिष्ठापयहः ॥ २ ॥

दन्तहर्ष रोग में स्नेह घृतादि युक्त धूम और तैलादि का नस्य तथा रस युक्त मोजय पदार्थ, मांसरस और रस युक्त वयागु, दूध मलाई और घृत देना चाहिये तथा शिरोबस्ति और बातनाशक सभी उपाय करना चाहिये ॥ २ ॥

आच्छिद्य दन्तमूलानि शर्करामुद्भरेद्धिष्ठक् । लाक्षाचूर्णं युतैस्ततश्चं प्रतिसारयेत् ॥ ३ ॥

दन्तशर्करा चिकित्सा—दन्त शर्करा रोग में मूँहों को बिना छेदन किये ही दांत की शर्करा को उखाड़ देवे और पश्चात लाख के चूर्ण में मिलाकर दांतों पर शनैः शनैः अङ्गुलियों के द्वारा मर्दन करे ॥ ३ ॥

दन्तहर्षक्रिया चात्र कुर्यान्निनश्वशेषः ।

दन्तशर्करा रोग में दन्तहर्ष रोग की सम्पूर्ण चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

कपालिका कृच्छ्रतमा तथायेषा क्रिया हिता ॥ ४ ॥

कपालिका-चिकित्सा—कपालिका रोग कष्टसाध्य है उसमें भी दन्तशर्करा रोग की चिकित्सा जामदायक होती है ॥ ४ ॥

सामान्यचिकित्सा—

अरिमेहस्वर्चं त्रुणां पचेच्छ्रुतपलोनिमताम् । जलद्वोपेन तरकाथं गृह्णीयात्पाददेष्टितम् ॥ १ ॥
तैलस्यार्थादिं दत्त्वा । कल्पके: कर्षमितैः पचेत् । अरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागुणपद्मके: ॥ २ ॥

गुणिष्ठालोध्रमधुकर्लाञ्चान्यग्रोधमुक्तकैः । द्वयजातीफलकर्पूर रक्षोलखदिरैस्तथा ॥ ३ ॥
पतङ्गधातकीपुष्पसुचमेलानागकेशरैः । कट्टफलेन च सिद्धिं तैलं मुखरूजं नवेत् ॥ ४ ॥
प्रदुष्टमासं चलितं शीर्णदन्तं च सौषिरम् । शीतादं दन्तहर्षं च विद्रव्धि कृमिदन्तकम् ॥

दन्तस्फुटनदौर्गन्ध्यं जिह्वात्वोष्टज्ञा रुजम् ॥ ५ ॥

अरिमेदादि तैल—विद्युदिर की हरी छाल का जौ कुट चूर्ण सौ पल लेकर एक द्रोण (चार आड़क) बल में मिलाकर काथ करे चतुर्थीश शेष रहने पर उतार-छान कर उसमें आधा आड़क (२ प्रस्थ) तिल का तैल और विट्ठिदिर, लवंग, गेरु, अगर, पदुमकाठ, मजीठ, लोध, मुलहठी, लाख, वटवृक्ष की छाल, नागरमोथा, दालचीनी, जायफर, कपूर, कङ्गोल, मरिच, खेर, पतझ काथ, धाय के पुष्प, छोटी इलायची, नागेसर और जायफर प्रयेक एक २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक कल्प कर सबको एकत्र मिलाकर तैल की पाक की विधि से तैल सिद्ध कर व्यवहार में छाने से मुख की पीड़ा नष्ट होती है, मसूदे के दूषित मास, दिल्ले इये दांत सड़े हुए दात, सौषिर, शीताद, दन्तहर्ष, दन्तविद्रवि, कृमिदन्त, दन्तस्फुटन, दौर्गन्ध्य, जिह्वा की पीड़ा, तालु की पीड़ा और ओड़ की पीड़ा इन सबको यह तैल नष्ट करता है ॥ ५-५ ॥

लाक्षादितैलम्—

तलं लाक्षारसं दीरं पृथक्प्रस्थमितं पचेत् । द्रव्यैः पलमितैरेतैः काथैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ १ ॥
लोध्रकट्टफलमज्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः । चन्दनोरपलयश्चाहैस्तचैलं वदने वृत्तम् ॥ २ ॥
वालनं दन्तचालं च दन्तमोहकपालिकाम् । शीतादं पृतिवृत्तं च विसर्वि विरसास्थताम् ॥
हन्यादाशु गदानेतान्कुर्यादन्तानपि स्थिरान् । लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥

लाक्षादि तैल—तैल का तैल, लाख का स्वरस, गोदुग्ध प्रत्येक एक २ प्रस्थ और लोध, कायफर, मजीठ, कमल केसर, पदुमकाठ, रक्षचन्दन, नील कमल और जटी मधु प्रत्येक एक २ पल (४-४ कर्ष) लेकर विधिपूर्वक कल्प कर लेवे तथा इन्हीं लोध आदि द्रव्यों का विधिपूर्वक बना प्रस्तुत काथ ४ प्रस्थ लेवे (लोध आदि समान मिलित सौ पल और बल एक द्रोण मिलाकर व्यवहार करे चतुर्थीश अर्थात् एक आड़क वा ४ प्रस्थ रहने पर उतार कर छान लेवे), इन सब (तैल, लाख के सर, दूध, कल्प और काथ आदि) को एकत्र कर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मुख में धारण करने से दालन, दन्तचाल, दन्तमोक्ष, कपालिका, शीताद, पृतिवृत्त, असचि और मुख की बीरसता आदि शीत्र नष्ट होते हैं और दांतों को भी स्थिर करता है। यह लाक्षादि नामक तैल दांत के रोगों के लिये अति उत्तम माना गया है ॥ १-४ ॥

कुषादिचूर्णम्—कुष्ठं द्वार्वी लोध्रमबदं समझा पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च ।

चूर्णं शास्तं घर्षणे तद्द्विजानां रक्षजावं हन्ति कण्ठूर्जं च ॥ १ ॥

कुषादि चूर्ण—कूण, दालहलदी, लोध, नागरमोथा, मजीठ, पुरइनपाली, कुटीकी, वच अथवा माल कागनी, हलदी, प्रत्येक समान भाग का चूर्ण बनाकर दांतों पर विसने से रक्ष शाव, कण्ठ और पीड़ा आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

सौराष्ट्रादिप्रिक्षलामद्विट्टिकुमिद्विट्टुत्थप्रथाङ्कं

कासीसं खदिरस्थ सारममलं मायाकर्लं चात्तयसम् ।

ज्ञीमूतं च समाजकं हि सकलं संकुट्य वस्त्रे भृशं

पूतं तोययुतं रदेषु रदशर्विचिक्रित्तिकृष्टं घृष्टकम् ॥ २ ॥

सौराष्ट्रादि योग—फिटकरी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सुपारी, इकायची, वायविड़क, तूतिया, पतंग नामक लकड़ी, कासीस, खेर, माऊफ़ल और लौहविड़ु तथा नागरमोथा प्रत्येक समभाग लेकर कूट पीसकर वस्त्र में छान कर बल में मिलाकर दांतों पर विसने से दांतों की पीड़ा नष्ट होती है और दांत स्वच्छ होता है ॥ २ ॥

छिक्षया पिण्ड्या वारा दन्तशूलो विनशयति । रवितोयेन चलतां नाशयेद् भ्रुवम् ॥

दन्तशूल नाशक योग—युरुव को पीसकर मकोय का रस मिलाकर दांतों पर लगाने से दांत की पीड़ा नष्ट होती है और आक के दूध में मकोय का रस मिलाकर स्वेदन करने से दांतों का दिलना अवश्य ही नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

जातीपत्रादिचूर्णम्—जातीपत्रपुनर्नवागजकणाकोरण्टकुष्ठं चन्चा

शुण्ठीहीप्यहरीतकीतिलसं इलण्ठं भृशं चूर्णयेत् ।

तच्चूर्णं वदने धृतं चिनयते दौर्गन्ध्यदन्तव्यथां

चाञ्चल्यवस्थमतिव्याप्तिव्याप्तिव्यथुस्तकृमिद्यापदः ॥ १ ॥

जातीपत्रादि चूर्ण—चमेली के पत्ते, पुनर्नवा, गजपीपरि, वेर की छाल, कूट, वच, सोंठ, अजवाहन, हरड़, और तिल प्रत्येक समभाग का इलण्ठ चूर्ण मुख में धारण करने से दुर्गन्धि, दांतों की पीड़ा, दांतों का दिलना, ब्रण, शीत्र, पीड़ा, कण्ठ और कृमिदन्त आदि सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

फलान्यम्लानि शीताम्बु रुचान्नं दन्तधावनम् । तथाऽतिकठिनं भव्यं दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥

दन्तरोग में अपद्य—अम्लरस, शीतल बल, रुक्ष अन्न, दन्त धावन तथा अत्यन्त कठिन (कड़ा) पदार्थ दांत का रोगी त्याग दे ॥ २ ॥

अथ जिह्वारोगाणां चिकित्सामाह

जिह्वागतिविकाराणां शस्तं शोणितमोच्छणम् । गुडूचीपिष्पलीनिम्बकवलः कटुभिः सुखः ॥१॥

जिह्वा रोग चिकित्सा—जिह्वा रोगों में रक्तमोक्षण कराकर युक्त, पीपल नीम की छाल तथा विकुटा (सोठ, मरिच, पीपल) प्रत्येक समझाग का काथ बनाकर कवलधारण करना लाभदायक है । ओषुप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राचिक्चकित्सितम् । कण्ठकेल्वनिलोथेषु तत्कार्यं भिसजा खलु ॥२॥

वातज जिह्वा रोग चिकित्सा—वातज ओष्डरोग में चिकित्सा पहले कही गयी है वही चिकित्सा वातज जिह्वा रोग अर्थात् वात के कोप से जो जिह्वा में कटि के समान रोग होता है उसमें करनी चाहिये ॥ २ ॥

पित्तजेबु विष्टेषु निःसुते दुष्टशोणिते । प्रतिसारणगण्डुं नस्य च मधुरं हितम् ॥ ३ ॥

पित्तज जिह्वारोग चिकित्सा—पित्तज जिह्वारोग में जिह्वा के कण्ठकों को विसकर दूषित रक्त निकाल कर मधुर ओषधियों के योग से प्रतिसारण, गण्डूष, नस्य और मधुर द्रव्यों का सेवन कराना चाहिये । इससे लाभ होता है ॥ ३ ॥

उपजिह्वां तु संलिंघय चारेण प्रतिसारयेत् । शिरोविरेकगण्डूषभूमेश्वैनामुपाचरेत् ॥ ४ ॥

ब्योषज्ञाराभ्यावहिचूर्णमेतत्प्रधर्षणम् । उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तैलं च पाचयेत् ॥ ५ ॥

उपजिह्वा रोग चिकित्सा—उपजिह्वा रोग में खुरुच कर क्षार से प्रतिसारण अर्थात् क्षार उस पर लगाना चाहिये और शिरोविरेचन, गण्डूषधारण तथा धूत्रापान कराना चाहिये और सोठ, मरिच, पीपल, क्षार, हरण, चित्रकमूल प्रत्येक समझाग के चूर्ण को उपजिह्वा पर विसना चाहिये अधवा इन्हीं ओषधियों के कल्क के साथ विष्पूर्वक तेल सिद्ध कर सेवन करने से उपजिह्वा रोग शमन होता है ॥ ४-५ ॥

गृहधूमरानालेन क्वार्थं समधुर्सैन्धवम् । पाणिना मर्दयेचाऽस्य उपजिह्वाप्रशान्तये ॥ ६ ॥

गृहधूम (ज्ञाला) और कांजी का क्वार्थ बना कर उसमें मधु और सेंधानमक मिलाकर अनुलियों से मर्दन करने से उपजिह्वा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

निर्गुण्डी मुसलीकन्दं चर्वयेदुपजिह्वजित् । काञ्चनारस्वचः काथः प्रातरास्ये धृतः सुखः ।

कुर्यात्सखदिरो जिह्वादरणोन्मूलनं मुहुः ॥ ७ ॥

निर्गुण्डी योग—निर्गुण्डी और मूसली का कल्क चवाने से उपजिह्वा नष्ट होती है और कचनार की छाल का काथ बनाकर उसमें खैर मिलाकर प्रातःकाल बार २ मुख में धारण करने से जिह्वा कर दरण (फटना) नष्ट होता है ॥ ७ ॥

गलशुण्डीचिकित्सा—

युञ्जयात्कहरं शुण्ड्यां रसं गण्डूषधारणे । कुषोषणवचासिन्मुकणापाठाप्लवैः सह ॥ १ ॥

गलशुण्डी चिकित्सा—गलशुण्डी रोग में कफनाशक ओषधियों के रस का गण्डूष धारण कराकर कूट, मरिच, वच, सधानमक, पीपल, पुराणपादी और नागरमोक्ष प्रत्येक समझाग के चूर्ण को मधु मिलाकर गलशुण्डी रोग पर लगाना चाहिये ॥ १ ॥

सच्चौद्रैभिषजा कार्यं गलशुण्डीप्रधर्षणम् । अङ्गुष्ठाङ्गुलिसन्देशाऽङ्गुष्ठं गलशुण्डिकाम् ॥२॥

छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम् । अतिच्छेदात्मवेद्रक्तं ततो हतोर्धियेत च ॥ ३ ॥

हीनच्छेदात्मवेच्छोथो लालाचावो अमस्तथा । यस्माद्बृद्धैः प्रयत्नेन हृष्टकर्मा विशारदः ॥४॥

अग्नेष्व और अंगुली से संदंश (चिमटी) को पकड़ कर गलशुण्डी को खींच कर जिह्वा पर स्थित गलशुण्डी को मण्डलाय नामक शब्द से चतुराइ के साथ छेदन करे । कदोकि अत्यन्त छेदन करने से अधिक रक्त का स्राव होता है जिससे रोगी मर जाता है और कम छेदन करने से शोथ,

आलस्याद और भ्रमरोग आदि होते हैं । इसलिये यत्नपूर्वक छेदनादि कर्म वही कुशल वैद्य करे जो कभी इस कार्य के कर चुका हो ॥ २-४ ॥

गलशुण्डीं तु संचित्य कुर्यात्प्राप्तमिमं क्रमम् । पिष्पस्यतिविषाकृष्टवचामरिचनाग्रैः ॥ ५ ॥
तीद्रयुक्ते: सलवणैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् । तुषिण्डकेर्घव्रेवे कूर्मे सङ्खाते तालुपुष्टुदे ॥ ६ ॥

एष पद विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ।

गलशुण्डी का छेदन करके पीपल, अतीस, कूट, वच, मरिच, सोठ तथा नमक प्रत्येक समझाग लेकर विष्पूर्वक चूर्ण कर उसमें मधु मिलाकर गलशुण्डी पर अङ्गुलियों से शनैः २ मर्दन करे । तुषिण्डकेरी, अंगुष्ठ अथवा अयुषरोग, कच्छप, संघात और तालुपुष्टु इन सब रोगों में इसी विधि से शस्त्रकर्म करना चाहिये ॥ ६ ॥

तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥

स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ७ ॥

तालुपाक रोग में पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तालु शोषरोग में स्नेहन, स्वेदन कर्म करके वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

रोहिणी चिकित्सा

रोहिणीनां तु साध्यानां दितं शोणितमोच्छणम् । वसनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥

रोहिणी चिकित्सा—साध्यरोहिणी रोग में रक्तमोक्षण और वसन, धूमपान, गण्डूषधारण और नस्यकर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

वातजां तु हते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् । सुखोण्णान् स्नेहपण्डकान् धारयेच्छाप्यभीचणशः ॥ २ ॥

वातरोहिणी चिकित्सा—वातरोहिणी में रक्तमोक्षण कराकर लवण से प्रतिसारण और वातर सुखोण्ण स्नेह का गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

विष्णाय पित्तसम्भूतां सिताकौद्रियज्ञुभिः । मर्दयेकवलो द्राघापरूपैः क्षितैहितः ॥ ३ ॥

पित्तज रोहिणी चिकित्सा—पित्तज रोहिणी रोग में रक्तमोक्षण करा कर शक्तीरा, मधु और प्रियजु के चूर्ण का कल्क बनाकर उससे धर्षण और दाख तथा फालते के काथ का कवल धारण करना चाहिये ॥ ३ ॥

अगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् । शेताविद्वद्वन्तीषु तैलं सिद्धं ससैन्धवम् ॥ ४ ॥

नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्रये ।

कफज रोहिणी चिकित्सा—कफबरोहिणी में रक्तमोक्षण कराकर गृहधूम (ज्ञाला), सोठ, मरिच और पीपल प्रत्येक समान भाग का कल्क बनाकर उससे प्रतिसारण कराकर श्वेत अपराजिता या फिटकीरी, वायविडंग और दन्तीमूल द्वारा सिद्ध किया तेल में सेंधानमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर नस्य लेना चाहिये और इसी तेल का कवलधारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

पित्तवद् साधयेद् वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥ ५ ॥

विष्णाय कण्ठशालकं साधयेत्पिण्डकेश्वत् । एककाले यवान्नं च भुक्तीत विष्णवमपशः ॥

कण्ठशालक चिकित्सा—कण्ठशालक रोग में रक्तमोक्षण कराकर तुषिण्डकेरी के समान चिकित्सा करनी चाहिये और उसमें एक ही समय लिन्गय तथा अश्व प्रमाण में यवान्न का पश्य देना चाहिये ॥ ५ ॥

उपजिह्वकवचापि साधयेद्विजिह्वकम् ।

अधिजिह्वक रोग की चिकित्सा—अधिजिह्वक रोग की चिकित्सा उपजिह्वकरोग के समान करनी चाहिये ॥

एकवृन्दं तु विद्याथ विधि शोधनमाचरेत् ॥ ७ ॥

एकवृन्द-चिकित्सा—एक वृन्द रोग में रक्तमोक्षण कराकर शोधन करना चाहिये ॥ ७ ॥

एकवृन्दमिव प्रायो वृन्दं च समुपाचरेत् ।

वृन्द-चिकित्सा—एकवृन्द के समान ही वृन्द रोग की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शक्षेण साधयेत् ॥

गिलायु रोग चिकित्सा—गिलायु रोग को शक्षा से चीर फार कर व्रणवद् चिकित्सा करनी चाहिये ॥

अमर्मस्थं सुसम्पवं छेदयेद्वलविद्धिम् ॥ ८ ॥

गलविद्धि चिकित्सा—गलविद्धि जो मरमस्थान में नहीं हो, भली अंति पक गयी हो उसका शक्षा से छेदन कर ब्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

तामाच्यानां गलरोगाणां चिकित्सा—

कण्ठरोगेवयुडमोक्षस्तीचनैर्स्यादिकर्मभिः । चिकित्सकश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥

गल रोगों की सामान्य चिकित्सा—गल रोगों में कुशल वैद्य रक्तमोक्षण कराकर तीक्ष्ण नस्यादि कर्म करे ॥ १ ॥

काथं द्वयाथ द्वार्चिवयिन्द्रुताचर्यकलिङ्गजम् । हरीतकीकथायो वा हितो मार्णिकसंयुतः ॥ २ ॥

दार्ढादि काथ—दारुहल्दी, दालचीनी, नीम की छाल, रसवत और इन्द्र जौ प्रत्येक समझाग लेकर विविपूर्वक काथ बनाकर पिलावे अथवा हरीतकी का काथ बनाकर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करावे ॥ २ ॥

कटुकातिविषादाहूपाठासुस्ताकलिङ्गकाः । गोमूषकश्चितः पीताः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ३ ॥

कटुकादि काथ—कुट्टी, अतीस, दारुहल्दी, पुरुषनपादो, नागरमोथा और इन्द्रजौ प्रत्येक समझाग लेकर गोमूत्र के साथ काथ करके पान करने से कण्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

मधुकाकटुकातिविषाद्यां दार्चिवयिन्द्रुताचर्य । पाठा रसाज्ञनं दूर्वा ते ज्ञोहेति सुचूर्णितम् ॥

ज्ञौद्रयुक्तं विचाताथ्यं गलरोगे महीषबद्म । योगास्त्वेते त्रयः प्रोक्ता वातपित्तकफापहाः ॥ ४ ॥

त्रिदोषनाशक योग—१ मुनका, कुट्टी, सौंठ, मरिच और पीपल के समझाग चूर्ण को शहद में मिलाकर या गोली बनाकर गले में धारण करे तो वातिक गलरोग नाश होता है ।

२ दारुहल्दी, दालचीनी, इरड़, वेड़ा, आंवला, नागरमोथा के समझाग चूर्ण को शहद में मिलाकर चाने से पित्त गलरोग नाश होता है । ३ पुरुषनपादो, रसवत, दूर्वा और तेजवल के समझाग चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर मुख में धारण करे अथवा चाटे तो कफन गल रोग नष्ट होते हैं ॥

यवाग्रजं तेजवर्ती सपाठां रसाज्ञनं दारुताशां सकृणाम् ।

सौंठेण कुर्याद् गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगालामयेत् ॥ ५ ॥

यवाग्रजादि वटी—यवाखार, तेजवल, पुरुषनपादो, रसवत, दारुहल्दी और पीपल प्रत्येक समझाग लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर विविपूर्वक वटी बनाकर सेवन करने से सर प्रकार के गलरोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

समस्तमुखरोगाणां चिकित्सा—

वातासर्वसंरं चूर्णलंबणैः प्रतिसारयेत् । तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ६ ॥

वातज सर्वसर चिकित्सा—वातज सर्वसर रोग में वातनाशक ओषधियों के चूर्ण में सेंधानयक मिलाकर प्रतिसारण करके वातनाशक ओषधियों से सिद्ध किये तेल का नस्य लेना और कवल धारण करना चाहिये ॥ ६ ॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्थ देहिनः । सर्वपित्तहरः कार्यो विविर्मधुरशीतलः ॥ २ ॥

पित्तज सर्वसर चिकित्सा—पित्तज सर्वसर रोग में वमन-विरेचन से शरीर को शुद्ध कराकर सर्व प्रकार की पित्तनाशक, मधुर तथा शीतल चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

प्रतिसारणगण्डधूमसंशोधनानि च । कफारमके सर्वसरे क्रमं कुर्यात् कफापहम् ॥ ३ ॥

कफज सर्वसर चिकित्सा—कफज सर्वसर रोग में कफनाशक ओषधियों से प्रतिसारण, गण्डधू, धूमपान और वमन, विरेचनादि चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

मुखपाके शिरावेषः शिरस्थ विरेचनम् । मधुसूत्रवृत्तजीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥ १ ॥

मुखपाक रोग चिकित्सा—मुखपाक रोग में शिरावेष कराकर शिरोविरेचन देना चाहिये और मधु, गोमूत्र, गोधृत, गोधुष और अन्य शीतल पदार्थों का कवल धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

जातीपत्रामृतादाचायासदार्वाफलत्रिकैः । काथः ज्ञौद्रयुतः शीतो गण्डधू सुखपाकनुत् ॥ २ ॥

जातीपत्रादि कवाय चमेली के पत्ते, गुरुच, दाख, जवासा, दारुहल्दी, इरड़, वेड़ा और आंवला प्रत्येक समझाग का कवाय बनाकर उससे मधु का प्रक्षेप देकर गण्डधू धारण करनेसे मुखपाक रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्थ चर्वणम् ॥ ३ ॥

मुखपाक रोग में चमेली के पत्तों को नित्य अनेक वार चबाना चाहिये ॥ ३ ॥

कृष्णजीरकादि कृष्णजीरकसुखप्रदार्वादैर्गन्ध्यमुपशास्यति ॥ ४ ॥

कृष्णजीरकादि योग—कृष्णजीरा, कूट, इन्द्रजौ और वच तीन दिन तक चबाने से मुखपाक, ब्रण, क्लेद (लालासाव) और मुखपादैर्गन्ध्यमुपशास्यति है ॥ ४ ॥

पटोलनिष्वज्जब्दान्नमालतीनवपञ्चवैः । पञ्चपश्लवजः श्रेष्ठः कपायो मुखधावने ॥ ५ ॥

मुखधावन योग—परवल, नीम, जामुन, आम और मालती के पत्ते को समान मात्र लेकर विविपूर्वक काथ बनाकर सेवन करने से मुखरोग दूर होता है ॥ ५ ॥

पञ्चपश्लवजः काथशिफ्लासम्भवोऽथ वा । मुखपाके प्रयोक्तव्यः सज्जौद्रो मुखधावने ॥ ६ ॥

उपर्युक्त पश्पत्व को बना काथ अथवा इरड़, वेड़ा और आंवला का बना दुआ काथ शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर मुखपाक रोग में प्रयोग कर ना चाहिये ॥ ६ ॥

स्वरसः कथितो दार्ढार्या वनीभूतो रसक्रिया । सज्जौद्रो मुखरोगासुदोषनाडीवणापहः ॥ ७ ॥

रसाज्ञन योग—दारुहल्दी का काथ बनाकर गडा कर रसक्रिया दारा रसवत बनाकर उसमें मधु मिलाकर मुख में धारण करने से मुख रोग, रक्तोष और नाड़ी व्रण ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

सप्तच्छ्रदोशीरपोलमुख्तान्हरीतकीतिक्करोहिणीभिः ।

यष्ट्याह्न्राज्ञद्वन्दनैश्च व्याथं पिवेत्पाकहरं मुखस्थ ॥ ८ ॥

सप्तच्छदादि योग—छित्रवन की छाल, खस, परवल के पत्र नागरमोथा, इरड़, कुट्टी, जेठीमधु, अमलतास की गुदी और रक्त बन्दन को समझाग लेकर विविपूर्वक काथ सिद्धकर पान करने से मुखपाक रोग नष्ट होती है ॥ ८ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिफ्लाविशाला-ग्रायन्तितिक्काद्विनिशामृतानाम् ।

पीतः कपायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चास्त्यगदावशेषान् ॥ ९ ॥

पटोलादि योग—परवल के पत्ते, सौंठ, इरड़, वेड़ा, आंवला, माहरि, ग्रायमाणा, कुट्टी, इल्दी, दारुहल्दी और गुरुच को समझाग लेकर विविपूर्वक काथ कर शीतल होने पर उसमें

मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अथवा मुख में धारण करने से सब प्रकार के मुख रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा चीरमेव च । सलोधो दरध्ववक्रस्य गण्ड्यो दाहनाशनः ॥ १० ॥

दरध्वमुखं चिकित्सा—तिल, नील कमल, घृत, शर्करा और दूध तथा लोब इन सबको पीसकर गण्ड्यो धारण करने से दरध्व मुख का दाह नष्ट होता है ॥ १० ॥

हरिद्रातेलम्—

हरिद्रा निश्चयशाणि भधुकं नीलमुखपलम् । तेलमेभिर्विपक्तव्यं मुखपाकहरं परम् ॥ १ ॥

हरिद्रा तेल—हलदी, नीम के पत्ते, सलूठी और नीलकमल समान भाग का कल्प कर बितना हो उसके चौगुना मूर्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ जल देकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर सेवन करने से मुखपाक नष्ट करने में उत्तम है ॥ १ ॥

रट्टीमध्वादितेलम्—

रट्टीमध्वलमेकं त्रिशङ्कीलोपलस्य तेलस्य । प्रस्थं तदद्विगुणपयो विधिना पवचं तु नस्थेन ॥

निशि वदनस्य खावं चपयति गात्रस्य दोषसङ्कातम् ।

वपुःस्वर्णवर्णवनिशं क्रमशोऽभ्यङ्केन जन्तुनाम् ॥ २ ॥

बट्टीमध्वादि तेल—जेठी मधु एक पल, नीलकमल तीस पल दानों का विधिपूर्वक कल्प करे और मूर्छित तिल का तेल एक प्रस्थ तथा तेल के दुगुना (२ प्रस्थ) गोदुख और चौगुना (पाकार्थ) जल लेकर सबको एकत्र कर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर रात्रि में इस तेल का नस्थ लेने से मुखसाव तथा मुख के अनेक रोग समूह नष्ट होते हैं । यदि मनुष्य इस तेल का नित्य अभ्यङ्क (मर्दन) करे तो शरीर स्वर्ण के समान कान्ति वाला अवश्य हो जाता है ॥ १-२ ॥

खदिरस्य तुलां तोयद्वेषो पक्षवाऽष्टशेषिते । जातीकोशेन्दुपूरोक्त चातुर्जातमृगापद्जैः ॥ १ ॥

खदिरस्य तुलां तोयद्वेषो पक्षवाऽष्टशेषिते । जातीकोशेन्दुपूरोक्त चातुर्जातमृगापद्जैः ॥ १ ॥

शुष्यक्षर्मितैः विष्टैर्मलयित्वा च्छोपमाम् । गुटीं कृत्वा मुखे धार्या सा निहन्थखिलान् गदान् ॥

जिहौष्टदन्तवदनगालतालुसमुद्भवान् ॥ २ ॥

खदिरादि शुष्टिका—खैर की छाल एक तुला (१०० पल) और जल एक द्वेष (४ आड़) लेकर काथ की विधि से पाक करे, जब अष्टमांश (२ प्रस्थ) शेष रहे तब डतार-छानकर उसे फिर औटा कर गाढ़ाकर उसमें जावित्री, कपूर, सुपारी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर और कस्तूरी पृथक् २ एक २ कर्षं चूर्ण मिलाकर खरल में मर्दन कर चने के प्रमाण की बटी बना कर मुख में धारण करने से जीभ, ओठ, दाँत, मुख, गला और तालु के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥

अन्यच—

मुखं खदिरसारस्य रवेषां चूर्णं विनिहिते । जातीकङ्गोलकपूरकमुकाणां विच्छणः ॥

गुटिकास्तु प्रकतेव्या मुखे स्थाप्या: सदैव हि ॥ १ ॥

जावित्री, कङ्गोल मरिच, कपूर तथा सुपारी को पृथक् २ समान भाग का चूर्णकर चूर्ण के समान खैर का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर जल के साथ विधिपूर्वक बटी बनाकर नित्य मुख में धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

ताम्बूलमध्यस्थितचूर्णकेन दरध्वं मुखं यस्य भवेत् कथंचित् ।

तैलेन गण्ड्यमसौ विदध्यादश्लारनालेन पुनः पुनर्वा ॥ २ ॥

पान के चूने से जले की चिकित्सा—पान में लगे हुए चूने से शहि किसी का मुख जल (कट) जावे तो बार २ तेल अंथवा अस्त्रकांजी का गण्ड्यो धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

पथ्यापथ्यविधिः—

स्वेदो विरेका वर्मनं गण्ड्यः प्रतिसारणम् । कवलोऽसुश्चतिर्नस्य धूमः शस्त्राभिकमैणि ॥

तृणधान्यं यवा मुद्राः कुलत्था जाङ्ग्लो रसः । बहुपत्री कारवेलं पटोलं बालमूलकम् ॥ २ ॥

कर्पूरनीरं ताम्बूलं तसाम्बु खदिरो वृतम् । कटुतिक्तौ च वर्गोऽयं मिवं स्यान्मुखरोगिणाम् ॥

पथ्यापथ्य—स्वेद कर्म, विरेचन, वर्मन, गण्ड्यधारण, प्रतिसारण, कवलधारण, रक्तसाव (रक्तमोक्षण), नस्यकर्म, धूत्रपान, शलकर्म (चीर-फार) और असिकर्म (ब्रण का जलाना) ये सभी क्रियायें तथा तृणधान्य, जौ, मूँग, कुलधी, जांगलजीवों का मांसरस, मूसली, करैली, परवल, छोटी मूली, कपूर का पानी, पान, उष्णोदक, खैर, घृत, कटुरस द्रव्य और तिक्करस वाले द्रव्य ये सभी मुखरोग वाले के लिये पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

दन्तकाष्ठं स्नानमर्मलं मःस्यमानुपमामिषम् । दविं चीरं गुडं मापं रुक्षाचं कठिनाशनम् ॥ ३ ॥

अधोमुखेन शयनं गुर्वभित्यन्दकारि च । मुखरोगेषु सर्वेषु दिवान्द्रां च वर्जयेत् ॥ ५ ॥

दत्थावन, स्नान, अम्ल रस वाले पदार्थ, मछली, आनूप जीवों का मांस, दही, दूध, गुड़, उड्डद, रुक्ष अन्न, कठिन (चबाने वाले) पदार्थ का भक्षण, नीचे सुंद करके सोना, गुरु तथा अभिष्यन्दी पदार्थ तथा दिन का सोना ये सब मुखरोग में अपथ्य हैं ॥ ४-५ ॥

अथ कर्णरोगाधिकारः

अवश्याय गलकोडाकर्णकगण्ड्यनैर्मरुत । मिथ्यायोगेन शस्त्रस्य कुपितोऽन्यैश्च कोपनैः ॥ १ ॥

ग्राप्य श्रोत्रशिरा: कुर्याच्छ्वलं स्नोतसि वेगवान् । ते वै कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥

कर्ण रोग निदान—ओस में अधिक रहने से, जल में अधिक कीड़ा करने से, कान को अधिक खुलाने से और वृद्ध शख्त प्रयोग करने से अथवा अन्य प्रकार के कुपित होने वाले कारणों से कर्ण रोग उत्पन्न हो जाता है । वै कान में उत्पन्न होने वाले रोग २८ प्रकार के कहे गये हैं ॥ १-२ ॥

तत्र कर्णरोगाणां नामानि संख्यां चाह—

कर्णशूलं प्रणादश्च वाधिर्यं च्वेद एव च । कर्णस्यावः कर्णकण्डः कर्णगृथस्तथैव च ॥ ३ ॥

प्रतिनाहो जन्तुकर्णो विद्रिष्टिर्विधस्तथा । कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्वतुर्विधम् ॥ ४ ॥

तथाऽङ्गुर्दं सप्तविधं शोफशापि चतुर्विधः । एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ५ ॥

कर्ण रोगों के नाम—कर्णशूल, प्रणाद, वाधिर्यं, च्वेद, कर्णस्याव, कर्णकण्डः, कर्णगृथ, प्रतिनाह, जन्तुकर्ण, दो प्रकार की विधिः, कर्णपाक, पूतिकर्ण, चार प्रकार के अर्श, सात प्रकार के अर्बुद रोग और चार प्रकार के शोथ इस प्रकार कर्ण रोग २८ होते हैं ॥ ३-५ ॥

तेषु कर्णशूलस्य संप्राप्तिपूर्वक लक्षणमाद—

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चर्वन् समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।

करोति दोषैश्च यथास्वमात्रातः स कर्णशूलः कथितो दुरासदः ॥ १ ॥

कर्णशूल की संप्राप्ति—जिस कर्ण रोग में अपने कुपित होने वाले कारणों से कुपित प्रतिलोमचारी वायु अन्य कुपित दोषों (अपने २ कुपित होने वाले कारणों से कुपित रक्तकादि) से युक्त होकर कान में प्रवेश करके चारों कान में वातादि दोषानुरूप अत्यन्त शूल उत्पन्न कर देता है उसे कर्णशूल कहते हैं । कर्णशूल कष्टसाध्य है ॥ १ ॥

मूर्छांशुपद्वसंसंगार्वं कर्णशूलस्यासाध्यता चाह—

मूर्छांशु दाहो ज्वरः कासः क्लमोऽयं वर्मशुस्तथा । उपद्रवाः कर्णशूले भवन्वयेते मरिष्यतः ॥

कर्णशूल की असाध्यता—जिस कर्णशूल में मूर्च्छा, दाह, उवर, कास, क्लानित और वमन हो मरने वाले के लिये यह कर्णशूल हुआ है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् ये कर्णशूल असाध्य हैं ॥२॥

कर्णनाशस्य लक्षणमाह—

कर्णस्रोतस्थिते वाते शृणोति विविधान् स्वनान् । भेरीमृद्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥

कर्णनाद के लक्षण—जब कुपित वायु कर्णस्रोतों में प्रवेश कर जाने से कान में भेरी (नगाहा) मृदग और शङ्ख आदि अनेक प्रकार के बाजों का शब्द निरन्तर सुनार्ह पड़ता है तब उसे कर्णनाद रोग कहते हैं ॥ ६ ॥

वाचिर्यमाह—यदा शब्दवहं वायुः स्रोत आवृत्य तिष्ठति ।

शुद्धः श्लेष्मान्वितो वाऽपि वाचिर्यं तेन जायते ॥ ४ ॥

वाचिर्य के लक्षण—जिस कर्णरोग में कुपित वायु कफ युक्त अथवा रक्षित युक्त होकर अथवा अकेले जब शब्दवह स्रोत को घेर कर बैठ जाती है तब उससे वाचिर्य होती है । (उसे वाचिर्य कहते हैं) ॥ ४ ॥

कर्णद्वेषमाह—चायुः पित्तादिभियुक्तो वेणुघोवसमं स्वनम् ।

करोति कर्णयोः ध्वेषं कर्णच्वेषः स उच्यते ॥ ५ ॥

कर्णद्वेष के लक्षण—जिस कर्णरोग में कुपित वायु पित्तादि दोषों से युक्त होकर कर्णस्रोतों में स्थित होती है तब उसमें से वंशी के शब्द के समान अथवा फटे बांस के छिद्रों में वायु प्रवेश करने से जो शब्द होता है उसके समान शब्द कानों में निरन्तर करता है उसे कर्णद्वेष कहते हैं ॥

कर्णस्रावमाह—

शिरोभिष्ठातावध्यवा निमज्जतो जले प्रयाकादथ वाऽपि विद्धेः ।

स्वेदिष्ठ पूर्यं श्वर्णोऽनिलादितः स कर्णजः स्नाव हृति प्रकीर्तिः ॥ ६ ॥

कर्णस्राव के लक्षण—जिस रोग में शिर में आवात लगने से अथवा जल में डूबने से अथवा कान में द्वई विद्धि के पक जाने से वायु के कोप से पीड़ित कान से पूर्य का स्नाव होते उसे कर्णस्रावरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

कर्णकण्ठमाह—मारुतः कफसंयुक्तः कर्णे कण्ठं करोति हि ॥

कर्णकण्ठ के लक्षण—जिस रोग में कुपित वायु कफ से युक्त होकर कान में कण्ठ उत्पन्न करे उसे कर्णकण्ठ कहते हैं ॥

कर्णगूम्हमाह—पित्तोभ्यशेषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूम्हकम् ॥ ७ ॥

कर्णगूम्ह के लक्षण—जिस रोग में पित्त की ऊष्मा से कान में प्राप्त हुआ कफ अधिक प्रमाण में सूख जाता है उसे कर्णगूम्ह (कान की मैल वा खूंट) कहते हैं ॥ ७ ॥

प्रतिनाइमाह—

सकर्णगूयो द्रवनां यदा गतो विलायितो ग्राणमुखं प्रपद्यते ।

तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शरसोऽर्द्धभेदकृतः ॥ ८ ॥

प्रतिनाइ के लक्षण—उपरोक्त कर्णगूय जब रुनेह (तेल आदि के कान में छोड़ने से) तथा स्वेदादि से द्रवित हो जाता है और विलीन हो जाता है तब नासिका और मुख में प्राप्त होता है । उसे कर्णप्रतिनाइ नामक रोग कहते हैं । इस प्रतिनाइ के कारण सिर में अर्धवेश रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ८ ॥

कृमिकर्णमाह—यदा तु मूर्च्छन्त्यध्यवाऽपि जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मधिकाः ।

तदृशञ्जन्त्वाच्छवये निरुच्यते भिषिभास्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ९ ॥

कणरोगाधिकारः

कृमिकर्ण के लक्षण—जिस कणरोग में जब (मांस-रक्तादि के कोथ होने पर) कानों में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं अथवा कानों में जब मधिकाये बैठकर कृमि उत्पन्न कर देती है तब कृमिरोग के लक्षणों से युक्त इस रोग को कृमिकर्णक बोलते हैं ॥ ९ ॥

पतङ्गाण्डिषु कर्णप्रविष्टेषु लक्षणमाह—

पतङ्गाण्डिष्ट कर्णस्रोतः प्रविश्य हि । अरति व्याकुलरथं च नृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ १० ॥

कर्णो निस्तुयते तस्य तथा फरकरायते । कीटे चरति रुक्तीत्वा निष्पन्दे मन्दवेदना ॥ ११ ॥

कानों में कीटादि प्रविष्ट के लक्षण—जब कीट पतङ्गादि कान के छाँतों में किसी प्रकार प्रवेश कर जाते हैं तब उससे व्याकुलता और कान में सूई चुम्हाने के समान पीड़ा तथा फरकराइट द्वारा होती है तथा जब वह नहीं चलता है तब पीड़ा मन्द हो जाती है । इस प्रकार के लक्षण अब उत्पन्न हो तब कानों में कीट प्रवेश किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ १०-११ ॥

द्विविधं कर्णविद्धिमाह—

चतुर्भिष्ठातप्रभवस्तु विद्धिभ्यवेत्था द्वोषकृतोऽपवः पुनः ।

स रक्षपीतासणमस्त्रमास्त्रवेत् प्रतोदध्यमायनदाहचोषवान् ॥ १२ ॥

कर्णविद्धिके लक्षण—कानों में क्षत और अभिषात से तथा बातादि दोषों के कारण भी विद्धिउत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार कानों में दो प्रकार की विद्धि उत्पन्न होती है । इनमें रक्त, पीत और अरुण वर्ण ज्वान होता है, तथा सूई चुम्हाने के समान पीड़ा, धूमोदमन के समान होने वाली पीड़ा, दाह तथा चोष (चूसने के समान पीड़ा) होता है ॥ १२ ॥

कर्णपाकमाह—कर्णपाकस्तु यित्तेन कोयविद्धिलेदकृद्वेत् ॥

कर्णपाक के लक्षण—पित्त दोष के अधिक कोप से कान के भीतर पाक हो जाता है जिसमें कोथ होता है और आरंता रहती है ॥

पृतिकर्णमाह—

कर्णविद्धिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् । पूर्यं स्ववति वा पूर्ति स ज्येष्ठः पृतिकर्णकः ॥ १३ ॥

पृति कर्ण के लक्षण—कान में उत्पन्न द्वई विद्धिके पक जाने से अथवा कान में जल भर जाने से जो दुर्गन्धित पूर्य का ज्वाव होता है उसे पृतिकर्ण होते हैं ॥ १३ ॥

कर्णमताना शोधार्द्वादशैसां लक्षणान्याह—

कर्णशोधार्द्वादशैसि जानीयादुक्तलच्छणैः ॥ १४ ॥

कान में होने वाले शोधादि के लक्षण—शोध, अरुंद और अर्शरोग के लक्षण जो पहले निदान में कह आये हैं उसी के अनुसार जानना चाहिये । केवल स्थान का भेद होता है अर्थात् उपरोक्त रोगों के लक्षणों के समान इनके भी लक्षण हैं ॥ १४ ॥

इदानीं चरकोत्तरं कर्णरोगचतुष्यं वातप्रित्कफसंनिपातकृतमाह—

नादोऽतिरुक्तकर्णमलस्थ शोषः स्नावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात् ।

वातज कर्णरोग—वायु के दोष से जो कर्णरोग होता है उसमें नाद (अनेक प्रकार के शब्द) होता है, अत्यन्त पीड़ा होती है, कान का मल (मैल) सूख जाता है, स्नाव अव्य होता है और सुनार्ह नहीं पड़ता है ॥

शोषः सरागो दरणं विद्याहः सपूतिपीतस्त्रवणं च पित्तात् ॥ १५ ॥

पित्तज कर्णरोग—पित्त के दोष से जो कर्णरोग होता है उसमें शोष होता है, शोष का वर्ण लालिमा युक्त होता है, फटने के समान पीड़ा होती है, दाह होती है और पीतवर्ण का दुर्गन्धित स्नाव होता है ॥

वैश्रुत्यकण्ठस्थिरशोथशुक्लस्तिनभ्यस्तिः स्वेषप्रहजः कफाच्च ।

कफज कर्णरोग—कफ के दोष से जो कर्णरोग उत्पन्न होता है उसमें डलट-पलट सुनाई देता है अर्थात् कहे कुछ और सुने कुछ, कान में कण्ठ होती है, स्थिर (निश्चक) शोथ होता है, श्वेत-वर्ण का तथा लिङ्ग स्नाव (पूय) होता है और पीड़ा अव्य होती है ॥

सर्वाणि रूपाणि च संनिपातात् स्नावश्च तत्राभिकदोषवर्णः ॥ १६ ॥

सन्निपातज कर्णरोग—सन्निपात से जो कर्णरोग होता है उसमें वातादि सभी दोषों के लक्षणों से युक्त आर सभी दोषों के वर्णों से युक्त अधिक स्नाव होता है तथा जिस दोष की बहुलता होती है उसके प्रत्यक्ष लक्षण और वर्ण भी दिखाई पड़ते हैं ॥ १६ ॥

अथ कर्णपालीरोगनिदानम्

तत्र परिपोटलक्षणमाह—

सौकुमार्याच्चिरोत्सुष्टे सहस्रैचातिविधिते । कर्णपाल्यां भवेच्छोथः स्वजः परिपोटवान् ॥ १ ॥
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः ॥

परिपोट के लक्षण—सुकुमारता के कारण कान के छिह्नों की बहुत दिनों तक उपेक्षा करने से और एकापक उसे अत्यन्त बढ़ाने से कर्णपाली में शोथ ही जाता है, उसमें पीड़ा होती है, परिपोट होता है, वर्ण उसका कृष्ण वा अरुण वर्ण का स्वष्ट (निश्चल) होता है उसे परिपोट कहते हैं, यह वात के कोप से होता है ॥ १६ ॥

उत्पातमाह—गुर्वाभरणसंयोगात्ताहनाद्वर्षणादपि ॥ २ ॥

शोथः पाल्यां भवेच्छोथाचो द्वाहपाकरुजानिवतः । रक्षो वा रक्तपित्ताभ्यामुष्पातः स गदो मतः ॥
उत्पात के लक्षण—कान में गुरु आमूळक के अधिक पहनने से, कान पर मारने से अथवा बर्षण होने से कर्णपाली में शोथ ही जाता है जिसका वर्ण श्वाम होता है उसमें दाह होती है, पाक होता है और पीड़ा होती है तथा वर्ण भी होता है । इस रोग को उत्पात रोग कहते हैं, यह रक्त और यित्त के कोप से होता है ॥ २-३ ॥

उन्मन्यकमाह—

कर्ण बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति । कफ संगृह्या कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम् ॥
उन्मन्यकः सकण्ठको विकारः कफवातजः ॥ ४ ॥

उन्मन्यक के लक्षण—बलपूर्वक कान को बढ़ाने से कर्णपाली में वायु कुपित हो जाती है और कफ को लेकर शोथ उत्पन्न कर देती है वह शोथ निश्चल, पीड़ा रहित अथवा अश्व पीड़ा युक्त होता है और उसमें कण्ठ भी होती है । उसे उन्मन्यक रोग कहते हैं । यह वात और कफ के कोप से होता है ॥ ४ ॥

दुःखवर्धनमाह—संवर्धनमाने दुर्विद्धे कण्ठदाहरुजानिवतः ।

शोथो भवति पाकश्च विदोषो दुःखवर्धनः ॥ ५ ॥

दुःखवर्धन के लक्षण—कान को बढ़ाते हुए यदि उसमें दुर्विद्ध हो जावे (दैवकृत छिद्र के अतिरिक्त बींच कर बढ़ाने का यथन किया जावे) तब उसमें कण्ठ, दाह और पीड़ा युक्त शोथ हो जाता है तथा उसमें पाक भी होता है । उसे दुःखवर्धन कहते हैं । यह विदोष के कोप से होता है ॥ ५ ॥

परिलेहिनमाह—कफासूक्ष्मयः कण्ठः सर्वपामा विसर्पिणः ।

कुर्वन्ति पिटिकाः पाल्यां कण्ठदाहरुजानिवताः ॥ ६ ॥

कफासूक्ष्मिसंभूताः स विसर्पिणितस्ततः । विलिघ्यात्सकलां पालीं परिलेही च स स्मृतः ॥ ७ ॥

परिलेही के लक्षण—कफ और रक्त के कृमि जो सरसों के समान इधर उधर पसरने वाले होते हैं । वे कुपित होकर कर्णपाली में पिटिका उत्पन्न कर देते हैं उसमें कण्ठ, दाह और पीड़ा होती है । वह कफ-रक्त के कृमियों से उत्पन्न पिटिका इधर-उधर पसरती है और सम्पूर्ण पाली को चाट लेती है (पाली के मास को नष्ट कर देती है) उसे परिलेही कहते हैं ॥ ६-७ ॥

अथ कर्णरोगाणां चिकित्सा ।

कर्णपूरणविधिः—

स्वेदयेकर्णदेशं तु किञ्चिन्नुः पार्श्ववायिनः । मून्त्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्तच्च श्रोत्रं प्रपूरयेत् ॥ १ ॥

कर्णपूरण विधि—कर्णरोग के रोगी को एक करवट सुलाकर उसके कर्ण प्रदेश को पहले स्वेदन करके पश्चात् गोमूत्र, स्नेह पदार्थ (घृत-तेलादि) और ओषधियों के स्वरस की धोड़ा गरम कर उससे कान के बीत को पूरा करना चाहिये ॥ १ ॥

कर्ण च पूरितं रजेच्छतं पञ्च शतानि च । सहस्रं वाऽपि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ २ ॥

कान के रोगी में कान में पूरण ओषधियों को भरकर एक सौ की मात्रा तक मरा रहने देवे अर्थात् आगे जो मात्रा की प्रमाण कहेंगे उसके अनुसार १०० मात्रा की अवधि तक ओषधि को कान में रहने देवे । कण्ठ के रोगी में जो कर्णपूरण करे उसे ५०० मात्रा की अवधि तक ओषधि को कान में रहने देवे और शिर रोगी में जो कर्णपूरण करे उसे १००० मात्रा की अवधि तक ओषधि को कान में रहने देवे ॥ २ ॥

स्वजानुमः करावर्तु कुर्याद्विद्युकिया युतम् । पूषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैव विनिश्चयः ॥ ३ ॥

मात्रा का प्रमाण—अपने जानु के पास जुटी बजाते हुए इसको ले जावे, इसमें जितना समय लगे उसे एक मात्रा कहते हैं ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये ॥ ३ ॥

रसादैः पूरणं कर्णं भोजनात्प्राप्तप्रशस्यते । तैलादैः पूरणं कर्णं भास्करेऽस्तुपुण्यते ॥ ४ ॥

कर्णपूरण का समय—ओषधियों के रस (स्वरस) आदि से यदि कर्ण पूरण करना हो तो भोजन के पहले करना चाहिये और यदि ओषधि-सिद्ध तैलादि से कर्णपूरण करना हो तो सूर्योत्स होने पर करना चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशूले कर्णनादे वायिर्ये च्वेद पूव च । चतुर्वर्षि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ५ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, वायिर्य और कण्ठश्वेद रोग में सामान्य ओषधि का व्यवहार करना चाहिये । श्रूतवेदरसं ज्योत्रं सैन्धवं तैलमेव च । कटूषां कर्णयोर्धार्यमेतत् स्याद्वेदनपहम् ॥ ६ ॥

कर्णशूल की चिकित्सा—अदरक का स्वरस, मधु, सेवानमक और सरसों का तैल गरम कर कान में हालना चाहिये । इससे कान की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

लशुनाद्रकशिग्रूणां वाहण्या मूलकस्य च । कदत्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुणः कर्णपूरणे ॥ ७ ॥

लशुन, अदरक, सहिजन की लाल, माझी की जड़ और केले के यम्भ के स्वरस को धोड़ा रखने कान में हालने से कर्णशूलादि नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अकांक्षुरानश्लिष्टान् सतैलैङ्गुवणान्वितान् । संनिदध्यात् चुधाकाण्डे कोरिते मृस्तन्याऽवृते ॥ ८ ॥

सुटपाकियास्तिवन्नं पीडियेदा रसगमात् । सुखोणं तदसं कर्णं प्राद्विपेच्छूलशान्तये ॥ ९ ॥

अकांक्षुरादि योग—मदार के बड़ों को काजी के साथ पीसकर उसमें (सरसों का) तैल और सेवानमक मिलाकर उसे शूद्र के ढंडे में छिद्र बनाकर उसमें भरकर मिट्टी से बन्दकर फिर उस पर विविपूर्वक पुष्टपाक की किया । से मिट्टी का लेप करके पाक कर स्वरस निकाल लेवे । उस स्वरस को सुखोण करके कान में छोड़ने से कर्णशूल शमन होता है ॥ ८-९ ॥

अर्कस्य पत्रं परिग्रामपीतमाऽयेन लिङ्गं विविष्योगतसम् ।

आपीड्य तस्यांगु सुखोषणमेव कर्णं विचिक्कं हरतेऽतिशूलम् ॥ १० ॥

मदार के पके हुए पीछे पत्तों को लेकर उस पर घृत लगा कर अंगारे पर तपाकर उसको मसाल कर रस निचोड़ कर उस सुखोषण स्वरस को कान में छोड़ने से अत्यन्त उद्य कर्णशूल भी नष्ट होता है ॥ १० ॥

तीव्रशूलात्मे कर्णं स्वरामे कलेदवाहिनि । छागमूर्त्रं प्रशंसन्ति क्षेषणं सैन्धवसंयुतम् ॥ ११ ॥

छागमूर्त्र योग—तीव्र कर्णशूल जिसमें स्वाव होता हो, पाक हो गया हो उसमें बकरी के मूत्र में सेवानमक मिलाकर किञ्चित उषणकर कान में छोड़ने से स्वाव-पाक युक्त कर्णशूल भी अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

तैलं स्थोनाकमूलेन मन्देऽभ्यन्ति विधिना शृतम् । हरेदाशु ज्ञिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥

स्थोनाक तैल—स्थोनाक की जड़ के कल्प के साथ तैल पाक की विधि से तैल को मन्द अथवा पर पाक कर कर्ण पूरण करने से निदोषन कर्ण शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हिङ्गसैन्धवशुष्ठीभिस्तैलं सर्वपलम्भवम् । विषकं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १३ ॥

हिङ्गवादि तैल—हींग, नागरमोथा, दारहलदी, सौफ, मूली का भस्म, भोजपत्र, यवाखार, सेवानमक, रुचक, बट्टिद नमक, सहिजन की छाल, सौठ, सड़जी, विड्लवण, वच, अजन (कृष्णाजन) अथवा रसवत और विजौरे नीबू के रस को समभाग केकर विधिपूर्वक कल्प बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्चित तिल का तैल और तैल से चौगुना केले का स्वरस और मधु शुक (आगे मधुसुक बनाने की विधि कहेंगे) एकत्र कर तैलपाक की विधि से तैल सिद्धकर कान में ढालने से कर्णप्रणाद, वायिष्य तथा छ्वादेश, मस्तक, कानों की शङ्खुली के अन्दर होने वाले शूल आदि रोग नष्ट होते हैं । इस प्रसिद्ध तैल को चरक और सुश्रुत ने भी श्रेष्ठ माना है ।

कर्णरोगचिकित्सा

हिङ्गवादितैलम्—

हिङ्गवादितैलमिस्मूलकमस्मभूजं-त्वक्ष्वारसिन्युरुक्तकोमिदशिग्रिविश्वैः ।

सस्वजिकाविद्वचाज्ञनमातुलुङ्गै-रवभारसैः समधुसुक्तमिदं विषकम् ॥ १ ॥

तैलं प्रसिद्धमिति तच्छ्रवणामयधनं कर्णप्रणादविधिरवहरं नराणाम् ।

अमृस्तकथ्रवणशङ्कुलिकान्तरालं-शूलापादं चरकसुश्रुतद्विजितं च ॥ २ ॥

हिङ्गवादिकार तैल—हींग, नागरमोथा, दारहलदी, सौफ, मूली का भस्म, भोजपत्र, यवाखार, सेवानमक, रुचक, बट्टिद नमक, सहिजन की छाल, सौठ, सड़जी, विड्लवण, वच, अजन (कृष्णाजन) अथवा रसवत और विजौरे नीबू के रस को समभाग केकर विधिपूर्वक कल्प बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्चित तिल का तैल और तैल से चौगुना केले का स्वरस और मधु शुक (आगे मधुसुक बनाने की विधि कहेंगे) एकत्र कर तैलपाक की विधि से तैल सिद्धकर कान में ढालने से कर्णप्रणाद, वायिष्य तथा छ्वादेश, मस्तक, कानों की शङ्खुली के अन्दर होने वाले शूल आदि रोग नष्ट होते हैं । इस प्रसिद्ध तैल को चरक और सुश्रुत ने भी श्रेष्ठ माना है ।

मधुसुक्तम्—

जंबीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोनिमत्र । माचिकं तत्र दातव्यं-प्रिप्पली च पलोनिमता ॥

घृतभाष्टे निधायैतदान्यराशी विधारयेत् । मायेन तज्जातरसं समधुसुक्तमजायते ॥ २ ॥

मधुसुक्त की विधि—जंबोरी नीबू के रस एक प्रथ, मधु एक कुडव (१६ कर्ष) और पीपल का चूर्ण एक पल लेकर सबको एकत्र कर घृतभाष्ट में रख कर सुखमुद्दण करके धान्यराशी में रख देवे, एक मास के पश्चात जब उसमें रस हो जावे तब उसे निकाल कर छान कर रख देवे । इसे मधुसुक्त कहते हैं ॥ १-२ ॥

दीपिकातैलम्—

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टुलुनिं च । चौमेणाऽऽवेष्ट्य संसिद्ध्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १ ॥

यत्तैलं च्ववते तेभ्यः सुखोषणं तेन पूरयेत् । शेय तदीपिकातैलं कुष्ठदेवतरोस्तथा ॥ २ ॥

दीपिका तैल—महरपञ्चमूल (बेल, गम्भार, गनियार, पादर और सोनोपाठा) की आठ-आठ अङ्गुल की लम्बी लकड़ियों को लेकर रेशमी वस्त्र से लेपेट कर तैल में मिलाकर जला देवे उससे जो तैल चूबे उसे सुखोषण (थोड़े २ गरम) तैल से कर्ण पूरण करने से कर्णरोग नष्ट होते हैं । इसको दीपिका तैल कहते हैं । इसी प्रकार कूट और देवदार का भी तैल निकाल कर कर्णपूरण करने से कर्ण रोगों में लाभ होता है ॥ १-३ ॥

निर्गुण्डयादितैलम्—

निर्गुण्डजातिरविभूजरसोनरम्भा-कार्पासिशियुपुरसार्द्रककारवेलस्यः ।

एवां रसे तिलवतं सविष्पं सुकर्ण-वायिष्यनादकृमिवेदनपूरयुक्ते ॥ १ ॥

निर्गुण्डयादि तैल—निर्गुण्डी के पत्ते, चमेली के पत्ते, आक के पत्ते, भांगरा, लहसुन, केला, कपास, सहिजन, तुलसी, अदरक और करैली इन सब ओषधियों के क्वाय अथवा स्वरस को समान मिलित लेवे और उसमें चतुर्थीश मूर्चित तिल का तैल और तैल के चतुर्थीश वर्तसाम विष का कल्प मिलाकर तैल पाक की विधि से सिद्धकर कान में ढालने से वधिरता, कर्णनाद, कृमि, पीड़ा तथा पूय युक्त कर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

नागरादितैलम्—

नागरसैन्धवमागविमुस्ता हिङ्गवचालशुनं तिलतैलम् ।

अर्कसुपक्षलाशरसेन कर्णसूजं वधिरं विनिहन्ति ॥ १ ॥

नागरादि तैल—सोंठ, सेंधानमक, पीपल, नागमोथा, हींग, वच और लहसुन को समान लेकर कल्प कर जितना हो उसके चौयुना मूर्च्छित तिळ का तेल और तेल के समान मदार और पलास के पके इए पत्तों का स्वरस मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से कान की पीड़ा और वज्रता नष्ट होती है ॥ १ ॥

कर्णस्त्रावे पूतिकर्णं तथैव क्रमिकर्णके । सामान्यं कर्मं कुर्वीत योगान् वैशेषिकानपि ॥ १ ॥

कर्णस्त्रावादि चिकित्सा—कर्णस्त्राव, पूतिकर्ण और क्रमिकर्ण रोग में सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये और विशेष योग भी करना चाहिये । जिसे आगे लिखते हैं ॥ १ ॥

रविञ्जिकाचूर्णसंयुक्तं वैजप्तूररसं चिपेत् । कर्णस्त्रावस्त्रावादाहास्तेन नरयन्त्यसंशयम् ॥ २ ॥

सज्जों के चूर्ण में विजौरे नीबू का रस मिलाकर कान में छोड़ना चाहिये । इससे कर्णस्त्राव, पीड़ा और दाढ़ अवश्य नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

समुद्रफेनचूर्णं—

समुद्रफेन चूर्ण—समुद्रफेन के चूर्ण को कान के छिपों में छोड़ने से पृथक का स्राव होना तथा व्रण भी इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार सूर्य से अन्धकार ॥ १ ॥

सर्जंत्वगादि योग—सर्ज (राल) की त्वचा का चूर्ण, कपास के फल का रस और मधु मिलाकर कान के स्राव में छोड़ना चाहिये । इससे लाग होता है ॥ २ ॥

जम्बवाग्रपत्रं तरुणं समोदृशं कपितथकार्पासफलं च सान्द्रम् ।
हृत्वा रसं तन्मधुना विमिश्च सावापहं समप्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥
एतैः श्रतं निड्वकरसतैलं सरसार्पं सावहरं प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥

जम्बवाग्रपत्र योग—जामुन और आम के कोमल पत्ते, कैथ का फल और कपास के घने फल का रस निकाल कर उसमें मधु मिलाकर कान में डालने से कर्णस्त्राव नष्ट होता है और इन्हीं (जामुन-आम के पत्तों आदि) के स्वरस अथवा काथ से नीम का तेल, अथवा करज का तेल अथवा सरसों का नेल विधिपूर्वक सिद्ध कर कान में डालने से भी कर्णस्त्राव नष्ट होता है ॥ ३ ॥

जम्बवाद्यं तैलं वृद्धात्—

आग्रजम्बूपत्रालानि मधुकर्ण्य वदत्य च । एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं द्वरेत् ॥

जातिपत्रसे तैलं चिपकं पूतिकर्णजित् ॥ १ ॥

जम्बवाद तैल—आम और जामुन के पत्ते, मुलहठी तथा बट के पत्ते का काथ अथवा स्वरस के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल कान में डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है । इसी प्रकार चमेली के पत्तों के स्वरस के साथ सिद्ध किया तेल भी कान में डालने से पूति कर्ण रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कर्णप्रस्त्रालने पञ्चकथायम्—

कर्णप्रस्त्रालने शस्त्रं कवोर्णं सुभीजलम् । पथ्यामलकमजिष्ठालोभ्रतिन्दुकवाश्च वा ॥ १ ॥

पञ्चकथाय—कर्ण प्रस्त्रालन के लिये गोमूत्र योग्य गरम करके कान में डालना चाहिये अथवा हरड़, आंवला, मजीठ, लोध और तिन्दुक (तेंदु) का काथ करके इससे कान धोना चाहिये ॥ १ ॥

अन्यचत्र—राजवृत्तादितोयेन सुरसादिजलेन च ।

कर्णप्रस्त्रालनं कुर्याद्वृत्तैर्स्तु पूरणम् ॥ १ ॥

अमलतास के काथ से अथवा सुरसादि गण की ओषधियों के काथ से कर्ण प्रश्नाकर्ण करने से और इन्हीं के चूर्ण को कान में छोड़ने से कर्णस्त्रावादि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

रसाज्जनादि योग—

चृष्टं रसाज्जनं नार्याः श्रीरेण चौद्वसंयुतम् । प्रशस्यते चिरोरथे तत्साक्षात्वे पूतिकर्णके ॥ १ ॥

रसाज्जनादि योग—रसवत को खी के दूध के साथ विसकर उसमें मधु मिलाकर कान में छोड़ने से पुराने स्राव युक्त पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कुषादितैलम्—

कुष्ट हिङ्गवचादाक्षताद्वाविक्षसैन्धवै । पूतिकर्णपहं तैलं बस्तमूत्रेण साधितम् ॥ १ ॥

कुषादितैल—कूठ, हींग, वच, दारहलदी, सौफ, सोंठ तथा सेंधानमक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्प कर जितना हो उसके चौयुना मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल से चौयुना वकरे का मधु मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्धकर कान में डालने से पूतिकर्ण नष्ट होता है ॥ १ ॥

शम्बूकतैलम्—

शम्बूकर्ण्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् । तस्य पूरणमात्रेण कर्णसाक्षी प्रशास्यति ॥ १ ॥

शम्बूक तैल—शम्बूक (धोवे) के मांस के साथ तेल पाक की विधि से सरसों का तेल सिद्ध कर कर्णपूरण करने से कर्ण नाहीं नष्ट होती है ॥ १ ॥

गन्धकतैलम्—

चूर्णन गन्धकशि । राजनीभवेन मुष्ठवंशकेन कटुतैलपलाष्टकं तु ।

धत्तस्पत्रसतुलयमिदं विपकं नार्दीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ १ ॥

गन्धक तैल—गन्धक, मैतसिल और हलदी का समान भाग चूर्ण कर कर्णक बनाकर आठपल सरसों के तेल में मिलावे और तेल के समान धूरे के पत्ते का रस मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्धकर कान में डालने से पुराना कर्णनाहीं रोग भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

क्रमिकर्णविनाशाय क्रमिन्नीं कारयेत्क्रियाम् । वार्ताक्षूमश्च हितः सार्थपः स्नेह एव च ॥ २ ॥

क्रमिकर्ण विकित्सा—क्रमि कर्णनाहीं रोग में क्रमिनाशक किया करनी चाहिये । वैगन का धूआँ कान में देना चाहिये तथा सरसों का तेल कान में डालना चाहिये ॥ २ ॥

पूरितं हरितालेन गध्य भूत्रयुतेन च । धूपने कर्णदौर्गंध्ये गुणगुलुः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३ ॥

गौ के मूत्र में हरताल का चूर्ण मिलाकर कान में भरना चाहिये इससे क्रमिकर्ण रोग नष्ट होता है तथा कर्ण दौर्गंध्य रोग में गुणगुल का धूप देना बहुम है ॥ ३ ॥

क्रमिकर्णं योगचतुष्टयम्—

सूर्यावर्तकस्वरसं रसं वा सिन्दुवारजम् । लाङ्गूलीमूलतोयं च ज्युषणं वाऽपि चूर्णितम् ॥ १ ॥

एते योगास्तु चत्वारः पूरणात् क्रमिकर्णके । क्रमीमिश्रमूलयन्त्रयश्च शतपथस्त्रपादिकाम् ॥ २ ॥

क्रमिकर्ण के योग चतुष्टय सूर्यमुखी अथवा निरुण्डी का स्वरस अथवा कलिहारी के मूल का स्वरस अथवा सोंठ, मरिच और पीपल का समान मिलित चूर्ण इन चारों योगों में से किसी एक योग को कान में डालने से क्रमिकर्णक रोग के शतपदी, अस्तपदी आदि क्रमि शीत्र नष्ट होते हैं ॥

गोमक्षिकार्या योगः—

दन्तेन चर्वयेन्मूलं नन्द्यावर्तपलाशयोः । तञ्चालापूरिते कर्णे ध्रुवं गोमक्षिकां जयेत् ॥ ३ ॥

गोमक्षिका नाशक योग—तगर और पलास की जड़ को दौतों से चबाकर उससे बने लाट को कान में डालने से गोमक्षिका (गौ के ऊपर की मक्षिका जो कान में प्रवेश कर जाती है वह) अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

कृमिकर्णं योगः—

हलिरविभक्तियोगानेकीकृत्य प्रकरपयेद्वद्वाप्त्वा । वसनान्तरे रसेन श्रवणे परिषुरयेत्युक्त्या ॥ १ ॥
कर्णजलौका नियतं कृमिकटपियोलिकास्तथाऽन्येऽपि ।

निपतन्ति निरवशेषाः कारण्डाश्रापि मुण्डस्थाः ॥ २ ॥

कृमिकर्णं योग—लागली (कलिहारी), सूर्यमुखो, सोठ, मरिच और पीपूल को समान लेकर एक छूटकर काढ़े में बैंधकर युक्तिपूर्वक उनका रस निचोड़ कर कान में डालने से कान की जलौका (कान खजूरे), कृमि, कौट, पियोलिका तथा अन्य शिर आदि में होने वाले कारण्ड कृमि सभी नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

कर्णकण्ठकृमिगूषप्रतिनाइकर्णविद्रुतिकर्णपाकानां चिकित्सामाह—

स्नेहः स्वेदोऽथ वमनं धूमं मूर्चिन विरेचनम् । विधिश्च कफहा सर्वः कर्णे कण्ठमतीष्यते ॥

कर्णकण्ठ, आदि की चिकित्सा—कर्णकण्ठ रोग में स्नेहन कर्म, स्वेदन, वमन, धूत्रपान, शिरोविरेचन और कफनाशक किया करनी चाहिये ॥ ३ ॥

प्रकिळ्य धीमांस्तैलेन प्रविलाप्य च शोधनम् । कर्णगूथं तु मतिमान् भिषगज्ञायाच्छुलाकथा ॥

कान में तेल डालकर मैल को क्लेंदित (गीला) करके सलाई से उसे निकाल कर शोधन करे । इससे लाभ होता है और कर्णगूथ रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ कर्णप्रतीक्षाहृ स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् । ततो विरक्तिशिरसः क्रिया प्रोक्तां समाचरेत् ॥ ३ ॥

कर्णप्रतीक्षाहृ रोग में स्नेहन और स्वेदन तथा शिरोविरेचन करके आगे की कही दुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

विद्रुधो चा प्रकुर्वन्ति विद्रुयुक्तं चिकित्सितम् । कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यादतिविसर्पत् ॥ ४ ॥

कर्णविद्रुधि रोग में विद्रुधि रोग में कही दुई चिकित्सा करनी चाहिये और कर्णपाक रोग में अविसर्प के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशोथकर्णादुदानां चिकित्सा—

चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णशास्त्रामपि । कर्णादुदानां कुर्वत शोथाद्वैदवद्विषक् ॥ १ ॥

कर्णशोथ, कर्णशी और कर्णादुद की चिकित्सा—कर्णशोथ, कर्णशी और कर्णादुद रोग की चिकित्सा शोथ, अर्श और अर्द्धुंद की भाँति करनी चाहिये अर्थात् कर्णशोथ की शोथ के तसान, कर्णशी की अर्श के समान और अर्द्धुंद की कर्णादुद के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

रासनाद्युगुणः—रासनामृतैरण्डसुराह्विश्च तुष्यं पुरेणोपविमृश्य खादेत् ।

वातामयो कर्णशिरोगदी च नाडीवृणी चापि भगवन्दरी च ॥ ५ ॥

रासनाद्युगुण—रासना, घुरूच, एण्डमूल की खचा, देवदार और सोड पत्तेक १-२ माग और सबके बराबर शुद्ध गुग्गुल मिलाकर मर्दन कर खाने से वात के रोगी, कान और शिर के रोगी नाडीवृण के रोगी और भगवन्दर रोग के रोगी रोगमुक्त हो जाते हैं ॥ ५ ॥

अथ कर्णपातीविकाराणां चिकित्सा

पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णस्त्वः क्रियाम् । स्वेदयेत्यनतस्तां तु स्विक्षां संवर्धयेत्तिलैः ॥ ६ ॥

पालीसंशोषण चिकित्सा—पाली के सूख जाने पर वातिक कर्णशूल में कही दुई चिकित्सा करनी चाहिये तथा यस्तपूर्वक कर्णपाली का स्वेदन करना चाहिये और स्वेदन के पश्चात् तिल को मङ्गकर कर्णपाली को बढ़ाना चाहिये ॥ ६ ॥

माहित्यनवीनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपर्युषितम् ।

नवमुसलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ ७ ॥

नवीन मूसलीकन्द के चूर्ण को भैंस के मक्खन में मिलाकर पात्र का मुखमुद्रण कर एक सप्ताह तक धान्यराशि में रख देवे पश्चात् विकाल कर उसे कर्णपाली पर लगाने से कर्णपाली की वृद्धि होती है ॥ २ ॥

शतावरीतैकम्—

शतावरीवाजिगान्धापयस्यैरण्डवीजकैः । तैलं विषपकं सखीरं पालीं संवर्धयेत् सुखम् ॥ १ ॥

शतावरी तैल—शतावरी, असगन्ध, क्षीरविदारी और परण्ड के बीजों को समान लेकर विषपूर्वक कल्प कर जितना हो उसके चौहुना मूर्चिछित तिल का तेल और तेल के चौहुना गोदुग्ध मिलाकर तैलपाक विषि से तैल सिद्धकर मलने से सुखपूर्वक कर्णपाली बढ़ जाती है ॥ १ ॥

जीवनीय तैलम्—जीवनीयपैजलौकाभिहृत्यातं समुपाचरेत् ।

उत्पातचिकित्सा—कर्णपाली में होने वाले उत्पात रोग में शीतल लेप लगावे और जलौका से रक्तमोक्षण करावे । इससे उत्पात नष्ट होता है ॥

जीवनीय चाशगन्धार्कबाकुचीबीजसैन्धवैः ॥ १ ॥

हलिनीसुरसाश्रयं च गोधाकलुवसान्वितम् । तैलं विषपकमस्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद् भ्रवम् ॥ २ ॥

जीवनीय तैल—जीवनीय, असगन्ध, मदार, बाकुची के बीज, सेवानमक, कलिहारी और तुक्षी को समानमात्र लेकर विषपूर्वक कल्प कर जितना हो उसके चौहुना मूर्चिछित तिल का तेल और गोह तथा चीबू की बसा तेल के समान मिलाकर तैलपाक की विषि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कर्णपाली में होने वाला उन्मन्थरोग अवश्य नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

दुःखवर्धनकं सिक्षत्वा जट्टवाप्राश्रयथपत्रजैः । काघैस्तैलेन सुरिन्धर्यं तत्त्वैर्णश्रावधूलयेत् ॥ ३ ॥

दुःखवर्धन चिकित्सा—दुःखवर्धन नामक कर्णपाली रोग को जामुन, आम और अथव्य के पत्तों के काथ से धोना चाहिये और इन्हीं काथों से विषित तेल सिद्ध कर उससे सिंचन करना चाहिये और इन्हीं के चूर्ण का अवश्यकन करना चाहिये । इस प्रकार की किया से दुःखवर्धनरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

बहुशो गोमवैस्तसं स्वेदितं परिलेहिनम् । वनसारैः समालिपेदज्ञामूलेण कविकैः ॥ ४ ॥

परिलेही बीज चिकित्सा—कर्णपाली के परिलेही रोग में गोधर को बहुत बार तपा र कर स्वेदन करना चाहिये और बकरी के मूत्र में कपूर को पीस कर कल्प बना कर लेप करना चाहिये इससे परिलेही रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

पथ्यापथ्यम्—

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः । गोधूमाः शालयो सुद्धा यवाश्र प्रतनं हर्विः ॥

लालो मयूरो हरिणस्तित्तरो वनकुक्कुटः । पटोलं शिरावर्तांकं सुनिष्ठणं कठिल्कम् ॥ २ ॥

रसायनानि स्वर्वाणि ब्रह्मचर्यमसाधारणम् । उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णमये हितम् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—स्वेद, विरेचन, वमन, नस्य, धूत्रपान, शिरामोक्षण (रक्तमोक्षण) आदि कर्म और गेहैं, शालीधान का चावल, मूँग, जौ, पुरानामूँग, लावापक्षी, मोर, इरिण, तितिर और वनकुक्कुट का मासा, परबल, सहिजन, बैगन, सुनिष्ठणक शाक, करैला, सभी प्रकार की रासायनिक ओषधियाँ, ब्रह्मचर्य और अल्पमात्रण ये सभी कर्णरोग में पथ्य कहे गये हैं ॥ १-३ ॥

दृष्टकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरुः । कण्ठद्वयं तुषारं च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥ ४ ॥

काष का द्रुतन करना, शिर से स्नान करना, व्यायाम करना, कफकारक और गुरुश्लेष्म का योजन करना, कान को खुबलाना और तुषार (शीत) सेवन इन सबको कान का रोगी त्याग देवे ॥ ४ ॥

इति कर्णरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ नासारोगाधिकारः

अवश्याणानिलरजोभाष्यातिश्वप्नजागरैः । नीचारयुद्धोपधानेन पीतेनान्येन वारिणा ॥ १ ॥
अत्यस्थुपानरमणेश्चर्दिबाष्पग्रहादिभिः । कुद्धा वातोल्हणा दोषा नासायां स्थानतां गताः ॥

नासारोग निदान—ओस में अधिक रहने से, वायु के अधिक सेवन करने से, धूल अधिक नासा में प्रवेश करने से, अत्यन्त याषण करने से, अत्यन्त सौनेजागने से, नीचें ऊँचे तकिये पर सोने से, अनुचित (नासा आदि) से जल पीने से, अत्यन्त जल पीने से, अत्यन्त मैथुन करने से, बमन और अशु आदि के वेग को रोकने से कुपित हुए वातादि दोष नासिका में बढ़ कर नासारोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र नासारोगाणां नामानि संख्यां चाह—

आदौ च पीनसः प्रोक्तः पूतिनास्ततः परम् । नासापाकोऽन्न गणितः पूयशोणितमेव च ॥
क्षवथुर्ध्वशथुर्दीसः प्रतिनाहः परिच्छवः । नासाशोषः प्रतिश्वयायाः पञ्च सप्तार्दुदानि च ॥ ५ ॥
चत्वार्यार्थांसि चत्वारः शोषाश्रवारि तानि च । रक्षपित्तानि नासायां चतुर्खिंश्चाहृदाः स्मृताः ॥

नासारोगों के नाम—पहले धीनस रोग कहा गया है पश्चात पूतिनास, नासापाक, पूयशोणित, धूवशु, ध्रेशु, दीप, प्रतिनाह, परिच्छव, नासाशोष, पांच प्रकार के प्रतिश्वय, सात प्रकार के अर्द्ध, चार प्रकार के अर्ध, चार प्रकार के शोष और चार प्रकार के रक्षपित्त इस प्रकार नासिका में होने वाले ३४ रोग कहे गये हैं ॥ ३-५ ॥

तेषु पीनसस्य लक्षणमाह—

आनन्द्यते शुष्यते यस्य नासा प्रदलेदमायाति च धूयते च ।

न वेत्ति यो गन्धरसांश जन्तर्जट ध्ववस्थेत्य तु पीनसेन ॥

तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं धूयात् प्रतिश्वयसमानलिङ्गम् ॥ ५ ॥

पीनस के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका (नासारन्ध) वात अथवा पित्त के द्वारा शोषित कफ से आबद्ध होती हो अर्थात् कफ आकर नासारन्ध को आबद्ध कर लेता हो और उससे श्वास का अवरोध हो जाता हो और नासिका सूख जाती हो, क्लेदित (आद्र) रहती हो तथा संताप युक्त रहती हो एवं गन्ध और रस का शान जिसमें नहीं रह गया हो उसे पीनस रोग कहते हैं । इस रोग को वात और कफ के मिलित कोप से उत्पन्न जानना चाहिये तथा इसके लक्षण प्रतिश्वय के समान जानना चाहिये ॥ ६ ॥

पूतिनासमाह—दोषैर्विद्यर्थैर्गंगालुमूलात् सन्दृष्टिष्ठो यस्य समीरणस्तु ।

निरेति पूतिमुखनासिकाभ्यां तं पूतिनासं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ७ ॥

पूतिनासा के लक्षण—जिस नासारोग में कफ, पित्त और रक्त के विद्यर्थ होने से गला और तालुमूल से दूषित हुई वायु दुर्गंध युक्त होकर मुख और नासिका से बाहर निकलता है उसे पूतिनासा रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

नासापाकमाह—

ग्राणाश्रितं पित्तमर्घिं कूर्याद् यस्मिन् विकारे चलवांश पाकः ।

तं नालिकापाक हृति व्यवस्थेद् विकलेदकोथावथ वाऽपि यत्र ॥ ८ ॥

नासापाक के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका में रहने वाला पित्त कुपित होकर नासिका में छोटी रुक्षियों को उत्पन्न कर देता है और उसमें पाक भी अधिक हो जाता है तथा आद्रता रहती है और कोथ (दुर्गंध) भी रहता है उसे नासिका-पाक कहते हैं ॥ ८ ॥

पूयरकमाह—

दोषैर्विद्यर्थैर्गंगालुमूलादेशोऽभिहृतस्य तस्तैः ।

नासा च्वेत् पूयमसुविमिश्रं तं पूयरकं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ९ ॥

पूयरक के लक्षण—जिस नासारोग में दोषों के विद्यर्थ होने से अथवा लाट में आघात होने से नासिका से रक मिश्रित पूय का स्वाव होता है उसे पूयरक (पूयशोणित) रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

धूवशुमाह, तत्राऽदौ दोषजमाह—

ग्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टे यस्यानिलो नासिकथा निरेति ।

कफानुयातो बहुशोऽथ शब्दस्तं रोगमाहुः धूवशुं विधिज्ञाः ॥ १० ॥

दोषज धूवशु के लक्षण—जिस नासा रोग में ग्राणेनिद्र्य के आश्रित जो मर्म (नासिका, नेत्र और भृकुटि का मध्य भाग) है उसमें दूषित हुई वायु कफ से मिलकर अत्यन्त शब्द करती हुई नासिका के द्वारा निकलती है उसे धूवशु (छिक्का) रोग कहते हैं ॥ १० ॥

अथाऽग्न्यनुजमाह—

तीष्णोपयोगादतिजित्रो वा भावान्कटून्तर्कनिरीचणाद्वा ।

सूत्रादिभिर्वा तस्यारिथममंयुद्वाधितेऽन्यः धूवशुनिरेति ॥ ११ ॥

आग्न्यनुज धूवशु के लक्षण—तीष्ण द्रव्यों के मध्यम करने से, कड़सौंठ, मरिच आदि पदार्थों के अंति सूखने से, सूर्य को देखने से और सूत्र, तुणादि से नासिका की तस्यारिथ के मर्म (शृंगाटक नामक मर्म) को उद्वेजित करने से जो धूवशु उत्पन्न हो जाती है उसे आग्न्यनुज धूवशु कहते हैं ॥ ११ ॥

अंशशुमाह—प्रश्रश्यते नासिकथा हि यस्य सान्द्रो विदधो लवणः कफस्तु ।

ग्राक्षस्त्रितो मूर्खनि पित्तस्तस्तं अंशशुं रोगमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

अंशशु के लक्षण—जिस नासारोग में पूर्व ही से शिरः स्थान में संचित हुणा कफ पित्त से संतप्त होकर बना, विद्यर्थ और लवण रस सुक नासिका से गिरता है वसे अंशशु रोग कहते हैं ॥ दीपमाह—ग्राणे भृशं दाहसमन्विते तु त्रिनिःसरेद् धूम हृवेद् वायुः ।

नासा प्रदीप्तेव च यस्य ज्वतोर्ध्यर्थिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ १३ ॥

दीप के लक्षण—जिस नासा रोग में नासिका अत्यन्त दाइ युक्त हो और नाक से जो श्वास निकले वह धूम की भाँति हो तथा नासिका निरन्तर जलती हुई प्रतीत हो उसे दीपरोग कहते हैं ॥

प्रतीनाहमाह—

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रूप्याप्रतीनाहमुदाहरेत्यम् ॥

प्रतीनाह के लक्षण—जिस नासारोग में कफ वायु से युक्त होकर उच्छ्वास मार्ग का अवरोध कर देता हो उसे प्रतीनाह रोग कहते हैं ॥

स्वावमाह—ग्राणाद् धनः पीतस्तित्तस्तुर्वा दोषः सूवेत् स्वावमुदाहरेत्यम् ॥ १४ ॥

स्वाव के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका से पीत वर्ण का अथवा इवेत वर्ण का गाढ़ा अथवा पतला कफ का स्वाव हो उसे स्वाव रोग कहते हैं ॥ १४ ॥

नासाशोषमाह—ग्राणाश्रिते रलेमणि भास्त्रेन पित्तेन गांठं परिशोषिते च ।

कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमध्य जन्तुर्थिमन् स नासापरिशोष वक्तः ॥ १५ ॥

नासाशोष के लक्षण—जिस नासा रोग में नासिका में स्थित कफ, वायु और पित्त के कोप से अधिक सूख जाता है जिससे मनुष्य को श्वासोच्छ्वास में कष्ट होता है उस रोग को नासा-परिशोष कहते हैं ॥ १५ ॥

प्रतिश्यायमाइ—तस्य निदानं द्विविधम्—एकं सद्योजनकं तदवलवत्तेन चर्यं जापेष्ठते । यत उक्तम्—
न केवलं चर्यं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाश् ।

अन्यदाऽपि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुस्थकारणात् ॥ १ ॥

प्रतिश्याय के निदान—प्रतिश्याय का निदान हो प्रकार का है एक प्रतिश्याय सद्योजनक होता है जो शीघ्र उत्पत्त हो जानेवाला होता है वह बलवान होने के कारण चर्य (एकत्र) होने की अपेक्षा नहीं करता । जैसे कहा गया है कि वातादि दोष मनुष्यों के शरीर में केवल संचय को प्राप्त होकर ही कुपित नहीं होते हैं अन्य भी अनेक कारणों की वहुकृता से कुपित हो जाते हैं ॥ १ ॥

धर्यादिकमशोषजनकमपरम् । तथा च—

सञ्चयः सञ्चयात्प्रकोपः ग्रकोपात्प्रसारः, प्रसारात् स्थानसंश्रयस्ततो व्यक्तिस्ततो भेद्य हृति ।

चर्यादि कम से शोषजनक दूसरा जो होता है उसे कहते हैं उसमें पहले होषों का संचय होता है, उससे कीप होता है और कोप होने पर उसका प्रसार होता है, प्रसार होने पर एक स्थान में दोष का आश्रय (निवास) होता है और तदनन्तर रोग की उत्पत्ति होती है और उत्पत्ति के पश्चात् उनमें भेद होता है अर्थात् अनेक रूपों और लक्षणों से युक्त होकर पृथक् २ नामों से वह विलयत होता है ॥

तत्र प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाइ—

संधारणाजीर्णरजोतिमायक्रोधतुर्त्वैवभृत्यशिरोभितापैः ।

प्रजागरात् स्वर्णनवाङ्मुखीतावस्थायकैमैथुनबाधपशोकैः ॥ १६ ॥

संस्थानव्योषे जिरिप्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायसुदीरयेत् ॥

प्रतिश्याय की सम्प्राप्ति—मल-मूत्रादि के वेणों को रोकने से, अजीर्ण रोग से, धूल आदि के नाक में ग्रेश हो जाने से, अर्थन्त बोलने से, अर्थन्त कोव करने से, क्रतु के विपरीत आदार-विहारादि करने से, शिर के संतस होने से (धूर्भाँ और घाम आदि के शिर में लगने से), अधिक जागने से, अधिक सोने से, नवीन जल के पीने से, अधिक शीत के सेवन से, थोस, तुषार आदि के लगने से, अधिक मैथुन करने से, अधिक अशुषापात होने से, शोक से और दोष (कफ) के शिर में अर्थन्त भर जाने से—वायु बढ़कर प्रतिश्याय रोग उत्पन्न कर देता है ॥ १६ ॥

चर्यादिकमतो बनकनिदानपूर्विकां संप्रसिमाइ—

चर्यं गता मूर्धनि मारुतदयः पृथक्समस्तात् तथैव शोणितम् ।

प्रकुप्यमाणा विवधैः ग्रकोपणैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥ १७ ॥

शिर में वात, पित्त, कफ पृथक् २ तथा समस्त तीनों मिलित त्रिदोष और रक्त ये पांचों संचित होकर अनेक प्रकार से अपने कुपित होने पर प्रतिश्याय को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १७ ॥

पूर्वरूपमाइ—

चवप्रवृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽभिपूर्णदृष्टिः परिहृष्टरोमता ।

उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधां नृणां प्रतिश्यायपुरुषसाराः स्मृताः ॥ १८ ॥

प्रतिश्याय होने के पूर्व छोंक, कफ से शिर मारी, स्तम्भ, शरीर का जकड़ना, देह का द्रट्टना, रोमाञ्च और अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं ॥ १८ ॥

वातिकस्य प्रतिश्यायस्य लक्षणमाइ—

आनदा पिहिता नासा तनुस्थावप्रसेकिनी । गलतालवोषशोषश निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥
अवैरस्वरोपवातश्च प्रतिश्याये ऽनिलात्मके ॥

वातिक प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका आमद (मरी हुर) हो और बन्द हो, पनछा और अथ स्नाव होता हो, गला, तालु और ओठ सूखते हो, शङ्ख देश में सूर्ख तुमाने के समान पीड़ा होती हो और स्वरभंग हो उसे बात के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ १९ ॥

पैचिकमाइ—उषणः सपीतकः स्नावो ग्राणात्स्ववति पैचिके ॥ २० ॥

कृशोऽपि पाण्डुसन्तसो भवेद्गुणाभिर्पीडितः । नासाय तु सधूमास्त्रिं वमतीव स मानवः ॥

पैचिक प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका से उषण और पीत वर्ण का स्नाव होता हो और शरीर अत्यन्त कुश और पाण्डु वर्ण का हो, मन संतप्त और ऊँधा से अत्यन्त पीड़ित हो तथा नासिका से ऐसा धात्र निकलता हो मानो धूमयुक्त लक्षि का वमन होता हो, उसे पित्त के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

इष्टिकमाइ—

ग्राणात्कफकृतः इवेतः कफः शीतः ख्वेद्हु । शुक्लावभासः शून्याद्वा भवेद् गुरुशिरा नरः ॥

गलतालवोषशिरसां कष्ठुभिरतिपीडितः ॥ २२ ॥

कफज्वर प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका से इवेत वर्ण का, शीतक और बहुत सा कफ गिरता हो, कानित इवेत हो, नेत्रों में शोय हो, शिर मारी हो और गला, तालु, ओठ और शिर में कण्ठ होती हो उसे कफ के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २२ ॥

सानिपातिकमाइ—भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो थोडकस्मात् सञ्चिवर्तते ।

सञ्चयको वाऽप्यपको वा त्वं सर्वप्रभवः स्मृतः ॥ २२ ॥

सानिपातिक प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय में प्रतिश्याय का वेग बार २ बड़े और घटे तथा अकस्मात् पक्ष अथवा अपक किसी भी अवस्था में हो जावे उसे सञ्चिपात के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २३ ॥

दुष्टप्रतिश्यायदिक्षमाइ—

प्रक्षिलद्वते सुहृनांसा पुनश्च परिशुद्ध्यते वाऽपि पुनर्विद्विषयते तथा ॥ २४ ॥

निःशासो वाति दुर्गन्धो नरो गन्धाच्च वेत्ति च । एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात् कृष्णसाधनम् ॥

दुष्ट प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका बार-बार क्लेदित (आद्र) हो और फिर २ सूख जावे, नासिका में कफ भर कर बन्द हो जावे और फिर खुल भी जावे तथा धात्र अति दुर्गन्धित निकले और नासिका में गन्ध का ज्वान नहीं रहे तो उसे दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं । यह कष्टसाध्य है ॥ २४-२५ ॥

रक्तमाइ—

रक्तज्वे तु प्रतिश्याये रक्तस्त्रावः प्रवर्तते । पित्तप्रतिश्यायकृतैल्लैश्चापि समन्वितः ॥ २६ ॥

ताम्रात्मक भवेजन्मुहुरोधातप्रपीडितः । दुर्गन्धोऽच्छ्वासवक्षयं गन्धानपि न वेत्ति सः ॥

रक्तज्वर प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोगों में नासिका से रक्त का स्नाव होता हो और पित्तप्रतिश्याय के सभी लक्षण उसमें सम्मिलित रहते हों, उस रोगी के नेत्र ताम्रवर्ण के हों तथा वह दर्ढे धातरोग से पीड़ित हो, इवास तथा मुँह में दुर्गन्ध हो किन्तु नासिका में गन्ध का ज्वान नहीं रहता हो । उसे रक्त के कोप का प्रतिश्याय कहते हैं ॥ २६-२७ ॥

असाध्या भवन्तोत्याइ—सर्वं एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः ।

दुष्टतां पान्ति कालेन तद्वाऽक्षाद्या भवन्ति च ॥ २८ ॥

प्रतिश्याय की असाध्यता—मनुष्य के सभी प्रकार के प्रतिश्याय प्रतिकार (विकितस) नहीं करने से कुछ दिनों में दूषित हो जाते हैं और असाध्य हो जाते हैं ॥ २८ ॥

योगरत्नाकरः

प्रतिश्यायेषु कुमयोऽपि भवन्तीत्याह—
मुच्छन्ति कुमयश्चात्र श्वेतः रिनभास्तथाऽणवः ।
कुमिजो यः शिरोरोगस्तुलयं तेनात्र लक्षणम् ॥ २९ ॥

प्रतिश्याय में कुमि की उत्पत्ति—प्रतिश्याय रोग की उचित चिकित्सा नहीं होने से तथा रक्त के दोष से होने वाले प्रतिश्याय में कुमि उत्पन्न हो जाते हैं जो श्वेत वर्ण के, रिनभ (चिकित्सा) और सूक्ष्म होते हैं उनके सब लक्षण कुमिज शिरोरोग के समान जानना चाहिये ॥ २९ ॥

प्रतिश्याया अपरानपि विकारान्कुर्वन्ति तानाह—
आविर्यमान्ध्यमग्रत्वं घोराश्च नयनामयान् । शोफाग्निसदकासाश्च बृद्धः कुर्वन्ति पीनसाः ॥

प्रतिश्याय से रोगान्तर की उत्पत्ति—प्रतिश्याय—पीनस की जब उचित चिकित्सा नहीं होती है तब वह बढ़कर वाधिये, अन्धापन, ब्रानशक्ति नाश, घोर (कठिन) नेत्रोरोग, शोथ, मन्दाग्नि और कासरोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥ ३० ॥

पीनसमारम्भ प्रतिश्यायपर्यन्तं पञ्चदशोकाः । अपराश्चतुर्जिशत्संख्यापूरणायाऽह—
अदुर्दं सप्तधा शोथाश्वारोडश्चारुविधम् । चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं ग्राणेऽपि तद्विहुः ॥ ३१ ॥

सात प्रकार के अदुर्दं, चार प्रकार के शोथ, चार प्रकार के अर्जुन और चार प्रकार के रक्तपित्त ये १९ रोग जिस प्रकार पहले कहे हैं उसी प्रकार नासिका में भी इन्हें समझें अर्थात् ये १९१९ रोग नासिका में भी होते हैं। यदं च १५ + १९ = ३४ रोग नासिका में होते हैं ऐसा समझना चाहिये ॥

चिकित्साभेदात् पीनसस्याऽमस्य लक्षणमाह—

शिरोगुक्तव्यरुचिर्वासाद्वावस्तनुस्वरः । चामः श्रीवति चाभीचणमामपीनसलक्षणम् ॥ ३२ ॥

आम पीनस के लक्षण—पीनस रोग में शिर का भारी रहना, अश्वच होना, नासिका से न्याय होते रहना, स्वर का क्षीण हो जाना, रोगी का दुबल होना और बारंबार थूकना यह लक्षण जब तक रहे तब तक पीनस रोग आम है यह जानना चाहिये ॥ ३२ ॥

पक्षपीनसस्य लक्षणमाह—

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा धनः खेषु निमउज्जिति । स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्षपीनसलक्षणम् ॥

एक पीनस के लक्षण—पीनस रोग में जब आम लक्षणों वाला कफ गाढ़ा हो जावे और इन्द्रियों में ही लुप्त हो जावे तथा रोगी के स्वर और वर्ण रोग के पूर्व की अवस्था के अनुसार हो जावे तो पीनस एक हो गया यह जानना चाहिये ॥ ३३ ॥

अथ नासारोगाणां चिकित्सा

त्रिरात्रिद्वयोऽपीनसस्य चिकित्सामाह—

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातातारागो भवेत् । शिरसोऽम्भ्यञ्जनैः स्वेदैन्वयम्भन्दोषभोजनैः ॥
वमनैर्धृतपानैश्च तान्यथास्वसुपाच्चेत् ॥ ३ ॥

पीनस रोग चिकित्सा—सब प्रकार के पीनस रोगी को निर्वात स्थान में रहना चाहिये, शिर में तैल मर्दन करना चाहिये, स्वेदन करना चाहिये, नस्य लेना चाहिये, कुछ २ उष्ण भोजन करना चाहिये, वमन करना चाहिये, घृतपान करना चाहिये और यथादोष अन्यान्य उपचार भी करना चाहिये ॥ ३ ॥

सर्जाञ्जोदुम्बरवस्तकानां त्वचाकषायैः परिधावनेन ।
कषायकल्करपि चैभिरेव सिद्धं घृतं ग्राणविपाकनाशि ॥ २ ॥

नासारोगाचिकित्सा

सर्जादि कषाय—सर्ज (चील) वृक्ष, अजुन वृक्ष, गूलर और कुटब की छाल समान भाग लेकर विधिपूर्वक काष बनाकर उससे नासिका धोना चाहिये और इन्हीं ओषधियों के कषाय और कल्क में घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से नासारोगक नष्ट होता है ॥ २ ॥

मरिचादियोगः—

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु । मरिचं गुडन दध्ना भुजीत नरः सुखं उभते ॥

मरिचादि योग—सब प्रकार के पीनस रोग उत्पन्न होते ही मरिच का चूर्ण पुराना गुड और दही मिलाकर भोजन करे तो अधिक लाभ होता है ॥ १ ॥

पञ्चमूर्यादियोगः—

पञ्चमूलीयुतं चीरं किंवा स्थान्त्रिकाभया । सर्विर्गुदो विद्धक्ष्य यूषः पीनसशान्तये ॥ ३ ॥

पञ्चमूर्यादि यूष—पञ्चमूल से विधिपूर्वक क्षीर सिद्ध कर यिलावे अथवा चित्रकमूल और हरक को समान भाग लेकर चूर्ण वा काष बनाकर सेवन करे अथवा घृत, पुराना गुड और विद्ध का यूष विधिपूर्वक बनाकर सेवन करे तो इससे पीनसरोग शमन होता है ॥ ४ ॥

गुहाद्यो योगः—

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकामं हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ।

यदि तु सप्ततमस्त्रं श्लण्णामधूमचूर्णैः कृतमुपहरतेऽस्त्री तर्कुतोऽस्यावकाशः ॥ १ ॥

गुहाद्य योग—पुराना गुड और मरिच का चूर्ण दही में मिलाकर इच्छापूर्वक पान करने से कठिन पीनसरोग भी शीघ्र नष्ट होता है और यदि घृत के साथ गेहूँ के उत्तम चूर्ण का पूयादि बनाकर सेवन किया जावे तो इससे भी पीनसरोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

वेळगोद्धूमयोगौ—

वेळगोद्धूमभोजी च निद्राकाले च शीतलम् । जलं पिबति यो रोगी पीनसान्मुच्यते नरः ॥

वेळगोद्धूम योग—जो पीनस का रोगी वायविडंग का चूर्ण और गेहूँ का चूर्ण मिलाकर रोटी आदि बनाकर भोजन करे और सोने के समय शीतल जल पीकर सोवे तो वह पीनसरोग से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

व्योषादिवटी—

व्योषिविष्रकतालीसतिसिंहीकाश्लवेतसम् । सच्चयाजाजितुश्यामेलात्कपन्नपादिकम् ॥३॥

व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडमिश्रितम् । पीनसधासकासध्नं व्योषिवरकं परम् ॥ २ ॥

व्योषादि वटी—सौठ, मरिच, पीपल, चित्रकमूल, तालीस पत्र, इमली, अरलवेत, चाव और जीरा का समान भाग चूर्ण लेवे और इलायची के दाने, दालचीनी और तेलपात चौथाई २ मात्रा लेवे और सभ्यूर्ण चर्ण जितने ही उसके दुगुना पुराना गुड मिलाकर विधिपूर्वक वटी बना कर वा चूर्ण ही सेवन करने से पीनस, श्वास और कास नष्ट होते हैं तथा भोजन में रुचि होती है और स्वर बढ़ता है ॥ १-२ ॥

कटफलादिचूर्णी काषथ—

कटफलं पौधकरं शृङ्गी व्योषं शस्त्रश्च कारवी । एषां चूर्णं कषायं वा दृश्यादाद्रकजैः रसैः ॥१॥

पीनसे व्यवस्थेदे च तस्मके सहलीमके । सज्जिपाते कफे वाते कासे श्वासे च शस्त्रते ॥ २ ॥

कटफलादि चूर्ण और काषथ—काषथ, पुहकमूल, काकडासिंगी, सौठ, मरिच, पीपल, नवासा और कृष्णजीरा के समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण अथवा काषथ बना कर उसमें अदरक का स्वरस, मिलाकर सेवन करने से पीनस, व्यवस्थेद, तमकथास, इलीमक, सज्जिपात, कफ, वात, कास और श्वास में लाभ करता है ॥ १-२ ॥

पाठादितैषम्—

पाठादितैल—पुरश्नपादी, इलदी, दाशहर्षी, मूर्च्छूल, पीपल और चमेली के कोमल पत्ते को समान भाग लेकर विधिवत् कक्ष कबाकर यथाप्रमाण मूर्छित तिल के तेल में मिलाकर तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर नस्य लेने से पीनस रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पद्मिन्दुवृत्तम्—मृदुल लवहं मधुकं च कुरुठं सनागरं गोवृतमित्रितं च ।

पद्मिन्दु घृत—आंगरा, लवंग, मुलैठी, कूठ और सौंठ को समान भाग लेकर विधिवत् कक्ष कर यथाप्रमाण मूर्छित गोवृत में मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर इस पद्मिन्दु घृत को नाक में डालने से पीनस और शिर में इनोने वाले सैकड़ों रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

कलिङ्गादिपीडः—

कलिङ्गादिकुमरिचकाचास्वरसकट्टलैः । कुष्ठोग्राशिप्रुजनुद्धनैरवयीः प्रशस्यते ॥ ३ ॥

कलिङ्गादि अवपीडक—कलिङ्ग (इन्द्रजी), हींग, मरिच, काखका स्वरस, कायफल, कूट, वच, सहिजन और वायविंग को समान भाग पीस कर इसका अवपीडनस्य लेने से पीनस रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

कफनमन्नं वातांकं कुलथाढकिमुद्रजाः । यूषाः ससैन्धवव्योधाः शस्ताश्वोणास्तु पीनसे ॥

पीनसरोग में पथ्य—कफनाशक अत्र, वैगन, कुलधी, अरहर और मूर्ग का यूष सेवा नमक और सौंठ-मरिच-पीपल का चूर्चा भिला उषा पान करने से पीनस रोग में लाग करता है ॥ ४ ॥

अपररोगाणां चिकित्सा, व्याधीतैषम्—

व्याधीकृत्तीवचाशिप्रुसुरसाध्योषसिन्धुजौः । सिद्धं तैलं नसि चित्तं पूतिनासागदापहम् ॥ ५ ॥

व्याधी तैल—छोटी कटेरी, दन्तीमूल, वच, सहिजन, तुलसी, सौंठ, मरिच, पीपल और सेवा नमक के कक्ष के साथ विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नासिका में डालने से पूतिनासारोग (नाक की दुर्गम्बि) नष्ट होता है ॥ ५ ॥

शिग्न्यादितैषम्—

शिग्निहीनिकुम्भानां वीजैः सध्योषसैन्धवैः । चिह्नपत्रसे सिद्धं तैलं स्याद् पूतिनस्तनुत् ॥

शिग्नादि तैल—सहिजन के बीज, छोटी कटेरी, दन्ती के बीज, सौंठ, मरिच, पीपल और तेषानमक के कक्ष के स्वरस के स्वरस के साथ विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नाक में डालने से पूतिनस्य रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

नासापाके पित्तनाशं विधानं कार्यं सर्वं बाह्याम्बन्तरं च ।

होद्रवं चीरितृष्णवचश्योषयः सेके सघृताश्च प्रलेपाः ॥ ७ ॥

नासापाक चिकित्सा—नासापाक रोग में पित्तनाशक सभी बाह्य और आम्बन्तर चिकित्सा करनी चाहिये और रक्तमोक्षण तथा क्षीरिवृक्ष की त्वचा (पञ्चवक्कल) के कथाय से सिङ्गन करना चाहिये और इर्ही (पञ्चवक्कल) के कक्ष में घृत मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ ७ ॥

पूयाले रक्तपित्तनाशः कपाया नावनाजित च । पाकदाहादिरोगेषु शीतल लेपादिकाः क्रियाः ॥

पूयाल चिकित्सा—पूयाल (पूरवक) रोग में रक्तपित्तनाशक कथाय और नस्यादि देना चाहिये । पाकदाहादि रोगों में (नासा पाक-दाह में) शीतल लेप आदि क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिये ॥ ८ ॥

घृतगुग्गुलमिश्रस्य सिक्षणकस्य प्रयत्नतः । धूमं चवथुरोगमन्तं अंशशुद्धनं च निर्दिष्येत् ॥ ९ ॥

क्षवथु-अंशशु चिकित्सा—घृत, गुग्गुल और मोम को मिलाकर यस्तपूर्वक नासिका में घृत देने से क्षवथु और अंशशु रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

शुण्टीकुष्ठकणाविश्वद्वाचाकलकवायवद् । तैलं पञ्चमयाऽऽज्ञयं वा नस्यात् चवथुनाशनम् ॥

क्षवथुनाशक तैल घृत—सौंठ, कूठ, पीपल, बेल की गुही और दाख इनके कक्ष और कथाय से विधिपूर्वक तैल अथवा घृत सिद्ध कर नस्य लेने से क्षवथुरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

नस्यं हितं निःवरसाज्ञानाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनमश्वस्य ।

नस्ये कृते चीरजलात्मेकान् शसनित सुज्जीत च मुद्रयूषैः ॥ ६ ॥

दीप्तरोग चिकित्सा—दीप्तरोग में नीम और रसवत का नस्य शिर में अप्यस्वेद और नस्य देने के पश्चात् दूध और जल से सिंबन करना चाहिये तथा मूर्ग के यूष के साथ मोजन करना चाहिये । इससे दीप्तरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

नासावनाहे कर्तव्यं पानं गव्यस्य सर्विषः ।

नासावनाह चिकित्सा—नासावनाह (नासावन) रोग में घृत का पान करना चाहिये ॥

नासाशोष चीरापानं ससितं च भ्रशस्यते ॥ ७ ॥

नासाशोष चिकित्सा—नासाशोष रोग में शकंरा मिश्रित दूध पिलाना चाहिये ॥ ७ ॥

नासाशोष व्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं येऽवधीडारच पथ्याः ।

तीच्छान्धूमान्देवश्चार्वसिकाभ्यां मांसं चाऽऽज्ञं पथ्यमत्राऽदिग्नन्ति ॥ ८ ॥

नासाशोष चिकित्सा—नासाशोष रोग में नाकों में पूर्वकथित लामदायक चूर्णों को नाडीयन्त्र द्वारा देना चाहिये अवपीडन नस्य तथा देवद्वार-विश्रक्तपूर्णादि से युक्त तीक्ष्ण चमों को देना चाहिये और बकरी का मांस आदि पथ्य देना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रतिश्यायप्रतीकारः—

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं चात्मविवितम् । व्योगे गुरुणोषेन विरसो वेष्टनं हितम् ॥ ९ ॥

प्रतिश्याय विकित्सा—सब प्रकार के प्रतिश्यायों में वातरहित गृह में रहना चाहिये और गुरु तथा उषणवस्त्र से शिर को वेष्टित करना चाहिये ॥ ९ ॥

बालमूलकयोर्युजः कुलथोश्चश्च पूजितः । स्वेदोषाणं च हितं भोजयं पाचनाय प्रशस्यते ॥

ततः पक्षं कफः ज्ञात्वा हरेच्छीषविदेष्वैः ।

छोटी मूली और कुलधी का यूष पिलाना चाहिये, स्वेद देना चाहिये, शीतल मोजन करना चाहिये, पश्चात् जल कफः पका दुआ शात हो तथा शिरोविरेचन देकर कफः को निकाल देना चाहिये ॥ ९ ॥

पिण्डलयः शिग्नुबीजानि विड्जं मरिचानि च ॥ १० ॥

अवपीडः प्रशस्तोद्यं प्रतिश्यायनिवारणः ।

पिण्डलय चिकित्सा—पीपल, सहिजन के बीज, वायविंग और मरिच की समान भाग का इलाद्धन चूर्णकर अवपीडन नस्य देने से प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है ॥ १० ॥

वातिके च प्रतिश्याये पिवेद् सर्पिण्यथाकम्भम् ॥ ११ ॥

पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रभयेन गणेन च ।

वातिक प्रतिश्याय चिकित्सा—वातिक प्रतिश्याय रोग में पांचों नमक के कक्ष से सिद्ध किया घृत अथवा वातनाशक गण की ओषधियों से विधिपूर्वक सिद्ध किया घृत यथाक्रम से पान करना चाहिये, इससे वातिक प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ११ ॥

रक्तपित्तोरथयोः पेयं सर्पिण्यमुखैः श्रुतम् ॥ १२ ॥

परिषेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादिपि च शीतलान् । हितं पितृप्रतिशयाये पाचनार्थं धृतं पथः ॥६॥

रक्तपित्रज्ञ प्रतिशयाय चिकित्सा—रक्तपित्र से उत्पन्न प्रतिशयाय में मधुर गण की ओषधियों से सिद्ध धृत का पान करना चाहिये और शीतल द्रव्यों का प्रदेह (लेप) और सिंचन करना चाहिये । पितृज्ञ प्रतिशयाय के पाचन के लिये दूध में धृत मिलाकर पिलाना चाहिये ॥५-६॥

शुद्धब्रेरेण पथसा शुद्धब्रेरमथापि वा ।

अदरख वा सोठ को दूध में पकाकर पिलाना चाहिये अथवा केवल अदरख का स्वरस वा सोठ का झवाय पिलाना चाहिये । इससे पितृज्ञ प्रतिशयाय का पाचन होता है ॥

सर्पिष्वा भृष्टया धाय्या शिरसो लेपतः च्छणात् ॥ ७ ॥

नासायां सप्रवृत्तं च रधिरं च विनश्यति ।

धानी लेप—आँवले को पीसकर धृत में भूनकर शिर पर लेप करने से शुण भर में नासिका से बहता दुधा रक्त (बन्द) हो जाता है ॥ ७ ॥

कफजे सर्पिष्वो द्विनग्धं तिलमाषविपक्षया ॥ ८ ॥

यावायवा वामस्तिवा तु श्लेष्ममन्तं क्रममात्रेत् ।

कफज प्रतिशयाय चिकित्सा—कफज प्रतिशयाय में तिल और उड्डक की यवांगु धृत से द्विनग्ध धिलाकर बमन कराकर कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

दार्ढीकुदनिकुम्भेश्च किणिद्वा सरलेन च । चत्योऽन्नं कृता योज्या धूमपाने यथाविधि ॥

दार्ढीदिवति—दार्ढीलही, हिंगोट, दन्ती, अयामां और सरक काष को पीसकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर धूमपान करने से प्रतिशयाय नष्ट होता है ॥ ९ ॥

विड्ङ्गं सैन्धवं द्विङ्गु गुणगुणुः समनःशिलः । प्रतिशयाये च चायुक्तं शक्त्या धूमं पिवेत्तरः ॥ १ ॥

एतच्चूर्णं समाप्नातं प्रतिशयायं विनाशयेत् ।

विड्ङ्गादि धूप—वायविंगं, सेपानमक, हींग, गुणगुण, मनसिल और बच को समान भाग पीसकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर शक्ति के अनुमार धूमपान करना चाहिए और हन्दी उपरोक्त ओषधियों के चूर्ण का नस्य लेना चाहिये । इससे प्रतिशयाय रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

धृततैलसमायुक्तं सकुरुधूमं पिवेत्तरः ॥ २ ॥

स धूमः स्याश्प्रतिशयायकासहिकाहरः परः ।

सधृत सकुरुधूम—धृत और तेल को सत्तू में मिलाकर विधिपूर्वक धूमपान करने से प्रतिशयाय, कास और दिक्का रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

प्रतिशयाये पिवेद् धूमं सर्वं गृथसमायुतम् ॥ ३ ॥

धूमयोग—प्रतिशयाय में सब प्रकार के धूमों में गोधृत मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ३ ॥

चातुर्जातिकचूर्णं वा ब्रेयं वा कृष्णजीरकम् । प्रतिशयाये खण्डिषु नवसागरम् ॥ ४ ॥

चातुर्जातिक नस्य—दाढ़चीनी, इलायची के दाने, तेजपात और नागकेशर का समान भाग दलक्षण चूर्ण कर नस्य लेने से अथवा कृष्ण जीरा के चूर्ण नौसादर का नस्य लेने से प्रतिशयाय और शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

समानं कलिकाचूर्णं सूक्ष्मं संचूर्णितं द्वयम् । गुज्जमानं तु तच्चूर्णं नस्यं प्रधमनं चरेत् ॥

नवश्यन्यनेन नस्येन प्रतिशयाय विरोहजः । प्रतिशयाये खण्डिषु नवसागरम् ॥ ५ ॥

कलिकानवसागर नस्य—नौसादर और चूना के चूर्ण को समान भाग लेकर गुज्जा के प्रमाण की मात्रा से प्रधमन नस्य देवे तो प्रतिशयाय और शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ५-६ ॥

सर्वचाचूर्णमात्रातं वाससा पोट्टलकृतम् । कारबी चम्बबद्धा वा प्रतिशयायमपोहति ॥ ६ ॥

वचादि पोटली—बच के चूर्ण को कपड़े की पोटली में बाँधकर सूखने से अथवा कृष्ण जीरा के चूर्ण को कपड़े में बाँधकर सूखने से प्रतिशयाय नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शतीतामलकीष्वेषचूर्णं सर्पिष्वान्वितम् । हरेद्वारं प्रतिशयायं पार्श्वद्वृत्तिशूलनुत् ॥ ७ ॥

शत्यादि चूर्ण—कचूर, भुइ आँवला, सोठ, मरिच और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर उसमें धृत और पुराना गुड़ मिलाकर साने से और प्रतिशयाय, पार्श्वशूल, हृदयशूल और वातशूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पुष्टपवव जयापत्रं तेलं सैन्धवसंयुतम् । प्रतिशयायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ८ ॥

जयापत्र योग—मांग के पत्ते को पुष्टपव की विधि से पाक कर उसमें तेल और सैन्धवमक मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रतिशयाय रोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

चित्रकहीरीतकी—चरवार्यन्त्र शतानि चित्रकजटायुक्तमूलामृता ।

धात्रीग्रामुदकार्मणे विभिरपां द्वौणैश्च संकायवेत् ॥

पादरथे कथने गुडस्य च ज्ञातं पथ्यादकेनान्वितं

पक्षाद्यं शृतशीतले च मधुनः प्रस्थार्धमात्रं द्विपेत् ॥ १ ॥

ध्योषस्य विशुगन्धकस्य च पलान्धन्त्रैष षट् प्रस्थिपेत्

ज्ञारस्याधंपलं रसायनमिदं संसेष्यते सर्वदा ।

शोष्यासमलावकाशवस्थुरलेपमप्रतिशयायिभिः

शीणोरःपतहिष्किभिः कफशिरोहिष्किभिः प्रनष्टामिभिः ॥ २ ॥

चित्रक हीरीतकी—चित्रकमूल, दोनों पंचमूल (समान मिलित दशमूल), गुरुन और आँवला को ४०० पल अंगतां प्रत्येक एक घंक सौ पल लेकर जी कुटकर तीन द्रोण (१२ आँढ़) जड़ में देकर काथ की विधि से काथ कर चतुर्थांश शेष रहने पर डठार छानकर उसमें पुराना गुड़ एक सौ पल मिला विधिपूर्वक कर दीरीतकी एक आँढ़क (चार प्रस्थ) का चूर्ण उसमें डाल कर अबलेह पाक की विधि से अबलेह सिद्ध कर उसमें आधा प्रस्थ मधु ढालकर-सोठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक का समान मिलित इक्षण चूर्ण है पृष्ठ तथा बावसार आधा पल मिलाकर रख लेवे । इस रसायन को सर्वदा सेवन करे तो शोष, शास, मलावरोध, बमन, कफज प्रतिशयाय, श्वीणरोग, उरःस्रुत रोग, कफ रोग, शिरो रोग (शिर की पीड़ा) और मन्दाद्वि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

हिंगवादितेलं चिकित्साकाणिकातः—

हिंगुष्योषविडङ्गकट्फलवाचार्कीचगन्धैयुते-

र्लाचाश्वेतपुननंवाद्बुद्गुजैः पुष्पोद्ध्रवैः सौरसैः ।

हस्येभिः कटुतैलमेतद्वन्ले मन्दे समूत्रं श्रतं

पीतं नासिकया यथविधि भवेद्वासामयिभ्यो द्वितम् ॥ १ ॥

हिंगवादि तेल—हींग, सोठ, मरिच, पीपल, वायविंग, कायफल, बच, कूट, छोटी इलायची, लाख, इवते पुनर्नवा, नागरमोथा, कुटज और तुलसी के पुष्प की समान भाग लेकर विधिपूर्वक कक्ष कर जितना हो उसके चौपुना मूर्च्छित सरसों का तेल के समान भाग गोमुत्र मिलाकर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर नासिका द्वारा पान करने से नासिका रोग में लाभदायक होता है ॥ १ ॥

कृमिद्वाये कमाः प्रोक्तस्तान्वै कृमिषु योजयेत् ।

धावनानि कृमिद्वाये भेषजानि च तुद्विमान् ॥ ३ ॥

नासाकृमि चिकित्सा—कृमिरोग की चिकित्सा में कृमिनाशक या चिकित्सा कही गयी है

वे सभी नासाकृमि में करें और कुमिनाशक द्रव्यों के काथ से नासा का प्रक्षालन करे तो इससे नासाकृमि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

रक्ताग्रस्वरसः शुद्धस्तकेण सह नस्यतः । तस्य पर्णनि पिष्ठा च बध्नीयाशासिकामुखे ॥२॥
परन्ति कीटकाः सद्यो योगोऽयं त्रिदिनैर्हितः । पीचसान्मुच्यते रोगी शतशोऽनुमितं खिदम् ॥

रक्ताग्रस्वरस योग—रक्तवर्ण के आम (सेंदुरिया आम) का शुद्ध स्वरस तक में मिलाकर नस्य देने से और उसी आम के पत्तों को पीसकर नाक के सुंह पर बांधने से शीघ्र नाक के कीड़े गिर जाते हैं, इस प्रयोग को तीन दिन करना चाहिये तथा इस योग से रोगी पीनस रोग से मुक्त हो जाता है, यह ऐकड़ों बार का अनुभूत योग है ॥ २-३ ॥

रक्तपित्तानि शोथाश्च तथाऽर्दांस्त्युर्दानि च । नासिकायां द्युरेतेषां स्वं स्वं कुर्याच्चिकित्सतम् ॥
रक्तपित्तादि चिकित्सा—रक्तपित्त रोग, शोथ रोग, अर्श रोग और अबुंद रोग यदि नासिका में उत्पन्न हों तो उनकी रक्तपित्तादि चिकित्सा—रक्तपित्त, शोथ, अर्श तथा अबुंद रोग इनकी चिकित्सा जैसे पहले इन रोगों के प्रकरणों में कह आये हैं वैसे ही करें ॥ ५ ॥

गृहधूमकणादारुचारनकाह्नैन्दन्धैः । सिद्धं शिखरिवीजैश्च तैलं नासार्शसे हितम् ॥ २ ॥

गृह धूमादि तैल—रसोई घर का धूम (शाला), पिपली, दारुहद्वी, यवाखार, बड़े करंब के बीज, सेंधानमक, अपामार्ग के बीज प्रत्येक सममाग का विष्युपूर्वक पका हुआ तेल नासार्श में हितकर होता है ॥ २ ॥

रक्तकरवीरपुष्पं जायं वा तथा मस्तिष्कायाः । पतैः समं तिलतैलं नासार्शोनाशनं परमम् ॥

रक्त करवीरपुष्प तेल—लाल करेन का फूल, चमेली वा जूही का फूल इनके समान तिल का तेल ढालकर पकाया हुआ तेल नासार्श रोग में परम लायदायक होता है ॥ ३ ॥

नासाशोफे चीरसर्पिः प्रधानं तैलं सिद्धं चाणुकलकेन नस्यम् ।
सर्पिष्यानं भोजनं लाङ्गूलैश्च स्नेहस्तेष्वैः रैनहिकश्चान्न धूमः ॥ ४ ॥

नासाशोफ चिकित्सा—नासिका में सूजन होने पर दूध, घृत तथा अणु तैलोक कलक से पकाया हुआ तेल नस्य में देना चाहिए तथा घृत स्नाने को दे और कलिहारी का बना तेल नासिका में लगाकर स्नेहन तथा लांगली का स्वेदन देवे और स्नेहयुक्त धूम पान करावे ॥ ४ ॥

चारोऽर्द्दशर्मासौसे च क्रियाशेषेऽप्यवेष्य च । स्थितिनिर्वातनिलये प्रगाढोषीषधारणम् ॥

गण्डूषो लहूनं नस्यं धूमरक्तुदिः शिराद्यधः ॥

सामान्य चिकित्सा—नासाबुंद तथा नासार्श रोग में क्षार का प्रयोग करे तथा ज्वेष नासारोग में विचार कर चिकित्सा करे और रोगी वातरहित स्थान में रहे, मारी पगड़ी सिर में लगेटे रहे, गण्डूष धारण करे, लहून, नस्य, धूम, बमन तथा शिरावेष करावे ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यम्—

स्वेदः स्नेहः शिरोभ्यङ्कः पुराणा यवशालयः । कुलिथसुद्रयोर्युषो ग्राम्या ज्ञाङ्गलजा रसाः ॥
वातार्तकं कुलकं शिग्रु ककोटं बालमूलकम् । लशुनं दधि तसाम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥ २ ॥
कट्वग्ललघणं शिनध्यमुण्डं च लशु भोजनम् । नासारोगे पीनसादी सेव्यमेतद्यथामलम् ॥

नासारोग में पथ्य स्नेहन, स्वेदन, सिर पर तैलाभ्यंग, पुराणा जौ, शालिघान्य, कुलशी और मूग का यूप, ग्राम्य तथा जांगल जीवों का मांसरस, वैगन, परवल, सदिजना, ककोडा, नरम मूली, लहून, दही, उणजल, वारुणी (मध्य), त्रिकुटा, कट्ट, अम्ल, लवण, स्तिनध, बल तथा हड्डा भोजन से तव पीनसादि नासा रोगों में दोषानुसार सेवन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

स्नानं कोषं शाकून्मूव्रवातवेगाङ्गुचं द्रवम् । भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगी परित्यजेत् ॥

नासारोग में अपथ्य—स्नान, कोष तथा मक, मूत्र और अचोवायु के देगों को रोकना, शोक, द्रव पदार्थों का अश्वन और भूमि पर शयन करना नासारोगी यत्नपूर्वक छोड़ देने ॥ ४ ॥
इति नासारोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ शिरोरोगनिदानम्

धूमातपतुषाराम्बुक्रीडातिस्वधनजागरैः । उत्सेधातिपुरोवातवाष्पनिग्रहरोदयैः ॥ १ ॥

अत्यर्थमुम्यापानेन कृमिभिर्वंगथारणैः । उपज्ञानम्बुद्धाद्वेषाच्च प्रततेजणैः ॥ २ ॥

असाध्यगन्धदुष्टाभाषाधौष्टिक्षिरोगातैः । शिरोरोगादतु जायन्ते वातवित्तकफेत्विभिः ॥ ३ ॥

सञ्चिपातेन रक्तन लक्षणं कृमिभिस्तथा । सूर्यावर्तानन्तवातशङ्काधार्वमेदिकाः ॥

एकादशविधस्यात्य लक्षणानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥

शिरोरोग निदान—अत्यन्त धूम लगने से, अत्यन्त आतप (आम) के लगने से, अत्यन्त शीत लगने से, अत्यन्त जल में कीड़ा करने से, अत्यन्त सोने से, शोथ से, सम्मुख अथवा पुरवेया वायु के अत्यन्त सेवन करने से, आंसुओं के रोकने से, अत्यन्त रोने से, अत्यन्त जल पीने से, अत्यन्त मध्य पीने से, कृमि के दोष से, मल-वातादि के देगों को रोकने से, ऊंचे तकिये पर शिर रख कर सोने से, अत्यन्त तैलादि मर्दन कराने से, दूष करने से, निरन्तर देखते रहने से, असाध्य (दूषित या प्रतिकूल) गन्ध सूनने से, दूषित अत्र स्वाने से और अत्यन्त बोलने से शिर में रहने वाले वात-पित्त तथा कफ तीनों दोष कुपित होकर, वातज, पित्तज, कफज, सञ्चिपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज तैया सूर्यावर्त, अनन्तवात, शखक और अर्धावेदक नाम के ११ प्रकार के शिरोरोग को उत्पन्न कर देते हैं जिनके लक्षण (आगे) कहते हैं ॥ १-४ ॥

अथ चोक्सम्—

सर्वं एव शिरोरोगः संनिवातसमुज्जवः । औरकर्थ्याद्विर्तिनितास्ते हि दशैकश्च लक्षणं च ॥ ५ ॥

शिरोरोगों का सञ्चिपातजत्व—सभी प्रकार के शिरोरोग प्रायः सञ्चिपात से ही उत्पन्न होते हैं परन्तु दोषों की उत्पत्ता (उत्कटता) (उत्कटता) के कारण विद्वानों ने दोषानुसार दस प्रकार की संका की है और एक क्षय से होने वाला कहा है इस प्रकार सब मिलाकर ग्यारह प्रकार के शिरोरोग होते हैं । जिसमें सञ्चिपात ही प्रधान है ॥ ५ ॥

वातिकस्य लक्षणमातृ—

यस्यानिमित्तं शिरसो लक्ष्य भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।

बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन ॥ ५ ॥

वातज शिरोरोग—विस शिरोरोग में मनुष्य के शिर में अकारण ही तीव्र पीड़ा होने लगती है तथा रात्रि में वह पीड़ा और भी अधिक हो जाती है और शिर को बांधने अथवा सेकादि करने से शान्त होती है उस शिरोरोग को वात के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैतिकमाद—यस्योडणमङ्गारचितं यथैव भवेत्विक्षो दद्वाति चादिनासम् ।

शीतेन रात्री च भवेत्विक्षम शिरोभितापः स तु पित्तकोपाद ॥ ६ ॥

पित्त शिरोरोग—विस शिरोरोग में शिर जलते हुए अज्ञातों से व्यास की भाँति जात हो, जोक्षों और नासिकाओं में दाह हो और वह दाह शीत के कारण रात्रि में अथवा शीतल किया से शुमन हो उस शिरोरोग को पित्त के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ६ ॥

इलैमिकमाद—

शिरो भवेत्यस्य कफोपदिव्यं गुह प्रतिष्ठितमयो हिमं च ।

शुनाचिनासावदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ७ ॥

कफज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर कक से आच्छादित हो, मारी हो, जकडा हुआ हो, शोतल हो और नेत्र, नासिका और सुंह पर शोथ हो उस शिरोरोग को कक के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ७ ॥

सूनिपातिकमाइ—

शिरोभितापे वित्तय प्रवृत्ते सर्वार्थिणि लिङ्गनि समुद्धवन्ति ॥

सान्निपातिक शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर में तीनों दोषों के सब लक्षण एकत्र उपस्थित हो जाते हैं उसे विदोष के कोप का शिरोरोग जानना चाहिये (इनमें बायु के कोप से शूल-अम और कम्प, पित्त के कोप से दाह-मद और तुषा तथा कक के कोप से गुरता और तन्द्रा आदि होते हैं) ॥

रक्तमाइ—रक्तामकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शसहस्रं शिरसो भवेच्च ॥ ८ ॥

रक्तज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में पित्तज शिरोरोग के लक्षणों के समान लक्षणों बाला कष हो और शिर का स्पर्श सहन नहीं हो उसे रक्त के कोप का शिरोरोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

क्षयजमाइ—वसावलासचत्तसम्भवानां शिरोगतानामतिसंख्येण ।

क्षय प्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टे भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ ९ ॥

संस्वेदनचूर्दनधूमनस्यैरस्युभिमोक्ष्य विवृद्धिमेति ॥

क्षयज शिरोरोग—जिसके शिर में रक्तने वाले वसा, कक और रक्त अत्यन्त क्षय हो जाते हैं उसे क्षयज शिरोरोग उत्पन्न होता है वह कष्टदायक अथवा कष्टसाध्य होता है, उसमें अत्यन्त कठिन पीड़ा होती है और रक्त देने से, वमन कराने से कष्ट बढ़ता है अर्थात् इससे और क्षय होता है और पीड़ा बढ़ती है इस प्रकार के शिरोरोग को क्षयज जानना चाहिये ॥ ९ ॥

कूमिजमाइ—

निस्तुच्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भव्यमाणं स्फुटतीव चान्तः ।

ग्राणाच्च गच्छेदुधिरं सपूर्यं शिरोभितापः कूमिभिः स घोरः ॥ १० ॥

कूमिज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर में अत्यन्त तोद (सूई चुमाने के समान पीड़ा) हो, शिर के अन्तः मांग में बाया जाता हुआ (कीड़े काटने के समान पीड़ा) और फूटना हुआ शात हो तथा नासिका से रक्त और पृथ निकलता हो उसे कूमि के दोष से उत्पन्न शिरोरोग जानना चाहिये, यह अत्यन्त कठिन होता है ॥ १० ॥

सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमतिश्वौ रक्षसम्पैति गाढम् ।

विवर्धते चांशुमतः स्वैर्व सूर्योपवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ११ ॥

शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाच्च ।

सर्वारमकं कष्टसं विकारं सूर्योपवृत्तं तमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

सूर्योवर्त्त के लक्षण—जिस शिरोरोग में शिर में सूर्योदय होते ही आँखों और भौंझों में मन्द पीड़ा प्रारम्भ होकर इस प्रकार बढ़ती हो जिस प्रकार सूर्य बढ़ते हो अर्थात् जैसे-जैसे दिन बढ़ता हो वैसे पीड़ा बढ़ती जाती हो और जैसे-जैसे सूर्य बढ़ते हों पीड़ा भी उसी प्रकार बढ़ती जाती हो और कभी शोत किया से उसमें शान्ति जाती हो कभी उष्ण किया से शान्ति जाती हो, उस सब दोषों से उत्पन्न कष्टदायक शिरोरोग को सूर्योवर्त्त अथवा सूर्योपवर्त्त कहते हैं ॥

अनन्तवातमाइ—

दोषास्तु दुष्टाद्य एव मन्यां वंपीदय गाढं सरुजां तुनीमाम् ।

कूर्वन्ति साविभुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ १३ ॥

गण्डस्थ पाश्वे च करोति कर्णं हनुग्रहं लोचनजानिकारान् ।

अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषब्रयोर्थं शिरसो विकारम् ॥ १४ ॥

अनन्तवात के लक्षण—जिस शिरोरोग में वातादिक तीनों दोष कुपित होकर मन्या नामक शिराओं को पीड़ित कर शिर के पिछले मांग (ग्रीवा) में दारुण पीड़ा उत्पन्न हो और वह पीड़ा विशेष कर आँख, मौह और शङ्ख देश में स्थित हो तथा इन्हीं नेत्रादि स्थानों को पीड़ित करती हो और कपोल के समीप एक मांग में कम्प होता हो, इनुग्रह हो और नेत्रोरोग हो उसे अनन्तवात नामक शिरोरोग कहते हैं । इसमें तीनों दोष प्रबल रहते हैं ॥ १३-१४ ॥

शङ्खकमाइ—

पित्तरक्तानिला हुष्टा: शङ्खदेशे विमूर्चितुः । तीव्रस्थदाहरोगं हि शोथं कुर्वन्ति दारणम् ॥ १५ ॥

स शिरो विषवद्वेगान्निरुद्धाराऽशु गलं तथा । विरात्रात्मवितं हनित शङ्खको नाम नामतः ॥

ज्यहं जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १६ ॥

शङ्खक के लक्षण—जिस शिरोरोग में पित्त, रक्त और वायु दूषित होकर शङ्खदेश में स्थित होकर तीव्र पीड़ा, दाह तथा मयानक शोथ उत्पन्न हो और वह शोथ विष के वेग की मात्रा बढ़ कर शीघ्र शिर और गले को अवरुद्ध कर तोन ही रात्रि में जीवन को नष्ट कर दे उसका नाम शङ्खरोग है । इसमें रोगी तीन दिन जीवित रहता है, इसलिये वैद्य इस रोग की विकितसा असाध्य समझकर करे यदि रोगी, वैद्य, परिचारक और औषध ये चारों ईश्वर की कृपा से अनुकूल हो जावे तो रोगी वह भी जाता है ॥ १५-१६ ॥

कूर्मिदेकमाइ—

रुक्षादानाद्यशनाद्यागवातावश्यमेयुनैः । वेगसंधारणायालब्ध्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १७ ॥

केवलः सकको वाऽधं गृहीत्वा शिरसो वली । मन्याभ्युक्ताकर्णचिललाटार्धेषु वेदनाम् ॥ १८ ॥

शास्त्राग्निनिमां कुर्यात्तीवां सोऽधर्वमेदकः । नयनं वाऽध्य वा श्रीत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥

अर्थवदेश के लक्षण—जिस शिरोरोग में रुक्ष पदार्थों के भक्षण करने से, अध्यशन करने से, पुरवैया वायु के अधिक सेवन करने से, अतिशीत के सेवन से, अनिमैयुन करने से, वात-मलादि के वेगों को धारण करने से, अति परिश्रम करने से और अधिक व्यायाम करने से बलवान वायु कुपित होकर वायु स्वयं अथवा कक के संक्षिप्त मिलकर आये शिर को ग्रहण कर मन्या, मौ, शङ्ख देश, कण्ठ, नेत्र और आये ललाट में पीड़ा उत्पन्न कर देता है । वह पीड़ा इतनी तीव्र होती है जितनी शक्ति अथवा वंश से काटने से होती है अर्थात् काटने के समान तीव्र पीड़ा होती है, उसको अर्थवदेश क नाम का शिरोरोग कहते हैं । यह रोग जब अत्यन्त बढ़ जाता है तब नेत्र अथवा कान को नष्ट कर देता है ॥ १७-१९ ॥

अथ शिरोरोगाणां चिकित्सा

वातिकस्थ चिकित्सामाइ—

वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदनमर्दनम् । पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १ ॥

वातिक शिरोरोग चिकित्सा—वातज शिरोरोग में स्नेहन, स्वेदन और मर्दन करना चाहिये तथा वातनाशक पान, आहार और उपनाइ कमं करना चाहिये अर्थात् मोजन, पानादि सभी वातनाशक करना चाहिये ॥ १ ॥

कूष्ठमेष्टमूलं च नागरं तक्षप्रेषितम् । कदुरुणं च शिरःपीडां भाललेपनतो हरेत् ॥ २ ॥

कूष्ठादिलेप—कूट, परणमूल की त्वचा और सौठ समान भाग लेकर तक के साथ पीस कर लेप बनाकर थोड़ा गरम करके ललाट पर लेप करने से वातज शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ २ ॥

रसः शासकुठारो यस्तस्य नस्यं विवेषतः । शिरःशूलं हरयेव विवेयं नाम्रं संशयः ॥ ३ ॥

शासकुठार रस नस्य—शासरोग की चिकित्सा में कहा दुआं जो शासकुठार रस है उसका नस्य लेने से विवेष करके वातिक शिरःशूल नष्ट होता है । इसमें संशय नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥
देवदारु न तं कुष्ठं जलदं विश्वभेषजम् । सकासिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोर्तिनुत् ॥ ४ ॥

देवदारुवर्यादि लेप—देवदारु वा धूप, तापर, कूट, जटामासी और सौठ समान भाग लेकर काँजी के साथ पीस कर उसमें स्नेह (धूत) मिलाकर शिर पर लेप करने से वातजन्य शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

कुष्ठमेरणहनुलं च लेपः कालिकपेषितः । शिरोर्तिं वातजां हन्याख्युषं वा सुखुकुन्दजम् ॥ ५ ॥

कुष्ठादि लेप—कूट और एण्डमूल की त्वचा को समान भाग लेकर काँजी के साथ पीस कर शिर पर लेप करने से अथवा मुचकुन्द के पुष्प को काँजी के साथ पीस कर शिर पर लेप करने से वातजन्य शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ५ ॥

शिरोवस्तित्रिविः—आशिरोधापि तत्त्वम् षोडशाङ्गुलमुचिष्टतम् ।

तेनाऽप्तेष्य शिरोऽधरस्तान्माषकवृक्षेन लेपयेत् ॥ ६ ॥

निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैः कोण्यैः प्रपूरयेत् । धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्धमेव वा ॥ ७ ॥

शिरोवस्तिर्हर्तयेष शिरोरोगं मरुद्वयम् । हनुमन्याच्छिकर्णार्तिमर्दितं मूर्धकप्रपत्नम् ॥ ८ ॥

शिरोवस्तित्रिविः—शिर पर लेपटने के योग्य लम्बा तथा सोलह अङ्गुल का चौड़ा चमड़ा लेकर शिर पर लेप देवे और उसके नीचे भाग में उड़द के कल्क से लेप कर मुद्रण कर देवे पश्चात् रोगी की भलीभांति लिथ्य के वैठा कर उस सोलह अङ्गुल गहरे शिर पर के चमड़े की दोपो में मुळ उष्ण तैल भर देवे तथा उसे जब तक पीड़ा शान्त नहीं हो तब तक धारण किये रखें । यह शिरोवस्ति वात के कोप से उत्पन्न शिरोरोग को नष्ट करती है और इन, मन्या, आँख और कान की पीड़ा को नष्ट करती है तथा अदितरोग और शिरःकन्प को नष्ट करती है ॥ ८-९ ॥

विना भोजनमेवै शिरोवस्तिः प्रयुज्यते । पञ्चाहं वाढपि सप्ताहं पद्धहं चैवमाच्चरेत् ॥ १ ॥

ततोऽपनीतस्नेहस्तु मोचयेद्वस्तिवधनम् । शिरोलङ्घाटवदनग्रीवांतादीन्विमर्दयेत् ॥

सुखोषोनामभासा गांत्रं प्रचारयारनाति यद्वितम् ॥ ५ ॥

इस शिरोवस्ति किया को बिना भोजन किये ही पांच दिन अथवा सात दिन अथवा छे दिन तक लगातार करनी चाहिये पश्चात् उस स्नेह (तेल) को निकाल कर बरित की सन्धियों को छुड़ा कर शिर, लङ्घाट, सुख, ग्रीवा और कन्धों का मरुदं करे और सुखोष जल से अङ्गों को धोकर दित्कारी (पथ्य) भोजन करे ॥ ५ ॥

पैतिकविकिसामाह—

पित्ताम्बके शिरोरोगे स्त्रियन्धिवेचयेत् । स्फूर्तीकाश्रिफलेज्जुर्णं रसैः चौरधूतैरपि ॥ १ ॥

शाकराजीरसलिलैः शिरश्च परिषेचयेत् । सर्विषः शतधीतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ २ ॥

पैतिक शिरोरोग चिकित्सा—पैतिक शिरोरोग में रोगी को स्नेहन देकर स्त्रियन्ध करके मुनक्का, त्रिफला, दूध, बैद्धा और आँवला के न्यूर्ण, ईख के रस, दूध और धूत विरेचन के लिये देना चाहिये तथा शक्कर, दूध और जल से शिर का सिंचन करना चाहिये और सौ बार का धोया दुआ धूत शिर में लगाना चाहिये । इससे लाभ होता है ॥ १-२ ॥

निमज्जनं च शिरसः शीतले शस्यतेऽभ्यभिः । कुमुदोप्तप्तवानां शीतानां चन्दनाम्बुधिः ॥

स्पर्शः सुखाश्च पवनाः सेष्या दाहातिशान्तये ।

शिर को शीतल जल में डुबाना चाहिये । कुमुद (कुमुदनी), नीक कमल और पश्य

(रक कमल) से युक्त चन्दन के द्वारा शीतल किये जल के स्पर्श (सिंचन) से और सुख कारक (शीतल-मन्द सुखान्त्र) बायु के लगने से दाह और पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

चन्दनोशीरथष्टुप्ताह्वलाव्याघ्रनस्तोरप्तेः ॥ ४ ॥

चीरपिष्टैः प्रदेहः स्वाच्छृत्तैर्वै परिषेचयम् । यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताचीरसिद्धं हितं धूतम् ॥ ५ ॥

चन्दन, खस, जेठीमधु, वरिआरा, व्याप्रनख और नील कमल दूध के साथ पीसकर लेप करना चाहिये अथवा इन द्रव्यों की दूध में पका कर शीतल कर (शिर पर) सिंचन करना चाहिये । इससे पित्तज शिरोरोग नष्ट होता है । अथवा जेठीमधु, चन्दन और अनन्तमूल की समान भाग लेकर कल्क कर जितना हो उसके बौयुना मूर्छिल गोधृत और धूत के बौयुना गोदुख मिलाकर पाक की विधि से धूत सिद्ध कर नस्य लेने से पैतिक शिरोरोग में लाभ होता है ।

नावनं शार्कराद्वामधुकैर्वार्डिपि पित्तजे ।

अथवा शक्करा, द्राक्षा और मुलहठी के द्वारा विविवत सिद्ध धूत का नस्य पित्तज शिरोरोग में देना चाहिये ॥

शाक्रीकसेह्वीवेरपश्यपद्मकचन्दनैः ॥ ६ ॥

दूदोशीरनलानां च मूलैः कुर्यात्प्रलेपनम् । शिरोर्तिं पित्तजां हन्याद्रक्षपित्तजं तथा ॥ ७ ॥

धार्यादि लेप—आंवला, कसेल, हाडवर (सुखन्वाका), कमल, पड़ुम काठ, चन्दन, दूध, खस और नलमूल समान भाग पीसकर शिर पर लेप करना चाहिये । इससे पित्त से उत्पन्न शिर की पीड़ा तथा रक्तपित्त से उत्पन्न शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ६-७ ॥

इसः शासकुठारोऽध्यं कर्पूरः कुकुमं नवम् । निता छायीपयः सर्वं चन्दनेनानुवर्यवेत् ॥ ८ ॥

तस्य नस्यं भिष्मधद्यातिष्टजायां शिरोरोचि ।

शास कुठारादि नस्य—श्वास कुठार रस (शास रोग की चिकित्सा में कहा दुआ), थोड़ा कपूर और नवीन केसर, मिश्री, बकरी के दूध से चन्दन विस कर नस्य देवे तो पित्तज शिरोरोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

किञ्चु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेषं तद्वितं मतम् । गुडनागरकलस्य नस्यं मस्तकशूलनुत् ॥ ९ ॥

सर्व प्रकार के शिरःशूल में यह योग लाभदायक है । युड तथा सोंठ के कल्क का नस्य शिर के शूल को नष्ट करता है ॥ ९ ॥

श्लैषिमक चिकित्सा—

श्लैषिमके लहूनं रुद्धं लेपस्वेदादिकारयेत् ।

कफज शिरोरोग चिकित्सा—कफज शिरोरोग में रुद्धन, रुक्षण, लेपन और स्वेदन करना चाहिये ॥

हरेणु नतशैलैयमुस्तैलागुरुदारभिः ॥ १ ॥

मांसीरास्तोरुकैरश्च कोणो लेपः कफार्तिनुत् ।

इरेणादि नस्य—रेणुका या सम्माल के बीज, तवर, शैलब, नागरमेथा, इकायची, अगर, देवदारु, जटामासी, रासना और एण्डमूल त्वचा को समान भाग पीसकर विधिपूर्वक लेप बनाकर थोड़ा गर्म कर लेप करने से कफज शिरोरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुण्ठीकुष्ठप्रपुजाटदेवकाषैः समाहिषैः । मूत्रपिष्टैः सुखोषेष्व लेपः श्लैषमशिरोर्तिनुत् ॥ २ ॥

शुण्ड्यादि लेप—सोंठ, कूट, पनवाड़ (चक्कड़) और देवदारु, समभाग लेकर मैस के मूत्र के साथ पीसकर थोड़ा गर्म कर लेप करने से कफज शिरःशूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

सान्निपातिकचिकित्सा—

संनिपातसमुद्धयेऽन्न धूतं तैलं च बस्तयः । धूमनस्यशिरोरेकलेपस्वेदाच्याचरेत् ॥

पुराणसर्पिषः पानं विशेषेण दिशन्ति हि ॥ १ ॥

सान्निपातिक शिरोरोग चिकित्सा—सान्निपात से होनेवाले शिरोरोग में घृत और तेल का प्रयोग, बस्तिकर्म, धूत्रपान, नस्य कर्म, शिरोविरेचन और लेप लगाना चाहिये तथा स्वेदादि कर्म कराना चाहिये और विशेष कर पुराने घृत को पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

स्मरफलतिलपलर्णीबीजसंयुक्तभूतां कुशदलघटबीजत्वग्रजोऽधर्षं शतुरथम् ।

प्रधमनविधिना तद्दत्तमात्रं शिरोस्वप्रलपनकफतन्द्रासविपातं निहन्यात् ॥ १ ॥

स्मरफलादि प्रधमन—मैनफल, तिलपर्णी, लाल चन्दन के बीज, कुश के पत्ते, जमालगोटे के बीज के छिलके इन सबको एक २ भाग और आचामाग तृतीया लेकर चूर्ण उत्तम बनाकर प्रधमन नस्य देवे तो अतिशीघ्र शिर की पीड़ा, प्रलाप, कफ, तन्द्रा और सान्निपात रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

रक्तचिकित्सा—

रक्तजे पित्तवस्तर्वं भोजनालेपसेवनम् । शीतोष्णयोश्च विन्यासो विशेषाद्रक्तमोचणम् ॥ १ ॥
रक्तज शिरोरोग चिकित्सा—रक्तज शिरोरोग में पित्तज शिरो रोग के समान सब प्रकार के भोजन और लेपादि लगाना चाहिये तथा शीत और उष्ण का विन्यास करना चाहिये अर्थात् शीत किया से यदि रोग बढ़े तो उष्ण किया करनी चाहिये और उष्ण किया से यदि रोग बढ़े तो शीत किया करनी चाहिए तथा विशेष कर रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ १ ॥

क्षयजचिकित्सामाह—

क्षयजे क्षयनाशाय कर्त्तव्यो वृहुषो विधिः । पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वात्तन्मैर्मधुरैः श्रुतम् ॥
क्षयज शिरो रोग चिकित्सा—क्षयज शिरो रोग में क्षयज को नष्ट करनेवाली वृहुष क्रिया करनी चाहिये और वातनाशक मधुर गण की ओषधियों से सिद्ध किया हुआ घृत पाने के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

योजयेत्सगुडं सर्पिष्वृत्पूरांश्च भद्रयेत् । नावनं चौरसर्पिभ्यां पानं च चीरसर्पिषोः ॥

चीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ २ ॥

पुराने गुड के साथ घृत मिलाकर खाना चाहिये और घृतपक मिठाई आदि खाना चाहिये । धूप और घृत मिलाकर नस्य देना चाहिये और पान कराना चाहिये और तिल तथा जीवनीय गण की ओषधियों को धूप के साथ पीसकर विधिपूर्वक स्वेद देना चाहिये ॥ २ ॥

कूमिजचिकित्सा—

कूमिजे तु शिरोरोगे व्योषनकाहृशिङ्गजैः । अज्ञामूव्रेण सर्पिष्टैर्नस्यं कूमिहरं परम् ॥ १ ॥

कूमिज शिरोरोग चिकित्सा—कूमिज शिरोरोग में सौठ, मरिच, पीपल, करंज के बीज और साहिजन के बीज को समग्राग लेकर बकरी के मूत्र के साथ पीसकर नस्य लेने से शिर में रहने वाले कूमि का नाश करता है ॥ १ ॥

विड्जायं तैलम्—

विड्जायं तैलम् दन्ती हिङ्गु गोमूत्रसंयुतम् । विपकं सार्वपं तैलं कूमिचनं नस्यतः इमृतम् ॥

विड्जादि तैल—वायविड्ज, सज्जी, दन्तीमूल, और हींग, को समान भाग लेकर विधिवत् कक्ष कर जितना हो उसके चौगुना मूँछिल तरसो का तैल और तैल के चौगुना गोमूत्र मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर नस्य देने से शिर के कूमि अथवा कूमिज शिरोरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

सूर्यावर्तार्थविभेदकरोश्चिकित्सा—

सूर्यावर्ते शिरोवेधो नावनं चीरसर्पिषोः । हितः चीरधूताभ्यासस्ताप्त्यां सह विरेचनम् ॥
सूर्यावर्त और अर्धावभेद चिकित्सा—सूर्यावर्त रोग में शिरामोक्षण करना चाहिये, धूप और घृत मिलाकर नस्य देना चाहिये, धूप और घृत नित्य पिलाना चाहिये और इन्हीं उद्यारों को करते हुए विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

चूङ्कराजरसरक्षागच्चीरतुल्योऽर्कतापितः । सूर्यावर्तं निहन्याशु नस्येनैव प्रयोगरात् ॥ २ ॥

चूङ्कराज नस्य—भांगरे का स्वरस और बकरी का धूप दोनों समान भाग लेकर धूप में तपाकर नस्य लेने से शीघ्र सूर्यावर्त रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

शिरीषमूलकफलैर्धर्षीडं प्रयोजयेत् । अवपीडो हितो वा स्याद्वृच्चापिष्पलिभिः कृतः ॥ ३ ॥

शिरीषादि नस्य—शिरीष और मूली के फलों को समान भाग लेकर इसका अवपीडन नस्य देने से अथवा वच और पीपल को समान भाग लेकर इसका अवपीडन नस्य देने से सूर्यावर्त रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

जाङ्गलानि च मांसानि कारयेद्वृपनाहनम् । तेनास्य शास्यते व्याधिः सूर्यावर्तः सुदाहणः ॥

जाङ्गल जीवों के मांस से सूर्यावर्त रोग में उपनाह कर्म करना चाहिये इससे कठिन भी सूर्यावर्त रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

एष एव विधिः कार्यः कृत्स्नश्चार्थविभेदके ।

अर्धावभेदक चिकित्सा—जपर कही हुई सूर्यावर्त रोग की सम्पूर्ण विधि अर्धावभेदक रोग में करनी चाहिये ।

अर्धावभेदके पूर्व स्नेहः स्वेदो हि भेषजम् ॥ ५ ॥

अर्धावभेदक रोग में प्रथम स्नेह तथा स्वेद देना ही अधिक है अर्थात् इसी से अर्धावभेदक नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

विरेकः कायशुद्धिश्च धूपः स्तिनश्चोषणभोजनम् ।

अर्धावभेदक रोग में विरेचन देना चाहिये, शरीर का शोधन करना चाहिये, धूप देना चाहिये अर्थात् धूत्रपान कराना चाहिये तथा स्तिनश्च और उष्ण भोजन कराना चाहिये ॥

विड्जानि तिलान्कृष्णान्समानिष्टवा विलेपयेत् ॥ ६ ॥

नस्यं चायाद्वृत्तरेत्समादर्घभेदं व्यपोहृति ।

विड्जानि लेप—वायविड्ज और काले तिल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक गीसकर लेप बनाकर लेप करने से अथवा इन्हीं दोनों के चूर्ण का नस्य लेने से अर्धावभेदक रोग नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

गिरिकर्णीफलं मूलं सज्जलं नस्यमाचरेत् ॥ ७ ॥

मूलं वा बन्धवेत्कर्णे निहन्त्यर्थशिरोहत्तम् ।

गिरिकर्णी फलादि नस्य—गिरिकर्णी (अपराजिता) के फल और मूल की जड़ के साथ पीस कर नस्य लेने से अथवा गिरिकर्णी की जड़ को कान में चांथने से अथवा शिर की पीड़ा (अर्धावभेदक) नष्ट होती है ॥ ७ ॥

मरिकर्णी वृजज्वावर्मरिचं शालितण्हुलः ॥ ८ ॥

अर्धावीष्टव्यथां हन्ति लेपो वा शुपिठवारिणा ।

मरिचादि योग—मरिच को भांगरे के स्वरस में अथवा शालितान के चावल के धोवन में अर्थात् भांगरे के स्वरस वा तण्डुलोदक के साथ पीस कर नस्य देने वा लेप करने से अर्धावभेदक नष्ट होता है अथवा सौठ को जड़ के साथ पीस कर लेप करने से अर्धावभेदक नष्ट होता है ॥ ८ ॥

पिवेत्सशर्करं द्वीरं नीरं चा नारिकेलज्जम् ॥ ९ ॥
सुर्यीतं वापि पानीयं सर्विं नस्यतस्तथोः ।

श्रीरामन विधि—शकरा मिश्रित दूध पीने से अथवा नारियल का जल पीने से अथवा शीतल का जल पीने से अथवा दूध और नारियल के जल के साथ विधिपूर्वक मूर्च्छित गोदृष्ट सिद्ध कर नस्य लेने से अर्धावमेदक रोग नष्ट होता है ॥ ९ ॥

सारिवादि लेप—सारिवा, कूट, जेठीमधु, वच, पीपल और नीलकमल को समान भाग लेकर बांझों के साथ पीस कर रखिए करके (घृतादि भिलाकर) लेप करने से सूर्योदर्ती और अर्धावमेदक रोग नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

लेपः सकाञ्जिकस्नेहः सूर्यादतीर्थमेदयोः ।

सारिवादि लेप—सारिवा, कूट, जेठीमधु, वच, पीपल और नीलकमल को समान भाग लेकर बांझों के साथ पीस कर रखिए करके (घृतादि भिलाकर) लेप करने से सूर्योदर्ती और अर्धावमेदक रोग नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

सिंतोपलायुतं घृष्टं मदनं गोपयोन्वितम् ॥ ११ ॥

नस्यतोऽनुदिते घृष्टे निहन्येवार्धमेदकम् ।

सिंतोपलायुत योग—मैनफल को धित कर उसमें मिश्री भिलाकर गोदृष्ट के साथ युक्तकर सूर्योदय के पूर्व नस्य देने से अर्धावमेदक रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

शाशमुण्डरसं पीतवा मरिचैरवच्चूर्णितम् ॥ १२ ॥

भोजनादौ तु सप्ताहाद्यसूर्यादतीर्थमेदको । इन्नित सवर्णमकौ शीत्रं दुःखदौ शृशदारुण्णौ ॥
शृशक के मुण्ड के मासरसमें काली मरिच का चूर्ण भिलाकर भोजन से पहले सात दिन तक पीने से सूर्योदर्ती और अर्धावमेदक जो सब दोषों से होने वाले, दुःखदार्थक, कठिन और भयहर होते हैं वे यी शीत्र नष्ट हो जाते हैं । अर्थात् इस योग से, सूर्योदर्ती और अर्धावमेदक सब प्रकार के रोग सात दिन में नष्ट हो जाते हैं ॥ १२-१३ ॥

अनन्तवातशङ्खकर्यश्चिकित्सा—

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यादतीर्थहितो विधिः । शिराद्यव्यधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ १ ॥

अनन्तवात और शङ्ख की चिकित्सा—अनन्तवात रोग में सूर्योदर्ती में लाग करने वाली विधि (सूर्योदर्ती में कही दुर्ग चिकित्सा) करनी चाहिये और अनन्तवात की शान्ति के लिये शिराद्यव्यध (शिरा छेदन) भी करना चाहिये ॥ १ ॥

आहारश्च प्रशातव्यो वातवित्तविनाशनः । मधुमस्तकसंयावधृतपूर्विशेषतः ॥ २ ॥

अनन्तवातरोग में वातपित्तनाशक आहार देना चाहिये और विशेष कर मधुमस्तक, संयाव और दृष्टपूर नामक साथ पदार्थ सेवन करना चाहिये ।

दार्ढी हरिदा मलिष्ठा सनिम्बोशीरपशकम् । प्रत्यप्लेपनं कुर्याच्छङ्खकर्त्य प्रशान्तये ॥ ३ ॥
दार्ढीदि लेप—दाशहलशी, हलदी, मरीठ, नीम की छाल, खस और पदुमकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर लेप करने से शङ्खकरोग शमन होता है ॥ ३ ॥

शीतलोयनिषेकश्च शीतलचीरलेवनम् । कलकेश्च शीरवृक्षाणां शङ्खके लेपनं हितम् ॥ ४ ॥

शङ्खकरोग में शीतल जल से शिर की सांचना चाहिये, शीतल दूध का पान करना चाहिये और छोटी छोटी की छाल को पीस कर लेप करना चाहिये । इससे शङ्खकरोग में लाग होता है ॥

अलनीलोपलं दूर्ची तिलाः कृष्णाः पुनर्नवा । शङ्खेऽनन्तवाते च लेपः सर्वशिरोर्तितुम् ॥

दार्ढीदि लेप—दारियारा, नीलोफर, दूध, तिल, पीपल और पुनर्नवा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर लेप करने से शङ्खकरोग और अनन्तवात रोग तथा शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥

सामान्यप्रतोकरमाह, पद्मिन्दुत्तेलम्—

परण्डमूलं तगरं शाताहा जीवन्ति रासना सह सैन्धवेन ।

भृङ्गं विडङ्गं मधुषिष्ठिका च विष्वीष्वर्धं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ १ ॥

अजायथस्तैलविमिश्रितं तु चतुर्गुणे भृङ्गरसे विषकम् ।

घटविन्दवो नासिक्योः प्रदेयाः सर्वाञ्चिह्नन्युः शिरसो विकारान् ॥ २ ॥

चुयुतांश्च केशांश्चलितांश्च दन्ताचिवद्मूलान्सुहृदीकरोति ।

सुर्पण्डिप्रतिमं च चङ्गः कुर्वन्ति बाह्योरधिकं बलं च ॥ ३ ॥

षट्किन्दु तैल—परण्डमूल की खचा, तगर, सौंफ, जीवन्ति, रासना, सैन्धवेन, भागरा, वायविडङ्ग, जेठीमधु और सोंठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कलक कर जितना हो उसके चतुर्गुण मूर्च्छित काले तिल का तैल और तैल के समान बकरी का दूध और तैल के चौगुमा भांगरे का स्वरस लेकर एकत्र मिश्राकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर ले बुद्ध नासिका में ढालने से सब प्रकार के शिरोरोग नष्ट होते हैं और इससे गिरे हुए केश जम जाते हैं, हिलते हुए दात बैठ जाते हैं और छांडों में अधिक बल उत्पन्न कर देता है ॥ २-३ ॥

सशकरं कुहुममाजयभृष्टं नस्यं विधेयं पवनाधुगुण्ये ।

भृशङ्गकणांसिशिरोर्धशूले दिवाभित्वृप्रभवे च रोगे ॥ ४ ॥

शकरा कुहुम योग—घृष्ट में भुने हुए कुहुम (केसर) के साथ शकरा भिलाकर नस्य बना कर वातु और रक्तोद्धर से उत्पन्न भ्रू, शङ्ख, कर्ण, अक्षि और अर्धावमेद (आधे शिर की पीड़ा) और सूर्योदर्तोग में नस्य लेना चाहिये । इस नस्य से वात-रक्तज डपरोक दोष शमन होते हैं ॥ ४ ॥

पथ्याङ्गाचावृतज्ञनीगुह्यचीभूनिष्ठनिग्न्यैः सगुडा कपायः ।

भृशङ्गकणांसिशिरोर्धशूलं निहन्ति नासानिहितः द्व्येन ॥ ५ ॥

पथ्यादि कपाय—हरध, बहेडा, अरिला, हल्डी, युरन, विरायता और नीम की छाल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काल कर उसमें पुराने गुड का प्रक्षेप लेकर नासिका द्वारा पान करने से शीघ्र ही भ्रू, शङ्ख, कर्ण, नेत्र और आधे शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ५ ॥

किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वव्येतद्वितं मतम् । गुडनागरकरकस्य नस्यं मस्तकशूलभूत ॥ ६ ॥

गुडनागर नस्य—पुराने गुड और सोंठ के चूर्ण को भिलाकर नस्य लेने से सभी मस्तकशूल नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

नागरकलकविमिश्रं द्वीरं नस्येन योजितं नृणाम् ।

नानादोयेद्भूतां शिरोहृजं हन्ति तीव्रतराम् ॥ ७ ॥

क्षीरनागर नस्य—सोंठ का विधिपूर्वक कलक कर दूध में भिलाकर नस्य लेने से अनेक दोषों से उत्पन्न तीव्रतर पीड़ा भी नष्ट हो जाती है ॥ ७ ॥

इताहैरण्डमूलोग्राच्छक्ष्यानीफलैः शृतम् । तैलं नस्यान्महृच्छलेष्मतिमिरोर्धगदापहम् ॥

शताहुदि तैल—सौंफ, परण्डमूल की खचा, वच, तगर और जोटी कटी के फल को समान भाग लेकर कलक कर जितना हो उसके चौगुमा मूर्च्छित तिल का तेल लेकर तैलपाक विधि से तैल सिद्ध कर नस्य लेने से वात-कफज रोग, तिमिररोग और कर्षणरोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

मधुराद्य धृतम्—

मधुरं पञ्चपादान्त्रशकृपित्तास्थवर्जितम् । जले पश्चवा धृतमप्यथं कृत्यन्वितरसमं पचेत् ॥ ९ ॥

दशमूलवलारासनामधुकैविफलैः सह । मधुरैः कार्षिकैः कशकैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ १० ॥

कर्णजासास्यजिह्वादिगलरोगविनाशनम् । मधुराद्यमिति ख्यातमूर्खज्ञगदापहम् ॥ ११ ॥

मधुराद्य धृत—मोर की मार उसके पंख, पैर, औत, मळ, पित्त और मुख भाग को छोड

कर अर्थात् उसके शरीर के इन अंशों को निकाल कर शेष भाग के मास को काटकर जितना हो अथवा दो प्रथ्य मास लेकर अठगुने जल में विधिपूर्वक काथ करे, चतुर्थीश (४ प्रथ्य) शेष रहने पर चतार-छानकर उसमें एक प्रथ्य मूर्छित गोधृत और एक प्रथ्य गोदुख तथा दशमूल की पृथ्य २ दसों ओषधियाँ, बरियारा, रासना, मुलहठी, इरड़, खेड़ा, आवला और मधुरवर्ग की ओषधियाँ प्रत्येक एक २ कर्ष के कल्क भिणाकर धृतपाक की विधि से धृत तिद्धकर सेवन करने से शिरोरोग और अद्वित रोग नष्ट होते हैं तथा कान, नाक, मुख, जिहा, आँख और गले के रोग नष्ट होते हैं। यह मधुराव धृत कहा जाता है। इससे जन्मरोग (गले के ऊपर के रोग) नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

नस्येन कलिकाचूर्णं नवसागरजं रजः । वातरलेघ्मभवां पीडां शिरसो हन्ति सर्वदा ॥ ४ ॥

कलिकानवसागर नस्य—चूने की कली का चूर्ण और नौसादार का चूर्ण समान भाग लेकर एक शीशी में मर देवे, इसका नस्य लेने से वात-कफज शिर की पीडा सर्वदा नष्ट होती है ॥ ४ ॥ करञ्जशिग्रीजानि पत्रकं सर्वपश्चत्वचा । सर्वेषां शीर्षरोगाणामेतद्वीर्षविरेचनम् ॥ ५ ॥

करञ्जादि नस्य—करञ्ज के बीज, सहिजन के बीज, तेजपात, श्वेत सरसो तथा दालचीनी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक सूक्ष्म चूर्ण कर नस्य लेने से सब प्रकार के शिरोरोग नष्ट होते हैं ॥

विकटकपुष्टकररजनीरासनासुरदारुसोग्रगन्धानाम् ।

काथः शिरोत्तिजालं नासापीतो निवारयति ॥ ६ ॥

विकट्वादि काथ—सोठ, सरिच, पीपल, पुहकरमूल, इत्यर्थी, रासना, देवदारु तथा अब्दमोदा अथवा अजवाहन समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर नासिका द्वारा पान करने से शिर की सम्पूर्ण पीडायें नष्ट होती हैं ॥ ६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

मावप्रकाशाच्छिरोवस्तिविधी पथ्यमुच्यते—

आमिषं जाङ्गलं पथ्यं तत्र शाश्वयादयोऽपि च ।

सुद्रान्माषान्कुलिधार्थं च खेद्वानि निशि केवलान् । कटुकोणान्ससर्विष्कानुशं चीरं विवेत्तथा ॥

पथ्यापथ्य—जांगल जीवों का मास और शालिधान का चावल आदि पथ्य हैं। रात्रि में केवल मुंग, उड्डद अथवा कुलथी खावे जिसमें विकट और धृत पदा हो और उष्ण हो अर्थात् विकट धूर्ण और धृत से तिद्ध किया हुआ गरम २ पदार्थ खावे और उष्ण दूध पीवे ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यं संहितायाम्—

स्वेतो नस्यं धूमपानं विरेको लेपः सेको लङ्घनं शीर्षवस्तिः ।

रक्तोन्मुक्तिर्हिकर्मोपनाहो जीर्ण सर्पिः शालयः चष्टिकाश ॥ १ ॥

यूचो हुव्यं धन्वमासं पदोलं गिग्रद्वाचा वास्तुक कारवेज्ञम् ।

आम्रं चात्री दाहिमं मातुलुकं तैलं तक्तं कात्तिकं लारिकेलम् ॥ २ ॥

पथ्या कुण्ड भृक्तराजः कुमारी सुस्तोशीरं चन्द्रिका गन्धसारः ।

कर्णं च ख्यातिमानेष वर्गः सेव्यो भयेः शीर्षरोगे यथाश्वम् ॥ ३ ॥

स्वेदन, नस्य, धूमपान, विरेचन, लेपन, सिचन, लहून, शिरोवस्ति, रक्तमोक्षण, अचिनकर्म (दाहादि कर्म), उपनाह तथा पुराना धृत, शालिधान और साठीधान का चावल, यूष, दूध, धन्व जीवों के मास, परवल, सहिजन, द्राक्षा, वथुआ, करैली, आम, आवला, अनार, जमीरी नीबू, तेल, तक, कोबी, नारियल, इरड़, कूट, मांगरा, धृतकुमारी, नागरसोथा, खस, चन्द्रमा की किरण, चन्दन तथा कपूर ये सभी शिर के रोगों में मनुष्यों को यथादोष सेवन करना चाहिये अर्थात् दोषानुसार ये सभी पथ्य हैं ॥ २-३ ॥

अपथ्यम्—स्वजट्टभास्मूत्रबाष्पनिद्राविद्वेगभञ्जनम् ।

दुर्घं नीलं विरुद्धजलमउज्जनम् । दृतकां दिवानिद्रां शिरोरोगी परिस्थजेत् ॥ १ ॥

अपथ्य—छीक, जम्माई, मूत्र, आसु, निद्रा और मल के वेग को रोकना और दूष, पानी, विरुद्ध भोजन, जल में विरुद्ध झुबकी लगाना अर्थात् शिर के छलांग आदि मारना, ककड़ी का दब्नधावन करना और दिन में सोना इन सबको शिरोरोगी त्वाग देवे ॥ २ ॥

इति शिरोरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ नेत्ररोगाणामधिकारः

नेत्रस्य प्रमाणमाह—विद्याद् द्वयद्वगुलबाहुवर्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसमितम् ।

द्वयद्वगुलं सर्वतः सार्धं भिषण्डं नयनमण्डलम् ॥ १ ॥

नेत्र का प्रमाण—नेत्र-गोलक को वैय अपने बैंगणे के मध्य भाग के समान हो अंगुल के प्रमाण वाला जाने और नेत्र के चारों ओर से वा लम्बाई से इसका प्रमाण वर्तमण्डल को लेकर ढाई अंगुल जाने अर्थात् वर्तमण्डल को छोड़कर नेत्र की लम्बाई हो अंगुल प्रमाण की अंगुष्ठोदर के समान वर्तमण्डल सहित ढाई अंगुल है ॥ १ ॥

नेत्रस्याकान्याह—

पश्चमवर्त्मश्वेतकृष्णहृषीनां मण्डलानि तु । अनुपर्वं तु ते मध्याश्रत्वारोऽन्त्या यथोक्तरम् ॥ २ ॥

नेत्र के अङ्ग—नेत्र में पक्षम, वर्तम, श्वेत, कृष्ण तथा इष्टि ये अङ्ग होते हैं इनमें सबसे मध्य में इष्टि होती है, फिर इष्टि सहित कृष्ण मण्डलों द्वारा श्वेतादि अंगों के मध्य में होते हैं; फिर कृष्ण सहित श्वेत भाग वर्तमादि अंगों के मध्य में होते हैं और श्वेत भाग सहित वर्तम पक्षम के मध्य में होता है ॥ २ ॥

तत्र नेत्रमण्डलेऽप्तसप्तविर्यधयो भवन्तीत्याह—

द्वादश व्याघ्रो दृष्टयां तत्रैवान्यो गदावूभौ । कृष्णभागो तु चत्वारो दर्शकाः शुक्लभागजाः ॥

वर्तमन्येको विशातिश्च पश्चमज्जी द्वौ प्रकीर्तिंतैः । नवं संविषु सर्वस्मिन्नेत्रे सप्तदगोदिताः ॥

एवं नेत्रे समस्ताः स्युरूपसप्तिरामयाः ।

नेत्रमण्डल में रोग—इष्टि में १२ प्रकार के रोग होते हैं और इसी (इष्टि) में दो और भी रोग होते हैं जो अनिमित्तक और सनिमित्तक होते हैं, इस प्रकार इष्टिगत १४ रोग हुए तथा कृष्ण भाग में ४ रोग होते हैं, शुक्ल भाग में १२ रोग होते हैं, वर्तम में २२ रोग होते हैं, पश्च में २ प्रकार के रोग होते हैं, नेत्र की सन्धियों में ९ प्रकार के रोग होते हैं और सम्पूर्ण नेत्रों में १७ रोग होते हैं। इस प्रकार सब मिलकर ७८ प्रकार के नेत्र में रोग होते हैं ॥ ३-४ ॥

सुश्रुतोक्तपृष्ठसप्तिसंख्यामाह—

चाताद्वाश तथा पित्ताकफाच्चैव त्रयोदश ॥ ५ ॥

रक्ताखोदश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः । बाह्यौ पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट् सप्ततिः स्मृताः ॥

सुश्रुत के मत से चात कोप से १०, पित्त से १० और कफ के कोप से १३, रक्ताखोदश से १६, विद्योदश से २५ और पुनः नेत्र के बाहर भाग में दो २ रोग होते हैं। इस प्रकार सब मिलकर ७८ प्रकार के नेत्र में रोग होते हैं ॥ ५-६ ॥

नेत्ररोगाणां सामान्यतो विप्रकृष्टं संनिकृष्टं च निदानमाह—

उद्दण्डभित्सर्ष जलप्रवेशाद् दूरेष्वणारस्वर्णविपर्याच ।

स्वेदाद्वज्जोधूमनिषेदणाच्च छद्वेषिंशाताद्वज्जनातियोगात् ॥ ७ ॥

योगरत्नाकरः

द्रवाद्वपानातिनिषेवणाऽच विष्मूक्रवातकमनिग्रहाच्च ।
प्रसाक्संरोदनबोकतपाच्छुरोभिवातादतिमध्याणात् ॥ ८ ॥
तथा अत्यन्तं च विषयं येण कलेशाभितापादतिमधुनाच्च ।
आप्यग्राहारसुचमनिरीक्षणाऽच नेत्रे विकारासनव्यन्ति दोषाः ॥ ९ ॥

नेत्र रोगों के निदान—ज्वर्मा से अभितस द्वाकर अर्थात् धूप अदि से, शीतल जल से प्रवेश करने से, दूर तक दृष्टि दौड़ाने से, सोने में विपरीत आचार करने से (दिन में सोने और रात्रि में जागने से), नेत्र में स्वेद धूल और धूम रखने से, वमन के वेग का अवरोध करने से वा अवरोध होने से, अत्यन्त वमन होने से, अत्यन्त द्रव अनन्त तथा यैय पदार्थों के अति सेवन करने से, मल, मूत्र और अन्नोदयु के वेग को कम से निरन्तर रोके रहने से, निरन्तर शोक करने से, ताप अधिक लगने से, शिर में आघात हो जाने से, अत्यन्त मल पीने से, अत्यु के विपरीत कार्य (आहार-विहार आदि ऋतुचर्या) करने से, कलेश (मानसिक कलेश) के अधिक होने से, मानसिक ताप के अधिक होने से, अत्यन्त मैशुन करने से, नेत्र के बाष्प (आनन्द वा शोक के कारण नेत्रों में उत्पन्न हुए अंसू का वा अशुद्धेग) को रोकने से, अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ को प्रवास करके देखने से, वातादिक दोष कुपित होकर नेत्र में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं ॥

नयनरोगसंप्राप्तिः सुक्ष्मे पञ्चते—

शिरानुसारिभिर्दोषैविषुणैस्त्वर्धमाश्रितैः । जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारणाः ॥

नेत्रभागेषु नेत्रस्य इष्टव्याद्यवयवेषु च ॥ १० ॥

शिराओं के अनुसार चलने वाले वातादि दोष जब विषुणि (दूषित वा कुपित) होकर नेत्र के ऊपर हो जाते हैं तब कठिन २ रोग उत्पन्न हो जाते हैं । अर्थात् नेत्र के भिन्न २ भागों में तथा नेत्र की दृष्टि आदि जो अवयव हैं उनमें रोगों को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १० ॥

आदौ दृष्टिरोगानाह, तत्र दृष्टिलक्षणम्—

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजायम् । खयोत्तिविस्फुलिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः ॥ ११ ॥
आदृतां पटलेनाक्षोर्बाह्योन विवराकृतिस्य । शीतसाम्यां नृणां दृष्टिमाद्वृत्यनचिन्तकाः ॥ १२ ॥

दृष्टि के लक्षण—मसूर के दाने के प्रमाण पञ्चभूतों के (पृथ्वी आदि महाभूतों के) प्रसाद (अंश) से उत्पन्न हुई ख्योत के प्रकाश तथा अङ्गारे के समान अक्षय तेज से निमित अँखों के बाहर के पटलों से विरि (ढको) हुई विवर (छिद्र) की आकृति वाली शीतसाम्य (शीतलता से साम्य रहने वाली) जो वस्तु नेत्र में है उसे दृष्टि कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

तत्र पटलानि चत्वारि भवन्ति तान्याह—

तेजोज्जलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यविषिताश्रितम् ।

मेदस्तुतीयं पटलमाश्रितं त्वस्तिन्द्रियाद्यस्थि । पञ्चमांशसमं इष्टेस्तेषां बाहुदृश्यमिष्यता ॥ १३ ॥

दृष्टिपटल प्रथम पटल नेत्र के बाहर का है वह तेज तथा जल के आश्रय है, (यहाँ पर तेज से रक्त और जल से रस ग्रहण करना चाहिये अर्थात् प्रथम पटल रक्त और रस के आश्रय है) द्वितीय पटल मांस के आश्रय है, तृतीय पटल मेद के आश्रय है, और चतुर्थपटल अस्थि (काढ़क नाम की अस्थि) के आश्रय है। इनमें प्रत्येक का विस्तार दृष्टि के पांचवें अंश के समान जानना चाहिये ॥ १३ ॥

तत्र प्रथमपटलगतस्य दोषस्य स्वभावमाह—

प्रथमे पटले दोषो यस्य इष्टव्याद्यविश्वितः । अन्यक्त्वानि च रूपाणि कदाचिद्यथ पश्यति ॥
पटलगत दोष—प्रथम पटल में खब दोष कुपित होते हैं तथा मनुष्य कभी अव्यक्त

नेत्ररोगनिदानम्

अस्पष्ट वा दोषों के अनुसार नीले, काले, पीले, द्वेष और चिकित (कम से बात, पित्त-कम और सक्रियात के कोप के अनुसार) रूपों को देखता है और जब दोषों के कोप में न्यूनता होती है तब स्पष्ट भी देखता है ॥ १४ ॥

दृष्टेरभ्यन्तरे दोषाः पटले समधिष्ठिताः । एकैकमनुपर्यन्ते पर्यायापटलान्तरम् ॥ १५ ॥

दृष्टि के भीतर की ओर पटल में स्थित हुए दोष कम से एक गाढ़ के बाद दूसरे पटल में यथाकम से प्राप्त ही जाते हैं ॥ १५ ॥

द्वितीयपटलगतदोषस्वभावमाह—

दृष्टिर्भूतां विहृलति द्वितीयं पटलं गते । भिक्षिकाभिकान्केशान्जालकानीव पश्यति ॥ १६ ॥

मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च । पारिप्लवांश्च विविच्छान्वर्षमन्त्रं तमासि च ॥

दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः । समीपस्थानि दूरे च इष्टेगोचरविग्रहाद् ॥ १८ ॥

यत्नवानपि चार्यथं सूचीपाणीं च पश्यति ।

द्वितीय पटलगत दोष—जब दोष मनुष्य की दृष्टि के दूसरे पटल में प्राप्त ही जाते हैं तब दृष्टि अत्यन्त व्याकुल हो जाती है जिससे मक्खी, मच्छर, केश और जाल आदि की भाँति नेत्री के सामने निरन्तर दिखाई देती हैं और मण्डल, पताका, किरण, कुण्डल, अनेक प्रकार के परिप्लव (मैदाक आदि का कूदना, फौदना आदि) दिखाई देना, अनेक प्रकार के वर्षा मेष और अवकाश आदि का दिखाई देना, दूर की वस्तुओं का समीप दिखाई देना और समीप की वस्तुओं का दूर दिखाई देना ऐसा दृष्टि में अम हो जाता है तथा अत्यन्त यत्न करने पर ओर सूर्य के छिद्र की नहीं देखता है ॥ १६-१८ ॥

तृतीयपटलगतदोषमाह—

तद्वर्व पश्यति नाधस्तात्त्वीयं पटलं गते ॥ १९ ॥

महान्ययिष्य च रूपाणि द्वादितानीव चालवैः । कर्णनासाद्विरूपाणि विकृतानीव पश्यति ॥

तृतीय पटलगत दोष—जब दोष मनुष्य की दृष्टि के तोसरे पटल में प्राप्त ही जाते हैं तब वह मनुष्य ऊपर की वस्तु को देखता है और नीचे की वस्तु को नहीं देखता और महान् अव्यव बढ़ी वस्तु की खब अव्यव मेषादि से बाच्छादित की भाँति देखता है तथा दूसरे मनुष्य के मुख को देखकर उसके कान-नाक और आँख के रूप (आकार) को विकृत देखता है ॥ १९-२० ॥

रागप्राप्तिमाह—

यथादोषं तु रज्येत दृष्टिदोषै वलीयसि । अधस्थे तु समीपस्य दूरस्य चोपरिस्थिते ॥ २१ ॥

पार्श्वस्थिते पुनदोषै पार्श्वस्थिति न पश्यति । समन्तरः स्थिते दोषै संकुठानीव पश्यति ॥

दृष्टिमध्यस्थिते दोषै महद्वस्त्रं प्रपश्यति । दोषै दृष्टिमध्यस्थिते दिव्याः ॥ २३ ॥

द्विधा स्थिते विधा पश्येद्वृद्ध्वासा वादनविश्वेते ॥

राग प्राप्ति—दृष्टि में ओर दोष (वातादिक) वक्तव्य होते हैं उनके अनुसार उस वर्ण का दृष्टि के सामने रूप दिखाई देता है अर्थात् यदि वात का कोप अधिक होता है तो अवण वर्ण दिखाई देता है, पित्त का कोप अधिक होता है तो पीतवर्ण दिखाई देता है और कफ का कोप अधिक होता है तो द्वेष वर्ण दिखाई देता है । अब दोष नेत्रमण्डल के नीचे भाग में कुपित होते हैं तब समीप की वस्तुओं नहीं दिखाई देती है और जब दोष लक्षण के भाग में कुपित होते हैं तब दूर की वस्तुओं नहीं दिखाई देती है और जब दोष नेत्र के दोनों पार्श्व भाग में कुपित होते हैं तब अगल बगल की वस्तुओं नहीं दिखाई देती है तथा जब दोष नेत्रमण्डल के चारों ओर कुपित होते हैं तब मिश्रित वा अन्यान्य रूपों की वस्तुओं दिखाई पड़ती है अर्थात् उचित रूप नहीं दिखाई पड़ता है । जब दृष्टि के मध्य में दोष कुपित होते हैं तब बड़ा पदार्थ मी छोटा दिखाई पड़ता है ।

दोष चब दृष्टि में तिरछा कुपित होते हैं तब एक वस्तु दो दिखाई देता है। दोष चब दृष्टि में तिरछे दो भागों में कुपित होते हैं तो एक वस्तु तीन भागों में विभक्त दिखाई देता है और यदि दोष अनवस्थित (अनिश्चित) स्थान में कई जगह वा जहाँ कई नेत्र में कुपित होते हैं तब अनेक प्रकार का रूप दिखाई देता है ॥ २१-२२ ॥

चतुर्थपटलगतदोषमाह—

तिमिराश्वयः स वै दोषश्तुथुर्थं पटलं गतः ॥ २४ ॥

सण्डि सर्वतो दृष्टि लिङ्गनाश हृति क्षचित् । अस्मिन्द्वयि तमोभूते नातिस्थृदे महारोग ॥२५॥
चन्द्रादित्यो सनकत्रावन्तरिष्ठे च विद्यातः । निर्मलानि च तेजासि आजिण्णनि च पश्यति ॥

चतुर्थ पटल गतदोष—जब दोष नेत्रमण्डल के चतुर्थ पटल में कुपित होते हैं तब तिमिररोग उत्पन्न करते हैं। इससे चारों ओर की दृष्टि रुक जाती है। कोई र इसे लिङ्गनाश रोग भी कहते हैं इस महारोग के अत्यन्त प्रबल नहीं होने पर अन्धकार मात्र दिखाई देता है और इस अवस्था में भी चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, आकाश का विद्युत, निर्मल तेज और दोष तेजों को देखता है ॥ २४-२६ ॥

स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका काचसंक्षितः ॥

वदो लिङ्गनाश रोग नीलिका और काच भी कहा जाता है।

दृष्टिरोगाणां संख्या नामानि चाऽस्ति—

दृष्टयाश्रयाः पट्च घटेव रोगाः पद्मलिङ्गनाशा हि भवन्ति तत्र ।

वातेन पित्तेन कफेन सर्वे रक्तारपरिस्त्रायभिश्वक षष्ठः ॥ २७ ॥

दृष्टि के रोगों की संख्या—दृष्टि के आश्रित हो रोग होते हैं और अन्य भी हो लिङ्गनाश होते हैं इस प्रकार वारद रोग कहते हैं। उनमें वात, पित्त, कफ, प्रिदोष, रक्त और परिम्लायी भेद से ही प्रकार का लिङ्गनाश होता है ॥ २७ ॥

तथा नरः पित्तविदध्वदृष्टिः कफेन चान्यस्वयं धूमदशीर्णी ।

या हस्तजाड्यो नकुलान्धसंज्ञो गड्मीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥ २८ ॥

मनुष्य की दृष्टि से पित्त विदध्व दृष्टि होती है तथा कफ से कफविदध्व दृष्टि, धूमदशीर्णी, हस्तजाड्य, नकुलान्ध्य और गड्मीर नामक दृष्टि के हो रोग होते हैं। इस प्रकार लिङ्गनाश और दृष्टि के मिलकर वारद रोग होते हैं ॥ २८ ॥

तत्रैव दावन्यावाह—तत्रैवान्यौ गदी द्वौ च सञ्चिपातनिमित्तकौ ॥

इसी प्रकार सञ्चिपात के कारण दो अन्य और भी दृष्टिरोग होते हैं ॥

तेजु वातजस्य लिङ्गनाशस्य लक्षणमाह—

वातेन खलु रूपाणि अमन्तीव स पश्यति ॥ २९ ॥

आविष्टान्धरुणाभानि द्याविद्वानीव मानवः ।

वातज लिङ्गनाश—वात का कोप जिस लिङ्गनाश में होता है उसमें रोगी रूपों को धूमता हुआ देखता है और मलिन, अरुण आमायुक्त तथा कुटिल रूपों को देखता है ॥ २९ ॥

पैतिकमाह—पित्तेनाऽस्तिरित्यखलोतशक्तचापतिदिवगुणान् ॥ ३० ॥

नृथतस्त्रेव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥

पैतिक लिङ्गनाश—पित्त के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी सूर्य, खचोत (जुगनू), इन्द्रधनुष तथा विषुद् (विजली) आदि के रूपों को देखता है अर्थात् उसके नेत्रों में इन सब पदार्थों की आमा अनायास हुआ करती है और उसे नाचते हुए मोर की भाँति एवं सह वस्तुओं का रूप नील वर्ण का दिखाई देता है ॥ ३०३१ ॥

श्लैषिमकमाह—कफेन पश्येदूपाणि लिङ्गनाशनि च वितानि च ॥ ३३ ॥

सलिलप्लावितानीव परिजाह्यानि मानवः ।

कफज लिङ्गनाश—कफ के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी स्त्रियों और श्वेत रूपों को देखता है और जल में छूब कर सब पदार्थ गीले हो गये हैं—इस प्रकार के भीगे हुए वर्ण के रूपों को देखता है ॥ ३१ ॥

सञ्चिपातजमाह—संनिपातेन चित्राणि विष्णुतानि च पश्यति ॥ ३२ ॥

बहुधाऽपि द्विधा वाऽपि सर्वार्थेव समन्ततः ।

हीनाधिकाङ्गान्ध्य वा उयोर्तीव्यपि च भूयसा ॥ ३३ ॥

सञ्चिपातन लिङ्गनाश—सञ्चिपातन के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी चित्रविचित्र और विपरीत वा विकृत रूपों को देखता है एवं सभी प्रकार की वस्तुओं को अनेक प्रकार के रूपों से शुक्र देखता है और प्रायः करके अच्छे रूप को भी हीनाङ्ग वा अधिकाङ्ग देखता है अथवा ऊर्ध्वार्थीयों (नक्षत्रादिकों) को देखता है (इस प्रकार के रूप की आवा उसके सामने चमका करती है) ॥ ३२-३३ ॥

रक्तजमाह—

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च । हरितान्ध्य वृष्ट्यानि पीतान्ध्यपि च मानवः ॥

रक्तज लिङ्गनाश—रक्त के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी रक्त वर्ण का ही सब प्रकार की वस्तुओं का रूप देखता है अर्थात् अनेक प्रकार के अन्धकारों को देखता है तथा हरे, कुण्डलवर्ण के तथा पीत वर्ण के भी रूपों को देखता है (उसको सब वस्तु काळ, काली, द्वीरी, पीकी दिखाई पड़ती है) ॥ ३४ ॥

परिम्लायिनमाह—

रक्तेन मूर्च्छितं पित्तं परिम्लयिनमाचरेत् । तेन पीता दिशः पश्येद्वृद्धन्तमिव भास्करम् ॥

विकीर्यमाणान्धस्यतैर्वृद्धास्तेऽन्तिर्वासि चैव हि ।

परिम्लायी लिङ्गनाश—दूषित रक्त से मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायी नामक लिङ्गनाश रोग को उत्पन्न कर देता है। परिम्लायी लिङ्गनाश का रोगी दिशाओं को बदय द्वारा होते हुये सूर्य के समान पीतवर्ण का देखता है और खूबों को खूबों (जुगुरुबों) से व्याप देखता है एवं तेजों को विकीर्ण (छितराया हुआ) देखता है ॥ ३५ ॥

नेत्रवर्णः घटिविधिं लिङ्गनाशमाह—

वातादिजनितैर्नेत्रवर्णैरपि च बहविधः ॥ ३६ ॥

लिङ्गनाशे निगदितो वर्णो वातादिजो यथा ।

लिङ्गनाश के भेद—वातादि दोष से उत्पन्न हुए नेत्रों के वर्ण के अनुसार ही प्रकार का लिङ्गनाश कहा जाया है। उसमें नेत्र का वर्ण वातादि दोष के वर्णों के समान (जो आगे कहा जायेगा) होता है ॥ ३६ ॥

रागोऽह्यो मातृजः ग्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् ।

कफादिसतः शोणितजः सरकः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३७ ॥

वात के कोप से नेत्र का वर्ण अरुण होता है, परिम्लायी और पित्त से म्लायी (पीत-नील भिन्नता) और नीलवर्ण नेत्र का नाश होता है, कफ से नेत्र का वर्ण इवते होता है, रक्त से नेत्र का वर्ण रक्त होता है और सब दोषों (विद्वेषों) से चित्र विचित्र (अनेक वर्ण का) नेत्र का वर्ण हो जाता है। इन वर्णों के अनुसार भी नेत्र में ही प्रकार के लिङ्गनाश होते हैं ॥ ३७ ॥

कातादिना हेतुभूतेन जनिते नेप्रमण्डले रूपविशेषमाह—
अरुणं मण्डलं वाताच्छ्वलं परुषं तथा । पित्तामण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ ३८ ॥
श्लेष्मणा बहलं सिंधु दश्मुकुन्देन्दुपाऽद्वरम् । चलत्पद्माशस्यः शुक्रो विन्दुरिवाग्मसः ॥
सङ्कुचस्यातपेऽस्यर्थं छायायां विस्तुतो भवेत् । मृद्धमाने तु नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ४० ॥

बातादि दोषों के कारण नेप्रमण्डल के विशेष लक्षण—वात के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में नेत्र का मण्डल अरुणवर्ण का, चश्वल और कठोर (खरस्पर्श) होता है । पित्त के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल ईषत् नीलवर्ण, कस्ते के वर्ण का (पीतता युक्त पाण्डु) अंतर्वा पीत वर्ण का हो जाता है । कफ के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल घना वा अत्यन्त मोटा लिंग, शङ्ख के समान वा कुन्द पुष्प के समान इवेत तथा चन्द्रमा के समान का अथवा हिलते हुए कमल के पत्र पर स्थित जलबिन्दु के समान इवेत वर्ण का हो जाता है तथा वह मण्डल धूप में अत्यन्त सङ्कुचित हो जाता है और छाया में फैल जाता है एवं आंख के मलने पर वह मण्डल इवर-डधर फैल जाता है ॥ ३८-४० ॥

मण्डलं तु भवेच्चिन्नं लिङ्गनाशो त्रिदोषजे । प्रवालपश्चपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ४१ ॥
त्रिदोष के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल चित्र-चिचित्र वर्ण का हो जाता है । रक्त के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल प्रवाल (मूर्गे) का वर्ण का अथवा रक्तकमल के वर्ण का हो जाता है ॥ ४१ ॥

रक्तजं मण्डलं दृष्टौ स्थूलं काचाराणप्रभम् । परिग्लायिनि रोगे स्यान्मलानं नीलं च मण्डलम् ॥
दोषस्यात्स्वयं सत्र कदाचित्स्यात् दर्शनम् ।

दृष्टि में रक्त के प्रसाद वा तेज से उत्पन्न मण्डल स्थूल (मोटा) रक्तवर्ण के काच की प्रसा का हो जाता है । परिग्लायी नामक लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल म्लान (पीत-नील मिश्रित) वर्ण का और नीलवर्ण का हो जाता है और कभी कभी दोषों के क्षीण हो जाने से आप से आप (स्वतः) सब पदार्थों का रूप दिखाई देने लगता है अर्थात् इस रोग में कभी २ दृष्टिं विना चिकित्सा के भी ठीक हो जाती है ॥ ४२ ॥

अनुकूल्यथादाहैरवादिदोषलिङ्गसङ्क्षयहर्थमाह—

यथार्थं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ४३ ॥

सभी प्रकार के लिङ्गनाशों में दोषों के अपने २ लक्षण प्रकट होते हैं ॥ ४३ ॥

पित्तेन दुष्टेन गतेन त्रुदिं पीता भवेद्यस्य नरस्य हृष्टिः ।

पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत् वै नरः पित्तविद्यम्भृष्टिः ॥ ४४ ॥

पित्त से विद्यम्भृष्टि के लक्षण—जिस मनुष्य की दृष्टि कुपित होकर वह हुए पित्त के कारण पीतवर्ण की हो जाती है उसे सभी वस्तुओं पीतवर्ण की ही दिखाई देती है । उस मनुष्य की दृष्टि को पित्त विद्यम्भृष्टि कहते हैं ॥ ४४ ॥

तस्मिन्नेव पित्ते दृष्टौ त्रुतीयं पटलं गते रूपविशेषण दिवान्वलक्षणमाह—

प्राप्ते त्रुतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येच्चित्रि वीक्षते सः ।

रात्री स शीतानुगृहीतहृष्टिः पित्तालपभावासकलानि पश्येत् ॥ ४५ ॥

दिवान्वय के लक्षण—जिस मनुष्य की दृष्टि पित्त से विद्यम्भृष्टि हो जाती है और वह दृष्टिं दोष वा त्रुतीय पटल में प्राप्त हो जाता है तब उसे दिवा में नहीं दिखाई देता, रात्रि में दिखाई देता है और रात्रि में शीत (दृष्टि के पित्त के शमन करने में) सहायक होता है इसीसे रात्रि में उसे दिखाई देता है तथा पित्त के अस्पष्ट हो जाने से उसे सभी वस्तु विखाई देती है ॥ ४५ ॥

इलेष्मविद्यम्भृष्टिलिङ्गमाह—

तथा नरः इलेष्मविद्यम्भृष्टिलिङ्गमाह शुक्लानि हि मन्यते तु ।

इलेष्मविद्यम्भृष्टिके लक्षण—उसी प्रकार कफ के कुपित होकर वह जाने से दृष्टि कफ से दूषित हो जाती है, उसमें मनुष्य सभी प्रकार के रूपों को इवेतवर्ण का ही देखता है । इस नेत्ररोग की कफविद्यम्भृष्टिकहते हैं ॥

नक्तान्ध्यमाह—निषु रित्थो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापद्यति प्रसद्य ॥ ४६ ॥

दिवा स सूर्यानुगृहीतहृष्टिः पश्येत् रूपाणि कफालपभावाय ।

नक्तान्ध्य के लक्षण—जब दोष (कफ) तीनों पटलों में स्थित हो जाता है तब नक्तान्ध्य रोग को उत्पन्न कर देता है अर्थात् रात्रि में उसे नहीं दिखाई देता है । दिन में सूर्य के तेज से कफ की अवस्था होती है इसलिये दिन में सभी प्रकार के रूपों को देखता है । इस रोग का प्रचलित नाम रत्नाची है । (दिवान्वय में दिन को नहीं दिखाई देता है, नक्तान्ध्य में रात्रि में नहीं दिखाई देता है । दिवान्ध्य में तुतीय पटल में पित्त दूषित होता है, नक्तान्ध्य में तीनों पटलों में कफ दूषित होता है । यथापि दिवान्ध्य में तुतीय पटल में पित्त का दूषित होना कहा है किन्तु प्रथम द्वितीय पटल के दूषित हुए विना तुतीय में दोष प्राप्त होना असम्भव है । अतः इन दोनों में प्रतिकूक समता है ऐसा जानना चाहिये) ॥ ४६ ॥

धूमदर्शिनमाह—

शोकजवरायासशिरोभितापैरभ्यकहता यस्य नरस्य हृष्टिः ॥ ४७ ॥

धूम्रांस्तु यः पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रविष्टः ।

धूमदर्शी के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि शोक, उवर, परित्रम, शिरोध्यया आदि कारणों से पीड़ित होती है और वह सभी द्रव्यों को धूम्र के समान ही देखता है उसे धूमदर्शी कहते हैं अर्थात् धूमदर्शी के ये लक्षण हैं । इसमें भी पित्त दोष का ही कोप रहता है और दिन में ही जब पित्त का प्रकोप रहता है तभी धूम के वर्ण की सभी वस्तुयें दिखाई देती हैं रात्रि में नहीं । आचार्य गदाधर के मत से यह रोग वाया (प्रथम) पटल में होता है और आचार्य कार्तिक के मत से तुतीय पटल में, किन्तु पित्त का प्रकोप सभी मानते हैं और निदान भी पित्त प्रकोप के ही है । अतः पैतिक जानना चाहिये ॥ ४७ ॥

हस्तजाङ्गमाह—यो वासरे पश्यति कष्टोऽथ रूपं महज्जापि निरीक्षेऽप्यम् ॥ ४८ ॥

रात्री पुनर्यः प्रकृतानि पश्येत् हस्तजाङ्गो भुनिभिः प्रविष्टः ।

हस्तजाङ्ग के लक्षण—जो मनुष्य दिन में कठिनता से देखता है और महान् बन्धु को भी अस्पष्ट (लघु) देखता है और रात्रि में सभी वस्तुओं के उचित रूप देखता है उस मनुष्य के नेत्र दोष को हस्तजाङ्ग रोग कहते हैं । यह भी पैतिक रोग है और इसमें दोष की स्थिति दृष्टि के मध्य में होती है ॥ ४८ ॥

तन्त्रान्तरे—दृष्टिमध्यस्थिते दोषे भद्रद्वस्त्रं न पश्यति ।

रात्री पित्तालपभावात् तनिं रूपाणि पश्यति ॥

हस्तजाङ्ग के अन्य लक्षण—जब मनुष्य की दृष्टि के मध्य में दोष स्थित होता है तब वह महान् रूप को हस्त (लघु) देखता है और रात्रि में पित्त की अवस्था होने से उसी रूप को (रूप) देखता है ॥

नकुलान्ध्यमाह—

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपञ्चा नकुलस्थ यद्वत् ॥ ४९ ॥

चित्राणि रूपाणि दिवा स परथेस्स वे विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ।

नकुलान्ध्य के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि दोषों (चिदोषों) से व्यास होकर नकुल की दृष्टि के समान वर्ण और प्रतिभा वाली हो जाती है और वह मनुष्य दिन में अनेक प्रकार के वर्णों (तीनों दोषों के वर्णों) का रूप देखता है उस रोग को नकुलान्ध्य कहते हैं ॥४९॥

गम्भीरकामाद—

दृष्टिविरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमध्यन्तरतस्तु याति ॥ ५० ॥

रुजवगाढा च तमचिरोरां गम्भीरकेति प्रवदन्ति बृद्धाः ।

गम्भीर दृष्टि के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि वायु से दृष्टित होकर विरुद्ध (विकृत) हो जाती है और सींतर की ओर संकुचित हो जाती है तथा अत्यन्त पीड़ा करती है उसे गम्भीरिका कहते हैं ॥ ५० ॥

बाह्य निमित्तानिमित्तसंज्ञी लिङ्गनाशावाह—

बाह्यौ युनद्वीपिह संप्रदिष्टौ निमित्तश्चाध्यनिमित्ततस्त्व ॥ ५१ ॥

निमित्ततस्त्र शिरोभितापाज्ञेयस्वप्रियन्दनिदर्शनः सः ।

सुरविर्गन्ध्वर्महोरगाणां सदर्शनेनापि च भास्वराणाम् ॥ ५१ ॥

हन्त्येत दृष्टिर्मनुजस्य यथ्य स लिङ्गनाशस्वनिमित्तसंज्ञः ।

बाया लिङ्गनाश के लक्षण—बाया अर्थात् आगन्तुक लिङ्गनाश रोग दो प्रकार का और भी होता है, एक निमित्तक (कारण से हानेवाला) और दूसरा अनिमित्तक (अकारण ही ही हो जाने वाला) उनमें जो निमित्त से होता है वह शिरोभितोप (मस्तक पीड़ा) से होता है, अर्थात् विशाक्त पुष्पादि (विषेले वृक्षों के पुष्पादि) के सूखने से या विशाक वायु के लगाने से उत्पन्न समस्त शिर में जो उपताप (अभिताप वा पीड़ा) होता है उससे नेत्रगत रक्त कुपित होता है और दृष्टिशक्ति नष्ट हो जाती है तथा अभिष्यन्द रोग के लक्षणों के समान इस लिङ्गनाश के भी लक्षण होते हैं और अनिमित्तक जो होता है वह देवता, ऋषि, गन्धर्व, वडे २ सर्प (नागादि) और सूर्योदिक के हठात सदर्शन से होता है अर्थात् इनके साथ मनुष्य की दृष्टि हठात लग जाती है तब मनुष्य की दृष्टि नष्ट हो जाती है इसे अनिमित्तक कहते हैं । परं यहाँ शङ्ख होती है कि हसे अनिमित्तक क्यों कहा गया ? इसका उत्तर यह है कि निमित्त शङ्ख से यहाँ लौकिक जनक कारण लिये जाते हैं और सुर आदिकों के सदर्शन लौकिक जनक कारण नहीं होने से यह अनिमित्तक है ॥ ५१-५२ ॥

अनिमित्ततो लिङ्गनाशस्य लक्षणमाद—

तत्राणि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ५२ ॥

अनिमित्तक लिङ्गनाश में नेत्र के रूप—अनिमित्त लिङ्गनाश में नेत्र स्पष्ट (निर्मल) एवं दृष्टिर्मणि के समान विमल वर्ण वाले (तिमिर, काच आदि मल रहित) दिखाई देते हैं । परं दृष्टिशक्ति नष्ट हो गई रहती है ॥ ५२ ॥

दृष्टिमण्डलप्रत्यासन्नतया कृष्णगतविकारानाद—

यस्त्रयं शुक्रमथावर्णं च पाकात्ययश्चाप्यजका तथैव ।

चर्चावार एते नयनामयास्तु कृष्णग्रेदेशो नियता भवन्ति ॥ ५३ ॥

दृष्टिमण्डल प्रत्यासन्नतया कृष्णगतविकार—‘सत्रण शुक्र’ नाम का नेत्र रोग ‘अव्रणशुक्र’ नाम का नेत्र रोग, ‘पाकात्यय’ नाम का नेत्र रोग और ‘अजका’ नाम का नेत्र रोग नेत्र के कृष्ण प्रदेश (कृष्णमण्डल वा कृष्ण भाग) में ही उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनके होने का नियत स्थान कृष्णमण्डल ही है ॥ ५४ ॥

तत्र सत्रणशुक्रलिङ्गमाद—

निमग्नरूपं तु भवेद्विकृष्टे सूर्येव चिद्वं प्रतिभाति यद्यै ।

स्वां स्ववेद् दुष्टमतीव यच्च तस्यत्र शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ५५ ॥

सत्रण शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में निमग्न हुआ शुक्र (फूल-कुछु निम्न अधोत थोड़ा गहरा) दिखाई देवे तथा सुर्वं से कुछ बीधा हुआ सा शात होवे और जिससे अत्यन्त दूषित स्थान (आँसू आदि) होवे उसे सत्रण शुक्र कहते हैं ॥ ५५ ॥

विदेहस्युक्रम्—रक्तराजनिभं कृष्णे छिन्नाभं यत्र लक्षयते ।

सूर्यग्रेवे तच्छुक्रमुष्णाश्रुस्वावि सत्रणम् ॥

विदेह के भूत से सत्रण शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में रक्तवर्ण की राई के समान दिखाई देवे और सूर्वं के अश्रमाग से छिदा हुआ प्रतीत हो तथा उससे अत्यन्त रुणस्थाव हो उसे सत्रण शुक्र कहते हैं ॥

अथात्य साध्यासाध्यलक्षणमाद—

हष्टे समीपे भ भवेत्त यत्त्वं च चावगाढं च संस्खेच्च ।

अवेदनं वा न च युग्मशुक्र तस्मिद्विमायाति कदाचिदेव ॥ ५६ ॥

सत्रणशुक्र के साध्यासाध्य लक्षण—जो सत्रणशुक्र नेत्र के दृष्टिभाग के समीप नहीं होता है, तथा जो गम्भीर मूल वाला नहीं होता है, तथा जो अधिक स्थाव करनेवाला नहीं होता है, तथा जिसमें पीड़ा नहीं होती है, तथा जो शुक्र युग्म (दो शुक्र पक्ष) नहीं होता है वह सत्रण शुक्र कदाचित चिद्वं हो जाता है, नहीं तो प्रायः असाध्य ही होता है ॥ ५६ ॥

अव्रणशुक्रमाद—

स्थन्दारमकं कृष्णगतं तु शुक्रं शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ।

वैद्यायसांभ्रप्रतनुप्रकाशं तं चावणं साध्यतमं वदन्ति ॥ ५७ ॥

अव्रण शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में अविष्यन्द के कारण उत्पन्न हुआ शुक्र (फूल) शङ्ख, चन्द्रमा और कुन्द के पुष्प के समान व्येत वर्ण का होता है, एवं अकाश में स्थित तनु (निर्जेत स्वच्छ) प्रकाश वाले बादल के समान व्येत वर्ण का होता है (वैद्यायसांभ्र कहने का तात्पर्य यह है कि जल वाले बादल पर्वतीय कहे जाते हैं, उनका वर्ण नौक होता है, और यहाँ श्वेत मेष की रपमा देनी है, इसलिये सजलाभ्र के छेदन के लिये स्पटी-करण किया गया है ऐसा कार्तिकेय का यत है) वसे अव्रण शुक्र कहते हैं और यह साध्यतम (सुखसाध्य) होता है । (साध्यतम कहने का तात्पर्य सुखसाध्यता प्रतिपादन करने का है, यदि यह नहीं होता तो कृच्छ्रसाध्यता की आनंद हो जाती क्योंकि गम्भीरजातम् और स्थन्दारमक् इन दोनों में कृच्छ्रसाध्यता ही समझी जाती इसी से यह दिया गया है ॥ ५७ ॥

साध्यतमस्याप्यवस्थामेदेन कष्टसाध्यतामाद—

गम्भीरजातं बहुकं च शुक्रं चिरोरिथितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ।

साध्यतम शुक्र जो शुक्र गम्भीर मूल वाला (दो-तीन पटलों तक पहुँचा हुआ) हो, वहुक (स्थूल एवं बहुत अथवा सूक्ष्म बादलों के समान नहीं होकर धने बादलों के समान) हो तथा जो चिरकाल से उत्पन्न हो वह अव्रण शुक्र कष्ट-साध्य कहा जाता है ॥

असाध्यता चास्त्रद—

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं शिरासूचममहित्कृच्छ्र ॥ ५८ ॥

द्विस्थगतं लोहितमन्ततश्च चिरोरिथितं चापि विवर्जनीयम् ।

असाध्य शुक—जिस शुक (कूला) का मध्यभाग विच्छिन्न (छिद्रान्वित) हो, तथा जो शुक मास से बिर गया हो, चल (एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलता रहता) हो, सिराओं से आच्छादित होने से सूक्ष्म दिखाई दे, जिससे दृष्टि शक्ति नष्ट हो गई हो, दिशीयपटल तक प्राप्त हो चुका हो, रक्तवर्ण के किनारों वाला हो और चिरोत्थित (पुराना) हो उसको त्याज्य कहा गया है ॥ ५८३ ॥

अपरमसाध्यलक्षणमाह—

उच्छाश्रुपातः पिण्डिका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्रनिभं च शुकम् ॥ ५९ ॥

जिस शुक रोग में नेत्र से बाधा आँसू बहते हों, नेत्र में पिण्डिकावं हो गयी हों तथा नेत्र में जो शुक हो वह मूँग के आकार का हो उसे भी असाध्य कहते हैं और कई विद्वान् तितिर पश्ची के पंख के समान (चित्रित) वर्ण वाले शुक को भी असाध्य कहते हैं ॥ ५९ ॥

अक्षिपाकात्ययमाह—

इवेतः समाकामाति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु ॥ ६० ॥

तमन्विपाकात्ययमधिकोपं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ।

अक्षिपाकात्यय के लक्षण—जिस नेत्र शुक रोग में सम्पूर्ण कृष्णमण्डल पर दोष से उत्पन्न इवेत शुक (इवेत कूला) फैल जावे उसको अक्षिपाकात्यय नामक अक्षिरोग कहते हैं । यह विदोषज दोता है तथा वर्जय कहा गया है अर्थात् यह असाध्य है ॥ ६० ॥

अजकाजातमाह—

अजातुरीषप्रतिमो हजावान्सलोहितो लोहितपिण्डिक्षुलाशुः ॥ ६१ ॥

विशुद्धा कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यवस्थेत् ।

अजकाजात के लक्षण—जिस नेत्र शुक रोग में शुक (कूला) वकरी के शुक्त पुरीष (लेडी) के समान पीड़ा करने वाला हो, लोहित वर्ण का हो तथा पिण्डिल आँसू जिसमें से बहते हों और सम्पूर्ण कृष्ण भाग को आच्छादित कर छिया हो वह मेदस उपचय अजकाजात कहा जाता है ॥

अथात्र विदेह—कूलणोद्योद्यवे शुक्तच्छुगलीविटसमप्रभम् ।

सान्द्रपिण्डिक्षुलरक्ताञ्च चित्तवर्णं वाजकेति सा ॥ ६२ ॥

जिस नेत्र शुक रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में उत्पन्न दुआ शुक (कूला) वकरी की सूखी दूर्द विद्धा (लेडी) के समान आकार वाला हो तथा घना, पिण्डिल और रक्त वर्ण का जिससे स्नाव होता हो वह विदेह के मत से तुतीय पटल में स्थित—अजकाजात कहा जाता है ॥ ६२ ॥

अथ शुक्लभागजा रोगः

तेषां नामानि संख्यां चाऽऽह—

प्रस्तारिशुक्लचूतजाधिमासस्नायवर्मलंज्ञाः खलु पञ्च रोगाः ॥ ६३ ॥

स्याच्छुकिका सार्जनपिटकात्यया जालं सिराणां पिटिकात्र वासाम् ।

रोगा बलासप्रथितेन साध्यमेकादशोक्ताः खलु शुक्लभागे ॥ ६४ ॥

शुक्लभाग में उत्पन्न होने वाले रोग—प्रस्तार्यम्, शुक्लमै, क्षतजामं (रक्तम्), अधिमासाम् और स्नायवर्मलंज्ञानामक पांच अर्थ, शुकिका, अजुन, पिटक, सिराजाल, सिरापिटिका और बलास प्रथित नाम के छै रोग और भी कहे गये हैं एवं च दोनों प्रकार के मिलकर ११ रोग नेत्र के शुक्ल भाग में होते हैं ॥ ६३-६४ ॥

तेषु प्रस्तार्यमेणो लक्षणमाह—प्रस्तारि ततु विस्तीर्ण श्यावं रक्तनिभं सिते ।

प्रस्तार्यमेण के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के शुक्ल भाग में ततु (पतला), विस्तीर्ण (फैला दुआ), श्याम किंवा रक्त (श्याम-रक्त मिश्रित) ऐसा अर्थ वा मण्डल उत्पन्न हो जाता है उसे प्रस्तारि अर्थ कहते हैं ॥

शुक्लमैऽह—सर्वेत स्तु शुक्लामै शुक्ले तद्वर्धते चिरात् ॥ ६५ ॥

शुक्लामै के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के शुक्ल भाग में इवेत वर्ण का, कोमल तथा विरकाम वृद्धि को प्राप्त होने वाला अर्थ वा मण्डल होता है उसे शुक्लामै कहते हैं ॥ ६५ ॥

रक्तमैऽह—पद्माभे स्तु रक्तामै यन्मांसं चीयते सिते ।

रक्तामै के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के शुक्ल भाग में कमल के समान अरुण-वर्ण का एवं कमल पत्र के समान और कोमल जो मांसोपचय (अर्थ वा मण्डल) हो जाता है उसे रक्तामै और लोहितामै भी कहते हैं ॥

अधिमासामैऽह—पृथु शृद्धधिमासामै बहलं च यकुचिभम् ॥ ६६ ॥

अधिमासामै के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के शुक्ल भाग में विस्तृत, कोमल, स्थूल तथा यकृत के समान (किञ्चित रक्तश्याव मिश्रित वर्ण का) मांसामै (मण्डल) हो जाता है उसे अधिमासामै कहते हैं । यह विदोषज है और छेदन साध्य है ॥ ६६ ॥

स्नायवर्मऽह—स्थिरं प्रस्तारि मांसादार्दयं शुक्लं स्नायवर्मं पक्षमम् ।

स्नायवर्म के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के शुक्ल भाग में स्थिर (कठिन) विस्तृत, मांस बहुल, शुक्ल (वाव रहित) अर्थ (मण्डल) होता है वह पांचवा स्नायवर्मं कहा जाता है, इस प्रकार पांच अर्थ नेत्र के शुक्ल भाग में होते हैं ॥

शुकिकाजामाह—

श्यावाः स्तुः पिण्डितनिमात्स्तु बिन्दवो ये शुक्लश्यामास्त्रविसितसिताः स शुक्लसंज्ञः ।

शुकिका के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के इवेत भाग में मांस के समान वर्ण वाला, श्याम वर्ण का विन्दु हो जाता है तथा कृष्ण इवेत वर्ण के शुक्ल (जल के सीप) के समान विन्दु हो जाता है उसे शुकिका कहते हैं । यह प्रित्त के प्रकोप से उत्पन्न होता है ॥

अजुनमाह—

एको यः अशारुधिरोपमश्च विन्दुः शुक्लस्थो भवति तमर्जुनं वदन्ति ॥ ६७ ॥

अजुन के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के इवेत भाग में शशक के रक्त के वर्ण का एक ही विन्दु उत्पन्न होता है उसे अजुन कहते हैं । यह रक्त के प्रकोप से उत्पन्न होता है ॥ ६७ ॥

पिष्टकमाह—

इलेष्माहस्तकेपेन शुक्ले मांसं समुद्यतम् । पिष्टविष्टकं विद्धि मलाक्तावर्द्धसंनिभम् ॥ ६८ ॥

पिष्टक के लक्षण—जिस रोग में कफ और बायु के प्रकोप से नेत्र के इवेत भाग में उठा दुआ मांस पिठी के समान मलिन दर्पण के वर्ण का (कुछ मैला, कुछ इवेत वर्ण का) उत्पन्न हो जाता है उसे पिष्टक कहते हैं (मांस का तात्पर्य विन्दु से है) ॥ ६८ ॥

शिराजालमाह—

जालाभः कठिनसिरो महान् सरक्तः स्वन्तानः स्मृत इद जालसंज्ञितस्तु ।

सिराजाल के लक्षण—जिसमें नेत्र के इवेत भाग में जाल की भाकुति के कठिन सिराओं से युक्त रक्तवर्ण का अत्यन्त बड़ा जो जाल आच्छादित विन्दु उत्पन्न हो जाता है उसे जालसंज्ञक (सिराजाल) रोग कहते हैं ॥

सिरापिटिकामाह—

शुक्लस्थाः सितपिटिकाः सिराशुता यास्ता ब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ६९ ॥

सिरापिटिका के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के इवेत भाग में कृष्ण भाग के निकट इवेत वर्ण की पिटिका (बिन्दु) सिराओं से घिरी हुई उत्पन्न हो जाती है उसे शिरापिटिका कहते हैं ॥
बलासग्रथितमाह—

कांस्यभोडमृदुरथ वारिविन्दुकलयो विज्ञेयो नयनसिते बलाससंज्ञः ॥ ७० ॥
बलासग्रथित के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के हुक्के भाग में (कांसे) के वर्ण के समान (उज्ज्वल) और कठिन, जल के बूँद के समान उत्पन्न हो जाता है उसे बलास, नामक नेत्ररोग कहते हैं (यह कफ के प्रकोप से उत्पन्न साध्य है) ॥ ७० ॥

अथ वर्त्मपद्मजाः

तत्त्वयानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

उत्सङ्गिन्यथ कुम्भीका पोथकी वर्त्मशर्करा । तथाऽश्चोवर्त्मं शुष्कार्णश्तथैवाज्जननामिका ॥
बहुलं वर्त्म यच्चापि तथोक्तो वर्त्मवन्धकः । किलष्वर्त्मं तथा वर्त्मकर्दमः श्याववर्त्मं च ॥७१॥
प्रविलष्वर्त्मं चाकिलष्वर्त्मं वातहतं च तत् । वर्त्मार्णुदं निमेषश्च शोणितार्णश्तथैव च ॥७२॥
लग्नो विस्वर्त्मार्णीपि कुञ्जनं नाम उत्पन्नम् । पृक्विंशतिरित्येते विकारा वर्त्मसंश्रयाः ॥७३॥
पक्षमज् रोगों के नाम—उत्सङ्गिनी, कुम्भीका, पोथकी, वर्त्मशर्करा, श्याववर्त्म, शुष्कार्ण, अज्जननामिका, बहुलवर्त्म, वर्त्मवन्धक, किलष्वर्त्म, वर्त्मकर्दम, श्याववर्त्म, प्रविलष्वर्त्म, अविलष्वर्त्म, वातहत, वर्त्मार्णुद, निमेष, शोणितार्ण लग्न, विस्वर्त्म और कुञ्जन ये वर्त्म के आश्रय होने वाले अर्थात् नेत्रपक्ष (पलक) पर होने वाले २१ रोग होते हैं ॥ ७१-७४ ॥

तेष्वसङ्गपिटिकामाह—

अध्यन्तरमुखी ताङ्गा बाद्धातो वर्त्मनश्च या । सोरसङ्गोरसङ्गपिटिका सर्वज्ञा शूलकण्ठुरा ॥

उत्सङ्गिनी के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में भीतर की ओर मुखबाली, ताङ्गर्ण की, पलकों के बाह्य भाग की ओर बठी हुई (उमरी हुई), त्रिदोष के कोप से होने वाली, शूल और कण्ठ युक्त पिटिका होती है उसे उत्सङ्गपिटिका वा उत्सङ्गिनी कहते हैं ॥ ७५ ॥

कुम्भीकामाह—वर्त्मान्तःपिटिका धमाता भिन्नते च स्ववन्ति च ।

कुम्भीकावीजसदावा कुम्भीका: संनिपातज्ञाः ॥ ७६ ॥

कुम्भीका के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों के किनारे २ पिटिकायें उत्पन्न हो जाती हैं और कूटती हैं तथा छूट कर पुनः भर जाती हैं और बहती हैं तथा उन पिटिकाओं का आकार कुम्भीका (कच्छ देश में उत्पन्न होने वाले अनार) के बीज के समान होता है, ये पिटिकायें संनिपात (त्रिदोष) के कोप से उत्पन्न होती हैं । इनका नाम कुम्भीका है ॥ ७६ ॥

पोथकीमाह—

साविण्यः कण्ठुरा गुद्यो रक्षसर्वपसंनिभाः । रुजावश्यक पिटिकाः पोथकय इति संज्ञिताः ॥७७॥

पोथकी के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में निरन्तर बहने वाली कण्ठयुक्त, शूल (गौरव युक्त), रक्त सरसों (तोरी) के आकार की ओर पीड़ा करने वाली पिटिका उत्पन्न हो जाती है उन्हें पोथकी कहते हैं ॥ ७७ ॥

वर्त्मशर्करामाह—

पिटिकाभिः सुसूखमाभिर्विनाभिरभिसंवृता । पिटिका या खरा स्थूला वर्त्मस्था वर्त्मशर्करा ॥

वर्त्मशर्करा के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में छोटी र और कठिन पिटिकाओं से आवृत (घिरे) एक बड़ी खर स्पर्श तथा स्थूल पिटिका होती है उसे वर्त्मशर्करा कहते हैं । यह भी संनिपात के कोप से ही होती है ॥ ७८ ॥

अथाश्चोवर्त्माह—

एवार्हवीजप्रतिमाः पिटिका मन्दवेदनाः । इलचाणः स्वस्य वर्त्मस्थास्तदशोवर्त्म कीर्त्यते ॥७९॥

अश्चोवर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में ककड़ी के बीज के आकार की पिटिका अस्प पीड़ा करने वाली, चिकनी और कठोर उत्पन्न हो जाती है उन्हें अश्चोवर्त्म कहते हैं । यह भी त्रिदोष से ही उत्पन्न होती है ॥ ७९ ॥

तथा च निमिः—

नीरुजा कठिना वर्त्मपचमान्ते बाद्यापि च । पिटिका संनिपातेन तदशोवर्त्म कीर्त्येत् ॥

जिस रोग में नेत्र के पलकों में (पक्षमान्त में वा पलकों के बाहर) पीड़ा रहित वा अस्थल्य पीड़ा युक्त और कठिन पिटिका उत्पन्न हो जाती है निमि के मत से उसे अश्चोवर्त्म कहते हैं । यह संनिपात के कोप से होती है ॥

शुष्कार्णमाह—दीर्घाङ्गुहः खरः इत्यज्ञो दाहणोऽभ्यन्तरोद्धरः ।

दध्याखिरेचोऽभिविलयातः शुष्कार्णो नाम नामतः ॥ ८० ॥

शुष्कार्ण के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में भीतर की ओर लबे २ अङ्गुरों वाली कर्कश (खर), स्तब्ध (कठिन), दाहण (अत्यन्त दुःखदायी) पिटिका उत्पन्न हो जाती है उसे शुष्कार्ण कहते हैं, यह त्रिदोष से होती है ॥ ८० ॥

अथाज्जननामिकामाह—

आहतोद्वती ताङ्गा पिटिका वर्त्मसम्भवा । मृद्वी मन्दस्त्रजा सूचमा ज्ञेया साक्षननामिका ॥

अज्जन नामिका के लक्षण—जिस रोग से नेत्र के दाह करने वाली, तोद (सूर्य चुमाने के समान पीड़ा), करने वाली, ताङ्गर्ण की, कोमल, अस्प पीड़ा करने वाली और छोटी २ पिटिका उत्पन्न हो उसे अज्जन नामिका कहते हैं । यह रक्त के कोप से होती है ॥ ८१ ॥

बहलवर्त्माऽह—वर्त्मपौचीयते यस्य पिटिकाभिः समन्ततः ।

सवणाभिः स्थिराभिश्च यित्थाद्वहलवर्त्म तत् ॥ ८२ ॥

बहलवर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक पिटिकाओं से चारों ओर घिर जायें, और वे पिटिकायें चम्स के समान वर्ण की हों और स्थिर हो उन्हें बहलवर्त्म जानना चाहिये (यह संनिपातज्ञ है) ॥ ८२ ॥

वर्त्मवन्धकमाह—

कण्ठुरेणाशप्तोदेन वर्त्मशोफेन मानवः । अत्मं छादयेदपि यत्रासौ वर्त्मवन्धकः ॥ ८३ ॥

वर्त्मवन्धक के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में शोष हो जाने से कण्ठ हो, थोड़ी २ सूर्य चुमाने के समान पीड़ा हो और नेत्र बन्द करने पर पूर्ण रूप से बन्द नहीं हो उसे वर्त्मवन्धक (कहते हैं यह भी त्रिदोष रोग है) ॥ ८३ ॥

किलष्वर्त्माऽह—

मृद्वशपवेदनं ताङ्गं यद्वर्त्म सममेव च । अकस्मात्त्व भवेद्वकं किलष्वर्त्मेति तद्विदुः ॥ ८४ ॥

किलष्वर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक कोमल, अस्पवेदना युक्त, ताङ्ग के बर्ण के समान वर्ण वाले समान अर्थात् शोथरहित वा दोनों पलक, अकस्मात् रक्तवर्ण के ही जावें उसे किलष्वर्त्म जानना चाहिये (यह कफ रक्त के दोष से होता है) ॥ ८४ ॥

तथा च निमिः—श्लेषा दुष्टेन रक्तेन किलष्वर्त्मसगतः समम् ।

बन्धुजीविनिभे वर्त्म किलष्वर्त्मसंतुच्यते ॥

जिस रोग में नेत्र के पलकों में कफ दूषित रक्त से मिलकर पलकों के मास में जाकर

दोनों पलकों को समान रखता हुआ (शोथ रहित) बन्धूक पुष्प (पहरिया कूक) के समान रक्षण का कर देता है जिससे अस्थन्त कष्ट होते हैं, आचार्य निभि के वचनानुसार उसे निष्ठुर बत्तं कहते हैं ॥

वर्तमंकर्दंभमाह—

विलष्टं पुनः पित्तयुक्तं शोणितं विद्वहेण्यदा । तदा किलज्ञत्वमाप्नुव्यते वर्तमंकर्दंभम् ॥८५॥
वर्तमंकर्दंभ के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों को दूषित पित्त से युक्त होकर (मिलकर) रक्त जब बढ़ा देता है तब उसमें क्लेइ उत्पन्न हो जाता है उसे वर्तमंकर्दंभ कहते हैं ॥ ८५ ॥

श्याववर्तमाह—

वर्तमं यद्वायातोऽन्तश्च श्यावं शूनं च जायते । तदाहुः श्याववर्तमेति वर्तमरोगविशारदाः ॥
श्याववर्तमं के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में या पलक के बाहर और भीतर श्यामवर्ण और शोथ हो जाते उसे श्याववर्तमं रोग कहते हैं ॥ ८६ ॥

तथा च निभिः—

हुञ्चं श्लेष्मानिलापित्तं वर्तमंनोश्चियते यदा । अविनिद्रावनिभं श्यावं श्याववर्तमेति तद्विदुः ॥
जिस रोग में नेत्र के पलकों में दूषित कफ और वायु से पित्त कुपित होकर एकत्रित हो जाता है और पलकों को अविन द्वारा उत्पन्न क्लेइ दुष के समान श्याव वर्ण का कर देता है उसे श्याववर्तमं निभि के मत से कहते हैं ॥ ८७ ॥

प्रकिलनवर्तमाह—

अरुञ्जं यादातः शूनं वर्तमं यस्य नरस्य च । प्रकिलनवर्तमं तद्विद्यारिश्लननमत्यर्थमन्ततः ॥८८॥
प्रकिलन वर्तमं के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में बाहर की ओर शोथ हो गया हो किंतु पीड़ा नहीं हो अथवा अस्थन्त पीड़ा हो और भीतर की ओर पलक अस्थन्त क्लेइ युक्त (आद्र) रहे उसे प्रकिलनवर्तमं आनना चाहिये ॥ ८८ ॥

अकिलनवर्तमाह—

यस्य धौतान्यधौतानि संबद्धन्ते पुनः पुनः । वर्तमान्यपरिपक्वानि विद्याद्विलज्ञवर्तमं तत् ॥
अकिलनवर्तमं के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक बार २ बोने पर भी अथवा नहीं बोने पर आपस में सदा करें और वर्तमं में किसी प्रकार का पाक भी नहीं हो, उसे अकिलन वर्तमं आनना चाहिये ॥ ८९ ॥

वातहतवर्तमाह—

विमुक्तसंनिधं निश्चेष्टं वर्तमं यस्य निमीलयते । तद्वातनिहतं वर्तमं जानीयादचिच्छिन्तकः ॥९०॥
वातहत वर्तमं के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक वर्तमंशुकृत गत सन्धि के स्थान अष्ट हो जाने से निश्चेष्ट (कियाहीन) होकर बन्द हो जाते हैं उसे वातनिहत (वातहत) वर्तमं कहते हैं ॥ ९० ॥

वर्तमंतुंदमाह—

वर्तमान्तरस्य विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् । आचचतेऽतुंदमिति सरक्तमवलवितम् ॥९१॥
वर्तमंतुंद के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों के अन्दर विषम (असमान वा ऊँचा नीचा, डेढ़ा मेढ़ा) और बिना पीड़ा के बा अल्पपीड़ा रक्षण की तथा शीघ्र उत्पन्न होनेवाली ग्रन्थि सी उत्पन्न हो जाती है उसे वर्तमंतुंद कहते हैं ॥ ९१ ॥

निमेषमाह—

निमेषणीः शिरा वायुः प्रविष्टः संधिसंश्रयः । सञ्चालयति वर्तमान्नि निमेषः स न सिध्यति ॥
निमेष के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के वर्तमंशुकृत की सन्धि में होनेवाली निमेषणी

(सञ्चालित करनेवाली) शिराओं से व्यान वायु प्रवेश करके (दूषित होकर) पलकों को निरन्तर सञ्चालित किया करे (पलक बराबर अत्यन्त उल्टे रहें) उसे निमेष रोग कहते हैं यह असाध्य है ॥ ९२ ॥

शोणिताशौलक्षणमाह—

वर्तमस्थो यो विवर्धेत लोहितो मृदुरङ्गुरः । तदक्तजं शोणिताशौलक्षणं चाऽपि विवर्धते ॥९३॥
शोणिताशौलक्षण के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में लोहित वर्ण के कोमल मांसाङ्गुर उत्पन्न होते और बढ़ते जाते, वे रक्त के दोष से होनेवाले होते हैं, उन्हें शोणिताशौलक्षण कहते हैं और वे काटने पर भी बढ़ते ही रहते हैं ॥ ९३ ॥

तथा च विदेहः—वायुः शोणितमादाय विरागां प्रसुखस्थितः ।

जनयथ्यक्षुरं ताञ्च वर्तमनि चिक्षुनरोहिणम् । तच्छ्रोणिताशौलक्षणं श्याव्रक्तम् अथव रक्तजयम् ॥

जिस रोग में नेत्र के पलकों में वायु कुपित होकर शोणित (रक्त) को लेकर शिराओं के समुख रित्य होकर (मुख में आकर) ताप्र (रक्त) वर्ण के मांसाङ्गुर को उत्पन्न कर देता है, वे अङ्गुर काटने पर पुनः उत्पन्न हो जाते हैं और उनमें से स्त्राव नहीं होता है यह रक्तजय है इस विदेह के मत से शोणिताशौलक्षण कहते हैं और यह असाध्य है । पाठान्तर में 'रक्तजय' के स्थान पर 'नीङ्गजय' है जिससे यह अर्थ होता है कि इस रोग में पीड़ा नहीं होती है ॥ ९४ ॥

लगणमाह—

अथाको कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्तमंभवोऽन्नः । सकपूः पिच्छुः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥

लगण के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में पाक रहित, कठिन, स्थूल, पीड़ा रहित कण्डुयुक्त, पिच्छुः और कोल (वर्दी) फल के प्रमाण की अविष्ट उत्पन्न हो उसे लगण कहते हैं । यह कफेज होता है ॥ ९५ ॥

विसवर्तमाह—

अथो दोषा विहिः शोथं कुर्युश्चिद्वाग्नि वर्तमानाम् । प्रसदवन्यन्तस्तदकं विसवद्विसवर्तमं तत् ॥

विसवर्तमं के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में तीनों दोष कुपित होकर पलकों के बाहर (जपर) शोथ उत्पन्न कर देते हैं और भीतर की ओर विष (मुणाल) के छिद्रों के समान छिद्रों को कर देते हैं तथा उन छिद्रों से अस्थन्त श्वाव होता रहता है उसे विसवर्तमं कहते हैं (यह शोथ भीतर ही से होता है जो बाहर दिखाई देता है) और यह असाध्य है ॥ ९६ ॥

कुञ्जनमाह—

वाताशा वर्तमानकोचं जनयन्ति मला यदा । तदा द्रष्टुं न शक्तोति कुञ्जनं नाम तद्विदुः ॥

कुञ्जन के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों को वातादि दोष (त्रिदोष) कुपित होकर सङ्क्षिप्त कर देते हैं, देखने की शक्ति नहीं रह जाती है । उस वर्तमं सङ्क्षेपन को कुञ्जन नामक रोग कहते हैं ॥ ९७ ॥

अथ पद्मरोगौ

तत्रत्ययो रोगयोर्नामनी आह—

पद्ममकोपः पद्ममशातो रोगो द्वौ पद्ममहश्रयौ ।

पद्मम कोप के नाम—पद्म (वर्तमं लोम वा वरौनी) में होने वाले रोग दो प्रकार के होते हैं जिनमें एक को पद्ममकोप और दूसरे को पद्ममशात कहते हैं ॥

तत्र पक्षमकोपमाह—

प्रचालितानि वातेन पचमाण्यस्मि विशनित हि । असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि ॥
शुद्धस्त्यस्मि शुद्धस्तानि संतरम्भं जनयन्ति च । पचमकोपः स विशेषो द्याधिः परमदारणः ॥

पक्षमकोप के लक्षण—जिस रोग में बायु से प्रचालित किये दुर्ग-पलकों के लोम आख के भीतर की ओर प्रवेश करते हैं और वे लोम नेत्र के कृष्ण भाग और श्वेत भाग में लगते रहते हैं (जिससे नेत्र में कष्ट होता है) और सूल कोश (बरौनी) से गिर भी जाते हैं अथवा नहीं भी गिरते हैं । उनके वर्षण से नेत्र के कृष्ण और श्वेत भाग में शोथ उत्पन्न हो जाता है । उसे पक्षमकोप रोग कहते हैं, यह अस्यन्त कठिन रोग है ॥ ९८-९९ ॥

पक्षमशात्माह—

वर्खपचमाशयगतं पित्तं रोमाणि सातयेव । कण्ठं दाहं च कुस्ते पचमशातं तमादिशेत् ॥

पक्षमशात के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों के लोम के स्थान में जाकर कुपित हुआ पित्त पलकों के लोमों को गिरा देता है और उसमें कण्ठ तथा दाह उत्पन्न कर देता है उसे पक्षमशात रोग कहते हैं । लोक में इसे बद्धानी कहते हैं ॥ १०० ॥

अथ संधिरोगः

संधयः षट् तानाह—पचमवर्खसंगतः संधिरवर्खसुकलगतोऽपरः ।

शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च ॥

ततः कनीनिकगतः षष्ठ्यापाङ्गसंश्रितः ॥ १०१ ॥

नेत्र की सन्धियां—एहलो सन्धि पक्षम तथा वर्खमें होती है, दूसरी वर्खम तथा नेत्र के शुक्ल भाग में होती है, तीसरी नेत्र के शुक्ल भाग तथा कृष्ण भाग के मध्य में होती है, जौथी कृष्ण भाग तथा दृष्टि (पुतली) के मध्य में होती है, पांचवी सन्धि कनीनिकाओं (नाक के निकट के नेत्र भाग में होती है और छठवीं सन्धि नेत्र के अपाङ्ग भाग या अनिम कोने) में होती है । इस प्रकार नेत्र में छे सन्धियां होती हैं ॥ १०१ ॥

तत्रत्यानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

पूयालसः सोपनाहः स्वावाक्षर्वार पूव च । पर्वणीकाऽलज्जी जन्तुग्रन्थिः संधौ नवाऽऽमयाः ॥

सन्धियों में होने वाले रोग—पूयालस, उपनाह, चार प्रकार के स्वाव पर्वणिका, अलज्जी और जन्तुग्रन्थि इस प्रकार नौ रोग सन्धि में होते हैं ॥ १०२ ॥

तेषु पूयालसमाह—

पक्षः शोथः संधिजो यः ससोदः स्ववेत्पूयं पूति पूयालसाख्यः ।

पूयालस के लक्षण—जिस सन्धिरोग में नेत्र के कनीनिका में (नाक के निकट के कोने में) उत्पन्न हुआ शोथ पक्ष जाता है और उसमें सूर्य चुम्बने के समान पीड़ा होती है तथा उसमें से दुर्गन्धित पूय का स्वाव होता है उसे पूयालस रोग कहते हैं । यह रोग सन्धिपातब, साध्य एवं देध्य है ॥

उपनाहमाह—

अन्धिनाशिपो दृष्टिसंधावपाकी कण्ठप्रायो नीरुजश्चोपनाहः ॥ १०३ ॥

उपनाह के लक्षण—जिस सन्धिरोग में कृष्णमण्डल और दृष्टि की सन्धि में अन्धि उत्पन्न हो और वह छोटी नहीं हो अर्थात् वडी हो, उसमें पाक नहीं हो अथवा योड़ा पाक हो तथा प्रायः जिसमें कण्ठ हुआ करे और पीड़ारहित अथवा अस्थ पीड़ा बली हो उसे उपनाहरोग कहते हैं यह कफज रोग है और साध्य एवं भेद्य है ॥ १०३ ॥

स्नावाणी सम्प्राप्तिमाह—

स्नावा सन्धीनश्चमानेग दोषाः कुरुः स्नावांश्च चौणौ स्वैरुपेतान् ।

तं हि स्नावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्तयित्वे चतुर्धाः ॥ १०४ ॥

सन्धि के स्नाव रोगों की सम्प्राप्ति—वातादि दोष अशुवादिनी धमनियों के मांग से नेत्र के सन्धियों में जाकर उपने २ लड्डों के अनुसार स्नावों को उत्पन्न कर देते हैं । उसी स्नाव को कोई २ वैद्य नेत्रनाडीरोग भी कहते हैं । उन्हीं स्नावों के चार प्रकार के लक्षण होते हैं जिसे आगे कहेंगे । चतुर्धाशब्द से सान्धिगतिक, रक्तज, कफज और पित्तज स्नाव ग्रहण किया गया है । व्याधि के स्वभाव से (पित्तज गलगण्ड की मौति) वातज स्नाव नहीं होता है ॥ १०४ ॥

पैतिकं स्नावमाह—

हरिदाम्भं पीतमुषणं जलं वा पित्तस्नावः संस्कवेत्सन्धिमध्यात् ॥

पैतिक स्नाव—जिस सन्धि रोग में इलटी के वर्ण का (पीत लोहित) अथवा केवल पीत वर्ण का और उषण एवं केवल जल के समान नेत्र की सन्धियों से स्नाव हो उसे पैतिक स्नाव कहते हैं । यह असाध्य है ॥

श्लेष्मस्नावमाह—

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्वेतृ श्लेष्मस्नावोऽसी विकारः प्रदिष्टः ॥ १०५ ॥

कफज स्नाव—जिस सन्धि रोग में नेत्र की सन्धियों से श्वेत वर्ण का, घना (गाढ़ा) और पिच्छिल स्नाव हो उसे कफ के कोप का स्नाव कहते हैं यह भी असाध्य है ॥ १०५ ॥

स्विपातस्नावमाह—

शोथः सन्धौ संस्कवेत्यस्तु पूवः पूयं स्वावः सर्वजः सम्मतः सः ॥

सन्धिपातब स्नाव—जिस सन्धि रोग में नेत्र की सन्धियों में शोथ होकर पाक होने और उससे पूय का स्नाव हो उसे विशेष के कोप का स्नाव कहते हैं । कोई २ रसे पूयस्नाव भी कहते हैं । यह भी असाध्य है ॥

रक्तस्नावमाह—रक्तस्नावः शोणितायो विकारो गच्छेद्व दुष्टं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥ १०६ ॥

रक्तस्नाव के लक्षण—जिस सन्धि रोग में नेत्र की सन्धियों से दृष्टिपूर्व अथवा रक्त का स्नाव होता है उसे रक्त के कोप का रक्तस्नाव कहते हैं । यह भी असाध्य है ॥ १०६ ॥

पर्वणीकाऽलज्जायाह—

तात्रा तन्धी दाहपाकोपप्राया रक्ताऽज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा ।

पर्वणी रोग के लक्षण—जिस नेत्र सन्धि रोग में कृष्ण तथा शुक्र क्षम भाग को सन्धि में रक्त दोष के कोप से तात्र वर्ण की सूक्ष्म (छोटी) दाह और पाक से युक्त, वृत्त (गोल) एवं शोथ युक्त पीड़िका उत्पन्न हो जाती है उसे पर्वणी रोग कहते हैं ॥

जाता सन्धौ कृष्णगुच्छेऽलज्जी स्यात्स्विमनेव ध्याहता पूर्वलिङ्गः ॥ १०७ ॥

अजली के लक्षण—जिस नेत्र सन्धि रोग में उसी (कृष्ण श्वेत भाग की) सन्धि में उत्पन्न होने वाली और पूर्वक्षयित पर्वणी के कक्षणों से युक्त (किन्तु सूक्ष्म नहीं स्थूल अथवा प्रमेह रोग में पहले कहे हुए अलज्जी के लक्षणों से युक्त) पिंडिका उत्पन्न हो जाती है उसे अलज्जी कहते हैं । यह भी असाध्य है ॥ १०७ ॥

जन्तुग्रन्थिमाह—

जन्तुग्रन्थौ वर्मनः पचमण्ड कण्ठं कुरुं जन्तवः सन्धिजाताः ।

नानारूपा वर्मसुकलान्तसन्धौ चरन्त्यन्तर्लोचनं दूषयन्तः ॥ १०८ ॥

जन्तु ग्रन्थ के लक्षण—जिस नेत्र सन्धि रोग में पलक तथा पक्षम (वर्तमलोम) की सन्धि स्थान में ग्रन्थि उत्पन्न होकर उसमें कण्ठ करने वाले अनेक रुपों के कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और वे ही कृमि वर्षे तथा शुक्ल भाग के मध्य की सन्धि में विचरते हुए नेत्र को मीठर से दूषित कर देते हैं उसे कृमि ग्रन्थि कहते हैं यह रोग सविरात्र एवं असाध्य है ॥ १०८ ॥

अथ समस्तनेत्रजा रोगः

तेषां नामानि संख्या चाऽऽह—

स्यन्दाश्वतुष्का इह सम्प्रदिव्याश्वत्वार एवेह तथाऽधिमन्थाः ।

पाकः सशोथः स च शोथहीनो हताखिमन्थोऽनिलपर्यवशः ॥ १ ॥

शुक्लाक्षिपाकशिवह कीर्तितश्च तथाऽन्यतो वात उदीरितश्च ।

दृष्टिस्तथाऽङ्गाध्युषिता शिराणामुरपातहर्षे च समस्तनेत्रे ॥ २ ॥

एवं समस्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च । तेषामिह पृथग्वचये यथावश्लक्षणान्यविः ॥ ३ ॥

समस्त नेत्र रोगों के नाम—चार प्रकार के (वातिक, पैत्तिक, श्लैषिक और रक्त) अभिष्यन्द, चार प्रकार के (वातिक, पैत्तिक, श्लैषिक और रक्त) अधिमन्थ, दो प्रकार के सशोथ पाक और अशोथ पाक, एवं इत्याधिमन्थ, अनिल पर्यव वा वातपर्यव, शुक्लाक्षिपाक, अन्यतोवात, अग्ना-ध्युषित दृष्टि, शिरोरपात और शिराहर्षे ये १७ रोग समस्त नेत्र में होते हैं जिनके पृथक् लक्षण आगे कहे जाते हैं ॥ १-३ ॥

त्रायांभिष्यन्दाश्वत्वार इत्याह—

वाताधिपित्ताकादकादिभिष्यन्दश्वतुर्विचः । प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वात के कोप से, पित्त के कोप से, कफ के कोप से और रक्त के कोप से (वातज, पित्तज, कफज और रक्तज) चार प्रकार के अभिष्यन्द रोग होते हैं ये प्रायः कठिन एवं सभी नेत्रोगों को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

तेषु वातिकमभिष्यन्दमाह—

निरस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसङ्खर्षपालुवशिरोभितपाः ।

विशुष्क भावः शिरिशाश्रता च वाताभिष्यन्दे नयने भवन्ति ॥ ५ ॥

वातिक अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में सूई चुम्बने के समान पीड़ा जड़ता रोमाछ और नेत्र के पलकों में धर्षण होता है, रुक्षता होती है, शिर में पीड़ा होती है, नेत्र में शुक्लता होती है नेत्र में मल (कीचड़) नहीं होते हैं और शोतल अशु का स्वाव होता है, उसे वात के कोप का अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकमभिष्यन्दमाह—

दाहप्रपाकौ शिरिशाभिष्यन्दा धूमायनं वाप्ससमुद्धवशः ।

उल्लाश्रता पीतकनेत्रता च पित्ताभिष्यन्दे नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

पैत्तिक अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में दाह और अर्थन्त पाक होता है तथा शोतल स्पर्श की इच्छा होती है धूमोद्भवन होता है, वाप्स (अशु) वाक्यता और उल्लाश्रता (उल्ल आँसुओं का निकलना) होती है और नेत्र के वर्ण पीत हो जाते हैं उसे पैत्तिक अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ६ ॥

श्लैषिकमभिष्यन्दमाह—

उल्लाश्रितां गुरुताऽधिशोथः कङ्गूपदेहावतिशीतता च ।

श्लैषिक पृथक् चापि कफाभिष्यन्दे नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

नेत्ररोगनिदानम्

कफज अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में उष्णता (गरमी) कागजे पर आनन्द वे और नेत्र में उरुता, शोथ, हो तथा कण्ठ हो कफ से लिह नेत्रमक की बुक्कता हो, नेत्र अर्थन्त शोतल होते हैं, ज्ञाव अधिक हो और पिच्छिकता होते हैं ॥ ७ ॥

रक्तजमभिष्यन्दमाह—

ताङ्गाश्रुता लोहितनेत्रता च रात्रः समन्तादतिलोहिताश्च ।

पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिष्यन्दे नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

रक्तज अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र से ताङ्गवर्ण के अशु निकलते हैं, नेत्र लोहित वर्ण के हो गये हों, नेत्रों में चारों ओर रक्तवर्ण की रेखाएँ दिखाई देती हों और पिच्छज अभिष्यन्द के जो लक्षण हैं दाह-पाकादि उनसे भी युक्त हो तो उसे रक्तज अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अधिमन्थानामभिष्यन्दजन्यत्वमाह—

शुद्धैरेतैरभिष्यन्दन्दर्शनामक्षियावताम् । तावन्तस्विमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ ९ ॥

अधिमन्थों की डरपत्ति—अभिष्यन्दरोग होने पर यदि उसकी चिकित्सा नहीं होती तो वही बढ़कर अधिमन्थ रोग हो जाता है और वह अधिमन्थ नेत्र में तीव्र पीड़ा करने वाला होता है । (अभिष्यन्द ही के समान अधिमन्थ रोग में भी वातादि दोषों का कोप तथा निरसोदादि वेदनाएँ होती हैं और अभिष्यन्द के कारण होने से अधिमन्थ भी चार प्रकार का होता है ॥ ९ ॥

अधिमन्थानां सामान्यं लक्षणम्—

उत्पाटयत हृवात्यर्थं लथा निर्मध्यतेऽपि च । शिरसोऽर्थं तु तं विश्वादधिमन्थं इवलक्षणैः ॥

अधिमन्थों के सामान्य लक्षण—जिस नेत्ररोग में प्रेसा जात हो कि आधे शिर की कोर उल्लास रहा है तथा मध्य रहा है (मध्यानी मध्यने ही भाँति जात हो) उसे अपने लक्षणों से युक्त (वातादि दोष से होने वाले अभिष्यन्द के लक्षणों से युक्त) अधिमन्थ रोग का सामान्य लक्षण जानना चाहिये ॥ १० ॥

सचाविमन्थो यदात्मको यावता कालेन मिथ्यावारादृष्टिं इन्ति तदाह—

हृन्याद् हृष्टिं श्लैषिकः सप्तरात्रादूयाधिर्घोरो रक्तजः पञ्चरात्रात् ।

यद्वरात्राद्वा वातिको वै निहन्यानिमध्याचारारपेचिकः सद्य पृथ ॥ ११ ॥

अधिमन्थ यदि कफ के दोष से (कफज) होता है तो (मिथ्याचार अर्थात् प्रतिकूल आहार विहारादि करने से) सात दिन में इष्टि को नष्ट कर देता है तथा यदि रक्तज होता है तो वह कठिन दोष (मिथ्याचार से) पांच दिन में इष्टि को नष्ट कर देता है एवं यदि वातज होता है तो वह (मिथ्याचार से) छै दिन में इष्टि को नष्ट कर देता है और यदि पैत्तिक अधिमन्थ होता है तो मिथ्याचार से सधः (विराश अर्थात् तीन दिन में) इष्टि को नष्ट कर देता है ॥ ११ ॥

सामान्यं पाकमाह—

कण्ठपदेहाश्रुतः पक्षोद्भवरसक्षिप्तः । संरक्षभी पचयते यस्तु नेत्रपाकः सशोथकः ॥ १२ ॥

शोथ युक्त नेत्रपाक के लक्षण—जिस नेत्रपाक में नेत्र कण्ठयुक्त, नेत्र मल और लक्षण से युक्त और पक्षे कुप गूलर के फल के समान रक्तवर्ण एवं शोथनित होकर पकते हैं उसे सशोथ नेत्रपाक कहते हैं ॥ १२ ॥

अशोथपाकाह—शोथहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके लक्षणके

अशोथ नेत्रपाक के लक्षण—उपर्युक्त लक्षणों से युक्त केवल शोथ रहित जो पाक हो उसे अशोथ नेत्र पाक कहते हैं ॥

इतराधिमन्थमाह—उपरेक्षणादिः यदाधिमन्थो वाताधिकः शोषयति प्रसद्य ।

रुजाभिष्यन्द्राभिरसाध्य एष हृताधिमन्थः सलु नाम रोगः ॥ १३ ॥

इताधिमन्थ के लक्षण—जब वातिक अधिमन्थ की चिकित्सा भलीभांति नहीं की जाती है तब वह वातादमक अधिमन्थ अव्यन्त पीड़ा करता हुआ नेत्र को सुखा देता है (नष्ट कर देता है) इसी का नाम इताधिमन्थ है । यह असाध्य है (वाताधिमन्थ होने पर उचित चिकित्सा नहीं करने पर कुपित वात आश्वन्तरिक शिराओं में प्रवेश कर स्थित हो इष्टि को सुखा देता है ॥ १३ ॥

वातपर्यायमाह—

वारं वारं च पर्येति अुद्वौ नेत्रे च मारुतः । रुजाभिः सह तीव्राभिः स ज्ञेयो वातपर्यायः ॥
वातपर्याय के लक्षण—जिस रोग में वायु वारं पर्याय करते हैं (वारी वारी से) नेत्र और अू माग में घूमा करता है अर्थात् कभी नेत्र में कभी भ्रूमाग में वारं जाता है और तीव्र पीड़ाये करता रहता है उसे वातपर्याय रोग कहते हैं ॥ १४ ॥

शुष्काक्षिपाकमाह—यस्कूणितं दारुग्रुचवर्त्मं संदद्यते चाऽऽविलदशनं यत् ।

सुवास्त्रणं यस्त्रित्वोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदिति ॥ १५ ॥
शुष्काक्षिपाक के लक्षण—जिस रोग में नेत्र बन्द करने पर वर्तमं कठिन एव रक्ष प्रतीत हो । नेत्र में दाह हो, धूष्ठला दिखाई देता हो और नेत्र खोलने में अधिक कठिनाई हो उसे शुष्काक्षिपाक नामक रोग जानना चाहिये इसमें रक्तान्वित वात का कोप रहता है ॥ १५ ॥

अन्यतोवातमाह—

यस्यावट्टकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा ।

कुर्यादुजं वै भूवि लोचने च तमन्यतोवात्सुदाहरन्ति ॥ १६ ॥

अन्यतोवात के लक्षण—जिस रोग में ग्रीवा के पीछे का माग, कान, शिर, हनु और मन्या (ग्रीवा के दोनों पास्त्र की शिरा) अथवा अन्यत्र (पीठ आदि में स्थित वायु अर्थात् इन स्थानों की वायु बढ़कर भ्रूमाग और नेत्रों में पीड़ा करती है उसे अन्यतोवात कहते हैं ॥ १६ ॥

विदेहोनाप्युक्तम्—

मन्यानामन्तरे वायुहर्तयतः पृष्ठोऽपि वा । करोति भेदं निस्तोदं शङ्खे वाचणोऽमुवोस्तथा ॥

तमाहुस्त्रितोवातं रोगं द्विधिविदो जनाः ॥ १८ ॥

जिस नेत्र रोग में मन्याओं अथवा पीठ में से उत्थित वायु शंख देश, नेत्र और भ्रूमाग में भेदने के समान तथा सूर्य चुम्बने के समान पीड़ा करता है उसे अन्यतोवात रोग कहते हैं ।

अम्लाध्युषितमाह—

श्यावं छोहितपर्यन्तं सर्वमङ्गि प्रपच्यते । सदाहशोथं साज्ञावमङ्गाध्युषितमङ्गतः ॥ १९ ॥

अम्लाध्युषित के लक्षण—जिस रोग में सम्पूर्ण नेत्र किञ्चित् नीलवर्ण के और अन्त में कोहित वर्ण के हो जाते हैं अर्थात् किनारे २ लाल और बाँच में किञ्चिन्नील वर्ण के हो जाते हैं, नेत्रों में पाक दाह, शोथ और स्राव होता है उसे अम्लाध्युषित रोग कहते हैं यह अम्ल पदार्थों के सेवन से कुपित दोषों से उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

शिरोत्पातमाह—अवेदना वाऽपि सवेदना वा यस्याद्विराज्यो हि भवन्ति तात्राः ।

मुहुविरुद्धन्ति च याः स ताहव्याधिः शिरोत्पात हृति ग्रिष्ठः ॥ २० ॥

शिरोत्पात के लक्षण—जिस रोग में नेत्र की शिराये पीड़ा रहित अथवा पीड़ा सहित (वा अवप पीड़ा युक्त) तात्र वर्ण की हो जावे और बारं बारं उनका वर्ण अधिकाधिक रक्त वर्ण का होता जावे उसे शिरोत्पात कहते हैं ॥ २० ॥

शिराप्रहृष्टमाह—मोहाद्विष्टरोपात उपेचितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहृष्टः ।

तात्राभ्यमत्तं चक्षति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीचितुं च ॥ २१ ॥

शिराप्रहृष्ट के लक्षण—भ्रम वश शिरोत्पात रोग होने पर उसकी उपेक्षा करने से (चिकित्सा

नहीं करने से) जो रोग उत्पन्न होता है उसे शिराप्रहृष्ट कहते हैं उसमें तात्रवर्ण का अत्यन्त गाढ़ा स्राव होता है और वह मतुर्थ देख नहीं सकता ॥ २१ ॥

नेत्रस्य सामतालक्षणमाह—

उदीणंवेदनं नेत्रं रागशोकसमन्वितम् । वर्षनिस्तोदशूलाशुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ २२ ॥

नेत्र रोग के आम लक्षण—जिस नेत्र रोग में अव्यन्त पीड़ा होती है, राग (लोहितादि वर्ण) और शोथ हो गये हों, वर्ष (किरकिराइट) सूर्य चुम्बने के समान पीड़ा, शूल (अन्य प्रकार की पीड़ा) और अष्ट स्राव होते हों उसे आमन्वित नेत्र रोग (नेत्र रोग की सामावस्था) जानना चाहिये ॥ २२ ॥

नेत्रस्य निरामतालक्षणमाह—

मन्दवेदनता कण्ठः संरभमाशुप्रसान्तता । प्रसक्षवर्णता चाक्षगोनिरामस्थ च लक्षणम् ॥ २३ ॥

नेत्र रोग के निराम (पक) लक्षण—जिस रोग में नेत्रों में पीड़ा मन्द हो गयी हो, कण्ठ होता हो, शोथ और अष्ट में शान्ति आ गयी हो और नेत्रों के वर्ण प्रसवत्र (स्वच्छ) हो गये हों उसे निराम (पक) नेत्र रोग जानना चाहिये ॥ २३ ॥

अथ नेत्ररोगाणां चिकित्सा

तथा च तन्त्रान्तरे—

सेको दिनानि चक्षवारि लङ्घनं भोजने रसः । स्वादुस्तिक्षश्च लेपश्च वाष्पस्वेदनमेव च ॥

पृतानि नेत्रोगाणां सामानां पाचनानि हि ॥ १ ॥

साम नेत्र रोग की चिकित्सा—सेक, चारं दिन लङ्घन, मधुर तथा तिक्त पदार्थ का भोजन, लेप और वाष्प द्वारा स्वेद देना चाहिये । ये सब कर्म नेत्र रोग की ताम अवस्था में पाचन के लिये करना चाहिये ॥ १ ॥

अज्ञनं सर्विधिः पानं कवायं गुह्योजनम् । नेत्रोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

साम नेत्र रोग में वज्रित कर्म—नेत्र रोग की साम अवस्था में अज्ञन लगाना, घृत पान, कषाय पान, गुरु पदार्थ का भोजन और स्नान करना त्याग देना चाहिये ॥ २ ॥

अदिकुक्तिभवा रोगः प्रतिश्यायवगड़राः । पञ्चते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति लङ्घनात् ॥

लङ्घन की व्यवस्था—नेत्र रोग, उदर रोग, प्रतिश्याय, व्रण और ज्वर रोग प्रारम्भ में पांच रात के लङ्घन से नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

षट्सप्तस्तिलोचनजा विकारास्तेषामभिष्यन्दसमुद्धवानाम् ।

श्लेष्माश्रयवादिह लङ्घनं प्राक्प्रशस्यते मुद्रारसौदनं च ॥ ४ ॥

नेत्र के रोग ७६ हैं इनमें अभिष्यन्द से जो उत्पन्न होते हैं उनमें श्लेष्मा का अश्रय होने से (कफान्वित होने से) पहले लङ्घन करना चाहिये है पथ्य में मूंग का रस और मात देना चाहिये । अज्ञनं पूरणं क्षाथपानमामे न शस्यते । आ चतुर्थाद्विनादामभिष्यन्देषि पि लोचनम् ॥ ५ ॥

सामनेत्र में निषिद्ध कर्म—नेत्र रोग की साम अवस्था में अज्ञन करना, पूरण करना (ओषध छोड़ना) और काथ पीना निषिद्ध है । अभिष्यन्द में भी चार दिन तक नेत्र की सामावस्था ही रहती है ॥ ५ ॥

गण्डवाल्लनस्यादिहीनानां कफकोपतः । षट्सप्तस्तिनेत्रोगा दुःसहाः स्युरुपेविताः ॥ ६ ॥

नेत्र रोग की सम्भावना—गण्डवाल्लन, अज्ञन, और नस्य नहीं लेनेवालों को कफ के कोप से और इन कर्मों की उपेक्षा करने से ७६ प्रकार के भवकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥
सेक आश्रोतनं विष्णवी विहालस्तपर्णं तथा । पुटपाकोऽज्ञनं चैभिः कवरैनेत्रमुपाचरेत् ॥ ७ ॥

नेत्र रोग के उपचार—नेत्र रोग में वक्ष्यमाण सेक सिव्वन, आश्रोतन, पिण्डी, विद्वाल, तर्पण, पुटपाक और अजन के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

दृष्टिगतरोगचिकित्सामाह—

वर्जयेदुपसर्गोत्थां गम्भीरां हस्तसंज्ञितास् । कांचांस्तु यापयेत्सवक्षिकुलान्ध्यं तथैव च ॥

दृष्टिगत रोग चिकित्सा—नेत्र रोगों में उपसर्ग (किसी वायु कारणों) से उत्पन्न गम्भीरा नामक नेत्र रोग को और हस्त नामक नेत्र रोग को त्याग देना चाहिये अर्थात् ये असाध्य होते हैं इनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। और सब प्रकार के कांच रोग को त्याग नकुलान्ध्य रोग को वायु समझ कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥

तिमिरं नेत्ररोगेषु कष्टं तद्यन्तो हरेत् ॥ १ ॥

नेत्र रोगों में तिमिर रोग को कष्टसाध्य समझ कर यत्न से नष्ट करना चाहिये ॥ २ ॥

मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहतम् । ऋषिभिस्तृदितं तस्मात्स्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

ऋषियों ने इष्टि को नष्ट करनेवाला मूल रोग तिमिर को ही कहा है इसलिये उसकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये ॥

वातिकतिमिरचिकित्सामाह—

हिनश्चानि नस्याज्जनशोधनानि पाकः पुटानामथ तर्पणं च ।

घृतस्य पानान्ध्यं वस्तिकर्म कुर्यादभीचणं तिमिरेऽनिलोत्थे ॥ ३ ॥

वातिक तिमिर रोग की चिकित्सा—वात के क्षोप से उत्पन्न तिमिर रोग में दिनश्व नस्य, अजन, शोधन, पुटपाक, तर्पण, घृत पान और वस्ति कर्म बार २ करना चाहिये ॥ ३ ॥

दशमूलादिना पक्क घृतं दुर्ग्रहचतुर्गुणम् । त्रिफलाकलसंयुक्तं तिमिरे वातजे पित्रेत् ॥ ४ ॥

दशमूल घृत—त्रिफला का कल्पक १२ भाग, गोघृत, ४ भाग, गोदुग्ध १६ भाग और दशमूलदि क्वाय १६ भाग इन सबको एकत्र कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर वातजे तिमिर रोग में पीना चाहिये ॥ ४ ॥

रात्ताकलन्यकाथे दशमूलरसे शृतम् । कल्पेन जीवनीयानां घृतं तिमिरवाशनम् ॥ ५ ॥

रासनादि घृत—रासना, आँवला, इरड़, बहेड़ा को समान भाग लेकर काख की विधि से काथ कर जितना हो उसके समान भाग (समान मिलित) दशमूल का विधिपूर्वक घृत हुआ काथ लेवे और रासनादि काथ के चतुर्थांश मूँछित गोघृत लेवे और जीवनीय गण की ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक कल्पक करे घृत से चतुर्थांश वह कल्पक मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्धकर सेवन करने से वातजे तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

वातिके तिमिरे पक्क दशमूलीरसे घृतम् । त्रिवृद्धूर्णसामयुक्तं विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

दूसरा दशमूल घृत—वातिक तिमिर रोग में दशमूल के रस में घृत पका कर उसमें निशेष का चूर्ण मिलाकर विरेचन के लिये देना चाहिये अर्थात् दशमूल का रस १६ भाग, मूँछित गोघृत ४ भाग और निशेष का कल्पक २ भाग लेकर सबको एकत्र घृतपाक की विधि से सिद्ध कर सेवन करने से वातिक तिमिर रोग में विरेचन होता है और तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

त्रिफलादशमूलानां निर्यहं दुधधिश्चित्सम् । गन्धर्वतैलसंयुक्तं प्रयुक्तीत विरेचनम् ॥ ५ ॥

त्रिफलादि योग—त्रिफला और दशमूल के समान मिलित क्वाय में दूध मिलाकर उसमें परण्ड तेल मिलाकर वचित मात्रा से विरेचन के लिये वातिक तिमिर रोग में प्रयोग कराना चाहिये ॥ ५ ॥

पैतिकतिमिरचिकित्सामाह—

शीताज्जनाशोतनसंपूर्णैश्च नस्यैविरेकैमूर्दुभिर्घृतैश्च ।

तिक्तप्रधानैस्तिमिरं निहन्यापित्तात्मकं शोणितमोष्ठणैश्च ॥ १ ॥

पैतिक तिमिर रोग की चिकित्सा—पित्तज तिमिर में शीतल ओषधियों के अजन, आश्रोतन, तर्पण, नस्य विरेचन तथा मुदु वीर्य ओषधियों द्वारा सिद्ध घृत मिलाने से तिक्तरस प्रधान पदार्थों के सेवन करने से और रक्तमोक्षण करने से पित्त के कोप से उत्पन्न तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

तिमिरे पित्तजे सर्पिंजीवनीयवराशृतम् । पायविद्या शिरां विष्येत्सितैलाकुभ्यसैन्धवैः ॥ १ ॥

चूर्णैर्मौषिकिसंयुक्ते रेचनं कारवेन्नः ।

पित्त व तिमिर रोग में जीवनीय गण की ओषधियाँ और त्रिफला के द्वारा विधिपूर्वक सिद्ध घृत को मिलाकर शिरावेच करना चाहिये और छोटी इलायची, निशेष और सेखानमक का विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु मिलाकर चटाना चाहिये ॥ २ ॥

बलाशतावरीबीशसिताशैलेयकैः पचेत् ॥ ३ ॥

त्रिफलासहितं सर्पिंश्चित्तिमिरच्छन्मनुच्छन्म ।

बलादि घृत—बरिआरा, शतावरी, पुष्पणी, इवेत निशेष और शैलेय (शिलारस) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्पक करकर जितना हो उसके चौगुना घोघृत और घृत से चौगुना त्रिफला का क्वाय लेकर घृतपाक की विधि से सिद्ध कर सेवन करने से तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सारिवाद्रिफलोशीरमुक्ताच्छन्दनपद्मकैः । पिष्टं वर्तीकृतं हन्ति पित्तोत्थं तिमिरं नृणाम् ॥

सारिवाद्रिवति—सारिवा, अंवला, इरड़, बहेड़ा, खस, राला, लाल चन्दन और पदुमकाठ प्रयोग के समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर वर्तिकाकार बनाकर छाया में सुखा लेवे, इस वर्ति को जल में विसकर नेत्र में लगाने से विचेत्र तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

इलैविकतिमिरचिकित्सामाह—

तीचणानि नस्याज्जनशोधनानि पाकः पुटानामपत्तर्पणञ्च ।

घृतानि वासात्रिफलापटोलसंज्ञानि कुर्यात्तिमिरे कफोत्थे ॥ १ ॥

कफज तिमिर रोग की चिकित्सा—तीक्ष्ण ओषधियों के नस्य, अजन, शोधन और पुटपाक, अपतर्पण तथा वासा घृत त्रिफला घृत और पटोल घृत का वयायोग करने से कफज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कफोद्धवे वराच्छ्वश्चते काथे शृतं हविः । पायविद्या शिरां विष्येद्वेचनं तिमिरे भिषक् ॥

कफज तिमिर रोग में त्रिफला और चब्द के क्वाय में चतुर्थांश गोघृत मिलाकर घृतपाक की विधि से सिद्ध घृत पिलाकर शिरावेच करना चाहिये। इस घृत से कफज तिमिर में रेचन होता है ॥ २ ॥

यूथी पथ्या कणा शुण्ठी कुमुकस्थामुनिश्चरः । गोमूत्रकथिताशुण्ठी त्रिवृत्सिद्धा विरेचनम् ॥

जूरी, इरड़, पीपल, सौंठ, कुमुक फूल का रस, पहाड़ी जलने का जल, गोमूत्र में पकाई दुई सौंठ और निवृता को नेत्र में ढालने से कफज तिमिर में विरेचन होकर कफ का नाश होता है ॥

नस्यं मरीचयष्ट्याह्विहङ्गामरदाहयिः ।

मरिचादि नस्य—कफज, तिमिर रोग में मरिच, जेठी मधु, वायविडंग और देवदाढ़ को पीस कर विधिपूर्वक नस्य बनाकर देने से उत्तम लाभ होता है ।

नेपालत्रिफलाशङ्काकान्ता द्योषं च पेषितम् । वर्तीकृतं बलासोत्थमज्जनं तिमिरापहम् ॥ ४ ॥

नेपालादि वर्त्यज्जन—तांत्रि का शुद्ध चूर्ण, इरड़, बहेड़ा, आँवला, शुद्ध चूर्ण, रेणुका, सौंठ,

मरिच और पीपल को समान भाग लेकर पीस कर विधिपूर्वक वर्तिकाकार बनाकर छाया में छुड़ा कर जल के साथ घिस कर अज्जन करने से कफज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

सानिपातिकतिमिरचिकित्सामाह—

संसर्गं संनिपाते च यथादोषोदयक्रियाम् । शाश्वी रसाज्जनं द्वौद्वं सर्विभिस्तु रसक्रिया ॥ १ ॥
पित्तानिलाच्चिरोगस्त्रो तैमि वैष्टलापहा । दद्युशीरनियूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ॥ २ ॥

तच्छृंतं सच्चृंतं भूयः पचेत्त्वौद्वं घने ततः । शीते चास्तिमिन्द्रितभिदं सर्वजे तिमिरे हितम् ॥

संसर्गं और सानिपातिक तिमिर रोग चिकित्सा—संसर्गं और सानिपातिक तिमिर रोग में दोषों के अनुसार अर्थात् जैसे २ दोष हों (वात-पित्त, पित्त-कफ वा कफ-वात अथवा तीनों भिन्नित) उन २ दोषों को नष्ट करने वाले प्रयोगों की चिकित्सा करनी चाहिये । अर्थात् आँखों, रसवत, मधु और घृत को मिलाकर रस क्रिया करने से पित्त-वात दोष से (पित्त-वात के द्वन्द्व दोष से) उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट होते हैं और तिमिर के पटल रोग का नाश होता है । खस के काथ में सेंधा नमक का चूर्ण भिलाकर जितना ही उसके चतुर्थी शांखार मिलाके और वृत्त के समान मधु भिलाकर घृत पाक की विधि से वृत्त सिञ्च कर जब घन (गाढ़ा) हो जावे तब बढ़ाव कर शीतल हो जाने पर नेत्र में लगाने से संनिपातज तिमिर रोग में लाभ करता है ॥ १-३ ॥

वातपित्तकफसंनिपातजां नेत्रयार्द्धुविधामपि वृथाम् ।

शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः शिग्रपश्लवरसः समाविकः ॥ ४ ॥

शिग्रपश्लवरस योग—सहिजन के कोमल पत्तों के स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर आँख में डालने से वातज, पित्तज, कफज और संनिपातज सभी प्रकार के नेत्र रोग एवं विविध प्रकार की पीड़ा शीघ्र नष्ट होती है ॥ ४ ॥

अथ तिमिरे सामान्यचिकित्सा

अज्जनविधिः—

अथ संपकदोषस्थ प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । अज्जनं किष्टते येन तद्दद्धयं चाज्जनं मतम् ॥

अज्जनविधि—जब नेत्र रोग के दोष परिपक हो जावे तब अज्जन वाली ओषधि करनी चाहिये । जिन दृश्यों से अज्जन किया जाता है उन्हें या अज्जन ही कहते हैं ॥ १ ॥

तथा—गुटिकारसचूर्णानि विधिचान्यवनानि तु ।

कुर्याद्वृक्षालकवायाङ्गुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥ २ ॥

अज्जन के भेद—गुटिका, रस और चूर्ण के भेद से तीन प्रकार के अज्जन होते हैं । ये सलाका अथवा अंगुली से ही नेत्रों में लगाये जाते हैं । ये तीनों प्रकार के अज्जन एक दूसरे से गुण में हीन होते हैं अर्थात् गुटिका से हीन गुण रस से और रस से हीन गुण चूर्ण वाले अज्जन में होता है । स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं तत्त्वित्रा पृथक् । मधुरं स्नेहसंपत्तमञ्जनं स्नेहनं मतम् ॥ ३ ॥
कथायतिक्षरसयुक्तस्नेहं रोपणं स्मृतम् । अज्जनं चारतीचगाम्लरसलेखनमुच्यते ॥ ४ ॥

अज्जन के अन्य भेद—अज्जन में तीन भेद और हैं जो स्नेहन, रोपण और लेखन कहे जाते हैं मधुररस वाली और स्नेह मिली हुई (घृतादि से युक्त) ओषधियों के योग से जो अज्जन प्रस्तुत किया जाता है उसे स्नेहन अज्जन कहते हैं । कथाय तथा तिक्षरस वाली और स्नेह मिली ओषधियों के योग से प्रस्तुत किया हुआ अज्जन रोपण अज्जन कहा जाता है । क्षार, तीक्ष्ण और अम्ल रस वाली ओषधियों के योग से प्रस्तुत किया हुआ अज्जन लेखन अज्जन कहा जाता है ॥ ३-४ ॥

हरेणमार्चा कुर्वीत चर्ति तीक्ष्णाज्जने भित्तक । प्रमाणं मध्यमे साधं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥ ५ ॥
अज्जन वर्ति का प्रमाण—तीक्ष्णाज्जन के लिये वैद्य को हरेण अर्थात् बड़े चर्ते अथवा मटर के

प्रमाण की मोटी वर्ति बनानी चाहिये और मध्यम (मध्यकी ओषधि से बने) अज्जन के लिये लेडी अर्थात् उपरोक्त लेडी मोटी तथा मृदु अज्जन (मृदु वीर्य ओषधियों से बने अज्जन) के लिये दुगुनी मोटी वर्ति का बनानी चाहिये ॥ ५ ॥

रसक्रिया तृतीमा स्थात्रिविडङ्गिमिता दिता । मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना व्येकविडङ्गिका ॥
रस क्रिया का प्रमाण—तीन विडङ्ग के प्रमाण की (तीन विडङ्ग के दानों के समान पदार्थ से) जो रस क्रिया की जाती है वह उत्तम होती है । दो विडङ्ग के प्रमाण की जो रस क्रिया (दो विडङ्ग के दानों के प्रमाण की ओषधि से) की जाती है वह मध्यम होती है और एक विडङ्ग के प्रमाण की ओषधि से जो रस क्रिया की जाती है वह हीन होती है ॥ ६ ॥

शलाका: स्नेहने चूर्णं चतुस्त्रः प्राहुरज्जने । रोपणे तात्तु तित्तिः स्युस्ते उभे लेखने स्मृते ॥ ७ ॥
शलाका प्रमाण—स्नेहन और चूर्ण वाले अज्जन में चार शलाकायें ओषधि आँख में लगानी चाहिये । रोपण अज्जन में तीन शलाकायें ओषधि आँख में लगानी चाहिये और लेखन ओषधि के अज्जन में दो शलाका ही अज्जन लगाना चाहिये ॥ ७ ॥

मुख्यो कुञ्जिता शलाका शलाकाऽष्टाङ्गुलोन्मिता ।

अरमजा धातुगाया या स्थात्कलायपरिमण्डला ॥ ८ ॥

शलाका के लक्षण—शलाका नेत्र में अज्जन करने के लिये जो बनाई जावे उसके दोनों ओर के मुख कुञ्जित (पतले) हों और बीच में मोटी हो, चिक्की हो (शलाका में किसी प्रकार की रक्षता नहीं हो) । तथा आठ अङ्गुल प्रमाण की बड़ी हो । वह पत्थर की अवज्ञा किसी धातु की बनानी चाहिये और उसके मध्य भाग की रक्षता (मोटाई) कलाय (मटर) के मण्डल के प्रमाण की होनी चाहिये ॥ ८ ॥

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता । ताम्रोहाशमसंजाता शलाका लेखने मता ॥

अङ्गुलिश्व मृदुत्वेन रोपणे कथिता बुद्धेः ॥ ९ ॥

सुवर्ण और चौदों की बनी शलाका स्नेहन अज्जन के लिये प्रयोग करना चाहिये । ताम्र, लोह और पत्थर की बनी शलाका लेखन अज्जन के लिये प्रयोग करना चाहिये और अङ्गुली का ही रोपण अज्जन में प्रयोग करना चाहिये अर्थात् शलाका से नहीं लगाकर अङ्गुली से ही रोपण अज्जन लगाना चाहिये क्योंकि अङ्गुली मृदु होती है ॥ ९ ॥

अज्जने केवलमपि शलाकाविशेषमाह—

त्रिफलाभ्युषुण्ठीनां रसैस्तद्वृच्च सर्वित्तः । गोमूत्रमध्यजाच्चीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥ १ ॥

तद्वृलाका हरयेव सकलान्यवासयान् ।

शलाका की विशेषता—नाग अर्थात् शीशा को अग्नि में तथा-तपाकर त्रिफला के काथ में, मांगरे के स्वरस में, सोठ के काथ अदरख के स्वरस में, घृत में, गोमूत्र में, मधु में और बकरी के दूध में क्रम से तुशावे (अलग १ सब में तथा-तपाकर तुशावे) पश्चात् ओषधियों से सिक्त शीशे की यह शलाका ही विसने से नेत्र के सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

कृष्णभागादधः कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ २ ॥

अज्जन छाने की विधि—नेत्र में कृष्ण गोलक से नीचे अपांग तक अर्थात् नेत्र के इस कोने से उस कोने तक अज्जन लगाना चाहिये ॥ २ ॥

प्रथमं स्थायमञ्जीयायपश्चादिविणमञ्जयेत् । शलाकया साब्जनया न च तन्नयनं स्पृशेत् ॥ ३ ॥

एहले बाई आँख में अज्जन युक्त अथवा ओषधि परिसिक्त शलाका से अज्जन करना चाहिये पश्चात् दाइनों आँख में अज्जन करना चाहिये और अज्जन लगाने के बाद नेत्रों का स्पर्श नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

हेमन्ते शिशिरे वाऽपि मध्याह्नेऽजनमिथ्यते । पूर्वाह्ने वाऽपराह्ने वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥
वर्षास्त्वनभ्ये नाथ्युष्णे वसन्ते च सदैव हि । प्रातः सायं च तरुकुर्यान्न च कुर्यारसदेव हि ॥५॥

अजन लगाने का समय—हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में मध्याह्नेऽजन भी अजन करना चाहिये । ग्रीष्म और शरद ऋतु में दिन के पूर्वमाण अथवा अपराह्न (तीसरे पदर) में अजन लगाना चाहिये । वर्षास्त्वनभ्ये नाथ्युष्णे वसन्ते च तरुकुर्यान्न च कुर्यारसदेव हि ॥५॥ अजन लगाना चाहिये । वर्षास्त्वनभ्ये नाथ्युष्णे वसन्ते च तरुकुर्यान्न च कुर्यारसदेव हि ॥५॥ अजन लगाना चाहिये । वर्षास्त्वनभ्ये नाथ्युष्णे वसन्ते च तरुकुर्यान्न च कुर्यारसदेव हि ॥५॥ किन्तु जब वर्षा में बादल हो, वसन्त में अधिक उष्णता हो गयी हो तो अजन नहीं लगाना चाहिये ॥ ४-५ ॥

आन्ते प्रहृदिते भीते पीतमये नवज्वरे । अजीर्णे वेगवासे च नाभजनं संग्रशस्यते ॥ ६ ॥

अजन निवेष—जो थके हुये हों, जो रोये हों (दुख से जिन्हें अधिक अशुपात हुआ हो), भयमीत हों, मथ पीचे हों, नवीन ज्वर वाले हों, अजीर्णरोग वाले हों और जिन्हें वेगवात करना पड़ा हो उन्हें अजन लगाना चित नहीं है ॥ ६ ॥

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमध्यणोः प्रयोजयेत् । पञ्चरात्रेष्टुष्टात्रे वा स्नावणार्थं रसाखनम् ॥ ७ ॥

नित्यं सौवीराञ्जनं लगाना आँखों के लिये दितकर परन्तु पांच या आठ रात पर स्नावण के लिये रसाञ्जन (रसवत) अथवा ओषधियों के रसों का अजन करना चाहिये (इससे नेत्र से अशुपात होकर नेत्र शुद्ध होते हैं) ॥ ७ ॥

मुकादिमहाञ्जनं भावप्रकाशात्—

मुकादिमूर्त्तरकाचागुरुमरिष्यकणासैन्धवं सैलवालं
शुण्ठीकुञ्जलकांस्यभुरजनिशिलाशङ्कुनाभ्यभ्रुत्यथम् ।

द्वाषण्डवकं च साच्चतजयुतशिवाकलीतकं राजवतं
जातीपुष्पं तुलस्याः कुमुकमभिनवं दीजमस्यास्तथैव ॥ १ ॥

पूर्तीकनिग्नवाञ्जनभद्रमस्तं सताज्जलारं रसगर्भयुक्तम् ।
प्रयेकमेषां खलु माषकेकं पलेन पिष्यान्मधुनाडति सूक्षमम् ॥ २ ॥

भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमाश्रोपचिताश्च तेषाम् ।

चिधीयते शान्तिरवश्यमेव मुकादिनाइनेन महाञ्जनेन ॥ ३ ॥

मुकादि महाञ्जन—शुद्ध मोती, कपूर, कांच (काच लवण वा शुद्ध शीशा), अगर, मरिच, पीपल, सेधानमक, पलुआ वा तेजबल के बीज, सोठ, कंकोल, मरिच, शुद्ध कासा, शुद्ध रांगा, इलदी, शुद्ध जैनसिल, शुद्ध शङ्कनाभि, शुद्ध अश्रु, शुद्ध तूतिया, कुकुटाण्ड की त्वचा, बहेडा, कादमीर केसर, हीरीती, मुलाइठो, लाजावर्त चमेली के पुष्प, तुलसी के नूतन पुष्प और बीज, करञ्ज के बीज, नीम के पत्ते, सौवीराञ्जन, नागरमोया, कालचन्दन और रसवत इन सब ओषधियों को एक २ माणा लेकर विधिपूर्वक इलक्षण चूर्ण कर इसमें एक पल मधु मिलाकर भीमीति मदनं कर रख लेवे । इस अजन से नेत्रों के रोग जो अत्यन्त लवण हो गये हों अवश्य शान्त हो जाते हैं । इस महाञ्जन का नाम मुकादि महाञ्जन है ॥ १-२ ॥

नयनशाणनामाञ्जनम्—

कणा सलवणोषणा स्वरसाखना साखना, सरिरपतिकफः शिफा सितु नर्ववासंभवा ।

रजन्यहणचन्दनं भृकुत्यथपथ्या शिला, अरिष्टदलशाबरस्फटिकशङ्कुनाभीन्द्रिवः ॥ १ ॥

हमनि तु विचूर्णयेनिशिवासदा शोधयेत्, ततोऽयसि निर्मदेयत्समधुताघ्रखण्डेन तत् ।

इदं मुनिभिरितं नयनशाणनामाञ्जनं, करोति तिमिरचयं पटलपुष्पवनाशं चलात् ॥ २ ॥

नयन शाण नामक अजन—पीपल, सेधानमक, मरिच, रसवत, सौवीराञ्जन, समुद्रकेन,

श्वेतपुनर्नवा की जड़, इलदी, रक्तचन्दन, मुलाइठो, शुद्ध तूतिया, हरीतकी, शुद्ध मैनशिल, नीम के पथे, लोध फिटकिरी, शुद्ध शङ्कनाभि और कपूर को समान भाग लेकर विधिवत इलक्षण चूर्णकर सघन वस्त्र में छान लेवे, फिर इस चूर्ण को लोहे के खरल में रख कर उसमें यथायोग मात्रा से मधु मिलाकर तबीं के सुदगर से भीमीति मदनं करे । इस अजन को मुनियों ने नयन शाण नामक अजन कहा है । यह अजन तिमिर रोग को नष्ट करता है, पटल रोग तथा नेत्र पुष्प (फुलों) रोग को बलपूर्वक अर्थात् अवश्य नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

चन्द्रोदयावर्तिः—

शङ्कनाभिर्विभीतस्य मदजापथ्या मनःशिला । पिष्पली मरिचं कुण्ठं चचा चेति समांशकम् ॥
छागलीरेण संपिष्य वर्णं कुर्याद्यत्रोन्मिताम् । हरेणुमात्रां संधृष्य जलेनाज्जनमाचरेत् ॥ २ ॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्णुदम् । रात्र्यन्वयं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्नद्रोदया हरेत् ॥ ३ ॥

चन्द्रोदयावर्तिः—शुद्ध शङ्कनाभि चूर्णं बहेडे की शुद्ध, हरड, शुद्ध मैनसिल, पीपल, मरिच, कूट और वच को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर यव के समान बटी बना लेनी चाहिये । इस बटी को चना अथवा रेणुका के बीज के प्रमाण बल में विस कर नेत्र में अजन कराने से तिमिर रोग, मांस वृद्धि, काच, पटल, अर्णुद, रात्र्यन्वय (रत्तौवी), एक वर्ष तक का फूल आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

चन्द्रप्रभावर्तिः—

इजनी निम्बपश्चाणि पिष्पली मरिचानि च । विडङ्गं भद्रमुस्तं च सप्तमी त्वभया स्मृता ॥
अजामूलैण संपिष्य छायायां शोधयेद्वट्टी । कारिणा तिमिरं हन्ति गोमूलैण तु पिष्टिकाम् ॥

मधुगा पटलं हन्ति नाराचीरेण पुष्पकम् । एषा चन्द्रप्रभा वर्तिः स्वयं हृदेण निमिता ॥ ३ ॥

चन्द्रप्रभावर्ति—इलदी, नीम की पत्तिया, पीपल, मरिच, वायविंदा, नागरमोया और हरड समान भाग लेकर बकरी के भूत्र के साथ बोट कर बटी बना कर छावा में सुखा लेवे । इस बटी को बल में विस कर लगाने से तिमिररोग नष्ट होते हैं, मधु में विस कर लगाने से पटलरोग नष्ट होता है और ज्वां के दूध में विस कर लगाने से पुष्पक रोग अर्थात् फूलारोग नष्ट होता है । इसका नाम चन्द्रप्रभा बटी है और इसको स्वयं बद्रदेव ने बनाया था ॥ १-३ ॥

शशिकलावर्तिः—

रसकजलजनाभिः पौरतुरुर्थं समोद्धं वसनगलितमेतश्चिमुनीरेण पिष्टम् ।

हरति शशिकलैत्तर्हितरभ्यजिताऽध्यगोस्तिमिरकुमुकण्डस्वावरागार्मपिष्टान् ॥ १ ॥

शशिकलावर्ति—फिटकिरी, शुद्ध शङ्कनाभि, शुद्ध नखों और शुद्ध तूतिया इन सब ओषधियों को समान भाग लेकर विधिवत चूर्णकर कपड़े में छानकर नीबू के स्वरस में बोट कर बटी बना लेवे । इस बटी का अजन नेत्रों में लगाने से तिमिररोग, फूला, नेत्र कण्ड, स्नाव, नेत्ररोग (नेत्रों में रक्तपीत आदि वर्ण होना), अर्म तथा पिश्लरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लोचनशुद्धनी पोट्टली—

कृत्तलाजसुराण्ड्राहिफेनं शचिरं नागजगलवोरथचूर्णम् ।

सुकुमार्युदकेन शुद्धवपाने शुद्धितं द्विरुजं द्वयेरपदरथम् ॥ १ ॥

लोचन शुद्धनी पोट्टली—खस, फिटकिरी, अफीम, केसर काश्मीरी, सिन्दूर और लोध का चूर्ण समान लेकर चमेली के फूलों के स्वरस के साथ तात्र पात्र में खरक कर एक कपड़े में रख कर पोट्टली बना कर नेत्रों पर केरने से नेत्र की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

नयनासूतम्—
रथेन्द्रसुजगी तुल्यो तथो हिंगणमञ्जनम् । सूततुर्थशक्पूरमञ्जनं नयनासूतम् ॥ १ ॥
तिमिरं पटलं काचं शुकमार्जुनानि च । क्रमापथयाविनो हनित तथाऽन्यानपि दग्धदान् ॥
नयनासूत अञ्जन—शुद्ध पारद तथा शुद्ध शीशा एक २ माग लेवे और इन दोनों से दग्धना (४ चार माग) सौवीराञ्जन लेवे और पारद के चतुर्थीश दूसी माग कपूर लेकर एकत्र खरल कर वस्त्र में छान कर रख लेवे । इस अञ्जन को नेत्र में लगाने से तिमिररोग, पटलरोग, काचरोग, शुकरोग (नेत्र शुक) अर्मरोग, अर्जुनरोग तथा अन्य नेत्ररोग भी नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

रोपणी कुमुमिकावर्तिः—

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्ठिः पिपलितपूलाः । जात्याः कुसुपच्छाशनमरिचानि च घोडशः ॥
सूदसपिष्ठा जलैर्वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा । तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशनी मांसवृद्धिनुत् ॥

एतस्या अञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥ २ ॥

कुसुमिका वर्तिः—तिल के पुष्प संख्या में ८०, पीपल के दाने (पीपल के फल के फोड़ने से बो दाने राई के समान निकलते हैं वे दाने) संख्या में ६०, चमेली के फूल संख्या में ५० और मरिच के दाने संख्या में १६ लेकर जल के साथ उत्तम रीति से पीस कर बटी बना लेवे । इस बटी का नाम कुसुमिका वटी है । इस बटी के अञ्जन से तिमिररोग, अर्जुनरोग, नेत्र शुक आदि रोग नष्ट होते हैं और नेत्र की मांस वृद्धि नष्ट होती है । इसके अञ्जन करने की मात्रा ढेढ़ चने अथवा ढेढ़ रेणुका के बराबर कही गयी है ॥ १-२ ॥

दार्याचञ्जनम्—

दार्याचरामधुकममभसि नारिकेले पक्ष्वाऽष्टभागपरिशिष्टरम् पुनस्तम् ।
साम्बूद्धं विपाच्य शशिसैन्धवमाचिकाहृयं युक्त्याद् ब्राणार्तिमिरार्तिषु पित्तजेषु ॥ १ ॥
दार्याचि अञ्जन—दार्यहल्दी, आंवला, हरड़, बहेड़ा और मुलहल्दी को समान भाग लेकर सोलहगुने नारियल के बल में काथ की विधि से काथ कर अष्टमांश शैष रहने पर डतार-छान कर पुनः पाककर बना (गाढ़ा) करे और गाढ़ा हो जाने पर उसमें कपूर का चूर्ण सेधानमक का चूर्ण और मधु मिलाकर रख लेवे । इस अञ्जन का प्रयोग पैतिक नेत्र ब्रान में और पैतिक तिमिर रोग में करना चाहिये ॥ १ ॥

शङ्खादिवटीः—

शङ्खस्य भागाश्चरात्तदर्थेन मनःशिलाः । मनशिलार्थं मरिचं मरिचार्थेन च पिपली ॥ १ ॥
सर्वमेकत्र संमर्थं गुटिकां कारयेत्ततः । वारिणा तिमिरं हनित चारुं दं हनित मस्तुना ॥

पिचिचटं मधुना हनित छीचीरेण तथाऽर्जुनम् ॥ २ ॥

शङ्खादिवटी—शुद्ध शंख चार माग और उसके आधा (दो माग) शुद्ध मैनसिल और मैनसिल के आधा (एकमाग) मरिच का चूर्ण और मरिच के चूर्ण के आधा (ई माग) पीपल का चूर्ण लेकर एकत्र मर्दन कर बल के संयोग से बटी बना लेवे । इस बटी को बल के साथ विसकर लगाने से तिमिर रोग नष्ट होता है, दही के पात्रों के साथ विसकर लगाने से नेत्र का अंतुर नष्ट होता है, मधु के साथ विसकर लगाने से नेत्र के पिचिचट रोग नष्ट होता है और खो के दूध के साथ विसकर लगाने से नेत्र के अर्जुन रोग नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

पुनर्नवाचञ्जनम्—

दुग्धेन कण्ठं छौद्रेण नेत्रज्ञावं च सर्विषा । पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम् ॥
पुनर्नवा हरस्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १ ॥

पुनर्नवाचञ्जनम्—पुनर्नवा के चूर्ण वा स्वरस में दूध मिलाकर अञ्जन करने से नेत्र कण्ठं नष्ट होता है, मधु मिलाकर अञ्जन करने से नेत्रज्ञाव नष्ट होता है, घृत मिलाकर अञ्जन करने से घूला नष्ट करता है, तेल मिलाकर अञ्जन करने से तिमिर रोग नष्ट करता है, कौंबी मिलाकर अञ्जन करने से रात्रयन्ध (रत्तीकी) नष्ट करता है, इस प्रकार से प्रयोग करने से पुनर्नवा इन २ रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य देव अन्वकार को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

गुदूच्याचञ्जनम्—

गुदूचीस्वरसा कर्षः छौद्रेण स्थानमाषकोन्मितम् । सैन्धवं छौद्रतुल्यं स्थात्सर्वमेकत्र मर्हयेत् ॥
आठज्येश्वरनं तेन पिष्ठामितिमिरं जयेत् । काचं कण्ठं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णगतान्यावान् ॥ २ ॥

गुदूच्याचञ्जनम्—गुदूच का स्वरस एक कर्ष (१ तो०), मधु एक मासा और मधु के समान (१ मासा) सेधानमक का चूर्ण लेकर एकत्र मर्दन कर नेत्र में अञ्जन करने से पिष्ठ रोग, अर्म रोग तथा तिमिर रोग, काच रोग, नेत्र कण्ठ रोग, लिङ्गनाश रोग एवं शुक्ल मण्डलगत तथा कृष्ण मण्डल मत सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

कतकफलादि—

कतकस्य फलं घृष्णा मधुना नेत्रमञ्जयेत् । ईषत्कपूरसहितं तत्स्यान्नेत्रप्रसादनम् ॥ १ ॥

कतकफलादि योग—निर्मली के बीज को मधु के साथ विसकर उसमें किन्निचूक पूर्व मिलाकर अञ्जन करने से नेत्रों का प्रसादन होता है अर्थात् नेत्र निर्मल हो जाते हैं ॥ १ ॥

अन्यच्च—

कतकस्य फलं शङ्खः सैन्धवं शूलाणं सित् । फेनो रसाज्जनं छौद्रं विद्वानि मनशिला ।

कण्ठवलेवार्षुदान्हनित मलं वा सुसुखावति ॥ २ ॥

निर्मली के बीज, शुद्ध शङ्ख, सेधानमक, सौंठ, मरिच, पीपल, शर्करा समुद्रफेन, रसवत, मधु, बायविंडग और शुद्ध मैनसिल को समान भाग लेकर चूर्ण कर खो के दूध के साथ यली मांति मर्दन कर नेत्रों में लगाने से तिमिर रोग, पटल रोग, काच रोग, अर्म रोग और नेत्र शुक्ल रोग नष्ट होते हैं और नेत्र कण्ठ, क्लेद, अंतुर तथा नेत्र मल नष्ट होते हैं एवं नेत्र को सुख होता है ॥ १-२ ॥

पिपलयाचञ्जनम्—

पिपलीत्रिफलालालालोध्रकं च ससैन्धवम् । नृद्वाजरसे धृष्टं गुटिकाज्जनमिष्यते ॥ १ ॥

अर्म सतिमिरं काचं कण्ठं शुक्लं तथाऽर्जुनम् । अञ्जनं नेत्रज्ञानरोगाभिहन्त्येव न संशयः ॥ २ ॥

पिपलयाचञ्जन—पीपल, आँवला, हरड़, बहेड़ा, लाख, लोथ और सेधानमक को समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर मांतोरे के स्वरस के साथ मर्दन कर (घोटकर) बटी बनाकर अञ्जन करे । इस अञ्जन के प्रयोग से अर्म रोग, तिमिर रोग, काच रोग, नेत्र कण्ठ तथा अर्जुन रोग नष्ट होते हैं और इससे नेत्र में होनेवाले अन्यान्य रोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

गुज्जामूलाचञ्जनम्—

गुज्जामूलं वस्तमूत्रेण पिष्टं निष्ठृष्टा वा वारिणा भद्रमुस्ता ।

आन्धयं सैद्धसत्त्वमिरं हनित पुंसामयुद्धादं नेत्रयोरञ्जनेन ॥ १ ॥

गुज्जामूलाचञ्जन—गुज्जा (रत्तीयों) की बड़ी के बकरी के मूत्र के साथ पीसकर नेत्र में अञ्जन करे, अथवा नागरमोथे की बल के साथ पीसकर नेत्र में अञ्जन करे तो इन अञ्जनों से अन्धरोग (दिखाई नहीं देना) और तिमिर रोग अवश्य ग्राह (अत्यन्त बड़े हुए) मी हों तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

तुकस्यादिः—

तुलस्या विष्वपत्रस्य रसो ग्राद्यः समांशकः । तथां तु वृथं पयो नार्यास्तिथं कांश्यपात्रके ॥
गजवस्तया हठं वर्यं तान्नेण प्रहरं पुनः । कउजलत्वं समुपाद्य तेनाजितविलोचनः ॥

सद्यो नेत्ररुजं हन्ति सशूलां पाकसंभवाम् ॥ १ ॥

तुलस्यादिः योग—तुलसी के पत्तों का स्वरस और बेल के पत्तों का स्वरस समान लेकर उसमें दोनों के समान आग खीं का दूध लेवे और इन तीनों ओषधियों को काँसे के पात्र में रखकर उसमें पान का रस (एक आग अर्थात् तुलसी के स्वरस के समान) मिलाकर तांत्रिकण्ठ (पैसे आदि) से एक पहर तक मलीमांति मर्दन करे, मर्दन करने पर जब कञ्जल के समान हो जावे तब उसका नेत्र में अव्यजन करे तो इस अव्यजन से नेत्र की पीड़ा शाश्वत नष्ट हो जाती है और नेत्र का शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है चाहे नेत्र पीड़ा और शूल से पक्के के समान क्यों न हो गये हों ॥ १-२ ॥

महावासादि काथः—

वासा घनं नित्यं | टोलपत्रं तिक्तामृताचन्दनवस्तकरत्वक् ।
कलिङ्गदार्ढिदहनं सनागरं भूनित्वधात्री द्विभाद्या विभीतकम् ॥ १ ॥
तथा यदकाथसथाश्माशं विवेदिम् पूर्वदिने कवायकम् ।
तैमिर्यकण्ठपटलार्बुदं च शुक्रं तथा सद्वणमवर्णं च ।

दाहं सरागं सहजं सपिदलं हन्यारसमस्तानपि नेत्ररोगान् ॥ २ ॥

महावासादि काथ—थलसा, नागरमोथा, नीम की छाल, परवल के पत्ते, कुटकी, गुरुच, छालचन्दन, कुटज (कोरीया) की छाल, हन्दचो, दाराइलदी, चौते की जड़, सौंठ, चिरायता, आंमला, हरड़, बहेड़ा और जी समान मान लेकर काथ की विधि से काथ कर अष्टमांश शेष रहने पर दिन के पूर्व आग में अर्थात् प्रातःकाल इस कवाय (काथ) को पान करने से तिमिर रोग, नेत्रकेण्ठ, पटल रोग, नेत्र के अबुद, नेत्र शुक्र, सत्रण नेत्र शुक्र अथवा अवण नेत्र शुक्र दोनों में कोई अथवा दोनों, नेत्र का दाह, नेत्र में रोग होना (नेत्र का रक्तादि वर्ण हो जाना), नेत्र पीड़ा, नेत्र के धिक्क रोग तथा अन्यान्य नेत्र के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

त्रिफलाकाथः—

अथःस्यं त्रिफलाकाथं सर्पिषा सह योजितम् । भुक्तोपरि पिवेत्सायं मासेनान्धोऽपि पश्यति ॥

त्रिफला काथ—छोड़े के पात्र में विषिपूर्वक बनाया त्रिफला का क्वाय रख कर उसमें गोदृत का प्रक्षेप देकर साथकाल भोजन के पश्चात् एक मास तक पान करने से अन्वा मनुष्य मीदेखने लगता है अर्थात् इस त्रिफलादि क्वाय के सेवन से एक मास में नेत्रान्धरोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

चित्रकारिकाथः—चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिवेदभ्यः ।

सधृतं निदित्यच्छृष्टं तिमिरं च विशेषतो हन्ति ॥ ३ ॥

चित्रकारिकाथ—चित्रक की जड़, आंमला, हरड़, बहेरा, परवल के पत्ते और जी को समान मान लेकर विषिपूर्वक क्वाय कर उसमें गोदृत का प्रक्षेप देकर रात्रि में पान करने से नेत्रों का द्वित होता है अर्थात् नेत्र में रोग नहीं होने पाते । विशेषतः तिमिर रोग को यह क्वाय नष्ट करता है ॥ ३ ॥

अथ चूर्णानि

त्रित्राईदौ त्रिफलाचूर्णम्—

त्रिफलात्वचमायसं च चूर्णं समयादीमधुकं त्रिसप्तरात्रम् ।

मधुना सह सर्पिषा दिनान्ते पुहवो निष्परिहारमाद्वीत ॥ १ ॥
तिमिरार्बुद्रकराजिकण्ठलग्नान्धयदहशूलतोदान् ।

पटलं च सशुक्लकाचपिलं शमयस्येव निषेवितः प्रयोगः ॥ २ ॥

त्रिफला चूर्ण—आंमला, हरड़, बहेड़ा, लोहमस्तम और जेठी मधु के चूर्ण को समान लेकर मधु और गोदृत के अनुपान से दिन के अन्त में अर्थात् साथकाल २२ दिन तक जो मनुष्य सेवन करता है उसके तिमिर रोग, अबुद, नेत्रों के रक्तवर्ण की रेखा, कण्ठ, रात्र्यन्त्र रोग, दाह, शूल, तोद, पटल, शुक्ल, काच, धिक्क आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २-२ ॥

न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोगनिवृह्ण्याय योगः ।

दशनश्रवणोर्धजुञ्जानां प्रशामे हेतुरयं महामयानाम् ॥ ३ ॥

गुदजानि भगन्दरप्रमेहान्सहकुष्ठानि हलीमकं किलासम् ।

पलितानि विनाशयेत्थाऽरिन चिरनष्टे कुरुते रविप्रचण्डम् ॥ ४ ॥

प्रमदामिरयं जराधिरूढः रुटुवन्द्रभरणासु यामिनीषु ।

सुरतानि पदे पदे निषेवेपुहवो योगमिमं निषेवमाणः ॥ ५ ॥

स्मृतिविक्रमदुद्धिशक्तियुक्तः वारदां जीवति वै शतं समग्रम् ॥ ६ ॥

मुखेन नीलोपलचारुगान्धिना निराहृहरञ्जनमेचकप्रभैः ।

भवेत्तु गृध्रस्य समानलोचनश्चिरं नरो वर्षशतं तु जीवति ॥ ७ ॥

यह योग केवल नेत्र रोग को ही नष्ट करने वाला नहीं कहा गया है, प्रत्युत इससे दांत, कान और कर्कज्ञु के जितने भी महान् रोग हैं सभी नष्ट होते हैं तथा इसके सेवन से अशी रोग के अद्वृत, यगन्दर, प्रमेह, कुष्ठ, इलीमक, किलास और पलित आदि रोग नष्ट होते हैं तथा बहुत दिनों की नष्ट हुई अग्नि को भी सूर्य के समान प्रचण्ड (तीव्र) कर देता है शुद्ध पुरुष योग इसको निष्य सेवन करने से शुक्ल पक्षी की रात्रि में लियों के साथ प्रतिदिन मैथुन कर सकता है अर्थात् यह जरा निवारण योग है और इसके निष्य सेवन करने से स्मृति, पराक्रम, बुद्धि और शक्ति सम्पद होकर मनुष्य पूर्ण सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है तथा इसके सेवन से सुख में नील कमल के गन्ध के समान द्वाग्राम आती है और शिर के केश अंबन के समान कृष्णवर्ण के हो जाते हैं एवं इष्टि गिर्द पक्षी की इष्टि के समान तोव हो जाती है ॥ ३-७ ॥

लोहचूर्णम्—

मधुकत्रिफलाचूर्णं लोहचूर्णं समं लिहेत् । मधुसर्पियुतं सूत्यग्न्यजीर्णं पिवेदनु ॥ १ ॥

जीर्णं सतिमिरं शूलमध्लपित्तं उवरं क्लम् । आनाहं मूत्रसङ्गं च शोथं चैव निहन्ति हि ॥ २ ॥

मधुकादि लोहचूर्णं—मूलहठी, आंवला, हरड़ और बहेड़ा के चूर्ण को समान आग लेकर सब के समान लोहमस्तम मिलाकर (यथावल प्रमाण के) मधु और धूत के साथ मिलाकर (धोटकर) सेवन करे और गोदृत का अनुपान करे अर्थात् इन आंषधियों को मधु और धूत में मिलाकर चाट कर कपर से गोदृत योगी तो इस योग के सेवन करने से बमन, तिमिर रोग, शूल, अम्लपित्त उवर, क्लम (क्लान्ति), आनाह, मूत्रावरोध और शोथ ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ २-२ ॥

शतावर्यादिचूर्णम्—

शतावरी सूर्यसमा प्रदेया एला तथा शतावर्णमूर्धतुल्या ।

देयं विडङ्गं वसुभिः समानमृतोः समं चाऽसमलकास्थिदीज्ज्व ॥ ३ ॥

विष्णोभुज्ज्वस्तुल्यगुणं मरीचं तटिकमैमार्गधिका प्रदेया ।

चूर्णं समध्वायज्यकमर्धकर्षमध्यामयानां विनिवारणार्थम् ॥ ४ ॥

कण्ठं सधूमं तिमिरं सुबोरमर्माणि काचं पटलं त्रिदोषम् ।
ये चापरे रक्तभवा विकारास्तेषामयं चूर्णवरो निहन्ता ॥ ३ ॥

शतावर्यादि चूर्ण—शतावरी का चूर्ण १२ भाग, छोटी इलायची के दानों का चूर्ण दस भाग, बायविडंग का चूर्ण ८ भाग, बांबले की गुठली के बीजों का चूर्ण ६ भाग, मरिच का चूर्ण ४ भाग और पीपल का चूर्ण तीन भाग लेकर एकत्र मर्दन कर आधे कर्ष के प्रमाण की मात्रा से मस्तु और घृत के अनुपान से नेत्रकहड़, धूम के समान दिखाई देना, तिमिररोग, अर्म रोग, काच, पटल और विद्रोष नष्ट होते हैं तथा अन्य भी जो रक्त के दोष से उत्पन्न हुए रोग हैं उन सबको यह चूर्ण नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

द्वितीयं श्रिफलादि चूर्णं वङ्गसेनात्—

लिहासदा वा त्रिफलां सुचूर्णिता धृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे ।
समीरणे तैलयुतां कफारमके मधुप्रगाढां विद्यनीत युक्तिः ॥ १ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—आंवला, हरड़ और बदेड़ा का विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर तिमिर रोग में गोधृत के साथ, बातज तिमिर रोग में तिल के साथ और कफज तिमिर रोग में मधु के साथ सेवन करने से तीनों प्रकार के तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अथ घृतानि ।

बिभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासके: । पक्मेभिर्दृतं सर्वानन्तिरोगान् व्यपोहति ॥ १ ॥

विभीतकाद धृत—बहेडा, दरड, आँवला, परवल के पत्ते, नीम की छाल और अरुसा इनके समान मिलित होने कल्प में चौगुना मूर्चिष्ठ गोधृत मिलावे और धृत से चौगुना जल मिलाकर धृतपाक की विधि से मन्दारिन पर धृत सिद्ध कर सेवन करने से नेत्र के सभी रोग नष्ट होते हैं ॥
प्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च । वृथस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्रि तत्त्वम् ॥ २ ॥
अजाहीरं गुहृच्याश्रि आमलकया रसं तथा । प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वेभिर्धृतं पचेत् ॥ ३ ॥
कहकः कणासिताद्वाचात्रिफला नीलसुप्तलम् । मधुकं चीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुमे भाष्डे निष्ठापयेत् । उद्वृद्धपानमधःपानं मध्ये पानं च शस्यते ॥४॥

દ્વારાન્તા નેત્રાણારોગાન્યાનાદ્વાપકબ્ધત | સરંક રક્તદુષ ચ રક્ત વા વિજુલ તથા ન દ |
નસ્કાન્ધયે તિમિરે કાચે નીલિકાપટાલુંડે | અભિષયન્દેદિધિમન્ધે ચ પદમકોપે સુદારુણે ||૭||
નેત્રારોગેષ સર્વેષ દોષબ્ધયકૃતેષ્વપિ | પરં હિતમિદ્દું પ્રોક્ષ્ટ ત્રિકલાંદ્ય મહાપૃથતમ || ૮ ||

महाविकलादि धृत—विकला का काथ एक प्रस्थ, आंगरे का स्वरस एक प्रस्थ, अस्से का स्वरस एक प्रस्थ, शतावरी का स्वरस एक प्रस्थ, बकरी का दूध, गुरुच का स्वरस और आंबले का स्वरस एक एक प्रस्थ लेकर एक प्रस्थ मूर्च्छित गोधृत के सात धृत पाक की विधि से पाक करे और इसमें आगे लिखी हुई ओषधियों का कल्प समान मिलित धृत से चतुर्थीश्च मिळाकर धृत सिद्ध करे अर्थात् उपरोक्त ओषधियों के स्वरसों के पाक होते समय पीपल, शंकरा, दाल, हरड़, बहेड़ा आंवला, नीलकमल, मुलाईठी, क्षीर काकाणी, मुलाईठी और छोटी कटेटी इन सबको समान लेकर कल्प कर धृत के चतुर्थीश्च मिलाकर धृत सिद्ध करे, जब मलीर्भास्ति सिद्ध हुआ जान लेवे तब उत्तार-न्यानकर एक उत्तम पात्र में रख-सेवे। इस धृत को भोजन के पूर्व (प्रातः) दोपहर और सायंकाल पान करना उत्तम है। इससे जितने प्रकार के नेत्र रोग हैं सभी नष्ट हो जाते हैं। नेत्र के रक्तनेत्र रोग, रक्तदुष नेत्र रोग, रक्तसाव युक्त नेत्र रोग, नक्तान्ध्य रोग, तिमिर रोग, काँच रोग, नीलिका रोग, अरुण रोग, अमिष्यन्द रोग, कठिन पक्षमरोग एवं सभी प्रकार के नेत्र रोगों तथा त्रिदोषज नेत्र रोगों में भी यह विकलादि महाधृत अत्यन्त द्वितीय है ॥ २-८ ॥

द्वितीयं श्रिफलाद्यं घृतम्—

शतमेकं हरीतक्या द्विगुणं च द्विभीतकम् । चतुर्गुणं त्वामलकं वृषभार्कवयोः समम् ॥ १ ॥
 चतुर्गुणोदकं दरवा शनैसूर्यगिना पचेत् । भागं चतुर्थं संरचय कार्यं तमवतारयेत् ॥ २ ॥
 शकरा मधुकं द्राजा मधुयष्टी निदिविष्का । काकोली लीरकाकोली त्रिफला नागकेशरम् ।
 पिण्ठपली चन्दनं मुस्तं ब्रायमाणा तथोरपलम् । घृतप्रस्थं समं हीरं कल्करैतैः शनैः पचेत् ।
 हन्यारसतिभिरं काचं नक्तान्धयं शुक्रमेव च । तथा स्त्रावं च कण्डूं च श्वरशुं च कषायताम् ।
 कलुषरवं च नेत्रस्य विहवत्स्मपटलानिवतम् । बृहनात्र त्रिपुरकेन सर्वान्नेत्रामायान्हरेत् ॥ ३ ॥

द्वितीय विकलाध घृत—बड़ी हरड़ १००, बहेड़ा २०० और अमिला ४०० लेकर इनके लिलों के निकाल ले और सबको एकत्र कर चौहुने जल में काथ बनावें, चतुर्थश्शेष रहने पर बासे का तथा आगरे का स्वरस १-१ प्रस्थ और शक्ति, मुलहठी, दाख, जेठीमधु, छोटी कटेरी, काकोली, क्षीर काकोली, आंवला, हरड़, बहेड़ा, नाशकेशर, पीपल, चन्दन, नागरमोथा, त्रायमाण और नीलकमल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कक्ष बनाकर घृत से चतुर्थश्शेष लेकर भिलाके और घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से तिमिर रोग, कौच रोग नक्कान्ध्य (रत्तौंधी), नेत्रबृक्ष, नेत्रकण्डू, नेत्र शोथ, नेत्र का कषाय वर्ण का होना, नेत्र का कलुषित होना, नेत्र मल, वर्तम और पटल आदि नेत्रों में होनेवाले सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-६ ॥

यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्यास्त्रिभ्यां प्रपश्यतः । तद्वै तद्वेषजं प्रोक्तं मुनिभिः परमं हितम् ॥७॥
मार्जितं दर्पणं थद्वृत्तपरा निर्मलता व्यजेत् । तद्वैदेवेन पीतेन नेत्रं निर्मलतामित्यात् ॥

रि द्रोणद्वयं चात्र घृष्माकैवयोत्तुले ॥ ८

जिस मनुष्य की इष्टि सूर्य और अविन को देखने से नष्ट हो गयी हो उसके लिये यह असुखतम हितकर औषध है। जिस प्रकार दर्पण माँज देने पर निर्मल हो जाता है वही प्रकार इस वृत्त के सेवन करने पर नेत्र निर्मल हो जाते हैं। इस योग में अरुपा और मांगरे को एक एक तुला अर्थात् एक एक सो पल लेना चाहिये और दी द्रोण जल में सबको पकाना चाहिये। अतुर्धार्श योग रहने पर उतार-छान कर अन्वान्य ओर्धवायों को भिणाकर विषिष्ठपूर्वक वृत्त सिद्ध करना चाहिये॥

लघुत्रिफलाघृतम्—

त्रिफलाकाथकद्वयां सप्तवस्कं धृतम् शृतम् । तिमिराण्यचिरादन्यात्पीतमेतद्विषयमुखे ॥

लघु त्रिफला द्वृत—त्रिफला को लेकर अठगुने जल के साथ विष्पूर्वक कवाय कर चतुर्थीश
श्वेष रहने पर उतार-छान कर उसमें चतुर्थीश मूर्च्छित गोदृत और द्वृत से चतुर्थीश त्रिफला
का कल्प भिलाकर द्वृत पाप की विधि से द्वृत सिद्ध कर सायंकाल में पान करने से तिमिर रोग
शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

भृङ्गराजतंत्रम्—

भृङ्गप्रस्थं तैलाकुडवं तथा पलं च मधुकस्य । दीरप्रस्थविपकं गतमपि चन्द्रनिष्ठर्त्यते ॥१॥

भूंगराज तैल—मार्गरे का स्वरस एक प्रस्थ, तिळ का तैल एक कुड़व और मुलहठी का कल्क
एक पल लेकर उसमें गोदुरव एक प्रस्थ देकर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से
नष्ट हुई हृषि भी पुनः हो जाती है ॥ १ ॥

धावनम्—

स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्रुष्यमनिलापहम् । मधुकामलकस्नानं वित्तधनं तिमिरापहम् ॥१॥

धावन प्रयोग—तिल का कक्षक शिर में लगा कर स्नान करने से नेत्र में लाभ होता है और

चायुदोष नष्ट होता है तथा मुलहठी और आंवले के कल्प को शिर में लगा कर स्नान करने से प्रित्तदोष और तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

बचाय्यः स्नानमिष्ठून्ति श्लेष्मधनं तिमिरापहम् । आमलैः सततं स्नानं परं इष्टिवलादहम् ॥

बच आदि के स्वरस से शिर धोने से अथवा कल्प शिर में लगा कर स्नान करने से कफ दोष और तिमिर रोग नष्ट होता है । और निरन्तर आंवले का कल्प शिर में लगाकर स्नान करने से नेत्र की धृष्टि और बल में वृद्धि होती है यह अथवत उत्तम योग है ॥ २ ॥

शिफलायाः कथायस्तु धावनान्वेश्वरोगमः पानतः कामलापहः ॥३॥

शिफला के काष से नेत्र को धोते रहने से नेत्र में होने वाले सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार शिफला के काष का मुख में कवल धारण करने से मुख के रोग और शिफला के काष को पीने से कामला रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

शुक्त्वा पाणितलं पृष्ठ्वा चक्षुबोर्यंदि दीयते । अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ४ ॥

आजन के पश्चात् इथ धोकर तज्ज्ञी को परस्पर विस्कर नेत्रों पर नित्य करने से तिमिर रोग नष्ट होते हैं अथवा तिमिर दोष होते ही नहीं हैं ॥ ४ ॥

अथ काचोपक्रमः

काचे रक्तं जलौकाभिर्हस्ता पूर्वोक्तमाचरेत् । शाणार्थं मरिचं द्वौ च विष्परवर्णवफेनयोः ॥१॥
शाणार्थं सैन्धवात्क्षाणा नवं सौबीराज्ञनाथ । पिष्ठं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाज्ञनमिदं शुभम् ॥

कण्ठदूकाचक्षकालानां भलानां च विशोधनम् ॥ १ ॥

काच रोग का उक्तम—काच रोग में ओक के द्वारा रक्तमोक्षण कराकर पूर्व कवित बण नाशक चिकित्सा करनी चाहिये । काली मरिच आथा शाण (२ मासा), पीपल दो शाण (८ मासा), समुद्रफेन दो शाण (८ मासा), सेथानमक आथा शाण (२ मासा) और शुद्ध सौबीराज्ञन ९ शाण (२६ मासा वा १० तो ०) लेकर विष्पूर्वक विश्रानक्षत्र में चूर्ण कर एकत्र मिला मर्दन कर अञ्जन करने से नेत्रकण्ठ, काच रोग, कफ नेत्र रोग और नेत्र के मल नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

समेष्टप्रथम्भलभागसंमितिः शङ्खोऽज्ञनात्काचमलं व्यपोहति ॥ १ ॥

मेषशृंगादयज्ञन—मेढासिंगी शुद्ध सौबीराज्ञन और शुद्ध शंख को समान भाग लेकर विष्वित इलक्षण चूर्ण कर नेत्र में अञ्जन करने से नेत्र के काच रोग और नेत्रमल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिलासैन्धवकालीसशङ्खध्योषरसाज्ञनैः । स्त्रौदैः काचशुक्रार्मतिमिराणी रसक्रिया ॥ २ ॥

शिलासैन्धवकालीसशङ्खध्योषरसाज्ञनैः । शुद्ध मैनशिल, सेथानमक, कलीस, शुद्ध शंख, सौठ, मरिच, पीपल और रसवत को समान भाग लेकर विष्वित इलक्षण चूर्णकर मधु में मिलाकर नेत्रों में अञ्जन लगाने से काच रोग, नेत्र शुक्र, अमररोग और तिमिर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

पित्तविद्गवृष्टिश्चिकित्सा—

रसाज्ञनं धृतस्त्रौद्रतालीसस्वर्णगैरिकैः । गोशकूदसंसंयुक्तं पित्तोपहतवृष्टये ॥ १ ॥

पित्तविद्गवृष्टिश्चिकित्सा—रसवत, गोशुण, मधु, तालीस १३ और स्वर्ण गोद को समान लेकर विष्वित चूर्ण कर गोवर के रस में खरल कर नेत्र में लगाने से विष्विद्गवृष्टि दृष्टि (पित्त के कारण पीतवर्ण के देखनेवाले नेत्र रोग) नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

काशमरीयुष्ममुकुदार्वलोप्ररसाज्ञनैः । स्त्रौद्रमञ्जनं कुर्यादिपित्तव्याधिग्राहान्तये ॥ २ ॥

काशमरीयुष्ममुकुदार्वलोप्ररसाज्ञनैः । गम्भार के फूल, मुलहठी दारहलदी, कोष और रसवत को समान भाग

लेकर विष्पूर्वक सूक्ष्म चूर्ण कर मधु मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्र में होनेवाली विष्वित व्यापि नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

इलेष्मविद्गवृष्टिश्चिकित्सा—

हरेणुमगधार्षीजमज्ञानं यकृदन्वितम् । शकृद्रसेनाज्ञनं वा श्लेष्मोपहतवृष्टये ॥ १ ॥

इलेष्मविद्गवृष्टिश्चिकित्सा—रेणुका, पीपल और विजौरे नीबू के बीज की मज्जा की समान भाग लेकर वकरे के यकृद्र के रस अथवा गौ के गोवर के रस के साथ खरल कर नेत्र में अञ्जन करने से कफ को पोष से दूषित दृष्टि वा कफ विद्गवृष्टि दृष्टि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

दिवान्वरात्यन्यन्योद्यक्षिकित्सामाद—

नलिनोपलकिलहकैरिकं सव्यकृद्रसम् । गुटिकाज्ञनमेतस्य दिवरात्यन्यन्योर्हितम् ॥ १ ॥

दिवान्व और रात्यन्व रोग चिकित्सा—कुमुदिनी और नीलोपल (निलोफर) हीनों का केसर और गेल की समान (पक २ भाग) लेकर विष्वित चूर्ण कर गोवर के रस के साथ खरल कर बटी बनाकर अञ्जन लगाने से दिवान्व और रात्यन्व (रत्तौधी) नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

नदीजशङ्खविकट्नं रसाज्ञनं मनःशिला द्वे च निशे गवां शकृत् ।

सचन्दनेयं गुटिकाऽस्तु शुक्त्वा प्रशस्यते रात्रिदिने न पर्यताम् ॥ २ ॥

नदीजादि गुटिका—सौबीराज्ञन, शुद्ध शंख, सौठ, मरिच, पीपल, रसवत, शुद्ध मैनशिल, शुद्धी और दारहलदी तथा लालचन्दन की समान भाग लेकर विष्पूर्वक चूर्ण कर गोवर के रस के साथ खरल कर बटी बनाकर अञ्जन लगाने से रात्यन्व (रत्तौधी) और दिवान्व रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

सूर्यादिदर्शनैदर्शने तत्र शीतं प्रयोजयेद् । हेमघृष्टं धृतोपेतमञ्जनं चापि शस्यते ॥ ३ ॥

सूर्य आदि तीक्ष्ण वस्तुओं के देखने के कारण जिसकी इष्टि विद्गवृष्टि हो गयी हो उसके लिये शीतोपचार करना चाहिये और सुर्यन को विस कर गोघृत में मिलाकर अञ्जन लगाना चाहिये इससे सूर्यादि के देखने से दग्ध दूर्दृष्टि हो जाती है ॥ ३ ॥

केवलरात्यन्यचिकित्सा—

रसाज्ञनं हरिद्रे द्वे मालतीं निष्पलमूलाः । गोशकूद्रसंसंयुक्ता वटी नक्तान्ध्यनाशनी ॥

एतस्याश्वाज्ञने मात्रा प्रोक्ता सार्वहरेणुका ॥ १ ॥

रात्यन्व रोग चिकित्सा—रसवत, इलदी, दारहलदी, मालती (चमेली के फूल) और नीम की समान भाग धृष्ट २ लेकर विष्वित चूर्ण कर गोवर के रस के साथ खरल कर अञ्जन करने से नक्तान्ध्य (रत्तौधी) रोग नष्ट होता है । इसके अञ्जन करने की मात्रा डेढ़ रेणुका या डेढ़ चना कहा गया है अर्थात् डेढ़ चने के बराबर दबा विस कर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ १ ॥

कणा छागशङ्खन्मध्ये पक्षा तद्वस्पेचिता । अचिरशद्वन्ति नक्तान्ध्यं तद्वस्पैद्यमूलणम् ॥ २ ॥

कणादि गुटिका—पीपल की बकरी के पुरीष में मिलाकर पकावे और फिर बकरी के पुरीष के ही रस से पीस कर नेत्रों में लगावे तो शीघ्र ही नक्तान्ध्य रोग नष्ट होता है । (कही २ 'छाग-शङ्खन्मध्ये' के स्थान पर 'छागशङ्खन्मध्ये' है यहाँ भी इसी प्रकार मरिच के इलक्षण चूर्ण की मधु में मिलाकर अञ्जन करने से नक्तान्ध्य रोग नष्ट होता है) ॥ २ ॥

करञ्चपद्मकिलहकैरिकं च । गोशकूद्रसंसंपिष्टैर्नक्तान्ध्ये हितमञ्जनम् ॥ ३ ॥

करञ्चपद्मकिलहकैरिकं च । करञ्च के बीज, कमलकेसर, रसचन्दन, नीलकमल और गेल की समान भाग चूर्णकर गोवर के रस के साथ मर्दन कर नेत्र में अञ्जन लगाने से नक्तान्ध्य रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

रसाभजनं शिला दावजातीपवरसो मधु । नक्षान्धतां जयेदेतद्वज्जनं साधु योगितम् ॥ ४ ॥

रसाजनादि अजन—रसवत, शुद्ध मैनशिल, दारहलदी, चमेली के पत्तों का स्वरस और मधु में डपरोक्त समान मिलित इक्षण चूर्ण लेकर उसमें जातीपत्र स्वरस और मधु मिलाकर मर्दन कर अजन करने से नक्षान्धता नष्ट होती है ॥ ४ ॥

चौदं च मालतीपत्रं निशाहृयरसाभजनैः । नक्षान्धमलजनं हन्त्याकृष्णा वा गोभयान्विता ॥

मधु, चमेली के पत्तों का स्वरस, हलदी, दारहलदी और रसवत को समान माग लेकर चूर्ण योग्य ओषधियों का इक्षण चूर्ण बनाकर चमेली के पत्र-स्वरस के और मधु साथ मर्दन कर अजन करने से नक्षान्धता नष्ट होता है । अथवा पीपल के इक्षण चूर्ण को गोबर के रस के साथ मर्दन कर अजन करने से नक्षान्धता नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दध्ना घृष्टं मरीचं वा रात्यन्धाभजनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

दधि मरिचयोग—दधी के साथ मरिच को विसकर अजन करने से रात्यन्धता नष्ट हो जाता है ॥

नकुलान्धरयोगस्य राग रहितस्य चिकित्सा—

वचा त्रिवृच्छन्दनकुण्डली च भूमिग्वनिम्बी रजनी सवासा ।

प्रस्त्रं जलस्य क्षयिताष्टभागं पिवेसुजीर्णे नकुलान्धरयोगे ॥ १ ॥

नकुलान्धर रोग चिकित्सा—वच, निशेय, लालवद्दन, युरच, चिरायता, नीम की छाल, हलदी और अरुसा को समान माग लेकर काथ की विधि से जल में पकावे, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे और मांबन के पच जाने पर पावे तो नकुलान्धर रोग नष्ट होता है ॥

अथ कृष्णगतरोगचिकित्सा

त्रािद्दौ सप्तण्शुकप्रतीकारमाह—

ब्रणशुकप्रशान्धर्थं षड्हं गुणुलुं पचेत् । शिरसशास्त्रहेद्रकं जलौकाभिश्च लोचनात् ॥ १ ॥

ब्रण शुक का प्रतीकार—ब्रण शुक की शान्ति के लिये षड्ह गुणुलु बनाकर खिलावे और ध्याय तथा नेत्रों से बछोका (जोक) द्वारा रक्तोक्षण करा देवे ॥ १ ॥

सलैन्धवं त्रिवृक्षये श्रीन्वारान्नपाचयेद् धृतम् । पीत्वा सर्वेषु शुकेषु शीघ्रं कुर्याच्चिक्राद्यधम् ॥

त्रिवृतादि धृत—निशेय के विधिवत बने काथ में चतुर्थीश मूर्चित गोधृत और गोधृत से चतुर्थीश सेवानमक का करक भिलाकर तीन बार पका कर (सिद्धकर) इस धृत को पिलाकर सभी नेत्र शुकों में शिरान्धर शीघ्र कर देना चाहिये ॥ २ ॥

यह्याहात्याशेतनम्—

यद्याहृदावृद्युपलपश्चालाद्धां प्रपौष्ठरीकं नलदाम्बुना च ।

आशोतनं श्रीपथसा विषकं निहन्ति तरसवगदाहशुकम् ॥ १ ॥

यद्याहात्यादि आशोतन—जेठी मधु, दारहलदी, नीलकमल, रक्तकमल, लाल, पुण्डरिया क्षात्र और खस का स्वरस और खी का दूध सबको एकत्र पाक कर नेत्र में आशोतन करने से व्रण तथा दाहयुक्त नेत्रशुक रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

लामज्जकायज्जनम्—

लामज्जकोत्पलसितासारिवाचन्द्रनद्यैः । कार्षिकैः सारिवाप्रस्थं काथयेसलिलादके ॥ १ ॥

पादशेषं परिक्षाद्य पचेदादर्विलेप्यनात् । भाजने लोहशैले वा प्रातशत्रसायमञ्जनम् ॥ २ ॥

प्रधानमेतच्छुक्लनं ब्रणशुकं शम्नं नयेत् । इशामामूलकण्ठं वा मंधुना ब्रणशुकिगम् ॥ ३ ॥

लामज्जकादि अजन—लामज्जक तुण विशेष अर्थात् पीतवर्ण का खस, नीलकमल, श्वर्करा, सारिवा, शेतचन्दन और रक्तचन्दन एक-एक कर्ष और सारिवा एक प्रस्त्र-लेफर काथ की विधि से

बींकुट कर एक आढ़क बल के साथ काथ कर चतुर्थीश शेष रहने पर उतार छानकर पुनः पाक करे और उतार लेवे तक पाक करे जब तक कि वह काथ करचुल में लिप्तने लग जाय अर्थात् गाढ़ हो जाय तब उतार लेवे तथा इसे लोहे अथवा पत्थल के पात्र में पाक करे । इस योग का अजन प्रातः और सायंकाल नेत्र में लगावे तो प्रधानतः यह नेत्रशुक को और ब्रणशुक को शमन (नष्ट) करता है । अथवा इशामा (कृष्णसारिवा) की जड़ का विधिवत् काथ बनाकर शौतल कर उसमें मधु का प्रस्त्र देकर पान करने से और नेत्र में आशोतन करने से ब्रणशुक नष्ट होता है ॥

चन्दनादिवर्तिः—

चन्दनं गैरिकं लाला मालतीकलिकान्विता । ब्रणशुकहरी वर्तिः शोगितस्य प्रसादनी ॥ १ ॥

चन्दनादि वर्ति—रक्तचन्दन, गेरुमिठौ, लाल और चमेली की कली को समान माग लेकर पीस कर विधिपूर्वक वत्ती बनाकर नेत्र में अजन लगाने से ब्रणशुक रोग नष्ट होता है और इसके खाने से रक शुद्ध होता है ॥ १ ॥

आशोतनम्—

जात्या: प्रवालं मधकं च सर्पिभृष्टं सुखोष्णाम्बुद्धुशीतलं च ।

आशोतनं शुक्लहरं प्रदिष्टं शुक्रापहं च्छीपयसा महाहम् ॥ १ ॥

अब्रण शुक्र चिकित्सा—चमेली की कली (जिसका मुह खुला नहीं रहे) और मुळहठी को समान माग लेकर धृत के साथ भून लेवे और पानी के साथ तपाकर शीतल कर छानकर नेत्रों में आशोतन करे (चुभावे) तो नेत्र के शुक्र (अब्रण शुक्र) नष्ट होते हैं । इस योग के साथ यदि खी का दूध भी मिलाकर आशोतन किया जाए तो नेत्रशुक में विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥

आश्रीकलादिसेचनम्—

धात्रीफलं निर्बकपित्थपत्रं यद्याहृलोधं खदिरं तिलाश्च ।

कवायः सुशीतो नयनेऽभिविक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ १ ॥

धात्रीफलादि सेचन—आंवला, नीम की पत्तियाँ, कैथ की पत्तियाँ, जेठीमु, लोध, द्वेर और तिल को समान माग लेकर विधिवत् कवाय बनाकर उससे नेत्रों का सिचन करने से सभी प्रकार के नेत्र शुक्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वर्तयः—

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिमाविता । करब्जबीजवर्तिस्तु दृष्टे पुष्पं व्यपोहति ॥ १ ॥

वर्तिप्रयोग—करब्ज के बीज की गुदी को पलाश के पुष्प के स्वरस से अनेक बार (७ या ९ बार) मावित कर बसी बनाकर नेत्र में अजन करने से दृष्टि पुष्प (नेत्र के फूल) रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

समुद्रफेनसिन्धूस्थशङ्कुदण्डवक्लैः । शिप्रबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीज् शश्वत्प्रियेत् ॥ २ ॥

समुद्रफेन वर्ति—समुद्रकेन, सेवानमक, शुद्ध शंख, कुकुट (मुर्गी) के अण्डों को खवा और सहितन के बीज को समान माग लेकर विधिवत् पीसकर बत्ती बनाकर नेत्र में अजन करने से यह वर्ति नेत्रशुक्र आदि रोगों को इस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार शक्ति से लेखन कर दिया जाय (खुरच कर हटा दिया जाय) ॥ २ ॥

चन्द्रोदयावर्तिः—

रसाभजनं सद्यलेयं कुदुमं समनःशिलम् । शश्वत्संस्थेत्परिच्छित्त शक्ति सप्तमम् ॥ १ ॥

एषा चन्द्रोदया नाम वर्तिवैदेहनिर्मिता । हन्त्यारिपल्लं च कण्ठं च शुक्रं सतिमिराद्यम् ॥

चन्द्रोदयावर्ति—रसवत, शुद्ध शिलाजीत, काश्मीरी केसर, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध शङ्ख, शेत

इलशण चूर्णं भिलाकर उसको नेत्र में लुभाने से और अजन करने से अजका रोग का शमन हो जाता है ॥ ७ ॥

सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमायुतम् । शेलुभवग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ८ ॥

सेवानमक का चूर्ण, असगन्व की बड़ का चूर्ण, गोरोदन चूर्ण और लसोड़ की छाल के रस को समान भाग मिलाकर नेत्र में भरने से अजका नष्ट होता है ॥ ८ ॥

शशकादिवृत्तम्—

शशकस्य कथाये तु धृतप्रस्थं विपाचयेत् । कलकं दद्यात् सज्जीरं यथोक्तान्कर्षसमितान् ॥ १ ॥
सारिवा भयुकं लाचा चन्दनं नीलमुख्यलम् । बला चातिवला चैव मृगालं पत्रं तथा ॥ २ ॥
कार्विकं सविं लोध्रं जीवनीयगणान्वितम् । धृतमेतत्प्रयोक्त्वं पाने नस्ये च पूरणे ॥ ३ ॥
अजकामर्जुनं काचं पटलं शुकमेव च । तथाऽद्विरोगान्सकलान्वातपित्तोत्तराज्ञयेत् ॥ ४ ॥

शशकादि धृत—शशक (खरदे) के मास का काथ (चार प्रस्थ), मूर्छित गोधृत एक प्रस्थ और गोदुर्घ (एक प्रस्थ) लेवे और सारिवा, मुलहडी, लाख, रक्तचन्दन, नील कमल, वरिआरा, अतिवला (ककशी), मृगाल (कमल नाल) और तेजपात एक-एक कर्ष लेवे तथा शुद्ध वसनाम विष एक कर्ष, लोध्र एक कर्ष और जीवनीय गण की जोधियाँ समान मिलित एक कर्ष लेकर विधिपूर्वक कलक कर उसमें धृत पाक की विधि से धृत सिद्ध कर पाने करने से, नस्य लेने से, नेत्र में डालने से अजका, अर्जुन, काच, पटल, नेत्र शुक और सम्पूर्ण वात पित्त के कोप से उत्पन्न नेत्र के रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अथ शुकलज्ञाः—

प्रस्तार्यमाथ स्नायवर्म तयैवामधिमांसकम् । लोहिताम्ब सशुश्लार्म शुक्लप्राप्तानि वेदयेत् ॥
अर्मवाद्यं द्विधिभिर्भं नीलं रक्तमयापि वा । धूसरं तनु यच्चाऽशु शुक्लवस्त्रमुपाचरेत् ॥ २ ॥

शुक्ल भाग में होने वाले अर्मों के नाम—प्रस्तार्यम, स्नायवर्म, अधिमांसम, लोहिताम्ब और शुछार्म ये शुक्ल भाग में होने वाले अर्म हैं । जो अर्म-दही के समान द्वेतवर्ण के, नीलवर्ण के, रक्तवर्ण के और धूसर (मटमेला) तथा पतले होते हैं और जो शीत्र उत्पन्न होने वाले होते हैं उनकी चिकित्सा नेत्र शुक की मात्रि करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

कृष्णादिपुटपाकः—

कृष्णालोहरजस्ताप्रशङ्खविद्वुपसिन्ध्यजैः । समुद्रफेनकासीसस्तोजदधिमस्तुभिः ॥

लेखने वा कृते तस्य परं धारणमिष्यते ॥ १ ॥

कृष्णादि पुटपाक—पीपल का चूर्ण, शुद्ध लौह चूर्ण, शुद्ध ताम्र चूर्ण, शुद्ध शङ्ख चूर्ण, शुद्ध मूंगे का चूर्ण, सेवानमक का चूर्ण, समुद्रफेन चूर्ण, कासीस चूर्ण और सौबोराज्ञन के चूर्ण को समान भाग लेकर दही के जल के साथ विधिपूर्वक धोटकर नेत्र में अजन करने से लेखन और धारण होता है ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिगुटिकाजनम्—

पिप्पलीन्द्रिफलालोचालोहचूर्णं सैन्धवम् । भृङ्गलजरसे पिष्टं गुटिकाजनमिष्यते ॥ १ ॥

अर्म सतिभिरं काचं कण्ठं शुक्रमयार्जुनम् । अजकां नेत्ररोगांश्च हस्त्याक्षिरवशेषतः ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि गुटिकाजन—पीपल चूर्ण, दही, वहडा, अंवला, लाख, शुद्ध लौह चूर्ण और सेवानमक का चूर्ण कर मांगरे के रस के साथ धोट कर विधिवत वटी बनाकर नेत्र में अजन लगाने से अर्म, तिमिर, काच, नेत्रकण्ड, नेत्रशुक, अर्जुन, अजका तथा अन्यान्य नेत्ररोग को समूल नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मरिचादिलेपः—

सञ्ज्ञपूर्यं मरिचादि च रजन्या रसमर्दिते । लेपनादर्भणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥ १ ॥

मरिचादि लेप—मरिच और वहड़ को समान लेकर चूर्ण कर कच्चो हलदी के स्वरस के साथ मर्दन कर लेप करने से यह प्रयोगराट अमरोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

पुष्पाक्षादिरसकिया—

पुष्पाक्षादिरसितोदधिफेनशङ्ख-सैन्धवयैरिकशिलामरिचैः समांकैः ।

पिष्टेस्तु मालिकरसेन रसकियेयं हन्त्यर्मकाच्चित्तमराञ्जुनवर्मरोगान् ॥ १ ॥

पुष्पाक्षादि रसकिया—पुष्पाक्ष (स्वेताज्ञन) अथवा तिल का पुष्प, वहडा, रसवत, शर्करा, समुद्रफेन, शुद्ध शंख, सेवानमक, गेल, शुद्ध मैनशिल और मरिच को समान लेकर विधिवत चूर्ण कर मधु के साथ मर्दन कर नेत्र में लगाने से अमरोग, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

किया शुक्लामये कार्या पित्ताभिष्यन्दजिच्छुभा । बलासाहृयपिष्टे तु कार्यं शोणितमोहणम् ॥

नेत्र के शुक्ल भाग के रोगों में पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् पित्ताभिष्यन्द की जो चिकित्सा है वही नेत्र के शुक्लपटल गत रोगों में करनी चाहिये । बलास और पिष्टरोगों में रक्तमोक्षण कराना चाहिये और कफाभिष्यन्द नाशक सभी उपायों को करना चाहिये । कायफर, सौंठ मरिच और पीपल के सूक्ष्म चूर्ण बैजौरा नीबू के स्वरस और रसवत के चूर्ण को समान लेकर एकत्र मर्दन कर अजन लगाना चाहिये ॥ २ ॥

कफाभिष्यन्दजित्सर्वं क्रमं कुर्याद्विचक्षणः । अजनं कट्फलघ्योषवीजपूररसाज्ञनैः ॥

अर्जुने शर्करामस्तुतौद्वैराश्वोतनं हितम् ॥ ३ ॥

अर्जुन रोग में शर्करा, दही का पानी और मधु को समान लेकर पकव कर नेत्र में छोड़ना चाहिये । इससे अर्जुन रोग (नष्ट) होता है ॥ ३ ॥

शङ्खः चौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा । सित्याऽर्णवफेनो वा पुथुगस्तमर्जुने ॥ ४ ॥

शङ्खाज्ञन—शुद्ध शङ्ख का चूर्ण और मधु मिलाकर आँख में लगाने से अथवा शर्करा और समुद्रफेन को समान मिलाकर नेत्र में लगाने से (अजन करने से) अर्जुनरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथ वर्त्मपदमज्ञाः:

उत्सङ्किनी बहुलकर्दमवर्मनी च श्यावं च यच्च पटितं विह अर्थवर्म ।

विलष्टं च पोथकियुतं खलु वर्म यच्च कुम्भीकिनी च सह शर्कराया च लेख्याः ॥

श्लेष्मोपनाहलगणं च विसं च भेद्या । ग्रसियश्च यः कुमिकृतोऽज्ञनामिकाच्च ॥ १ ॥

वर्त्मपक्षमज रोगों की चिकित्सा—वर्त्मपक्षम में होने वाले उत्सङ्किनी, बहलवर्म, कंदमवर्म, द्याववर्म, अर्शवर्म, विलष्टवर्म, पोथकी, कुम्भीकिनी वा कुम्भीकाओं और वर्त्मशर्करा भामक सभी रोग लेखन किया के योग्य हैं । अर्थात् इनका लेखन करना चाहिये और कफ के कारण पूर्णे हुए लगाये रोग तथा विसवर्म भेद (भेदन किया के योग्य) हैं अर्थात् इनका भेदन करना चाहिये और कुमि के कारण (कुमिकृत) ग्रसिय तथा अजननामिका रोगों को भी भेद (भेदन) किया के योग्य ही जानना चाहिये अर्थात् इन्हें भी भेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

स्विद्धा भिस्वा विनिष्पदीद्य भिस्वामज्ञनामिकाम् ।

शिलालानसिन्धूयैः सहौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

अजननामिका चिकित्सा—‘अजननामिका’ को पहले स्वेदन करे फिर उसका पीड़न करे

अर्थात् बारो और से दबावे फिर पक्षम पर उथपन्न पिंडिकाओं का भेदन करे। फिर भेदन की हुई अजननामिका में शुद्ध मैनसिल, छोटी इलायची, तगर और सेवानमक को लेकर चूंन बनाकर मधु के साथ मद्दन कर इससे प्रतिसारण करे अर्थात् इस करक को भेदित अजननामिका पर अङ्गुष्ठियों द्वारा वर्णन करे ॥ २ ॥

रसाज्ञनमधुभूम्यां वा भित्त्वा शस्त्रेण वर्त्मवित् । प्रतिसायार्जनैयुञ्जयादुष्णेदीपशिखोऽवैः॥३॥

बर्सर्मरोगों को जानने वाला चिकित्सक अजननामिका को भेदन कर रसवत और मधु को एकत्र मद्दन कर अङ्गुष्ठी के द्वारा प्रतिसारण (वर्णन) करे, अथवा जो प्रतिसायार्जन हीपक की शिखा (ज्वोति) पर सेंक कर बनाये गये ही उससे प्रतिसारण करे ॥ ३ ॥

स्वेदयेद् घृष्ण्याऽङ्गुष्ठया हरेद्रकं जलौकया । करे सङ्घट्य दुर्वर्थमलयेहलोचने मुहुः ॥ ४ ॥

अजननामिका को अङ्गुष्ठी से विस कर सेंक करे अर्थात् अङ्गुष्ठी विसने से जो उष्णता उथपन्न हो उससे (उस उष्ण अङ्गुष्ठी से) अजननामिका को सेंके। जलौका (जोक) के द्वारा रक्तमोक्षण करावे और एलवालुक को हाथ पर विस कर बार बार अजनन करे तो इस प्रयोग को दो बार अथवा तीन बार करने से कण्ठ दोष युक्त भी अजननामिका नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

द्विग्निवाराज् शमवति कण्ठदोषावन्विताज्ञनम् । रसाज्ञनं व्योषयुतं सपिष्ठं चटकीकृतम् ॥५॥

कण्ठपूपाकाञ्चित्तं हन्ति नूनमलजननामिकाम् ।

रसाज्ञनादि वटी—रसवत, सौठ, मरिच, पीपल और पिंडमस्त (सीसा भस्म) को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक वटी बनाकर अजनन करे तो इससे कण्ठ और पाक से युक्त अजननामिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

रोचनाद्वारातुरुथानि पिष्पत्यः कौद्रमेव च ॥ ६ ॥

प्रतिसायगमेकैकं भिन्ने लगण इष्यते । निमेषं नाशमायाति सर्पिष्टतेन च पूरणम् ॥ ७ ॥

गोरोचनादि योग—गोरोचन, यवाखार, शुद्ध तृतिया और पीपल इनमें से एक २ द्रव्य के चूंन के साथ मधु मिलाकर भिन्न अर्थात् कुपे द्वारा लगण पर लगाकर प्रतिसारण करने से लगण रोग और निमेष रोग भी नष्ट होता है। इन्हीं आपशियों के द्वारा विधिपूर्वक घृत सिद्धकर नेत्र में पूरण करना चाहिये ॥ ६-७ ॥

स्वेदयित्वा विसग्रन्थि छिद्राण्यस्य निराश्रयेत् । पकं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेन प्रपूरयेत् ॥

विसग्रन्थि चिकित्सा—प्रथम विसग्रन्थि रोग को स्वेदन करके इसके छिद्रों को छील देवे और जो पक गये हों उन्हें शख से भेदन कर उसमें सेवानमक पीसकर पूरण करे ॥ ८ ॥

किलनवत्तम्—

आलवारुवचाः पित्त्वा सुरसाप्रवारिणा । छायाशुष्का कृता वर्तिः किलश्वरमनिवारणी ॥

किलनवत्तमै चिकित्सा—शुद्ध इरताल, दाढ़इकदी, और वच को समान भाग लेकर तुलसी के पत्ते के स्वरस के साथ पीसकर अथवा घोटकर विधिपूर्वक वटी बनाकर छाया में सुखा लेवे इस वटी के अजनन लगाने से किलनवत्तम नष्ट होता है ॥ १ ॥

रसाज्ञनं सर्जरसो जातीयुष्मं मनविशाला । समुदफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ २ ॥

पृतरसमांशं मधुत्रा पिण्डा प्रविलक्षवर्मनि । अजननं क्लेदकण्ठनं पचमणां च प्रोहणम् ॥३॥

रसाज्ञनाद्वारा—रसवत, राङ, चमेली के फूल, शुद्ध मैनसिल, समुदफेन, सेवानमक, गेह और मरिच को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूंन कर मधु के साथ मिलाकर अजनन लगाने से प्रविलक्षवर्मन रोग नष्ट होता है। इस अजनन के लगाने से क्लेद और कण्ठ भी नष्ट होते हैं और पलकों पर के गिरे द्वारा उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

पिण्डम्—पित्तस्लेष्मप्रकोपेण वर्त्मान्तः सम्प्रकृत्यते ।

नाम्नाऽतिलोमशं वाऽपि विक्लिष्टं पिण्डमेव च ॥ १ ॥

पिण्डरोग के लक्षण—पित्त और कफ के कोप से पक्षम (वर्तम) के मीठर का माग जब कुपित हो जाता है तब उसको अतिलोमश अथवा कष्टदायक पिण्ड रोग कहते हैं ॥ २ ॥

वर्त्माविलेखं बहुशस्त्रहृच्छोगितमोच्चनम् । युनः पुनर्विरेकं च पिण्डरोगात्मा भजेत् ॥ २ ॥

पिण्डरोग में वर्त्म का बहुत बार अवलेखन करे अर्थात् बहुत बार छुरवे और रक्तमोक्षण करावे तथा रोगी को ७ बार विरेचन औषधियों का सेवन करावे ॥ २ ॥

पिण्डली स्तिवधो वस्त्रपूर्वं क्रियाद्यवस्तुतेऽसुजि । शिलारसाज्ञनव्योषगोपित्तैवर्तिरज्ञनम् ॥३॥

पिण्डरोग में प्रथम रक्तमोक्षण करावे और स्नेहन देकर वमन करावे पश्चात् शुद्ध मैनसिल, रसवत, सौठ, मरिच, पीपल और गोपित्त (गोरोचन) समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक वर्तिं बनाकर अजनन लगावे तो इससे पिण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पिण्डलन्धनं छायामूलेण भावितं देवदारु च । हरितालवचादारुसुरसारसपेषितम् ।

अभ्यारससमिष्टं तगरं पिण्डनाशनम् ॥ ४ ॥

देवदारु के इलक्षण चूंन को बकरी के मूत्र में भावित कर नेत्र में लगाने से पिण्डरोग नष्ट होते हैं तथा शुद्ध इरताल, वच और दाढ़इकदी को समान भाग लेकर तुलसी के पत्ते के स्वरस के साथ पीस कर अथवा घोटकर आँख में लगाने से पिण्डरोग नष्ट होता है। एवं दूरद के रस के साथ तगर पीसकर आँख में लगाने से पिण्डरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूरूपं मरिचान्वितम् । आरनालेन सद्भृष्टमञ्जनं पिण्डनाशनम् ॥५॥

गुहा (सिंहपुच्छी वा सरिवन) की बड़ी, सेवानमक और मरिच को समान भाग लेकर विधिवत् चूंन कर तामे के पात्र में कौंजी के संयोग मद्दन कर अजनन करने से पिण्डरोग नष्ट होता है। तुथकरथ पलं रवेत्तमरिचानि च विश्वातिः। त्रिंशता काञ्जिकपलैः पिण्डवा त्यन्ते निधापयेत्। पिण्डलानपिण्डलानुकृते बहुवर्षोत्थितानपि। उत्सेकोपदेहेन कण्ठशोथाश्च नाशयेत् ॥ ५ ॥

शुद्ध तृतिया एक पक, श्वेत मरिच संखया में २० और कौंजी तीस पल लेकर पीस कर तामे के पात्र में रख देवे। इस योग का अंजन लगाने से बहुत वर्षों का पुराना पिण्डरोग भी नष्ट हो जाता है और आँख में डालने और लेप करने से नेत्र के कण्ठ और शोय भी नष्ट होते हैं ॥ ६-७ ॥

पश्मरोगोध्यक्षित्सा—

रक्तश्वचि दहेत्पथम तपलोहशालाकथा । पश्मकोपे पुनर्नैवं कदाचिद्दोमसम्भवः ॥ १ ॥

पश्मरोग चिकित्सा—पश्मरोग में लोहे के सलाके को तपाकर नेत्र को बचावे द्वारा पश्म को दहन करना चाहिये इस किया से लोम कमी नहीं उत्पन्न होते हैं अर्थात् लोमकृप झल जाते हैं जिससे पश्मरोग होने की सम्भावना नहीं रहती है ॥ १ ॥

पुष्पकासीसचूर्णं वा सुरसारसभावितम् । ताम्रे दशाहं तद्योजयं पश्मशातन्लेपनम् ॥ २ ॥

पुष्पकासीसचूर्ण का चूंन तुलसी के स्वरस से तामे के पात्र में भावित कर दस दिन तक पड़ा रहने देवे पश्चात् पश्मशातन (नेत्र के पलकों के बाल गिरने के) रोग में इसका लेप करे तो पश्मरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

अथ संधिज्ञानं चिकित्सामाह

तत्र पूयालसचिकित्सा—

श्वालसे शिरां भित्त्वा लेपोपनाहकर्मनिः । नेत्रपाकविधिं कुर्यात् परमुक्तासनं हितम् ॥ १ ॥

पूयालस की चिकित्सा—पूयालस रोग में शिरा का भेदन कर लेप और उपनाह कर्म करना चाहिये तथा नेत्रपाक विधि में कहे द्वारा अजनन को लगाना चाहिये ॥ १ ॥

क्षार्द्धकस्वरसैर्घटं सिन्धुकासीससंमितम् । छायाशुष्कां वर्टीकर्यात्पूयाक्ये हितमञ्जनम् ॥२॥
सेषानमक और कासीस के समान लेकर अदरक के स्वरस में विस कर वर्टी बनाकर छाया में दुखाकर पूयालस रोग में अज्जन लगाना हितकर है ॥ २ ॥

उपनाहालज्योश्चिकित्सा—

हितोपनाह स्वलजे पिपलीमधुसैन्धवैः । विलिखेन्मण्डलाग्रेण छेदयेद्वा समन्ततः ॥ १ ॥
उपनाह और अलजी चिकित्सा—उपनाह और अलजी रोग में पीपल, मधु और सेषानमक के चूर्ण को एकत्र मर्दन कर इससे लेखन करना चाहिये अथवा चारों ओर से मण्डलाग्र शस्त्र से छेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

स्वावः—

खावेषु त्रिफलाकाथं यथादोषं प्रयोजयेत् । छीद्रेणाऽउव्येन पिपलवा मिश्रं विष्वेच्छिरां तथा ॥
नेत्रसाव चिकित्सा—नेत्रसाव रोग में दोषानुसार त्रिफल के क्वाय में मधु, गोघृत और पीपल के चूर्ण को कम से प्रक्षेप मिलाकर विलाना चाहिये और शिरावेच कराना चाहिये ॥ २ ॥

पथ्याच्छान्नीफलमध्यबीजाञ्जिद्वयेकभागैविद्वधीत वित्तम् ।

तयाऽन्तयेदस्मितप्रवृद्धमण्डोहंरेत् कहमपि प्रकोपम् ॥ २ ॥

पथ्यादिवर्ति—इरड़, बहेड़ और आमला के बोल का गूदा कम से तीन, दो और एक मात्र लेकर (इरड़ का तीन मात्र, बहेड़ का दो मात्र और आंवले का एक मात्र लेकर) बल के साथ पीसकर बति बनाकर अंखों में अज्जन करने से अस्थन्त बढ़े हुए साथों को नष्ट करता है और कष्टदायक अन्य भी नेत्रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

कार्पासीफलजम्बवान्नीजलर्घुर्ष्टं रसाज्जनम् । मधुयुक्तं चिरोरथं च चन्द्रःस्नावमपोहति ॥ ३ ॥

कार्पासाद्यव्यन्नन—कृपास के फल, जामुन तथा आम के स्वरस में रसवत को विसकर उसमें मधु मिलाकर अज्जन करने से पुराना भी नेत्रसाव रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

पर्वणी—

पर्वणीपिटकां संधिभागे छिन्नाद्यसंशयम् । हितमाश्रोतनं तत्र योजयेन्मधुसैन्धवैः ॥ १ ॥

पर्वणी चिकित्सा—पर्वणी पिटिका के संधिभाग में निःशंक होकर छेदन करना चाहिये और मधु में सेषानमक के चूर्ण को मिलाकर नेत्र में चुम्हाना चाहिये । इससे पर्वणी रोग नष्ट होता है ॥

जन्मुग्रन्थिः—

त्रिफलामृतकासीससैन्धवैः सरसाक्षजनैः । रसक्रियां कृमिग्रन्थी भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥

जन्मुग्रन्थिं चिकित्सा—आमला, इरड़, बहेड़, गुरुच, कासीस और सेषानमक तथा रसकृत की रसक्रिया विविपूर्वक करके (रसक्रिया की विधि से) कृमिग्रन्थि में लगावे और जब कृमिग्रन्थि फूट जावे तब प्रतिसारण किया करे ॥ १ ॥

अथ समस्तनेत्रजरोगचिकित्सामाह

तत्र सेकविधिः—

सेकर्थु सूक्ष्मधाराभिः सर्वदिमध्यने हितः । मोलिताच्छस्य मर्त्यस्य प्रदेश्यश्चतुरङ्गः ॥ १ ॥

सेकविधि—सभी प्रकार के नेत्र रोगों में आँखें बद्न कराकर अमलतास के क्वाय के सूक्ष्मधाराओं से सिंचन करना चाहिये इससे विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥

सर्वोदयि स्नेहनो वाते रके पित्ते च रोपणः । लेखनश्च कफे कार्यस्तत्र माश्राऽधुनोद्यते ॥ २ ॥

वात के कोप वाले नेत्र रोग में सभी प्रकार के स्नेहन कर्म करना चाहिये । रक्त और रिप के कोप वाले नेत्र रोग में रोपण कर्म करना चाहिये और कफ के कोप वाले नेत्र रोग में

लेखन कर्म करना चाहिये । इस कार्य को किनने समय तक करना चाहिये इसका प्रभाव आगे कहते हैं ॥ २ ॥

षट्वाकशतैः स्नेहनेषु चतुर्भिर्शब्दे रोपणे । वायशतैश्च विधिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ॥

स्नेहन कर्म करने में ६०० संख्या गिनने में बितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये । रोपण कर्म करने में ४०० संख्या गिनने में बितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये और लेखन कर्म करने में ३०० संख्या गिनने में बितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये ॥

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ वाऽऽस्यायिके गदे ॥ ३ ॥

सेक कर्म दिन में ही करना चाहिये किन्तु रोग की अवस्था के अनुसार (रोग की वृद्धि वब अत्यधिक हो गयी हो तब) रात्रि में भी किया जा सकता है ॥ ३ ॥

आश्रोतनविधिः—

अथवाश्रोतनं कार्यनिशायां न कथंचन । उच्चीलितेऽविष्णुमध्ये बिन्दुभिद्वयं छुलाद्वितम्॥

आश्रोतन विधि—आश्रोतन कर्म रात्रि में कभी नहीं करना चाहिये । आश्रोतन करने के लिये आँख को खोलकर इष्टि के बीच में नेत्र से दो अङ्गुल ऊपर की ऊँचाई से ओषधि ढालनी चाहिये ॥ १ ॥

बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दृश्य विन्दवः । रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोण्ठण्ठविधिः ॥

आश्रोतन के ओषधियों की मात्रा—लेखन करने वाली ओषधियों का आठ बूंद, स्नेहन करने वाली ओषधियों की दस बूंद और रोपण करने वाली ओषधियों की बारह बूंद नेत्र में ढालना चाहिये और शीतल झट्ठु में इन (आश्रोतन की) ओषधियों को किंचित् उष्ण करके आँख में ढालना चाहिये ॥ २ ॥

उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वश्रेवैष लिङ्गयः । वाते तिक्तं तथा रित्यधं पित्ते मधुरशीतलम् ॥
तिक्षणरूपं च कफे क्रमातश्रोतनं हितम् । आश्रोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्षतोन्मिता ॥

उष्ण झट्ठु में आश्रोतन की ओषधियों को शीतल करके ढालना चाहिये । यह शीत उष्ण की किया सब स्थानों के लिये समझनी चाहिये । वातज नेत्र रोग में तिक्तं तथा रित्यधं ओषधियों का आश्रोतन करना चाहिये और कफज नेत्र रोग में रित्क, उष्ण तथा रुक्ष ओषधियों का आश्रोतन करना चाहिये । यही कम आश्रोतन में लापदायक होता है । सभी प्रकार के आश्रोतनों में एक सौ तक गिनने में बितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये ॥ ३-४ ॥

निमेषोन्मेषणं पुंसामकुलयोक्तिकाऽथ वा । गुर्वस्त्रोद्वचारणं वा वार्षमात्रेण स्मृता त्रुष्मैः ॥ ५ ॥

वाक् अथवा संख्या की मात्रा का प्रमाण—मनुष्य बितने समय में आँख खोले और बन्द करे उतने समय का अथवा दो अंगुलियों से एक बार चुट्की बजाने के समय का अथवा गुरु (दीर्घ) अक्षर के उच्चारण में बितना समय लगे उतने समय की वाक् की मात्रा विद्वानों ने कही है । (इसी के अनुसार सी तक, अथवा छै सौ, चार सौ, दो सौ आदि ऊपर कही हुई मात्रा वाक् गणना मालनी चाहिये । आधुनिक एक सेकेंड की मी मात्रा उतनी ही होती है) ॥ ५ ॥

पिण्डकाविधिः—

पिण्डी कवलिका प्रोक्ता वध्यते वस्त्रपट्टकैः । नेत्राभिष्ठन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निगद्यते ॥ १ ॥

पिण्डका की विधि—पिण्डी का नाम कवलिका भी है । यह बजे के पट्टियों पर बाँधा जाता है (वयाकाल योग्य लिखित ओषधियों को कपड़े के ढक्कों पर लगेट कर पोटली बनाकर नेत्रादि के रोगों पर फेरा जाता है) और नेत्राभिष्ठन्द रोग में उसके अनुकूल ओषधियों से युक्त

कर तथा व्रणों में भी उसके अनुकूल ओषधियों से युक्त कर पोटकों बनाकर नेत्र तथा व्रणों पर फेरा जाता है ॥ १ ॥

विडालकविषि:-

विडालको बहिलेपो नेत्रे पचमविवर्जिते । तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवद् ॥ १ ॥
विडालक की विषि—जो लेप नेत्रों के बाहर (पलकों पर) नेत्रपक्ष (पलकों के बालों) को छोड़ कर लगाया जाता है उसे विडालक कहते हैं । उसकी मात्रा मुख लेप विषि की मात्रा के समान (मुख पर लगाने वाले लेपों के समान) जानना चाहिये ॥ १ ॥

तर्पणविषि:-

अथ तर्पणकं विद्म नेत्रवृसिकरं परम् । यच्चनुः परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ २ ॥
शीर्णपचमशिरोपातकुच्छोन्मीलनसंयुतस्य । तिमिरार्जुनशुकाचैरभिष्यन्दाभिष्मन्थकैः ॥ २ ॥
शुष्काचिपाकशोथाभ्यां युतं वातविपर्ययैः । तजेन्तं तर्पणे योउयं नेत्ररोगविशारदैः ॥ २ ॥
तर्पण विषि—नेत्रों को अत्यन्त तुम्ह करने वाले तर्पण विषि को अब कहते हैं—बो नेत्र शुष्क हों, कुटिल (टेढ़े) तथा आविल (मक्किन) हों, शीर्णपक्ष अर्थात् जिसमें पलकों के बाल गिर गये हों, शिरोपात में, कुच्छोन्मीलन अर्थात् कष से जिसमें नेत्र खोले और बन्द किये जाते हों उस रोग में तथा तिमिर, अजुन, नेत्र शुकादि रोगों में, अभिष्यन्द रोग में, अधिष्मन्थ में, शुष्काचिपाक, शोथयुक्त अथवा अशोथ युक्त नेत्र पाक रांग में और वातविपर्यय रोग युक्त नेत्रों में, तर्पण किया (चिकित्सा) करनी चाहिये ॥ २-३ ॥

दुर्दिनात्युणशीतेषु चिन्तायासम्ब्रेषु च । अशान्तोपदेव चादिग तर्पणं न प्रकाश्यते ॥ ४ ॥

तर्पण के अयोग्य काल—दुर्दिन में (मेष-वातादि से युक्त दिन में), अत्यन्त रुग्ण दिन में और अत्यन्त शीत दिन में तथा चिन्तायुक्त अवस्था में, आयास (श्रान्त) अवस्था में और अम्ब की अवस्था में एवं अंडों के रोगों के उद्दर्दों के शान्त नहीं रहने में तर्पण नहीं करना चाहित है ॥ ४ ॥
वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशावितः । आवारौ माष्वचूर्णेन किळन्वेन परिमण्डलौ ॥ ५ ॥
समौ दृढावसंबाध्यौ कर्तव्यौ नेत्रोक्तश्योः । पूर्वेदू चूर्मण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ ६ ॥

तर्पण करने की विषि—यायु, धूप और धूल आदि से रहित स्थान में रोगी उत्ताव (ऊपर सुंह करके) उता कर उड़द के चूर्ण को बक्क के साथ मर्दन कर नेत्र मण्डल के आवार भूत सुंह करके) उता कर उड़द के चूर्ण को बक्क के साथ मर्दन करने पर औषध इधर उधर गिर न जावे) अस्थियों के चारों ओर से लगा देवे (जिससे तर्पण करने पर औषध इधर उधर गिर न जावे) वे पिठी के घेरे (दोनों) ऊपर से समान हों और नीचे से उड़ दें जिससे द्रव का लाव न हो सके (छिद्ररहित हों) । पश्चात् नेत्र के उस ओर को प्रथम तरल वृत्त से पूर्ण कर जब वृत्त उसी में विलीन हो जावे तब उसको सुखोष्ण जल से पूर्ण कर देवे ॥ ५-६ ॥

अथ वा शतघोत्तेन सर्विषा चौरजेन वा । निमउत्तर्यचिपदमाणि यावता तावदेव हि ॥ ७ ॥
पूर्वेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छुनेः । धारयेद्वामरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं शुधः ॥ ८ ॥

अथवा सीं वार (जल से) धोया दुआ वृत्त वा दूष से निकले मक्खन को लेकर वहाँ तक भर देवे जहाँ तक अक्षिपक्ष (नेत्र के बाल) दूष जावें और इस पूरण के समय नेत्र को बन्द रखे, पश्चात् जावें और २ नेत्रों को खोक देवे । इस पूरक औषध को बत्तमं रोगों में १०० तक की संख्या गिनने में जितना समय लगे उतने समय तक तुद्धिमान् देव की धारण कराना चाहिये ॥ ७-८ ॥
इच्छेः कफे संधिरोगे मात्रापञ्चाशांतं हितम् । शुक्ले च षट्प्रशांतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम् ॥ ९ ॥
सन्धिरोगों में कफ के स्वच्छ हो जाने पर (दृढ़ जाने पर) १०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये । शुक्ल पटल गत रोगों में ६०० तक

की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये । कृष्ण पटल गत रोगों में ७०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये ॥
इष्टिरोगेष्वष्टुशतमधिमन्थे सहस्रकम् । सहस्रं चातरोगेषु धायमेवं हि तर्पणम् ॥ १० ॥

इष्टि रोगों में ८०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये, अधिष्मन्थ रोग में १००० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये और बात रोगों में भी १०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक तर्पण की ओषधि धारण करनी चाहिये ॥ १० ॥

एकाहं चात्यं वाऽपि पञ्चाहं चेद्यते परम् । तर्पणात्तसिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लंक्षयेत् ॥

एक दिन अथवा तीन दिन अथवा अधिक से अधिक पांच दिन तक तर्पण करना चाहिये । तर्पण करने से तुम् द्वारा नेत्र के लक्षण (आगे) कहे जाते हैं ॥ ११ ॥

सुखस्वप्नावबोधत्वं वैश्वदं वर्णपादवम् । लिर्वृतिर्धर्याविशानितश्च क्रियालावधमेव च ॥ १२ ॥

तुम् नेत्र के लक्षण—तर्पण के पश्चात् जब सख्तपूर्वक निद्रा आवे, सुखपूर्वक आगरण हो, औंखें विशद हों (स्पष्ट हों), नेत्र के बर्ण में पटुता हो (बर्ण उत्तम ही जावे), व्याखि के निचूत हो जाने से शान्ति मालम हो और नेत्र की किया में लधुता (नेत्र के कार्य में स्फूर्ति) मालम हो तब तर्पण से नेत्र तुम् ही गये हैं अर्थात् भलीमान्ति तर्पण हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ १२ ॥
अथ साश्रु गुह द्विनश्च नेत्रं स्थाप्तिर्वितम् । रुक्षस्माविलं रुक्षं नेत्रं स्याद्वोन्तर्पितम् ॥

रुक्षस्मिन्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ॥ १३ ॥

अतिर्तर्पणादि के लक्षण—तर्पण के पश्चात् नेत्र यदि आंसुओं से युक्त हों, गुरु हों और हिनश्च हों तो तर्पण मात्रा आते हुई है यह जानना चाहिये और तर्पण के पश्चात् यदि नेत्र रुक्ष हों, मलिन या जलवृक्त हों एवं अत्यन्त रुक्ष हों तो तर्पण की मात्रा हीन हुई है यह जानना चाहिये । अति तर्पण में रुक्ष उपचारों द्वारा और द्वैन तर्पण में द्विनश्च उपचारों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

अभिष्यन्दचिकित्सामाद-तेषु वातिकामिष्यन्दचिकित्सा—

पूरणद्वक्षपत्रमूलैः श्रुतमाजं पयो हितम् । सुखोष्णं सेवनं लेन्ने वातामिष्यन्दनाशनम् ॥

सेक विषि—पूरण की रुचा, पव्र और अह की अकरी के दूध के साथ पका कर कुछ उड़ान रहते नेत्रों पर सिंचन करने से वातज अभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १४ ॥

यरिषेके हितं नेत्रे पयः कोणं ससैन्धवम् । रजनीदाशसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम् ॥

वातामिष्यन्दशमनं हितं माधुतपर्यये ॥ १५ ॥

वकरी के दूध को किंचित् उड़ान करके उसमें सेवानमक का चूर्ण मिलाकर नेत्रों में सिंचन करने से अथवा दाशहलदी से सिद्ध किये करते के दूध में सेवानमक का चूर्ण मिलाकर नेत्र में सिंचन करने से वातज अभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १५ ॥

अधिष्मश्चेतनम्—

विरवादिपञ्चमूलेन बृहस्येष्वदशिग्रभिः । काशश्चाऽश्चेतनं कोषणो वातामिष्यन्दनाशनः ॥ १६ ॥

आश्चेतन विषि—विरवादि पञ्चमूल (वैल, गंभीर, गनियार, सोनापाडा और पाड़र की छाल), बड़ी कटेरी, पूरण मूल और सहिजन की छाल को समान गाग लेकर काय की विषि से सिद्ध कर सुखोष्ण रहते ही नेत्रों में सिंचन करने से वातामिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥ १६ ॥

अम्बुपिष्टैर्तिर्धपत्रैस्तवचं लोध्रस्य पैषेष्येत् । प्रताप्य विह्वना पिष्टा तद्रसो नेत्रप्रणात् ॥

वातोर्धं रक्तपित्तोश्चमिष्यन्दं विनाशयेत् ॥ १७ ॥

नीम के पत्ते और लोध की छाल को बल के साथ पीसकर आग पर गरम करे पुनः पीसकर निचोड़ कर और खोंच में डालने से बातब अभिष्यन्द नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पिण्डिका—वाताभिष्यन्दशास्त्र्यर्थं स्तिर्ग्नोणा पिण्डिका भवेत् ।

एरण्डपञ्चमूलवडनिर्मिता वातनाशिनी ॥ १ ॥

पिण्डिक विधि—वाताभिष्यन्द की शान्ति के लिये स्तिर्ग्न तथा उष्ण पिण्डिका बनाकर अवहार करना चाहिये । एरण्ड के पत्ते, मूल और त्वचा को लेकर कूटपीस कर विधिपूर्वक पिण्डी बना कर स्तिर्ग्न तथा उष्ण कर (घृत मिलाकर उष्ण कर) नेत्रों पर फेरने से लाभ होता है ॥ २ ॥

अजनम्—

हरिद्रा मधुकं पथ्या देवदारु च वेष्वेत् । आजेन पथसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदत्तमम् ॥ १ ॥
अजन—इलाई, मुलहठी, हड्डी और देवदारु यक साथ घोटकर विधिवत् अंजन बनाकर नेत्रों में अंबन करने से अभिष्यन्द रोग में उत्तम लाभ करता है ॥ २ ॥

पित्ताभिष्यन्दचिकित्सा, सेकः—

क्षम्भूतारिष्टपत्राणि यष्टीदाढ़ीया सदैन्धवैः । पिण्डाउर्मसा भवेत्वेकः पित्ते ज्वालासमन्वितः ॥ १ ॥
सेक विधि—रक्तचन्दन, नीम के पत्ते, जेठीगु, दारहलदी और सेंधानमक को समान भाग लेकर बल के साथ पीसकर मधु मिलाकर नेत्रों पर सिचन करने से पित्ताभिष्यन्द नष्ट होता है ।

आश्रोतनम्—

निगवस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेदोद्गमिना चूर्णमस्थापि कलकम् ।

आश्रोतनं मानुषदुधमिश्रं पित्ताज्वातापहमग्रयुक्तम् ॥ १ ॥

आश्रोतन—नीम के पत्तों को पीसकर लोध पर लेप कर अविन पर स्वेदित कर इस निकाक कर बल में छानकर नेत्र में तुआने से अथवा इन उपरोक्त ओषधियों का विधिवत् चूर्ण बनाकर अथवा कल्क बनाकर जी के दूध में मिलाकर बल से छानकर नेत्र में तुआने से पित्तज, रक्त और वातज अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

द्राक्षा मुखुकमिलिषाजीवनीयैः शृतं पथ्यः । प्रातराश्रोतनं पथ्यं दाहशूलाद्विरोगजित् ॥ २ ॥

द्राक्षा, मुलहठी, मजीठ और जीवनीय गण की ओषधियों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक दूध में पकाकर छान कर इस दूध को प्रातःकाल और में तुआना लाभदायक है । इससे नेत्र के दाह, शूल और राग अर्थात् जालिमा आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पिण्डिका—पित्ताभिष्यन्दनाशाय चात्रीपिण्डी सुखावहा ।

महानिगवस्त्रलोदभूता पिण्डिका पित्तनाशनी ॥ १ ॥

पिण्डिका प्रयोग—पित्ताभिष्यन्द रोग में आंवले की विधिपूर्वक पिण्डिका बनाकर नेत्र पर फेरना दितकर है और महानिगव (वकायन) के पत्तों की विधिपूर्वक बनाई दुर्दि पिण्डिका नेत्रों पर फेरने से पित्त को नष्ट करती है ॥ १ ॥

विदालकः—

वैत्तिके अन्दनानन्तामिलिषाभिविदालकः । कार्यः सपद्याद्याहुमांसीकालीयकैस्तथा ॥ १ ॥

विदालक प्रयोग—पित्ताभिष्यन्द रोग में लालचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ से तथा कमल, जेठी मधु, लटामांसी तथा दारहलदी से विदालक प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

स्वेदनं ग्रन्थुकं लोध्रं जातीयुपाणि गैरिकम् । प्रलेपो दाहरोगाद्वस्तोदाभिष्यन्दनाशनः ॥ २ ॥

लालचन्दन, मुलहठी, लोध, चमोली के फूल और गेह को समान भाग लेकर विधिपूर्वक शीस

कर लेप करे तो दाहरोग नष्ट होता है और तेव (सूर्य तुमाने के समान पीढ़ा) तथा अग्निष्ठन्द को नष्ट करता है ॥ २ ॥

इलैचिकाभिष्यन्दचिकित्सामाह—

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्कादिभोजनम् । तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैरेवोपनाहनम् ॥

रुच्यतीचणविरेक्ष्म मलं सम्भवित्विनहीरेत् ॥ १ ॥

कफज अभिष्यन्द चिकित्सा—कफज अभिष्यन्द में कफ्हन, नस्य कर्म, तिक्करसयुक्त भोजन, और तीक्ष्ण ओषधियों से प्रवर्मन नस्य देना चाहिये तथा तीक्ष्ण ओषधियों द्वारा उपनाह करना चाहिये एवं रुक्ष तथा तीक्ष्ण विरेक्ष्म ओषधियों से विरेचन देकर मल को भालीति दाहर निकाल देना चाहिये ॥ १ ॥

सेकः—

निर्बार्कपत्रसंपर्क लोध्रं भागचतुष्टयम् । धूपः सर्विषयोभागैः कफे सेकः सुखाउन्मा ॥ १ ॥

सेक प्रयोग—नीम तथा मदार के पत्तों द्वारा अवेदित कर पकाया हुआ लोध (पुटपक लोध) चार भाग, घृत एक भाग और दूध (दकरी का) एक भाग एकत्र मिलाकर थोड़े उष्ण जड़ में मिलाकर सेक करने से अथवा इन ओषधियों का धूप देने से कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥
आश्रोतनम्—ससैन्धवं लोध्रमस्याऽऽज्ञात्यनुष्टुप्तं सौदीरपिष्ठै सितवज्ज्वद्वद्म ।

आश्रोतनं तज्जयनस्य कुर्यात्कण्ठं च दाहं च रुजं च हन्यात् ॥ १ ॥

आश्रोतन प्रयोग—सेंधानमक के सहित लोध को घृत के साथ भूज लेवे पश्चात् सौदीर (कोजी) के साथ उसे पीस कर इवत बल में रख कर नेत्रों में आश्रोतन करे इससे नेत्र के कण्ड, दाह तथा पीड़ा आदि नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

पिण्डिका—शिग्रपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दहारिणी ।

शुण्ठीनिश्चवद्लैः पिण्डी सुखोण्णा स्वेदपसेन्धवा ॥

धार्या चन्द्रुषि संथोगान्धोथकण्ठव्यथाहरा ॥ १ ॥

पिण्डिका प्रयोग—सहितन के पत्तों की पीस कर विधिपूर्वक पिण्डी बनाकर नेत्रों पर धारण करने से (केन्द्रे से) कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है । और सौठ, नीम के पत्ते और सेंधानमक की विधिपूर्वक बनाई हुई पिण्डी थोड़ा सा उष्ण (सुखोण्ण) करके नेत्रों पर धारण करने या केन्द्रे से नेत्र के शीथ, कण्ड और व्यथा (पीड़ा) नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विदालकः—

रसालनेत्र वा लेपः पथ्याविश्वदलैरेपि । वचाहुरिद्रिविश्ववैत्त तथा नागरैरिकैः ॥ १ ॥

विदालक प्रयोग—रसवत को पीस कर नेत्रों पर लेप करे अथवा हड्ड और आर्द्रके कप्तों को वा सौठ और तेजपात को पीस कर लेप करे अथवा वच, हलदी और सौठ की पीस कर लेप करे अथवा सौठ और गेह को पीस कर लेप करे तो कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

स्वेदनम्—फणिजकास्फोतकपित्तविश्ववैत्तरभङ्गार्जुनपश्चयोगैः ।

स्वेदं विद्युत्यादय वा प्रलेपं सलोभ्रशुष्ठीसुरदारकुडैः ॥ १ ॥

स्वेदन प्रयोग—फणिजवक (गन्ध तुलसी), अपराधिता, कैथ, वेल, घटरा, शांग और अर्जुन के पत्तों की एकत्र कर इनके स्वेद देने से अथवा लोध, सौठ, देवदारु और कूट की समान भाग लेकर पीस कर नेत्रों पर लेप करने से कफाभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

सामान्योपचारः—

वैत्तिके पारिजातस्य तेलसैन्धवकाञ्जिकम् । कफजाञ्जिजशुलम् तस्मैन्दं कुलिक्षण्या ॥ १ ॥

सामान्य उपचार—पारिजात वृक्ष की छाल, तेल, सेंधानमक और काली की वज्र की से

पीस कर उसमें तेल और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर नेत्र पर लगाने से कफज नेत्र शूल इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार वज्र या विजली से वृक्ष नष्ट होता है ॥ १ ॥

सौदीरं सैन्धवं तैलं मूर्चामूलं तथैव च । कांस्थयात्रे विशुद्धं स्याद्यथयोः शूलनिवारणम् ॥ १ ॥
सौदीर, कांस्थ, सैन्धवमक, तैल और मूर्चा की जड़ को कांसे के पात्र में घिस कर नेत्र में अज्ञन करने से नेत्र का शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

सलवणकहुतैलं काञ्जिकं कांस्थयात्रे निहितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाम्भौ ।

सूपवनकफकोपं छागदुग्धावसिकं जयति नयनशूलं सावशाथं सरागम् ॥ ३ ॥

सेंधानमक, कहुता तैल और कांसी को कांसे के पात्र में रखकर पथर से घिस कर गोबर के कड़े की अविन पर तपाकर इसका धूंधा देने से नेत्रों के बात-कफ प्रकोप नष्ट होते हैं और इस छपरोक्त योग को बकरी के धूध में मिलाकर नेत्रों पर सिंचन करने से नेत्रशूल, साव, शोथ और नेत्र की लाली आदि नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

स्यन्दाधिमन्थे क्रममाचरेत्त सर्वेषु चृतेषु सदा प्रशस्तम् ॥ ४ ॥

अभिष्यन्द रोग और अधिमन्थ रोग में सभी पूर्व कथित उपचार क्रम से यथा अवसर करना चाहिये । अन्य नेत्र रोगों में भी पूर्वोक्त क्रम से ही चिकित्सा प्रशस्त है ॥ ४ ॥

रक्तलाभिष्यन्दचिकित्सामाह, सेकः—

त्रिकलालोध्यर्थीभिः शर्कराभद्रमुस्तकः । पिण्डैः शीताम्बुना सेको रक्तभिष्यन्दनाशनः ॥ १ ॥
रक्ताभिष्यन्द में सेक—हरड़, बहेड़ा, आँवला, लोध, जेठीमु, शर्करा और नागरमोया को समान भाग लेकर शीतल जड़ के साथ पीस कर नेत्र में सिंचन करने से रक्तभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

आश्रोतनम्—

स्त्रीस्तन्याश्रोतनं नेत्रे रक्तपित्तनिलार्तिजित् । छोरसर्विर्वृतं वाऽपि रक्तपित्तवज्जं जयेत् ॥ १ ॥

आश्रोतन—की के धूध का नेत्र में आश्रोतन करने से रक्त, पित्त और वात से वृत्पत्र नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं और धूध तथा धी मिलाकर नेत्र में लगाने से अथवा धी को ही केवल नेत्र में लगाने से रक्त और पित्त से वृत्पत्र नेत्र के रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लोधचूर्णं धृते वृष्टं द्वजमाश्रोतनैहंरेत् । शर्करात्रिकलाचूर्णमिदमाश्रोतनं परम् ॥ २ ॥

लोध के चूर्ण को धृत के साथ मर्दन कर नेत्र में आश्रोतन करने से नेत्र की पीढ़ा नष्ट होती है और शकरा तथा समान खिलित त्रिकला के चूर्ण को जल में मदित कर नेत्र में आश्रोतन करना नेत्र के किये अत्यन्त लाभदायक है ॥ २ ॥

अज्ञनम्—

श्रीपर्णीपाटलाधारीश्वातीतिश्वकार्जनात् । पुष्पाण्यथ बृहत्याश्च विश्वी लोधं च तुल्यशः ॥
मजिदां चापि मधुना पिङ्गात्पीज्जुरसेन वा । श्विरस्यन्दशान्यथमेतदञ्जनमिष्यते ॥ २ ॥

अज्ञन—गंभार, पाढ़ार, आँवला, धाय के फूल, लोध, अजुन की छाल, बड़ी केवरी का फूल, विश्वी फूल, लोध और मलीठ को समान भाग लेकर चूर्ण कर मधु अथवा ईख के स्वरस में मिला कर नेत्र में अज्ञन लगाने से रक्तभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥ २-२ ॥

वासादिकायः—

आटरुषाभयानिवधाश्रीमुस्तकमूलकः । इसास्त्रावं कफं हन्ति चकुञ्चं वासकादिकम् ॥ १ ॥

वासादि काय—अरुसा, हरड़, नीम की छाल, आँवला और नागरमोया की जड़ को समान भाग लेकर काय की विधि से काय बनाकर पान करने से तथा नेत्र में आश्रोतन करने से रक्तस्त्राव तथा कफदोष नष्ट होता है । नेत्रों के लिये यह अधिक दित्कर है ॥ १ ॥

अधिमन्थान्यतोवात्योक्तिकित्सा—

अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे ध्यधयेच्छिराम् । अशान्ते स्वर्था मन्थे अवोद्धपरि दाहयेत् ॥ १ ॥
अधिमन्थादि चिकित्सा—सभी प्रकार के अधिमन्थ रोग में ललाट पर की शिरा का वेद छेदन करना चाहिये और वहां अधिमन्थ रोग किसी प्रकार शान्त नहीं हो तो भ्रामग के क्षयर दाह करना (जलाना या दाग देना) चाहिये ॥ १ ॥

अधिमन्थदेषु याः प्रोक्ताश्वतुर्वपि प्रतिक्रियाः । ताः सर्वा अधिमन्थेषु प्रयोज्यात्त्र भिषयवर्तः ॥

चारों प्रकार के अधिमन्थों में कही हुई चिकित्सा जो है वह सभी वैद्य अधिमन्थ रोगों में वृत्पत्र करे अर्थात् चारों अधिमन्थ की सभी चिकित्सा चारों अधिमन्थ में लाग करती है—वही करनी चाहिये ॥ २ ॥

सर्व एव विधिः सर्वमन्थाद्विष्वपि चेष्यते । तथा चाप्यन्यतोवाते सामान्यतद् वृथयते विधिः ॥

सब प्रकार की चिकित्सा (अधिमन्थों के समान ही) सब प्रकार के अधिमन्थों में भी कह चुके हैं और अन्यतोवाते में भी सामान्य विधि कहते हैं ॥ २ ॥

यद्युं गुड्चीं त्रिफलां सदाचार्मसच्यामये सर्वभवे पिवेद्वा ।

आश्रोतनं सान्द्रद्वयेन दावर्याः शस्तं सदा चौद्युतं नराणाम् ॥ ४ ॥

यष्ट्यादि काय—जेठीमु, गुरुच, हरड़, बहेड़ा, आँवला और दारहलदी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काय कर सब प्रकार के नेत्र रोगों में पिलाना चाहिये और दारहलदी के गाढ़े स्वरस में मधु मिलाकर नेत्र में निरन्तर आश्रोतन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोगों में लाग होता है ॥ ४ ॥

गुड्चीत्रिफलाक्षयो मधुना सह योजिनः । पीतः सर्वाच्चिरोगादः कृष्णाचूर्णवचूर्णितः ॥

गुड्ची त्रिफलादि काय—गुरुच, हरड़, बहेड़ा और आँवला को समान भाग लेकर विधि पूर्वक काय कर उसमें मधु और पीपल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार का नेत्र रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

प्रपौण्डरीकश्यद्याह्वादीलोधेः सचन्दनैः । पूरण्डामधुयुतैः सेकः सर्वनेत्रहापहः ॥ ६ ॥

सेक विधि—पुण्डरीक, जेठीमु, दारहलदी, लोध, लालचन्दन, परण्डमूल और सुगन्धवाला को समान भाग लेकर व्याय की विधि से वृत्पत्र कर नेत्रों पर सिंचन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

श्वेतलोधं धृते भृत्यं चूर्णितं तप्यतुरुथकम् । कृष्णामधुना विश्वदितं सेकः शुलहरः परः ॥ ७ ॥

श्वेत धूत, भूता दुआ लोध, शुद्ध स्वर्णमांशुक और शुद्ध तूतिया के चूर्ण प्रत्येक समान भाग को पीपल के स्वरस अथवा व्याय के साथ लगाकर नेत्रों पर सिंचन करने से नेत्रशूल में परम लाभदायक होता है ॥ ७ ॥

श्वट्योरिकसिन्धूथदार्कीताप्यः समांशाकैः । जलपिष्टर्वहिलेषः सर्वनेत्राभ्यापहः ॥ ८ ॥

यष्ट्यादि लेप—जेठीमु, गेल, सेंधानमक, दारहलदी और रसवत को समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर नेत्र के बाहर बाहर लेप करने से सभी प्रकार के नेत्रोरग नष्ट होते हैं ॥
दूधवा ससैन्धवं लोधं मधुं चूर्णितं धृते धृते । पिष्टमञ्जनलेपाभ्यां सद्यो नेत्रहापहम् ॥ ९ ॥

सैन्धव लोधादि लेपअन्न—सेंधानमक के सहित लोध को भोज से युक्त गोदूत में जला देवे, पक्षात् उसे पीसकर नेत्रों पर लेप और अज्ञन करने से नेत्र के सभी रोग चीत्र नष्ट होते हैं ॥
लोधवा वाय पात्रे संधृष्टो रसो निष्कुफलोद्धवः । किञ्चिद्गुलोद्धवः । वहिलपानेत्रहापहिं स्वयोहति ॥

निष्कुफल योग—लोहे के पात्र में नीदू के रस को विसे, जब विसते २ कुछ गाढ़ा ही जावे तब उसे नेत्र के बाहर २ लेप करने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

निष्ठवस्थ चेदुर्वश्वलकलस्य प्रश्नवद्यहीमधुचन्दनस्य ।

पिण्डो विधेयो नयनप्रकोपे कफेन पित्तेन समीरणेन ॥ ११ ॥

निष्मादि पिण्ड—नीम की छाल, गूलर की छाल, परण्डमूल, जटीमधु और लालचन्दन को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक पिण्डो बनाकर नेत्र रोगों में प्रयोग करने से कफब, पित्तब और वातब नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

शोथपाकयोग्यकिस्ता—

जलौकापातनं श्रेष्ठं नेत्रपाके विरेचनम् । शिराव्यधं वा कुर्वत सेकलेपौ च शुक्रवत् ॥ १ ॥

नेत्र के शोथ और पाक की चिकित्सा—नेत्र पाक में बोंक लगवाना, नेत्र विरेचन देना, शिराव्यध करना, सिंचन करना और लेप आदि करना ये सभी कर्म (चिकित्सा) नेत्र शुक्र (छाल) रोग के भाँति ही करना चाहिये ॥ १ ॥

विभीतकशिवाजात्रीपटोलारिष्टवासकैः । कायो गुगुलुसंयुक्तः शोथशूलाद्विरोगनुत् ॥ २ ॥

वहेड़ा, हरड़, अंवला, पटोलपत्र, नीम के पत्र और अलसा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाय बनाकर उसमें शुद्ध गुगुलु का प्रक्षेप देकर पान करने से शोथ-शूल युक्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

वातविपर्ययशूलाक्षिपाकयोग्यकिस्ता—

वाताभिष्यन्दव्यव्याक्र वातमाहतपर्यये । अनेनैव विष्णुनेन भिषप्त्वैवाभिसाधयेत् ॥ ३ ॥

वातविपर्यय और शुष्काक्षिपाक चिकित्सा—वाताभिष्यन्द रोग के भाँति ही वातब नेत्र रोग तथा वात विपर्यय रोग की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पूर्व तत्र हितं सर्पिः श्वीरं वाऽप्यथ ओजनम् । परिषेको हितं नेत्रे पथ्यकोणां सैन्धवम् ॥

इहले इस वात विपर्यय रोग में घृत अथवा दूध का भोजन करावे पश्चात् दूध को कुछ उष्ण कर उसमें सेंधानमक थोककर नेत्रों पर सिंचन करे इससे वात विपर्यय में लाभ होता है ॥ ३ ॥

रजनीदाहसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम् । वाताभिष्यन्दशमनं हितं माहतपर्यये ॥ ३ ॥

शुष्काक्षिपाके च सदा इदं सेवनकं हितम् ।

अथवा इक्की और दाराइक्की मिलाकर पकाये हुए दूध में सेंधानमक मिलाकर नेत्रों पर सिंचन करने से वाताभिष्यन्द नष्ट होता है और वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक रोग में भी इस योग के सिंचन से सदा लाभ होता है ॥ ३ ॥

सैन्धवं द्वाह गुण्ठी च मातुलुक्करसे घृतम् ॥ ४ ॥

स्तन्योदकार्थं कुर्वत शुष्कपाके तद्भजनम् । शुष्काक्षिपाके हविषः पानमण्डोश्च तर्पणम् ॥

घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन योजयेत् ॥ ५ ॥

सेंधानमक, देवदांड़ और सोंठ का समान मिलित कशक और कक्क के चौगुना दिजीरे नीबू का रस और गोहृत लेवे और घृत से चौगुना खी का दूध और जल मिलाकर लेवे और इन सब द्रव्यों से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर अजन करने से शुष्काक्षिपाक रोग में लाभ होता है । शुष्काक्षिपाक रोग में घृत पान करना तथा जीवनीय गण की ओषधियों से सिद्ध घृत से नेत्रों में तंत्रण करना एवं ओषधि सिद्ध तेल का नस्य लेना आमदायक होता है ॥ ४-५ ॥

अम्लाद्युषितमाह—

तिक्तस्थ सर्पिः पानं बहुशक्त विरेचनम् । अम्लाद्युषितशान्त्यर्थं कुर्यादुलेपान्मुशीतलान् ॥

अम्लाद्युषित चिकित्सा—तिक्त द्रव्यों के योग से सिद्ध घृत को पान करने से और अनेक चार या चार २ नेत्र विरेचन देने से तथा बनाये हुए शीतल लेगों के छाने से अम्लाद्युषित रोग शान्त होता है ॥ ६ ॥

विश्वकं व्रिष्टलो सर्पिजीर्णं वा केवलं पिवेत् । शिराव्यधं विना कार्यः पित्तस्थन्दहरो विविः ॥

वेल, हरड़, वहेड़ा और आंमला के योग से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर अथवा केवल पुराना घृत ही पिलाने से और शिराव्यध के अतिरिक्त लेप सभी चिकित्सा पित्ताभिष्यन्द की भाँति ही अम्लाद्युषित रोग में करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

शिरोत्पातशिराहर्वयोग्यकिस्ता—

शिरोत्पात शिराहर्वमन्यांश्चमवान्यादान् । विश्वस्थ कोष्णेनाऽऽज्ञेन शिरावेधैःशमं नयेत् ॥

शिरोत्पात और शिराहर्व तथा अन्य रक्ज रोगों में कुछ २ उष्ण किया घृत पिलाकर रोगी को स्त्रिय कर शिरावेध करके रोग को शमन कर अर्थात् इन रोगों में स्तेन्हन कर शिराव्यध करने से रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

सर्पिः श्वीदं चालनं स्थाचिङ्गोत्पातस्य मेवजम् । तद्वस्तैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम् ॥

घृत और मधु मिलाकर नेत्रों में अजन करने से शिरोत्पात रोग नष्ट होता है । इसी प्रकार सेंधानमक और कासीस दोनों को समान लेकर खी के दूध से विधिवत् पीसकर अजन करने से शिरोत्पात रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

शिराहर्वऽज्ञनं कार्यं फाणितं मधुसंयुतम् । मधुना तार्क्यशैलं च कासीसं वा समाहितम् ॥

शिराहर्व रोग में फाणित (ईख के रस का रात्र) को मधु में मिलाकर आंखों में अजन करना चाहिये । अथवा कासीस को मधु में पीसकर अजन करना चाहिये । इससे लाम होता है ॥

वेतसाम्लं स्तन्ययुतं फाणितं तु सौन्धवम् । पित्ताभिष्यन्दशमनं विधिं चात्रापि योजयेत् ॥

अम्लवेत को नारी के दूध में विधिपूर्वक मिलाकर अजन बनाकर नेत्रों में लगाना चाहिये अथवा फाणित को सेंधानमक के साथ मर्दन कर नेत्रों में अजन करना चाहिये । इससे शिराहर्व रोग नष्ट होता है । पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा भी शिराहर्व रोग में करनी चाहिये ॥ ४ ॥

ग्रन्थान्तरे नयनाभिवातस्य निदानचिकित्से—

स्ववस्थशु च यन्नेत्रं वृत्तं लोहितराजिभिः । निमेषोन्मेषणाशक्तं स्वास्थ्यं तं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

नयनाभिवात रोग—जिस नेत्र से अष्टुपात होता रहता हो, लोहित वर्ण की रेखाओं से नेत्र विरा हुआ हो, पलक बन्द होने में और खुलने में अशक्त हो इसे आवात के कारण हुआ नेत्र रोग जानना चाहिये ॥ १ ॥

नेत्रे त्वमिहते कुर्याच्छ्रीतमाश्रोतनं हितम् । पुनर्नवामूलकवकाशिपणी लेपे कुचन्दनम् ॥

अन्तः स्त्रीस्तन्यसेकश्च रक्मोक्षश्च शस्यते ॥ २ ॥

इस प्रकार के अभिहत नेत्र रोग में शीतल द्रव्यों का आश्रोतन करने से, पुनर्नेत्रा के मूल का विधिपूर्वक कवक कर पिण्डी बनाकर नेत्र पर केरने से, पोले चन्दन का लेप लगाने से, नेत्र के अम्लन्तर खी के दूध का सिंचन करने से और रक्मोक्षण करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

इष्टिप्रसादज्ञनं विष्माशु कुर्याच्छिन्दनघैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।

स्वेदाभिन्दूमध्यमोक्षोकहजादितापैरभ्याहतामपि तथैव भिषविकित्सेत् ॥ ३ ॥

स्त्रिनग्न, शीतल और मधुर प्रयोगों से इष्टि प्रसादन का तथोग करना चाहिये । इसी प्रकार के द्रव्यों से स्वेद, अम्ल, धूम, अथ, शोक, रुग्म तथा गण को नष्ट कुर्याद् इन कारणों से उत्पन्न नेत्र रोगों की मी स्त्रिय, शीतल और मधुर क्रिया से ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

स्वर्याच्छ्रीतमाश्रोतरविष्माशिपिलोकनेत्रोपहतेचणस्य ।

सन्तर्पणं दिनश्वहिमादि कार्यं सायं निषेध्यक्षिफलाप्रयोगः ॥ ४ ॥

सुर्य की किरणेण, दिशायें तथा आकाश विद्युत् आदि के देखने से विनकी दृष्टि नष्ट हो गयी हो उनकी स्तिरपथ तथा शीतल वस्तुओं से संतर्पण आदि किंवा द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये तथा सायंकाल में त्रिफला के प्रयोगों का सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

निशावद्वित्रिफलादार्वी सितामधुसमन्विता । अभिघाताच्चिशूलघ्नं नारीकीरेण पूरणम् ॥ ५ ॥

हलदी, नागरमोथा, हरद, बैड़ा, अंबला, दारुहलदी, शर्करा और मधु को समान आग लेकर इलक्षण चूर्ण कर नारी के दूध में मिलाकर नेत्रों में पूरण करने से नेत्र का अभिघात तथा नेत्रों का शूल नष्ट होता है ॥ ५ ॥

शावरं मधुकं तुरुयं धृतमृष्टं सुचूर्णितम् । छागच्छीरोस्थितं सेकः पित्तरकभिघातजित् ॥ ६ ॥

सावर लोब या देवत लोध और मुलहठी को समान आग लेकर धृत में भूजकर उत्तम चूर्ण कर बकरी के दूध में मिलाकर आंखों में सिव्वन करने से पित्तरक से उत्पन्न और अभिघात से उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

चौद्वाच्छलालासंशृष्टैर्मिरचैर्नेत्रमञ्जयेत् । अतिनिद्रादोष चिकित्सा शमं याति नमः सूर्योदयादिव ॥ ७ ॥

अतिनिद्रादोष चिकित्सा—घोड़े के सुंद की लार में काली मरिच को घिस कर उसमें मधु मिलाकर नेत्रों में अच्छन करने से अतिनिद्रा दोष इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट होता है ॥ ७ ॥

जातीपुरुषं प्रवालं च मरिचं कटुका वचा । सैन्धवं वस्तमूलेण पिण्डे तन्द्राघ्नमञ्जनम् ॥ ८ ॥

तन्द्रा नाश के उपाय—चमेली के फूल, सूंगा, परिच, कुटकी, बन और सेवानमक को समान आग लेकर बकरे के मूत्र में पीसकर अच्छन करने से तन्द्रा का नाश होता है ॥ ८ ॥

नेत्ररोगे भीमसेनीकृदः—

सुधांशोर्वसुभागाः स्युरेला भागद्वयं तथा । चन्दनं चानिकफेनं च शीजं कतकसउभवम् ॥ ९ ॥

इसाज्ञनं भद्रमुस्तं प्रत्येक कर्पसरमितम् । सर्वं हृथे विमर्याथ पिण्डे योधूपिष्ठवत् ॥ १० ॥

कृत्वा पात्रे निधायाथ चिपेष्यावं तथोपरि । अधः प्रज्वालेहीपं वस्तर्याऽङ्गुष्ठसमानया ॥ ११ ॥

एवं प्रद्वयर्पन्तं वह्नि कुर्यात्वं युक्तिः । पात्रस्योपरिभागं तु शीतलं रक्षयेद्द्वुषः ॥ १२ ॥

सदाऽऽद्वैत्यल्पवेन शीतलेन च वारिणा । इवाङ्गशीतं ततो ज्ञात्वा पश्चात्कूर्त्वमाहरेत् ॥ १३ ॥

स्फटिकारमर्थच्छं रवेतहीरमणिप्रभवू भीमसेन्यालयकपूरमौषधेषु प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥

नेत्ररोग में भीमसेनी कपूर—देशी कपूर ८ भाग, छोटी इलायनों के दाने २ भाग, लाढ़-चन्दन, समुद्रफेन, निर्मली के बीज, इसवत और नागरमोथा प्रत्येक का चूर्ण एक २ कण्ठ लेकर

सबको दूध में खरल कर गेहूं के गूंथे हुए आटे के पिण्ड के समान पिण्डी बनावे । फिर वहे शकोरे

या परई में रखकर ऊपर से दूसरा पात्र रख कर शाराव-सम्पुट की विविद से उसका मुखमुद्रण

कर (सन्धि बन्द कर) उसके नीचे अंगूठे के समान बत्ती बनाकर तेल में भिंगो कर जलाकर

लगा देवे अर्थात् बत्ती से आंच देवे । इस प्रकार एक प्रहर (३ घंटे) तक आंच देवे और ऊपर

के पात्र को सदा शीतल रखे । सदा आंगे हुए कपड़े को ऊपर के पात्र पर रखे और जल से डूँगोता रहे । जब एक प्रहर आंच लग जावे तब बत्ती बुझा देवे और स्वांगशीत होने पर ऊपर

के पात्र में सदा दुधा इवेत कपूर को निकाल लेवे । स्फटिक के समान अत्यन्त स्वच्छ, इवेतहीरक

मणि के समान प्रभा वाला इस भीमसेनी नामक कपूर को सभी ओषधियों में (जहाँ आवश्यकता-हो) प्रयुक्त करे । अर्थात् यह भीमसेनी कपूर है इसकी जहाँ २ आवश्यकता पड़े व्यवहार में

लाना चाहिये ॥ १५-६ ॥

अथ पथ्यापथ्यम्

आश्चोतनं लङ्घनमञ्जनं च स्वेदो विरेकः वतिसारणं च ।

प्रष्टैर्ण नस्यमस्त्रिवमोऽः शख्क्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ १ ॥

सेको मनोनिर्वितरिद्विपूजा सुद्रु यवा लोहितशालयश्च ।

कौम्भं हविस्तरथं कुलशयूषः पेता विलेपी सुरण परोलस् ॥ २ ॥

वार्ताककोटिकारवेलं च वीनमोचं लवमूलं च ॥ ३ ॥

पुनर्नवामाकेवकाकमाचीपत्तूशकानि कुमारिका च ॥ ४ ॥

द्राच्छा च कुस्तुमुख माणिमन्यो रोधं वरा लौद्रसुपानहश्च ।

नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्कानि सर्वाणि लघूनिं चापि ॥ ५ ॥

विजानता पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं नेत्रादं निहन्ति ।

पथ्यापथ्य—आश्रोतन, लङ्घन, अंजन, रवेदन, विरेक, प्रतिसारण, प्रपूरण, नस्य, रक्तमोक्षण, शख्क्रिया, लेप, धृतपान, सिचन, मन की शार्णिं, गुहजनों की पादपूजा, मूँग, जौ, रक्त वर्ण के शालिषान्य के चाल, सौ वर्ष का पुराना धृत के साथ कुलबी का युष, पेता, विलेपी, सूरनकन्द, परवक आदि का शाक, वैगन, ककड़ी, करैला, नया (कच्चा) केला, नवीनमूली, पुनर्नवा, आंगरा, मकोय, पत्तुर शाक, बीकुआर, द्राक्षा, धनियां, सेवानमक, लोध, त्रिफला, मधु। उपनाह कर्म, खी का दूध, चन्दन, कपूर, सभी तिक तथा लघु पदार्थ नेत्ररोग में पथ्य कहे गये हैं । वैष को दोषानुसार यथायोग्य इन पदों का प्रयोग कराना चाहिये ॥ १-४ ॥

क्रोधं शुचं मैथुनमञ्जु वायुविष्णुनिद्रावमिवेगरोधम् ॥ ५ ॥

सूक्ष्मेषुणं दृन्तविष्वर्णं च स्वानं निशाभोजनमातपं च ।

प्रज्ञस्पन्नं लुर्दनमञ्जुपानं मधुकपुष्पं द्विष वन्नशकम् ॥ ६ ॥

कालिङ्गपिण्याकविरुद्धकानि मस्त्यं सुरा मासमज्जलं च ।

ताम्बूलमग्नं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटुष्पं गुरु चाक्षपानम् ।

जरो न सेवेत हिताभिलाषी सर्वेषु रोगेषु द्वग्राथयेतु ॥ ७ ॥

क्रोध, शोक, मैथुन तथा आंसु, वायु, मक, मूत्र, निद्रा और वमन के वेगों को रोकना, सूक्ष्म को ध्यान से विलम्ब तक देखते रहना, बढ़ुत विलम्ब तक दांतों की विसरते रहना, स्नान करना, रात को भोजन करना, धूप या ताप में रहना, बढ़ुत बोलना, वमन कर्म, जलपान, महु का फूल, दही, पत्रशाक, तरबूजा, तिळकरक, अङ्गुरित धान्य, मस्त्य, सुरा, जौ जौव आकूल नहीं हो उनका मास, ताम्बूल, अङ्गूष्ठ, नमक, तीक्ष्णद्रव्य, कटु-उष्ण और गुरु अन्त-पान सभी नेत्र रोगों में अपथ्य कहे गये हैं । इनका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ५-७ ॥

शालितङ्गुलगोधमुद्ग्रसैवध्वगोधृतम् । गोपयश्च सिता छौदं पथ्यं नेत्रादे स्मृतम् ॥ ८ ॥

शालीधान का चावल, गेहूं, मूँग, सेवानमक, गौ का धी, गौ का दूध, शर्करा और मधु ये सभी द्रव्य नेत्र रोगों में पथ्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥

सर्व शाकमच्छुष्यं च्छुष्यं शाकापश्चकम् । जीवन्ती वास्तु मस्त्याही मेघनादः पुनर्नवा ॥ ९ ॥

सभी प्रकार के पत्र शाक नेत्र रोगों में अपथ्य हैं केवल पांच प्रकार के पत्रशाक पथ्य हैं १ जीवन्ती, २ बथुआ, ३ मछेली, ४ चौराई और ५ पुनर्नवा ॥ ९ ॥

माषाननालकद्वैलजलावगाङ्गज्ञाद्वैश्च सुरतैर्निशि जागरैश्च ।

शाकापलभस्यद्विफाणितवेसवारैश्चच्छुःस्यं व्रजति सूर्यविलोकनाच्च ॥ १० ॥

दृष्टिनाशक—दहद, कांबी, सरसों का तेल, जल में दूध कर स्नान, छोटी कटेरी, ताळ-

मखाना, मैथुन, रात्रिजागरण, पत्रशाक, अमल द्रव्य, मत्स्य, दही, फागित (राव) और वेसवार के सेवन तथा सूर्य की ओर देखने से नेत्रश्वय अर्थात् दृष्टि का नाश होता है ॥ १० ॥

इति नेत्रोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ स्त्रीरोगाधिकारः

तत्राऽस्त्रौ प्रदरस्य निदानमाह—

विरुद्धमध्यशनादजीर्णद्वयं प्रपातादतिमैथुनाच्च ।

यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिवाताच्चयनादिवा च ॥ १ ॥

तं श्लेष्मपित्तानिलसंनिपातेश्चतुः प्रकारं प्रदर्श वदन्ति ॥ २ ॥

प्रदर निदान—विरुद्ध आद्वार (संयोग विरुद्ध, मात्रा विरुद्ध आदि) करने से, भयपान करने से, अध्यशन करने से, अर्जीं रोग से, गर्भपात होने से, अधिक मैथुन करने से, अधिक सवारी पर चलने से, अधिक मार्घं चलने से, शोक करने से, अत्यन्त उपवास आदि करने के कारण धातुओं के क्षीण हो जाने से, अत्यन्त मार उठाने से आवात लगने और दिन में अधिक सोने से कफज, पित्तज, वातज और सक्रियातज प्रदर चार प्रकार के होते हैं ॥ १-२ ॥

प्रदरस्य सामान्यलक्षणमाह—

असूदरं भवेत्सर्वं सङ्घर्मदं सवेदनम् ।

प्रदर के सामान्य लक्षण—सभी प्रदर रोगों में सामान्यतः अङ्ग दूटना और पीड़ा होती है ॥

इति विकर्त्त्वं लक्षणमाह—

आमं सपिच्छ्रप्तिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात् ॥

कफज प्रदर—कफ के कोप से जो प्रदर होता है उसमें आमरस सुक पिच्छल (शाश्मली निर्यास की भाँति), पाण्डुवर्ण का और गेहूं के धोवन की भाँति वा मास के धोवन की भाँति अथवा क्षुद्रधान्य के चावलों के धोवन की भाँति योनिस्राव होता है ।

पैतिकमाह—सपीतनीलासितरक्षमुष्णं पित्तार्तिरुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ३ ॥

पित्तज प्रदर—पित्त के कोप से जो प्रदर होता है उसमें पीत, नील, कृष्ण, रक्त और उष्ण तथा पित्त दोष की पीड़ाओं (दाह—चिमचिमादि) से युक्त एवं अत्यन्त वेग वाला स्राव होता है ॥

वातिकमाह—रूद्धारुणं केनिलमल्पमल्पं वातास्तोदं पित्तितोवकाभम् ॥

वातज प्रदर—वात के कोप से जो प्रदर होता है उसमें स्वच्छ, अहं वर्ण का, केन युक्त, थोड़ा २ सूई चुम्बाने के समान पीड़ा। करने वाला और मास धोये हुए जल के समान स्राव होता है ॥

सानिपातिकमाह—सक्षेपसर्पिर्हरितालवर्णं मदजप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ।

तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञानं तत्र कुर्वति भिषविक्षिकित्साम् ॥

सक्रियातज प्रदर—त्रिदोष के कोप से जो प्रदर होता है उसमें मधु मिले हुए धूत के समान, हरिताल के वर्ण का, मध्वा के समान और मुर्दे के दुर्गन्ध के समान गन्धवाला स्राव होता है । इसे विदान् वैद्य असाध्य कहते हैं ॥ ४ ॥

रक्तस्यातिप्रवृत्त्युपद्रवानाह—

तस्यातिवृत्तौ दूर्वर्धयं अमो मूर्च्छा मदस्तूषा ।

दाहः प्रलापः पाण्डुवर्णं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ५ ॥

प्रदर रोग के उपद्रव—रक्त के अत्यन्त प्रवृत्त होने से (प्रदर के बढ़ जाने से) दुर्बलता,

अम, मूर्च्छा, मद, तृष्णा, दाह, प्रलाप, पाण्डुता, तन्द्रा और अनेक प्रकार के बात रोग आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ५ ॥

असाध्यं प्रदरव्याधिमतीमाह—

शाश्वतस्वन्तीमासावं तुषादाहज्वरनिवासम् । तुर्बलां क्षीणरक्तां च तामसाध्यां विवर्जयेत् ॥

असाध्य प्रदर—जिस प्रदर रोग में निरन्तर योनि से स्राव होता रहे, तृष्णा, दाह, ज्वर और दुर्बलता हो तथा रक्त क्षीण हो गया हो उसे असाध्य जान कर थाग देना चाहिये ॥ ६ ॥

चिकित्सानिवृत्यर्थं शुद्धातंवलक्षणमाह—

मासाधिपिच्छुदाहातिं पञ्चरात्रानुबन्धं च । नैवातिवहु नास्यशपमात्मचं शुद्धमादिशेत् ॥ ७ ॥

शुद्धातंव के लक्षण—मास २ के पश्चात होने वाला, पिच्छुलता विहान, दाह और पीड़ा रहित, पांच दिन तक रहनेवाला, न अधिक और न कम होने वाला। इस प्रकार का जो रक्तस्राव थोड़े उसे शुद्ध जानना चाहिये ॥ ६ ॥

शक्तासुक्षप्रतिमं यच्च यद्युलावासोपमम् । तदात्मंवं प्रशंसमिति यच्चाम्बुन विरल्यते ॥ ८ ॥

ओ रज शशक के रक्त के समान वर्ण वाला अथवा लाख के रस के समान वर्ण वाला और चिक्का रक्त से युक्त वज्र जल में धोये से पुनः उसमें रक्तवर्ण न रह जाय उसे विशुद्ध रज समझना चाहिये ॥ ८ ॥

अथ प्रदरचिकित्सा

दधना सौवर्षलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम् । पिवेत्सौद्रयुतं नारी वातासुग्वरशान्तये ॥ १ ॥

वातज प्रदर चिकित्सा—सौवर्षल (सौवर) नमक, इवेत जीरा, मुलहठी और नीलकमल (नीलोफर) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु मिलाकर गाय का दही के अनुपान से पीने तो वातज प्रदर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

वागरं मधुकं तैलं सिता इधि च तत्समम् । खजेनोन्मधितं पीतं वातप्रदरमाशनम् ॥ २ ॥

सोठ, मुलहठी, तिल का तेल, शर्करा और गाय का दही समान भाग लेकर एकत्र कर मध्यानी से संयक्त धान करने से वातज प्रदर नष्ट होता है ॥ २ ॥

पुलामंशुमर्तीं द्राक्षामुशीरं तिक्करोहिणीम् । चन्दनं कुरुणलवर्णं सारिवालोधसंयुतम् ॥ ३ ॥

वातासुग्वरशान्त्यर्थं पिवेद्धना सहाङ्गना । पित्तासुग्वरशान्त्यर्थं सद्योद्रूपलक्षणम् ॥ ४ ॥

इलायची, शालपणी, द्राक्षा, खस, कुटकी, लालचन्दन, सौवर्षल नमक, सारिवा और लोध को समान भाग लेकर विधिवत चूर्ण कर गाय के दही के साथ योग्य मात्रा से पान करने से वातज प्रदर नष्ट होता है और यदि इसी चूर्ण को मधु के साथ पान करे तो पित्त प्रदर तथा रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ३-४ ॥

वासकस्थं गुद्धया वा रसं किं वा वरीभवम् । मधुरं कष्ठमेकं तु चतुष्कर्णो सिता तथा ॥

तण्डुलोदकसंपिण्ठं लोहिते प्रदरे पिवेत् ॥ ५ ॥

रक्तप्रदर चिकित्सा—अरुसे का स्वरस अथवा गुडच का स्वरस अथवा शतावरी का स्वरस और मुलहठी का चूर्ण एक कर्ष और शर्करा चार कर्ष इनको तण्डुलोदक (चावल के धोवन) के साथ रक्तप्रदर में पान करना चाहिये । इससे रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुर्गेत लंसंयुतं पीतम् ।

कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताशयम् ॥ ६ ॥

बछामूल (बरियरे की बड़ी) को गोड़वर्ष में पीसकर पान करने से अथवा कुश और बछामूल को समान भाग लेकर चूर्ण कर तण्डुलोदक से पान करने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

ब्राह्मकङ्गतिकारण्या या तस्या मूलं सुचृणितम् । लोहितप्रदरे खादेच्छकूरामधुसंयुतम् ॥७॥
अतिबला की जड़ को चूर्ण कर शर्करा और मधु के साथ मिलाकर खाने से रक्त प्रदर नह दोता है ॥ ७ ॥

मध्यनिम्बगुद्धयाश्र रोहितस्याथ वा रसम् । कफप्रदरनाशाय पिवेद्वा मलयूरसम् ॥८॥
कफज प्रदर चिकित्सा—नीम का स्वरस, गुरुच का स्वरस अथवा रोहित का स्वरस अथवा काकोदुम्बरिका का स्वरस मध्य के साथ पान करने से कफज प्रदर नष्ट होता है ॥ ८ ॥

काकजड्डामूलरसं मधुना सह भासिनी । सलोभ्रचूर्णमाषीय कफप्रदरकं जयेत् ॥९॥
काकजड्डा की जड़ का स्वरस, मधु और लोध का चूर्ण मिलाकर यदि खों को पिलाया जाय तो कफ प्रदर नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

पद्धामलकविभीतक्षीष्ठोषधदाहर ब्रनीनाशः । सचौद्वलोभ्रचूर्णकाथो हन्त्येष रस्वर्जं प्रदरम् ॥१०॥
सत्रिपात्रज प्रदर चिकित्सा—इरड़, अंवला, बहेड़, सोठ और दाढ़लदी को समान भाग लेकर विष्पूर्वक क्षाय करके उसमे मधु और लोध के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से विदोषज प्रदर नष्ट होता है ॥ १० ॥

रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं छौद्रानिवर्तं तण्डुलतोयपीतम् ।
असूरदरं सर्वभव निहन्ति शासं च वार्गी सह नागरेण ॥११॥

रसवत और चौराई शाक की जड़ को चूर्ण कर मधु में मिलाकर तण्डुलोदक से पान करने से सत्रिपात्रज प्रदर नष्ट होता है । इसी प्रकार वार्गी चूर्ण में सोठ का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से व्यास रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अशोकवलकलकार्थं श्रुतं दुर्घं सुशीतलम् । यथावलं पिवेत्प्रातस्तीव्रासुरदरनाशनम् ॥१२॥
अशोक की छाल का क्षाय तथा औटाकर शीतल किया गी का दूध दोनों को मिलोकर वल के अनुसार प्रातःकाल पान करने से तीव्र प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १२ ॥

कुगमूलं समुद्धयं पेषयेत्पहुलाम्बुना । एतत्पीत्वा श्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते ॥१३॥
कुश की जड़ को तण्डुलोदक से पीसकर तीन दिन तक पिलाने से खो प्रदर रोग से मुक्त हो जाती है ॥ १३ ॥

चौद्रयुक्तफलरसं काष्ठेदुद्धरजं पिवेत् । असूरदरविनाशाय सशकरंपयोज्जभुक् ॥१४॥
काकोदुम्बरिका के फलों के स्वरस में मधु मिलाकर पान और दूध-शर्करा से युक्त अन्न का सेवन करने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ १४ ॥

मलयूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च । मधुना मोदकं छूत्वा सादेत्प्रदरनाशनम् ॥१५॥
काकोदुम्बरी (लंगली अजीर) के फलों का चूर्ण मधु और शर्करा मिलाकर मोदक बनाकर सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

दार्ढीरसाञ्जनवृषावद्विकारात्प्रवाह्नातकरवृक्षतो मधुना कथायः ।
पीतो जयथ्यतिबल प्रदरं सशूलं पीतासिताहणविलोहितनीलशुक्लम् ॥१६॥

दार्ढीदि क्षाय—दाढ़लदी, रसवत, अल्पसा, नागरमोथा, चिरायता, कच्चे बेल की गुददी और शुद्ध मिलावा को समान भाग लेकर विष्पूर्वक क्षाय कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अर्थात् प्रबल प्रदर जो शूल सहित पीला, काला, तथा रक्तवर्ण का हो, रक्त प्रदर हो, नील प्रदर हो या इवेत प्रदर हो सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

भूम्यामलकमूलं तु पीतं तण्डुलवारिणा । द्विवैरेव दिनैर्चार्याः प्रदरं दुस्तरं जयेत् ॥१७॥
भुई अंवले की जड़ को चाल के घोवन के साथ पीसकर अथवा चूर्ण कर तण्डुलोदक के

अनुपान से पान करने से तीन दिन में खो मयङ्का प्रदर को जीत लेती है । अर्थात् इस योग से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

शुण्ठीतिरिण्योश्चर्णं भुलं सवृतशर्करम् । प्रबलं प्रदरं हन्ति नार्या वा कुटजाष्टकम् ॥१८॥

अव्यान्व योग—सोठ और लोध के चूर्ण के भृत और शर्करा के अनुपान से खिलावे अथवा कुटजाष्टक चूर्ण भृत शर्करा के अनुपान से खिलावे तो अर्थात् बढ़ा हुआ भी प्रदररोग नष्ट होता है । धातव्याश्र तथा पूरोकुमुमानां पिवेच्छतम् । नाशयेत्प्रदरं सद्यखिदिनायोषितो ध्रुवम् ॥

धाय के फूल तथा सुपारी के फूलों को समान भाग लेकर विष्पूर्वक क्षाय करके तीन दिन तक पान करने से प्रदररोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

आखोः पुरीषं पयसा निपीय वहेवलादेकमहद्वर्ध्यहं वा ।

खिय स्यवहं वा प्रदरं स्ववन्ध्यः प्रसद्या पारं परमाणुवन्ति ॥२०॥

मूस की विष्ठा को गी के दूध के साथ अस्त्रिल के अनुसार एक दिन, दो दिन अथवा तीन दिन एन करने से खो कठिन से कठिन प्रदररोग से मुक्त हो जाती है ॥ २० ॥

अशोकवलकलं पिष्टवा सताचर्यं तण्डुलाभसा । सचौद्रं तद्रसं पीत्वा प्रदराम्बुद्ध्यतेऽङ्गना ॥

अशोक की छाल और रसवत को समान भाग लेकर तण्डुलोदक से पीस कर उसमे मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से प्रदररोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

शुचिस्थाने व्याघ्रनव्या भूलमुत्तरदिव्यम् । नीतमुत्तरफालगुण्यां कटिवहं हरेदस्य ॥२२॥

व्याघ्रनखी मूल योग—पवित्र स्थान में उत्पन्न हुई व्याघ्रनखी के उत्तर दिश में गयी हुई मूल को उत्तराकाशमुनी नक्षत्र में उत्पन्न करू कमर में बांधने से प्रदररोग नष्ट होता है ॥ २२ ॥

पुष्यानुगं चूर्णम्—

पाठा रसाञ्जनं मुस्तं मज्जा जग्दवास्र्योस्तथा । अद्वष्टकी शिळोद्देवं समज्जा पश्चेसरम् ॥३॥

बिलवं मोचरसं लोध्रं केशं गैरिकं तथा । विश्वैषधं कटफलं च मरिचं रक्तचन्दनम् ॥२॥

कटवङ्गं धातकी द्वाढाडनता भूमुकमर्जुनम् । व्रतसकातिविषा चेति उल्लेणोद्धृत्य तुद्रिमान् ॥

तुर्यमागानि सर्वाणि सूक्ष्माणि च विचूर्णयेत् । तच्चूर्णं माहिकोपेतं धीतं तण्डुलवारिणा ॥

जयेदशांस्यतीसारं तथा रक्तप्रवाहिकाम् । बालानां कृमिरोगांश्च योनिदोषांश्च योविताम् ॥

रजोदोषांस्तथा सर्वान्प्रदरान्दुरतरानपि । पीतनीलाखणवेतान्स्वर्णेन विनाशयेत् ॥

चूर्णं पुष्यानुगं चूर्णम् ॥६॥

पुष्यानुगं चूर्ण—पाठा (पुरश्नपाढ़ी), रसवत, नागरमोथा, पके जामुन के फल के बीज की गुदी, आम के गुठली की मज्जा, अम्बवड़ी (पाठा अर्थात् पुरश्नपाढ़ी या लक्षणा मूल), पाषाण मेद (पथरचूर), मगीठ, कमलकेसर, कच्चे बेल के फल का सूखा गूदा, मोचरस, लोध, केसर, गेहू, सोठ, कायफल, मरिच, रक्तचन्दन, सोनापाठा की छाल, धाय के फूल, दाख, अनन्तमूल, मुलहठी, अजून की छाल, कुटज की छाल और अतीस की पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न कर सभी को

एकत्र कर उत्तमरीति से इलक्षण चूर्ण बनाकर योग्य मात्रा से मधु में मिलाकर चाटकर तण्डुलोदक का अनुपान करे तो इससे सम्पूर्ण अर्श, अतीसार तथा रक्तप्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं और बालकों के कूमिरोगों को और जियों के योनिरोगों को, रजोदोष को तथा सभी प्रकार के योर्यकर पीत, नील, रक्त, श्वेत आदि वर्णों के प्रदर को नष्ट करता है । इस चूर्ण का नाम पुष्यानुग है । इसे पहले पहल अन्नेय मुनि ने कहा था ॥ १-६ ॥

बीरकावलेहः—

जीरकं प्रस्थमेकं तु भीरं दृश्यादकमेव च । प्रस्थार्थं लोभ्रघृतयोः पचेन्मन्देन चहिना ॥१॥

लेहीभूतेऽथ शीते च सिताप्रस्थं विनिष्पेत् । चातुर्जातिकणाविश्वामजाजी मुस्तवालकद् ॥
द्वाढिमं रसजं धान्यं इज्जनी पटवासकद् । वंशजं च तवल्लीरी प्रथेकं शुकिसंभितम् ॥ ३ ॥
ज्ञीरकस्यवलेहोउद्यं प्रमेहप्रदरापहः । उवराबलयारुक्ष्यासतुरणादाहच्यापहः ॥ ४ ॥

ज्ञीरकावलेह—श्वेतजीरा एक प्रस्थ, गोदुग्ध दो आढ़क (८ प्रस्थ), लोध और धृत (दोनों समान मिलिं) आधा २ प्रस्थ लेकर विधिपूर्वक जीरा और लोध पीस कर सबको एकत्र कर अग्निपर चढ़ा कर मन्द २ लांच से अवलेह को विधि से पाक करे जब अवलेह सिद्ध हो जावे तक उतार कर उसमें १ प्रस्थ शुर्करा मिलावे और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, पीपल, सौंठ, जीरा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, अनारदाना वा अनार की तवचा, रसवत, खनिया, हल्दी, कटसरैया, बंशाळोचन और तवशीर का इक्षक्षण चूर्ण एक २ शुक्ति अर्थात् आधा २ पल लेकर डसमें अलीमांति मिलाकर रख देवे । यह ज्ञीरकावलेह है इसे सेवन करने से प्रमेह, प्रदर, उवर, दुर्बक्ता, अक्षन्ति, व्वास, तुष्णा, दाह और क्षय का नाश होता है ॥ १-४ ॥

निष्कमेन्द्रियचं चूर्णं सिताद्विगुणितं भवेत् । उषितेन जलेनवं पीतं प्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥

इन्द्र्यवादि योग—इन्द्रजी का चूर्ण एक निष्क लेकर उसमें दुग्धना शर्करा मिलाकर पर्युषित बल से पान करने से प्रदर का नाश होता है ॥ ५ ॥

मुदगार्णधृतम्

मुदगार्णधृतम्—मूंग और उड्डक का विधिपूर्वक बने काष (४ सेर) में रासना, चीते की जड़, नागरमोथा, पीपल और कच्चे बेल की गुही का समान मिलित विधिवत् बना कल्प (एक पाव) और मूच्छित गोधृत (एक सेर) मिलाकर धृतपाक को विधि से मन्दाग्नि पर धृत सिद्ध करके पान करे तो प्रदर रोग के नाश करने में यह योग उत्तम कहा है ॥ ३ ॥

शास्त्रमधृतम्

शास्त्रमलीपुष्पनिर्यासः पृश्नपर्णी तथैव च । काशमरी चन्दनं चैर्णं कलेक्न स्वरसेन वा ॥ १ ॥
गद्यं पचेद् धृतप्रस्थं तरिक्षुं तरहीं पिषेत् । सर्वप्रदरनाशाय चलवणीप्रिवर्धनम् ॥ २ ॥

शास्त्रमलीधृत—सेरम के फूलों का स्वरस, पृश्नपर्णी, गन्धार के फल और लालचन्दन के कल्प अथवा स्वरस के योग से धृत की पाक-विधि से एक प्रस्थ गौ का धृत सिद्ध करके (कल्प के चतुर्गुण गोधृत और धृत से चतुर्गुण स्वरस आदि जो धृत पाक की विधि है उस विधि से मन्दाग्नि पर एक प्रस्थ धृत सिद्ध करके) युवती (ली) को प्रदर के नाश होने के लिये और बल, बीं तथा अग्नि की वृद्धि के लिये पिलावे अर्थात् इस धृत से सब प्रधार के प्रदर का नाश होता है और इल-बीं तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

शीतकस्याणकं धृतं वृन्दात्

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमो रक्षालयः । मुदगार्णी पर्यस्या च काशमरी मधुयषिका ॥ १ ॥
बलातिवलयोर्मूलसुप्तलं तालमस्तकम् । विदारी शतपुष्पा च शालिपर्णी सज्जिविका ॥ २ ॥
त्रिफला ग्रापुसं बीं चं प्रथं ग्रं कदलीफलम् । पृश्नामध्यपलानभागान् गद्यतीरं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
पानीयं द्विगुणं दरचा धृतप्रस्थं विपाच्येत् । प्रदरे रक्षास्मे च रक्षिते हलीमके ॥ ४ ॥
अरोचके उवरेडजीर्णं पाण्डुरोगे मदे भ्रमे । तरहीं चवलपुष्पा वा या वा गर्भं न विन्दति ॥ ५ ॥
आहन्यहनि च श्वीणां भवति प्रतिवर्धनम् । शीतकस्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ ६ ॥

शीतकस्याणक धृत—कुमुदनी, पद्मकाठ, खस, गेहूँ, रक्तवर्ण का चावल, मुदगार्णी की जड़ और अतिवला की जड़, नीलकमल, ताल का मस्तक, विदारोक्तन, सौंफ, शालिपर्णी (सरिवन), जीवक, हरख, वहेवा, आंवला, लीरे का लीज और नया कच्चा केला को आधा २ पल पृथक् रे

लेकर कल्प करके चार सेर गौ का धूच और दो सेर जल को एक सेर गोधृत में मिलाकर धृत पाक विधि से मन्दाग्नि पर धृत सिद्ध कर सेवन कराने से प्रदर, रक्तगुल्म-, रक्षित, हली-मक, अरुचि, अजोण, उवर, पाङ्कुरोग, गद रोग, अमरोग आदि में लाम होता है और विस खीं का मासिक अवय द्वारा होता हो या जिसका गर्भ स्थिर नहीं होता हो इसे प्रतिदिन सेवन करने से खीं को यह प्रतिदायक होता है अर्थात् मासिक दोष शुद्ध करता है और गर्भावरण करता है । इस धृत का नाम शीतकस्याण धृत है, यह अत्यन्त रसायन कहा गया है ॥ १-६ ॥

रक्षिताधिकारोंके कूप्याण्डखण्डं च प्रदरे देयम् ।

रक्षिताधिकार में कहा हुआ कूप्याण्डखण्ड नाम का योग भी प्रदर में देना चाहिये । उससे भी प्रदर का नाश होता है ।

अथ रसाः

रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसजं समानं सर्वैः स्यात्त्वितमपि लोभ्र वृष्टरसैः ।
दिनं पिष्टं नामना प्रदरिपुरेषोऽपहरति ह्रिवलः छोद्रेण प्रदरमतिद्वःसाध्यमपि च ॥ १ ॥

प्रदरिपुरस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और सीसे का भस्म एक र भाग लेकर जितना हो उसके समान भाग रसवत लेवे और चारों के बराबर लोध का चूर्ण लेकर प्रथम पारद—गन्धक की कजली कर उसमें नागमस्तम, रसवत और लोध के चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर अरुसा के साथ एक दिन (चार पद्धर) मर्दन कर दो बल्ल (६ रत्ती) के प्रमाण की विधिपूर्वक बटी बनाकर मधु के अनुपान से सेवन करने से यह प्रदरिपु नाम का रस अत्यन्त भयक्तर प्रदर रोग को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

बोलपर्णी—सुतगन्धकमुकुडलिकायाः पर्णी समयुता समभागम् ।

बोलचूर्णविहितं प्रतिवाप्यं स्याद्वसोदयमस्यगामयहारी ॥ २ ॥

बोलपर्णी—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कजली करके कजली के समान भाग बोल (मुसब्बर) का चूर्ण मिलाकर पर्णी की विधि से पर्णी बनाकर सेवन करने से यह रस सभी प्रकार के रक्त सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वलयुग्मयुग्मुलं प्रतिदेयं शक्तरामधुयुतः किल दत्तः ।

रक्षितगुदजात्तुतियोनिस्त्राव भाषु विनिवारथतीशः ॥ २ ॥

इस रस को दो बल्ल (६ रत्ती) से लेकर शंकरा और मधु मिलाकर रोगी को देने से रक्षिति (अर्थ से मस्तों के द्वारा रक्षाव), योनिस्त्राव आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ।

रक्षित प्रदररोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ सोमरोगाधिकारः

तत्र सोमरोगस्य निदानपूर्विकां संप्राप्तिमाद—

स्त्रीणामतिप्रसज्जाद्वा शोकाब्वचिषि शमादपि । अतिसारक्योगाद्वा गरदोषात्तथैव च ॥ १ ॥

आपः सर्वशरीरस्थाः कुम्भयन्ति प्रस्ववन्ति च ।

तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थानान्मूलवसार्गं वज्रन्ति हि ॥ २ ॥

सोमरोग का निदान—खीं के साथ अधिक प्रसंग करने से, अधिक चिन्ता करने से, अधिक परिश्रम करने से, अतिसार उत्पन्न करनेवाले योगी अथवा सारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से तथा विषदोष से सम्पूर्ण शरीर में त्वित जल शुभित और प्रस्ववन्ति होते हैं । इसलिये वे जलीय अंश अपने २ नियत स्थानों से च्युत होकर मूत्र मार्ग की ओर जाते हैं ॥ १-२ ॥

तस्य रक्षणमाह—प्रसन्ना विमला: शीता निर्गन्धा नीखजः सिताः ।

स्ववन्ति चातिमानं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ३ ॥

वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं कचित् । शिरः शिथिलता तस्या सुखं तालु च शुभ्यति ॥
मूर्छा जड़भा प्रकापश्च त्वनुजा चातिमात्रतः । भचयेभौजैश्च पैयैश्च न तृष्णि लभते लदा ॥ ५ ॥

सोमरोग के लक्षण—सोमरोग में जो स्नाव होता है वह प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ अथवा बिना किसी दुष्टि के निर्मल, शीतल, गन्धरहित, पीड़ा सहित, श्वेत होता है और जब स्नाव अत्यन्त बढ़ जाता है तब इसमें जो दुर्बल हा जाती है और वेग को वह नहीं रोक सकती, उसे सुख नहीं होता है, जो के शिर में शिथिलता (स्तम्भ) हो जाती है। सुख और तालु सुखने लगते हैं, मूर्छा, जंमाई तथा प्रलाप होता है, त्वचा अत्यन्त रुक्ष हो जाती है, अक्षय, ओड़य तथा पैय पदार्थों से लृप्ति नहीं होती है ॥ ४-५ ॥

संचारणाच्चरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिताः । ततः सोमच्च धारस्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥

शरीर के संचारण करने के कारण इन जलों की सोम संज्ञा है। इस सोम के क्षय होने से ही खियों के इस रोग को सोमरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मात्सोमच्यादूदेहो निश्चेष्टस्थ भवेत्सदा । स एव सखजः सोमो मूत्रेण स्वते सुहुः ॥ ७ ॥

इसी कारण सोम के क्षय हो जाने से शरीर निश्चेष्ट बना रहता है। वही सोम पीड़ायुक्त होकर वार-बार मूत्र के साथ स्वचित् होता है ॥ ७ ॥

सोमलक्षणसंस्कृतः कालातिकान्तयोगतः । सोमक्रान्तिकमेजैव स्वेन्मूत्रमसीधगशः ॥

मूत्रातिसार इयेव तमाहुर्वलनाशनम् ॥ ८ ॥

सोम के लक्षणों से युक्त तथा काल के अतिक्रमण होने से (पुराना हो जाने से) उस सोम धातु के निकलने के कम से ही बार २ मूत्र का स्नाव होता रहता है। इसी को मूत्रातिसार कहते हैं। इससे बल का नाश होता है ॥ ८ ॥

अथ सोमरोगस्य चिकित्सा

कदलीनां फलं पक्षं धारीकलरसं मधु । शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

सोमरोग चिकित्सा—केला, आवृक्ति का स्वरस, मधु तथा शर्करा मिलाकर खावे तो सोम के धारण करने के लिये यह उत्तम योग है अर्थात् इस योग से सोम वा जलीय धातु का बहना अथवा सोमरोग कम होता है ॥ १ ॥

माषचूर्णं समधुक्तं विदारीमधुशकरम् । पथसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम् ॥ २ ॥

चट्ठक का चूर्ण, मुलदृष्टी का चूर्ण, विदारीकल का चूर्ण, मधु और शर्करा को समान लेकर प्रातः दूध के अनुपान से पान करने से सोम का उत्तम धारण होता है अर्थात् सोम रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

जलेनाऽमलकीबीजकलकं समधुशकरम् । यिवेद्विनव्रयेत्वं श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥

श्वेत प्रदर चिकित्सा—भाँवले के बीज को जल के साथ पीसकर विधिपूर्वक करके बनाकर उसमें मधु और शर्करा मिलाकर तीन दिन तक पीने से श्वेत प्रदर नष्ट होता है ॥ ३ ॥

तक्कौद्वनाहाररता स्थित्येत्प्राप्नोकेशरम् । यद्यहं तक्कण लंपिष्टं श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ४ ॥

मट्टा और भात का आहार करती हुई, तक के साथ नागकेसर को पीसकर ३ दिन तक जो जो पीती है उसका श्वेत प्रदर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

चूर्णं तु पद्मासस्य तिलतैलेन लेहयेत् । सप्तशत्रेण योषाणां श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥

कटसरेया का चूर्ण तिल के तेल में मिलाकर सात दिन तक बाटने से खियों का श्वेतप्रदर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अत्रैव मूत्रातिसारस्थ चिकित्सामाह—

स एव सहजः सोमः स्वेन्मूत्रेण चेन्मुहुः । तत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तर्हणीं सुराम् ॥ १ ॥

मूत्रातिसार चिकित्सा—वही पीड़ा करता हुआ सोम यदि मूत्र के साथ वार-बार आवे तो इत्याचारी के दाने और तेजप्राप्त के चूर्ण का प्रशेष देकर खीं को दुरा पिलाना चाहिये, इससे मूत्रातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

तालकन्दं च लच्छं च मधुकं च विदारिकाश । सितामुत्तुरात्मादेन्मूत्रातीसारनाशनम् ॥ २ ॥

तालवृक्ष का कन्द, खजूर, मुलदृष्टी और विदारीकल को समान मात्र लेकर चूर्ण कर शक्तीरा और मधु के साथ खाने से मूत्रातिसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

चक्रमं कमुलं तु संपिष्टं तण्डुलाम्बुना । प्रभातसमये पीर्तं जलप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥

चक्रवड के मूल को तण्डुलोदक के साथ पीस कर प्रातःकाल पान करने से जल प्रदर (मूत्रातिसार) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

कदलीवृत्तम्—

कदलीकन्दनिर्धासिद्वागे शतपलान्वितम् । कदलीकुसुमं पक्षं धार्थं पादावशेशितम् ॥ १ ॥

घृतप्रस्थं पयस्तुर्यं पिष्पद्योलालवङ्कदम् । कपिधर्थस्य फलं मांसी कदलीकन्दन्वन्दनम् ॥ २ ॥

नयग्रोधादिगणैः सार्धं सर्वान्वारिसपुद्वद्वान् । सर्वं समं कर्षमात्रं करकीकृत्वा पचेष्वन्नेः ॥ ३ ॥

घृतं काथं च कलकं च पक्वता चैवावतारयेत् । प्रातःकाले पिवेन्विष्टं सेवयेकर्षमात्रकम् ॥ ४ ॥

सोमरोगं हरेद्वाहं मूत्रकुच्छामरीं तथा । प्रमेहान्विशतिं हन्यात्प्रमेहगजकेसरी ॥ ५ ॥

मूत्रातिसारमध्यन्यं द्वार्धिं विध्वंसयेद् ध्रुवम् । कदलीकन्दनामेदं घृतं सर्वजापहम् ॥ ६ ॥

कदली घृत—केले की जड़ का स्वरस १ द्रोण (चार आडक) लेकर इसमें केले का पूल सौ पल मिलाकर विधिपूर्वक काथ करे चीथाई शेष रखने पर उतार छान लेवे और गोवृत एक प्रस्थ, गोदुख एक प्रस्थ, पीपल, इलायची के दाने, लवंग, कैथ का फल, जटामासी, केले का कन्द, लालबदन, न्ययोधादि गण की ओषधियाँ और सभी प्रकार के कमल को एक २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक कलक कर उपरोक्त सभी द्रव्य घृत, काथ तथा करकादि को शनैः २ मन्दाविन पर घृत पाक की विधि से पाक कर उतार लेवे। इस घृत को नित्य प्रातःकाल एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से सेवन करना चाहिये। इससे सोमरोग नष्ट होता है, मूत्रकुच्छ, अद्यमरो तथा नीसों प्रकार के प्रमेह दूरी नष्ट होते हैं। यह औषध प्रमेहदूरी हाथी के लिये सिंह के समान है अर्थात् इससे प्रमेह अवश्य नष्ट होते हैं तथा मूत्रातिसार आदि अन्य रोगों को भी अवश्य नष्ट करता है यह कदलीकन्दनामक घृत सब प्रकार की पीड़ा (रोग) को नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

रसः—

कूमारधपवस्त्ररसः पक्वं पादवनिःकम् । द्विनिःकं गन्धकं कृत्वा उवलने कउजलीकृतः ॥

असौ समरिचः सोमरोगातिसुतिनाशनः ॥ १ ॥

शुद्ध पारद को एक निःक (चार माशा) लेकर श्वेतकुम्भाण्ड के पत्तों के स्वरस में पक्वावे, जब स्वरस जल जावे तब उसमें २ निःक शुद्ध गन्धक मिलाकर अचिन पर ही कजली करके इसमें मरिच का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से सोमरोग तथा मूत्रातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

इति सोमरोगमूत्रातिसारप्रकारणं समाप्तम्

अथ योनिरोगाधिकारः

तत्र योनिव्यापद्रोगाणां निदानान्याह—
विश्वस्तिर्थ्यापदो योनेनिदिष्टा रोगसंग्रहे । मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रशुष्टेनाऽस्तर्तवेन च ॥

आयन्ते खोजदोषाच्च दैवाङ्गा श्रणु ताः पृथक् ॥ ३ ॥

योनिव्यापद निदान—रोग संग्रह में २० प्रकार के योनि (व्यापद) रोग कहे गये हैं। वे रोग जिन्हों को मिथ्या आहार-विहार के कारण, आतंक के दूषित होने के कारण, दीज दोष के कारण अथवा दैव दोष से (पूर्व जन्म के फलस्वरूप) उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

रोगिणीनां योनीनां नामान्याह—

दृष्टावर्ती तथा बन्ध्या विष्टुता च परिष्टुता । वातला योनिलक्ष्येया वातदोषेण पञ्चधा ॥
योनिरोगों का नाम—उदावर्ती, बन्ध्या, विष्टुता, परिष्टुता और वातला ये पांच प्रकार के

योनिरोग वात के दूषित होने से होते हैं ॥ ४ ॥

पञ्चधा विस्त्रियोग तद्राऽदौ लोहितव्यात् । प्रस्त्रसिनी वामिनी च पुत्रबन्नी वित्तला तथा ॥५॥

अत्यानन्दा कर्णिनी च चरणानन्दपूर्विका । अतिपूर्वांपि सा शेषा श्लेष्मला च कफादिमाः ॥

अत्यानन्दा, कर्णिनी, आनन्दचरणा, अचरणा और श्लेष्मला ये पांच प्रकार के योनिरोग

कफ के दोष से होते हैं। आनन्दचरणा की ही अतिचरणा भी संक्षा है ॥ ५ ॥

षष्ठ्यनिष्ठिनी च महती सूचीवक्त्रा त्रिदोषिणी । पञ्चैता योनयः ग्रोक्ताः सर्वदोषप्रकोपतः ॥

षष्ठी, अण्डनी, महती, सूचीवक्त्रा और त्रिदोषिणी ये पांच प्रकार के योनिरोग त्रिदोष के कोप से होते हैं ॥ ६ ॥

तासांलक्षणमाह—

या फेनिलमुखावर्ती रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति । सा तु योनिः कफेनैवमार्तवं च विमुञ्चति ॥ ६ ॥

वातला के लक्षण—योनि में केन्द्रुक रज कठिनता पूर्वक निकले उसे उदावर्ती कहते हैं ॥ ६ ॥

बन्ध्या नष्टावर्ती ज्येष्ठा विष्टुता नित्यवेदना । परिष्टुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुभृश्वाम् ॥

विस योनि से आतंक (रज) नहीं जाता हो उसे नष्टावर्ती (बन्ध्या) और विस योनि में नित्य पीड़ा होती हो उसे विष्टुता तथा विस योनि में मैथुन के समय अत्यन्त पीड़ा होती है उसे परिष्टुता कहते हैं ॥ ७ ॥

वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिष्ठोदपीडिता । चतुर्सूष्पिच्छासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥

जो योनि कर्कश (रक्ष), स्तब्ध (कठिन) और शूल एवं तोद (सुरै तुश्नाने के समान पीड़ा)

से युक्त होती है उसे वातला कहते हैं। इनमें (उदावर्ती, बन्ध्या, विष्टुता और परिष्टुता में)

वात की पीड़ा होती है, ये वातल योनिरोग हैं ॥ ८ ॥

सदाहृ छ्वायते रक्ष यथायां सा लोहितव्यात् । प्रस्त्रसिनी स्त्रियों च लोभिता दुष्प्रजायिनी ॥९॥

वित्तला के लक्षण—विस योनि से दाहुक रज का क्षय होता रहे उसे लोहितव्यात् और जो योनि भुथित होने में (मैथुन के धर्षण से) अपने स्थान से बाहर निकल जाती है और कष्टपूर्वक विससे प्रसव होता है उसे प्रस्त्रसिनी कहते हैं ॥ ९ ॥

सदाहृद्रिरेढीजं वामिनी रजसा युतम् । रिथं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रबन्नी रक्तसंब्लात् ॥

जो अपानवायु के विशुण होने से वीर्य सहित आतंक को बाहर निकाल देती है उसे वामिनी

योनिरोगाधिकारः

४०५

और जो योनि वायु हारा आतंक के क्षीण हो जाने पर वार-वार स्थित दुर्गम्ब को नष्ट कर देती है उसे पुत्रबन्नी कहते हैं ॥ १० ॥

अथ॑ पित्तला योनिर्दाहपाकउवशन्विता । चतुर्सूष्पिच्छासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥

जिस योनि में अर्थन्त दाह, पाक और उवर रहता है (तथा नील, पीत और कृष्ण वर्ण का आतंक निकलता है और अधिक उष्णता रहती है) उसे पित्तला कहते हैं। इन चारों योनियों में अर्थात् लोहितव्यात्, प्रस्त्रसिनी, वामिनी तथा पुत्रबन्नी में पित्तलोष के लक्षण प्रवल होते हैं ॥ ११ ॥

अत्यानन्दा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति । कर्णिन्यां कर्णिका योनी श्लेष्मासुर्भ्यों प्रजायते ॥

कफजा के लक्षण—जिस योनि में मैथुन करने से संतोष नहीं होता उसे अत्यानन्दा और जिस योनि में कफ और रक्त के दोष से कर्णिका अर्थात् मासकान्द के आकार की ग्रन्थि हो जाती है (जो जीव पूर्ण युवावस्था से पूर्व ही गर्भ चारण कर लेती है, उसके गर्भ से रक्त हुआ वायु, कफ तथा रक्त से मिलकर योनि में एक प्रकार की ग्रन्थि उत्पन्न कर देती है, जिससे रक्त (आतंक) का मार्ग रक्त जाता है) उसे कर्णिका योनि कहते हैं ॥ १२ ॥

अंशुनेऽचरणापूर्व पुरुषादतिरिच्यते । बहुशास्त्रातिचरणा तथोर्धीजं च विन्दति ॥ १३ ॥

जो योनि मैथुन के समय पुरुष से पूर्व ही स्खलित हो जाती है उसे अचरणा कहते हैं (यह रोग अश्वावस्था में मैथुन करने से जिसी को हो जाता है, इस कारण वह जीव वीर्य ग्रहण नहीं करती है और इस रोग में पीठ, जब्बा, डह तथा वंक्षण में पीड़ा होती है) और जो योनि बहुत मैथुन करने पर स्खलित होती है, उसे अतिचरणा कहते हैं। ये दोनों (अचरणा और अतिचरणा) वीर्य नहीं ग्रहण करती हैं। (यह रोग बहुत मैथुन करने के दोष से उत्पन्न होता है) ॥ १३ ॥

श्लेष्मला विच्छिन्ना योनिः कण्ठप्रस्ताइतिशीतला ।

चतुर्सूष्पिच्छासु श्लेष्मलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १४ ॥

जिस योनि में पित्तिलता, कण्ठ और अत्यन्त शोतलता हो उसे श्लेष्मला कहते हैं। इन चारों योनियों में अर्थात् अत्यानन्दा, कर्णिनी, चरणा वा अचरणा और अतिचरणा में कफजा लक्षण प्रवल होते हैं ॥ १४ ॥

अनार्तवाऽस्तनी षष्ठी खरस्यशो च मैथुने । अतिकायगृहीतायास्तरुण्या अण्डिनी भवेत् ॥

विदोषजा के लक्षण—जिस योनि में आतंक न हो, जिस जीव को स्तन नहीं हो और उसके साथ मैथुन करने से अत्यन्त कर्मश प्रतीत हो उसे षष्ठी कहते हैं। जो जीव बड़े शिशन वाले पुरुष के साथ मैथुन करे और उसकी योनि अण्डे के समान बाहर लटक जावे उसे अण्डिनी कहते हैं ॥ १५ ॥

विवृता तु महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता । सर्वलिङ्गसमुच्चाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १६ ॥

जिस योनि का मुख अत्यन्त फैला हुआ हो उसे विवृता कहते हैं। इसे ही पूर्व में महती कहा गया है। जिस योनि का मुख अत्यन्त संवृत (संकुचित) हो उसे सूचीवक्त्रा कहते हैं ॥ १६ ॥

चतुर्सूष्पिच्छासु सर्वलिङ्गनिदर्शनम् । पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १७ ॥

षष्ठी, अण्डनी, विवृता और सूचीवक्त्रा में सभी दोषों का प्रकोप होता है। ये सर्वदोषज पांचों योनियों (म्यापस्तियां) असाध्य होती हैं ॥ १७ ॥

योनिकादस्य निदानमाह—

दिवा स्तब्धादतिकोषाद्यासाऽतिमैथुनात् । उत्ताच्च न लब्धन्ताद्यैर्वातायाः कुपिता मलाः ॥

पूर्यशोणितरां लं लकुप्तादृतिसञ्चिभम् । जनयन्ति यदा योनी नामा कन्दं तु योनिजम् ॥

योनिकाद रोय का निदान—दिन में अधिक सौने से, अत्यन्त कोष करने से, अधिक व्यायाम करने से, अत्यन्त मैथुन करने से, नख दन्त तथा अन्य छेदक पदार्थों से क्षत हो जाने से, वातादि

दोष कुपित होकर पृथ तथा रक्त के सदृश उड्हल फल के समान आकार की अन्धे योनि में उत्पन्न कर देते हैं उसे योनिकन्द रोग कहते हैं ॥ १-२ ॥

रुक्ष विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिदिशेत् । दाहारागउवयुतं विद्याभित्तात्मकं तु तम् ॥३॥

जो योनिकन्द रुक्ष विवर्णं तथा स्फुटित हो उसे वातिक जानना चाहिये और जिस योनिकन्द में दाह हो, राग (किञ्चित् रक्तवर्णं) हो और उबर हो उसे पैतिक जानना चाहिये ॥ ३ ॥

नीलपुष्पप्रतीकां कण्ठमूर्तं कफात्मकम् । सर्वलिङ्गसमायुक्तं सञ्चिपात्मकं वदेत् ॥ ४ ॥

जिस योनिकन्द रोग में योनिकन्द का वर्ण नीले पुष्प (अलसी आदि के पुष्प) के समान हो तथा कण्ठ हो उसे कफज जानना चाहिये और जिस योनिकन्द में सब दोनों के लक्षण हों उसे निदोषज जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ योनिड्यापद्रोगाणां चिकित्सा

वन्ध्याचिकित्सा—

आतंवादर्शने नारी मरस्यान्सेवेत नित्यशः । काञ्जिकं च तिळान्माषानुदृष्टिच तथा दधि ॥

वन्ध्या चिकित्सा—जिस खो को ऋतु नहीं होता हो उसे नित्य मछली खाना चाहिये और काँची सेवन करना चाहिये, तिल, उड्ह, मट्ठा तथा दही पीना चाहिये ॥ २ ॥

पीतं उयोतिष्मतीपव्राजिकोग्रासनं त्यहम् । शीतेन पथसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम् ॥२॥

उयोतिष्मती (मालकांगानी) के पत्ते, राई, भजवाइन, असन या विजेतार को समान भाग लेकर शीतल छल के साथ पीसकर तीन दिन तक पान करने से अवश्य आर्तव आना आरम्भ हो जाता है ॥ २ ॥

सुगुडः रथामतिलानां काथः प्रातः सुखीलितो नार्या ।

जनयति कुसुमं सहसा गतमपि सुचिरं निरातङ्कम् ॥ ३ ॥

कृष्ण तिलों का विधिपूर्वक काय बनाकर उसमें गुड़ का प्रक्षेप देकर (शोतल होने पर) प्रातः काल सेवन करने से बहुत दिनों का रुक्ष हुआ यी आतंव उसका विना कष्ट के आरम्भ हो जाता है ॥ ३ ॥

तिलशेलुकारवीर्णं काथं पीरवा च गतरजा महिला ।

सुगुडं शिक्षिरं त्रिदिनाज्जनयति कुसुमं न सन्देहः ॥ ४ ॥

कृष्ण तिल, लसोदा और कालाभीरा (काँचीजी) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ बना कर उसमें गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से तीन दिन में रज आना निःसन्देह आरम्भ हो जाता है ॥

हृत्वाकुबीजदन्तीं चपलागुडमदनकिणव्यवशूकैः ।

सस्तुकक्षीरैर्वर्तिर्यानिगता कुसुमसंजननी ॥ ५ ॥

माहरि का दीब, दन्तीमूल, पीपल, गुड़, मैनफल, सुराखोज, यवाखार और सेहुड़ के दूध को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर बत्ती बनाकर योनि में धारण करने से रज आना आरम्भ हो जाता है ॥ ५ ॥

वन्ध्याया गर्भप्रदभेदजमाह—

बला सिता सातिवला मधूकं वटस्य शङ्खं गजकेशरं च ।

एतन्मुखीरघृतैर्निषीय वन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥ ६ ॥

गर्भप्रद भेदज—इवेतवला (वरियारा), अतिवला, मटुआ, वटका अंकुर (करोड़) और नामकेसर को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर वा चौरांकर छूत और मधु में मिलाकर गोदुग्ध के अनुपान करने से वन्ध्या को गर्भधारण होकर उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

अश्वगन्धाकषायेण सिद्धं दुर्धं घृतान्वितम् । ऋतुस्नाताङ्कना प्रातः पीत्वा गर्भ दधाति हि ॥

असगन्ध के कषाय से क्षीरपाक विधि से गोदुग्ध सिद्ध कर उसमें गोधृत भी मिलाकर ऋतु स्नान के पश्चात प्रातः काल खी यदि पीवे तो उसे गर्भधारण होता है ॥ ७ ॥

पुष्पयोद्धृतं लघमणाया मूलं दुधयेन कथ्यया । पिण्ठं पीत्वा ऋतुस्नाता गर्भ धत्ते न संशयः ॥

पुष्प नक्षत्र में डखाड़े दुर लक्षणा के मूल को कुमारी कन्या से गोदुग्ध में पिसवा कर ऋतु से स्नान की दुई खी यदि पीवे तो उसे अवश्य गर्भधारण होता है ॥ ८ ॥

कुरण्टमूलं धातकथा: कुसुमानि वटाङ्कशः । नीलोपलं पयोयुक्तमेतद्भूर्भूर्द्धुवम् ॥ ९ ॥

पिण्ठावासा या कटसरैया की जड़, धाय का पुष्प, बट वृक्ष के अंकुर, नील कमल को समान भाग लेकर गोदुग्ध में पीसकर पान करने से गर्भधारण होता है ॥ ९ ॥

याऽवला पिवति पार्श्वपिष्पलं जीरकेण सहितं हिताशना ।

श्वेतता विशिखपुद्धया युतं सा सुतं जनयतीह नान्यथा ॥ १० ॥

जो खी पारस पीपल की बीरा के चूने के उद्धित श्वेत सरपुखा को मिलाकर पीती है और दित्कर पदार्थ योजन करती है उसे अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

पत्रमेकं पलाशस्य पिण्ठा दुधयेन गमिणी । पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः ॥११॥

जो गमिणी खी पलाश के एक पत्ते की गोदुग्ध में पीसकर नित्य पान करती है उसे पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होता है इसमें संशय नहीं है । अर्थात् गर्भस्थिर होने पर यह योग प्रयोग में लाने से अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

शूकरशिखीमूलं मध्यं चा दधिकलस्य सप्तयस्कम् ।

पीत्वा ऽथयोधयिङ्गीबीजं कन्यां न सूते खी ॥ १२ ॥

सुभ्रासेम वा केवांच की बड़ी और कैंय का गुड़ा दूध के साथ पीसकर पीवे अथवा ईश्वर-लिंगी के बीज को दूध के साथ पीसकर पीवे तो खी कन्या नहीं उत्पन्न करती अर्थात् गर्भधारण के पश्चात् इस योग के सेवन से पुत्र अवश्य उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥

खीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे पिवेत् । पुत्रार्थं दक्षिणा नासा वामया कन्यकार्थिनी ॥ १३ ॥

पिवेत् पुष्प की बड़ी कटोरा की जड़ को गोदुग्ध के साथ पीसकर पुत्र की इच्छा से दक्षिणा नासा से पान करना चाहिये और कन्या की इच्छा से वाम नासा से पान करना चाहिये इससे सन्तान अवश्य होती है ॥ १३ ॥

लक्ष्मणा च्वीरसंयुक्ता नस्ये पाने प्रदाप्यताम् । तेन साऽपि लभेद्भूर्भुवो विद्याधरो भवेत् ॥

लक्ष्मण को गोदुग्ध में पीसकर नस्य लेने से और पान करने से वन्ध्या को भी गर्भ होता है और विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

वामनाङ्ग्या भवेत्कन्या पुत्रो दक्षिणया भवेत् । ईक्षेऽधिके भवेत्कन्या ॥

पुत्र और पुत्री का कारण—गर्भ यदि गर्भधारण के वाम नाढी में स्थित होता है तो कन्या होती है और दक्षिणा नाढी में स्थित होता है तो पुत्र उत्पन्न होता है, तथा खी का रज यदि अधिक हो तो कन्या और वीर्य अधिक हो तो पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥

शुक्रशोः तिमिश्रेण अवेद्योऽस्मै नमुंसकः । एरण्डस्य तु वीजनि मातुलुङ्गस्य चैव हि ॥

सर्पिणी परिपिण्डिनि पिवेद्भूर्भदनि च ॥ १६ ॥

वीर्य और रज के समान मिश्रण से जो संतान होती है वह नपुंसक होती है । एरण्ड के बीज और विजीरे लोधू के बीज को समान लेकर गोधृत के साथ पीसकर पान करने से गर्भधारण होता है ॥ १६ ॥

लक्ष्मणारं लक्ष्मणायाश्च मूलं कण्ठे बद्धं सर्विषा नस्ययोगात् ।

पीत्वा सुते पुश्पमरयन्तवीर्यं पश्चादन्यानप्यमन्दाङ्गयाणि ॥ १२ ॥

लक्ष्मा के आकार की लक्ष्मणा के मूल को लेकर कण्ठ में बाखने से तथा गाय के बीं के साथ उसके चूंच को मिलाकर नासाद्वारा पान करने से खों को अत्यन्त पराक्रमो पुत्र उत्पन्न होता है तथा उसका शरोर भी क्षीण नहीं होता, पश्चात भी अन्यान्य अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

तिलतैलदुधफाणितदधिष्ठितमेकत्र पाणिना मथितम् ।

पीतं सपिष्पलीं जनयति पुत्रं परं महिळा ॥ १३ ॥

तिल का तेल, गोदुध, फाणित, दही और बीं इन सबको एकत्र कर हाथ से मथ कर इसमें पीपल का चूंच मिलाकर पान करने से खों उत्पन्न पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥

एकस्य मातुलुकस्य बीजानिसक्तान्यपि । ऋत्वन्ते दुधपिण्डानि पीत्वाऽप्नोत्यवला सुतम् ॥

एक विज्ञोरा नीदू के बींओं को लेकर गोदुध के साथ पीसकर ऋतु के अन्त में (चतुर्थ दिवस) पान करने से खों को पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

फलघृतम्—

अद्विष्टा मधुकं कुष्ठं खिफला शर्करा बछा । मेदे परस्या काकोली मूलं चैवारथगन्धजम् ॥ १ ॥
अज्जमोदा हरिद्रे ह्वे प्रियङ्कः कटुरोहिणी । उत्पलं कुमुदं लाला काकोलयो चन्दननद्वयम् ॥ २ ॥
पूतेषां कर्विंकर्माग्निर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् । शतावरीरस चीरं घृताददेयं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
सर्विरेत्वात् पीत्वा स्नापु नित्यं त्रुपायते । पुत्राञ्जन्यते वीराम्येषांडव्यानिग्रहदशनम् ॥ ४ ॥
या चैवास्थिरगर्भा स्थापुत्रं वा जनयेन्मृतम् । अवपायुषं वा जनयेत्या च कन्यां प्रसूतये ॥
योनिरागे रजो देषे परिक्षावे च शस्यते । प्रजावर्धनमायुषं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ५ ॥
नामना फलघृतं हेतुदधिष्ठयां परिकीर्तिम् । अनुकूं लक्ष्मणामूलं खिपन्त्यत्र चिकित्सकः ॥
जीवद्वृत्संकरणीया धृतं तत्र प्रयुज्यते । आरण्यगोमयेनेह वह्निज्वाला च दीयते ॥ ६ ॥

फलघृत—मजीठ, मुलाठी, कूठ, दूरड, धेहा, अवला, शर्करा (चीनी), वरियारा, मेदा, महामेदा, क्षीरकाकाला, काकोली, असंगंध की जड़, अब्मोदा अथवा जवाइन, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियंगु (मालांगनी), कुटकी, नीलकमल, कुमुदनी, लाल (लाही), काकोली, क्षीरकाकोली, लालचन्नन और इवेत चन्नन को ५क २ कर्वे लेकर विषिपूर्वक कलक कर एक प्रस्त्र गोवृत के साथ मिलाकर पान करे और इसमें शतावरों का रस ४ प्रस्त्र, तथा गोदुध ४ प्रस्त्र को भा मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दायि पर घृत तिद्र कर लेवे; इस घृत को पान करके मनुष्य खियों को नित्य प्रसन्न कर सकता है । तथा इससे वीर-मेषांता तथा देखने में सुन्दर पुत्र उत्पन्न होते हैं । इससे जो खों अस्तिर गर्भी हो अथवा जिसे गर्भ स्थिरं नहीं रहता हो अथवा जिसे मेरे द्वय पुत्र उत्पन्न होते हों (मृतवत्सा हो) अथवा अवायु पुत्र होते हों अथवा जिसे केवल कन्या हो उत्पन्न होती हों उनके लिये तथा योनिराग मैं, रजोदोष मैं, परिक्षाव (प्रदर्शाद) मैं वह घृत उत्तम कहा गया है । इससे सन्तान की वृद्धि होती है, आयु बढ़ती है और सब प्रकार के ग्रहों का निवारण होता है । इस घृत का नाम फल-घृत है, इसे अश्विनों कुमारों ने निर्मित किया है । इसमें लक्ष्मणा मूल मिलाना उत्तम है । इस औषध में एक वर्ण की तथा जांचित वस्ता (जिसका बछड़ा जीता हो) ऐसी यीं का घृत प्रयोग में छाना चाहिये तथा वन के गोमय (कण्ठा) के आच पर घृत लिद करना चाहिये ॥ १-८ ॥

गर्भिवारणम्—

पिष्पकिंडकट्टकगसम्बूँ या पिवेष्यसा । ऋतुसमये न हि उस्या गर्भः संजायते क्वापि ॥

पीपल, वायविडंग और शुद्ध सोहागा को समान मांग लेकर चूंच कर ऋतु के समय दूध के साथ पान करे तो उसे कभी गर्भ नहीं स्थिर होता है ॥ १ ॥

आरनालपशिषेवितं इयहं या जपाकुसुममति पुष्पिणी ।

सपुरुणगुद्वृष्टिसेविनी सा दधाति नहि गर्भमङ्गना ॥ २ ॥

कांजी के साथ ओडबल के कूल को पीस कर जो स्त्री ऋतु के समय तीन दिन खाती है तथा पुराने गुड को एक पक्का प्रतिदिन खाती है वह गर्भ नहीं धारण करती है ॥ २ ॥

तेलाविलं सैन्धवखण्डमादौ निधाय रण्डा निजयोनिमध्ये ।

नरेण सार्धं रतिमातनोति या न सा हि गर्भं लभते कदाचित् ॥ ३ ॥

जो खों मैथुन के पूर्व सेवानमक के खण्ड को तेल में मिलो कर अपनी योनि में रख लेती है और पश्चात पुरुष के साथ मैथुन करती है उसे कभी गर्भ नहीं स्थिर होता है ॥ ३ ॥
तण्डुलीयकमूलानि पिष्टा तण्डुलवारिणा । ऋत्वन्ते तु इयहं पीत्वा बन्ध्यः कुर्वन्ति योचितः॥

चौराई शाक की मूल को चाबल के जल के साथ पीस कर ऋतु के अन्त में जो यीं तीन दिन पान कर लेती है उसका गर्भ स्थिर नहीं होता है ॥ ४ ॥

धूपिते योनिरन्त्रे तु निष्वकाष्टैश्च युक्तिः । ऋत्वन्ते रमते या यीं न सा गर्भमवाप्न्यात् ॥

जो खों ऋतु के अन्त में नोम की लकड़ी से योनि के छिद्र में शुकिपूर्वक धूप देकर मैथुन करती है उसे गर्भ स्थिर नहीं होता है ॥ ५ ॥

तालीसगैरिके पीते बिढालपदमाथके । शीताश्वना चतुर्थेऽद्विं बन्ध्या नारी प्रजायते ॥ ६ ॥

जो खों तालीसपत्र और गेह को समान मांग लेकर एक कर्व की मात्रा में ऋतु के लौथे दिन शीतल जल के साथ पान करती है वह बन्ध्या हो जाती है ॥ ६ ॥

ग्राह्यं कृष्णचतुर्दश्यां चत्तरस्य च मूलकम् । कटौ बद्धवा रमेत्कान्तं न गर्भः संभवेऽक्षित् ॥
मुखे न लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम् । तन्मूलचूर्णं योनिध्यं न गर्भः संभवेऽक्षित् ॥ ७ ॥

धूतेरो को जड़ की कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को लेकर कमर में बांधकर जो खों पति के साथ मैथुन करती है वहे गर्भ नहीं धारण होता है और जब उसे खोल देती तो गर्भ स्थिर हो जावेगा ऐसा नागार्जुन से कहा है । यदि धूतेरो की जड़ के चूंच को योनि में रख लेवे तो कभी गर्भ स्थिर नहीं होगा ॥ ७-८ ॥

गर्भपातनविधिः—

गृञ्जनवीजं टङ्कितयं तावच्च दाढिमीमूलसूम् । तुवरीटङ्कितयं सिन्दूरं टङ्कितयं च ॥ १ ॥

संमर्द्य खलवमध्ये तोयेनैतत्तिपीय गर्भवती । रण्डा योषिद्वृभं वेश्या वा पातयस्याषु ॥ २ ॥

गर्भपातन विधि—गाजर के बीज तीन टङ्क, ६ नार की जड़ ३ टङ्क, तुवरी (राई या अरहर की दाल) २ टङ्क और सिन्दूर २ टङ्क (८ मात्रा) लेकर विषिपूर्वक पीसकर जल के साथ गर्भवती खों पान करे तो गर्भ गिर जाता है । विषया खों अथवा वेश्या खों इस योग से शीघ्र गर्भ गिरा सकती है ॥ १-२ ॥

विरुण्धीद्रवसंपिण्ठं चित्रमूलं मधुप्लुतम् । कर्वं पीत्वा स्ववस्याशु गर्भं रण्डा कुलोद्धवम् ॥ ३ ॥

चौते की जड़ को समालू के स्वरस के साथ पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर कर्व कर्व के प्रमाण की मात्रा से पान करने से गर्भ शीघ्र गिर जाता है ॥ ३ ॥

काण्डमेशण्डपत्रस्य योनावष्टाङ्गुलं लिषेत् । चतुर्मालोद्धवो गर्भः स्ववस्येव हि तन्दणात् ॥ ४ ॥

परण्ड के पत्तों की ढंडी की आठ अङ्गुल तक योनि में प्रवेश कराने से चार मास का गर्भ हो तो वह उसी क्षण स्वित हो जाता है ॥ ४ ॥

देवालये तु यच्चूणे क्षेँकं तोयपेषितम् । पिबेद्र्भवती जारी गर्भः स्वति तत्त्वगत् ॥ ५ ॥
देव मन्दिर के चूने को पक कर्त्त लेकर जल के साथ पीस कर गर्भवतो खो यदि पीवे तो उसी क्षण गर्भ स्वाव हो जाता है ॥ ५ ॥

आलोच्य काजिकैर्घोटीयुरीषं वस्त्रगालितम् । ससिन्धुग्रासुरीतैलविषमागतगर्भनुत् ॥ ६ ॥
बोडी के पुरोष (लोद) को कांजी में धोलकर कपड़े में छानकर उसमें सेंधानमक, जवाइन, राई तेल और शुद्ध विष को मिलाकर पिलाने से स्थिर गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

आवशिष्टयोनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा—

तासु योनिषु चाऽऽस्यासु स्नेहादकम् दृष्ट्यते । वस्त्रयस्य क्षपर्हणेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥ ७ ॥
वातज योनि की चिकित्सा—वातज योनिरोगों में स्नेहादि चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् वर्तित कर्म, अभ्यङ्ग (तेल मदनादि), परिषेक, प्रलेप और पिचुधारण (फादा आदि धारण करना) लामदायक है ॥ ७ ॥

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदाहभिः । तिलतैलं पचेक्षारी पिचुं तस्य विधारयेत् ॥ ८ ॥
विष्णुतायां सदा योनौ व्यथा तेन प्रशास्यति । वातलां कक्षां स्तवामवप्सपशां तयैव च ॥
कुम्भां स्वेदैरुपचरेदन्तर्वेशमनि संवृते । धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ॥ ८ ॥

तगर, बड़ी कटी, कूठ, सेंधानमक और देवदार को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर तेल पाक की विधि से तिल के तेल में तेल सिद्ध कर इसका पिचु धारण करने से (फादा योनि में रखने से) खो ली विष्णुता, योनि की व्यथा (पीड़ा) शान्त होती है। वातला, कक्षा, स्तवा और अल्प स्वर्ण योनि को कुम्भी स्वेद एक बन्द घर में रह कर देना चाहिये अथवा सदा तिल के तेल का पिचु (फादा) योनि में धारण करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

रासनाशगन्धावृष्टकैर्घोनिशूलहरं पथः । गुडूचीत्रिफलादन्तीकाथेष्व परिषेचतम् ॥ ५ ॥

रासना, असगन्ध और अरुसा को समान भाग लेकर दुरुपाक विधि से दूध में सिद्ध कर पान करने से योनिशूल नष्ट होता है। गुडूच, आमला, हरड़, वहेड़ा और दन्तीमूल के बने हुए काया से योनि का सिचन करने से भी योनिशूल नष्ट होता है ॥ ५ ॥

बिलवमार्कवं झीजकल्कं मध्येन पाययेत् । तेन योनिगतं शूलमाणु शास्यति योषिताम् ॥

बेल का गूदा और मांगरे के बीज को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर मदिरा के साथ जियों को पिलाने से योनिशूल शीघ्र ही शमन हो जाता है ॥ ६ ॥

उपकुञ्जिकां पिपलीं च मदिरां लाभतः पिबेत् । सौवर्चलेन संयुक्तां योनीशूलनिवारिणीम् ॥

कृष्णजीरा और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर उसमें सौवर्चल नमक मिलाकर येष्ट मात्रा में मदिरा के साथ पिलाने से योनिशूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पित्तलानां च योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्तियाः । शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं वृतानि च ॥

पित्तज योनि चिकित्सा—पित्तज योनियों में सिचन, अस्यक, तथा पिचु (फादा) धारण करना चाहिये, शीतल तथा पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और स्नेहन के लिये ओषधि सिद्ध धूत का प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रसंसिनीं वृताभ्यक्तां चौरस्त्वक्षां प्रवेशयेत् । विधाय वेसवारेण ततो वन्धं समाचरेत् ॥ ९ ॥

प्रसंसिनी योनि को वृत से चिकनी करके दूध के बाष्प से स्वेदित कर अन्दर प्रवेश कर देना चाहिये और वेसवार सेवन कराकर लंगोट आदि से दैध्यवा देना चाहिये ॥ ९ ॥

वेसवारः—

शुण्ठीमरीचकृष्णाभिर्धान्यकाजाजिदादिमैः । पिण्ठलीमूलसंयुक्तैर्वेसवारः स्मृतो वृथैः ॥ १ ॥

वेसवार—सौंठ, मरिच, पीपल, धनिया, जीरा, अनारदाना तथा पिपरामूल को समान भाग लेकर चूर्ण कर एकत्र मिलाकर रख लेवे। इसे वैद्य वेसवार कहते हैं ॥ १ ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा । सूर्यकान्ताभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलारुद्धुना ॥ २ ॥

योनिदाह में आवले के स्वरस में इवत शक्ता मिलाकर रीना चाहिये अथवा तण्डुलोदक में सूर्यकान्ता (सूर्यमुखी) के मूल को पीसकर रीना चाहिये ॥ २ ॥

योन्यां तु पूर्यस्त्रिविष्यां शोधनद्वयनिमित्तैः । सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः सम्पूरणं हितम् ॥

जिस योनिसे पूर्य निकलता हो शोधन द्रव्यों से बना हुआ गोमूत्र तथा सेंधानमक से सुक पिण्डों से पूरण करना चाहिये अर्थात् बरोक विधि से पिण्ड बनाकर धारण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

पिचवश्च धृताभ्यक्ताश्चन्दनाऽभ्यः समुक्तिः । योनौ स्थाप्याः सिया दाहकृष्णप्रक्रपान्तये ॥
यिसे हुए चन्दन के जल में भिगोये हुए तथा धूत से स्तिरन लिये हुए पिचु (रुई के फादा) को धारण करने से योनिदाह तथा योनिवार का शमन होता है ॥ ४ ॥

योन्यां बलासज्जुषायां सर्वं रुदोषगमौषवम् । तैलं सीधु यवाक्षं च पथ्यारिष्टं च योजयेत् ॥

कफज योनि चिकित्सा—कफज योनि सोग में सब प्रकार के रुक्ष तथा ऊर्ध्व ओषधि का प्रयोग करना चाहिये और तेल, सीधु, यव, अन्न का पथ्य एवं अम्यारिष्ट का प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

गुहुचीत्रिफलादन्ती क्षयितोदकधारया । योनि प्रह्लादयेत्तेन ततः कण्डुः प्रशास्यति ॥ ६ ॥

योनि कण्डु में—गुरुव, आमला, हरड़, वहेड़ा और दन्तीमूल के विधिपूर्वक बने काया की धारा से योनि का प्रशालन करना चाहिये, इसमें खुजली का शमन होता है ॥ ६ ॥

सुद्रुपुष्पं सखदिरं पथ्या जातीकलं तथा । वृक्षीपूर्णं च संचूर्ध्वं वस्त्रपूतं चिपेत्प्रगे ॥

योनिभंवति संकीर्णा न खदेव जलं ततः ॥ ७ ॥

साव चिकित्सा—मूल के रुक्ष, खेर (सार), हरड़, जायफर, पाठा (पुरहनपाढ़ी) और पूर्णीकल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर वज्र में छानकर भग में छोड़ना चाहिये। इससे योनि संकीर्ण (संद्रुवित) हो जाती है और उससे जल का साव नर्वा होता है ॥ ७ ॥

कपिकच्छुभवं मूलं काययेद्विद्विनाऽभ्याः । योनिः संकीर्णां याति छायेनानेन धावनात् ॥

कपिकच्छु (कैवाच) के मूल का काय बनाकर उससे धोने से योनि संद्रुवित हो जाती है ॥

पिप्पद्वया मरिचैमैषैः शताह्वाकृष्णसैन्धवैः । वृत्सुत्सुत्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधनी ॥

योनि शोधन—पीपल, मरिच, उड़द, खौफ, कूठ और सेंधानमक को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक प्रदेशिनी अजुली के समान वर्ति बनाकर योनि में धारण करने से योनि का शोधन होता है ॥ ९ ॥

सुरामण्डोरिष्टो धार्यः पिचुर्योनी कफारमनि । कण्डुपैच्छुल्यसंचावशैथिल्यविनिवृत्ये ॥

कफ योनि में सुरा के ऊपर के द्रव पथ्य (माग) में स्वई मिगो कर उसका पिचु (फादा) धारण करना चाहिये। इससे योनि की कण्डु, पिचिलता, साव और शिथिलता की निवृत्ति होती है ॥ १० ॥

सुगन्धिनां पदार्थानां कलकचूर्णः शृतैः कूठतः । योनौ दौर्मन्ध्य शमनः पूर्यपैच्छुल्यभाजित्ये ॥

सुगन्धित पदार्थों के कलक, चूर्ण तथा काय के व्यवहार से (लेप, पूरण तथा धावन प्रयोग से) योनि की दौर्मन्धि, पूर्य और विचिलता नष्ट होती है ॥ ११ ॥

संनिपातसमुत्थायां कार्या योन्यां सदा कियाः । सावारणा दशाङ्गी श्रीमदाकाथपिचुहितः ॥

सनिपातज योनि चिकित्सा—सनिपातज योनि में सदा सावारण त्रिविदाकाथपिचुहित की

विकित्सा करनी चाहिये और सत्रियातज योनि में दशमूल तथा मुण्डी के काथ का पिञ्चु (फादा) धारण करना द्वितीय होता है ॥ १२ ॥

जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी सुरभिर्वचा । वासकं सैन्धवं चापि यवचारो यवानिका ॥
यूषां चूर्णं घृते किञ्चिद्भृष्टवा खण्डेन मोदकम् । कृष्णा खादेयथावित्वं योनिरोगाद्विमुच्यते ॥

बीरकादि मोदक—इवेत जोरा, कृष्ण औरा, पीपल, सुषवी (छोटी करेली या कृष्ण बीरक), सुरभी (राल अथवा जायफर), वच, अहसा, सेवनमक, यवचार तथा जवाइम को समान भाग लेकर विषिपूर्वक चूर्ण करके गोधृत के साथ थोड़ा भूनकर खाइ मिलाकर मोदक प्रस्तुत कर अपनिव बक के अनुसार मात्रा से सेवन करने से योनि रोग से छुटकारा होता है अर्थात् इस बीरकादि मोदक से योनिरोग नष्ट होता है ॥ १३—१४ ॥

मूषककाथसंसिद्धस्तिलतैलकृतः सिचुः । नाशयेयोनिरोगास्तान्वृतो योनौ न संशयः ॥१५॥

मूषक तैल—मूषक (मूस) के मास के क्वाय के साथ तैलपाक विधि से तिल के तैल को सिद्ध कर उसका पिञ्चु (फादा) योनि में धारण करने से योनिरोग निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥

विफलादिघृतम्—

विफला द्वौ सहचरौ गुद्धौ सपुननवाम । गुकनासां हरिद्रे द्वे रासनामेदाशतावरीः ॥ १ ॥
करवकीकृत्य घृतप्रस्थं पचोऽस्त्रीरे चतुर्युगे । तस्मिंस्त्रं पाययेज्ञारी योनिरोगप्रशान्तये ॥ २ ॥

विफलादि घृत—आंवला, इरड, बहेडा, दोनों सहचर (पीली और नीली एप्टक २), गुरुच, मुन्ननवा, कीभाठोठी, हलदी, दारुहलदो, रासना, मोदा और शतावरी को समान भाग लेकर विषिपूर्वक कल्प कर एक प्रस्थ (चतुर्युग) मूर्छिंशत गोधृत और घृत से चतुर्युग गोदुरव में मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्धकर छोटी को पान करने से योनिरोग नष्ट होते हैं ॥ १—२ ॥

योनिकन्दस्य चिकित्सा—

योनिकन्द चिकित्सा—ये वा, आम को गुठली, पुरानी हलदी, सौवीराजन अथवा रसवत और कायफर समान भाग लेकर विषिवद चूर्ण कर मधु मिलाकर योनि में पूरण करने से योनिकन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

विफलायाः कथारेण सज्जैद्रेण च सेनयेत् । प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥२॥

आंवला, इरड और बहेडा के बने क्वाय में मधु का प्रक्षेप देकर सिचन करने से योनिकन्द नष्ट होता है ॥ २ ॥

आखोर्मासं सदृढं बहुधा सूषमल्पण्डोङतं तत् तैले पाच्यं द्रवति नियतं यावदेतेन सम्यक् ।
तत्त्वैलाकं वसनमनिशं योनिभागे दधाना सरथं ब्रीदाजनकमबला योनिकन्द निहनित ॥३॥

मूषकादि तैल—मूस को मारकर शीघ्र ही खण्ड २ करके तैल में डालकर पकावे, मलीमौति मास पक जाने पर उतार कर छान लेवे । उस तैल में बख मिलोकर निरन्तर योनि में धारण किये रहने से लज्जाकारक योनिकन्द रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

इति योनिरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ लीगर्भरोगनिदानम्

तत्र गर्भस्य स्नावपातयोनिदानमाह—

भयाभिघातात्तीष्मोण्पानाशननिषेवगात् । गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ १ ॥

गर्भस्थाव निदान—भय से, अभिघातादि हो जाने से, तीक्ष्ण तथा उष्ण पदार्थों के खाने-पीने

तथा सेवन करने से गर्भपात की संभावना होती है । गर्भपात के समय प्रथम शूल के सहित रक्त आगे लगता है ॥ १ ॥

स्नावपातयोरवधिमाह—

आ चतुर्थांतरो मासात्पञ्चवेद्वर्भविद्वद्वः । ततः स्थिरवारीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ २ ॥

गर्भपात की अवधि—गर्भावान से चार मास के अन्दर यदि गर्भ गिरता है तो उसे गर्भस्थाव कहते हैं क्योंकि चार मास तक गर्भद्व अवस्था में रहता है । उसके बाद पाचवें और छठवें मास में यदि गर्भ गिरता है तो उसको गर्भपात कहते हैं क्योंकि चार मास के पश्चात् गर्भ स्थिर शरीर बाला हो जाता है ॥ २ ॥

गर्भपातस्य इष्टान्तं दर्शयति—

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति द्वयेन ॥ ३ ॥

असमय में गर्भपात—बिस प्रकार वृक्ष में लगा द्रुमा पका फल किसी प्रकार के आवात से गिर पड़ता है उसी प्रकार गर्भ भी अभिघात, विषनाशन और पीड़न आदि से गिर जाता है ॥

भावप्रकाशाद्वर्भपातस्योपद्रवानाह—

ग्रस्तंसमाने गर्भे स्थाइहः शूलश्च पार्थ्याः । पृष्ठे रुपप्रदरानाहौ भूत्रसङ्करच जायते ॥ ३ ॥

गर्भपात के उपद्रव—गर्भस्थाव होने के समय दाइ, पार्वतमाण में शूल, पीठ में पीड़ा, प्रदर, आनाह और मूत्रावारीष आदि उपद्रव होते हैं ॥ ३ ॥

गर्भस्य स्थानान्तरगमने चोपद्रवानाह—

स्थानान्तरान्तरं तस्मिन्प्रयात्यपि च जायते । आमपकाशयाद्यै तु चौभापूर्वद्युपद्रवाः ॥

गर्भ के स्थानान्तर गमन में उपद्रव—जब गर्भ एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है तब भी आमाशय तथा पकाशय आदि में क्षोभ उत्पन्न होता है तथा पूर्व के दाइदि उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३ ॥

प्रस्वोचिते काले यथा मूढो गर्भो भवति तदाह ।

तत्र मूढगर्भस्य निदानस्प्राप्तिवृक्षं सामान्यं लक्षणमाह—

मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलं च योनिजरादिषु सूक्ष्मसङ्क्रम ।

भुग्नोऽनिलेम विगुणेन ततः स गर्भसंह्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ ३ ॥

मूढ गर्भ के लक्षण—अपने दृष्टित होनेवाले कारणों से दूषित। इसी मूढ (निश्चल) वाले गर्भशय में अवरुद्ध होकर गर्भ को मूढ़ कर देता है अर्थात् गर्भ की गति को रोक देता है उसे मूढ गर्भ कहते हैं । उस मूढ गर्भ से योनि और जठरादिकों में शूल और मूत्रावारीष होता है । उस समय दूषित वायु से भुग्न (टेढ़ा अथवा उल्टा द्रुमा) गर्भ कही हुई संख्या का भी उत्पन्न करके (संख्याभेद आगे कहेंगे) अनेक प्रकार से योनि के मुख पर उपस्थित होता है ॥ ३ ॥

तत्राद्यो प्रकारानाह—

द्रारं निरुद्धशिरसा जडरेण कश्चित्क्षिच्छरीरपरिवर्तनकुञ्जवेहः ।

एकेन कश्चिदपरस्तु भूजद्वयेन तिर्यगतो भवति कश्चिदवाल्मुखोऽन्यः ॥ ३ ॥

पार्श्वपृवृत्तिगतिरेति तथैव कश्चिदिष्ट्यद्यधा भवति गर्भगतिः प्रसूतैः ॥ २ ॥

मूढ गर्भ के भेद—कोई मूढ गर्भ योनिदार को (विपुल) शिर से अवरुद्ध करता है, कोई (आधात) उटर से योनिदार को अवरुद्ध करता है, कोई शरीर के परिवर्तित (उट्टा) हो जाने से कुबलेपन द्वारा योनिदार को अवरुद्ध करता है, कोई एक सुजा से योनिदार को अवरुद्ध करता है, कोई दोनों बाल्बों से योनिदार को अवरुद्ध करता है, कोई नीचे मुख किये योनिदार को

अवश्व करता है और कोई पार्थी के भग्न होने से विगुण गति होकर योनिद्वार को अवश्व करता है। इस प्रकार मूढ़ गर्भ की आठ मतियाँ होती हैं ॥ १-२ ॥

सुश्रुतस्तवद्वौ प्रकारान्तराण्याह—

कश्चिद्वद्वाभ्यां सक्षियम्यां योनिमुखं प्रपद्यते ॥ १ ॥

कश्चिद्वासुग्रसक्षियशरीरः विकादेशेन तिर्यगतः ॥ २ ॥

कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेव योनिद्वारं पित्तायावतिष्ठते ॥ ३ ॥

अन्तः पार्श्वापवृत्तशिरः कश्चिद्वेन बाहुना ॥ ४ ॥

कश्चिद्वासुग्रनशिरा बाहुद्वयेन ॥ ५ ॥

कश्चिद्वासुग्रनमध्यो हस्तपादशिरोभिः ॥ ६ ॥

कश्चिद्वेन सञ्चना योनिद्वारं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुमिति ॥ ७ ॥

कश्चिद्वेन सञ्चना योनिद्वारं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुमिति ॥ ८ ॥

सुश्रुत के मत से मूढ़ गर्भ के भेद—कोई मूढ़ गर्भ दोनों सक्षियों (जांघों) से पहले योनि के सुख में प्राप्त होता है। कोई एक सक्षिय मूढ़ी हुई और एक सीधी इस अवस्था में योनि मुख पर उपस्थित होता है। कोई सक्षिय तथा शरीर की समेट कर स्किंग प्रदेश (चूड़) से तिरछा होकर योनिमुख पर उपस्थित होता है। कोई उदर, पार्श्व तथा पीठ इनमें से किसी एक अंग से योनि मुख पर उपस्थित होकर योनिमार्ग को अवश्व कर रखित होता है। कोई पार्श्व के अध्यन्तर शिर को छुका कर अथवा उलट कर एक बाहु से ही योनि मुख पर उपस्थित होता है। कोई शिर को टेढ़ा कर दोनों बाहुओं से योनि मुख पर उपस्थित होता है। कोई मध्य माग से टेढ़ा होकर हाथ पैर तथा शिर सहित (एक साथ) योनि मुख पर उपस्थित होता है और कोई एक जंघा से योनि मुख पर उपस्थित होता है और दूसरे जंघा से गुदा के द्वार पर उपस्थित होता है ॥ २-८ ॥

अपराश्वतस्मी गतीराह—

संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ वीजस्तेष्वृथवाहुचरणः शिरसा च योनौ ।

सङ्गी च यो भवति कीलकवस्तु कीलो दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि काव्यसङ्गी ॥

वच्छेदसुज्ञायशिराः स च वीजकाशयो योगौ स्थितः स परिवः परिवेण तुल्यः ॥ १ ॥

मूढ़ गर्भ के और चार भेद—मूढ़ गर्भ के संकीलक, प्रतिखुर, परिव और वीज ये चार गतियाँ और होती हैं। उनमें जिस मूढ़ गर्भ बाहु, पैर तथा शिर उपर होकर कील की माति आकर योनि द्वार को अवश्व कर लेता है उसे संकीलक मूढ़गर्भ कहते हैं और जिस मूढ़ गर्भ में प्रथम हाथ—पैर बाहर दिखाई देवे शेष शरीर योनिमुख पर एक जांघे उसे प्रतिखुर कहते हैं तथा जिस मूढ़ गर्भ में दोनों भुजाओं के मध्य में शिर होकर योनिद्वार पर आकर अवश्व हो जाता है उसे वीजक कहते हैं और जिस मूढ़ गर्भ में योनिमुख पर परिव कपाट बन्द करने वाले कुण्डे हैं की माति तिरछा आकर अब जाता है उसे परिव कहते हैं ॥ १ ॥

परिवमाह, परिवस्य लक्षणं भोजेऽपि पठश्चते तथाः—

योनिमावृथ्य यस्तिष्ठेत्परिवो गोपुरं यथा । तथान्तर्गर्भमायान्तं विद्यापरिवसंज्ञितम् ॥ १ ॥

मोन के मत से परिव के लक्षण—जिस प्रकार द्वार के कपाट में डंडा अड़कर कपाट को अवश्व कर देता है उसे प्रकार भीतर से गर्भ तिर्छा टेढ़ा योनिद्वार पर आकर अब जाता है और प्रसव अवश्व कर देता है उस मूढ़गर्भ को परिव कहते हैं ॥ १ ॥

असाध्यमूढ़गर्भगमिष्योलक्षणमाह—

अपविद्वशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रा । नीलोद्रुतशिरा हन्ति स गर्भ स च तां तथा ॥ १ ॥

असाध्य मूढ़ गर्भ और गमिणी—जो गमिणी स्त्री शिर बारण करने में असमर्थ हो गयी हो अर्थात् जिसका शिर लुक गया हो, अङ्ग शीतल हो गये हों, लज्जा शून्य हो गयी हो अर्थात् कष्ट से ज्ञानहीन हो गयी हो और जिसके कोख आदि पर नीली रेखायें (शिरायें) उभर आई हों वह स्त्री गर्भ को नष्ट कर देती है और ऐसी अवस्था बाली स्त्री का गर्भ उस स्त्री को मार देता है ॥

मृतस्य मूढगर्भस्य प्रतिपादत्वात्कर्षणमाह—

गर्भापन्दनमावीनां प्रणाशः शथावपाणहुता । अवेद्यदुच्छ्रवासपूतित्वं शूलश्चान्तस्तुते शिशौ ॥

मृतगर्भ के लक्षण—गर्भ जव पेट के अन्दर ही मर जाता है तब गर्भ का दिल्ला—चलना गर्भस्य बालक का हृदय स्पन्दन आदि बन्द हो जाता है अर्थात् गर्भ निश्चल हो जाता है, आवी अर्थात् प्रसव काल के चिह्न मूढ़वलेभ्या निःसंरणादि प्रसव वेदना का अमाव हो जाता है, शरीर वर्ण श्याम वा पाण्ड हो जाता है, उस ज्वो के शासोच्छ्रवास में दुर्वन्धि होती है और शुक्र होता है ॥ १ ॥

गर्भस्य मरणहेतुमाह—

मावसागन्तुभिर्मुतुहृष्टापतायैः पृथग्विधैः । गर्भो व्यापद्यते कुचौ व्याधिभिक्ष प्रपीडितः ॥ १ ॥

गर्भ के मरने के कारण—अनेक प्रकार के मानसिक तथा आगन्तुक दुःखों से माता के दुःखी होने से तथा रोगों से आकान्त वा पीड़ित होने से गर्भ गर्भशिश में ही मर जाता है ॥ १ ॥

अपरमसाध्यवर्भिणीलक्षणमाह—

योनिसंवरणं सङ्गः कुचौ मक्कलस्त एव च । हन्युः द्वियं मूढगर्भं यथोक्ताश्राप्युपद्रवाः ॥ १ ॥

गमिणी के असाध्य लक्षण—योनि संवरण, कुक्षिसङ्ग, मक्कलस्त तथा आक्षयक श्यासादि रोग मूढ़ गर्भ वाली ज्वो को मार देते हैं। (योनि संवरण का लक्षण आगे कहेंगे । कुक्षिसङ्ग में गर्भ कुक्षि में आसक्त हो कर बाहर नहीं निकलता है और मक्कलस्त रोग में प्रकुपित वायु प्रसूता के बद्दे हृष्ट रक्त आदि को रोककर हृदय शिर एवं बस्ति स्थान में शूक्र उत्पन्न कर देता है, सुशुत के बचन से व्यवप्रजाता ज्वो का शूल भी मक्कल ही कहलाता है ॥ १ ॥

बातलान्यज्ञानानि ग्रायधर्मं प्रजागरम् । अरथात् सेवमान्तर्या गर्भिण्या योनिमार्गः ॥ २ ॥

मातरिश्च प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम् । कुरुते हृष्टमार्गावात् पुनरन्तर्गतेऽनिलः ॥ ३ ॥

निरुणद्वयाशयद्वारं पीडयन्नगर्भसंस्थितिम् । निरुद्ववद्वनोच्छ्रवासो गर्भश्चाऽप्यु विपद्यते ॥

उच्छ्रवासरुद्वहवयां नाशयत्यथ गर्भिणीश्च । योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते ॥

अन्तकप्रतिमं घोरं नाऽस्तमेत चिकित्सतुम् ॥ ५ ॥

योनि संवरण रोग के लक्षण—गर्भवस्था में वातकारक अन्नपान आदि का अधिक सेवन करने से, अधिक मैथुन करने से और अधिक रात्रि बागरण से गमिणी के योनिमार्ग में विचरने वाला वायु कुपित होकर योनि द्वार को संकुचित (संकुचित) वा अवश्व कर देता है और मार्ग के अवश्व होने से पुनः वह वायु भीतर जाकर गर्भशिश के द्वार को अवश्व कर गर्भ स्थिति को पीड़ित करता है जिस कारण गर्भ का मुँह और श्वास रुक जाता है और वह गर्भ शीत्र मर जाता है तथा उस गर्भ के मर जाने से गमिणी का उच्छ्रवास और हृदय अवश्व हो जाता है और उससे गमिणी की भी नाश हो जाता है अर्थात् गर्भ मर कर फूलता है, अवरोध हो जाता है और वह भी मर जाती है। इस रोग को योनि संवरण नाम का रोग कहते हैं, यह यमराज के समान कठिनरोग है, इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २-५ ॥

विकृताकृतिगर्भकारणं लक्षणमाह—

ऋतुनाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत् । आर्तवं वायुरावाय कुचौ गर्भ करोति हि ॥ १ ॥

मासि मासि विवर्णेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम् । कलं जायते तस्या वर्णितं पृथकैरुण्ये: ॥ २ ॥

विकृताकृति गर्भ के लक्षण—ऋतुकाल के पश्चात् स्नान की हुई खो यदि स्वप्न में मैथुन करती है तो उस समय योनि में विचरने वाली बायु उड़के आरंब को गर्भाशय में ले जाकर गर्भ स्थित कर देती है । वह गर्भ प्रतिमास बढ़ता जाता है और गर्भिणी को सब गर्भ के लक्षण प्रतीत होते हैं । उस गर्भ से पिता के गुणों से रहित कलज अर्योत्त कीबड़ या मासिपिण्ड के समान गर्भ उत्पन्न होता है ॥ २-२ ॥

सर्पनृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये । गर्भाश्चेति ग्रयश्चैव लेयाः पापकृतो मृशम् ॥ ३ ॥

सौप, बिछू और कुम्हाण्ड आदि के आकार के तथा अन्य विकृत (कुम्हाण्ड विकारों से युक्त मी) आकृति के जो गर्भ उत्पन्न हो जाते हैं वे तीनों प्रकार के गर्भ अवस्थन पाप कर्म से उत्पन्न हुआ जाना चाहिये ॥ ३ ॥

अथ द्वीगर्भरोगचिकित्सा

तत्र गर्भस्य स्नावपातयोश्चिकित्सामाह—

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्वेत्यदि सुहुमुङ्गुः । तत्त्विरोधाय सा दुधसुष्टुपलादिश्वतं पिवेत् ॥ ४ ॥

गर्भस्नाव चिकित्सा—गर्भिणी खो के गर्भ से यदि वारन्वार रक्त का स्नाव हो तो उसके अवरोध के लिये वह खो उत्पलादि गण से सिद्ध किया हुआ दूष पीवे । इसमें रक्तस्नाव बह्न हो जाता है ॥ ४ ॥

उत्पलादिगणमाह—

उत्पलं नीलमारवतं कल्पारं कुमुदं तथा । श्वेतासभोजं च मधुकसुष्टुपलादिश्वयं गणः ॥ ५ ॥

उत्पलादि गण—नील कमल, रक्त कमल, कुमुद, रक्तकुमुद, श्वेतकमल और मुलहठी का समान मिलित योग उत्पलादि गण कहा जाता है ॥ ५ ॥

संशीलितो हरस्येव दाहं तृणां हृदामयम् । रक्तं पित्तं च मूर्च्छां च तथा छुर्दिमरोचकम् ॥

उत्पलादि गण के सेवन करने से दाह, तृणा, छोड़ग, रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और अरुचि नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

लज्जालुर्धात्तकीपुष्पसुष्टुपलं मधु लःध्रकम् । जलस्थया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ ६ ॥

गर्भपात निवारण योग—लज्जालु या लजौती, धायके पुष्प, नील कमल, मधु और लोध की समान भाग लेकर पीस कर अवस्था के अनुसार मात्रा से खो को जल में बैठाकर पिलाने से गर्भपात रुक जाता है ॥ ६ ॥

पतन्तं स्तम्भयेद्भूमं कुलालकरमृत्तिका । मधुच्छागीपयः पीता कि वा श्वेताऽपराजिता ॥ ७ ॥

कुम्हार के बर्तन बनाने के समय की हाथ में लगी हुई मिठी गर्भवती खो को धोलकर पिलाने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है अथवा श्वेतपुष्प की अपराजिता के चूर्ण को मधु तथा बकरी के दूध के अनुपान के साथ पान करने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है ॥ ७ ॥

पारावतमलः पीतस्थ्यहं ताम्बूलवारिणा । गर्भिणीगर्भतो रक्तं स्तम्भयेश्चिह्नप्रदवम् ॥ ८ ॥

कवूतर के मल को ताम्बूल के स्वरस के साथ तीन दिन तक पान कराने से गर्भिणी के गर्भ से बहते हुए रक्त को रोक देता है और इस योग के सेवन से कोई दूसरा उपद्रव भी नहीं होता है ॥

शकराविसतिलं समांशकं मात्रिकेण सह भवयते यदा ।

नास्ति गर्भपतनोद्घवं भवते पापमीतिरिच्च तीर्थसेवया ॥ ९ ॥

शकर, मसीढ़ा (कमलतन्तु) और तिल को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु के अनुपान से सेवन करने से गर्भपतन का भय इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार तीर्थ करने से पाप का भय नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

फङ्गतीमूलमादक्षं कुमारीसूत्रकैः समैः । फटिदेशे नितिश्वन्या गर्भपातं निवारयेत् ॥ ७ ॥

अतिवला के मूल को कुमारी कथा के हाथ के कते हुए गर्भवती के शरीर के बराबर कन्दे सूत में बाँध कर कमर में बाँधने से गर्भपतन नहीं होता है ॥ ७ ॥

वेणुग्रन्थिकुलस्थानां हरिद्राजनितं शृतम् । देयं न्यूनदिने याते गर्भिणीमां भिषम्बहैः ॥ ८ ॥

गर्भपात की पीड़ा निवृतिकारक योग—बाँस की ग्रन्थि (बाँड), कुल्यी और इच्छाकी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ भरके थोड़े दिनों का गर्भस्नाव जिस खो का दृष्टा हो डेना चाहिये, इससे गर्भस्नाव सम्भव्यी पीड़ा आदि तथा मल की निवृति होती है (इस योग में कहीं २ ग्रन्थि शुद्ध से पिपरामूल खो ग्रहण किया गया है) ॥ ८ ॥

हीबेरातिविषामुस्तामोचाक्षः शृतं जलम् । दृच्छाद्भूमं प्रचलिते प्रदरे कुण्डिलयषि ॥ ९ ॥

सुगन्धबाला, अतीस, नागरमोथा, मोचरस और इच्छाकी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ बनाकर जो गर्भ अपने स्थान से चल नुका हो, च्युत हो नुका हो अथवा अधिक चलता हो, उसमें प्रदररोग में तथा गर्भाशय की पीड़ा में देना चाहिये । इससे भाग होता है ॥ ९ ॥

अथः परं मासानुप्रसिद्धं वस्यामः—

प्रथुकं शाकबीजं च पथस्या सुरदारं च । अस्मन्तकः क्लृणतिलास्ताञ्चवद्धीं शातावदी ॥ १० ॥

मास कम से चिकित्सा—मुलहठी, शाकबीज, क्षीर काकोड़ी और देवदार को समान भाग लेकर क्षीरपाक विधि से सिद्धकर गर्भस्नाव निवारण के लिये प्रथम मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये और पाषाणमेद, कुण्डिल, मजीढ़ी और शतावरी को डपरोक्त विधि से दूसरे मास में पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

बृक्षाद्वनी पथस्या च लता चोपलसाशिवा । अनन्ता सारिवा रास्ना पश्चा मधुकमेव च ॥ ११ ॥

बन्दा (बौद्धी), छोराकाली, मजीढ़ी, नीलोफर और सारिवा को क्षीरपाक कर गर्भिणी को तीसरे मास में पिलाना चाहिये तथा अनन्तमूल, शारिवा, रास्ना, मारंगी और मुलहठी का क्षीरपाक चौथे मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

बृहतीद्युयकाशमर्यहीरिश्वङ्गच्चा शृतम् । पूर्णशर्णी चला शिशुः श्वद्ध्रामधुपर्णिका ॥ १२ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गंमार, क्षीरी वृक्ष (वट, पौपल, गूलर, पाकर,) के अद्वार और छाल से सिद्ध धृत क्षीरपाक पांचवें मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये तथा पूदिनपर्णी, बला (बरिधारा), साहजन, गोखरु और गम्भार से सिद्ध क्षीर छठवें मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

श्वासाटकं विसं द्राष्टाकसेष्मधुकं सिता । सहेतान् पथसा ओगावर्षलोकसमापितान् ॥ १३ ॥

सिंधादा, मसीढ़ा अर्थात् कमलतन्तु, दाक्षा, कसेष्म, मुलहठी और मिश्री से सिद्ध क्षीर सातवें मास में गर्भवती को पिलाना चाहिये ॥ ४ ॥

क्रमारससु मासेषु गर्भं चतुर्ति योजयेत् । कपित्थविलववृहतीपदोलेज्जुनिदिग्वज्जैः ॥ १४ ॥

मूलैः शृतं प्रयुजीत छीरं मासे तथाऽष्टमे । नवमे मधुकानन्तापथस्यासारिवाः पिवेत् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उपरोक्त आधे २ दलोंको में कहे हुए सात योगो द्वारा क्षीरपाक विधि से क्षीर सिद्ध कर क्रम से प्रथम मास से लेकर सप्तम मास पर्यन्त गर्भवती खो को गर्भस्नाव निवृति के लिये पिलाना चाहिये इससे गर्भस्नाव नहीं होता है । कैथ, वेल, बड़ी कटेरी, परवल, रेख और छोटी कटेरी के मूल को समान लेकर क्षीरपाक विधि से क्षीर सिद्ध करके आठवें मास में गर्भिणी खो को गर्भपतन-निवृति के लिये पिलाना चाहिये और नवें मास में मुलहठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और सारिवा से सिद्ध किया क्षीरपाक गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

क्षीरं शुण्ठीपद्यस्याम्यो सिद्धं स्याद् वृशमे हितम् । सचीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदाक्षं ॥
सोठं और क्षीरकाकोली से सिद्ध किया क्षीरपाक दशम मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये
अथवा सोठ वा मुलहठी वा देवदार को दूध के साथ पिलाना चाहिये ॥ ७ ॥

श्रीरिकामुख्यं दुर्घं समझामूलकं शिवाम् । पिवेदेकादशो मासि गर्भिणी शूलशान्तये ॥ ८ ॥
खिरनी अथवा क्षीरकाकोली, नोलकमल, दूध, मजीठ लड्डावन्ती की जड़ और हरड़ की
विधिपूर्वक (क्षीरपाक विधि से) सिद्धकर गर्भिणी को रथारद्वेष मास में पिलाना चाहिये इससे
गर्भिणी का शूल शमन होता है ॥ ८ ॥

सिताविद्वारीकाकोलीश्रीरिकाश्च मृणालिका । गर्भिणी द्वादशो मासि पिवेच्छूलमौषधम् ॥

एवमाध्यायते गर्भस्तीवा दस्योपशाम्यति ॥ ९ ॥

शकरा, विदारीकन्द, काकोली, क्षीर काकोली और कमलतेन्तु के द्वारा विधिपूर्वक क्षीरपाक
करके गर्भिणी को वारद्वेष मास में यह शूलघ्न ओषधि पिलाना चाहिये । इससे वारद्वेष मास में
से गर्भ का शूल नष्ट होता है और इस गर्भ पुष्ट होता है तथा तीव्र पीड़ियें शान्त होती हैं ॥ ९ ॥

अन्यच्च-प्रन्थाम्भरे मासविशेषे गर्भवेदनाहरमौषधम्—

चलनं प्रथमे मासि गर्भस्य यदि जायते । औषधं च तदा देवं विवृष्णमिष्यवरैः ॥ १ ॥

सद्गीका उपेष्ठिका चैव चन्दनं रक्तचन्दनम् । गवां च पथसा पेयं स्थिरता जायते भ्रुवम् ॥ २ ॥

प्रथम मास में यदि गर्भस्तीव का यथ हो अथवा गर्भ अपने स्थान से चले तो मुनका, जेठी-
मधु, इवेत चन्दन और रक्तचन्दन को समान भाग लेकर क्षीरपाक की विधि से गोदुर्घ के साथ
क्षीर सिद्धकर पिलावे तो निश्चित ही गर्भस्तीव हो जाता है ॥ २-२ ॥

नीलोत्पलं सधाकं च शूलादं च कसरकम् । शीतोत्तेन पिष्ट्वा तु श्रीरेणाऽलोड्य तस्मिपेत् ॥

एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशास्यति ।

नीलकमल (नीलोफर), सुगन्धवाला, सिंधादा और कसरू को समान भाग लेकर शीतल
बल के साथ पीसकर गौ के दूध में मिलाकर पीने से गर्भस्तीव नहीं होता है और गर्भावस्था का
शूल भी इस ओषधि से शान्त हो जाता है ॥ ३ ॥

द्वितीये भासि गर्भस्य चलनं च भवेष्यदि ॥ ५ ॥

पथसा च तदा पेयं भूणालं नागकेसरम् । तगरं कमलं विवेदं कर्षेण समन्वितम् ॥ ५ ॥

अज्ञातीरेण तस्मिपष्ट्वा श्रीरेणाऽलोड्य पूर्ववत् ।

यदि दूसरे मास में गर्भ का अपने स्थान से चलना जात हो (गर्भस्तीव होने की शक्ति हो)
तो शूलाल (कमलनाल) और नागकेसर को दूध में पीसकर पीना चाहिये अथवा तगर, कमल
बेल और कपूर को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर बकरी के ही दूध में मिला
कर पहले कही दुई विधि से पीना चाहिये । इससे गर्भस्तीव नहीं होता है और शूल भी शान्त
हो जाता है ॥ ५ ॥

तृतीये मासि चलनं जायते गर्भं जयदि ॥ ६ ॥

पथसाऽलोहितं पेयं शकरा नागकेशरम् । एवंकं चन्दनं चैव वालकं पद्मनालकम् ॥ ७ ॥

पिष्ट्वा शीतेन तोयेन श्रीरेणाऽलोड्य तस्मिपेत् । एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशास्यति ॥

यदि तीसरे मास में गर्भस्तीव होने की शक्ति हो तो शकरा और नागकेसर को पीसकर दूध के
साथ मिलाकर पीना चाहिये अथवा पद्ममुकाठ, लालचन्दन, सुगन्धवाला और कमलनाल को
समान भाग लेकर शीतल बल के साथ पीसकर दूध में मिलाकर पीने से गर्भस्तीव नहीं होता है
और गर्भावस्था का शूल शमन होता है ॥ ६-८ ॥

यदि गर्भस्य चलनं चतुर्थं मासि जायते । दृष्णशूलविद्वाहैश्च उवरेण च निपीडनम् ॥ ९ ॥

तीरं च कदलीमूलमूख्यं वालकं तथा । आलोड्य समभागेन पिवेद्रोगोपशान्तये ॥ १० ॥

यदि चैये मास में गर्भस्तीव को शूल हो और साथ ही गर्भवतों को तृष्णा, शूल, दाह तथा
चबर की भी पीड़ियां हो तो दूध, कदली का मूल, नोलकमल वा कमलदूल और सुगन्धवाला को
समान भाग लेकर पीसकर पिलाने से उपरोक्त रोग नष्ट हो जाते हैं और साथ भी नहीं होता है ॥

पक्षमे मासि गर्भस्य चलनं कुत्रचिद्वेत् । दलना च मधुना पेयं दाढिमोपत्रचन्दनम् ॥ ११ ॥

नीलोत्पलं भूणालं च कौन्तीं चीरीं तथैव च । केशं पश्चकं चैव तोयेनाऽलोड्य तस्मिपेत् ॥

एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशास्यति ।

यदि पांचवे मास में गर्भस्तीव को शूल हो तो दूध में मधु, अनार के पत्ते और लालचन्दन
को पीसकर पीना चाहिये अथवा नोलकमल, शूलाल, रेणुका, खिरनों वा क्षीरकाकोली, नागकेसर
और पद्ममुकाठ को समान भाग लेकर बल के साथ पीसकर बोलकर पीना चाहिये । इससे गर्भस्तीव
नहीं होता है और तस्मावस्था शूल भी शान्त हो जाता है ॥ १२ ॥

षष्ठे मासि गर्भस्य चलता जायते थदा ॥ १३ ॥

वैरिका गोमयं भस्म कुलाणा मृत्यना तथैव च । एतेषां साधितं प्राज्ञभिषजा चामृतं तदा ॥

पेयं शीतं परं साकं सितया चन्दनेन च ।

यदि छठे मास में गर्भ का चलना (गर्भस्तीव होना) जात हो तो गेल, गोबर की राख और
कुण्ड वर्ण की (करैल) मिट्टी को समान भाग लेकर शीतल बल के साथ बोलकर शकरा तथा
चन्दन भिकाकर पीना चाहिये ॥ १३ ॥

सप्तमे मासि गर्भस्य चलनं जायते थदा ॥ १४ ॥

उत्तीरं गोकुरवन्नौ समझा नागकेसरम् । संपूर्णकं समधुना पाथयेच विच्छणः ॥ १५ ॥

यदि सातवें मास में गर्भ के पात होने को समझना हो तो खस, गोखर, नागरमोया,
मबोठ, नागकेसर और पद्ममुकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूकाकर मधु मिलाकर बल में
बोलकर पिलाना चाहिये ॥ १५-१६ ॥

अष्टमे मासि चलनं गर्भं यदि जायते । लोध्रमागधिकाचूर्णं मधुना पथसा पिवेत् ।

यदि आठवें मास में गर्भस्तीव होने की समझना हो तो लोध, बड़ी गोपल का चूर्ण, मधु
तथा दूध भिलाकर पिलाना चाहिये ॥

नवमे सुप्रसूतिः स्यादेवं गर्भस्य पोषणम् ॥ १७ ॥

नवे मास में गर्भ के पात होने को समझना हो तो खस, गोखर, नागरमोया,
मबोठ, नागकेसर और पद्ममुकाठ को समान भाग लेकर प्रयोगीकरण करके गर्भस्तीव होने की
प्रसूति का समय है । इस प्रकार के प्रयोगों से गर्भ का पोषण (रक्षण) होता है ॥ १७ ॥

गर्भस्तीवस्य चिकित्सा—

स्त्रिनघशीताः किया स्तेषु दाहादिकु त्वाच्चरेत् । कुशकाशो रुक्मीकाणां मूलैर्गोचूरकस्य च ॥ १८ ॥

शूतं दुर्घं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहपरम् । श्ववंद्रष्टामयुक्तद्वाच्चास्तानं सिद्धं पयः पिवेत् ॥

शर्करा मधुसंयुक्तं गर्भिणीवेदनापहम् ।

गर्भस्तीव के उपद्रवों की चिकित्सा—गर्भ के उपद्रवों के उपरन्तु होने पर स्त्रिनघ तथा
शीतल उपचार करना चाहिये । दुश, काश, दरण और शूल तथा गोखर के साथ विधिपूर्वक दूध
सिद्ध कर उसमें शकरा भिलाकर पिलाने से गर्भिणी का शूल नष्ट होता है । एवं गोखर, मुलहठी
दाख और पियावासा को समान लेकर इनके द्वारा दूध सिद्ध कर पिलाने से गर्भिणी का शूल नष्ट
होता है ॥ १८-२ ॥

सूकोष्टग्रिका गोहसूभवा नवमृत्तिका ॥ १९ ॥

सुभज्ञा धातकीपुष्टे वैरिकं च इसोऽनन्दम् । तथा सज्जरस्यैवान् यथालाभं विचूर्णयेत् ॥ ४ ॥
तच्छूर्णं मधुना लिङ्गान्नारी प्रदरशान्तये । कमेरुप्तलश्फ़ाट करकं वा पद्मसा पिवेत् ॥ ५ ॥

प्रदर चिकित्सा—घरी में जो बिलनी अथवा अतीसारी (एक प्रकार की बड़ी मधिका है जो मिठ्ठी का घोसला अपने से बनाकर उसमें दूसरे कीड़े (झींगुर आदि) को मारकर रखती है जिससे पुनः उसमें अनुकूल जीव उत्पन्न हो जाता है) के घर की नवीन मिठ्ठी, मचीन, शाव के पुष्ट, गेह, रसवत तथा राल इनमें से जितनी भी ओषधियाँ प्राप्त हो सकें सब समान भाग लेकर चूर्ण कर लेके उस चूर्ण को मधु के अनुपान से स्त्री प्रदर की शान्ति के लिये चाटे तो प्रदर रोग शान्त होता है अथवा—कसेल, नीलकमल और सिंधादा का विधिवत कल्प बनाकर दूध के साथ पीवे तो प्रदर रोग शमन होता है ॥ ६-७ ॥

पकं वचाहसोनाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् । आनाहेषु पिवेद् दुर्गं गुर्विणी सुखिनी अवेत् ॥

गर्भिणी की आनाह चिकित्सा—वच, और छहसुन से दूध सिद्ध कर उसमें शुद्ध हींग और सोचर नमक का प्रक्षेप देकर पान करने से गर्भिणी का आनाह नष्ट होता है ॥ ८ ॥

तुणपञ्चकमूलानां कलकेन विपचेतपथः । तत्पदो गुर्विणी पीरवा मूत्रसङ्गाद्विसुप्तयते ॥ ९ ॥

गर्भिणी की मूत्रसंग-चिकित्सा—तुणपञ्चमूल का विधिपूर्वक कल्प बनाकर दूध के साथ उसे पकाकर गर्भवती की पिलाने से उसका मूत्रावरोध नष्ट होता है ॥ ९ ॥

शालीसूकुशकाद्यः स्थापञ्चुरेण तुणपञ्चकम् । एवो श्रुतं तृष्णाकाहपित्ताद्यमूत्रसङ्गहृत् ॥ १० ॥

तुणपञ्चमूल का नाम तथा गुण—शालिभाज की जड़, रेख की जड़, कुश की जड़, काश की जड़ और शर (नरकट) की जड़ के मिलित योग को तुणपञ्चक वा तुणपञ्चमूल कहते हैं। इसका क्वाय बनाकर पीने से तुष्णा, दाइ, रक्तपित्त और मूत्रावरोध नष्ट होता है ॥ १० ॥

कलेशङ्गाटकपश्चोरपलं समुद्रपर्णीमधुकं सशक्तरम् ।

सशूलाभं ज्ञातिपीडिताऽवला पयोविभिन्नं पद्मसात्त्वमुक्तिपिवेत् ॥ ११ ॥

गर्भिणी के उपद्रवों की चिकित्सा—कसेल, सिंधादा, पदुमकाठ, नीलकमल, मुद्रगणीं (वन धूंग) और मुलहठी की समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाय बनाकर उसमें दूध मिलाकर और शक्तरा का प्रक्षेप देकर गर्भिणी स्त्री को पिलावे तथा दूध और अनन् (दूध-भात या दूध-रोटी) का पथ्य देवे तो गर्भिणी का शूल और गर्भस्नाव इन दोनों रोगों को यह नष्ट करता है ॥ ११ ॥

गुर्विण्या रोगाणां चिकित्सा—

ग्रधूकचन्दनोशीरसारिवाचाप्तिपद्मकैः । शक्तरामधुसंयुक्तः क्रायो गर्भिणीउवरे ॥ १ ॥

गर्भिणी के रोगों की चिकित्सा—मदुआ, लालचन्दन, खस, सारिवा, जेठीमधु और पदुमकाठ की समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाय करके उसमें शक्तरा तथा मधु का प्रक्षेप देकर गर्भिणी को उचर में पिलाना चाहिये इससे गर्भावस्था का उचर नष्ट होता है ॥ १ ॥

चन्दनं सारिवालोग्रमृद्धीकाशकर्णान्वितम् । क्वाथं कूरवा प्रदद्याच्च गर्भिणीउवरशान्तये ॥ १२ ॥

लालचन्दन, सारिवा, लोष और मुलकका को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाय कर उसमें शक्तरा का प्रक्षेप देकर गर्भिणी के उचर की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥ १२ ॥

पथ्यस्यासारिवाचापाठातोष्टोष्टदनागरैः । श्रुतं श्रीतं पिषेद्वारि गर्भिणीउवरशारणम् ॥ १३ ॥

शीरकाकोली, सारिवा, पुरानपाढा, सुगन्धवाली, नागरमोया और सौंठ के साथ सिद्धकर शूतल किया तुष्णा जड़ गर्भिणी की उचर की निवृत्ति के लिये पिलाना चाहिये ॥ १३ ॥

सूद्रीलापद्मकोशीरश्रीपर्णीचन्दनं तथा । मधुकं च पथ्यसा च सारिवामलकं तथा ॥ १४ ॥

पित्तज्वररहरः कायो गर्भिणीनां प्रशास्यते ।

मुनेका, पदुमकाठ, खस, गम्मारी, लालचन्दन, मुलहठी, क्षीरकाकोली, सारिवा और आंवला को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाय करके पिलाने से गर्भिणी जियों का पित्तज्वर नष्ट होता है ॥

पीतं विश्वमजातीरै नैवयेद्विषमज्वरम् ॥ ५ ॥

सौंठ को बकरी के दूध में पीस कर पीने से गर्भिणी का विषम उचर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

हीवेरालुरक्खन्दनबलाज्ञान्याकवरसादनी-

सुस्तोशीरयवासपर्णद्विवाकार्थं पिवेद् गुर्विणी ।

नावावर्णहजातिसारकदे रक्खतुती वा उचरे

योगोऽयं मुनिनिः पुरा निगदितः सूत्यामयेष्टतमः ॥ ६ ॥

हीवेरादि कथ—सुगन्धवाला, सोनापाठा को छाल, लालचन्दन, वरियारा, घरियाँ, गुरुच, नागरमोया, खस, जवासा, पित्तगपड़ा और अतीस लाग लेकर विधिपूर्वक क्वाय करके गर्भिणी स्त्री यदि पीवे तो अनेक वर्ण के तथा अनेक पीड़ाओं के सहित अतीसार रोग में, रक्त के बहने में, उचर में तथा सूतिका रोग में लाग करता है। पहले के मुनियों ने इस योग को उचम कहा है अर्थात् यह योग इन सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

ज्वरातिसारे गर्भिण्याः शस्तं सामे स्त्रोगिते । समज्ञा मधुकं लोध्रं फागितं शक्तरान्वितम् ॥

ज्वरातिसार में—ज्वरातिसार, आमतिसार और रक्तातिसार में मवीठ, मुलहठी, लोष और काणित को समान भाग लेकर पीस कर उसमें शक्तरा मिलाकर गर्भिणी स्त्री सेवन करे तो यह योग उपर्युक्त रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ७ ॥

प्रवाहिकार्यं गर्भिण्याः शस्तं सामे स्त्रोगिते । आग्रज्ञारुद्धवः वदायेलहयेष्वाजासकरम् ॥

अनेन लोहमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ।

प्रवाहिका रोग में—गर्भिणी स्त्री प्रवाहिका रोग में विसमें आम और रक्त दोनों मिले हों (प्रवाहिका साधारण हो अथवा आमतिसार तथा रक्तातिसार से युक्त हो) उसमें आम और जामुन के विधिवद् बने काय में धान के खोल की सत्तू को मिलाकर ऐह बनाकर बोटे तो उसके रोग नष्ट हो जाते हैं और ग्रहणी रोग भी नष्ट ही जाता है ॥ ८ ॥

शुष्ठीविश्वक्रष्णं तु यवसक्तुसमन्वितम् ॥ ९ ॥

गर्भिणीं पाययेष्वायश्चूर्ध्वतीसारनाशनम् ।

वमन और अतीसार में—सौंठ और बैल के क्वाय में यव का सत्तू मिलाकर गर्भिणी स्त्री को पिलावे तो उसका वमन और अतीसार दोनों नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

पूरिनपर्णीश्वलावासानियूहो रक्तपित्तजित् ॥ १० ॥

गर्भिण्याः कामलाशोकथासकासाजवरापहः ।

रक्तपित्त में—पृष्ठिपाणी (पिठिव), वरियारा और अरुसे क्वाय (गर्भिणी के) रक्तपित्त को नष्ट करता है और गर्भिणी स्त्री के कामला-शोय, शास, कास तथा उचर को नष्ट करता है। कुस्तुम्बरीणा करकं तु तप्त्वलोक्षकसंयुतम् ॥ ११ ॥

पिवत् सशक्तरं हृष्णं गर्भिणीच्छुद्विवारणम् ।

वमन में—घरियाँ का विधिपूर्वक कल्प बनाकर उसमें तप्तुलोक्ष करके वमन और शक्तरा मिलाकर गर्भिणी को पिलाना हृष्ण के लिये दितकारो है और गर्भिणी के वमन को नष्ट करता है ॥ ११ ॥

विश्वमजा च लाजाग्नु पिवेद्वृद्धिर्द्वृग्नि गर्भिणी ॥ १२ ॥

बैल की गुदी और धान के लाजा का जल गर्भावस्था के वमन में पिलाना चाहिये ॥ १२ ॥

भार्गीशुष्ठीकणाचूर्णं गुच्छेन श्वासकासंहृतम् ।

शस कास में—सारंगी (बमनेठी), सोठ और पीपल इसको समान आग लेहर विधिवत चूर्ण करके गुड़ के अनुपान से सेवन करने से गर्भिणी का शास-कास नष्ट होता है ॥

अजमोदा नागरं च पिष्पली जीरकं समयम् ॥ ३३ ॥

तच्छूरं सगुडचौद्रं गर्भिण्या वह्निश्वेपनम् ।

मन्दाचिन में—अजमोदा (अजमोदा), सोठ, पीपल और जीरक को समान आग लेहर विधिवत चूर्ण करके मधु तथा पुराने गुड़ के अनुपान से सेवन करने से गर्भिणी की अविन दीप हो जाती है ॥ ३३ ॥

विश्वाविनमन्यपवचं वा पाटला नागरेण वा ॥ ३४ ॥

सिद्धमग्नु पिवेच्छीतं गर्भिणी वातरोगनुत् ।

वातरोग में—बेल तथा गनियार की छाल अथवा पाढ़ की छाल और सोठ से सिद्ध किया गुआ (काथ) शीतल करके गर्भिणी का वातरोग नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

चन्दनं मधुकोशीरं नायुष्यं तिलाश्वत्या ॥ ३५ ॥

अजश्ली च मञ्जिष्ठा रविशूलं पुनर्नवा । श्रेष्ठः शोफहो लेपो गर्भिणीनां विशेषतः ॥ ३६ ॥

शोधार लेप—कालचन्दन, मुलहठी, खस, नागकेतर, तिल, मेषशंगी, मबोठ, मदार की जड़ और पुनर्नवा को समान आग लेहर विधिपूर्वक लेप बनाकर लेप करने से शोध को नष्ट करता है विशेष कर गर्भिणी खो के शोध का नष्ट करने में यह अत्युत्तम है ॥ ३५-३६ ॥

वातशुष्कस्य गर्भस्य चिकित्सा—

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेदि । सा वृंहीर्णयैः संसिद्धं दुर्घं मांसरसं पिवेत् ॥ ३ ॥

वातशुष्क गर्भ चिकित्सा—गर्भं यदि वात दोष से सूख गया हो और उदर भरता दुष्मा नहीं आठ हो अर्थात् गर्भ के बढ़ने से जो उदर की वृद्धि होती है वह नहीं होते तो वृद्धि करनेवाली शोधियों के द्वारा विधिवत् दूष अथवा मांसरस को सिद्धकर पीना चाहिये ॥ ३ ॥

शुक्रांतवमजाताङ्गं प्रयत्नं माहतादित्यम् । त्यक्तं जीवेन तत्त्वस्माक्षितं चावतिष्ठते ॥ ३ ॥

यदि शुक्र तथा आतंव ही शायु से पीड़ित हुए हों तो गर्भ के अक्ष-प्रस्थ नहीं बनते हैं । वह गर्भ जीवात्मा से स्वाज्य होता है अर्थात् जीवात्मा से उसका सम्बन्ध नहीं रहता है इस कारण वह कथित होता दुष्मा (पक्ता दुष्मा) उदर में पड़ा रहता है ॥ ३ ॥

शुक्रांतवाङ्गो वायुरुदराध्मानकृद्धवेते । कदाचिच्छृत्तदाध्मानं स्वयमेवाऽप्तेत्तराम् ॥ ३ ॥

शैशमेयेन गर्भोऽयं हतो लोकध्वनिस्तदा । स चापि गर्भो भवति लोके नामोदाराह्यः ॥

धान्यकृटदन्तमुख्या स्याच्चिकित्सा तूर्योरपि ॥ ४ ॥

कभी शुक्र तथा आतंव से आद्रं हुई वायु उदर में आधमान कर देता है (पेट को फुला देती है) । पुनः वही आधमान स्वयं निकल जाता है । इसके किये यह लोकापवाद है कि गर्भ की नैगमेय ने हर लिया । इसी गर्भ को लोक में नागेशर गर्भ भी कहा जाता है । उपरोक्त इन दोनों प्रकार की अवस्थाओं में वान कूटना मुख्य चिकित्सा है अर्थात् गर्भिणी को वान कूटने को कहना चाहिये इससे दोनों प्रकार के गर्भ निकल जाते हैं ॥ ३-४ ॥

प्रसवमासमाह—

मवमे द भै मासि नारी गर्भं प्रसूयते । एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यथा विकारतः ॥ ५ ॥

प्रसवमास—सावारणतः नवे तथा दसवे मास में खो गर्भ को प्रसव करती हैं (यह प्राकृतिक है) । कभी २ ग्राहरहवे और बारहवे मास में भी प्रसव करती हैं अथवा इससे भी अधिक तेरहवे मास में भी प्रसव करती हैं किन्तु ऐसा विलम्ब रोगादि विकारों के कारण होता है ॥ ५ ॥

प्रसवमासमतिक्रम्य त्वायिनि गर्भं चिकित्सामाह—

वातेन गर्भसंकोचात् प्रसूतिसमयोऽपि वा । गर्भं न जनयेन्नारी तत्याः शृणु चिकित्सतम् ॥ १ ॥
कृष्णयेन्मुशलेनैषा कृत्वा धान्यमुख्यलल्ले । विषमं चाऽऽसनं यानं सेवेत् प्रसवार्थिनी ॥ २ ॥

प्रसव मास के (अवधि के) व्यतीत होने पर भी गर्भं प्रसव नहीं होने की चिकित्सा—खो खी वात के दोष से गर्भ का सङ्कोच हो जाने से प्रसव के समय हो जाने पर भी प्रसव नहीं करती है, उसकी चिकित्सा यह है कि वह खी ओखल में धान रखकर मूसल से कूटे तथा विषम आसन का सेवन करे (टेढ़ा-मैढ़ा बैठे) तथा दिलने-दुलने वाले यान (सवारी) पर चढ़े । इस प्रकार करने से प्रसव हो जावेगा ॥ २ ॥

काले प्रसवविलम्बे चिकित्सामाह—

प्रसवस्थ विलम्बे तु धूपयेद्विनितो भगम् । कृष्णसर्वस्य निर्मोक्षेस्तथा पिष्टीतकेन वा ॥ १ ॥

प्रसव के विलम्ब होने पर योनि में धूर देना चाहिये । कृष्णवर्ण के सर्प की केनुल और गैनफल का धूर देना उत्तम है ॥ १ ॥

तन्तुना लाङ्गलीमूलं वधनीयाद्वस्तपाद्योः । सुवर्चलां विशेषां वा धारयेदाणु सूतवे ॥ २ ॥

सूत में कलिहारा के मूल को बांधकर हाथ और पैरों में बांधना चाहिये । अथवा हुरदुर की वा विशेष्या (गिरोय, विकंकत, लांगो, त्रिवृत्, पाटका, नागदन्ती वा इस्तिशुण्डी) की जड़ को बांधना चाहिये, इससे शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ २ ॥

कृष्णं वचा चापि जलेन पिण्डा सैरण्डलतेला खलु नाभिलेपात् ।

सुखप्रसूति कुकुरेऽङ्गनानां निर्पीडितानां बहुमिः प्रमादैः ॥ ३ ॥

पीपल और वच की जड़ से पौधकर उसमें एरण का तेल मिलाकर नाभिस्थान पर लेप करने से अनेक प्रकार के दुःखों से दुःखित हुई खियों की भी सुखपूर्वक प्रसव शीघ्र हो जाता है ॥ ३ ॥

यातुलुक्ष्यस्य शूलं तु मधुकैः संयुतं तथा । शूतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४ ॥

विजौरे नीदू की जड़ और मुलहठी को समान आग लेहर चूर्ण कर शूत के अनुपान से पिलाने से खी को सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ४ ॥

हृष्टोऽस्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्धवा ।

कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽविलवितेनापि ॥ ५ ॥

इैख के दृचर दिशा की ओर के मूल को गर्भवती अपने शरीर के प्रमाण की लम्बाई के बराबर के सूत में बांधकर कमर में बांधी तो शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ५ ॥

ताळस्थ चोत्तरं मूलं स्वप्नमाणेन तन्तुना । बद्धवा कट्टयो तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥

ताड़ के वृक्ष की उत्तर दिशा की जड़ को गर्भवती अपने शरीर के बराबर के प्रमाण के सूत में बांधकर कमर में बांधी तो निश्चित ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ६ ॥

प्रयत्नपूर्ण्याः परिभद्रस्थ यज्ञा मूलं वृक्षा काकजूड़ासुसूत्यम् ।

कट्टयं वद्धं योवितां सम्प्रसूति योगे युक्त्या संहृतं साधु कुर्यात् ॥ ७ ॥

अपामार्ग की जड़ अथवा पारिमद की जड़ अथवा काकजूड़ा की जड़ को लेहर (उपरोक्त विषय से सूत्र में बालीमाँति बांध कर) आसन-प्रसव खी के कटि में बांध देने से सुखपूर्वक शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ ७ ॥

हृष्टामृतं च सोमश्च चित्रमानुश्च भाग्निः । उच्चैश्वाश्च तुरगो मनिदेरे निवसन्तु ते ॥ ८ ॥

इदं मृतमपां समुद्दृष्टं वै तत्र लघु गर्भस्मिं विमुच्यतु चिः ।

तदनलपवनार्कवासवास्ते सह छवणाम्बुधरैर्दिशान्तु शान्तिम् ॥ ९ ॥

मुक्ताः पादा विषाक्षाश्च मुक्ताः सूर्येण रथमयः ।
मुक्तः सर्वभयद्वार्थं एष आ चिरं आ चिरम् द्वाहा ॥ १० ॥

मुख-प्रसव कारक च्यावनार्थं मंत्र—हे खी ! थहा तेरे मन्दिर में अमृत, सोम, विश्वामीति और उच्चावचा तुरग (घोड़ा) निवास करे । यह जलों में से अमृत निकाला है । हे खी ! तेरे इस छोटे से गर्भ को यह अमृत छुड़ा देवे अथवा निकाल देवे और अग्नि दायु, सूर्य, हनु वा विष्णु तथा लवणामूल तुल्य शान्ति देवे । सब प्रकार के पादा (बन्धन) और अविपाश (बन्धव विशेष) छूट गये हैं, सूर्यदेव ने अपनी रथिम (फिरों) छोड़ दी है, सभी भयों से हे गर्भ तूं छूट गया है, हे गर्भ अब विलम्ब न कर विलम्ब न कर बाहर आ, आ, यह जो कुछ कहा गया है उब ठीक है ॥ ८-१० ॥

जलं च्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् । पीत्वा प्रसूयते नारी इष्टवा चोभयत्रिशकम् ॥ ११ ॥

इस च्यावन मंत्र को सात बार पढ़कर उससे जल को अभिमन्त्रित करके आसनप्रसवा को उत्ते पिलाकर अमयत्रिशक (दोनों ओर से बने तीस अङ्क के) गर्भ को ढिखावे इससे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ॥ ११ ॥

कलारसाणिः पश्चदिग्गष्टाद्विभिः क्रमात् । अकंशं सुद्वैर्वेदैभभयत्रिशकं भवेत् ॥ १२ ॥

अमयत्रिशक यंत्र—१६, ६, ८ एक पंक्ति में हो, २, १०, १८ इसरी १२, १४, ४ तीसरी पंक्ति में हो । इस प्रकार सब का क्रम एक जैसा हो तो दोनों ओर से जोड़ने से तीस संख्या आयेगी ॥ १२ ॥

हिमवहृष्णिणे पार्वते सुरसा नाम यच्छिणी । तस्या नुपूरशब्देन विशालया भव गर्भिणी ॥ १३ ॥
इमं श्लोकं पठित्वा तु खिपेद्वच्छतपञ्चकम् । गर्भिण्युपरि सद्यः सा गर्भं मुख्यति गर्भिणी ॥ १४ ॥

अक्षययोग—हिमालय के दक्षिण भाग में सुरसा नाम की यक्षिणी रहती है, उसके नुपूर के शब्द (ज्ञानकार) से हे गर्भवती । तू गर्भ को निकाल कर सुखी हो, इस अर्थ वाले श्लोक (मंत्र) को पढ़कर पांच अक्षत (विना दूष द्वृष्ट बाल के पांच दानों) को लेकर गर्भवती के छपर फेंके तो उसे शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ १३-१४ ॥

मूढगर्भस्य चिकित्सामाद—

आनिः संकटकाले वंद्येन्द्रियः प्रसाविताः सम्यक् ।

लक्षणं यज्ञः सम्भ्रास्ता शूवातः क्रिया: कुर्युः ॥ ३ ॥

मूढगर्भ चिकित्सा—जो खी वैष संकट के समय में (मूढ़ गर्भ की अवस्था में अथवा प्रसव के समय) भलोर्भाति अनेक लियों का प्रसव कराई हो तथा सम्पूर्ण यश को प्राप्त की हो वही खी वैष इस (प्रसव) क्रिया को निरन्तर करावे ॥ ३ ॥

गर्भं जीवति मूढं तु गर्भं अस्तेन निर्देश । हस्तेन संपिण्याक्तेन योनेन तर्गतेन सा ॥

स्त्रे तु गर्भं गर्भिण्या योनी शास्त्रं प्रवेशयेत् ॥ ३ ॥

गर्भ यदि जीवित हो परन्तु मूढ़ हो गया हो तो उसे यत्नपूर्वक निकालना चाहिये अर्थात् दायों में वी लगाकर योनि में प्रवेश कर के यत्नपूर्वक मूढ़ गर्भ को पकड़ कर सीधा करके बाहर करे । यदि गर्भ अन्दर ही मर गया हो तो योनि में शुख प्रवेश करके यत्नपूर्वक उसे काट कूट कर निकाले ॥ ३ ॥

शाश्वतास्त्रार्थविद्युती लघुहस्ता भ्रयोऽविहता । स्वेतनं तु श्वेतं न कथंचन दारयेत् ॥ ३ ॥

गर्भ छेदन याग्य खी दैय—जो खी शुज चलाने में कुशल हो और शाज जान में और क्रिया में कुशल हो, जिसके हाथ में लघुता हो और जो निमीक हो ऐसी (खी दैय) शुख दारा

मरे हुए गर्भ को काट कर बाहर निकाले । किन्तु यदि गर्भ में चेतना हो तो शुख से करापि छेदन न करे ॥ ३ ॥

स दार्थमाणो जननीमात्सानं चापि मारयेत् । नोपेषेत् सूतं गर्भं सुहृत्यमिष्य पण्डितः ॥
स चाइऽशु जननीं हन्ति प्रभूतानं यथा पश्यम् ॥ ४ ॥

यदि जीवित गर्भ शुख से काटा जावेगा तो वह गर्भ गर्भवती को मार देगा और स्वर्य भी मर जावेगा । अगर उदर में गर्भ मर गया हो तो उसे शीघ्र किसी चल से बाहर कर देना चाहिये क्योंकि वह मरा हुआ गर्भ गर्भिणी को शीघ्र इस प्रकार मार देता है जिस प्रकार प्रचुर प्रशाण में खाया हुआ अन्न पश्च को मार देता है ॥ ४ ॥

गर्भच्छेदनप्रकारः—

श्वददङ्गं हि गर्भस्य योनौ सउजति तस्मिक । सम्यविनिहंरेच्छ्ववा रक्षेत्तारीं प्रथान्ततः ॥ ३ ॥

गर्भच्छेदन प्रकार—मृत गर्भ का जो २ अङ्ग में फैसा हो दैय उसी २ अङ्ग को मलीर्भाति काटकर गर्भ को बाहर निकाले तथा गर्भिणी की यत्नपूर्वक रक्षा करे ॥ ३ ॥

एवं निर्वहतशब्दयों तां सिन्देहुष्वीन वरिणा । ततोऽध्यक्षशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ॥
एवं सूक्ष्मी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशास्यति ॥ २ ॥

गर्भ को काटकर निकालने के पश्चात् उस खी का उत्थानोदक से सिंचन और तेल अथवा धी का अम्बज करके योनि में स्नेह (तेल या घृत) लगा देना चाहिये । इससे योनि सृदु हो जाती है और उसकी पीड़ा भी शमन हो जाती है ॥ २ ॥

प्रसूताया योनौ सत्त्वादेस्तु चिकित्सतम्—

तुम्बीपञ्चं तथा लोध्रं समभागं तु पेषयेत् । तेन लेपो भगो कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरक्षता ॥ १ ॥

प्रसूता के योनिक्षत आदि की चिकित्सा—प्रसूता की योनि में क्षत हो जाने पर तुम्बी (लौकी) के पत्ते और लोध्र को समान भाग लेकर पीसकर लेप लगा देने से योनि का क्षत शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पलाशोद्धुबरफलं तिलतैलसमन्वितम् । योनौ प्रलिसं भधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २ ॥

योनि का गाढीकरण—पलाश और गूलर के फलों को समान भाग लेकर पीस कर उसमें तिल का तेल और मधु मिलाकर योनि में लेप करने से योनि गाढ़ी (संकुचित) हो जाती है ॥ २ ॥
प्रसूता वनिता वृद्धकुद्धिहासाय संपिबेत् । प्रातर्भयितसंभिश्चां विसाहात् कणजदाम् ॥ ३ ॥

प्रसूता के बड़े दुर पेट को घटाने का उपाय—प्रसव के दिन से तीन सप्ताह पश्चात् के प्रातःकाल पिपरामूल को मयित अर्थात् मठ्ठा के साथ पीस कर पीवे तो इससे प्रसूता का बदर छोटा हो जाता है ॥ ३ ॥

वज्रसेनात—

आसुरीहिंगुसिन्धूर्थं काञ्जिकेनावलोडितम् । गर्भाशये सूतं गर्भं पातयेत् पानयोगतः ॥ ३ ॥

मूढगर्भ चिकित्सा—राई, शुद्ध हींग और सेंधानमक को समान भाग लेकर पीस कर कांबी में मिलाकर पिलाने से गर्भाशय में मरा हुआ गर्भ शीघ्र-बाहर हो जाता है ॥ २ ॥

ओलोडय काञ्जिकैर्घ्येदीपुरीषं वस्त्रागालितम् । ससिन्धग्रासुरीतैलं विषमागतगर्भेन्तुत् ॥ २ ॥

ओडी के मल को कांजी में मिला कर कपड़े में छान कर उसमें सेंधानमक, वस्त्र अंधवा अजवाइन, राई और तिल का तेल मिलाकर पिलाने से विषम गूठगर्भ को निकाल देता है ॥ २ ॥

परुषकश्चिकालेपः स्थिरामूलकृतोऽथ चात् । नाभिवस्तिभगाद्येषु मूढगर्भापक्षणः ॥ ३ ॥

फालसा अथवा शालिपर्णी की जड़ को पीसकर लेप बनाकर नाभि, वस्ति तथा मग आदि में लेप कर देने से मूढ़ गर्भ बाहर हो जाता है ॥ ३ ॥

इति मूढगमेरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ प्रसूताया उद्दरस्यापरोपद्रवानाम्

प्रसूतानां न पतिता जठरादपरा यदि । तदा स कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दत्वाम् ॥ १ ॥

उद्दरस्थित अपरा से उपद्रव—प्रसूता स्त्री के उद्दर से यदि अपरा (जेर आदि) नहीं गिरे तो उससे शूल, आध्मान और मन्दादिन आदि रोग हो जाते हैं ॥ १ ॥

तटिचकित्सा—

केशबेष्टियाऽकुल्या तस्याः कण्ठं प्रवर्षयेत् । निर्मांककटुकालाखुकृतवेष्टनसर्वपैः ॥ १ ॥

लाङ्गूलीमूलकश्चेत्पाणिप्रसूतिका योषिदपरापातनाय वै ॥ २ ॥

अपरा की चिकित्सा—अकुल्ली पर केश को लपेट कर प्रसूता के कण्ठ पर विसना चाहिये, इससे अपरा निकल जाती है अथवा साँप की केंचुळ, कटुम्बी, तोरी तथा श्वेत सरसों को समान माग लेकर चूर्ण कर सरसों के तेल में मिलाकर भलीभांति योनि को धूपित करने से अपरा गिर जाती है अथवा करियारी की जड़ के विषवर्त बने कल्क को प्रसूता के हाथ और पांव के तलवों पर लेप करने से अपरा निश्चय ही गिर जाती है ॥ १-२ ॥

हस्तं छिञ्चनखं स्तिर्घं सूरीयोनी शनैः चिषेद् । अपरां तेन हस्तेन अनवित्री विनिहृतेत् ॥

अपरा निकालने की विधि—बच्चा पैदा करने वाली स्त्री अपने हाथों के नखों को भलीभांति काट कर और हाथों को घृतादि से स्तिर्घ कर प्रसूता की योनि में थोरे २ प्रवेश करके उन हाथों से अपरा को निकाल लेवे ॥ ३ ॥

अथ सूतिकारोगाधिकारः

पृथिव्यां पतिते वरसे योनौ पिण्डहनमिष्यते । अप्रवेशो यथा वायोस्तथा संरक्षणकिया ॥ १ ॥

प्रसव हो जाने पर शीघ्र ही योनि को दबाना चाहिये और सङ्कुचित करना चाहिये, तथा ऐसी किया करनी चाहिये जिससे योनि में वायु प्रवेश करने न पावे ॥ १ ॥

वायुः प्रकृपितः कुर्यादिसंरूप्य स्थिरं च्युतम् । सूताया हृदिक्षुरोवस्तिशूलं मक्कलशंक्षितम् ॥

मक्कल रोग के लक्षण—प्रसव काल की प्रकृपित वायु गर्भाशय से बहते हुए रक्त की अवस्था कर प्रसूता के हृदय, शिर तथा वरित स्थान में शूल उत्पन्न कर देता है, इस शूल को मक्कल शूल कहते हैं ॥ २ ॥

मक्कलस्य चिकित्सा—

संचूर्णितं यवधारं यिवेष्टकोष्ठेन चारिणा । संपिण्डा वा यिवेष्टारी मक्कलस्य निवृत्तये ॥ ३ ॥

मक्कल चिकित्सा—यवधार का दलक्षण चूर्ण बनाकर उष्ण बल के साथ प्रसूता खीं पीवे अथवा घृत के साथ पीवे तो मक्कलशूल की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

पिण्डली पिण्डलीमूलं मरिचं गजपिण्डली । नागरं चित्रकं च्यर्यं रेणुकैलाजमोदिकाः ॥ २ ॥

सर्वपौ हिङ्ग भार्गी च पाठेन्द्रयवज्जीरकाः । महानिष्वास मूर्वा च विषा तित्का विडङ्गकम् ॥

पिण्डलयादिगोपो होष कफमास्तनाशनः । गुरुमशूलउवरहरो दीपनश्चाऽमपाचनः ॥ ४ ॥

धीपल, पीपरामूल, मरिच, गवर्षीपल, सौंठ, चित्रकमूल, च्यर्य, रेणुका, इलायची, अब्दमोदा, सरसों, शुद्ध हींग, बम्नेठी, पुराइनपाढ़ी, इम्फजौ, ज्वीरा, महानिष्वास (वकायन), मूर्वा, अतोस, कुटकी और वायविंडग के समान मिलित योग को पिण्डलयादि यज्ञ कहते हैं, इसके सेवन से

कफ, वायु, गुरुम, शूल और ज्वर का शमन होता है, अग्नि दीप होती है तथा धाम का पाचन होता है ॥ २-४ ॥

काथमेषां पिवेष्टारी लवणेन समन्वितम् । मक्कलशूलगुरुमध्यं कक्षानिलहरं परम् ॥ ५ ॥

इस पिण्डलयादि यज्ञ का विविष्टवैक काय बनाकर उसमें सेवानमक का प्रक्षेप देकर यदि प्रसूता खीं को पिलाया जाय तो मक्कल शूल और गुरुमरोग नष्ट होते हैं । यह कफ तथा वायु दोष को नष्ट करने में अति उत्तम है ॥ ५ ॥

त्रिकट्वादि चूर्ण—सौंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेश्वर और धनियां को समान मात्रा लेकर विविवर चूर्ण कर उसमें पुराना गुड मिलाकर खाने से मक्कलशूल नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शोणं बोलं सघृतं सगुडं गुटकीकृतं गिलितम् ।

मक्कलशूलम् हनित समूङ्गं सशोणितातङ्कम् ॥ ७ ॥

शोणबोलादि—रक्तवर्ण के बोल को घृत तथा पुराने गुड के साथ बटी बनाकर खाने से मक्कल शूल तथा सभी प्रकार के रक्त के अन्यान्य उपद्रव समूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

हिङ्गं शुद्धं सपर्विष्कं भुक्तं मक्कलशूलनुद ॥ ८ ॥

शुद्ध हींग को घृत के अनुपान से खाने से मक्कलशूल नष्ट होता है ॥ ८ ॥

प्रसूताया हिंसान्याह—

प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत् । व्यायामाम् मधुरुनं क्रोधं शीतसेवां च वर्जयेत् ॥ १ ॥

प्रसूता खीं के दित्यकर कार्य—प्रसूता खीं योग्य आहार-विहार को करे । व्यायाम, मैथुन, क्रोध और शीतल पदार्थ का व्यवहार आदि त्याग देवे ॥ १ ॥

मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपज्ञायते । सकृद्धूसाध्योऽसाध्यो वा भवेष्टपृथ्यं समाचरेत् ॥

प्रसूता खीं को मिथ्याचार अर्थात् अनुचित आहार-विहारादि के कारण जो रोग उत्पन्न होते हैं वे कष्टसाध्य अथवा असाध्य ही होते हैं । इसलिये प्रसूता को पूर्ण पथ्य करना चाहिये ॥ २ ॥

अथ सूतिकारोगनिदानम्

मिथ्योपचारात् संकलेशाद्विषमाज्जोर्णमोजनात् । सूतिकायात्तु ये रोगा जायन्ते द्वाहगात्रं ते ॥

प्रसूता के अनुचित आहार-विहार करने से, रोगबनक अन्न के सेवन से, विषम जोजन से तथा अब्रों में शोजन करने से जो रोग उत्पन्न होते हैं वे अस्यन्त कठिन होते हैं ॥ १ ॥

अङ्गमर्दी उवरः कठपः पिपासा गुरुगात्रता । शोकः शूलातिशारी च सूतिकारोगलशूलनुदम् ॥ २ ॥

सूतिकारोग के लक्षण—अब्रों का दूटना, उवर, कम्पन, पिपासा, शरीर में गुरुता, शोक, शूल और अतीसार होना ये सब सूतिकारोग के लक्षण हैं जो उपरोक्त कारणों से हो जाते हैं ॥ २ ॥

उवरादीनां रोगविशेषाणां निदानविशेषमाह—

उवरातीसारशोयाश्च शूलानाहबलध्याः । तन्द्राहृचप्रसेकाया वातश्लेषमसुद्धवाः ॥ ३ ॥

उवरादि रोग—उवर, अतीसार, शोक, शूल, अनाह, उवर की क्षीणता, तन्द्रा, अरुचि तथा प्रसेक आदि ये सभी उपद्रव वात-कफ के दोष से उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

कृच्छ्रसाध्या हिं ते रोगाः क्षीणमांसवलाश्रिताः ।

ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥

यदि प्रसूता का मांस तथा उवर की क्षीण हो गया हो तो ये सभी रोग कष्टसाध्य होते हैं तथा ये सभी रोग और उपद्रव सूतिका नाम के रोग कहे जाते हैं ॥ ४ ॥

अथ सूतिकारोगचिकित्सामाह

सूतिकारोगशास्त्रयं कुर्याद्वात्हरीं क्रियाम् । दशमूलकृतं काथं प्रोष्णं दथाद् धृतान्वितम् ॥
सूतिका चिकित्सा—सूतिका रोग को शान्ति के लिये बातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । दशमूल की सभी ओषधियों को लेकर विषिवत् काथ बनाकर उसमें धृत का प्रक्षेप देकर किञ्चित् दण्ड रहते २ पान कराने से सूतिका रोग शमन होता है ॥ १ ॥

अमृतानागरादसहचरभद्रोक्तपञ्चमूलजलदजलम् ।

शृतजीतं मधुयुतं धामथथविचिरेण सूतिकातङ्कम् ॥ २ ॥

गुरुच, सौठ, कटसरैया, भद्रमोया, अजवाइन, लघु पञ्चमूल (शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरु), नागरमोया और दुग्धवाला को समान भाग लेकर विषिपूर्वक काथ कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र ही सूतिका रोग शमन हो जाता है ॥ २ ॥

देवदार्वादिः—

देवदारु वचा कुष्ठं पिण्डली विष्वमेषजम् । भूनिभ्वः कटफलं मुस्तं तिक्का धान्यं हरीतकी ॥ गजकृष्णा च दुःश्पर्शा गोचुर्धृष्टन्वयासकः । बृहत्यतिविषा छिक्का कर्कटं कृष्णजीरकम् ॥ २ ॥ समभागान्वितरेते: सिन्युरामठसंयुतम् । काथमष्टावशेषं तु प्रसुतां पाथयेत्तिव्यम् ॥ ३ ॥ शूलकासउवरथासमूर्च्छाकृपशिरोरतिभिः । युक्तं प्रलापतुद्वाहतन्द्रातोसारवन्तिभिः ॥ ४ ॥ निहनित सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्धवम् । कथायो देवदार्वादिः सूतायाः परमैषवम् ॥ ५ ॥

देवदार्वादिः काथ—देवदारु, वच, कुठ, पीपल, सौठ, चिरायता, काषफर, नागरमोया, कुटकी, धनिया, हरट, गजरीपल, मटकरैया, गोखरु, जवासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गुरुच, काकड़ा तिंगी और कृष्ण जीरक को समान भाग लेकर विषिपूर्वक अष्टमांशवशेष काथ बनाकर शुद्ध हींग और सेवानमक का प्रक्षेप देकर प्रसूता स्त्री को पिलाने से शूल, कास, ऊंचर, श्वास, मूर्छा, कम्पन, शिरःशूल, प्रलाप, तृप्ता, दाह, तन्द्रा, अतीसार और वमन से युक्त सूतिका रोग जो वात-पित्त और कफ से उत्पन्न हुआ हो नष्ट होता है । यह देवदार्वादिः काथ सूतिका रोग की परम ओषधि है ॥ ५-५ ॥

निरुण्डयादिकाथः—

संयोजितो दलितया कण्या कवोष्णो निरुण्डिकालशुननागरजः कंषायः ।

पीतो निहनित कफमास्तकोपजातं सूत्यामयं सकलमेव सुदृहतरं च ॥ १ ॥

निरुण्डयादिः काथ—निरुण्डी, लहसुन और सौठ को समान भाग लेकर विषिपूर्वक काथ करके किञ्चित् उप्त रहते उसमें पीपल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कफ-वातु के दोष से उत्पन्न सूतिका रोग जो कठिन अवस्थाओं में भी हो नष्ट होता है ॥ १ ॥

सहचरादिः—सहचरकुलथथुक्तदक्षारुतेत्सकाथः ।

पीतः सहकुलवणः धमयति शूलउवरी सूत्याः ॥ १ ॥

सहचरादिः काथ—कटसरैया, कुलयी, पोइकरमूल, दारुहलदी, देवदारु और वेत को समान भाग लेकर विषिवत् क्वाथ करके उसमें शुद्ध हींग तथा सेवानमक का प्रक्षेप देकर पान करने से शूल ऊंचर सहित सूतिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पञ्चमूलादिः—

पञ्चमूलस्य वा काथं तप्तलोहेन संगतम् । सूतिकारोगनाशाय पिवेद्वा तथातां सुराम् ॥ २ ॥

पञ्चमूलादिः क्वाथ—पञ्चमूल (लघुपञ्चमूल) का क्वाथ बनाकर उसमें लोहा को तपाकर तुक्का कर सूतिका रोग को नष्ट करने के लिये पिलाना चाहिये अथवा पञ्चमूल से युक्त तुक्का पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

पञ्चजीरकपाकः—

जीरकं स्थूलजीरकं शतपुष्पाद्युयं तथा । यवानी चाजमोदा च धान्यकं भेदिकारपि च ॥ १ ॥ शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चिक्ककं हुप्ताऽपि च । विद्वानीकलचूर्णं तु कुष्ठं किञ्चित्पलकं तथा ॥ २ ॥ पृतानि पलमात्राणि गुडं पलसं भत्तम् । चीरं प्रस्थदूषं द्यात्सर्विषः कुडर्वं तथा ॥ ३ ॥ पञ्चजीरकपाकोद्यं प्रसूतानां प्रशस्यते । युज्यते सूतिकारोगे यज्ञे उच्चे ॥

कासे खासे पाण्डुरोगे काशर्थं वातामयेषु च ॥ ४ ॥

पञ्चजीरकपाक—जीरा, स्थूलजीरक (करबोरी), सौफ, सोवा, जवाइन, अजमोदा, धनिया, मैथी, सौठ, पीपल, पिरामूल, चिक्ककमूल, हाँडबेर, विद्वारीकन्द के फल का चूर्ण, कुष्ठ और कृष्ण जीरक प्रयेक एक २ पल, पुराना गुड़ सी पल, दूष दो प्रस्थ और बी एक कुडव (एक पाव) लेकर वाक की विधि से पाक सिद्धकर लेवे । इने सूतिका रोग, योनिरोग, ऊंचर, क्षय, कास, श्वास, पाण्डुरोग, कृष्टा तथा बातरोगों में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १-४ ॥

सौमायशुण्ठी—आउयस्यास्त्रलियुभमत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः

पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमय प्रस्थिष्यते नागरम् ।

प्रस्थाधं गुडवद्विपाच्य विधिना सुषित्रयं धान्यकान्वितमयः पञ्चपलं पलं क्षुमिरिषोः साजाजिजीरादपि ॥ १ ॥

ध्योवान्मोदवदलोदगेन्द्रसुमनःसद्विविदीनां पलं

पलं नागरस्त्रदसंज्ञकमिदं सौमायदं योषिताम् ।

तुट्क्षुदिवरवद्वाहशोषर्मनं सधासकापायंह

पलीहृदयाविविनाशनं कुमिहरं भन्दासिलस्त्रीपनम् ॥ २ ॥

सौमायश शुण्ठीपाक—गौ का धृत दो अज्जो, गौ का दूष दो प्रस्थ (दो सेर), शर्करा ५० पल और सौठ का चूर्ण आपा प्रस्थ लेकर गुडपाक की विधि से पाक कर उसमें धनियां का चूर्ण ३ पल, सौफ का चूर्ण ५ पल, वायविंड का चूर्ण १ पल, जीरा का चूर्ण १ पल, कृष्णजीरा का चूर्ण १ पल, सौफ, मरिच, पीपल, नागरमोया, तेजपात, हन्दबौ, जाविनी और छोटी इलायची के दाने का चूर्ण एक २ पल मिलाकर पाक प्रस्तुत कर लेवे । यह खियों को सौमाय देनेवाला है तथा पिपासा, वमन, ऊंचर, दाह और शोष को शमन करता है और श्वास, कास और कृमि रोग को नष्ट करता है तथा मन्दादिन को प्रदीप करता है ॥ १-२ ॥

नन्यचतुः

नागरं कणशः कृष्वा प्रस्थमात्रं लिष्वरवः । अजादुपवाक्कहृन्द्वन्द्वहिना ॥ १ ॥ वनीभूते तु पयसि तस्माच्छुण्ठीं समुद्ररेत । अतिसूचमं विनिषिष्य शोषयेत्तात्पे स्वे ॥ २ ॥

वृत्तमानीं समावायं तद्वृद्धं तु पुनः एचेत् । यावरिष्यद्वक्मायति तत्सत्त्र विनिषिष्येत् ॥

वातुजीतं तुगां वेलं धान्यकं जीरकद्वयम् । मिशिमाकवलकं शुण्ठीं लवलं च शतावरीम् ॥

तालमूलीं विकटुकं कपिकच्छूरं च षट्कटु । जातीफलं जातिपत्रीं शक्फाटं वृद्धदारकम् ॥ ५ ॥

त्रिवृतां पद्मवीजं च त्रिकलां च ललात्रयम् । जलं सेव्यं वाजिगन्वाचवृद्धनागरुकारवीः ॥ ६ ॥

कहूलमजगन्धां च द्रावामसोटवारिजे । अजमोदं च बादामं नारिकेलगतं तथा ॥ ७ ॥

कपूरमध्रकं लोहं च लंगं ताम्रं शिलाजतु । स्वर्णमालिकमयेत्प्रस्थेकं कर्षमान्नकम् ॥ ८ ॥

कृष्णांकृत्य विषेत्त्रां पाणिरुद्धारं भृद्येद् दृढम् । ततः खण्डतुलां परवा तथा तच्च कियां चरेत् ॥

खण्डनागरकं नाशना भैषज्यमिदं खादेत् प्रातः सायं च भेषजम् ॥ १० ॥

सौठ को खण्ड २ करके एक प्रस्थ लेवे और इसे दो आदक (८ प्रस्थ) बकरी के दूष में

मन्द २ अथि पर पकावे जब दूध गाढ़ा हो जावे तब उसमें से सौंठ के खण्डों को निकाल कर अस्थन्त सूक्ष्म पीसकर तीक्ष्ण धूप में सुखावे तथा गोधृत एक मानी (आधा प्रस्तु) लेकर उक दूध (जिसमें से सौंठ निकाल ली गयी है) में मिलाकर पुनः उसे पकावे जब उसका पिण्ड होने लगे अर्थात् अब खोला हो जावे तब उसमें उपरोक्त सौंठ मिला देवे तथा दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, बंशलीचन, बायविंग, धनिया, जीरा, कुणजीरा, सौफ, अकरकरा, सौंठ, लकड़, शताबरी, मूसली, सौंठ, मरिच, पीपल, केवाच के बीज, सौंठ, मरिच, पीपल, पिपरामूळ, चाव, चित्रकमूल, जायफर, जाविनी, सिवाड़ा, विवारा, विकृता, कमल के बीज, आमला, दूरद, बहेड़ा, बरियारा, अतिवला (सहदेरै नागवला, ककड़ी), सुगंधवाका, खस, अस्तगन्ध, चन्दन, अगर, करजीरी, कक्षील, अबगम्भा (मरीरी), दाल, अखरोट, कमल, अब्रमोदा, बादाम, नारियल, कपूर, अभ्रकमस्त, लौहमस्त, वंगमस्त, ताम्रमस्त, शुद्ध शिलाजीत और स्वर्णमिकमस्त के इक्षण चूर्ण तथा मस्त को पृथक् २ प्रत्येक एक २ कर्ष की मात्रा से लेकर उसमें मिलाकर हाथों से मणीमाति मर्दन करे पश्चात् एक सौ पल शर्करा लेकर उसका पाक कर (बाशनी बना) उसमें मिला देवे इस प्रकार विविवर पाक प्रस्तुत कर लेवे । यह खण्डनागरक नाम की उत्तम औषधि है इस औषधि को बछानुसार प्रातः-सायं खाना चाहिये ॥ १-१० ॥

खीणामतिहितं नाम्र पथ्यापथ्यविचारणा । चये पाण्डो उवरे कासे आसे मन्दानले तथा ॥
संग्रहायां रक्तागुले प्रदरे सोमरोगके । दुरघचये मूत्रकृच्छ्रे कामलायां गलग्रहे ॥ ११ ॥
पितरोगेषु सर्वेषु वातपित्तगदेषु च । सूतिकापवनव्याधौ शास्तमेतत्त्वं संशयः ॥ १२ ॥
अथिन्यां पूर्वमुदितः सेष्यो योगोऽयमुत्तमः । एषा सौमायदा शुण्ठी खीणां पुत्रप्रदा शुभा ॥

यह खियों के लिये अस्थन्त हितकर है, इसके सेवन में पथ्यापथ्य का विचार नहीं है। यह पाक क्षय, पाण्डु, उवर, कास, थास, मन्दायि, संग्रहायी, रक्तगुश्म, प्रदर, सोमरोग, दुरघचय (दूध की न्यूनता), मूत्रकृच्छ्र, कामला, गलग्रह, सभी प्रकार के पितरोग और वातपित्तरोग, सूतिका रोग तथा वातव्याधि अथवा सूतिका की बायु में हितकर है। इन सभी रोगों को यह पाक नष्ट करता है। इसे पहले अधिनोकुमारों ने बनाया था। यह अस्थन्त उत्तम तथा सेवन के लोक्य है। यह सौमायदशुण्ठो योग खियों को पुष्ट देनेवाला है ॥ ११-१२ ॥

अन्यत्र—नागरस्य पलान्यष्टौ वृत्तस्थं पलविशतिम् ।

खीराडकेन संयुक्तं खण्डस्याधर्थतुलां पचेत् ॥ ३ ॥

शताह्वाजीरकव्योषविसुगन्धियवानिकाः । कारवीमिसिच्व्याभिमुस्तानां च पल वलम् ॥२॥
लेहीभूतमिदं सिदं वृत्तभाष्टे निष्वापयेत् । तथ्यातिवलं खादेषु सूतिका तु विशेषतः ॥३॥
बृशं वर्णं तथाऽसुवृद्धं वलीपलितनाशनम् । वयसः स्थापनं हृष्टं मन्दाग्नेदीपनं परम् ॥४॥
आमवातप्रशमनं सौमायदकरमुत्तमम् । मरकरलशूलशमनं सूतिकारोगनाशनम् ॥ ५ ॥

सौंठ ८ पल, गोधृत २० पल, गोदुध एक बाढ़क (चार प्रस्तु), शकरा ५० पल, सबको एकत्र कर गुडपाक की विषि से पाक कर उसमें सौफ, जीरा, सौंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, ज्वाइन, कालाजीरा या मंगरेल, सौफ, चब्य, चित्रकमूल और नागरमोथा प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल लेकर मिलाकर विषिपूर्वक लेह की भाँति सिद्धकर घृतमाण्ड (घृत से स्तिवर्ष पात्र) में रख देवे। सूतिका रोगों को इसे अविवल के अनुसार १ मात्रा से सेवन करना चाहिये। यह बलदायक, वर्णप्रसादक, आयुर्वर्धक, बलीपलित-नाशक, आयुस्थापक और हृदय को हितकर है। यह मन्दाग्नि को अस्थन्त दोस्र करता है, आमवात को शमन करता है, उत्तम सौमायदायक है, मरकरलशूल को शमन करता है और सूतिकारोग को नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

प्रतापलङ्केश्वरो रसः—

एकेनदुष्वन्द्रानलवार्धिदन्तीकलैकभागं फ्रमशो विमिश्म ।

सूताभ्रगन्धोषणलोहशङ्कवन्योप्तामस्मविषं च पिष्ठम् ॥ १ ॥

प्रसूतिवातेऽनिलदन्तवन्ये सार्वाभ्यसा वलमसुव्य लिङ्गात् ।

वातामये श्लेषमगदेशसि स्थात् पुरामृताद्वात्रिफलायुतोऽथम् ॥ २ ॥

भृशङ्गवेदव्र एष हन्ति संसनिपात उवरमुग्रूपम् ।

निजानुपानैर्जिपथ्ययुक्तः सर्वातिसारान् ग्रहणीविकारान् ॥ ३ ॥

प्रतापलङ्केश्वरनामवेयः सूतः प्रयुक्तो विरिराजपुञ्च्या ॥ ४ ॥

प्रतापलङ्केश्वर रस—शुद्धापाद, अब्रकमस्त और शुद्धगन्धक १-१ मात्र, मरिच का चूर्ण ३ मात्र, लौहमस्त ४ मात्र, शहमस्त ८ मात्र, जंगली गोठें की मस्त १६ मात्र और शुद्ध विष २ मात्र लेकर प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली कर उसमें सद ओषधियों को मिलाकर मणीमाति पीस कर रख देवे। प्रसूतिवात में जब बायु से दाँत बैठ जावे तब इसे आद्रेक के स्वरस के अनुपान से वश क्रमण (डेढ़ रत्ती से ३ रत्ती तक की मात्रा में अदस्या तथा बल के अनुसार) चढाना चाहिये। कफ, तथा अर्णरोग में इस रस को शुद्ध गुणगुण, गुरव, आद्रेक तथा विफला के चूर्ण अथवा काथ के अनुपान से सेवन कराना चाहिये। केवल आद्रेक के स्वरस के अनुपान से सेवन करने से सनिपात सहित अद्य ज्वर को नष्ट करता है और अपने २ अनुपान से सेवन करने से और उसके अनुकूल पथ्य करने से सभी प्रकार के अतीसार और ग्रहणों को नष्ट करता है। प्रतापलङ्केश्वर नाम के इस रस को पावंती-जी ने प्रयोग किया था ॥ १-४ ॥

प्रसूताया नियमसमयावधिमात्रा—

सर्वतः परिषुद्धा स्थात् स्तिवधपथ्याऽलपभोजना । स्वेदाभ्यङ्गपरा निर्थं भवेन्मासमतनिद्रिता ॥

प्रसूता के नियम—स्व प्रकार से प्रसूता का शारीर-वक्ष-गृहादि स्वच्छ रखना चाहिये, तथा स्तिवध एवं अथ भोजन कराना चाहिये, निर्थ स्वेद और तैलाभ्यङ्ग आदि कराना चाहिये।

इस प्रकार एक मास तक बिना आलस्य के इस नियम से रखना चाहिये ॥ १ ॥

प्रसूता सार्वामासान्ते दृष्टे वा पुनरारुत्वे । सूतिकानामहीना स्थादिति धन्वन्तरेर्भेतम् ॥ २ ॥

प्रसूता खी डेढ़ मास के पश्चात अथवा पुनः अनुमती हो जाने पर प्रसूता नाम से हीन हो जाती है, ऐसा अन्वन्तरि का मत है ॥ २ ॥

उपद्रवैविशुद्धां च विज्ञाय वरवर्णिनीम् । उपर्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः परिहारं विसर्जयेत् ॥३॥

जब सब प्रकार के उपद्रवों से विशुद्ध (मुक्त) होकर प्रसूता खी पूर्ण स्वस्थ हो जावे तथा चार मास के पश्चात् परिहारों को (सूतिका के पथ्यादिकों को) त्याग देवे ॥ ३ ॥

अथ स्तनरोगस्य निदानपूर्विकां चिकित्सामाह

सहीरौ चाप्यदुम्बो वा दोषः प्राप्य स्तनौ खियाः ।

रक्तं मांसं च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥

स्तनरोग निदान—त्री के दूष सहित अथवा बिना दूष के दो स्तनों में कुपित बातादि दोष ग्राप्त होकर रक्त और मांस को दूषित करके स्तनरोग कर देते हैं ॥ १ ॥

स्तनरोगाणामतिदेशेन लक्षणान्याह—

प्राप्तानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रविषि विना । लक्षणानि समानानि बातादिविद्रविषिलङ्गैः ॥

स्तनरोग का लक्षण—जिस प्रकार बातादिविद्रविषि होती है उसी प्रकार रक्तजं विद्रविषि के विना

योगरत्नाकरः

वात, पित्त, कफ, सत्रियात तथा आगन्तुक (अभिवातादि से उत्पन्न) भेद से पांच प्रकार के स्तनरोग बाह्यविद्रुति के लक्षणों के समान लक्षण बाले होते हैं ॥ २ ॥

स्तनरोगचिकित्सा—

शोथं स्तनोस्थितमवेच्य भित्तिवश्वधाद्यद्विद्वधावभिहितं बहुधा विधानम् ।

आमे विद्वद्विति तथेव गते च पांक यस्याः स्तनौ सततमेव च निर्गृहीतौ ॥ ३ ॥

पित्तज्ञानि सुशीतानि द्रव्याण्यन्त्र प्रयोजयेत् । जलौकाभिहैरेवकं तस्तनामुपनाहयेत् ॥ २ ॥

स्तनरोग चिकित्सा—स्तन में उत्पन्न हुए शोथ को देखकर विद्विरोग में कहे हुए अनेक प्रकार की चिकित्साओं को करना चाहिये । आम अवस्था में, विदाही अवस्था में तथा पक जाने पर क्षी यथाक्रम से पित्तनाशक एवं सुशीतल द्रव्यों का प्रयोग (लेपादि लगाना), जलौका द्वारा रक्तमोक्षण कराना और उसके स्तनों में उपनाहादि (सेकादि) किया करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

लेपो विद्वालामूलेन हनित पीडां स्तनोस्थिताम् ।

निशाकनकलकाश्यां लेपः ग्रोक्तः स्तनर्तिहा ॥ ३ ॥

इन्द्राधण (माइरि) की जड़ को विषिपुर्वक पोसकर लेप लगाने से तथा इल्ली और घटूरे के पत्तों का काशक बनाकर लेप करने से स्तन से स्तन की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

लेपाभिहनित मूलं स्तनरोगं वन्ध्यकर्कटयाः । निर्वाप्य लस्तलोहं सलिले यद्वा पिवेत्तत्र ॥ ४ ॥
वाश कोड़ी की जड़ का लेप बनाकर लगाने से तथा लोहे की अंडिन में तपाकर पानी में बुझाकर उस पानी को पिलाने से स्तनरोग शमन होते हैं ॥ ४ ॥

इति स्तनरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ क्षीरदोषचिकित्सा

वक्तुं सुश्रुते—

इत्प्रसादो मधुरः पक्षाहारनिभित्तजः । कृतस्तनदेहात् स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिष्ठीयते ॥ १ ॥

स्तन्य के लक्षण—मोजनयाक से उत्पन्न रस का मधुर प्रसाद भाग जो सम्पूर्ण शरीर से स्तनों में आ जाता है उसे स्तन्य (दूध) कहते हैं ॥ १ ॥

माधवेनाप्युक्तम्—

गुरुभिर्विविष्टैरन्नेदुष्टेदेवैः प्रदूषितम् । क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कदपते ॥ २ ॥

दूषित स्तन्य—गुरु अन्त के सेवन तथा और भी अनेक प्रकार के वातादिकों को दूषित करने वाले आहारादि के सेवन से वक्तादि दोष माता अवाय वाय के दूध को दूषित कर देते हैं, वह दूध अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २ ॥

कथायं सलिलप्लावि स्तन्यं माहतदूषितम् ।

वात दोष से दूषित दूध—वात दोष से दूषित दूध स्वाद में कथाय तथा जल में गिराने पर कपर ही कपर तैरने वाला होता है ॥

कठवग्नलुब्धं पीतराजिमद् पित्तसंक्षितम् ॥ ३ ॥

पित्त दोष से दूषित दूध—पित्त दोष से दूषित दूध स्वाद में कठ, अम्ल तथा लवणरस वाला तथा पीली रेखाओं से युक्त होता है ॥ ३ ॥

कफदुषं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छुलम् ।

कफदोष से दूषित दूध—कफ दोष से दूषित दूध गाढ़ा, चिकना तथा जल में गिराने पर हृष्ट जाता है ॥

स्त्रीरोगचिकित्सा

द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यारसवलिङ्गं विद्योषजम् ॥ ४ ॥

द्वन्द्वज तथा सत्रियातज दोष से दूषित दूध—जिस में दोषों के मिलित लक्षण दिखाई दे उसे द्वन्द्वज और जिसमें तीनों दोषों के लक्षण दिखाई दे उसे प्रिदोषज दूध जानना चाहिये ॥ ४ ॥
अद्वृष्टं चाम्बुनिचिसमेकीभवति पाण्डुरम् । मधुरं च्विवर्णं च तप्रसन्नं विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥

शुद्ध दूध—ओ दूध दूषित नहीं होता है वह जल में छोड़ने पर शीघ्र ही जल में मिक जाता है और वर्ण में पाण्डुर (श्वेत) तथा स्वाद में मधुर रस वाला होता है तथा वह वातादि दोषों के वर्ण से रहित अपने वर्ण में ही रहता है । ऐसे दूध को शुद्ध दूध कहते हैं ॥ ५ ॥

तच्चिकित्सा—

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीं व्यहं पिवेत् । वातव्याधिहरं स्विः पीत्वा मृदु विरेचयेत् ॥

वातज दूध चिकित्सा—वात दोष से दूषित दूध में तीन दिन तक दशमूल का कवाय पीना चाहिये । तथा वातव्याधि नाशक सिद्ध घृत मिलाकर मृदु विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपयोलं निर्द्वच्छन्दनम् । धात्री कुमारश्च पिवेष्वाथयित्वा स्वाकरम् ॥ २ ॥

पित्तम दूध चिकित्सा—पित्त दोष से दूषित दूध में गुरुच, शतावरी, पटोलपत्र, नीम की छाल और रक्तवन्दन समान भाग लेकर विधिवत कवाय बनाकर उसमें जर्करा का प्रक्षेप देकर माता अथवा धाय तथा बालक को भी पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

कफदुषे घृतं पेयं यद्यैसैन्धवसंयुतम् । राठुष्पैः इतनौ लिम्पेच्छुशोश्च दशनच्छ्रद्धौ ॥ ३ ॥

सुखमेवं वमेहालः कफकोपश्च शाभ्यति ।

कफज दूध चिकित्सा—कफ दोष से दूषित दूध में जेठी मधु तथा सेवानमक का चूर्ण मिलाकर गोघृत पिलाना चाहिये अथवा सेवानमक और जेठी मधु के योग से घृत सिद्ध कर पिलाना चाहिये और मैनफल के फूलों को पीस कर कल्क बनाकर स्तनों पर तथा शिशु के ओढ़ों पर भी लेप कर देना चाहिये । इससे बालक सुखपूर्वक वमन कर देता है तथा कफ का कोप भी शान्त हो जाता है ॥ ३ ॥

द्वन्द्वदुष्टं द्वियोगाभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां विशेषयेत् ॥ ४ ॥

द्विदोषज दूध चिकित्सा—दो दोषों के लक्षणों से दूषित दूध को पहले कहे हुए दो दोषों को शमन करने वाले योगों को देकर शुद्ध कराना चाहिये ॥ ४ ॥

स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्ट शक्तवामं जलोपमयम् । नानावर्णहजं चार्धविवर्ज्य मुपवेशयते ॥ ५ ॥

त्रिदोष दूषित दूध के लक्षण और चिकित्सा—त्रिदोष दूषित दूध को पीने वाले बालक का मल आमयुक्त, जल के समान, अनेक वर्ण का तथा अनेक पीडाओं से युक्त, आवा बैधा हुआ (आधा-गाढ़ा) आवा पतला होता है ॥ ५ ॥

पाठा मूर्चा च भूनिरवदाशुशुप्तीकिङ्ककाः । सारिवाधवतिक्षारयं तत्र स्तन्यविशेषाधनम् ॥

पुराणपाढ़ी, मूर्चा, चिरायता, दारुहलदी, सोंठ, इन्द्रजी, सारिवा, नागरमोथा और कुटकी को समान भाग लेकर कवाय बनाकर पिलाने से त्रिदोष से दूषित दूध का शोधन होता है ॥ ६ ॥

स्तन्यजननविधिः—

भूमिकूम्याप्तमूलस्य क्षीरपिष्ठस्य यो रसम् । पिवेत् सशक्तरं तस्याः क्षीरं बहु विवर्धते ॥ ७ ॥

दुर्घटवधेक योग—विदारीकन्द की गौ के दूध के साथ पीसकर उसका रस निकाल कर उसमें शक्तरा मिलाकर पान करने से प्रसुता क्षीर का दूध बहुत बढ़ता है ॥ ७ ॥

शतावरी क्षीरपिष्ठा पीता स्तन्यविवर्धनी । कवोणं कण्या पीतं क्षीरविवर्धनम् ॥ ८ ॥

८८ यो० च०

शतावरी को गौ के दूध के साथ पीसकर पान करने से तथा किञ्चित् डण गौ के दूध में पीपल का चूर्ण मिलाकर पान करने से प्रसूता का दूध बढ़ता है ॥ २ ॥

वनकार्पासकेक्षणां मूलं सौवीरकेण वा । विद्विकन्दं सुरया पिवेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥ ३ ॥

वनकपास तथा इख की जड़ को सौवीर (कांजी) के साथ पीसकर पिलाने से अथवा विदारी कन्द के चूर्ण को सुरा के साथ पिलाने से प्रसूता का दूध बढ़ता है ॥ ३ ॥

वज्रकाञ्जिकम्—

पिपली पिपलीमूलं चव्यं शुष्टी यवानिका । जीरके छें हरिद्रे छे विंड सौवर्चं तथा ॥ ३ ॥
पूतैरेवौषधैः पिष्टैरनालं विपाचयेत् । तद्यागिनवलं पीवा प्रसूता सुखमशुते ॥ २ ॥
आमवातहरं वृथं कफ्फन्नं वातानाशनम् । तद्वज्रकाञ्जिकं नामना क्षीणामिनविवर्धनम् ॥

मक्कललशूलशमनं परं चीरविवर्धनम् ॥ ३ ॥

वज्रकाञ्जिक योग—पीपल, पिपलमूल, चाव, सॉठ, जवाहन, जीरा, कृष्णजीरा, इलटी, विंडलवण और सौवर्चं छवण को समान आग लेकर कूट पीसकर, (कांजी ८ पल, जल १२ पल, पीपल आदि प्रस्त्रेक चार २ मासा एकत्र कर पाक करे ८ पल शेष रहने पर उतार लेवे) इस सिद्ध कांजी को अग्निवल के अनुसार पीने से आमवात का नाश होता है। यह घृत कफ नाशक और वात नाशक है। यह वज्र कांजी नामक योग जियों की अविन को बढ़ाता है, मक्कललशूल को नष्ट करता है और दूध की अस्थन्त बढ़ाता है ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्यम्—

यत्पथं यद्यप्थं च रक्तपित्तेतु कीर्तिंतम् । प्रदरेऽपि यथादोषं तत्तु नारी रुजित्यजेत् ॥ १ ॥
पथ्यापथ्य—जो पथ्य और जो अपथ्य रक्तपित्तरोग में कहा गया है, प्रदर रोग में भी वही दोषानुसार खीं को त्यागना चाहिये ॥ १ ॥

चातव्याविमतां पथ्यापथ्यं च यदुदीरितम् । योनिव्यापरसु सर्वासु विद्ध्यात् यथामलम् ॥

वातव्यापथ्य में जैसा पथ्यापथ्य कहा गया है वैसा ही सभी योनि-व्यापत् रोगों में दोषानुसार जानना चाहिये ॥ २ ॥

शालयः षष्ठिका सुद्धा गोधूमा लाजसक्तवः । नवनीतं घृतं चीरं रसाला मधु शकरा ॥

पनसं कदलं धानी द्राशाम्लं स्वादु शीतलम् ॥ ३ ॥

कस्तुरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् । चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गे मृदुशशया हिमानिलः ॥ ४ ॥
संतर्पणं प्रियाशलेषो विहाराश्च मनोरमाः । प्रियंकरं चाच्चापानं गमिणीनां हितं सदा ॥ ५ ॥

गमिणी के लिये पथ्यापथ्य—शालिधान का चावल, साठी का चावल, मूंग, गेहूँ, धान के लावा का सत्तू, मञ्जुखन, घृत, दूध, रसाला योग, मधु, शर्करा, कटहल, केला, आँवला, दाख, अम्लरस, मधुररस, शोतल पदार्थ, कस्तूरी, चन्दन, माला चारण और कर्पूर का लेप, चन्द्रमा के किण्ण, स्नान, अस्यकृ, कोपल शथ्या, शीतल वायु, शृणिकर पदार्थ, प्रिय का आलिगन, मन को भाने वाला विदार (आमोद-प्रमोद) तथा प्रिय अन्न और पेय पदार्थ का सेवन ये सभी गमिणी के लिये पथ्य हैं ॥ ३-५ ॥

स्वेदनं बमनं चारं कदचं विषमाशनम् । अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गुर्विणीनां महविनिः ॥ ६ ॥

स्वेद कर्म, बमन, चार पदार्थ, दूषित अथवा रक्षादि और विषम भोजन को महविनिः ने गमिणी की के लिये अपथ्य कहा है ॥ ६ ॥

सूतिकाखयेतु रोगेतु वातश्लेषमोझवेषु च । तत्र रोगानुकलयेत् पथ्यापथ्यान् विनिर्दिशेत् ॥

सूतिका रोगों में तथा वात-कफ के दोष से उत्पन्न हुए रोगों में उन २ रोगों में कहे हुए पथ्यापथ्य के अनुसार पथ्यापथ्य करें ॥ २ ॥

इति खीरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ बालरोगाधिकारः

तत्र बालरोगाणा निदानानि लक्षणानि चाऽऽह—

धाय्यास्तु गुहमिर्भौज्यविषमैर्षिलैस्तथा । दोषा देवे प्रकृष्ट्यन्ति ततः हत्यन्यं प्रदुष्यति ॥ १ ॥

बाल रोगों के निदान—धाय अथवा माता के गुरु भोजन करने से, विषम भोजन करने से तथा दोषों को कुपित करनेवाले पदार्थ का भोजन करने से अथवा अन्य दोष वाले भोजन करने से वातादि दोष शरीर में कुपित हो जाते हैं और कुपित होकर दूध को दूषित कर देते हैं ॥ १ ॥

मिथ्याहाराविहितिः । दुष्टा वातादयश्यः । दूष्यन्ति पवस्तेन जायन्ते ध्याधयः शिशोः ॥

मिथ्या (अनुचित) अद्वार-विहार करनेवाली धाय अथवा माता के शरीर में वातादिक तीनों दोष दूषित हो जाते हैं और दूध को दूषित कर देते हैं जिससे दूध पीने वाले शिशु को रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

वाताद् दुष्टं शिशुः स्तन्यं पिवत् वातगदातुरः । चामद्वरः कृशाङ्गः इथाद् बद्धविष्मूत्रमाहतः ॥

वात से दूषित दूध को पीनेवाला बालक वातरोग से पीड़ित हो जाता है, उसका स्वर क्षीण हो जाता है, अङ्ग दुर्बल हो जाता है और उसका मळ-मूत्र तथा अधोवायु अवरुद्ध हो-हो कर आता है ॥ ३ ॥

शिवक्षो भिक्षमलो बालः कामलापित्तरोगवान् । तुष्णालुहणसर्वाङ्गः विच्छुद्दिष्टं पथ्यः पिवन् ॥

पित्त से दूषित दूध को पीनेवाला बालक स्वेददुक्त रहता है (उसे निरन्तर पसीना तुष्णा करता है), उसे विडमेद रहता है, कामला तथा पित्तरोग से युक्त रहता है, उपावाला होता है और उसका सम्पूर्ण अंग उत्पन्न रहता है ॥ ४ ॥

कफदुष्टं पिथृत् चीरं लालालुः इलेपमरोगवान् । निद्रादितो जडः शूनवक्त्राक्षश्चर्दनः शिशुः ॥

कफ से दूषित दूध को पीनेवाला बालक लालासांवी होता है (उसे निरन्तर लार गिरता है), कफरोग वाला होता है, निद्रालु होता है, शिथिलाङ्ग होता है, उसके मुख और नेत्र में शोथ रहता है और वह वमन किया करता है ॥ ५ ॥

शिशोर्वक्तुमक्षमस्यान्तर्गतवेदनाङ्गानोपायमाह—

शिशोस्त्रिवामित्रां च रोदनाशलश्वेदुजम् ॥ १ ॥

बालक के रोग परीक्षा—बालक की तीव्र पीड़ा अथवा मन्द पीड़ा उसके रोगे से ज्ञानना चाहिये। तीव्र पीड़ा में अधिक रोता है, मन्द पीड़ा में कम रोता है ॥ १ ॥

कुकूपकमाह—

कुकूपकः चीरदोषाच्छिर्यनामेव वर्तमनिः । जायते तेन तन्नेत्रं कपूरारं च स्वेच्छुद्धः ॥ १ ॥

शिशुः कुर्याह्वालाटाविकण्ठनासावयवैषम् । शक्तो नार्कपमां द्रष्टुं न वर्मोन्मीलनश्चमः ॥ २ ॥

कुकूपक रोग के लक्षण—कुकूपक रोग दूषित दूध के पीने से बालकों के नेत्र की पलकों में होता है जिससे नेत्र में कण्ठ होता है तथा बार २ उससे स्वाव होता है और बालक मस्तक, नेत्र, कण्ठ देश और नासिका को विस्तार करता है, उसे सूखे की प्रभा को देखने की शक्ति नहीं रहती है और न वह नेत्र के पलकों को खोलने में ही समर्थ होता है ॥ २ ॥

रेवतीश्रहलक्षणमाह—

ब्रह्मैः स्फोटैश्चित् गात्रं पङ्गान्धं ल्लेदसुक् । मिञ्जवर्चा उवरी द्वाही रेवतीश्रहलक्षणम् ॥ १ ॥
रेवतीश्रह के लक्षण—जब बालक रेवतीश्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर ब्रणों अर्थात् जो बहने वाले होते हैं उन ब्रणों तथा स्फोटों (नवीन ब्रणों) से व्याप्त होता है और उसके शरीर से कीचड़ के गन्ध के समान दुग्धन्ध युक्त रक्त का लाल होता है तथा उसे मलभेद, ज्वर और दाढ़ होता है ॥ १ ॥

पूर्णालक्षणमाह—

अतीसारो उवरस्तुष्णा तिर्यक्प्रेचणरोदनम् । नष्टनिद्रस्थोद्भिरो ग्रस्तः पूर्तनया शिशुः ॥
पूर्तना श्रह के लक्षण—जब बालक पूर्तनाश्रह से जुष्ट होता है तब उसे अंतसार, ज्वर और तुषा होती है, तिरछा देखता है, रोता है, उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है और निरन्तर डिंग रहता है ॥ १ ॥

गन्धपूर्तनालक्षणमाह—छुर्दिः कासो उवरस्तुष्णा वसागान्धोऽतिरोदनम् ।

स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूर्तनया भवेत् ॥ १ ॥

गन्धपूर्तना श्रह के लक्षण—जब बालक गन्धपूर्तना श्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, कास, ज्वर और तुषा होती है, उसके शरीर से वसा (चर्ची) के समान गन्ध आती है, वह अत्यन्त रोता है, दूध नहीं पीता है और उसे अतीसार भी हो जाता है ॥ १ ॥

शीतपूर्तनालक्षणमाह—

वेपते कासते छींगो नेत्ररोगो विगन्धिता । छर्यतीसारयुक्तश्च शीतपूर्तनया शिशुः ॥ १ ॥

शीतपूर्तना श्रह के लक्षण—जब बालक शीतपूर्तना श्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर कॉप्ता है, उसे कास होता है, उसका शरीर छींग हो जाता है, उसके शरीर से दुर्गन्धि आती है, वमन होता है और अतीसार से युक्त रहता है ॥ १ ॥

मुखमण्डनिकालक्षणमाह—

प्रसववर्णवदनः शिराभिरभिसंबृतः । मूखगन्धिश्च बद्धाशी मुखमण्डनिकाश्रहे ॥ १ ॥

मुखमण्डनिका श्रह के लक्षण—जब बालक मुखमण्डका श्रह से जुष्ट होता है तब उसका वर्ण प्रसवन् (स्वच्छ) होता है, मुख प्रसव रहता है, शरीर की शिरायें उमर आती हैं, उसके शरीर से मूत्र की गन्ध के समान गन्ध आती है और मोजन बहुत करता है ॥ १ ॥

नैगमेयश्रहलक्षणमाह—छुर्दिः स्थन्दनकण्ठास्यशोषो मूर्च्छा विगन्धिता ।

उर्ध्वं पश्येद्वैहृष्टन्तान् नैगमेयश्रहं वदेत् ॥ १ ॥

नैगमेय श्रह के लक्षण—जब बालक नैगमेय श्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, लालाचाव अथवा स्वेद होता है, कण्ठ तथा मुख सुखा रहता है, यूर्ध्वा होती है, शरीर से दुर्गन्धि आती है, उर्ध्वदृष्टि अर्थात् ऊपर देखने वाला होता है और दांतों को चवाता है ॥ १ ॥

स्तनाच्छ्रह स्तनद्वेषी सुखाते चानिश्च मुद्दुः । तं बालमचिराद्वन्ति श्रहः सम्पूर्णलच्छणः ॥ २ ॥

असाध्य लक्षण—जब श्रहजुहू बालक का नेत्र स्तम्भित हो जाय, स्तन नहीं पीवे, ज्वर र निरन्तर मूर्च्छित होता रहे ऐसे बालक को सम्पूर्ण लक्षणों वाला प्रत्येक श्रह शीघ्र ही मार देता है ॥

अथ चिकित्सा ।

तप्राऽऽद्वै बालरोगाणां चिकित्सा—

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ञवरादिषु । तदेव कार्यं बालानां कि तु दाहादिकं विना ॥ १ ॥

बालरोग चिकित्सा—बड़े मनुष्यों के उवरादिकों में जो ओषधि पहले कही गयी है वह

बालकों के लिये भी करनी चाहिये किन्तु दाहादि किया जो बड़े मनुष्यों के लिये की जाती है वह नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

दाहादिकं विना अविनदाहस्त्रवसनविरेचनशिराव्यधादिकं विना ।

महाकष्टे चोप्तप्ने वमनविरेकात्यपि दथात् ।

दाहादि के विना अर्थात् अविनदाह, श्वारकर्म, वमनकर्म, विरेचन कर्म, तथा शिराव्यध अदि किया के विना वमन-विरेचन आदि भी करना चाहिये ॥

यत आह सुकृतः—

विरेकवस्तिवसनान्यते कुर्याद्वच नारयथाव । त एव दोषा दूष्याश्च उवराद्या व्याधयम् ते ॥

अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा रवस्य कनीयसी ॥ १ ॥

बालक को विरेचन, वस्तिकर्म, तथा वमन अत्यन्त कष्ट के विना नहीं कराना चाहिये । बालकों को भी वही दोष और दूध तथा उवरादिक व्याधियाँ होती हैं जो बड़े मनुष्यों को होती हैं व्याधि के अनुसार बालकों को भी वही ओषधि देनी चाहिये जो बड़ों को दी जाती है केवल बालकों के लिये मात्रा लघु होनी चाहिये ॥ १ ॥

कनीयसी मात्रामाह विश्वामित्रः—

विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भैषज्य । अनेनेव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्षयेत् ॥ १ ॥

बालकों की ओषधि मात्रा—जब शिशु की उत्पत्ति दृढ़ हो तब अवस्था में काढौषधियों की मात्रा विडङ्ग के फल के प्रमाण की देनी चाहिये तथा इसी प्रकार प्रथेक मास में बदाकर देनी चाहिये (प्रथम मास में एक विडङ्ग दूसरे मास में दो विडङ्ग, तीसरे मास में तीन विडङ्ग के प्रमाण की मात्रा इस प्रकार बदाकर देनी चाहिये) ॥ १ ॥

तन्मान्तरे स्वन्यथाऽप्यिदितम्—

प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्याकिङ्का । अवलेहा तु कर्तव्या मधुचीरसितादृतैः ॥ १ ॥

एकैकां वर्धयेत्तावद्यावस्थंवस्तरो भवेत् । तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावस्थोदशवस्तरः ॥ २ ॥

ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वृच्छिणि सप्ततिः । ततो बालकवन्मात्रा हासनीया शनैः शनैः ॥ ३ ॥

प्रथम मास में बालक को काढौषधि एक रत्ती के प्रमाण की मात्रा में देनी चाहिये तथा मधु, दूध, शर्करा वर्ष घृत के अनुपान से लेहवत करके चटाना चाहिये तथा प्रतिमास एक रत्ती बदा कर मात्रा देनी चाहिये जबतक कि बालक एक वर्ष तक का होवे अर्थात् प्रतिमास के बालक को उसी अनुसार उतनी ही रत्ती को मात्रा देनी चाहिये यक वर्ष के हो जाने पर १२ रत्ती (एक मासा) के प्रमाण की मात्रा देनी चाहिये ॥ इससे ऊपर अर्थात् वर्ष पूरा हो जाने पर प्रथेक वर्ष में एक २ मासा उसी नियम से सोलह वर्ष तक बदाना चाहिये अर्थात् बित्तने वर्ष का बालक हो उनने ही मासा के प्रमाण काढौषधियों की मात्रा देनी चाहिये (यदि बालक पांच वर्ष का हो तो ५ मासा १० वर्ष का हो तो १० मासा इस प्रकार करके १६ वर्ष तक का हो तब तक बदाकर १६ मासा के प्रमाण की ओषधि देनी चाहिये) पश्चात् वह मात्रा तब तक स्थिर रखनी चाहिये जबतक कि ७० वर्ष की आयु होवे अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था में मात्रा पूर्ण हो जाती है और वह पूर्ण मात्रा ७० वर्ष तक रखनी चाहिये, इसके पश्चात् मात्रा बालक की माँति भीरे २ (शरीर की शक्ति के हास होने के कारण घटानी चाहिये ॥ १-६ ॥

चूर्णकर्कलकावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्तिं । कथायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ॥ ४ ॥

ऊपर जो मात्रा कही गयी है वह चूर्णकर्कलक और अवलेह आदि ओषधियों के लिये कही गयी है, काथ के लिये उसे चतुर्गुण जानना चाहिये । अर्थात् विसे १ रत्ती ओषधि देना कहा गया हो उसे ४ रत्ती और जिसे एक मासा कहा गया हो उसे ४ मासा के प्रमाण से क्वाय देना चाहिये ॥

चीरपस्य शिशोदेंयमौषधं चीरसर्पिषा । धात्यास्तु केवलं देयं न क्षीरेणापि सर्पिषा ॥ ५ ॥

दूष पीनेवाले बालक को दूष तथा धू के साथ ओषधि देनी चाहिये किन्तु यदि माता पर्यवा धाय को देना हो तो केवल ओषधि देनी चाहिये, उसे दूष और घृत नहीं देना चाहिये ॥ ५ ॥

ज्वरस्य चिकित्सा—

सर्वं निवार्थते बाले स्तनयं नैव निवार्थते । मात्रया लङ्घयेदाश्रीं शिशोरेतद्विलङ्घनम् ॥ १ ॥

ज्वर चिकित्सा—बालक के लिये (जो केवल दुर्भाशी हो) अपथय में सब कुछ त्याग कराया जा सकता है किन्तु दूष का त्याग नहीं कराया जा सकता । यदि शिशु को लङ्घन कराने की ही आवश्यकता आपड़े तो धाय को ही (जिसका दूष वह पीता हो) ओजनादि की मात्रा में हास कराकर सहने योग्य लङ्घन (जिससे धाय क्षीण न हो जावे) करावे इसी से ही बालक का लङ्घन हो जाता है ॥ १ ॥

चीरादस्त्योषधं धात्या: चीराज्ञादस्य चोभयोः ॥ २ ॥

अचारादस्य तु बालस्य योजयेत् कुशलो भिषकः ॥

बालक यदि केवल दूष ही पीता हो तो उसके लिये धाय को ही (जिसका दूष पीता हो उसे ही) ओषधि देनी चाहिये तथा यदि बालक दूष भी पीता ही और अन्न भी खाता हो तो धाय तथा बालक दोनों को ओषधि देनी चाहिये, किन्तु यदि अन्न ही खानेवाला बालक हो तो केवल बालक को ही ओषधि देनी चाहिये ॥ २ ॥

भद्रमुस्तादिकाथः सर्वञ्जवरेतु—

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः । काथः कोषः शिशोरेष निःशेषज्वरनाशनः ॥ ३ ॥

भद्रमुस्तादि कथाथ—नागरमोथा, हरड़, नीम की छाल, परवल के पत्र और सुलहठी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कथाथ बनाकर थोड़ा राण रहेते बालक को पिलाने से सभी प्रकार के ज्वर का नाश होता है ॥ ३ ॥

एलाज्ञास्थिकटुक्रिकविफलिकावेललाबद्शक्तीविषा-

लोध्रे धातकिचिक्राद्वहपुषाविवाजमोदाः समाः ।

वस्त्रं चातुर्गी जया नृपलवा सर्वैः समाशा सिता ।

बालानां उत्तरकाश्यकासाशयनश्चूर्णोऽतिसारं जयेत् ॥ २ ॥

पलादि चूर्ण—छोटी इकायची, आम के गुठली की गिरि, सोठ, मरिच, पीपल, अंवला, हरड़, बहेड़ा, वायविंग, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, अतीत, लोध, धाय के फूल, चीते की छड़, घनियाँ, हाऊवेर, कच्चे बेल की गुददी और अजमोदा को समान भाग लेवे और सब मिलकर जितना हो उसके आठवीं भाग असगन्ध लेवे और सब के सोलहवीं भाग गुद भाग लेवे तथा ये सब मिलकर जितना हों उसके समान भाग शक्करा लेकर विधिवत् चूर्ण बनाकर (प्रथम सब ओषधियों का इलेक्षण चूर्ण बनाकर तब शक्करा मिलावे) रख लेवे । इस चूर्ण को धयावक (उचित मात्रा में) बालकों को देने से बालकों का ज्वर, कृशता (सूखा रोग) कास और अतीसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

जिहाया लेप—बालो योऽचिरजातः स्तन्यं शुद्धाति नो तदा तस्य ।

सैन्धवधात्रीमधुवृत्पथ्याकलकेन धर्षयेत्तिहाय ॥ १ ॥

जिहा का लेप—ओ बालक नृतन इत्पत्र दुआ हो और दूष नहीं पीता हो उसकी जीभ सेथानमक, अौवला, मधु, गोवृत तथा हरड़ के विधिपूर्वक बने दुए करक से विसे इससे बालक दूष पीने रुकता है ॥ १ ॥

पलंकषादिधूपः—

पलंकषा वचा कुण्डं गजचर्मादिचर्मं च । निवर्षय पत्रं चौदेण सार्वमुक्तं तु धूपनम् ॥

ज्वरवेगं निवन्त्याशु बालकानां विशेषतः ॥ १ ॥

पलंकषादि धूप—युग्मुल, बच, कूठ, हाथी का चमड़ा, मेंढ़ी का चमड़ा और नीम के पत्ते को मधु के साथ मिलाकर अग्नि में धूप देवे, इस धूप के गन्ध से बालकों के ज्वर का वेग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

मूर्वायुदत्तंस्—मूर्वानिशास्तर्परामस्तेनश्वेतासमझाभ्वृद्धकारवीणाम् ।

चीरायोषयोमिः सह येवितानासुद्वृत्तं स्याउत्तरजिञ्चिष्ठृत्याम् ॥ १ ॥

मूर्वादि उद्धर्तंस्—मूर्वामूल, हल्दी, सरसो, हींग, इतेव वच, मजीठ, नागरमोथा और कालाबीरा को समान भाग लेकर वकरी के दूष के साथ पीसकर उबटन करने से बालकों का ज्वर नष्ट होता है ॥ १ ॥

अतिसारग्रहण्योश्चिकित्सा—

घनकृष्णाहणाशूद्धीचूर्णं चौदेण संयुतम् । शिशोर्वर्षातिसारद्वनं कासं शासं चमि हरेत् ॥ १ ॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, पीपल, मजीठ और काकड़ासिंगी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु मिलाकर बालकों को चटाने से उनका ज्वर, अतीसार अथवा ज्वरातिसार नष्ट होता है तथा कास-धात्री और वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

लोध्रादि चूर्ण—लोध्रेण पिष्पली बाला बालकातिसृतौ हितः ।

लोध, पीपल और सुगन्धवाला चूर्ण बालकों के अतीसार में देने से लाग होता है ॥

श्रीरसादि चूर्ण—श्रीरसो मात्विकयुतो धातकीकृसुमैः समस् ॥

राल और धाय के फूल के चूर्ण को मधु में मिलाकर चटाने से बालकों का अतीसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

विश्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं लोध्रं गजपिष्पली च ।

काथावकेहो मधुना विभिन्नी बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ३ ॥

विलवादि रोग—कच्चे बेल की गुदी, धाय के फूल, सुगन्धवाला, लोध और गजपिष्पल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ अथवा अवलेह बनाकर उसमें मधु मिलाकर बालकों को अतीसार रोग में देना चाहिये ॥ ३ ॥

समझाधातकीलोध्रसारिवामिः श्वतं जलम् । दुर्धरेऽपि शिशोर्वेयमतीसारे समाच्चिकम् ॥४॥

समझादि काथ—मजीठ अथवा लज्जाल, धाय के फूल, लोध और शरिवा को समान भाग लेकर विधिपूर्व काथ करके उसमें मधु का प्रक्षेप देकर बालकों के मयद्वार अतीसार में भी देना चाहिये ॥ ४ ॥

विडङ्गान्यजसोदा च पिष्पलीतप्तुलानि च । पुष्पामलिद्यु चूर्णानि सुखलसेव वारिणा ॥५॥

आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेत्तिवक ।

विडङ्गादि चूर्ण—वायविंग, अजमोदा और पीपल के बीब्र के समान भाग चूर्ण को (मधु के साथ) चटाकर सुखोषण जल पिलाना चाहिये । इससे बालकों का आमातिसार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

मोचारसं समझा च धातको पद्मेसरम् । विष्ट्रैरेत्यर्वाग्यः स्यादक्तातीसारनाशिनी ॥ ६ ॥

मोचारसादि वाग्य—मोचरस, मजीठ, धाय के फूल और पद्मेसर को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्व वाग्य बनाकर देने से बालकों का रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ६ ॥

नागरातिविषामुस्तवालकेन्द्रयवैः शतम् । कुमारं पाययेत् प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥७॥

नागरादि काथ—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला और इन्द्रजी का विधिवत् व्याध बनाकर प्रातःकाल पिलाने से बालकों के सभी प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं ॥ १ ॥
लाजाः स्यद्विमधुका शर्करा चौद्रमेव च । तण्डुलोदकव्यगेन विप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥२॥

लाजादि चूर्ण—धान का लावा, जेठीमधु, शर्करा और मधु को लेकर प्रथम धान का लावा तथा जेठी मधु का चूर्ण कर उसमें शर्करा और मधु मिलाकर चावल के खुले हुए जल के अनुपान से बालकों को पिलाने से शीघ्र प्रवाहिका नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

लोध्रेन्द्रयवधान्याकधारीहीवेरमुस्तकम् । मधुना लेहयेद्वालं उवरातीसारनाशनम् ॥ ३ ॥

लोध्रादि चूर्ण—लोध, इन्द्रजौ, घनिर्या, अवला, हाङ्गवेर और नागरमोथा को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के साथ मिलाकर चटाने से बालकों का उवरातीसार नष्ट होता है ॥ ३ ॥
रजनी सरलो दार्हर्वहती गजविष्पली । पृश्निवर्णी शताह्ना च लीढा माहिकसपिषा ॥ ४ ॥
दीपनी ग्रहणी हन्ति माहतर्ति सकामलाम् । उवरातीसारपाण्डुवं बालानो सर्वरोगत्तुत् ॥

रजन्यादि चूर्ण—इलडी, सरलकाष अथवा राल, देवदारु, बड़ी कटेरी, गजपीपल, पिठिवन और सौंफ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर मधु और गोघृत के अनुपान से चटाने से यह चूर्ण अग्नि को दीप करता है, ग्रहणी रोग को नष्ट करता है, वायु को पांढ़ा अथवा वात रोग, कामला रोग, ज्वर रोग, अतीसार रोग और पाण्डु रोग आदि बालकों के सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

कासरोगचिकित्सा—

पौष्करातिविषाश्वीमागधीधन्वयासकैः । कृतं चूर्णं तु स हौदं शिशूनां पञ्चकासजित् ॥ ५ ॥

पौष्करादि चूर्ण—पुष्कर मूळ, अतीस, काकडासिंगी, पीपल और धमासा (यवासा) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु मिलाकर बालकों को चटाने से पांचों प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

मुस्तकादिरसः—

मुस्तकातिविषावासाकणाशृङ्गीरसं लिहन् । मधुना मुस्तके बालः कासैः पञ्चभिष्ठित्वैः ॥

मुस्तकादि रस—नागरमोथा, अतीस, अरुसा, पीपल और काकडासिंगी को समान भाग लेकर इनके रस अर्थात् धन क्वाय को शीतल करके उसमें मधु का प्रशेष देकर चटाने से बालक पांचों प्रकार के कास से मुक्त हो जाता है ॥ ६ ॥

व्याघ्रोक्तुमुसाम्यवलेहिका

व्याघ्रोक्तुमुसाम्यवलेहिका । मधुना चिरसंजाताविशेषोः कासान् व्यपोहति ॥ ७ ॥

व्याघ्रोक्तुमुसाम्यवलेहिका—छोटी कटेरी के पुष्प के केसरों को लेकर मधु से अबलेह बनाकर चटाने से बालकों के षड्हुत दिनों से उत्पन्न हुए कास रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

कासासचिकित्सामाद—

भान्यं शर्करया युक्तं तण्डुलोदकसंयुतम् । पानमेतत् प्रदातव्यं कासशासापहं शिशोः ॥ ८ ॥

धान्यादि पानक—घनिर्या को पीसकर अथवा चूर्ण कर उसमें शर्करा मिलाकर चावल के धोवन में धोलकर अथवा चावल के धोवन में ही घनिर्या और शर्करा पीसकर धोलकर पानक बनाकर बालकों को पिलाने से उनका कास, शास नष्ट होता है ॥ ८ ॥

द्राक्षादि चूर्णम्—

द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं चौद्रेण सपिषा । लीढं श्वासं तिहन्त्याशु कासं च तमकं तथा ॥

द्राक्षादि चूर्ण—दास, अरुसा, इरड़ और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण

कर मधु तथा गोघृत के अनुपान से चटाने से बालकों के शास, शास तथा तमक शास को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

दुरालभादिलेहः—

दुरालभादिलेहः चौद्रेण लेहयेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कासशासहरः शिशोः ॥

दुरालभादिलेह—ज्वासा, पीपल, दाख और इरड़ को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु के अनुपान से तीन रात अथवा पांच रात तक चटाने से बालकों का कास, श्वास रोग नष्ट होता है ॥

तुगा च चौद्रसंलीढा कासशासौ शिशोर्जयेत् ॥ १ ॥

तुगावलेह—बंशलोचन के चूर्ण को मधु के अनुपान से चटाने से बालकों का कास श्वास रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिककार्या छवीं च—

चूर्ण कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत् । हिकका प्रशमयेत् विप्रं छुर्दिं चापि चिरोत्थिताम् ॥

हिकका और वमन चिकित्सा—कुटकी के चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर चटाने से वात तथा हिकका को शीघ्र शान्त करता है और षड्हुत दिनों के उत्पन्न (पुराने) वमन को भी शीघ्र शान्त करता है अथवा इससे पुरानी हिकका और पुराना वमन भी शान्त हो जाता है ॥ १ ॥

आत्रास्थित्ताजसिन्धूर्थं सचौद्रं छुर्दिनुज्ञवेत् ।

आत्रास्थित्तादि चूर्ण—आम के गुठली की गिरि (कोयल), धान का लावा और सेंधानमक के समान चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से वमन नष्ट होता है ॥

घनशङ्कीविषाणां च चूर्णं हन्ति समाचिकम् । वान्ति उवरं तथा योगो मधुनाऽतिविषारजः ॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, काकडासिंगी और अतीस के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से अथवा अतीस के चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से बालकों के वमन तथा ज्वर को नष्ट करता है ॥ २ ॥

क्षीरच्छवींम्—

पीतं पीतं वसेयस्तु इतन्यं तं मधुसर्पिषा । द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ॥ १ ॥

दूध वमन चिकित्सा—ज्वो बालक दूध पी पीकर वमन कर देता हो उसे छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी दोनों के फलों के मिलित स्वरस में पंचकोल के समान मिलित चूर्ण को मिलाकर मधु अथवा गोघृत के अनुपान से चटाना चाहिये इससे दूध वमन करना नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पंचकोल यथा—पिष्ठलीपिष्ठलीमूलं चय्यचित्रकनागम् ॥

पंचकोल की परिमाण—पीपल, पिपरामूल, चाव, चित्रक और सोंठ के मिलित योग को पंचकोल कहते हैं ॥

तृष्ण्यादि—हीवरशक्कराचौद्रं लीढं तुणहरं परम् ॥ १ ॥

तुषा रोग चिकित्सा—हाऊवेर (सुगन्धवाला) का चूर्ण, शर्करा और मधु को मिलाकर चटाने से बालकों की तुषा नष्ट होती है ॥ १ ॥

आनादे शूले च—

शूतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गभासीरजो लिहन् । आनादं वातिकं शूलं हन्त्यात्तोयेन वा शिशोः ॥

आनाद और शूल चिकित्सा—सेंधानमक, सोंठ, छोटी इलायची, शुद्र हींग और ब्रह्मदण्डी (बमेठी) के समान मिलित चूर्ण को गोघृत के अनुपान से चटाने से अथवा जल के अनुपान से देने से बालकों के वातिक आनाद और शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

योगरत्नाकरः

रेचनम्—

पिद्वा गम्भर्वदीजानि इवाखुविपिनश्चुवारिणा । नाभौ गुदे वा लेपेन शिशुनां रेचनं परम् ॥
रेचक योग—रेचन के बीज और मूसे का मल को नीबू के स्वरस में पीसकर नामिस्थान अथवा गुदा पर लेप करने से बालकों का मल निस्सरण होता है ॥ १ ॥

इन्दुलोचननेत्राणि शिखिभागं हि योजयेत् । त्रुटिगम्भकमुद्दैदशतपुष्पा विचूर्णिता ॥ २ ॥
माषधृथं गवां दुधैः सेवयेहिनपञ्चकृद् । रेचयेनमृतिकां शुद्धां शिशुनां हितमौषधम् ॥ ३ ॥

मृतिका विरेचन योग—बालक यदि मृतिका मक्षण कर लिया हो अथवा गर्मावस्था में माता के मृतिका मक्षण करने पर यह योग मृतिका का विरेचन द्वारा निस्सरण करता है । छोटी इलायची १ माग, शुद्ध गम्भक दो माग, मुर्दा शंख दो माग और सौफ़ तीन माग लेकर विधि-पूर्वक चूर्ण कर दो मासे के प्रमाण की मात्रा से अथवा मात्रा से गोदुख के अनुपान से पांच दिन तक सेवन कराना चाहिये । इससे बालक के उदर से मृतिका का रेचन हो जाता है बालक के लिये यह हितकर ओषधि है ॥ २-३ ॥

मूत्रावात्—

कणोषणसिताचौद्दसूचमैलासैन्धवैः कृतः । मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशुनां लेह उत्तमः ॥ १ ॥

मूत्रावात् चिकित्सा—शीपछ, मरिच, शर्करा, मधु, छोटी इलायची और सेवानमक के विधि-पूर्वक बने लेह का प्रयोग करने से बालकों का मूत्रावात् नष्ट होता है ॥ १ ॥

कार्ये—

यथा तु दुर्बलो बालः खादयपि च वहिमान् । विदारीकन्द्यगोधूमयवचूर्णं घृतपञ्चतम् ॥ १ ॥
खादयेत्तदनु चीरं शृतं समधुशकरम् ।

विदारीकन्दादि चूर्ण—यदि उचित पाचकाग्नि बाला बालक, उचित रीति से खाता हुआ भी दुर्बल होता थाय तो विदारीकन्द, गेहूं और जीं को समान भाग लेकर चूर्ण कर उसमें गोधृत मिलाकर औटाये हुए दूध में शोतल हाने पर मधु और शर्करा का प्रक्षेप देकर सेवन करने से बालकों की दुर्बलता नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

सौबर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधुं घृतं चचा ॥ २ ॥

मत्स्याक्षकः शङ्खपुष्पी मधु सपिः सकाञ्चनम् । अर्कपुष्पी घृतं चौद्रं चूर्णितं कनकं चचा ॥ ३ ॥
सहेमचूर्णं कैर्द्यं रवेतदूर्वा घृतं मधु । चरवारोऽभिहिताः प्राश्या अर्धश्लोकसमापनाः ॥

कुमाराणां वयुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः ॥ ४ ॥

सुवर्णं योग—१-सुवर्णं भस्म, कूठ चूर्ण, गोधृत और वच का चूर्ण । २-मत्स्याक्षी, शङ्खपुष्पी, मधु, गोधृत और सुवर्णमस्म । ३-हुरहुर का चूर्ण, गोधृत, मधु, सुवर्णमस्म और वच का चूर्ण । तथा ४-सुवर्णमस्म, कायफर रवेत वर्ण की दूब, गोधृत और मधु । आपे २ इलाकों में कहे हुए पृथक् २ ये चारों योगों में से किसी एक योग को चटाना चाहिये । इससे बालकों के शरीर, मेघा, बल, पुष्टि की वृद्धि होती है ॥ २-४ ॥

लाक्षादितैलम्—

लाक्षादिसमं तैलं मस्तुर्नय चतुर्गुणे । रासनाचन्दनकुड़ाबदवाजिगम्भानिशायुतैः ॥ १ ॥
शताह्नादारुण्यष्टाह्नमूर्वातिकाहरेणुमिः । संसिद्ध उवरक्तोऽनं बलवर्णकरं शिशीः ॥ २ ॥

लाक्षादि तैल—लाख का रस अथवा कवायथ एक माग, मूलित तिल का तैल एक माग, ददी का पानी चार माग और रासना, रक्तचन्दन, कूट, नागरमीथा, असग्न, इलदी, सौफ़, दारुहलदी जैठीमधु, मूर्चा, कुटकी और रेणुका को समान मिलित तैल के चतुर्थीश लेकर कक्ष कर तैलपाक

बालरोगचिकित्सा

की विधि से मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध कर बालकों को लगाने से उवर तथा दुष्प्राप्ति के दोष का नाश करता है और बालकों का बल तथा वर्ण बढ़ता है ॥ १-२ ॥

अथगन्धाघृतम्—

पादकलकेऽधगन्धायाः श्रीरेत्तद्विषयिते पचेत् । घृतं देवं कुमाराणां पृष्ठिकृद्वलवर्धनम् ॥ १ ॥

अथगन्धाघृत—गोधृत एक माग, असग्न का कल्प घृत के चतुर्थीश और गोदुरप घृत के आठ माग लेकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर बालकों को पिलाना चाहिये, इसके बालकों के शरीर की पुष्टि होती है और बल बढ़ता है ॥ १ ॥

सप्तच्छुदार्कच्छुदनक्तमालमूलैस्तुंरगारिजटासमेतैः ।

उत्सादिताङ्गः पश्यमूर्त्पिष्ठैर्वैरसुण्डीसलिलाभिषिक्तः ॥ १ ॥

दिने दिने वाति शिशुः प्रवृद्धिं पतिः द्वपाणामिव शुबलपदे ॥ २ ॥

उवटन और अभिषेक छितवन के पत्ते, मदार के पत्ते, बड़ी करज की जड़ और कनेर की जड़ को समझाग लेकर पश्य (गौ) के मूत्र के साथ पीस कर बालक के शरीर पर उवटन करने से तथा सुगन्धवाला और मुण्डो को जल में पकाकर सिङ्गन करने से बालक के दिन प्रतिदिन शरीर वृद्धि इस प्रकार होती है जिस प्रकार शुक्र पक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

शोधे—

मुस्तकूष्माण्डबीजानि भद्रदारुकलिङ्गकान् । पिष्टवा तोयेन संलिम्पेल्लेपोऽयं शोथहिच्छुशोः ॥

शोथ चिकित्सा—नागरमीथा, शेतकुष्माण्ड के बीज, देवदार और इन्द्रजौ को समान माग लेकर जल के साथ पीस कर लेह लगाने से बालकों का शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

नामिशोथे—

मृतिपण्डेनाम्भितसेन शीरसिक्तेन सोधमणा । स्वेदयेदुधितिर्थां नामि शोथस्तेनोपशास्यति ॥ १ ॥

नामिशोथ चिकित्सा—मिट्टी के ढेले को अग्नि में तपाकर उसे दूध से बुझावे और उसकी कम्भा (माफ) से नामि को स्वेदित करे तो बालकों के नामिस्थान का शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

नामिपाके—

नामिपाके निशालोधप्रियद्वुमधुकैः शृतम् । तैलमस्यअनेश्वास्त्रावधूलनम् ॥ १ ॥

नामिपाक चिकित्सा—इलदी, लोध, प्रियंगु (मालकांगनी) और मुलहडी के कक्ष से विधि पूर्वक तैल सिद्धकर अभ्यन्त करने से नामिपाक नष्ट होता है, तथा इन्हीं ओषधियों के चूर्ण को नामिपाक पर (सुखा सुखा) लगाने से नामिपाक में लाग होता है ॥ १ ॥

दुधधेन च्छागशकृता नामिपाकेऽवचूर्णनम् । त्वक्चूर्णः तीरिणा वाऽपि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥

लागशकृत योग—बकरी की विधा दूध में मिलाकर सुखाकर चूर्ण कर लगाने से अथवा क्षीरी वृक्षों की त्वचा के चूर्ण को लगाने से अथवा चन्दन के चूर्ण को लगाने से नामिपाक में लाग होता है ॥ २ ॥

गुदपाके—गुदपाके तु बालानां पित्तचर्नीं कारयेत् क्रियाम् ।

रसाखनं विशेषेण पानलेपनयोहितम् ॥

शङ्खयष्टयन्तेष्वृचूर्णं शिशुनां गुदपाकनुत् ॥ १ ॥

गुदपाक चिकित्सा—बालकों के गुदपाक में पित्तनाशक किया करनी चाहिये । विशेष कर रसाखन का पान और लेपन करना हितकर होता है । शङ्खप्रस्त, जेठीमधु और रसाखन के चूर्ण को गुदपाक पर लगाने से गुदपाक नष्ट होता है ॥ १ ॥

अहिंपूतने—शङ्खासौवीर्यष्टयाह्नैलेपो देयोऽहिंपूतने ॥ १ ॥

अदिषुन चिकित्सा—शंखमस्म, सौवीराजन और जेठी मधु का लेप बनाकर अदिषुन में रखने से लाभ होता है ॥ १ ॥

पारिगमिके—पारिगमिकरोगे तु युच्यते वहिकीपनम् ॥ १ ॥

पारिगमिक चिकित्सा—पारिगमिक रोग में अविनदीपन किया करना चाहिये ॥ १ ॥

क्षतविसर्पविस्फोटज्वरेषु—

पटोलत्रिकालारिष्टहरिद्राकथितं पिवेत् । ज्वत्वीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशोः ॥ ३ ॥

क्षतविसर्पविस्फोटज्वर चिकित्सा—परवल के पत्ते, आंमला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल और हल्दी का विधिषुर्वक काथ बनाकर बालकों के क्षत, विसर्प, विस्फोट, ज्वर की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

सिध्मपामाविचर्चिकाद्य—

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः ।

लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १ ॥

सिध्मपामाविचर्चिका चिकित्सा—गृहधूम (झोला), हल्दी, कूद, राई और हन्दीजो को समान मांग लेकर तक के साथ पीसकर लेप करने से बालकों का सिध्म (सेहुबा), पामा, खुबली और विचर्चिकारोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

सारिवातिललोभाणां कषायो मधुकरस्य च । संसाविणि मुखे शास्त्रो धावनार्थं शिशोः सदा ॥

मुखस्नाव चिकित्सा—सारिवा, तिळ, कौव और मुलहठी का काथ बनाकर जिन बालकों के मुख से निरन्तर स्नाव होता हो उनके मुख को धोना चाहिये ॥ १ ॥

मुखस्नावे मुखपाके च—

मुखपाके तु बालानामान्नसारमयो रसः । गैरिकं चौद्दसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ २ ॥

बालकों के मुखपाक रोग में आमसार का चूर्ण, लोहमस्म, गेरु, मधु और रसवत एकत्र मिला कर रखना चाहिये ॥ २ ॥

दार्ढ्र्यष्टयमयाजातीपत्रकौद्रैस्तु धावनम् । अश्वत्थवरदलचौद्रैसुख्यपाके प्रलेपनम् ॥ १ ॥

दारुहल्दी, जेठीमधु, हरड़, चमेली के पत्ते के कवाव में मधु मिलाकर मुख को धोना चाहिये तथा पीपल द्रुष्ट की छाल और उसी के पत्ते का चूर्ण मधु मिलाकर मुखपाक में लेप करना चाहिये ॥

रोदने—

पिष्पलीत्रिकालाचूर्ण घृतचौद्रपरिष्कृतम् । बालो रोदिति वस्तरमै लेहुं दध्यात् सुखावहम् ॥ १ ॥

शिशुकन्दन चिकित्सा—बालक यदि अधिक रोता हो तो पीपल, हरड़, बहेड़ा और आंवले के समान मिलित चूर्ण को मधु तथा गोधृत में मिलाकर चटाना चाहिये इससे बालक का रोना बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

तालुकण्टके—

हरीतकीवचाकुष्ठकलं मादिकसंयुतम् । पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १ ॥

तालुकण्टक रोग चिकित्सा—हरड़, वच और कूट को समान लेकर विधिषुर्वक कशक करके मधु मिलाकर माता के दूध के अनुपान से बालक को पिलाने से तालुकण्टकरोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

तालुकण्टके—तालुकण्टके यवचारमधुमयां ग्रतिसारणम् ।

तालुकण्टक चिकित्सा—तालुकण्टक रोग में यवचार तथा मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिये ।

कुकूणके—फलत्रिके लोध्रुपुननवे च सशक्तवै वृहतीद्वयं च ।

आलेपनं श्लेष्महरं सुखोद्धृण कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

कुकूणक चिकित्सा—हरड़, बहेड़ा, आंमला, लोध, पुनर्मवा, सोंठ, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी को समान मांग लेकर जल के साथ पीस कर किञ्चित् उष्ण लेप करने से श्लेष्मा तथा कुकूणक रोग नाश होता है ॥ १ ॥

नयने—इयों सभूतं च मनश्लिलालं करञ्जबीजं च सुपिष्टमेत्व ।

कण्डवदितानामय वर्तमनां तु श्रेष्ठं शिशुनां नयने विद्वद्यात् ॥ १ ॥

नेत्ररोग चिकित्सा—सोंठ, मरिच, पोपल, दालचीनी, मैनसिल, हरिताल और करंज बीज की गिरी को समान मांग लेकर श्लक्षण चूर्ण कर बालकों के पलकों में अज्ञन करने से कण्डवुक वर्तमरोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

दत्तोद्देदज्जरोगेषु—

दन्तपालों तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । धातकीयुष्पिष्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥ १ ॥

दन्तोद्देदज्जरोग रोग चिकित्सा—दन्तपालों रोग में (दाँत निकलने वाले मसूड़े के रोग में) धाय के फूल और पीपल के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करने से अथवा अमिले के स्वरस से प्रतिसारण करने से बच्चों का दन्तपालोंरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

दन्तोद्धारानभावा रोगाः पीढियन्ति च बालकम् । जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्वेतुका गदाः ॥

दाँत निकलने के समय उत्पन्न हुए रोग बालकों को पीढित करते हैं किन्तु वे रोग दाँत निकल जाने पर आप ही शान्त हो जाते हैं । ये दन्तोद्देदज्जरोग रोग हैं जो बालकों को प्रायः ये जाते हैं ॥

प्राचीवं पाण्डुरसिन्दुवासमूलं शिशूनां गलके निबद्धम् ।

हितोत्ते दन्तोद्धवेदनां च निःशेषमेकाण्डकुरण्ड पव ॥ ३ ॥

इवेत पुष्प के सिंधुवार (मेहुड़ी वा समालू) के पूर्व दिशा की ओर का मूल लेकर बालक के गले में बांधने से दाँत उत्पन्न होने के समय की पीड़ा नष्ट होती है और एक अण्डकोष में उत्पन्न हुआ कुरण्ड रोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

यस्तात्रचूदविहगो भयपार्श्वपञ्चुच्छेगवाऽयसहितैः कृतधूपनाङ्गः ।

आरभ्य लन्मधिवसादिनसकं हि बालस्य तस्य न कुतश्चन भीतिरस्ति ॥ १ ॥

धूप प्रयोग—कुकूट पक्षी के दंतों ओर के ख और पूँछ को लेकर गौ के घृत में मिलाकर बालक का जन्म हो उसी दिन से नित्य सात दिन तक उस बालक के पास धूप देने से उस बालक को किसी प्रकार का भय नहीं होता है ॥ १ ॥

प्रह्यस्तवालरोगाणां चिकित्सामाह, तत्राऽदौ सामान्ययजुष्टानां चिकित्सा—

सहायुण्डीनिकोदीच्यकाथद्वानं ग्रहापहम् । सप्तस्तुदायन्यनिशाचन्दनैश्वानुलेपनयः ॥ १ ॥

ग्रहजुष्टों की चिकित्सा—सुदगरणी, सुण्डी और सुगन्धबाला के काथ से स्नान करने से बालकों की सामान्य ग्रहजुष्टा नष्ट होती है और छितिवन, हरड़, हल्दी और चन्दन का लेप बनाकर लगाने से बालकों की सामान्यग्रह बाधा नष्ट होती है ॥ १ ॥

धूपः—

सर्पत्वरशुनं मूर्वा सर्पारिष्टपत्तलवा । विडालविडजालोमसेषशक्कीवचा मधु ॥

धूपः शिशोर्जवरश्वनोदयमशेषग्रहनाशनः ॥ १ ॥

धूप—सौंप की चुल, लड्सुन, मूर्वा, सरसो, नीम के परलव, विलार की विषा, बकरी के रोम, मेषशक्की, वच और मधु के योग से विधिवत् धूप बनाकर धूप देने से बालकों का ऊर नष्ट होता है और समप्र ग्रहदोष नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

बालरोगे पर्पटीरसः—

रसं गन्धं समं शुद्धं तयोः कृत्वा तु कञ्जलीम् । लोहदण्डों धृताकायामाधाय कदलीदलैः ॥

द्वादश्येद्युपरिन्यस्तगोमवैर्वदरीन्धनात् । शिखिनः कोमलादेव विधेया रसपर्णी ॥ ३ ॥

बाल रोगों में पर्फीटरस—शुद्धपारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कज्जली करके वृत्त टिन्य कोहे की कलछी में रखकर बैर की लकड़ी के अंगन पर तपावे और भूमि को गोबर से लोप कर उसपर केले का पत्ता विछाकर उसी पर उस कज्जली को विछा देवे और उसपर से केले के पत्ते से ढक कर दबा देवे । शोतल होने पर पररी जैसो जमी हुई उस कज्जली द्वारा प्रस्तुत और व उसपर्णी को रसपर्णी कहते हैं ॥ १-२ ॥

पर्णव्या द्विगुणो जीरः सूर्यांशो रामठः स्मृतः । दीयते मधुना तेषां शिशोरुज्ञाचतुष्यम् ॥

श्लेष्मपित्तानिलश्वासो कासधीनसपाण्डुतः ॥

प्लीहाग्निसादशूलानि हन्यादश्य उवरं जवाद् ॥ ४ ॥

उपरोक्त पर्णी एक भाग, जोर दो भाग और शुद्ध हींग पर्णी के बारहवां अंश (दौर माग) लेकर एकत्र खरल कर चार रक्ती प्रमाण की मात्रा से मधु के अनुपान से बालकों को देना चाहिये, इससे कफ पित्त और वातु के रोग, इवास, कास, पीनसरोग, पाण्डुरोग, 'लीहा, मन्दाग्निं, शूल और उचर रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ ३-४ ॥

अष्टमंगलघृतम् —

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च । सारिवा सैन्धवं चैव पिण्ठली घृतमष्टकम् ॥ १ ॥
सिद्धं घृतमिदं मेष्ठं पिवेत्यातदिने दिने । दद्धस्मृतिः त्विप्रमेधाः कुमारो ब्रु द्वामान् भवेत् ॥ २ ॥
न पिशाचा न रक्षासि न भूता न च यातरः । प्रभवन्ति कुमाराणां पिवतामष्टमङ्गलम् ॥ ३ ॥

बलिशान्तीटिकर्मणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ४ ॥

अष्टमङ्गल घृत—वच, कूट, ब्राह्मी, इवेत सरसो, सारिवा, सैन्धवमक और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्प करके जितना हो उसके चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण जल मिळाकर घृत पाक की विधि से वृत्त सिद्ध कर प्रतिदिन प्रातः काल बालकों को पिलाना चाहिये । इससे मेधा की वृद्धि होती है, स्मरण शक्ति इड़ होती है और बालक तुष्टिमान होता है । इस अष्टमङ्गल घृत के पीने वाले बालकों को पिशाच, राक्षस, भूत और मातृग्रह (बालग्रह) आदि का प्रमाण नहीं सताता है । ग्रहशान्ति के लिये बलि, शान्ति तथा ग्रह के इष्ट कर्म आदि भी करना चाहिये ॥ १-३ ॥

विशिष्टग्रहजुट्टानां चिकित्सा, तत्र स्कन्धग्रहजुट्टस्य चिकित्सा—

स्कन्धग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशस्यते । वातधन्दुमपत्राणां काथेन परिषेचनम् ॥ १ ॥

स्कन्ध ग्रह जुट्ट चिकित्सा—स्कन्ध ग्रह से पीड़ित बालक को वातनाशक वृक्षों के पत्तों के काथ से सिचन (स्नान) कराना चाहिये ॥ १ ॥

देवदाहणि रासनायां मधुरेषु गणेषु च । सिद्धं सर्पिश्च सधीरं पातुमस्मै प्रदापयेत् ॥ २ ॥

देवदार्वादि घृत—देवदारु, रासना और मधुर गण की ओषधियों के कल्प से विधिपूर्वक घृत सिद्ध करके दूध के अनुपान से बालकों को पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

सर्पयोः सर्पनिर्मांको वचा काकादनी घृतम् । उद्ग्राजाविगच्छां चापि रोग्णामुद्धृपनं भवेत् ॥

सर्पयोदि धूप—सरसो, सौंप की केंचुल, वच, इवेत वर्ण की रत्ती, घृत तथा कट, बकरी, भेड़, और गौ के बाल को समान भाग लेकर अंगन में बालक के समीप धूप देना चाहिये । इससे स्कन्धापस्मार नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सोमवश्लीभिन्द्रनुहं वृहत्ती विवरजां शमीय् । स्मारदन्याक्षं मूलानि ग्रथितानि विधारयेत् ॥

सोमवश्लीभिन्द्रनुहं वृहत्ती विवरजां शमीय् । स्मारदन्याक्षं मूलानि ग्रथितानि विधारयेत् ॥

और इन्द्रायण के मूल को सूक्ष्म में गूंथ कर बालक को धारण कराना चाहिये इससे स्कन्धग्रह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रक्तानि मालयानि तथा पताका रक्तांश्च गन्धान्विधांश्च भद्रयान् ।

घण्टां च देवाय बलि विवेद्य सुकुम्भुर्द्वयं स्कन्धग्रहाभिधाय ॥ ५ ॥

देवाराधन—रक्तवर्ण के फूलों की मालायें, रक्तवर्ण की पताका, रक्तवर्ण के गन्ध द्रव्य (रक्त-चन्दन आदि), अनेक प्रकार के मध्य पदार्थ, और घण्टाएं एवं कुम्भुर्द्वय की बलि निवेदन करके देव को देना चाहिये । इससे स्कन्धग्रह शान्त होता है ॥ ५ ॥

स्नानं चिरात्रं निभि चत्वरेषु कुर्वतिपरं शान्तिपदेनिवेद्य ।

गायत्रिपूताभिश्यामिरविन प्रज्ञालयेद्वाऽऽहुतिभित्ति धीमान् ॥ ६ ॥

रात्रि में तीन दिन चतुर्थपथ (चौराहे) पर बालक की शान्ति पाठ का स्तवन करके गायत्री मंत्र से अभिमन्त्रित जल से स्नान करावे और आहुति देकर अभिन को प्रज्ञित (इकन करे) । रक्ताभ्यतः प्रवचयामि बालानां पापनाशिनीम् । अहन्यहनि कर्तव्या याभिरद्विरतन्दितैः ॥

रक्षा विधि के लिये जिन २ जलों को कहेंगे उनसे आलस्य रहित होकर प्रतिदिन बालकों की रक्षा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

तपसां तेजसां चैव यशसां चतुष्वां तथा । निधानं योऽध्ययो देवः स ते स्कन्धः प्रसीदतु ॥

मन्त्रपाठ—मन्त्रपाठ का अर्थ—तप, तेज, यश और शरीर के मण्डार जो विनाश रहित देव हैं वह स्कन्ध देव तुष्टारे ऊपर प्रसन्न होते ॥ ८ ॥

ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिविभुः । देवसेनापतिरुहरः पातु त्वां भगवान्गुहः ॥ ९ ॥

प्रश्नों के सेनापति देव, देवों के सेनापति विभु और देवसेना के शत्रुओं को नष्ट करनेवाले ग्रहवान् गुह तुष्टारी रक्षा करें ॥ ९ ॥

देवदेवस्य मटतः पावकस्य च यः सुतः । गङ्गोमाकृतिकानां च स ते शार्मे प्रयच्छुतु ॥ १० ॥

देवों के देव महान अभिन के पुत्र, गङ्गा के पुत्र, उमा के पुत्र एवं कृतिका के पुत्र तुष्टारी रक्षा करें ॥ १० ॥

रक्तमात्यादवर्धरो रक्तचन्दनभूतिः । रक्तदिव्यवरुद्देवः पातु त्वां कौञ्चसूदनः ॥ ११ ॥

रक्तवर्ण की माला तथा रक्तवर्ण को धारण करने वाले, रक्तचन्दन से भूतित रक्तवर्ण के दिव्य शरीर वाले देव जो कौञ्च को नष्ट करने वाले हैं वे तुष्टारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

स्कन्धापस्मारग्रहजुट्टस्य चिकित्सा—

विवृतः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः । परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्धापस्मारशान्तये ॥

स्कन्धापस्मार ग्रह जुट्ट बालक की चिकित्सा—बैल का गूदा, सिरीस की छाल, इवेत दूर्वा और सुरसादि गण के द्रव्य को परिषेक (सिंचन वा स्नान) के लिये प्रयोग करना चाहिये । इन ओषधियों के क्वाय से स्नान कराने से स्कन्धापस्मार नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

सुरसादिगणो यथा

सुरसा श्वेतसुरसा षाठा फज्जी फणिजकः । सौगण्यिक भूत्तुणकं राजिका श्वेतवर्षी ॥ १ ॥

कट्फलं खरुपूषा च कासमर्दश शशलका । विद्वद्गमय निर्गुणी कर्णिकाक उद्गुम्बरः ॥ २ ॥

बला च कामकामी च तथा च विषमुष्टिका ॥ ३ ॥

कफक्रिमिहरः खण्डातः सुरसादिरयं गणः । अष्टमूत्रे विषवर्णं च तैलमध्यञ्जने हितम् ॥ ४ ॥

सुरसादि गण के ओषधियों के नाम—तुलसी, इवेत तुलसी, पुरहनपाढी, बमनेठी, गन्धपलास, शृदगन्धतुण, गन्धतुण, राई, इवेत बाबुई तुलसी, कायफर, साचारण बाबुई तुलसी, कसौआ,

शिक्षालीत, वायविंधं, सम्भालु, छोनालु, गूळर, बरिआरा, मकोय और बकायन यह सुरसादिगण है। यह सुरसादिगण कफ तथा कूपि को नष्ट करने वाला है। इनके कल्क को अष्टमूत्र के योग से तेल में डेकर तेल सिद्ध कर लगाने से बालकों को लाभ होता है॥ २-५ ॥

मूराष्टकमाइ—

गोजाचिमहिषाशानां खरोद्रूकरिणां तथा । मूराष्टकविति रुद्यातं सर्वशास्त्रेषु संमतम् ॥ ३ ॥

अष्टमूत्र की गणना—गौ, बकरी, मेडी, महिषी, धोड़ी, गदही, कँटनी और इथिनी के सम्मिलित मूत्र को मूराष्टक कहते हैं। यह सर्वशाश्वत सम्मत है॥ २ ॥

चौरिवृद्धकशायेण काकोरुद्यादिगणेन च । चिपकब्धं घृतं पश्चाहात्थयं पथसा सह ॥ २ ॥

काकोरुद्यादि घृत—क्षीरी शुद्धों के क्वाय और काकोरुद्यादि गण के कल्क द्वारा घृत सिद्ध कर दूष के अनुपान से बालकों को सेवन करने से स्कन्दापस्मार नष्ट होता है॥ २ ॥

काकोरुद्यादिगणो यथा—

काकोली जीरकाकोली जीवको ऋष्टवभस्तथा । ऋष्टद्विरुद्धितथा भेदा अहामेदा गुद्धिचिका ॥
मुद्धपर्णी माषपर्णी पश्चकं चंशरोचना । शृङ्गी प्रपौणदर्शीकं च जीवन्ती मधुयष्टिका ॥ २ ॥

श्राव्या चेति गणो नाम्ना काकोरुद्यादिस्त्रूदितिः । स्तन्यकृद वृहणो वृद्यः पित्तरकानिलापदः॥

काकोरुद्यादि गण के ओषधियों के नाम—काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋष्टमक, अङ्गि, शृङ्गि, मेडा, महामेदा, गुरुच, शुद्धपर्णी, माषपर्णी, पश्चाख, वंशशोचन, काकडासिंगी, पुण्डरीक (पश्चाकाठ), जीवन्ती, जेठीमधु और द्राक्षा ये काकोरुद्यादि गण कहे जाते हैं। यह काकोरुद्यादि गण दुषबर्धक, वृहण, वृद्य और पित्तरक्त एवं वायु का नाश करने वाला है॥ २-३ ॥

उत्तरादनं वचाहिन्दुयुक्तमन्त्र प्रकर्तिर्तम् । गृह्णोल्कपुरीशाणि केशा इस्तिनखो घृतम् ॥ १ ॥

वृषभस्त्रय च रोमाणि योजान्युद्धूपने सदा । अनन्ताकुकुरीविमकंटाध्यापि धारयेत् ॥

उत्तरादनादि विधि—बच और हींग को पीस कर उठाने से स्कन्द ग्रह शान्त होता है। गिर्द तथा उल्ल पक्षी की विषा, केश, हाथी के नख, घृत और साँड़ के रोम को पक्त कर बालक के पास धूप करे तो स्कन्दग्रह शमन होता है और अनन्तमूल, सेमर का धूल, विम्बीफल और अपामाणी की जड़ इनमें से किसी पक को सूत में बांध कर बालक के गले में पहनावे तो स्कन्दग्रह शमन होता है॥ २-२ ॥

पक्षान्यामानि मांसानि प्रसन्नं श्विरं पथः । भूतौदनं निवेद्याथ स्कन्दापस्मारिणं वटे ॥३॥

चतुर्ष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन ततः पठेत् ।

निवेदन—पक्षाये दुए और कच्चे मास, शुभ्ररक्त और दूध, जो कि सभी प्राणियों के भोजय-पदार्थ हैं उसे बट वृक्ष के नीचे स्कन्दापस्मार ग्रह को निवेदन करे और हन्दी द्रव्यों से बालक को चतुर्ष्पथ पर स्नान करावे और नीचे लिखे श्लोक (स्तोत्र) का पाठ करे॥ ३ ॥

हक्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य द्वितिः सखा । विशाखः स शिशोरस्य शिवायाऽनुशुभाननः ॥

पाठ्य श्लोक का अर्थ—स्कन्दग्रह का प्रियमित्र यो स्कन्दापस्मार नाम का है एवं जो विशाख (इस्तपाद रहित) है तथा शुम मुख वाला है वह ग्रह इस बालक के लिये कल्याणकारी हो।

शुकुनिग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाइ—

शकुनिग्रहजुष्टस्य कार्यं वैयेन जानता । वेतसात्रकपित्यानां कायेन परिषेचनम् ॥ १ ॥

शकुनिग्रहजुष्ट बालक की चिकित्सा—शकुनिग्रह जुष्ट बालक को कुशलवैष वेत, आम तथा कैय के काय से स्नान करावे॥ १ ॥

द्विवेदमधुकोशीरसारिचोरुपद्मकः । लोभप्रिप्तज्ञमजिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिष्टम् ॥ २ ॥

स्कन्दप्रहोक्तधूश्च हिता अत्र भवन्ति हि । स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम् ॥३॥

हाधवेर, मुलहठी, खस, सारिवा, नीलोफर, पदुमकाठ, लोब, प्रियज्ञु, मजीठ और गेह को समान माग लेकर पीसकर शकुन। ग्रह जुष्ट बालक के शरीर पर लेप करावे। स्कन्दग्रह में जहे हुए धूप वृष्टि यहाँ सी देना चाहिये तथा स्कन्दापस्मार को शमन करने वाला घृत सी इस रोग के लिये उत्तम है॥ २-३ ॥

शतावरीमूर्गेर्वानुगदन्तीनिविधिकाः । लघमणां सहदेवीं च बृहस्ती चापि धारयेत् ॥ ४ ॥

धारण—शतावरी, बड़ी इन्द्रायण, नागदन्ती अथवा इस्तिश्चुणी, छोटी कटेरी, लहमणा, सहदेवी और बड़ी कटेरी इनमें से किसी एक के मूल को सूत में बांध कर बालक के गले में बोधना चाहिये॥ ४ ॥

तिलतण्डुलकं भाला इश्तालं भनःशिला । लक्ष्मिरेणां करस्ते तु निवेद्यो निष्ठतामना ॥ ५ ॥

निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयेत् ततः पठेत् ।

निवेदन—तिल, चावल, माछा, हरताल और मैनसिल को करज के पत्ते पर रख कर संयत मन से इन द्रव्यों को बलि देवे और निकुम्भोक्त विधि से बालक को स्नान करावे तथा विष्म ‘अन्तरिक्षचरा’ आदि इलोक का पाठ करे॥ ५ ॥

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता । अयोमुखी सूक्ष्मतुष्टा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ६ ॥

इकोकार्य—आकाश में विचरने वाली, सब प्रकार के भूषणों से विभूषित, लोह के मुख वाली और सूक्ष्म सूँड़ी वाली शकुनी नाम की देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवे॥ ६ ॥

दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गादी भैरवस्वरा । लक्ष्मोदरी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७ ॥

देखने में यहकूर, बड़े शरीर वाली, भूटी आँखों वाली, कर्कच शुम्भ वाली, बड़े पेट वाली और श्वक (कील) के समान कण्ठवाली शकुनी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवे॥ ७ ॥

रेवतीग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाइ—

अव्यग्रम्बाजश्चक्षु च सारिवाऽथ पुनर्नवा । सहा विद्याही श्लेषासां कायेन परिषेचनम् ॥ १॥

रेवती ग्रहजुष्ट बालक की चिकित्सा—असग्न्व, मैवसिंगी, सारिवा, पुनर्नवा, सुद्रपर्णी और विदारीकन्द को समान माग लेकर विधिवृत्त काय करके रेवती ग्रहजुष्ट बालक को उस काय से स्नान कराना चाहिये॥ १ ॥

तैलमध्यज्ञने कार्यं कुष्टे सर्जन्से तथा । पलङ्गधाया नलदे तथा गौरकदस्वके ॥ २ ॥

तैलाभ्यक्त्यकूट और राल के कल्क द्वारा तेल सिद्ध कर बालक को छायावे और गुणुल, नलद (खस के समान वर्ण का लामजक तुण) और शेत कटन्ड के कल्क द्वारा तेल सिद्धकर बालक को छायाना चाहिये। इससे रेवतीग्रह शान्त होता है॥ २ ॥

ध्वास्त्रकर्णकुभशालकीतन्दुकेषु च । काकोरुद्यादिगणे वाऽपि सिद्धं सर्पिः पिवेच्छिष्टुः ॥

धृत नान—धी की छाल, साल की छाल, अजुन की छाल, सालभेद (सल्लै) और तिन्दुक (तेंदू) की छाल के कल्क के योग से घृत सिद्ध करके बालक को पिलाना चाहिये अथवा काकोरुद्यादि गण के ओषधियों के कल्क द्वारा घृत सिद्धकर बालक को पिलाना चाहिये। इससे बालक के रेवती ग्रह एवं अन्यरोग भी शान्त होते हैं॥ ३ ॥

कुलिश्या: शकुनी च प्रदेहः पूर्वगन्धिकः । गृह्णोल्कपुरीशाणि यवान्यवफलो घृतम् ॥ ४ ॥

संध्ययोदययोः कार्यं नेवदुद्धूपनं शिशोः ।

प्रदेह तथा धूप—कुलिश्यों तथा शैल के नूर्म और पहले ग्रहों की शान्ति के लिये कहे हुए सुगन्धबाला आदि गन्धदर्शीयों की पीसकर विधिवृत्त के लेप वनाकर बालक के शरीर पर लेप करना-चाहिये। इससे रेवती ग्रह की शान्ति होती है तथा गिर्द पक्षी और बल्ल पक्षी की विषा,

अजवायन, जो और धृत के पक्त्र करके दोनों संधा बालक के समीप धूप देना चाहिये। इससे भी रेवती ग्रह की शान्ति होती है ॥ ४ ॥

शुभलः सुमनसो लाजाः पथः शाल्योदनं दधिः ॥ ५ ॥
बलिनिवेद्या गोतीर्थे रेवत्ये प्रथतास्तना । स्तनानं धात्रीकुमाराभ्यो संगमे कारयेद्धिष्ठक् ॥६॥
बलि निवेदन—इवेत पुण्य, धान की खील (लाजा), धूप, शालिधान का माता और ददी इन सब की बलि गोतीर्थ पर संयत मन से रेवती ग्रह की शान्ति के लिये देना चाहिये। तथा धाय (माता) और कुमार दोनों को संगमस्थान पर स्तनान कराना चाहिये तथा 'नानाशक्तधरा' इत्यादि निम्न श्लोक का पाठ स्तनान कराने के संयत करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

पाठ—नानाशक्तधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना ।

चलाकुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥ ७ ॥

श्लोक का अर्थ—अनेक प्रकार के श्लोकों को धारण करेवाली, विचित्र अथवा अनेक प्रकार के माला और अनुलेप से युक्त, इलिते हुए कुण्डल हैं, जिनके ऐसे श्याम वर्ण की रेवती देवी तुम्हारे कपर प्रसन्न होवें ॥ ७ ॥

उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः । लभ्वा कराला विनता तथैव बहुपुष्टिका ॥

रेवती शुक्लनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८ ॥

ब्रित देवी को अनेक प्रकार के भूषणों वाली देवियों निरन्तर प्रजती हैं, जो बहुत लम्बी हैं, अत्यन्त अयंकर हैं, जो नग्न होकर रहती हैं, बहुत पुत्रोवाली हैं तथा जिनकी नासिका सूखी रहती हैं ऐसी रेवती देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ८ ॥

पूतनाग्रहजुषुष्ट्य चिकित्सामाह—

कपोतवङ्का श्योनाको वरुणः पारिभद्रकः । आस्कोता चैव योजयाः स्युर्बालानां परिषेचने ॥

पूतना ग्रह जुष बालक की चिकित्सा—आक्षी, अरल की त्वचा, वर्ण की त्वचा, भीम की त्वचा तथा अपराजिता के विधिपूर्वक बने काथ से पूतना ग्रह जुष बालक को स्तनान कराना चाहिये ॥ ९ ॥

नवा पथस्था गोलोभी हरितालं मनःशिला । कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थं करक दृष्ट्यते ॥ १० ॥

तैल—नवीन क्षीरकाकोली, श्वेतदूर्वा, हरताल, मैनसिल, कूट और राल का विधिपूर्वक इनाकल से तैलपाक की विधि से तैल सिद्धकर पूतना ग्रह जुष बालक को कराना चाहिये ॥ १० ॥

हितं धृतं तुगाहीर्यान्स्तिदं मधुनादिपि च ।

तुगाहीरी धृत—बंशलोचन के कल्क द्वारा धृत सिद्धकर मधु के अनुपान से बालक को पिलाना चाहिये। इससे पूतना ग्रह में लाग होता है ॥

कुष्ठतालीसखदिराः स्यन्दनोऽजुषं दत्त च ॥ ११ ॥

पत्नसः कुम्भश्चापि मउजानो वदरस्य च । कुकुटादिस्थि धृतं चापि धूपनं सह सर्वयैः ॥ १२ ॥

कुष्ठादि धूप—कूट, तालीसपत्र, खैर की त्वचा, तिनिश (तिरिच्छ), अर्जुन की त्वचा, कटहल के फल की मजजा, अर्जुन के फल की मजजा और वैर के फल की मजजा, कुकुट पक्षी का अस्थि, धृत तथा सरसों को एकत्र मिलाकर बालक के समीप धूप देने से पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ १२-१३ ॥

काकादनीं चित्रफलां विभीं गुज्जां च धारयेत् ।

धारण—इवेत रत्तियाँ, कटेरी के फल, विभीफल और रक्तवर्ण की रत्तियाँ इनमें से किसी एक को सूत में गूंथकर बालक को पढ़नावे। इससे पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥

मरस्थोदनं बलि दृष्टारकृषार्णं पलङ्गं तथा ॥ १३ ॥

शरावसम्बुटे कृत्वा तस्यै शून्ये गृहे भिषक् । उत्सुष्टासाभिषिक्तस्य शिशोः स्तनपनमित्यते ॥
बलि और स्तनान—मछली, मात, कृत्तरा (खिनडी) और मास की बलि सकोरे में रखकर दूसरे सकोरे से ढककर शून्य गृह में उसके लिये रख देवे। तथा अनन्दान कराकर बालक का अभिषिक्तन करके वक्ष्यमूर्ण (श्लो० ८) मन्त्र द्वारा बालक को स्तनान करावे। इससे पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ १३-१४ ॥

कुष्ठतालीसखदिरं चन्दनं स्यन्दनं तथा ।

देवदारु वचा हिङ्गु कुष्ठं गिरिकद्भवकः । एला हरेणवश्चापि योजया उद्धूपने सदा ॥ १५ ॥

पुनः धूपन योग—कूट, तालीसपत्र, खैर, चन्दन, तिनिश (तिरिच्छ), देवदारु, वच, हींग, कूट, पर्वतीय कदम्ब, इलायची और रेणुका को एकत्र कर पूतना ग्रह जुष बालक के समीप धूप देवे तो पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ १५-१६ ॥

मलिनाश्वरसंचीता मलिना रुक्मीर्घजा । शून्यागाराश्रया देवी धारकं पातु पूतना ॥ १७ ॥

पाठार्थ श्लोक का अर्थ—मलिन वस्त्रों से युक्त अवं मलिन मुखवाली, रुक्मीर्घजा अर्थात् जिसके शिर के बाल रुक्म हैं ऐसी और शून्य गृह में रहनेवाली पूतना देवी इस बालक की रक्षा करें ॥ १७ ॥

गन्धपूतनाग्रहजुषुष्ट्य चिकित्सा—

तिक्तद्वुमाणां पत्रेषु काथः कार्योऽभिषेचने ॥ १८ ॥

गन्धपूतनाग्रह जुष बालक की चिकित्सा—गन्धपूतना ग्रह से जुष बालक को तिक्तद्वुम (चिकित्सा) के पत्तों के काथ से सिंचन करना चाहिये ॥ १८ ॥

तिक्तद्वुमानाह—

विवरः पटोलः चुदा च गुद्वची वासकस्तथा । विसर्पकुष्ठनुरुद्धातो गणोऽयं पञ्चतिकः ॥ १९ ॥

तिक्तद्वुमों के नाम—बेल, परबल, छोटी कटेरी, गुरुचं और वासा (असूना) को पञ्चतिक (तिक्तद्वुम) कहते हैं ये विसर्प रोग और गुष रोग को नष्ट करते हैं ॥ १९ ॥

पिष्पली पिष्पलीमूलं वर्गों मधुरकोषिपि च । शालिपर्णी बृहत्यौं च बृत्तार्थं सममाहरेत् ॥ २० ॥

पिष्पलयादि धृत—पीपल, पिपरामूल, मधुर वर्ग के द्रव्य, शालिपर्णी, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी के कल्क से विधिपूर्वक धृत सिद्धकर बालक को विलाने से गन्धपूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ २० ॥

सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रे चाचणोश्च शीतलैः ।

प्रदेह लेप—गन्धपूतना ग्रहजुष बालक के शीरी पर सर्वगन्ध अर्थात् इलायची, तेजपात, नागकेसर, दालबीनी, कपूर, कंकोल, अगर, केसर, लवंग आदि को विधिपूर्वक पीसकर लेप करना चाहिये और नेत्रों पर शीतल पदार्थ (चन्दन आदि) का लेप करना चाहिये ॥ २१ ॥

पुरीषं कौकुटं केशाश्रमसर्पभवं तथा ॥ २२ ॥

जीर्णं च वीथाधोवासो धूपनायोपकल्पयेत् ।

धूपन योग—कुकुटपक्षी की विष्ठा, केश, सांप की केंचुल अथवा चर्म और पुराना फटा दुधा अधोवस्त्र एकत्र कर बालक के समीप धूप देना चाहिये ॥ २२ ॥

कुकुटीं मर्कटीं विभवीमनन्तां चापि चारयेत् ॥ २३ ॥

धारण—सेरम वृक्ष का मूल, शपामार्ग अथवा बानरी का मूल चिम्बीफल और अनन्तमूल में से किसी एक को सूत में बाँधकर बालक के गले में पढ़नाना चाहिये ॥ २३ ॥

मांसमन्नं तथा पक्षं शोणितं च चतुष्पथे । निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशोः स्तनपनमित्यते ॥ २४ ॥

४५४

योगरत्नाकरः

निवेदन और स्नान—पकाया हुआ मास और सिंश अथ तथा रक्त चतुष्पथ पर निवेदन करे (रख देवे) और गृह के आध्यन्तर (जो घर भीतर की ओर हो उस घर में) बालक को स्नान करावे तथा नीचे लिखे मंत्र का पाठ करे ॥ ५ ॥

कराला पिङ्गला सुण्डा काषायाम्बरसंवृता । देवी बालसिद्धं प्रीता रज्जाद्वन्धपूतना ॥ ६ ॥

मंत्रार्थ—भयदूर, पिङ्गल (भूरे) वर्ण की, शर मुड़ाई हुई, कषायवर्ण के वस्त्र से युक्त गन्ध-पूतना देवी प्रसन्न होकर इस बालक की रक्षा करे ॥ ६ ॥

शीतपूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

गोमूत्रं बस्तमूत्रं च सुस्ताम्भरदाहु च । कुष्ठं च सर्वं चौर्छाश्च लैकार्थं मवचारयेत् ॥ ७ ॥

गोमूत्रादि तैल—गोमूत्र और बकरी का मूत्र, नागरमोथा, देवदार, कूट और सर्वगन्ध के योग से तैल सिद्धकर अर्थात् गोमूत्र और बस्तमूत्र दोनों समान मिलित जितना हो उसके चतुर्थीश्च मूर्च्छित तिळ का तेल और तेल के चतुर्थीश्च नागरमोथा, देवदार, कूट, सर्वगन्ध (इलायची, तेज पात, नागकेसर, दाढ़ीनी, कपूर और कंकोल, अगर, केसर और छवंग अथवा केसर के स्थान पर शिलारस) के समान मिलित कश्क को लेकर तेलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर शीतपूतना ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये । इससे शीतपूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ७ ॥

रोहिणीनिश्चलविरपलाकाशकुभद्वच्छः । निश्चाय तदिमशिक्षाथे सार्हीरे विपचेद् चृतम् ॥

घृत—दुक्की, नीय की त्वचा, खैर की त्वचा, पलास की त्वचा और अजुन की त्वचा समान आग लेकर विधिपूर्वक १२ गुने जल में काय कर चतुर्थीश्चैव रहने पर उतार कर छाने लेवे । यह प्रस्तुत ज्ञाय जितना हो उसके समान गोदुग्ध और उसके चतुर्थीश्च मूर्च्छित गोदृत मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दादिन पर घृत सिद्धकर शीतपूतना ग्रहजुष्ट बालक को पिलाना चाहिये । इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥ ८ ॥

गृह्णोल्लक्षुरीषाणि बन्दगन्धामहिरवच्छः । निम्बधक्षाणि च तथा धूपनाथं समाहरेत् ॥ ९ ॥

धूपन योग—गिर्द की विडा, उड़ल की विडा, अजमोदा, सौंप की केन्त्रल अथवा चमं और नीम के पते को समान मिलित लेकर बालक के पास धूपन करे इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥ ९ ॥

आदयेत्पुरुषं च बलां काकाद्वीं तथा ।

धारण—रक्तवर्ण की रक्ती, बड़ामूल और द्वेषतवर्ण की रक्ती को सूत में गूथ कर या बाँध कर बालक को धारण कराना (पहनाना) चाहिये । इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥

वर्णो मुद्रादैनैक्षापि तयंयेच्छीतशूतनाम् ॥ १० ॥

तर्पण—जदी में धूंगी छी दाढ़ और भात से शीतपूतना का तर्पण करना चाहिये । इससे शीतपूतना शान्त होती है ॥ १० ॥

जलाशयान्ते बालस्थ त्वपने चोपहिश्यते । देष्ये देयश्चोपहारो वारुणी श्विरं तथा ॥ ११ ॥

स्नान उपहार—शीतपूतन ग्रहजुष्ट बालक को जलाशय या तड़ागादि पर ले जाकर स्नान कराना चाहिये और शीतपूतना देवी की वारुणी (मध्य) और रक्त का उपहार (निवेदन) देना चाहिये । इससे शीतपूतन शमन होती है ॥ ११ ॥

मुद्रोदनाशिनी देवी सुराशोगितपायिनी । जलाशयरता निश्चं पातु त्वा शीतपूतना ॥ १२ ॥

पाठ—‘मुद्रोदनाशिनी’ आदि इलोक को पढ़ना चाहिये जिसका अर्थ है मूंग की दाढ़ और भात खाने वाली, मध्य और रक्त को पीने वाली तथा नित्य जलाशय में निमग्न रहने वाली शीतपूतना देवी तुम्हारी नित्य रक्षा करे ॥ १२ ॥

मुखमण्डकाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

कपित्थविलवतकर्णीबालागन्धवृहस्तकः । कुवेराद्वी च योज्याऽस्तु बालाना परिषेष्वने ॥ १३ ॥

मुखमण्डका ग्रहजुष्ट बालक की चिकित्सा—कैव्य की त्वचा, बेल की त्वचा, गनियार की त्वचा, अरुसा, एरण्डमूल और पाइर की त्वचा के काथ से मुखमण्डका ग्रहजुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ १३ ॥

स्वरसैर्भृङ्गवृचाणां तथैव हयगन्धथा । तैलं चर्चा च स्वर्णोजय एवेष्वध्यञ्जने शिंशोः ॥ १४ ॥

तैल—भागरे के स्वरस और असगन्ध के स्वरस वा काय तथा वच के कल्प के योग से विधि-पूर्वक तैल सिंड कर मुखमण्डका ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ १४ ॥

त्वचा सज्जरसं कुष्ठं सर्विक्षोदधूपने हितम् ।

वचादि धूप—वच, राल, कूठ और चृत को पकव कर मुखमण्डका ग्रहजुष्ट बालक के समीप धूप देना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥

वर्णकं चूर्णकं मालयमल्जनं पारदं तथा ॥ १५ ॥

मनःशिलां चोपहरेत्तोऽप्तमध्ये वर्णं ततः । पायसं सपुरोदाशां तद्वस्त्रपर्यमुपाहरेत् ॥

मन्त्रपूतामित्रद्वित्त तत्रैव इनयनं हितम् ॥ १६ ॥

उपहार—हरताल, चूना, माला, सौंदीरजन, पारद और मैनसिल उपहार (निवेदन) देना चाहिये और गोशाला के मध्य में पायस तथा घृत की बलि देनी चाहिये । एवं अधिमन्त्रित किये तुप जल से उक्ती गोशाला में बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ ३-४ ॥

जलाभिमन्त्रणमन्वमाह—

अलङ्कृता कामवती सुभगा कामरूपिणी । गोष्ठमध्यालयरता पातु त्वा मुखमण्डका ॥ १७ ॥

अधिमन्त्रित करने का मन्त्रार्थ—अलङ्कृती से सुक, कामनातुक, सौमार्यवती, कामरूपवाली (मुन्दर) अथवा धेष्टरूप वारण करने वाली, गोशाला के मध्य यूह में निवास करने वाली मुखमण्डका देवी तुम्हारी रक्षा करे । इस मन्त्र से जल को अधिमन्त्रित कर लेनिलिंगत विधि से मुखमण्डका ग्रहजुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ १७ ॥

नैगमेयग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

विश्वाविनमन्धपूतीकैः कार्यं स्थापत्परिषेचनम् ।

नैगमेय ग्रहजुष्ट चिकित्सा—विश्वकृष्ण की त्वचा तथा पूतिकरज की त्वचा के काथ से नैगमेयग्रहजुष्ट बालक का सिंचन करना चाहिये । इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥

प्रियं ग्रहजुष्टस्य लानन्ताशतपुष्पाकुटश्चैः ॥ १८ ॥

पचेत्तेलं सगोमूत्रं द्विभ्रस्त्वल्लकाशिकैः ।

प्रियंवद्वादि तैल—प्रियहू, सरल काष, अनन्तमूल, सौंप और नागरमोथा के कल्प तथा गोमूत्र, दही की पानी और अम्लकाजी के योग से तैल पाक की विधि से तेल सिद्धकर चतुर्थीश्चैव गोमूत्र, दही की पानी और अम्लकाजी तीनों तेल के चौगुना लेकर तेलपाक की विधि से मन्दादिन पर तेल सिद्धकर नैगमेय ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये । इससे नैगमेय ग्रह की शान्ति होती है ॥ १८ ॥

वर्चां वयस्थां जटिलां गोलोभीं चापि धारयेत् ॥ १९ ॥

धारण—वच, हरड़, जटामासी और द्वेषत दूरी इनमें से किसी को सूत में बांधकर नैगमेय ग्रह जुष्ट बालक को पहनाना चाहिये ॥ १९ ॥

उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम् ।

उत्सादन—नैगमेय को स्कन्दप्रस्त्रमार नाशक जो उत्सादन (उबटन) कहा गया है वह उपाना चाहिये ॥

कमठोल्कवृष्टाणां पुरीषाणि पितृग्रह ॥ ३ ॥

धूपः सुसे जने कार्ये बालस्थ हितमिच्छुता ।

धूपन—कछुआ की विषा, उल्क की विषा और गिरद वी विषा एकत्र मिलाकर पितृग्रह में जब सब लोग सो गये हों उस समय बालक की हित की इच्छा करनेवाले को धूप देना चाहिये ॥

तिलतण्डुलकं मालयं भद्रयांश्च विविधानपि ॥ ४ ॥

कौमादभृत्यमेषाय प्लक्ष्युल्ये लिखेदयेत् ।

निवेदन—तिल, चावल अथवा तिल का दाना, माला तथा अनेक प्रकार के भक्षण पदार्थ कुमार के भृत्य अथवा रक्षक के रूप मेष (सेडे) के लिये प्लक्ष (पिलखन) वृक्ष की छड़ में निवेदन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अधस्तारस्तीरवृक्षस्थ स्नपनं चोपदिश्यते ॥ ५ ॥

स्नान—क्षीरीवृक्ष (अथत्यादि) के नीचे बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ ५ ॥

अजाननश्चल्द विश्रुः कामरूपी महायशाः । बाल धारयताद् देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु ॥ ६ ॥

पाठ—‘अजाननश्चल्दविश्रुः’ इत्यादि इलोक का पाठ करना चाहिये जिसका अर्थ यह है कि जो वकरे के मुंह के समान मुंह वाला है, जिसका भ्रूभाग निरन्तर चलता ही रहता है, कामरूपी (इच्छित रूप धारण करने वाला) है, महायश वाला है और पालन करने वाला है ऐसा नैगमेय देव इस बालक की रक्षा करें ॥ ६ ॥

ग्रन्थान्तरे उत्सुरिलकालस्त्रगमाह—

आध्मानवात्समुद्धो दक्षकुष्ठी विशेषवैत् । उत्सुरिलिका सा विश्वाता श्रासश्वथुसङ्कुला ॥
उत्सुरिलिका रोग के लक्षण—बालक के दाढ़िने कुष्ठि में आध्मान होकर वायु से संकुल (फूला अथवा शोथ) हो जाता है तथा श्वास हो बाता है और इवास नली में भी शोथ हो जाता है उसे उत्सुरिलिका रोग कहते हैं ॥ १ ॥

एतस्य चिकित्सामाह—

निःसारयेजज्ञौकामी रक्तं च जटरात्तदा ।

चिकित्सा—इस रोग में बालक के उदर में जोक लगाकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

कर्कोट्नागरामेषक्षुलातिविषाभवम् ॥ १ ॥

चूर्ण दुर्घेन समित्रं पाययेत्सातरं भिषक् । धार्त्रीं वा पाययेत्साध्या चीरदोषनिवारणम् ॥ २ ॥

कर्कोट्नादि चूर्ण—बीज कोडा, सोठ, नागरमोथा, क्षुल और अतीस को समान भाग लेकर विष्पूर्वक चूर्ण कर दूष के अनुपान से माता को पिलाना चाहिये अथवा यदि माता के स्थान पर वाय हो तो उसे पिलाना चाहिये, इससे शीघ्र ही दूष सम्बन्धी दोष निवृत्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

अग्निना स्वेदयेद्वापि दाहवेच्च शालाकया । जटरे विन्दुकाकारं पृष्ठमागे यथा भ्रुवम् ॥ ३ ॥

अग्निना स्वेद—बालक का उदर अग्निन से स्वेदित करना चाहिये अथवा उदर पर लोहे की सलाका को अग्निन पर तपाकर विन्दु के अकार का दाइ कर देना चाहिये और पीठ पर भी विन्दु के अकार दाइ कर देना चाहिये ॥ ३ ॥

विलवृमुलक नीरदो वृक्षी व्रक्षलं तथा विहिकाद्वयम् ।

गौडमिथितं काथितं समं पाययेन्द्रियुशु फुलिलकापहम् ॥ ४ ॥

विलवृमुलकादि काथ—विलव का मूल, नागरमोथा, पाठा, इरह, वैदेहा, आमला, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी को समान भाग लेकर विष्पूर्वक काथ करके बित्तना क्वाय हो उसके समान भाग गुह का मध्य मिलाकर बालक को यथा मात्रा पिलाने से फुलिलका रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पिष्पली ग्रन्थिकं विश्वा त्रायमाणा च द्वार्विका । पथ्येभपिष्पली भार्जीं लवङ्गं दक्षगस्तथा ॥
कुमारीबालपथ्ये च सैन्धवस्त्रवज्ज्वारिणा । चर्षितं पाययेत्पात्रिंद्विट्टुं फुलिलकापहम् ॥ ५ ॥

पिष्पली विश्वा त्रायमाणा च द्वार्विका । पथ्येभपिष्पली भार्जीं लवङ्गं दक्षगस्तथा ॥
कुमारीबालपथ्ये च सैन्धवस्त्रवज्ज्वारिणा । चर्षितं पाययेत्पात्रिंद्विट्टुं फुलिलकापहम् ॥ ५ ॥

पिष्पली विश्वा त्रायमाणा च द्वार्विका । पथ्येभपिष्पली भार्जीं लवङ्गं दक्षगस्तथा ॥
कुमारीबालपथ्ये च सैन्धवस्त्रवज्ज्वारिणा । चर्षितं पाययेत्पात्रिंद्विट्टुं फुलिलकापहम् ॥ ५ ॥

पिष्पली विश्वा त्रायमाणा च द्वार्विका । पथ्येभपिष्पली भार्जीं लवङ्गं दक्षगस्तथा ॥
कुमारीबालपथ्ये च सैन्धवस्त्रवज्ज्वारिणा । चर्षितं पाययेत्पात्रिंद्विट्टुं फुलिलकापहम् ॥ ५ ॥

पथ्यापथ्यम्—

पथ्यापथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं उवरादिषु । तत्तद्विधेयमौचित्याद्वालानां तेषु जानता ॥ १ ॥
पथ्यापथ्य—जो पथ्य अथवा अपथ्य उवरादि रोगों में कहे गये हैं उन्हीं पथ्यापथ्यों को विदान् वैद्य को यथा उचित बालकों के लिये भी विचार कर देना चाहिये ॥ १ ॥

पूर्वं पथ्यमपथ्यं च मन्दारनौ यत्रकीर्तिंतम् । औचित्याद्योजयेत्त्र बालानां पारिगमिके ॥
जो पथ्यापथ्य पहले मन्दारनि रोग में कहे गये हैं—वही पथ्यापथ्य विचार कर बालकों के पारिगमिके रोग में भी देना चाहिये ॥ २ ॥

आयन्त्रन्मादवातानां पथ्यापथ्यं यदीरितम् । औचित्याद्योजयेत्त्र बालेषु ग्रहरोगिषु ॥ ३ ॥

आयन्त्रक उन्माद और वात रोग में जो पुष्ट्यापथ्य कहे गये हैं वही यथा उचित विचार कर बालकों के ग्रहरोगों में देना चाहिये ॥ ३ ॥

इति बालरोगप्रकरणं समाप्तम्

अथ विषाधिकारः—

तत्र विषस्य द्वैविष्यमाद—

स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविष्यं विषसुरुच्यते । द्विविष्यष्टानमाध्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ १ ॥

विष के द्विविष प्रकार—स्थावर और जङ्गम में द्वि विष दो प्रकार का होता है। उस स्थावर का अधिष्ठान दस है और जङ्गम का अधिष्ठान सोलह है ॥ १ ॥

स्थावरविषस्य दशशत्रयानानां—

मूलं पञ्चं फलं पुष्पं त्वक्षीरीं सारं एव च । निर्यासो धातवः कन्दः स्थावरस्थाश्रया दश ॥

स्थावर (वनस्पति सम्बन्धी) विष—मूल, पञ्च, फल, पुष्प, त्वक्षीर, सार, निर्यास, धातु, एवं कन्द इस प्रकार स्थावर विष दस में रहते हैं। अर्थात् स्थावर विष इन दस स्थानों से उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

तद्य—मूलविषं करवीरादि । पत्रविषं विषपत्रिकादि । फलविषं कर्कोट्नादि । पुष्पविषं वेत्रादि । त्वक्सारनिर्यासविषाणि करम्भादीनि । धीरविषं स्तुद्यादि । धातुविषं हरितालादि । कन्दविषं वस्त्रसनाभसकुकादि ॥

मूलविष-कन्देर आदि के मूल में होता है। पत्र विष-विषपत्रिका (देवदाली) आदि के पत्र में होता है। फल विष-त्वक्षीर कन्देर आदि के फल में होता है। पुष्पविष-वेत्र आदि के पुष्प में होता है। त्वक्सार और निर्यास विष-करम्भ आदि के त्वक्षीर, सार और निर्यास आदि में होता

है। क्षीर विष—सुखी आदि के दूध में, बातु विष—हरताल आदि खातुओं में होता है। कन्दविष—वर्तनाम, सत्कुकादि के कन्द में होता है॥

जङ्गमविषस्य घोडशास्त्रप्रयानाह—

दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूत्रमलानि च। शुक्रं लाला सुखस्थवाः सन्दंशश्च विश्वितम् ॥

गुदास्थिपित्तशूकादि दक्ष षष्ठ्यजङ्गमश्रवाः॥ १ ॥

जङ्गम विष—इष्टि, निश्वास, दंष्ट्रा (दाढ़), नख, मूत्र, मल, शुक्र, लाला, सुख स्थवा, दंश विषदित, (अथोवायु), उदा, अस्थि, पित्त और शूक्र हन सोलह स्थानों में रहते हैं॥ १ ॥

तथा हि—इष्टिनिःश्वासविषा दिव्याः सर्पास्तस्तकादयः। दंष्ट्राविषा भौमाः सर्पाः। नखविषा मार्जरमकरव्याप्रादयः, ते दंष्ट्राविषा अथि। मूत्रपुरीषविषा गुहयोधिकादयः। शुक्रविषा: सर्पलालनावयो मूर्खिकाः। लालाविषा चरट्युदिव्यिक्षालयः। स्पर्शविषा लृतादयः। मुखसंदंशविषा मखिकादयः। विश्वितगुदवालविषालिङ्गीर्णीर्णीदयः। विश्वितं नाम पायुक्तकुसितशब्दः। अस्थिविषा: सर्पादयः। पित्तविषा लकुलमत्स्थादयः। शूक्रविषा, वृश्चिकभ्यरादयः। पुतेर्णां च सुखुते कल्पस्थाने विस्तारो द्वृष्टयः।

इष्टिनिःश्वास विष—दिव्य सर्प, तक्षक आदि के इष्टि एवं निश्वास में विष होता है। दंष्ट्राविष—भूमिस्थ सर्पादि के दाढ़ में होता है। नखविष—मार्जर (विभार), मकर और व्याप्रादि के नखों में तथा इनके दाढ़ों में भी होता है। मूत्र-पुरीषविष—गृहगोविका (छिपकिली) आदि के मूत्र एवं पुरीष में होता है। शुक्रविष—सर्प तथा लालन (जाति विशेष मूत्रक) आदि के शुक्र में होता है। लालाविष—यर्जुन तथा उचिचटिक्क (कीट विशेष) आदि के लाल में होता है। स्पर्शविष—लृता (मक्की) आदि के स्पर्श में होता है। सुखसंदंशविष—मसिका आदि के मुख संदंश अर्थात् इनके काटने से होता है। विश्वितविष—गुदवात (अपान वायु वा अथोवायु वित्रशीर्णि, शतदारुक आदि कीट विशेषों से उत्पन्न होता है अर्थात् इनकी अथोवायु में होता है। विश्वित—गुदा द्वारा जो अपशम्द होता है उसे कहते हैं। अस्थिविष—सर्प एवं मत्स्यादि की अस्थि में होता है। पित्तविष—नकुल (नेवला) और मत्स्य आदि के पित्त में होता है। शूक्रविष—वृश्चिक और भ्रमर आदि के शूक्रतुण्ड में होता है। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन सुक्ष्मत के कल्पस्थान में देखना चाहिये।

स्थावरविषासविषाणी सामान्यलक्षणान्याह—

स्थावरं तु उवरं हिक्कां दन्तहृष्टं गलग्रहम्। फेनब्ज्ञ्यैविषासं मूल्युर्णां च कुरुते विषम्॥ १ ॥

स्थावर विष के लक्षण—स्थावर विष से उवर, हिक्का, दन्तहृष्ट, गलग्रह, मुंह से फेन निकलना एवं बगन, अवचि, द्वास और मूल्युर्ण उत्पन्न होते हैं॥ १ ॥

निद्रां तन्द्रां कलमं द्वाहं स्कर्णं रोमहर्षयम्। शोफं चैवातिसारं च कुरुते जङ्गमं विषम्॥ २ ॥

जङ्गम विष के लक्षण—जङ्गम विष से निद्रा, तन्द्रा, कलम (कलान्ति), दाढ़, कम्पन, रोम-हर्षण, शोथ और असीसार उत्पन्न होते हैं॥ २ ॥

अथावचिपतेरन्यस्य खात्तादौ निभृताः परिकर्मिणो विषमवचारयन्ति।

राजा अथवा अन्य लोगों के परिचारक (विश्वास पात्र भृत्यादि) अन्नादि में विष मिलाकर दे देते हैं।

तेषां विषदाताणीं लक्षणान्याह—

इक्षितशो मनुष्याणां वाक्चेष्टासुखवैकृते। जानीयाहिष्वदातारमेत्तेलिङ्गेत्वं त्रुदिमान्॥ ३ ॥

उन विषदाता को जानने का उपाय—मनुष्यों की चेष्टाओं का छाता त्रुदिमान् वैद्य अथवा अन्यान्य राजपुरुष एवं विष मनुष्य वाणी, चेष्टा (आकृति) और सुख के विकृत भाव आदि लहरों से विषदाता को जाने॥ ३ ॥

न वदास्युत्तरं पुष्टे विषज्ञमोहमेति च। अपार्थ वहु सङ्कीर्ण भाषते सूढवत्तदा॥ २ ॥
अकुलीः रसोटयेहुर्चौ विलिलेप्रहसेदपि। वेपथुश्चारय भवति प्रस्तावन्योन्यमीवते॥ ३ ॥
विषर्णवक्त्रो ध्यामस्तु नस्यः किञ्चिद्विनन्यपि। वर्तते विषरीतं च विषदाता विचेतनः॥ ४ ॥
आलभेतासङ्कृदीनः करेण च शिरोलहाच्। नियिंयासुरपद्मरैर्विषते च पुनः पुनः॥ ५ ॥

विषदाता का स्वरूप—जो मनुष्य कुछ पूछने पर उत्तर नहीं देता है, कुछ कहने की इच्छा करने पर मोह अर्थात् मूर्च्छित हो जाता है अथवा विस्तृत हो जाता है अथवा बोल नहीं सकता है, सूखे की भाँति निरर्थक वहुत अथवा अर्थन्त सूक्ष्म बोलता है, अंगुलियों को फोड़ता है, भूमि को अंगुलियों के नखों से सोडता है, अकारण हँसता है, कौपता है, अर्थमीत होकर इत्तरतः दूसरे को देखता है, सुंह का वर्ण विवरण हो जाता है, अपनि से दग्ध हुए के समान प्रभावीन हो जाता है, नस से कुछ (तुणादि) काटता है, अपनी प्रकृति के प्रतिकूल आचरण करता है और चेतनारहित भी हो जाता है, दीन होकर कई बार हाथों से शिर को पकड़ता है अथवा शिर लोचता है, गृह के गौण मार्गों से निकलना चाहता है और बार बार उन मार्गों को देखता है उसे विषदाता जानना चाहिये॥ २-५ ॥

स्थावरविषस्य दशावयाणां प्रत्येकं लक्षणान्याह—

उद्देष्टनं सूलविषेः प्रलापो मोह एव च।

सूलविष के लक्षण—कनेर आदि के सूल के सेवन से उद्देष्टन (दण्डावात की भाँति पीड़ा), प्रलाप और मोह (संक्षारीनता) होता है।

जङ्गमाणं वेषनं श्वासो ज्वरं पत्रविषेण च॥ १ ॥

पत्रविष के लक्षण—पत्रविषों से जङ्गमाई, कम्पन और द्वास बढ़ा दुष्का होता है॥ १ ॥

मुक्कशीर्णः फलविषैर्विषद्वेषेष्ट एव च।

फलविष के लक्षण—फलविष से मुक्कदेश में शोथ, दाढ़ और अन्द्रेष (अरुचि) हो जाता है।

भवेत्पुष्पविषैर्विषद्विरामानं श्वास एव च॥ २ ॥

पुष्पविष के लक्षण—पुष्प विष से दमन, आधामान और द्वास की वृद्धि होती है॥ २ ॥

त्वक्सारनियांसविषैर्विषद्विरुक्तैर्भवन्ति हि। आस्थदौर्गम्यपात्रविषरोहकफसंस्त्वाः॥ ३ ॥

त्वक्सार एव निर्यात विष के लक्षण—त्वक्सार विष, सार विष तथा नियांस विष के उपयोग करने से मुख में दुर्गित होना, शरीर में रुक्षता, शिर में पीड़ा तथा कफ का ज्वाव होना ये लक्षण होते हैं॥ ३ ॥

फेलागमः द्वीर्विषैर्विषेदो गुरुजिह्वता।

क्षीरविष के लक्षण—क्षीरविष के सेवन करने से मुँह से फेल निकलना, विषभेद अर्थात् अस्तीसारवद् मणिनाम और जिह्वा की गुरुता आदि लक्षण हो जाते हैं।

हृषीडनं धातुविषैर्मूल्युर्णां दाहश तालुनि।

धातु विष के लक्षण—धातु विष के सेवन से हृदय में पीड़ा, मूल्युर्णां और ताळे प्रदेश में दाह होता है।

प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत्॥ ४ ॥

प्रायः करके इन विषों को कालघाती (कालान्तर में मारनेवाला) जानना चाहिये (कभी २ ये श्रीम भी मारते हैं किन्तु इनकी गणना कालान्तर में मारक ही है)॥ ४ ॥

कन्दविषस्य कायंमाद—

कन्दविषस्य विषाण्येतानि कुशलैर्वेष्यानि दशमिगुणः॥ ५ ॥

कन्दविष के कार्य—कन्द से उत्पन्न धोनेवाले उग्र वीर्य विष जो तेरह प्रकार के कह आये हैं जो सभी वशमाण दस गुणों से युक्त होते हैं ॥ १ ॥

स्थावरं जग्मन्तं चापि कृत्रिमं चापि यद्विषम् । सध्यो निहन्ति तत्सर्वं गुणश्च दशभिर्युतम् ॥२॥

स्थावर विष, जग्मविष तथा कृत्रिम विष जो भी विष हो वह प्राणियों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं। सभी विष दस गुणों से युक्त होते हैं ॥ २ ॥

तान्दश गुणानाह—

रुचमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायिं च । विकाशि विशदं चापि लक्ष्वपाकिं च ते दशः ॥

दस गुणों के नाम—रुक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायी, विकाशी, विशद, लक्षु और अपाकी । अर्थात् ये दस गुण सभी में होते हैं ॥ १ ॥

तैर्गुण्यविषस्य कार्यमाह—तद्वैच्याःकोपयेद्वायुमौष्ण्यारिपत्तं सशोणितम् ।

तैच्यान्मतिं मोहयति यमवन्धोश्चिन्ति हि ॥ २ ॥

विष का कार्य—रुक्ष गुण होने से वातु को कुपित करता है। उष्ण गुण होने से पित्त को रक्त के साथ अथवा पित्त और रक्त को कुपित करता है। तीक्ष्ण गुण होने से बुद्धि को मोह लेता है और मर्मस्थान के रन्धनों को काटता है ॥ २ ॥

शरीरव्यवास्थान्वैच्यात्प्रविशेद्विकरोति च । आशुव्यादाशु तद्वन्ति व्यवायाप्रकृतिं हरेत् ॥३॥

सूक्ष्म गुण होने से शरीर के अवयवों में प्रवेश कर विकार उत्पन्न कर देता है। आशु गुण होने से शीघ्र ही प्राण का नाश करता है। व्यवायी गुण होने से प्रकृति (स्वामाव) को विकृत कर देता है ॥ ३ ॥

विकाशिवास्थपयति दोषान्धातून्भलानपि । अतिरिच्येत देशग्रादुश्चिकित्स्यं च लाघवात् ॥

दुर्जरं चाविपाकित्वात्समावलेशयते चिरम् ॥ ४ ॥

विकाशी गुण होने से वातादि दोषों, धातुओं और मर्मों को नष्ट करता है। विशद गुण होने से सब मांसों को दृश्यक् २ कर देता है। लक्षु गुण होने से दुश्चिकित्स्य होता है और अपाकी गुण होने से दुःख से पचने वाला होता है इसीलिये चिरकाल तक कलेश करता है ॥ ४ ॥

विषलिप्तशक्तिं तद्वस्थ लक्षणमाह—

सद्यः पाकं याति यस्य ज्ञते तत्स्वेवद्वक्तं पद्यते चाप्यभीचणम् ।

कृष्णीभूतं विलग्नमर्थर्थूति ज्ञतान्मासं शीर्यते यस्य चापि ॥ ५ ॥

विषलिप्त शक्ति के लक्षण—जिस मनुष्य का क्षत शीघ्र ही पक जावे, उस क्षत से रक्त का चाप होता रहे, बार बार पके तथा उससे कृष्णणं का, आदि, अस्तन्त दुर्गम्य युक्त सड़ा हुआ मास गिरे अथवा क्षत का वर्ष कृष्ण हो, निरन्तर आद्रं रहे, दुर्गम्य युक्त हो और उससे मांस सद् २ कर पिरे और तुण्णा, मूर्छा, ऊर और दाह हो तो उसे विष से लिप्त शक्त से विद्ध (क्षत अथवा आहत) जानना चाहिये ॥

तृष्णा मूर्छा ऊरदाहौ च यस्य दिग्धाविद्धं तं मनुष्यं डथवस्येत् ।

लिङ्गान्येतान्येव कुर्याद्विदैत्तः द्वेषो वा वर्णे यस्य चापि ॥ २ ॥

विषलिप्त व्रण के लक्षण—शत्रुओं के हारा किसी प्रकार से जब व्रण में विष दे दिया जाता है तब भी विषलिप्त शक्ति से क्षत होने पर जो लक्षण होते हैं वे ही सब इसमें भी होते हैं ॥ २ ॥

जग्मविषाणा कार्याण्याह, तत्र जग्मेषु तीक्ष्णतरत्वेन सर्पनाह—

वातपित्तकफासानो भोगिमण्डलिराजिला । यथाकमं समाख्याता हृथ्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥

सर्पविष—वात-पित्त और कफ दोष वाले भोगी, मण्डली और राजिल ये तीन प्रकार के

सर्प कम से होते हैं अर्थात् भोगी (फणा वाले) सर्पविष में वातदोष की बहुलता होती है, मण्डली (चलने वाले) सर्प के विष में पित्तशोष की बहुलता होती है और राजिल (चित्रित एवं दीर्घ रेखाओं वाले) सर्प के विष में कफ दोष की बहुलता होती है तथा इनके मध्य वाले अथवा दो दो जातियों के मिलित लक्षणों वाले सर्प द्विदोषात्मक होते हैं, अर्थात् भोगी और मण्डली के मध्य की जाति वाले सर्पविष में वात-कफ दोनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं अथवा दो जाति के सर्पों के सहूर से जो सर्प उत्पन्न होते हैं वे जाति के अनुसार दोष से युक्त द्वन्द्व दोषों वाले होते हैं ॥ १ ॥

ओगिप्रभृतिभिः कृतदंशेषु वातादीनां लिङ्गमाह—

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् । वीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तचिकारवान् ॥

भोगी आदि सर्पविष—भोगी सर्प का दशस्थान कृष्ण वर्ण का होता है और सभी वातिक विकारों को करने वाला होता है। मण्डलीक सर्प का दंश स्थान पीतवर्ण का होता है तथा उसमें शोथ होता है और मृदु होता है एवं पैतिक विकारों वाला होता है ॥ १ ॥

राजिलोथो भवद् दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः ।

पाण्डुः स्थिरथोऽतिसान्द्रासूक्ष्मसर्वलेष्विकारकृत् ॥ २ ॥

राजिल सर्प का दंश स्थान स्थिर शोथ वाला, पिच्छिल, पाण्डुवर्ण का, स्थिरथ, अत्यन्त गाढ़ रक्त युक्त तथा सभी प्रकार के कफज विकारों को करने वाला होता है ॥ २ ॥

देशविशेषे कालविशेषे च दृष्टस्यासाध्यत्वमाह—

अश्वरथदेवायतनश्चशानवलभीकसन्ध्यासु चतुर्पथेषु ।

याम्बे च पित्तये परिवर्जनीया ऋषे नरा मर्मसु ये च दृष्टः ॥ १ ॥

साध्यासाध्यता—अथर्व (पीपल) वृक्ष के नीचे, देवालय, इमाशान, वस्त्रीक, सन्ध्याकाल, चतुर्पथ, भरणी नक्षत्र और चक्रार से आर्द्रा-अश्लेषा, मधा, मूल और कृतिका नक्षत्रों में एवं पञ्चमी तिथि में, पितृपक्ष में तथा मर्मस्थान में यदि सर्प दंश किया हो तो ऐसे मनुष्यों को स्थान देना चाहिये। वह असाध्य है ॥ १ ॥

दर्वीकरणां विषमाशु हन्ति सर्वाणि चोष्णे द्विषुणीभवन्ति ॥ २ ॥

दर्वीकर विष की असाध्यता—दर्वीकर (भोगी अर्थात् फणा वाले) सर्प का विष शीघ्र मारक होता है तथा सभी सर्पों का विष (अथवा अन्य विष भी) उष्णकाल में तथा उष्ण के संयोग से द्विषुण हो जाते हैं ॥ २ ॥

दर्वीकरलक्षणमाह—

रथाङ्गलाङ्गलच्छुद्वस्वस्तिकाङ्गुशधारिणः । शेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगमिनः ॥ १ ॥

दर्वीकर के लक्षण—रथाङ्ग अर्थात् चक्र अथवा चक्रवाक पक्षी, इल, छत्र, स्वस्तिक चिह्न तथा अङ्गुश के चिह्नों को फणा पर धारण करने वाला और शीघ्रगमी सर्प को दर्वीकर सर्प कहते हैं ॥

तथाऽपरेषु विषमाशु मारकं भवति तानाह—

अजीर्णपित्तात्परीदितेषु बालेषु वृद्धेषु त्रुमुचिनेषु ।

चीणे इते मेहिनि कुछजुषे रुचेऽवले गर्भवतीषु चापि ॥ १ ॥

शक्तवते यस्य न रक्तमस्ति रात्र्यो लतभिन्न न सम्भवन्ति ।

शीताभिरस्त्रिश न रोमहृषों विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ॥ २ ॥

मारक विष—अजीर्ण से पीड़ित, पित्तदोष से पीड़ित, आतप (घर्म) से पीड़ित, तथा वाञ्छक, वृद्ध, क्षुधार्त, क्षीण, क्षती, मेही, कुष्ठी, रुक्ष शरीर वाला, निर्बल और गमनवंती को यदि सर्प काटे तो वह विष शीघ्र मारक होता है तथा (सर्पदृष्ट मनुष्य को) शूल से काटने पर जिसके शरीर से रक्त नहीं दिखाई दे, लता (वेत्रादि) से ताड़न करने या बन्धन करने से रेखायें नहीं होती हैं और शीतल जल से स्नान कराने से जिसे रोमाञ्च नहीं होता हो ऐसे विष से उक्त (सर्पदृष्ट वाले) को स्थान देना चाहिये ॥

जिह्वां मुखं यस्य च केशातो नासावसादश्च सकण्ठाभङ्गः ।

कृष्णश्च रक्तः अथशुश्रू दशोऽस्मिन् विष्यत्वं च स वर्जनीयः ॥ ५ ॥

जिस मनुष्य का मुख वक्त हो गया हो, शिर के केश गिरने गये अथवा हाथ लगाने से उखड़ जावें, नासिका अबसन्त हो जावे, कण्ठ मण्ड हो जावे, दशस्थान कृष्णवर्ण का अथवा रक्तवर्ण का हो जावे तथा उसमें शोष हो तथा हतुस्तम्भ हो उसे स्थान देना चाहिये । ये लक्षण असाध्य हैं ॥

अपरं च—दत्तिर्धना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं लज्जेदूर्ध्वर्वभवश्च यस्य ।

दृष्टानिपातांश्चतुरश्च परयेद्यस्यापि वैद्यः परिचर्जनेत्तम् ॥ ६ ॥

जिसके मुख से गाढ़ श्लेष्मा दत्ती के समान निकले तथा कृष्णमार्गं (मुख नासादि) अथवा अणोमार्गं (शुदादि) से रक्त का ज्वाल हो, जिसके चारों दाँत (दाढ़) बैठ गये हों ऐसे असाध्य लक्षण देखकर उसकी चिकित्सा नहीं करे ॥ ६ ॥

उन्मत्तमस्यर्थमुपदृतं वा हीनस्वरं चाऽप्यथवा विवर्णम् ।

सारिष्टमर्थमवेगिनं च त्यजेत्तरं तत्र न कर्म कुर्यात् ॥ ५ ॥

जो सर्प विष से उन्मत्त, अत्यन्त उपद्रवों से उक्त तथा क्षीण स्वर वाला हो गया हो अथवा जिसके शरीर का वर्ण विकृत हो गया हो, जिसको नियत मरण ख्यापक लक्षण उपस्थित हो गये हों तथा मल-मूर्छादि के वेगसहित हो गया हो ऐसे विषयुक्त मनुष्य की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ ५ ॥

स्वादरजङ्गमविषमेव जीर्णत्वाद्विभिः कारणैदूषीविषसंक्षा उभते तदाह—

जीर्णं विषद्वौषधिभिर्हतं वा दावामिवातात्पशोवितं वा ।

स्वभावतो वा गुणविग्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ १ ॥

मनुष्य के शरीर में प्राप्त स्थावर, जङ्गम अथवा कृत्रिम विष भी जीर्णता को प्राप्त होने पर अथवा विषनाशक ओषधियों द्वारा अविहत होने पर अथवा दावानिन् (वनानिन) वात तथा आतप आदि से शोषित होने पर अथवा स्वभावतः हीनगुण होने पर दूषीविष में परिणत हो हो जाता है ॥ २ ॥

दूषीविषस्य कार्यमाह—

वीर्यादिप्रभावात् निपातयेत्तरकान्वितं वर्षणगानुबन्धिः ।

तेनादितो भिजापुरीषवृणों विषनन्धवेऽस्ययुतः पिपासी ॥ १ ॥

मूर्च्छन् अमन् गद्यद्वचाग्वमिश्रं विचेष्टमानो रतिमाप्नुयाद्वा ॥ २ ॥

दूषीविष के कार्य—दूषीविष अवप्त कीर्यं (सामर्थ्य हीन अथवा व्यवाधी आदि वस गुणों से हीन) होने से मूर्च्छुप्रद नहीं होता किन्तु कफ से आङ्गादित होकर वर्णं पर्यन्त शरीर में स्थित रहता है । इस विष से पीड़ित मनुष्य चिन्न पुरीष (मलमेद वाला) और चिन्न वर्ण हो जाता है, उसके शरीर अथवा मुख से दुर्गंभित आती है, मुख विरस हो जाता है, तथा उसे लुणा, मूर्च्छा, भ्रम और वाणी गदगद हो जाती है, वमन होता है तथा विषदृष्ट चेष्टाओं को करता हुआ कष्ट को प्राप्त होता है ॥ १-२ ॥

। स्थानविशेषस्थिते दूषीविषे लिङ्गविशेषमाह—

आभाशयस्य कफवातरोगी, पक्षाशयस्यैतिलिपित्तरोगी ।

भवेत्सुदूषवस्तशिरोलहाङ्गो विलूनपत्तस्तु यथा विहङ्गः ॥ १ ॥

दूषीविष के विशेष लक्षण—दूषीविष के आमाशय में स्थित होने से मनुष्य कफ-वात रोग वाला और पक्षाशय में स्थित होने से वात-पित्त रोग वाला हो जाता है तथा उसके शिर के केश एवं शरीर के रोम इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार पंख विहीन पक्षी हो जाता है ॥

तस्य रसादिवातुगतस्य लिङ्गमाह—

स्थितं रसादिव्यथं तथोक्तान् करेति आतुग्रभवान्विकारान् ।

कोषं च शीतानिलहुदिलेषु यथाशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ १ ॥

रसादि धातुओं में दूषीविष—रसादि धातुओं में स्थित हुआ दूषीविष उन धातुओं से उत्पन्न होने वाले विकारों को करता है, अर्थात् रसातुर में इन्हें से अरुचि, अजीर्णादि विकार, रक्त में रहने से कुष्ठ-विसर्पादि विकार, मास में रहने से मासांबुद्धादि विकार, मेद में रहने से चिंचुदि आदि विकार, अस्ति में रहने से अधिदन्तादि विकार, मज्जा में रहने से तमोदर्शन-मूर्च्छा आदि विकार और शुक्र में रहने से कैव्य शुक्रामरी आदि विकारों को करता है, तथा शीत के समय वायु के समय और दुर्दिन (मेषांचल) के समय शीघ्र ही दूषीविष कोष को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

पूर्वरूपमाह—निद्रा गुरुत्वं च विज्ञप्तिं च विश्लेषहर्षाविधं वाऽङ्गमर्दः ।

ततः करोत्यस्मद्विषाकावरोचक्कं मण्डलकोठजन्म ।

मांसस्वर्णं पाणिपदांचिरोधं चूर्च्छां तथा छुर्दिमथातिसारम् ॥ १ ॥

दूषीविषं आसत्तुषावरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धि जठरस्य चापि ॥ २ ॥

दूषीविष के पूर्वरूप—दूषीविष के कोष होने के पूर्व निद्रा, शरीर में गुरुता, जृमा, शरीर में शिथिता, रोमाञ्च और अङ्गमर्द होता है और इसके बाद अङ्गम (रसाजीर्ण), अविषाक (अन्न का नहीं पकना), अरुचि, मण्डलों एवं कोठों की उत्पत्ति, मांसस्वर्ण, हाथ, पैर और नेत्रों में शोध, मूर्च्छा, बमन, अतीसार तथा श्वास, तुषा, ज्वर और उदर की वृद्धि (दृष्योदर) भी करता है ॥ १-२ ॥

दूषीभेदेन विकारभेदमाह—

उन्मादमन्यज्ञनयेत्तथाऽन्यद्वानाहमन्यत्वपयेच शुक्रम् ।

गादूष्यमन्यज्ञनयेत्तथाऽन्यकुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ १ ॥

गरविष का कार्य—उन रज-मलादि मिथ्रित अन्न के भक्षण से पुरुष को पाण्डु, कृशता, मन्दाग्नि तथा शरीर के अन्दर गर विष उत्पन्न हो जाता है, मर्मस्थानों में पीड़ा होती है, आध्मान होता है, हाथों में शोष होता है तथा उदररोग, ग्रहणीरोग, यक्षमा, गुल्म, क्षय तथा ज्वर हो जाता है तथा इसी प्रकार के अन्यान्य विषफोटादि व्याधियों के लक्षण भी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

दूषीविषस्य निकृतिमाह—

दूषितं देशकालान्विद्वास्वापैरभीषणशः । यस्मात्संदूषयेद्वात्मत्वमाद् दूषीविषं स्मृतम् ॥ १ ॥

दूषीविष की निकृति—शरीरस्य विष देश, काक, अन्न तथा दिवास्वापादि से बारबार दूषित होकर धातुओं को दूषित करता है, इसीसे उसे दूषीविष कहते हैं ॥ १ ॥

दूषीविषस्य साध्यत्वादिकमाह—

साध्यमासमवतः सद्यो याप्यसंवरसरोषितम् । दूषीविषमसाध्यं ह्यत्कीर्णस्याहितसेविनः ॥

साध्यासाध्यता—पृथ्वेसे एवं वृक्षवान् रोगी का शीघ्र उत्पन्न हुआ नवीन दूषीविष साध्य

होता है। इसी प्रकार (पथ्यसेवी) मनुष्य का एक वर्ष का हुआ दूषीविष याप्त होता है और क्षीण मनुष्य का तथा कुपथ्य करनेवाले का दूषीविष असाध्य होता है । १ ॥

कृत्रिमं विषं द्विविधम्—एकं सविषं दूषीविषसंज्ञम् । अपशमविषं तदेव गरसंज्ञम् ।

कृत्रिम विष के मेद—कृत्रिम विष दो प्रकार का होता है एक विष से युक्त जिसे दूषीविष कहते हैं और दूसरा विष से रहित जिसे गरविष कहते हैं ॥

तथा च काशयपसंहितायाम्—

संयोगजं च द्विविधं द्वितीयं विषमुच्यते । दूषीविषं तु सविषमविषं गर उच्यते ॥ १ ॥

काशयप संहिता में भी कहा गया है कि दूसरा संयोगज विष दो मेद का होता है एक दूषीविष जो विष से युक्त होता है और दूसरा गर जो विष से रहित होता है ॥ १ ॥

तत्र दूषीविषमभियाव गरं दर्शयितुमाह—

सौभाग्यार्थःस्त्रियः खेदरजोनानाङ्गान् नमलान् । शत्रुप्रयुक्तोऽश गरान्प्रयच्छुत्यञ्चमिथितान् ॥

गरविष के लक्षण—अपने सौभाग्य (पति आदि की वश में करने) के लिये स्त्रियां स्वेदरज तथा नाना अङ्गों के मल को तथा शङ्खों द्वारा प्रस्तुत किये हुए गर विष को अन्न में मिथित कर दे देती हैं ॥ १ ॥

गरकार्थमाह—तेः स्थाप्याद्युः कुशाङ्गपरिनग्नैश्चाश्योपजायते ।

मर्मप्रधमनाधमानं हस्तयोः शोथसम्भवः ॥ १ ॥

गर विष का कार्य—उन स्वेद, रजादि मिथित अन्न के लक्षण से पुरुष को पाण्डु, कृशता, मन्दाद्य तथा शरीर के अन्दर गरविष उत्पन्न हो जाता है, मर्मस्थानों में पीड़ा, आधमान, इयो में शोथ हो जाता है ॥ १ ॥

जटरं ग्रहणीरोगो यथा युष्मः स्त्रयो उवरः । एवं विषस्य चान्यस्य व्याधीर्लिङ्गं च जायते ॥

दूषीविष से और भी उदर रोग, ग्रहणी रोग, यक्षमा, युख्म, क्षय तथा उवर हो जाता है और इसी प्रकार के अन्यान्य व्याधियों के लक्षण भी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

लूतानां जन्तुविशेषाणां मुत्पत्तिनिरुक्तिसंख्यादिदि चाह—

यस्मावलूतं तुणं प्राप्ता सुनेः प्रस्वेदविन्दवः । तेष्यो जातास्तेतो लूता इति ख्यातास्तु षोडशः ॥

लूता की उत्पत्ति—वशिष्ठ मुनि के प्रस्वेद बूँद लूत तुण (धैर्यवं कठे वास) पर गिरने से एक प्रकार के कीट विशेष की उत्पत्ति हुई इसलिये उसे लूता कहा गया, वह लूता सोलह प्रकार की होती है ॥ २ ॥

अत्र सुश्रुतः—विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिदविषतत्त्वः ।

वसिष्ठं कोषयामात् गत्वाऽश्रमपदं किल ॥ २ ॥

कृपितस्थ मुनेस्तस्य ललाटारस्वेदविन्दवः । अपतन्दर्शनादेव ध्वधस्तातीव्रवर्चसः ॥ ३ ॥

लूते तुणे महर्षेस्तु धैर्यवं सम्भृतेऽपि च । ततो जातास्तिवमा चोरा नानारूपा महाविषाः ॥

तासामश्च कृष्टसाध्या उज्ज्वरस्तावथ एव हि ॥ ५ ॥

इस पर सुश्रुत का वचन यह है कि कभी नृप श्रेष्ठ राजवि विश्वामित्र जी मुनिवर वशिष्ठ जी के आश्रम पर जाकर (बल्पूर्वक उनकी कापशेतु को लेने का प्रयत्न कर) उन्हें कृपित कर दिये । उन कुद्दुए मुनि के ललाट से बड़े बेग से स्वेद की बिन्दुयों नीचे गिरकर मध्यिं वसिष्ठ जी जो तुण उस कामधेतु के लिये काटकर रखे थे उसी पर पड़ी और उन्हीं स्वेदविन्दुओं से अनेक प्रकार के भयंकर महाविष युक्त लूता कीट विशेष आदि उत्पन्न हुये उनमें से आठ प्रकार की लूता कृष्टसाध्य होती है और शेष आठ प्रकार की असाध्य होती है ॥ २-५ ॥

तत्र त्रिमण्डकाप्रभृतयः कृष्टसाध्याः । सौवर्णिकाप्रभृतयोऽष्टावसाध्याः ॥

यहां पर त्रिमण्डका आदि (आठ प्रकार की) लूता कृष्टसाध्य होती है और सौवर्णिका आदि आठ असाध्य होती है ॥

तासां सामान्यानां दंशलक्षणमाह—
तामिदंदे दंशकोथः प्रवृत्तिः चतुर्स्थ च । उवरो दाहोऽतिसारव गदाः स्तुत्य त्रिदोषजाः ॥
लूता दंश के सामान्य लक्षण—लूताओं के दंश से दंशस्थान पर कोप (पूर्तिभाव अर्थात् सदने के समान) होता है तथा क्षत्र त्रिवृति रक्तादि का स्नाव होता है और उवर, दाह, अतीसार एवं त्रिदोषज रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

पिटिका विषधाकारा मण्डलानि भान्तिं च ।

शोथा महान्तो सूदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा ।

सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

अनेक प्रकार की पिटिकायें होती हैं, बहुत बड़े २ मण्डल होते हैं, महान् शोथ और कोमल, रक्त एवं कृष्ण वर्ण के तथा चक्र अर्थात् पक्ष स्थान से दूसरे स्थान पर चलने वाले होते हैं ॥ २ ॥

त्रिमण्डकादयोऽष्टी दूषीविषास्तासां लक्षणमाह—

दंशमध्ये तु यस्त्रियां श्यावं वा जालकावृतम् । दध्वाकृति भृशं पाकवलेदशोथवरान्वितम् ॥
दूषीविषास्त्रियां लक्षणं विषावसाध्याः ॥

दूषीविष के लक्षण—जिस लूता दंश में दंश स्थान का मध्य भाग, कृष्ण अथवा श्याम वर्ण का हो अथवा जाकियों से विरा हुआ सा हो, अपिन से जलने के स्थान हो उत वर्ण में अपिक लेद तथा शोथ हो और शरीर में उवर हो तो उसे दूषी विषदाली त्रिमण्डकादि लूताओं का दंश बानना चाहिये ॥ २ ॥

सौवर्णिकादयोऽष्टावसाध्याः प्राणहरास्तासां लक्षणमाह—

शोथाः श्वेताः रक्ताः पीता वा पिटिका उवरः ।

प्राणान्तिको भवेद्दाहः शासो हिक्का शिरोग्रहः ॥ ३ ॥

असाध्य दूषी विष—जिस लूता दंश स्थान में शोथ हो, इवेत अथवा इवेतरक गिथित वर्ण की (गुणाती) अथवा श्वेत तथा अतिश्वेत वर्ण की, रक्तवर्ण की अथवा पीतवर्ण की पिटिकायें हों, उवर हो, दाह हो, शास हो, हिक्का हो और शिरोग्रह हो उसे प्राणनाशक लूताओं का दंश बानना चाहिये ॥ ३ ॥

आलुदूषीविषलक्षणमाह—

आ दंशाच्छ्रोगितं पाण्डु मण्डलानि उवरोऽष्टिः । दोमहर्षश दाहश्याप्त्यालुदूषीविषादिते ॥

आलु विष के लक्षण—जिस मूस के काटते ही दंश स्थान से रक्त का स्नाव होने लगे, वह पाण्डु हो जाये, पाण्डुवर्ण के मण्डल उत्पन्न हो जाये, उवर हो, अश्वी हो, रोमाघ हो और दाह हो उसे आलु दूषी विष बानना चाहिये ॥ ३ ॥

प्राणहरमूषकविषकार्यमाह—

मूल्याङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेशवदाशुतिज्वराः । जिरोगुहस्तं कालाङ्गप्रस्तुतिव्यासाध्यमूषकात् ॥

प्राणहर मूषक विष—जिस मूस के दंश से मूल्याङ्ग, अङ्गों में शोथ, वर्ण वैकृति (वर्ण विवर्णता), लेद (वमनेच्छा) अथवा दंश स्थान पर लेद (आद्रेता) अविरता, उवर, जिर में गुरुता, कालाङ्गाव, रक्ताङ्गाव, वमन अथवा रक्त वमन हो उसे असाध्य मूषक विष बानना चाहिये ॥ ३ ॥

कृष्णर्णववस्थमयवा भानावर्णांवमेव च । मोहोऽथ वर्चसो भेदो दृष्ट्य कृकलासकः ॥ ३ ॥

द्रुकलास (गिरगिट) दंष के लक्षण—जब गिरगिट काटता है तो वर्ण कृष्ण, स्थाम अथवा अनेक वर्ण का हो जाता है, मोह होता है और मळमेद होता है ॥ १ ॥

वृश्चिकविषस्य लक्षणमाह—

दृश्यविनिरिवाऽऽही तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च । वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाहंशेऽवतिष्ठति ॥ ३ ॥

वृश्चिक विष के लक्षण—विच्छू जब ढंक मारता है तो प्रथम अग्नि से बचने के समान दाह होता है पुनः शीघ्र ही मेदन करता हुआ वा छेदने के समान पीड़ा करता हुआ विष ऊपर को आता है, पश्चात दंश स्थान पर ही पीड़ा स्थित हो जाती है ॥ २ ॥

असाध्यवृश्चिकदृश्य लक्षणमाह—

दृश्येऽसाध्यस्तु हृद्घाणरसनोपहतो ज्वरः । मांसे: पत्तद्विरस्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ २ ॥

वृश्चिक विष के असाध्य लक्षण—विच्छू के ढंक मारे हुए मनुष्य के हृदय, ग्राण और विषा डगहट हो जावे (वे अपना कार्य सम्पादन करने योग्य न रहे अथवा इन पर आधात दुष्टा हो) तो ऐसा दंश असाध्य समझना चाहिये तभा जिसका मांस अस्यन्त गिरने लगे एवं वह मनुष्य वेदना से अत्यन्त पीड़ित हो जावे तो वह भी प्राण को स्थाग देता है अर्थात् यह और असाध्य है ॥ २ ॥

कणददृश्य लक्षणमाह—

विसर्पं: अथशुः शूलं उवरश्चर्दिरथापि वा । लच्छणं कणभैर्दृष्टे दंशश्चैवावशीर्यते ॥ ३ ॥

कणम् (कोट विशेष) के दंश का लक्षण—कणभ नामक कोट विशेष के दंश से विसर्प, शोष, शूल, उवर तथा बमन होते हैं और दंशस्थान विदोर्ण हो जाता है ॥ ३ ॥

वृच्छिकदृश्य लक्षणमाह—

हृष्टलोमोच्छिट्टेन इत्यलिङ्गो भृशार्तिमान् । दृष्टः शीतोदकेनैव सिक्कान्थङ्गानि ग्रन्थते ॥ ४ ॥

वृच्छिक दंश के लक्षण—वृच्छिक नामक कोट विशेष (जिसे वृश्चिक का भेद भी माना जाता है) के दंश से रोमाच हो जाता है, लिंगेन्द्रिय स्तर्वा हो जाती है, अस्यन्त पीड़ा होती है तथा ज्वात होता है कि शरीर शीतल जल से सिंचित किया गया है ॥ ४ ॥

सविषमण्डुकदृश्य लक्षणमाह—

एकवंच्छादितः शूनः सरुजः पीतकः सरुट् । सनिद्रश्चिद्मान्दृष्टो मण्डूकैः सविष्वर्भवेत् ॥ ५ ॥

मण्डूक विष के लक्षण—विषवाले मण्डूक के काटने से मनुष्य एक दाढ़ पीड़ित होता है, शरीर में शोष, पीड़ा तथा शरीर का वर्ण पीत हो जाता है और उसे तुषा, नींद तथा बमन होता है ॥ ५ ॥

मत्स्यविषस्य कार्यमाह—

मत्स्यास्तु सविषाः कुरुंदाहं शोषं उवरं तथा ॥ ६ ॥

मत्स्य विष के लक्षण—विषयुक्त मछिलियों के दंश से दाह, शोष और उवर होते हैं ॥ ६ ॥

जडौकाविषकार्यमाह—

कणहं शोषं उवरं कृयुः सविषास्तु जडौकसः ॥ ७ ॥

जडौका विष के लक्षण—विषयुक्त जडौका (जोक) के शरीर में लगने से कणह, शोष और उवर होते हैं ॥ ७ ॥

गृहगोपिकाविषकार्यमाह—

विदाहं स्थथं तोदं स्वेदं च गृहगोपिका ॥ ८ ॥

गृहगोपिका विष के लक्षण—छिपकिली के दंश से दाह, शोष, तोद और स्वेद (पसीना) होता है ॥ ८ ॥

शतपदीविषलक्षणमाह—

दंशो स्वेदं शब्दो वाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ९ ॥

शतपदी विष के लक्षण—शतपदी (कान खजूर) के काटने से दंश स्थान में स्वेद पीड़ा और जड़न होती है ॥ ९ ॥

मशकविषलक्षणमाह—कण्ठमन्मशकैरीचन्द्रोथः स्थानमन्दवेदनः ॥ १ ॥

मशक विष के लक्षण—मशक दंश से कण्ठ, किञ्चित् शोथ और मन्द पीड़ा होती है ॥ १ ॥

असाध्यमशकक्षतलक्षणमाह—असाध्यकीदसदहासमाध्यमशकक्षतस्य ॥ १ ॥

असाध्य मशक क्षत के लक्षण—असाध्य मशक का क्षत (पार्वतीय मशक का दैंस का क्षत) असाध्य कीटों के क्षत के समान जानना चाहिये ॥ १ ॥

मक्षिकादोषलक्षणमाह—

सद्यः प्रखाविणी श्यावा दाहमूर्छादिवरान्विताः पिण्डिका मक्षिकादंशे तासां तु स्थगिका सुहृत्या ॥

मक्षिका दंश लक्षण—मक्षिकीयों के दंश में दंश स्थान पर शीघ्र स्नाव करनेवाली, स्थामवणी की दाह, मूर्छाँ और उवर से युक्त पिण्डिकायें उत्पन्न हो जाती हैं। उन पिण्डिकाओं का मित्र स्थगिका है अर्थात् स्थगिका से वे कुंसिया नष्ट हो जाती हैं ॥ १ ॥

व्याग्रादिप्रमुखानां विषकार्यमाह—

चतुर्ष्पादिन्द्रिपादिर्वान्वयदन्तस्त्रित च यत् । शूयते पक्षये वाऽपि द्वावति उवरथस्यपि ॥ १ ॥

व्याग्रादि विष के लक्षण—जार पांव वाले व्याग्रादि एवं दो पांव वाले मनुष्यादि के भी नख-दौत आदि से जो क्षत हो जाते हैं उनमें शोष, पांव, स्नाव तथा उसके कारण उवर भी होता है ॥

शानदण्डविषलक्षणमाह—

प्रग्राम्यस्तापयुक्तः श्वसनकसनवान्नीतहकपीतमूत्रः

सोन्मादो तुक्षमानो दशति च मनुजं योउतिकालक्षमेण ।

वर्षाकाले विषार्तः प्रभवति विकल्पोऽसाध्यतामान्युयाद्य

प्रायो वातप्रधानोऽविलम्बलक्षितः सारमेयेण दृष्टः ॥ १ ॥

शान दण्ड विष के लक्षण—कुक्कुर के दंश से मनुष्य भ्रमयुक्त तथा ताप युक्त रहता है और उसे श्वास, कास और पीत हो जाती है तथा सूत्र निरन्तर पीत वर्ण का ही होता है, कुछ समय व्यतीत हो जाने पर वह उन्माद के साथ भूँकता हुआ (कुक्कुर के समान शब्द करता हुआ) मनुष्य को काटता है। वर्षाकाल में अधिक विषार्त व्याकुल हो जाता है एवं असाध्यता को प्राप्त हो जाता है। प्रायः करके इसमें बात दोष की प्रधानता होती है तथा सम्पूर्ण दोष भी अर्थात् बात की प्रधानता युक्त सविषात दोष इसमें कुपित रहता है ॥ १ ॥

विषोक्षितः कृदृशो भवतीति दर्शयितुमाह—

प्रसञ्जदोषं प्रकृतिस्थवान्नीतिभिकामं समस्मृतिविट्कम् ।

प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैशोदिविगच्छेदविषं मनुष्यम् ॥ १ ॥

विषरहित लक्षण—जिस विषार्त मनुष्य के वातादि दोष प्रसन्न हो जावे वातु (शरीरस्थ धातु) प्रकृति के अनुकूल हो जावे, अन्न की इच्छा हो, सूत्र तथा मल समान धात्रा में होने लगे, पर्ण इन्द्रियां, विष और दैदाप्रसन्न हो जावे उसे वैष (विष से रहित) समझें ॥ १ ॥

अथ विषाणां चिकित्सा।

त्रासाऽऽही र्यावरविषस्य विकित्सा—

स्थायरेण विषेणाऽस्तं नरं यस्तेन चामयेत् । वस्तेन समं नास्ति यत्तस्तस्य चिकित्सितम् ॥

स्थावर विष चिकित्सा—स्थावर विष से पीड़ित मनुष्य को बह्यपूर्वक बमन कराना चाहिये। विष में बमन के समान उपकारी कोई योग नहीं है ॥ १ ॥

बमनम्—

तिक्कोशातकीकाथं पिवेन्मध्यायसंयुतम् । कटुकालाभुमूलं वा तत्पत्रं वा पिवेजलैः ॥ ३ ॥
तत्त्वणाद्यमनाद्यन्ति विषं योगाद्यिसुच्यते ।

वामक योग—तिक्क तरोई के काथ में मधु तथा गोदृत का प्रत्येक देकर पिलाने से अथवा कटुम्बी के मूल का स्वरस पिलाने से अथवा कटुम्बी के पत्र का स्वरस पिलाने से बमन होकर विष नष्ट हो जाता है। इन योगों से तत्त्वण ही बमन होता है और उस बमन से विष नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

विषमर्थर्थमुण्डं च कथितं मुनिभिर्थतः ॥ ३ ॥

विष में शीतल प्रसेक—विष अत्यन्त उष्ण होता है ऐसा मुनियों ने कहा है, अतः सभी प्रकार के विषों में शीतल प्रसेक लामदायक होता है ॥ २ ॥

अतः सर्वविषे प्रोक्षः परिषेकस्तु शीतलः ।

औषध्यात्मैष्याद्विशेषं विषं पित्तं प्रकोपयेत् ॥ ३ ॥

बमितं सेचयेत्स्वाच्छीत्तेन जलेन च । पाययेन्मधुसर्पिभ्यां विषधनं खेषजं द्रुतम् ॥ ४ ॥

विष उष्ण तथा तीक्ष्ण होने के कारण विशेष करके पित्त दोष को कुपित करता है। इसलिये प्रथम विषातं को बमन कराकर शीतल जल से सिंचन करना चाहिये तथा शीघ्र ही मधु पवं घृत से मुक्त विषधन औषध पिलाना चाहिये ॥ ३-४ ॥

भोक्तुमरुरसं द्यावर्येभ्यरिचानि च ।

अम्ल रसादि योग—विषातं को अम्लरस भोजन में तथा मरिच चवाने को देना चाहिये ॥

यस्य यस्य च दोषस्य पश्येत्सिलङ्गानि भूरिषः ॥

तस्य तस्यौषधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ ५ ॥

लिङ्ग विपरीत चिकित्सा—विस जिस दोष के लक्षणों को विषातं में अधिक देखे उसी उसी दोष के विपरीत युण वाली औषधि का प्रयोग तथा विपरीत युण वाली क्रिया करे। इससे उन उन दोषों के कोप की शान्ति होती है ॥ ५ ॥

कोपः—मूलत्वपत्रपुष्पाणि शीजं चेति शिरीषतः ।

गवां मूत्रेण संपिण्ठं लेपाद्विषहरं परम् ॥ ६ ॥

लेप विष—शिरीष के मूल, रवच, पत्र, पुष्प तथा बोज को समान माग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से विष नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

जङ्गमविषचिकित्सा, तत्रादौ सर्वविषचिकित्सामाह—

कार्याः सद्यः सर्वदै मणिमन्त्रौषधक्रियाः ।

अचिन्त्यो हि प्रभावोऽस्ति मणिमन्त्रौषधस्य यत् ॥ ७ ॥

सर्वविष निकित्सा—सर्व दंश होने पर शीघ्र ही मणिधारण, मन्त्रप्रयोग, तथा ओषधि क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिये क्योंकि मणि, मन्त्र तथा ओषधि का प्रभाव अचिन्त्य अर्थात् शोचनीय शक्ति से परे अथवा अविचारणीय होता है ॥ ७ ॥

तण्डुलीयकमूलं तु पीतं तण्डुलवारिणा । तत्केणापि दृष्टं हि निर्विषं कुरुते नरम् ॥ ८ ॥

तण्डुलीयक मूल योग—चौराई (शाक) के मूल को चावल के घोवन के साथ पीसकर पिलाने से, तत्काल सर्व ने भी यदि ढंसा हो तो उसके विष से भी विषातं मनुष्य को यह योग विषरहित कर देता है ॥ ८ ॥

भृतमधुनवनीतं पिष्पलीशङ्कवेरं मरिचमपि च द्यावालसमं सैन्धवं च ।

यदि अविति सरोषं तत्केणापि वृषादगदमिष्ट खलु योत्या निर्विषस्तरच्छोभेन ॥ ९ ॥

घृतादि सप्तक अगद—घृत, मधु, मखन, पीपल, अद्रक अथवा सौठ, मरिच एवं सातवर्ण सेषानमक हन सह ओषधियों को समान मात्रा लेकर पीपल आदि का इक्षण चूर्ण बनाकर एकत्र मिथित कर पिलाने से यदि कुछ होकर तत्कालसर्वं भी ढंसा हो तो उसका विष उसी त्वरित हो जाता है। यह योग अत्यन्त विषनाशक है ॥ ९ ॥

मूलं तण्डुलवारिणा पिकति यः प्रत्यक्षिरासंभवं

निपिण्ठं शुचिमद्योद्याविवसे तस्याहिभीतिः कृतः ।

सर्पदेव कणी यदा दक्षति तं मोहावितो मूलतः

स्थाने तत्र तदैव याति निष्ठतं वस्त्रं अमस्याविरात् ॥ १० ॥

प्रत्यक्षिरासुल योग—प्रत्यक्षिरा (कण्टक शिरीष अथवा इवेत पुनर्नवा) के मूल को चावल के घोवन के साथ पीसकर जेठ अथवा आषाढ़ मास में पुष्यादि नक्षत्र में जो मनुष्य पीता है उसे सर्पदंश का भय नहीं रहता है। यदि अद्यक्षारवश सर्व उत्ते ढंस ही के तो वह सर्व मूर्च्छित होकर उसी समय उसी स्थान पर शीत्र ही यमराज के मुह में चला जाता है ॥ १० ॥

क्षिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् । अवितं सर्पदृष्टानां पाने नस्याल्लने हितम् ॥ ११ ॥

शिरीष मावित मरिच योग—शिरीष के पुष्प के स्वरस में इवेत मरिच को एक सप्ताह तक आवित कर सर्पदंश वाले व्यक्ति को पिलाने से, नस्य देने से और व्यञ्जन करने से लाग्न होता है। दंशोपरि निष्पद्नीयात्तत्वणाच्छुतरुक्तुलम् । जीवादिभिर्वैणिकथा सिद्धैर्मन्त्रैष्व अन्नयेत् ॥ १२ ॥

अञ्जुवरसेतुबन्येल इत्यर्थते विषमं विषम् ।

बन्धन—दंश स्थान से बार अञ्जुल कपर शीघ्र ही रेशम आदि के सूतों (विस किसी) से इदं बन्धन कर देना चाहिये तथा सिद्ध मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये। बन्धन से विस प्रकार बाँध बाँधने से बल अवरुद्ध हो जाता है उसी प्रकार विष भी अवरुद्ध हो जाता है ॥ ११ ॥

नक्तमालफलयोषविलुप्तम् ॥ १३ ॥

सौरेशं पुष्पमाजं वा मूर्च्छं बोधनमज्जन्मदम् ॥

नक्तमालादि अज्ञन—बड़े करज के फल, सौठ, मरिच, पीपल, विलवृक्ष की मूल, हड्डी और दावहलदी को समान मात्रा लेकर शिरीष के पुष्प (अथवा तुक्सी की मजरी) के स्वरस के साथ पीसकर अथवा बकरी के मूत्र के साथ पीसकर अथवा इनके चूर्ण को इस स्वरस वा मूत्र के साथ घोटकर विषधूर्वक अज्ञन बनाकर लगाने से सर्पदंश से मूर्च्छित को बेतना होती है ॥ १३ ॥

वन्द्याकर्कोटीमूलं छागमूत्रेण भावितम् ॥ १४ ॥

नस्य काजिकसंपिण्ठं विषोपहतचेतसः ।

वन्द्याकर्कोटी की नस्य—बाँझककोड़ी की जड़ को बकरी के मूत्र में आवित कर काँबी के साथ पीसकर नस्य देने से मूर्च्छित व्यक्ति चैतन्य को प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

इवेतामूलं शमीमूलमोश्मूलमेव च ॥ १५ ॥

आदालिका तथा पाठा पृथगदृष्टकवान्वयाः ।

इवेतादि नस्य—इवेता (थेत पुनर्नवा) अथवा कण्टक शिरीष वा शमी वृक्ष, संपैगवा, देवदालो अथवा बाँझककोड़ी की जड़ तथा पाठा (पुरुदनपाड़ी) की जड़ में पृथग् २ किसी एक का विषधूर्वक नस्य (चूर्ण) बनाकर देना सर्पदंश वाले के लिये दित्कर होता है ॥ १५ ॥

कुलीकमूलगस्येन कालयूषोऽपि जीवति ॥ १६ ॥

कुलीक् (कण्टकपाली अथवा पटोल) की जड़ के चूर्ण का नस्य बनाकर देने से यदि काल के समान भी सर्प डंसा हो तो वह शीवित हो जाता है ॥ १० ॥

जलेन लाङ्गूलीकनदं नश्यं सर्पविषापहम् ।

लाङ्गूलीनस्य—कलिहारी के मूल के जल के साथ पीसकर नस्य देने से सर्पविष नष्ट होता है ।

बारिणा टक्कणं पीनमथवाऽक्स्य मूलकम् ॥ ११ ॥

टंकणाकं मूलयोग—शुद्ध सोहागे को अथवा आक की जड़ को जल के साथ पीसकर पान करने से सर्प विष नष्ट होता है ॥ ११ ॥

धूपः—कपोतविषमर्थ्यक्षिरोहाणि सगोविषाणि शिखिपिण्डकाग्रम् ।

यवस्य धान्यस्य तुषाश्च वीजं कार्पासजं वाऽप्युषिताश्च मालाः ॥ १ ॥

इत्यौषधीभिः परिकल्पितोत्तमो धूपोऽगदः स्याद्भुजगेऽसुके ।

गृहे विधेयः कुक्षलैरनेन नश्यन्ति सर्पाश्च तथाऽखवशः ॥ २ ॥

धूप प्रयोग—कपोत की विषा, मनुष्य के शिर के बाल, गौ की सींग, मोरचंड का अग्रभाग औ तथा घान की भूसी, कपास के बीज, पर्युषित (बासी) माला इन सब के योग से निर्मित वह उत्तम अगद धूप सर्पों से मुक्त कर देता है अर्थात् इस धूप के देने से सर्प नहीं रहते । तुडिमान् इस धूप को घर में ढेवे तो इससे सर्प तथा मूसक दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

सातलाफलफेनेवाऽनं कृत्वा सर्पविषं नश्यति ।

सातला फेनाभ्न—पीतदुर्घ वाली थूहर के फल के फेन का अज्ञन करने से सर्प विष नष्ट होता है ।

अथ मन्त्रः—ॐ पः सर्पकुलाय स्वाहा, अनेन मन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्रितां मृत्तिकां मर्ये शिषेसर्पाः पलायन्ते ॥ ३ ॥

मन्त्र—‘ॐ पः सर्पकुलाय स्वाहा’ इस मन्त्र से भिट्ठी के ढेले को सात बार अभिमन्त्रित कर घर में ढाल देने से सर्प भाग जाते हैं ॥ ३ ॥

कालवज्राशनिरसः—

पारदं गन्धकं तुथं टक्कणं रजनीसमद् । देवदात्या द्रवेमर्द्य दिनं शुद्धं तु भवेत् ॥ ३ ॥

कालवज्राशनिरसः सर्वविषापहः । नरमूत्रं पिवेत्तच्छानुं कालदष्टोऽपि जीवति ॥ २ ॥

कालवज्राशनिरस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध तूतिया, शुद्ध टक्कण तथा इकड़ी को समझाग लेकर देवदाली के स्वरस में एक दिन भर मर्दन कर झुसाकर भस्त्र करने (प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य शोषितियों को मिलाकर घोटकर तब देवदाली-स्वरस में मर्दन करना चाहिये) यह कालवज्राशनि नाम का रस सभी प्रकार के विषों को नष्ट करता है । यदि मनुष्य के मूत्र के अनुपान से दिया जावे तो कालरूप सर्प भी डंसा हो तो भी मनुष्य शीवित हो जाता है ॥ १-२ ॥

दूषीविषविकित्सा—

दूषीविषात् सुस्तिनग्धमूर्खं चाऽधश्च शोषितम् । पाययेदगदं मुख्यमिदं दूषीविषापहम् ॥ १ ॥

दूषीविष चिकित्सा—दूषीविष से पीड़ित रोगी को मलीमाँति स्नेहन शोषित देकर बमन विरेचन करावे पश्चात आगे कहे द्वय दूषीविषनाशक मुख्य अगद को पिलावे ॥ १ ॥

पिष्पली धान्यकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिका । मरिचं बालकं चैला तथा कनकगैरिकम् ॥

चौद्रयुक्तः कषायोऽयं दूषीविषमपोहति ॥ २ ॥

पिष्पस्यादि अगद—पीपल, घनियाँ, अटामासी, लोध, इलायची, सज्जीखार, मरिच, मुग्न्य

बाला, इलायची और सुनहरी गेह को समान भाग लेकर काष करके भयु का प्रक्षेप देकर पान कराने से दूषीविष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

कृत्रिमविषचिकित्सा—

कृत्रिमं तु विषं व्यातं पष्टान्मासाशृंखाध्वरे । आलृद्यं कुहते जालृद्यं कासथासौ व्यालृद्यम् ॥

रक्तस्त्रावो उवरः शोफः पीतचूक्ष्म लुध्येत् ।

कृत्रिम विष—कृत्रिम विष का प्रयोग एक पक्षा अथवा एक मास के पश्चात् पीड़ित करता है । उससे शरीर में आलृद्य, बड़ता, कास, श्वास, बल का बाश, रक्तस्त्राव, शोथ तथा नेत्र पीतवर्ण के दिखाई देते हैं ॥ १ ॥

शक्कराचूर्णसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः ॥ २ ॥

लेहः प्रश्नमयस्युं नानायोगकृतं विषम् ।

शक्करा सुवर्णादि लेह—सुवर्ण मालिक अस्म तथा झुवर्ण मत्स के शक्करा (चीनी अथवा मिश्री) के चूर्ण के साथ लेह बनाकर सेवन करने से अथवन्त उत्र तथा अनेक योगों द्वारा निर्मित कृत्रिम विष भी शमन हो जाता है (मात्रा अनिवालनुसार देनी चाहिये) ॥ २ ॥

पुत्रजीविषय मउजां च निष्कमात्रां गावा पद्यः ॥ ३ ॥

पिष्टा चौंगं गरं हन्थाजानायोगकृतं विषम् ।

पुत्र चीवमज्जा योग—पुत्रजीवक (जियापोता) के फल की मज्जा एक निष्कम के प्रमाण से लेकर गोदुर्घ के साथ पीसकर पान कराने से अनेक योगों द्वारा निर्मित उत्र कृत्रिम विष भी नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

गृहृशूरं जड़ेः पिष्टवा तण्डुलीमूलतुल्यकम् ॥ ४ ॥

कण्ठाऽच्चतुर्गुणं चाऽज्ञयं चृतात् चीरं चतुर्गुणम् । चृतशेषं पचेत्सम्यक् पिवेत् सर्वंगरापद्मम् ॥

गृहृशूरादि शूत—गृहृशूर (रसोई घर का शाळा) लेकर जल के साथ पीसकर वितना हो उसके समान चौराई (शाळ) की जड़ लेकर विषिपूर्वक कल्क करके कल्क के चतुर्गुण गोधृत तथा शूत के चतुर्गुण गोदुर्घ लेकर शूतपाक की विषि से मन्दरपिण पर शूत सिद्ध करके शूत मात्र शेष रहने पर उस शूत को पान करावे तो इससे सब प्रकार के गर (कृत्रिम विष) नष्ट होते हैं ॥ ४-५ ॥

पारावतामिषद्वाजाकासथासहित्याज्वरापद्मम् ॥ ५ ॥

पारावतादि हिम—कपोत का मास, कच्चर और पुकरमूल को समान भाग लेकर औटाकर विषिपूर्वक हिम बनाकर पिलाने से गर (कृत्रिम विष) एवं तत्सम्बन्धी तुष्णा, पीड़ा, कास, श्वास हिमका तथा ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

गरनाशनरसः—

शुद्धसूतं शृतं श्वर्णं संशुद्धं हेम मालिलम् । त्रयाणां गन्धकं तुल्यं मर्याद्यैर्दिनम् ॥ १ ॥

तच्छुद्धं ससितद्वैद्रं माषैकं लेहयेत्सदा । वह्निमूलं शृतं द्वीरेत्तु श्वाद् गरनाशनम् ॥ २ ॥

गरनाशन रस—शुद्ध पारद, स्वरंगम तथा शुद्ध श्वर्ण मालिक की मत्स को समान भाग लेवे तथा तीनों मिलाकर वितना हो उसके समान शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारदगन्धक की कज्जली कर अन्य अस्त्रों को मिलाकर मर्दन कर शूतकुमारी के स्वरस में दिन भर (चार पद्म) मर्दन करे । अब सूख जावे तब उसमें से एक माशा के प्रमाण से लेकर शक्करा तथा मधु मिलाकर चाटाकर चित्रकमूल को दूध में पकाकर उस दूध का अनुपान करावे तो कृत्रिम विष नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

नस्तदन्तविषचिकित्सा—

विचुमन्दशमीवटकल्पयुतं क्षयितं जलमाशु विलोडनतः ।

नस्तदन्तविषाणि निहन्ति नृणां विषमाप्णविलान्यपि स्थयमिदम् ॥ १ ॥

नस्तदन्तविषचिकित्सा—नीम, शमी, तथा वट की त्वचा को समान भाग लेकर कल्प कर उस कल्प से काथ बनाकर उस काथ को नस्तदन्त से छत स्थान पर गिराने (धोने) से शीघ्र सभी प्रकार के नस्तदन्त के विष निवाप ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

आखुविषचिकित्सा—

अगारधूममिलिष्ठारजनीलवणोत्तमः । लेपो जयथात्मुविषं कोशातकथय वा सिता ॥ १ ॥

गृहधूमदि योग—गृहधूम, मजीठ, इलदी तथा सेवानमक को समान भाग लेकर पीसकर लेप लगाने से मूसे के विष को नष्ट करता है—अथवा कडुई तरोई को पीसकर लेप लगाने से वा इवेत शकरा का लेप लगाने से मूसे का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

उरगेण विनिर्मुक्तिनिर्मिक्षूभूमसेवनात् । पश्याक्षी त्रिविन्दं धूमो भवेदाखुविषापहः ॥ २ ॥

सर्पनिर्मांक धूम—स' के शरीर से निकला हुआ केन्तुल लेकर अग्नि पर देकर उसका धूम सेवन करने से तथा पश्य ओबन करने से तीन दिन में आखुविष नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

कुष्ठं वचामदनकोशवतीफलेन संयोजितं तदिति चूर्णमिदं चतुर्णाम् ।

गोमूत्रपीतकसिलाखुविषं निहन्ति कोशातकीकथनमापिष्ठोऽथ वापि ॥ ३ ॥

कुषादि चूर्ण—कुठ, वच, मैनफल तथा देवदाली के फल को समान भाग लेकर चूर्णकर गोमूत्र के अनुपान से पान करने से सब प्रकार के आखुविष नष्ट होते हैं, अथवा कडुई तरोई के वचाप को पान करने से सभी प्रकार के आखुविष नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

तुलसीरसेन गोदन्तशिलाम्यां चुरेण प्रचिछृथं लेपः कार्यो विषं नश्यति ॥ ४ ॥

तुलसी रस प्रयोग—तुलसी रस के साथ गौ का दाँत तथा मैनशिल पीसकर मूसे के दंश स्थान को छुरे से छीलकर उस पर इसका लेप लगा देना चाहिये। इससे आखुविष नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथवा चित्रकमूलचूर्णं तैले विषाच्य मस्तके चुरेण प्रचिछृथं शिरसि ब्रह्मरन्ध्रे मर्दनं हृष्ट्वाऽऽस्तुविषं नश्यति ॥ ५ ॥

चित्रक तैल—चित्रकमूल के चूर्ण द्वारा विषपूर्वक तैल सिद्धकर मस्तक में छुरे से छीलकर शिर पर के ब्रह्मरन्ध्र पर इस तैल का मर्दन करने से आखुविष नष्ट होता है ॥ ५ ॥

चित्राकफलसमायुक्त गृहधूमं पलार्धकम् । उराणवायेन सप्ताहं लिहेदाखुविषं हरेत् ॥ ६ ॥

चित्राकफलादि योग—इमली के फल का चूर्ण तथा गृहधूम दोनों आवा पक लेकर पुराने घृत के अनुपान से एक सप्ताह तक चाटने से आखुविष नष्ट होता है ॥ ६ ॥

रसः—

इसं गन्धं विषं चैव ज्युषणं टक्करोहिणी । पुनर्नवारसैर्मर्द्यं गोमूत्रे च द्विगुलकम् ॥ १ ॥

पिवेदाखुविषात्मानां सर्वं हरति तदिष्म । विषदहोऽवानन्यादाखुविषान्तकः ॥ २ ॥

आखुविषान्तक रस—गृहु पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध भीठा विष, सोंठ, मरिच, पीपल, शुद्ध टक्कर और कुटकी को समान भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कडजली कर अथवा इव्यों को मिलाकर मर्दन कर गोमूत्र के अनुपान से दो गुज्जा प्रमाण की मात्रा से पान करने से आखुविष पीछितों के सब प्रकार वा विष नष्ट होता है तथा विषदंश से उत्पन्न हुए अन्यान्य विकारों को भी यह नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

रसगन्धनिशावन्तुगृहधूमशीर्षजम् । बीजं दिनकरस्तीर्मद्विष्वा विलैपयेत् ।

विशेषान्मूषकविषं हन्यादन्यान्विवोद्वान् ॥ ३ ॥

अन्य योग—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, इलदी, पीतशाल, गृहधूम और शिरीस का बीज प्रत्येक समान भाग लेकर पारद गन्धक की कडजली कर फिर अन्य इव्यों को मिलाकर आवा दूध में मर्दन कर लेप करने से विशेष कर मूसे के विष तथा अन्यान्य विष जिनित दोनों को भी नष्ट करता है ॥ ३ ॥

वृश्चिकविषचिकित्सा—

जीरकस्य कृतः कल्पो घृतस्यन्धवसंयुतः । सुखोणो मासुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत् ॥ ४ ॥

जीरकादि ऐप—जीरे का कल्प बनाकर उसमें घृत तथा सेवानमक मिलाकर तथा मधु मिलाकर किञ्चित उष्णकर लेप करने से वृश्चिक का विष नष्ट होता है ॥ ४ ॥

गन्धमाद्याय मृदितं सूर्यावर्तदलस्य तु । वृश्चिकेन नरो विद्धुः ल्लणाद्विवति निर्विषः ॥ ५ ॥

सूर्यावर्तं पत्र गन्ध—सूर्यावर्तं (सूर्यमुखी) के पत्तों को मर्दन कर उसके गन्ध को सूंधने से विच्छू के ढंक से पीडित मनुष्य क्षण भर में निविष हो जाता है ॥ ५ ॥

यः कासमर्दपत्रं वक्षने निर्विष्य कर्णफूक्तारम् ।

मनुजो ददाति शीघ्रं जयति हि विषमाशु वृश्चिकानां सः ॥ ६ ॥

कास मर्दन पत्र प्रयोग—कर्तौजर के पत्तों को मुख में चापाकर विच्छू काटे हुए मनुष्य के कान में फूंक देने से विच्छू का विष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

अजाक्षीरेण संविष्टा शिरीषकलमित्रिता । उपकुवया विषं हन्ति वृश्चिकस्य प्रखेपतः ॥ ७ ॥

अजाक्षीरादि योग—शिरीष कफ तथा पीषक समान भाग लेकर बकरी के दूध में पीसकर लेप करने से विच्छू का विष नष्ट होता है ॥ ७ ॥

कार्पासपत्रैः संपिट्टैराजयलेपो विषापहः । वृश्चिकस्थाथ वा वस्तनाभलेपः प्रशस्यते ॥ ८ ॥

कार्पास पत्रादि योग—कार्पास के पत्तों को घृत के साथ पीसकर लेप करने से विच्छू का विष नष्ट होता है अथवा वस्तनाभ विष को जक के साथ पीसकर लेप करने से विच्छू के विष में लाग होता है ॥ ८ ॥

मनःशिलाकृष्टकरङ्गबीजशिरीषकाशमीरभवैः समांज्ञैः ।

विनिर्मिताऽस्त्वये विद्यता च लिसा संहारिणी वृश्चिकवैकृतस्य ॥ ३ ॥

मनः शिलादि गुटिका—शुद्ध मैनशिल, कुठ, करंज के बीज, शिरीष के बीज और गम्भार के बीज को समान भाग लेकर कूट पीसकर विषिपूर्वक बटी बनाकर मुख में चापान करने से तथा दंश स्थान पर लेप करने से विच्छू का विष नष्ट होता है ॥ ३ ॥

मातुलुक्ष्य मूलं तु रविवारे समुद्ररेत् । उत्तराभिमुखेनैव हीमन्द्रोचचारणात् दृश्येत् ॥ ४ ॥

वामाङ्गं दविणे दण्डे वामदण्डे च दविणे । सप्तधा मार्जनेनैव विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ५ ॥

मातुलुक्ष्य मूलं प्रयोग—विजौरे जीबू के मूल को रविवार को चखाड़े लेवे तथा उत्तर दिश में सुंदर करके वृश्चिक दंश बाले मनुष्य को 'ओ ही' इस मन्त्र को उच्चारण करता हुआ स्पर्श करे। यदि दाहिने अंग में विच्छू मारा हो तो बाया अंग स्पर्श करे तथा यदि बाये अंग में विच्छू मारा हो तो दाहिने अंग का स्पर्श करे। इस प्रकार सात बार स्पर्श करने से ही विच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

स्वेतं पुनर्नवामूलं रविवारे समुद्ररेत् । कार्पासमूलं चर्वित्वा विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ६ ॥

स्वेतं पुनर्नवायोग—रविवार को कपास के मूल को चापाकर इसेत पुनर्नवाया के मूल को चखाड़े तो विच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

प्राद्यं हंसपदीमूलं प्रातराविष्यवासरे । मुखैस्तश्चिकृतिः कर्णे विषं वृश्चिकं हरेत् ॥ ७ ॥
 हंसपदी मूल योग—रविवार को प्रातः काल हंसपदी (हंसराज) के मूल को लेकर मुख में चबाकर उसके रस को बिच्छु मारे हुए मनुष्य के कान में डाले तो बिच्छु का विष नष्ट हो जाता है ॥
 मन्त्रविधिः—ओं शः फट् स्वाहा । अनेन मन्त्रेणापो मार्जयेत् ।
 ‘ओं शः फट् स्वाहा’ इस मन्त्र से जल को छिड़िकरे से बिच्छु का विष नष्ट होता है ।

मन्त्रः—

आदित्यरथवेगेन विष्णुवाणम्भलेन च । गरुडपञ्चनिषातेन भूम्यां गच्छ महाविष ॥ १ ॥
 ‘आदित्यादि’ इस मन्त्र को पढ़कर जल का छीटा देने से अथवा इससे अभिमंत्रित जल का छीटा देने से बिच्छु का विष नष्ट होता है । मन्त्रार्थ—सूर्य के रथ के वेग के समान वेग से, विष्णु के वाण के बल से तथा गरुड़ के पंख की तीव्रता के समान तीव्रता से हे महाविष । तू भूमि में चला जा ॥ १ ॥

पानीयपिष्ठजेपालकश्कलेपेन सर्वथा । विषं वृश्चिकविद्धस्य भस्मीभवति तरक्षणात् ॥ २ ॥
 लैपाल प्रयोग—जग्मालगोटे के बीज को जल के साथ पीसकर करके बनाकर लैप करने से बिच्छु के ढंक का विष उसी समय नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

नवसागरहरिताले पिष्टे तोयेन लेपनादृदंशे ।

तत्त्वण्मेव हि जयतो वृश्चिकविद्धस्य दुर्धरचेष्टम् ॥ ३ ॥

नवसागरादि लैप—नौसादार तथा हरनाल को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर लैप करने से उसी लग बिच्छु के दंश की अंथकर पीड़ा नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

उम्मीपाणामादाय निरुच्छनीरेण संयुतम् । दंशस्याने लेपेन स्थाद्विषं वृश्चिकं हरेत् ॥ ४ ॥
 उम्मीपाणाम लैप—संखिया विष को बीबू के स्वरस के साथ पीसकर लैप करने से बिच्छु से उत्पन्न विष नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कीटबलीकादिविषचिकित्सा—

कटम्यर्जुनशैरीषशेलुचीरिद्रुमत्वचाम् । कृष्णकशकन्तुर्णः स्युः कीटलूताश्चापहाः ॥ १ ॥
 कीट बलीकादि विष चिकित्सा—मालकांगनी, अर्जुन, शिरीस, छोड़ा और क्षीरी बृक्षों की त्वचा प्रत्येक समान भाग लेकर इनका विष्पूर्वक काथ अथवा कलह कर अथवा चूर्ण करके प्रयोग करने से कीट एवं लूता आदि से उत्पन्न व्रणों को नष्ट करता है ॥ १ ॥
 बचाहिद्युविषड्नानि सैन्धवं गजपिथपली । पाठा प्रतिविषा व्योमं करशयेन विनिर्मितम् ॥
 दशाङ्गमगदं पीथा । सर्वकीटत्विषं जयेत् ।

दशाङ्ग अगद—वच, हींग शुद्ध, वायविडंग, सेवानमक, गजपिल, पुरहनपादी, अतीस, सोंठ, मरिच और पीपल को समान लेकर पीसकर पीने से सब प्रकार के कीट विष नष्ट होता है । यह योग कथय जी का बनाया हुआ है ॥ २ ॥

कीटदृष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलैकसाम् ॥ ३ ॥

जलौका विष चिकित्सा—कीट दंश की चिकित्सा के समान ही जलौका दंश की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

वरटीविषचिकित्सा—

मरीचं नागरोपेतं सिन्धुसौवर्च्छान्वितश्च । फणिगवलीरसैर्लेपाद्वन्ति तद्वरटीविषम् ॥ १ ॥
 वरटी विष चिकित्सा—मरीच, सोंठ, सेवानमक और सौवर्च्छा नमक को समान भाग लेकर पान के स्वरस के साथ पीसकर अथवा इनका चूर्ण कर पान के स्वरस के साथ घोटकर लैप करने से वरटी के विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

लूताविषचिकित्सा—

रजनीद्वयमिष्ठापतङ्गजकेसरैः । शीताम्बुपिष्ठैरालेपः स्थो लूताविषापहः ॥ १ ॥
 लूताविष चिकित्सा—इलदी, दाशहलदी, मजीठ, पदुमकाठ और नागकेसर को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर लैप करने से शीतल लूताविष नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

गिरिकर्णीद्वयं शेलुः पाटला द्वे पुनर्नवे । कपिरथश्च शिरीषश्च लेपो लूताविषापहः ॥ २ ॥
 गिरिकर्णी आदि लैप—श्वेत, कृष्ण दोनों अपराजिता (प्रथक् २) क्षोदा, पाढ़र की छाल, रक्त श्वेत दोनों पुनर्नवा (प्रथक् २) कैथ तथा शिरीष की त्वचा को लेकर जल के साथ पीसकर लैप करने से लूताविष नष्ट होता है ॥ २ ॥

मण्डूकविषचिकित्सा—

शिरीषबीजैः कुलिशदुमस्य चीरेण पिष्टः कृतलेपनानाम् ।

विषं विनाशं व्रजति लेपेन मण्डूकदंशप्रभवं नराणाम् ॥ ३ ॥

मण्डूक विष चिकित्सा—शिरीस के बीज को थूर के दूध के साथ पीसकर लैप करने से मण्डूक के दंश से उत्पन्न विष शीतल हो नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

भूमीमस्यविषचिकित्सा—

कृष्णवेग्रस्य निष्काशे कशको भूतविमिश्रितः । उम्मीमस्यविषं हन्ति धूमो वा बहिपृष्ठः ॥

भूमी मस्य विष चिकित्सा—कृष्ण वेत के काय अथवा कशक की धूत का प्रक्षेप देकर पान करने से भूमी मस्य का विष नष्ट होता है । अथवा मोर के पंख का धूम देने से भी भूमी मस्य का विष नष्ट होता है ॥ २ ॥

शतपदीविषचिकित्सा—

लैपः प्रदीपतैलस्य खर्जरविषनाशनः । हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनशिलः ॥ ३ ॥

शतपदी विष चिकित्सा—बो दीपक कहवे तेल से निरय लकड़ा है उसमें से कुछ जल कर बने हुए तेल का लैप करने से खजूरे (बिच्छु एवं कानखजूरे) का विष नष्ट होता है अथवा इलदी, दाशहलदी, गेह और मैवशिल को समान भाग लेकर जल से पीसकर लैप करने से भी खजूरे का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

अम्रविषचिकित्सा—

नागरं गृहकपोतपुरीं वीजपूरकरसो हरितालम् ।

सैन्धवं च विनिर्वन्ति विलेपादाशु भृत्यजनितं विषमेतत् ॥ ३ ॥

अम्र विष चिकित्सा—सोंठ, कपोत की विडा, विंगौरे नीबू का रस, हरताल और सैन्धवनमक को समान भाग लेकर लैप करने से भौंरे के काटने से उत्पन्न विष को शीतल नष्ट करता है ॥ १ ॥

पिपीलिकादिविषचिकित्सा—

पिपीलिकाभिर्दृष्टानां मस्तिकामशकैस्तथा । गोमूर्चेण वरालेपः कृष्णवस्मीकमृकृतः ॥ १ ॥

पिपीलिकादि विष चिकित्सा—चीटी, मस्तिका तथा मशक आदि के दंश होने पर आमता, हरब, बहेड़ा तथा कृष्णबीज की मिट्टी को समान भाग लेकर गोमूर्च के साथ पीसकर लैप करने से इन सबों के विष को नष्ट करता है ॥ १ ॥

मस्तिकापिटिकाविषचिकित्सा—

सोमवश्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपथ्यपि । रजन्यौ गैरिकं लैपो मस्तिकापिटिकापहः ॥ १ ॥

मस्तिका पिटिका विष चिकित्सा—श्वेत खदिर, राङ, गोजिह्वा, हंसराज, इलदी, दाशहलदी,

तथा गेल को समान माग लेकर जल के साथ पीसकर लेप करने से मकिखयों के काटने से उपन दुई पिंडियाँ नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

आनविष्वचिकित्सा—

काङ्कोहुष्वरिकामूलं घृतूरफलसंयुतम् । पीतं तण्डुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥ १ ॥

शान विष चिकित्सा—कठगूल की जड़ तथा घृतूर के फल को चावल के बोवन के साथ पीसकर पान करने से कुकुर का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

पारस्करफलं सेव्यं क्रमवृद्धं दिने दिने । सारमेयविषं हन्ति मासेन नहि संशयः ॥ २ ॥

पारस्कर फल लेप—कुचला के फल को शुद्ध करके बुद्धिम से (प्रतिदिन भाजा बढ़ाकर) सेवन करने से एक मास में कुकुर का विष अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

पिण्ड्वाऽपामार्गमूलं तु कर्षकं मधुना लिहेत् । शब्दं द्वाजं विषं हन्यारकुमारीदलसैन्धवम् ॥ ३ ॥

दंशस्याने बन्धयेत् त्रिदिनान्ते सुखावहम् ॥ ४ ॥

अपामार्गमूलं पवं कुमारी पत्रयोग—अपामार्ग की जड़ को पीसकर एक कर्षक प्रमाण की मात्रा से, मधु के साथ मिलाकर चाटने से कुकुर दंश से उत्पन्न विष नष्ट होता है । तथा कुमारी के पत्ते में सेवानमक का चूर्ण भर कर दंश स्थान पर बांधने से विष नष्ट हो जाता है ॥ ३-४ ॥

कस्तूरी वृद्धिवृलुपवत्रसो गोधृतेन पाने देयः शुनो विषं नश्यति ॥

कस्तूरी आदि योग—कस्तूरी तथा बूल के पत्ते का स्वरस छृत में मिलाकर पान करने से कुकुर का विष नष्ट होता है ॥

अथवा शतावरीमुलुरसो गोदुधेन सह पाने देयः शुनो विषं नश्यति ॥

शतावर्यादि रस—अथवा शतावरी के मूल का रस गोदुध के साथ पान करने से कुकुर का विष नष्ट होता है ॥

आनदंष्ट्रविषं हन्ति लेपारकुकुटविषया ।

कुम्भुट विषादि लेप—कुम्भुट के विषा का लेप करने से शानदंश विष नष्ट होता है ।

गुडैत्तेलाकंतुरधं वा लेपारकुटविषं हरेत् ॥ ५ ॥

गुडैत्तेलादि योग—पुराना गुड, तेल तथा आक के दूध को समान लेकर मिलाकर लेप करने से श्वान का विष नष्ट होता है ॥ ५ ॥

रोगोन्मादितशानविषचिकित्सा—

तैलं तिलानां पललं गुडं च द्वीरं तथाऽकं सममेव पीतम् ।

आलक्ष्मुप्रं विषमाशु हन्ति सधोभवं वायुरिवाञ्चृत्वन्दम् ॥ १ ॥

रोगोन्मादित शान विष चिकित्सा—तिळ का तेल, तिल का कशक, पुराना गुड तथा आक के दूध को समान माग लेकर पान करने से कुकुर का सधोभव वायु विष श्वीघ्र इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार वायु के बेग से मौत समूह नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अथ सामान्यविषचिकित्सा

सैन्धवं मरिषं तुरथं निग्ववीजं समीकृतम् । मधुसपिर्युतं हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ १ ॥

सैन्धवादि योग—सेवानमक तथा मरिच समान माग और उसके समान नीम का दीज लेकर सबको पीसकर मधु तथा गोधृत के अनुपान से सेवन करने से स्थावर तथा जंगम दोनों विष को नष्ट करता है ॥ १ ॥

अगारधूमो महिषाद्युक्तः सवाजिगन्धानततण्डुलीयः ।

गोमूत्रपिण्डोऽप्यगदो निहन्ति विषाणि च स्थावरजङ्गमाणि ॥ २ ॥

अगार धूमादि योग—गृहधूम, महिषाद्युक्त, असगन्ध, तगर और चौराई (शाक) को समान माग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर सेवन करने से स्थावर तथा जङ्गम विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

मयूरपिच्छेन च तण्डुलीयकं काकाण्डयुक्तं प्रपिचेदनवपम् ।

विषाणि च स्थावरजङ्गमाणि सोपद्रवाण्यप्यचिरेण हन्ति ॥ २ ॥

मयूरपिच्छादि योग—मोर के प्रस्तु, चौराई शाक और महानीम (बकायन) के फल को समान लेकर पीसकर जल के साथ प्रस्तुर मात्रा में पान करने से उपद्रव सहित भी स्थावर तथा जङ्गम विष श्वीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

प्राचेतसं चूर्णम्—सससपण्ठिकुटजासनिङ्गबाद्वामयोदीरनतानि ताप्यम् ।

रोश्च विद्ध्याज्ञवर्मं नवाङ्गं प्राचेतसं चूर्णमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

लोहेऽथ हैमे त्वय राजते वा स्थितं सदा सद्यनि शूपतीनाम् ।

क्षीद्रेण लींदं स्त्रवाचराणि विषाणि हन्याद्भुति सानवानाम् ॥ २ ॥

प्राचेतसं चूर्णं—छितवन, कुरैया तथा नीम की त्वचा, नगरमेथा, कूट, लस, तगर, स्वर्ण मालिक भस्म, तथा छोध को समान लेकर विषिवद चूर्ण करे । इस नीं ओषधियों के योग से प्रस्तुत नवाङ्ग चूर्ण प्राचेतस चूर्ण कहा जाता है । इस चूर्ण को छोड़ा, सोना अथवा चौंदी के पत्र में भूपति लोग सदा अपने मवनों में रखते हैं । इस चूर्ण को मधु के साथ चाटने से संसार के स्थावर तथा जंगम समस्त विष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

श्लेष्मातकरवद्वावकं गुहूची नृपद्वमवभृहतीहृयं च ।

एषोऽगदः सर्वविषाणि हन्यादास्तीकनान्ना मुनिना प्रदिष्टः ॥ ३ ॥

श्लेष्मातकरवद्वाव—लिसोडे की त्वचा, नैकछिकी अथवा अपामार्ग मूल, गुइच, अमलतास धूष की त्वचा, छोटी केरी और बड़ी केरी को समान माग लेकर विषिपूर्वक चूर्ण बनाकर सेवन करने से यह अग्रद सम्पूर्ण (स्थावर तथा जंगम) विष को नष्ट करता है । इस योग को आस्तीक मुनि ने निर्मित किया था ॥ ३ ॥

कुकलासपद वन्धन—विरगिट के पैर को श्वेत दृश्य में छेपेट कर बाहों में बौंधने से सब व्रातार के विष नष्ट होते हैं तथा इसके प्रयाव से खाया दुआ विष भी खाया नहीं पहुँचा सकता है ॥

यः पिषति पुष्यदिवसे जलपिष्टं सितपुनर्नवामूलम् ।

तत्संनिधौ न वर्षं वृश्चिकभुजगः प्रसर्पन्ति ॥ ५ ॥

इविकापसारण—पुष्य नक्षत्र में श्वेत पुनर्नवा के मूल को जल के साथ पीसकर पीने से एक वर्ष तक विच्छू तथा सर्प निकट में नहीं आते हैं ॥ ५ ॥

मसूरं निभवपत्राभ्यां पिवेन्मेषागते रवौ । अद्वद्मेकं न भीतिः स्थाद्विषार्तस्य न संशयः ॥ ६ ॥

मसूरादि योग—विषार्त मनुष्य मेष के सूर्य छोने पर मसूर को नीम के दो पत्तों के साथ पीस कर पीवे तो निःसंशय एक वर्ष तक डसे विष का मय नहीं रहता है ॥ ६ ॥

गुह्डाजनम्—

सूतं चूर्णमगारधूमममलं प्रस्त्रेकगदाणकं घृतूरस्य रसेन मर्दितमलं पश्चात्तरं भासुरम् ।

ज्ञेपालं मरिचं चतुःशतयुतं वातारिद्वीजं लसशुक्लं षष्ठि सुखरिवदे हठतरेज्ज्वरीरेवरैः ॥

कुर्यान्माषवद्वाकृतिं च वटिकां छायासु शुक्लीकृतां

रात्यन्धं ग्रहसंपर्यंविसकलं शीतउरं दुर्धरम् ।

सन्नेत्राभ्यन्मात्रकं च भुवने चाजीर्णदोषापहं

नश्यन्ति प्रबलं महागुणयुतं श्रीपूर्यपादोदितम् ॥ २ ॥

गुरुडाजन—शुद्ध पारद, चूना, गृहैम और कपूर प्रत्येक ओषधियों को ही २ माशा लेकर पक्त्र कर खूरे के रस के साथ मर्दन कर उसमें ५० तोला कूट का चूर्ण तथा शुद्ध जैपाक बीब तथा मरिच के दाने ८०० पवं परण्डबीज ६० लेकर अलीमाति जम्बीरी नीबू के स्वरस में खरल कर उड्ड के अकृति की (प्रमाण की) वटी बनाकर छाया में सुखाकर नेत्रों में अज्ञन करने से रात्रयन्व (रत्नांबी), ग्रहरोग, सर्पविष, सम्पूर्ण सन्धिरोग, शीतज्वर जै सभ्यकुर हो उसे नष्ट करता है तथा नेत्र में कगाने से ही अज्ञन दोष को भी नष्ट करता है । यह अज्ञन बड़ा प्रबल है, महान् गुणों से युक्त है तथा पूज्यपाद महात्मा का कहा हुआ है ॥ १-२ ॥

मृशुच्छेदिघृतम्—

अभयां रोचनां कुष्ठमकुपुर्णं तथोपलघ । नलवेतस्मूलानि सरलं सुरसां तथा ॥ १ ॥
सकलिङ्गां समलिङ्गामनन्तां च शतावरीम् । शङ्खाटकं समझां च पद्मेसरमित्यपि ॥ २ ॥
काषकीकृत्य पचेसपिः पद्मो दद्याच्चतुर्गुणम् । सम्भृपकेऽवतीर्णं च इति तस्मिन्विनिविपेत् ॥
सर्पिंस्तुवयं भिषक्षौद्रं कृतरचं निधापयेत् । विषाणि इन्ति दुर्गाणि गरदोषकृतानि च ॥ ३ ॥
इष्टशार्दूलनिति विषं सर्वं गरैदपहतत्वचम् । संयोगजं तमः कण्ठं मांससादं विसंज्ञाताम् ॥ ४ ॥
नाशयेदज्जनाभ्यङ्गपानवस्तिषु योजितम् । सर्पंकीटासुलूतादिदृष्टानां विषहृष्परम् ॥ ५ ॥

मृशुच्छेदिघृत—इरड, बंशलोचन, कूट, आक के पुष्प, नीलकमल, नक (नरकट) की जड़, नेत्र की जड़, सरलकाष का भूम, तुकसी, इन्द्रजौ, मबीठ, अनन्तमूल, शतावरी, सिंवाढ़ा, मधीठ और पद्मकेसर को समान भाग लेकर विषिकृत कक्ष कर बितना हो उसके चतुर्गुण गोघृत तथा घृत से चतुर्गुण गोधृष्ण देकर घृतपाक की विधि से मन्दाचिन पर घृत सिद्धकर डारार लेवे तथा शीतक हो जाने पर जितना घृत हो उसके समान प्रमाण से मधु भिषाकर यत्नपूर्वक रस देवे । इस घृत के सेवन से अत्यन्त कठिन विष तथा कृत्रिम विष भी नष्ट होते हैं । इसके स्वर्ण से (शरीर पर मर्दन करने से) सभी प्रकार के गरदोष से आहत (विकृष्ट) व्याचा पुरुः अचित रूप में हो जाती है । इससे संयोगज विष नष्ट होता है तथा तमदोष (अंवकार दिखाई देना), कण्ठरोग मांससाद (मांस की अवसन्नता विसृज्ञता चेतना इनसा वा मोह) इन सभी रोगों को यह घृत अज्ञन, मर्दन पान तथा बिस्त में प्रयोग करने से (यथायोग्य प्रयोग से) नष्ट करता है यह सर्प, कीट, आखु पवं लूतादि दंशकों के विष को नष्ट करने में अत्युत्तम है ॥ १-६ ॥

पथ्यापथ्यम्—

शालयः षष्ठिकाश्रैव कोशदूष्यप्रियंगवः । मुद्रा हरेणवस्तैलं सर्पिंश्चापि नवं कवचिद् ॥ १ ॥
वातांकं कुलकं धानी जीवन्ती तण्डुलीयकम् । मोजनार्थं विषार्तानां हितं पद्मु सैन्धवम् ॥

पथ्य—शाली धान का चावल, साठों का चावल, कोदो, प्रियहु (पुष्प), भूग, नये तिळ का तेल, (कहीं र नवीन घृत भी आमकर है) एवं बैगन, परबल, आम्रा, जीवनी शाक, चौराई शाक तथा सेंचानमक ये सब विषार्तानों के लिये पथ्य हैं ॥ २ ॥

विषद्वाप्यशानकोष्ठचुद्भयाद्यासमैथुनम् । वर्जयेहिष्मुक्तोऽपि दिवास्वप्नं विशेषतः ॥ ३ ॥

अपथ्य—विष से मुक्त हो जाने पर भी विषार्त प्राणी को विषद्व भोवन, अध्यशन कोष, परिअम करना, मैथुन करना तथा विशेष करके दिनमें शृणुन करना ये सब त्याग देना चाहिए ॥

इति विषप्रकरणं समाप्तम् ।

इति पूर्वस्पृष्टः ।

अथ वाजीकरणि, वाजीकरणद्रव्यस्य लक्षणमाह—
चद्दद्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजिवसुरतच्छमस् । तद्वाजीकरणं अयातं मुनिभिर्भिर्जां वरः ॥ १ ॥
वाजीकरण द्रव्य के क्षक्षण—जिस द्रव्य के सेवन से धोड़े के समान मैथुन करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है उसे मुनियों ने तथा श्रेष्ठ वैद्यों ने वाजीकरण नाम से कहा है ॥ २ ॥

प्रसक्तात्कैब्यलक्षणं संख्या निदानं चाह—

कलैब्य लक्षण—मैथुन में अशक्त को कलैब्य (नयुंसक) कहते हैं, उसी कलैब्य के माव को कलैब्य (नयुंसकता) कहते हैं । वह नयुंसकता सात प्रकार की कही गयी है, उसका निदान निम्न है ॥ ३ ॥

तैस्तैर्भविरहृष्टैस्तु रिंसोर्भन्सि ज्ञते । भवजः पत्तस्यतो नृणां कलैब्यं समुपजायते ॥ ४ ॥

द्वैब्यस्त्रीसम्प्रयोगाच्च कलैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ।

कलैब्य का निदान—खोगमन करने की इच्छा वाले पुरुष के मन में मैथुनेच्छा होने पर अनेक कारणों से मैथुन नहीं करने से क्षोभ हो जाता है जिससे ध्वज (लिङ्ग) शिथिल हो जाता है । इसीसे मनुष्यों को नयुंसकता उत्पन्न हो जाती है अथवा जिस खी से द्रेष हो अथवा प्रीति नहीं हो ऐसी खी से मैथुन करने से नयुंसकता हो जाती है । ऐसी नयुंसकता को मानस नयुंसकता कहते हैं ॥ ५ ॥

कटुकाभ्लैः सङ्खवैरतिमांत्रोपसेवितैः ॥ ६ ॥

पित्ताच्छुक्षयोद्दृष्टः कलैब्यं तस्मात्प्रजायते ।

अत्यन्त कटुरस युक्त एवं अम्लरस युक्त तथा अत्यन्त लवणरस युक्त पदार्थ के अतिसेवन से पित्त कुपित होकर शुक्र का नाश कर देता है जिससे नयुंसकता उत्पन्न हो जाती है ॥ ६ ॥

अतिस्थवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ॥ ७ ॥

ध्ववजः मङ्गमवाप्नोति ल शुक्रस्थेत्तुकः ।

यो मनुष्य अत्यन्त मैथुन करता है तथा वाजीकरण (वीर्य वर्द्धक) ओषधि नहीं खाता है उसे वीर्य के क्षय होने के कारण नयुंसकता हो जाती है ॥ ८ ॥

महता मेडोरोगेण चतुर्थो कलीतता अवेत् ॥ ५ ॥

महान लिङ्ग के रोग (वृषदंशादि) हो जाने पर कलीतता हो जाती है ॥ ५ ॥

वीर्यवाहिसिराष्ट्रेदान्मेहनानुभृतिभवेत् ।

वीर्यवाही शिराओं के कटने से लिङ्ग का उत्थान नहीं होने पर नयुंसकता हो जाती है ॥

बलिनः कुर्वद्वनसो निरोधाद व्रह्मवर्यतः ॥ ६ ॥

चष्टुं कलैब्यं स्मृतं तत्त्वं शुक्रस्तम्भनिमित्कम् ।

बलवान् मनुष्य का मन मैथुनेच्छा से क्षुब्ध हो और वह ब्रह्मवर्य से (ब्रह्मवर्य भंग होने के भय से) मैथुनेच्छा का अवरोधकर मैथुन नहीं करे तो उससे वीर्यवरोधक कारण बाली नयुंसकता हो जाती है ॥ ६ ॥

जन्मप्रभृति यस्त्वैब्यं सहजं तद्वि सप्तमम् ॥ ७ ॥

जन्मप्रभृति (आहेक्यादि) नयुंसकता स्वाभाविक है उसे सातवां सहज नयुंसकता कहते हैं ॥

असाध्यं कलैब्यम्—

असाध्यं सहजं कलैब्यं मर्मच्छेदाद्य यद्ववेत् । साध्यानामविशिष्टानां कार्यो वाजीकरण विषिः ॥

साध्य तथा असाध्य नपुंसकता—जो जन्म से उत्पन्न आसेक्यादि नपुंसकता है वह असाध्य है तथा मर्मस्थानों के लेदन हो जाने से (कीर्यवाही शिरा आदि के कट जाने से) जो नपुंसकता होती है वह भी असाध्य है । शेष पांच प्रकार की जो नपुंसकता है वह साध्य है तथा उसमें बाजीकरण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

कलैव्यस्य चिकित्सा—

कलैव्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः । मुख्यं चिकित्सितं यस्माज्जिदानपरिवर्जनम् ॥

नपुंसकता चिकित्सा—साध्य नपुंसकता में कारण के विपरीत कार्य करना चाहिये अर्थात् जिन २ कारणों से नपुंसकता उत्पन्न हुई हो उन २ कारणों को दूर कर देना चाहिये यही उसकी मुख्य चिकित्सा है । इससे वर्षे नपुंसकता नष्ट हो जावेगी तथा पुरुषार्थ हो जावेगा ॥ १ ॥

कलैव्यस्य चिकित्सायां बाजीकरणविधिमाह—

नरो बाजीकरान्योगान्सम्यकशुद्धो निरामयः । सप्तस्यन्तं प्रकूर्वत वर्षादूर्धर्वं तु षोडशात् ॥

नपुंसक मनुष्य बाजीकरण योग से अलीप्रति शरीर को वसन विरेचन द्वारा शुद्ध कर तथा रोग रहित करें (जो अन्यान्य रोग हों उन्हें भी नष्ट कर) सोलहवर्ष से ऊपर तथा सत्तर वर्ष पूर्णत तक की आयु तक करें ॥ १ ॥

न चैव षोडशादवर्षान्सप्तस्याः परतो न च । आयुष्कामो नरः ऋभिः संयोगं कर्तुमहिति ॥ २ ॥

आयुष्य की कामना करनेवाला पुरुष सोलह वर्ष के पूर्व तथा सत्तर वर्ष के पश्चात् जियों से संयोग (मैथुन) नहीं करे ॥ २ ॥

ज्ञायदूर्ध्युपदंशाद्या रोगाक्षात्तीव दुर्जयाः । अकालमरणं च स्याद्भजतस्यिमन्यथा ॥ ३ ॥

बालावस्था तथा बुद्धावस्था में खी सेवन से इनि—सोलह वर्ष के पूर्व तथा सत्तर वर्ष के पश्चात् जो मनुष्य मैथुन करता है उसे क्षय, वृद्धि तथा उपदंशादि अव्यन्त भयंकर रोग हो जाते हैं तथा अकाल शृत्यु भी होती है ॥ ३ ॥

ज्ञीभजनविधिविस्तरतो रात्रिचर्यायां लिखितोऽस्ति तत्र द्रष्टव्यः ।

खी संयोग की विधि विस्तार पूर्वक रात्रिचर्या में लिखा गया है अतः वही देखना चाहिये ॥

विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशाळिनाम् । नराणां बहुमायोगां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ ४ ॥

स्थविराणां विरंसूना खीणां वालभ्यमिच्छताम् ॥ ५ ॥

योधित्रसङ्गार्थीणां वलीबानामपरेतसाम् ॥ ५ ॥

हिता वाजीकरा योगाः प्रीत्यपर्यवलप्रदाः । एतेऽपि पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥ ६ ॥

बाजीकरण—जो पुरुष विलासी हों (अधिक खी संयोग की इच्छा करनेवाले हों), घनवान् हों, रूप-यौवन से सम्पन्न हों तथा जिन्हें बहुत सी जियों हों अथवा जो वृद्ध हो रहे हों तो किन्तु मैथुन की इच्छा करते हों तथा जो जियों के प्रिय होने की इच्छा रखते हों, जो खी प्रसंग करने के कारण क्षीण हो गये हों तथा वीर्यावस्था के कारण नपुंसक हों उनके लिये बाजीकरण योग द्वितीकर है । बाजीकरण योग से जियों से प्रीति बढ़ती है, संतान होती है तथा बल बढ़ता है । इस बाजीकरण योग को समयानुसार पुष्ट शरीर वाले को भी सेवन करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

बाजीकराण्याह—भोजनानि विचिदाणि पानानि विविधानि च ।

वाचः श्रोत्रामिरामाश्च व्याचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ १ ॥

यमिनी सेन्दुतिलका कामिनी नवयौवना । गीतं श्रोत्रमनोहारि ताम्बूलं मदिरा द्वजः ॥ २ ॥

गन्धा मनोज्ञा रूपाणि चिन्नाण्युपवनानि च । मनसश्वाप्रतीघातो बाजीकूर्वन्ति मानवयः ॥

विचित्र प्रकार के (अनेक पीठिक पदार्थों से सिंद्र) भोजन, अनेक विधि से प्रस्तुत पेय, कानों को प्रिय उग्नेवाली बातों को करनेवाली तथा जिनके स्पर्श से खचा को मुख प्राप्त हो

ऐसी सुन्दर जियों, चांदनी रात, नवयौवन खी, कर्ण को मनोहर लगने वाली गीत अथवा ताम्बूल मस्त्रण, मदिरा पान, पुष्टमाला शारण, मन-मोहक सुगन्धित द्रव्य, अनेक प्रकार के सुन्दर रूप, वाटिका-अमण, मन में किसी प्रकार आश्राम नहीं होना (प्रसन्न रहना) ये सभी बाजीकरण हैं । अर्थात् इन सभी के प्रयोग से बाजीकरण होता है ॥ १-३ ॥

पायसम्—

गवां विस्तुवसानां सिंद्रं प्रयसि पायसम् । तथा गोधुमचूर्णं च सितामधुष्टानिवतम् ॥

भुक्षवा हृष्ट्यति जीर्णोऽपि दशदारान्वजत्यपि ॥ १ ॥

जिस गाय के बछड़े बछड़े हो गये हों (वकेना गाय) उनके द्रव्य में सिंद्र पायस तथा इसी प्रकार के द्रव्य में पकाया हुआ पवं शक्ता, मधु तथा धृत से युक्त गेहूं का चूर्ण (आदा) भोजन करके जीर्ण (वृद्ध) पुरुष भी मैथुन शक्ति को प्राप्त होता है तथा दस जियों के साथ रमण कर सकता है ॥ १ ॥

रसाला—दृष्ट्योऽधीर्ष्टकमीषदम्भुरेखण्डस्य चन्द्रघृतः ।

प्रस्थं हौद्रपलं पलं च हविषः शुण्ठाश्चतुर्माषिकान् ।

तत्त्वामष्टतुष्टयं मरिचतः कर्णं लवङ्गं तथा

धृत्वा शुश्लग्देशनैः करत्लेनेभ्युष्टुषुरुद्धृपिते ॥ १ ॥

मूद्राण्डे मृगनामिच्छन्दनस्पृष्टेऽगुरुद्धृपिते

कर्पैरेण सुगन्धितं तदलिङ्गं सलोद्यं संस्थापयेत् ।

स्वस्यार्थं मधुरेष्वरेण इच्छां ह्येषा रसाला खवयं

भोक्तुं मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यं प्रिया ॥ २ ॥

रसाला योग—दही आधा आडक (दो प्रस्थ) जो किञ्चित् अम्ल हो तथा मधुर हो, शक्ता ये त्रै एक प्रस्थ, मधु एक पल, धृत एक पल, सोठ का चूर्ण चार माशा, मरिच का चूर्ण चार माशा और लौंग का चूर्ण एक कवं लेकर सबको एकत्र कर देवत वस्त्र में रखकर शनैः २ हाथों से मळकर छान लेवे पश्चात् एक मिट्टी के पात्र में कस्तूरी तथा चन्दन का रस लेकर लेप कर मर्दन कर तथा उस पात्र को अगर से धूपित कर पुनः उपरोक्त दही में कपूर भिलाकर मधुकर झग्नित कर उस पात्र में रख देवे । इसे रसाला कहते हैं । इस रसाला को मथुरा के राजा ने अपने किये स्वयं बनाया था । इस रसाला के सेवन करने से कामोदीपन होता है, मुख होता है तथा यह खी की भाँति नित्य प्रिय लगती है । अर्थात् इससे मन प्रसन्न रहता है ॥ १-२ ॥

शतावयादिचूर्णम्—शतावरीनामगबलाविदारित्रिकण्टकरैमलकीफलानिवतः ।

विचूर्णिते पञ्चभिरेकशः पृथग्रकलिपत्वैर्वा धृतमाचिकपल्तुते ॥ १ ॥

इति प्रयोगाः षष्ठिमे भिषग्वरैरुद्दीरिताः शर्कराया समन्विताः ।

नृणां मदान्धप्रमदोपसर्पिणां प्रधानधातोरतिरेककारणम् ॥ २ ॥

शतावर्यादि चूर्णं—शतावरी, नागवला (ककही), विदारीकन्द, गोखरु, आंवले का सूखा कल इन पाँचों को समान आग लेकर विविपुर्वक चूर्ण कर पांचों एकत्र पृथक् २ धृत तथा मधु मिलाकर प्रयोग किया जावे तथा इसमें शक्ता मिलाकर प्रयोग किया जावे तो ये प्रयोग मन्दोन्मत्त जियों के भोगने की इच्छा करनेवाले पुरुषों के प्रधान धातु (वीर्य) को बढ़ाते हैं ॥ १-२ ॥

मुख्यादिचूर्णम्—मुखलिकोकिलगोद्धुरचूर्णकं शिशिविलोचनरामसितं पचेत् ।

पर्यसि ग्रातरिदं यदि कोषणके तु सिताया सहटङ्गपटक्या ॥ १ ॥

त्रिगुणसप्तदिनं परिभृत्यन्नशतवया अपि काङ्क्षति कामिनीम् ।

किमिह वित्रमुदित्वरयौवनः शशिमुखीं शायनान्न जिहासति ॥ २ ॥

मुसश्यादि चूर्णे—इवेत मुसली १ भाग, सथा मखाना दो भाग और गोखर हीन भाग लेकर चूर्णकर या यवकूट कर दूध के साथ पकाकर तथा इसमें छै टक्के श्वेत शकरा भी मिलाकर तीन सप्ताह तक प्रातःकाल कुछ उष्ण रहते सेवन करने से सौ वर्ष की आयुवाला बृद्ध पुरुष भी कमिनी की इच्छा करता है। यदि इसका सेवन करनेवाला युवा पुरुष शय्या पर से चन्द्रमुखी खीं को नहीं छोड़े तो इसमें विनियत ही क्या है॥ १-२ ॥

वानरीगुटिका—बीजानि हि कपिकच्छोः कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः।

प्रस्थे गोभवदुरुदे दुर्गं वावज्ज्वेद्गात्म ॥ ३ ॥

एवग्रहितानि च कृत्वा सूचमं सम्पेषयेत्सानि । पिण्डिकायाः सुवटिकाः कृत्वा गथे पचेदात्ये ५
द्विगुणितशकरं या ता वटिकाः सम्पङ्क्या लेप्याः ।

वटिका मार्गिकमध्ये मध्यमयोद्विलाः स्थाप्याः ॥ ६ ॥

पञ्चटद्विमितास्तास्तु प्रातः सायं च भक्षयेत् । अनेन शीघ्रदावी द्वो यथा स्थापतितध्वजः ॥
सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमति वाजिक्षु । नानेन सहशो किञ्चिदद्वयं वाजोकरं परम् ॥

बानरी गुटिका—कपिकच्छु (केवाच) के बीबों को एक कुडव लेकर एक प्रस्थ गोदुरुष में मिलाकर बीरे २ तब तक पाक करे जब तक दूध गाढ़ा (खोया) न हो जावे, पश्चात उतार कर शीतल होने पर उसमें से बीबों को निकाल कर उनकी खचा (छिलका) को पुष्क्र करके भली भाँति सूक्ष्म पीस लेके तथा गाढ़ दूध (खोया) को भी उसमें मिलाकर उस पिसे हुए की वटिका बनाकर गोधृत में बकावे। पश्चात जितनी वटिका हो उसके दुगुना श्वेत शकरा का पाक करके (चाशनी गाड़ी करके) वटिका में उसे लपेट देवे, पुनः उन वटिकाओं को उनके पूर्णलूप से द्वावने योग्य प्रमाण मधु में रख देवे। इसमें से पांच टक्के के प्रमाण की मात्रा से प्रातः और सायं भक्षण करे। इसके सेवन से जो शीघ्रदावी है (जिन्हें शीघ्रप्रातः का रोग है) तथा जिनका किंग नहीं उठता है (नयुंसक) वे भी मैथुन कार्य में छोड़े के समान सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं। इसके समान अर्थन्त बाजीकर कोई द्रव्य नहीं है॥ १-५ ॥

बहस्ताणपदसिद्धे पर्याप्ति भावितानसकृतिलान् । यः खादेस्यमुपारच्छेस्त्रीणां शतमपूर्वदत् ॥ १ ॥

बहस्ताणपदादि प्रयोग—बकरे के अण्डकोषों को दूध में पकाकर उसी दूध में तिल को अनेक बार अपित कर खाने से सौ शिवयों को भोगने की शक्ति प्राप्त होती है तथा प्रत्येक संयोग में अपूर्वश ज्ञात होती है॥ १ ॥

पिण्डिलीकृत्वणोपेते बहस्ताप्ते चृत्साधिते । कष्ठलूपस्याथ वा खादेत्तु वाजीकरं चृत्सम् ॥ २ ॥

पिण्डिलीकृत्वणोपेते बहस्ताप्ते चृत्साधिते । कष्ठलूपस्याथ वा खादेत्तु वाजीकरं चृत्सम् ॥ २ ॥

शतावरीयोद्धुरकाश्वगन्धायुनर्नवानागवला सुखवया ।

चृतेन स्पष्टेन तु भवणीया: स्त्रीणा नरा नागवला भवन्ति ॥ ६ ॥

शतावरीयोग—शतावरी, गोखरु, वगसन्ध, पुनर्नवा, नागवला तथा मुसली (श्वेत) को समान लेकर चूर्ण कर गोधृत तथा शकरा के अनुपान से भक्षण करने से, स्त्रीण मनुष्य भी हाथी के समान बलवान हो जाता है॥ ३ ॥

विद्वारीकन्दच्छुर्णं तु चृतेन पर्याप्ता नरः । उक्तुप्रब्रह्ममें खादन् उद्दोऽपि तदणायते ॥ ४ ॥

विद्वारीकन्दच्छुर्णं विद्वारीकन्द के चूर्णों को एक उद्यमर फक के प्रमाण की मात्रा लेकर द्वृत मिलाकर दूध के अनुपान से खाने से बृद्ध भी तरुण के समान सामर्थ्यवान् हो जाता है॥ ४ ॥

सिता मधु चृते चीरं पलाण्डुरससंयुतम् । पिवेक्षरो भवेकामी बृद्धोऽपि तदणायते ॥ ५ ॥

सितापञ्चाण्डु रस—श्वेत शकरा, मधु, घृत तथा पकाण्डु स्वरस को दूध में मिलाकर पान करने से मनुष्य कामी हो जाता है तथा बृद्ध सेवन करे तो वह युवा के समान हो जाता है। अर्थात् बृद्ध पुरुष इसके सेवन से युवावस्था को अनुमत करने लगता है तथा कामी हो जाता है।

गोक्षुरन्तर्मूलम्—शमयति गोक्षुरन्तर्मूलं छावार्गीरेण साधितं समधु ।

भुक्तं हृषयति षाण्डयं वर्दजिनितं कुप्रयोगेण ॥ ३ ॥

गोक्षुर चूर्ण—गोखरु के चूर्ण से बकरी के दूध में पकाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रदेश देकर पान करने से कुप्रयोगों से (अतिमैथुन वा देशी के साथ मैथुन वा अप्राकृतिक मैथुन आदि से) उत्पन्न नयुंसकता नष्ट हो जाती है॥ १ ॥

अनुत्तमद्वातकः—

भवलातकानां पवनोपितानां तद्वयुतानां च यदात्कं स्थात् ।

घृष्णेष्टिकाचूर्णकणीजलैश्च प्रक्षालय संक्षोध्य स मारुतेन ॥ १ ॥

शुक्काणि तानि द्विलीकृतानि विपाचयेदध्यु चतुर्गुणासु ।

तत्पादशोषं पुनरेव शीतं शीरेण तुलयेन विपाचयेत्तत् ॥ २ ॥

तदर्धया शर्करया विमिथ्य वस्त्रारुजेनोन्मयनं विधाय ।

स-ज्यूष्यं त्रैफलचन्द्रमासीत्रिवृक्षं वाशीलविदिरामृतं च ॥ ३ ॥

सचन्द्रमाकलकणाकवायं सदेवपुष्पं मुसलीहृष्यं च ।

कहुलमोऽचाहृयदीप्ययुग्मं नन्त समातङ्ककणा विदारी ॥ ४ ॥

जातीफलं सुरतकजातिपत्री कुवेरजीरागहसाविशोषम् ।

मेदाद्वयं लोहरसेन्द्रवक्षमध्यं तथा कुङ्कमकं च कर्षम् ॥ ५ ॥

तस्मिन्नात्रादितिजातवीर्यं सुधारासावद्यविधिकं वदन्ति ।

प्रातः प्रबुद्धः कृतदेवकार्यो मात्रां भजेत्साम्यशरीरयोग्यात् ॥ ६ ॥

न चातुपाने परिहार्यमस्ति न चाऽप्तपे नाधवनि मैथुने च ।

यथेष्टचेष्टो विचरेत्रप्रयोगाक्षरो भवेकाम्बुद्धनराशिगारः ॥ ७ ॥

अनेन मेधानरसिंहवीर्यो द्वेनिद्रियो व्याधिगतः सुखुदिः ।

दन्ता विशीर्णः पुनरेव दिव्याः केशाश्रु शुआः पुनरेव कृष्णाः ॥ ८ ॥

नीलाज्ञनालिप्रतिमा भवन्ति त्वचो विशीर्णः पुनरेव भद्राः ।

विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि कृप्यदितो भिजगलोऽपि कुङ्की ॥ ९ ॥

शुक्कः पुनः स्थाप्तत्वयुलशास्त्रहृष्यं भाति नवाभ्युसिकः ।

बृहस्पतेरप्यविधिको हि बृद्धश्च ग्रन्थं विशालं च नवं करोति ॥ १० ॥

गृह्णाति सद्यो न च विश्वृतिं च करोति कल्पायुरनलपवीर्यम् ।

कुर्विष्मिं कल्पमनलपबुद्धिर्जीवच्चरो चर्षशतं सुखी स्थात् ॥ ११ ॥

असृत मछातक—मछातक (भिलावे) का फल जो बायु के लगने से वृक्ष से गिरा हुआ हो ऐसा (पूर्ण पका हुआ) एक आढ़क (चार प्रस्थ) लेकर ईटे के चूर्ण (रोड़े) के कणों से भली-भाँति विस कर जल से भोकर बायु में झुखा लेवे। सूखे जाने पर उनको दो २ खण्ड करके चतुर्गुण जल में डालकर काथ की विधि से पाक करे जब चतुर्थांश शेष रह जावे तब उतार-आनकर रख लेवे, जब शीतल हो जाय तब पुनः जल के समान दूध में अबलेष पाक की विधि से पाक करे तथा उस कवाय के आधा श्वेत शकरा मिलाकर काठ की कलड़ी से मर्दन कर आसन पाक होने पर सौंठ, मरिच, पीपल, आंवला, हरद, वलेहा, कपूर, जटामासी, निशोथ, वंजाकोचन,

सैर, शुद्ध मोठा विष, चन्दन, अकरकरा, पीपल, कवाब चीनी, लवंग, इवेतमूसली, काङ्गोल, मोचरस, अजंबाहन, अजमोहा, तंगर, गञ्जपीपल, विदारीकन्द, आयफर, नागरमोथा, आवित्री, तून की स्वचा, इवेत जीरा, अगर, समुद्रशोख, मेदा, महामेदा, लौहमस्म, पारदमस्म या रससिन्दूर, वज्रमस्म, अभ्रकमस्म तथा कुमुम (काश्मीरी केशर) प्रत्येक द्रव्य का एक २ कर्षं छर्ण लेकर उसमें भलीभाँति मर्दन कर सात दिन तक पढ़ा रहने दें, इस सात दिन में उसमें अस्थन्त वीर्यं (पौषष) हो जाता है। इसको सुधा रस से भी अधिक गुणकारी कहा गया है। इसे प्रातः काल उठकर नैमित्तिक कृत्य के पश्चात् देवकार्य (ईदवरन्चिन्तनादि) करके शरीर के योग्य सात्मक मात्रा से सेवन करना चाहिये। इसके लिये कोई अनुपान नहीं है। इसके सेवन के समय आतप, मार्गनमन, मैथुन आदि का अवरोध नहीं है। मनुष्य इच्छा के अनुकूल कार्य करता हुआ इसका प्रयोग करें। इसके सेवन से मनुष्य सोने की राशि के समान गौरवणि का हो जाता है, इससे मेघ बढ़ती है, नरसिंह के समान पराक्रम होता है, इन्द्रियाँ दृढ़ होती हैं, अव्याखियां नष्ट हो जाती हैं, बुद्धि अच्छी होती है, विशोर्ण दौत (जो शीर्ण हो गये हों) भी दिव्य हो जाते हैं, इवेत हुए केश पुनः कृष्ण हो जाते हैं, तथा नीलाजन अथवा अमर के समान कृष्ण (केश) हो जाते हैं, जीर्ण त्वचा पुनः सव्य (सुन्दर) हो जाती है, जिसके कान, बहुली, और नासिका, विशोर्ण (गठित) हो गये हों एवं उसमें कुमि उत्पन्न हो गये हों तथा गला फट गया हो (स्वरमेद हो गया हो) ऐसे कुछीं तथा अस्थन्त शरीर जिसका सूख गया हो ऐसा रोगी पुनः इस प्रकार हरा भरा स्वस्थ हो जाता है जिस प्रकार बुल्ले हुए मूल पद्म शाखा वाला शूष्क नदीन जल के सिचन से हराभरा हो जाता है और बहुस्पति से भी अधिक बुद्धि वाला होकर विशोर्ण एवं नवीन ग्रन्थ की रचना कर सकता है। यह २ ग्रन्थों को शीघ्र स्मरण कर सकता है तथा उसे विस्मृत नहीं होता, उसकी आयु कल्प के समान होती है तथा वह अधिक वीर्यवान होता है। इस अमृत भरणातक कर्त्य का सेवन करता हुआ पुष्प अस्थन्त बुद्धिमान एवं सुखपूर्वक सौ वर्षों तक जीवित रहता है॥६-११॥

केशरपाकः—वीर्यवीर्यं चतुर्जीतकलञ्जिकं च लवङ्गकृष्णागुरुचन्दनं च।

इच्छरबीजं करहाटकं च जातीफलं मर्कटिकाफलं च ॥ १ ॥
शाहमलयनिर्यासवलाभगन्धागोच्चरबीजं मुसली कुमिक्षम् ।
समुद्रशोषं विषपञ्चरं च पुष्पं सुजायुद्धवकङ्गबीजम् ॥ २ ॥
सर्वं समं योज्य सकुम्भं च सुचूर्णितं विशितमागयुक्तम् ।
कस्तूरिकाबोडशभागचूर्णं लाप्तं चतुर्भागयुतं विषकम् ॥ ३ ॥
वज्रं रसेन्द्रं गशनं सुलोहं कान्तं हि ताङ्गं रविभागयुक्तम् ।
दलनि हेडनो द्विशतानि द्रवा तथैव देयानि च राजतानि ।
एकत्र सर्वं विनिधाय वैष्णो जयाष्टमां विद्धीत लेहम् ॥ ४ ॥

जातीफलप्रमाणेन भवदेवप्रातहस्थितः । वीर्यबुद्धि करोत्येष सर्वध्याधिविनाशनः ॥ ५ ॥
शतं च रमते स्त्रीणां कामतुल्यो भवेन्नरः । सर्वान्वातामयानहन्ति प्रवृद्धं वातशोणितम् ॥ ६ ॥
अस्थिरोगं शिरोरोगं संधिरोगं च नाशयेत् । अस्थ देवनमात्रेण वृद्धोऽपि तद्व्यायते ॥ ७ ॥
चन्दनं यशस्करं सम्भगाशुरारोग्यत्रधनम् । काश्मीरकावलेहाऽथ बलकान्तिविवर्धनः ॥ ८ ॥

केशर पाक—सौठ, मरिंच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, दूरङ्ग, बहेडा, आंमला, लवंग, पीपल, अगर, लालचन्दन, तालमखाना के बीज, मैनफल, अथवा अकरकरा, आयफर, कपिकचू के फल (बीज), मोचरस, बरिभारा, असगन्ध, गोखरु के बीज, मूसली, वायविडंग, समुद्रशोष, विषपञ्चर, नागकेसर, चमेली और आम की गुठली के चूर्ण प्रत्येक भमान

भाग लेकर उसमें काश्मीरी केशर का चूर्ण भीस भाग, कस्तूरी सोलह भाग, इवेत शकंरा (की चासनी) चार भाग, वंगमस्म, पारदमस्म वा रससिन्दूर, अध्रकमस्म, कान्तमस्म और ताम्रभस्म प्रत्येक एक २ भाग, स्वर्णदल (सोने के बक्क पत्र) दो सौ, रजतदल (चौदों के वर्क) दो सौ लेकर एकत्र कर उसमें बाठ मात्र शुद्ध मांग का चूर्ण मिलाकर विषिपूर्वक अबलेह सिद्धकर आयफर के समान प्रयोग की भाषा से प्रातः काल मक्षण करने से यह अबलेह वीर्य की वृद्धि करता है तथा सब रोगों को नष्ट करता है। इससे सौ लियों से रमण करने की शक्ति होती है एवं वह मनुष्य कामदेव के समान हो जाता है। यह पाक सभी प्रकार से बात रोगों को नष्ट करता है, यह दुष्ट वातरक्त को नष्ट करता है, अस्थि सम्बन्धी रोग, शिरोरोग एवं सनिधात रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन मात्र से ही वृद्ध भी तरण के समान हो जाता है। यह धन देने वाला, यश करने वाला, आयु तथा आरोग्यता को अलीभाँति बढ़ाने वाला तथा यह काश्मीरी (केसर) का अबलेह (केसर पाक) बल एवं कान्ति को बढ़ाने वाला है॥ १-८ ॥

रतिवृद्धिकरो मोदकः—

योषुरेच्छरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी। मुसली वानशीबीजं यष्टी नागबला बला ॥ १ ॥
यूषां चूर्णं दुरध्यमिदं गध्येनाऽऽस्येन वजितम् । सितया मोदकं कृत्वा भवद्यं वाजीकरं परम्॥

चूर्णादृष्टगुणं छीरं धृतं चूर्णसमं स्थृतम् । सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदधिक्वलं यथा ॥ २ ॥

चाजीकरणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः । तस्माद्वद्वद्वु योगेषु योगोऽप्य प्रदरो मतः ॥ ३ ॥

रतिवृद्धिकर मोदक—गोखल बीज, तालमखाना बीज, असगन्ध, शतावरी, मुसली, केवाच के बीज, जेठीमधु, ककड़ी और वरिभारा को सूखान भाग लेकर विषिवद लूपीं कर सब औषधियों का चूर्ण जितना हो उसके अठगुना दुर्घ तथा चूर्ण के समान धृत तथा सब मिलाकर जितना हो उसके दुयुना शर्वरा मिलालर मोदक प्रस्तुत कर अजिनवल के अनुसार मात्रा से खाना चाहिये। यह योग बहुत सी वाजीकरण औषधियों को एकत्र संयोग करके निर्मित किया गया है, इसलिये यह योग बहुत से अन्य योगों से श्रेष्ठ है॥ १-४ ॥

रतिवल्लभाख्यपूरपाकः—

पूर्णं दक्षिणदेशं दशपलोन्मानं अ॒रुशं कर्त्तयेषु

तद्विन्दनं जल्योगतो मृदुतरं संकुट्य चूर्णकृतम् ।

तच्चूर्णं पटशोधितं वसुगुणे गोषुद्वद्वये पचेद्

गध्याउया अलिसंयुतेऽतिनिविडे दशात् तुलार्थं सिताम् ॥ १ ॥

पक्षं तज्जवलनाऽर्द्वितिं प्रति नवेत्सिम्न्युवः प्रचिपेद्

दद्यात्तच्चदुरीरामि बुला द्वद्वाऽदशासंहिताः ।

पला नागबला बला सचपला जातीफलं लिङ्गिता

जातीपवकपत्रपत्रकनुवं तज्ज त्वचा संयुतम् ॥ २ ॥

विश्ववीरिणवारिवारिद्वरा वांशी वरी बानरी

द्राशा सेषुरग्नेषु राय वहती खर्जिका हीरिका ।

धान्याकं सकसेकं समधुकं शङ्काटकं जीरकं

पृथ्वीकाऽथ यवानिका वरटिका मांसी मिसी मेयिका ॥ ३ ॥

कन्देष्वन्न विद्विकाऽथ मुसली गन्धवंशन्धा तथा

कर्चूरं करिकेसरं समरिचं चारस्य बीजं नवम् ।

बीजं शालमिलासमवं करिकणाबीजं च शजीवजं

श्वेतं चन्दनमग्र रक्तमपि च श्रीसंज्ञपुष्पैः समम् ॥ ४ ॥

सर्वं चेति पृथक्षृथकपलमितं संचूर्ण्य तत्र हिपेत्
सुतं वक्ष्मुणीग्लोहरगनं सन्मारितं स्वेच्छया ।
कस्तुरीघनसारचूर्णमपि च प्राहं तथा प्रक्षिपेत्
पश्चादस्य तु मोदकान्वितवरचयेद् विषष्प्रसाणानन्थ ॥ ५ ॥
तान्मुक्तवपि सदा यथाऽनलबलं मुखीत नाश्लं रसं
पूर्वस्मिन्द्विते गते परिणति प्राप्तोजनाहृतयेत् ।
नित्यं श्रीरतिवलभावयकमित्यं यः पूरपाकं भजेत्
स स्थाद्वीयविवृद्धिवृद्धमदनो चाजीव शक्तो रतौ ॥ ६ ॥
दीपार्विनवैलवान्वली विहरते हृष्टः सुपुष्टः सदा ।
बृद्धो योदपि युवेव सोऽपि रुचिरः पूर्णेन्दुवस्तुन्द्रः ॥

रतिवलभपुण्याक—दक्षिणी सुपारी दस पल लेकर मछीमाति करत कर उसे लल के साथ रेखित करके चूर्णकर रस में छान ले तथा जितना चूर्ण हो उसके अठगुना शुद्ध गोदुरध एक अंजडि (आधामानी) देकर पकावे लव पाक पूर्ण हो जावे तब उसमें आधा तुला (५० पल) शुर्करा, मिलाकर पाक की विविसे अनिन पर पाककर आसन्न पाक होने पर उसमें अनेक संहिताओं का निरीक्षण कर उनसे आदरपूर्वक संग्रह किये हुए बहुत से द्रव्यों के चूर्ण जिवै कह रहा हूं उनको उसमें प्रक्षेप देवे—इलायची, कलही, वरिआरा, पीपल, जायफर, शिवलङ्घी, आविनी, तेजपात, तालीसपत्र, दालचीनी, सौठ, खस, सुगन्धवाणी, नागरमोथा, इरड, वहेडा, आवडा, वंशकोचन, शतावरी, केवर्च के बीज, दाढ़, तालमखाना, गाखरु, बड़ी कटेरी, खजूर के फल अथवा छुहाडा, खिरनी, धनिया, कसेल, मुलहठी, सिंधाडा, जीरा, वडी इलायची अथवा कुण्डलीरा, जवाइन, कुसुम्भ के बीज, जटामासी, सौंफ, मेथा, विदारीकन्द, मुसली, असगन्व, कच्चर, नागकेसर, मरिच, चिरौंबी, सेमर के बीज, गजपीपल, कमल के बीज, इवेत चन्दन, इक्क चन्दन और लवंग के इलक्षण चूर्ण को पृथक् २ एक २ पल लेकर मिलावे, तथा इसमें इन उपरोक्त चूर्णों के साथ ही पारद बस्म वा रसासिन्दूर, वंगमस्म, नागमस्म, छोहमस्म, अन्नक अस्म उत्तम विषि से बने हुए लेकर इच्छानुकूल प्रमाण से अंथवा उपरोक्त औषधियों की माति एक २ पल ही लेकर मिलावे एवं कस्तुरी तथा कूरू का चूर्ण भी जितना हो सके अथवा एक २ पल ही मिलाकर एक २ पल (विश्व) प्रमाण का मोदक बना लेवे। इस मोदक को अग्निवक के अनुसार मात्रा से सेवन करने पर भोजन करना चाहिये तथा इसके सेवन करते समय अन्न रस द्रव्य नहीं अक्षण करना चाहिये। पहले का भोजन किया हुआ पदार्थ जब एक चावे तब औजन के प्रथम ही इसे अक्षण करना चाहिये। जो मनुष्य नित्य इस रतिवलभ नामक पूरा पाक का सेवन करता है उसके बीच की वृद्धि होती है, काग की वृद्धि होती है तथा गैयुन कम्म में धोड़े के समान शक्ति होती है। बृद्ध पुरुष भी इस पाक का सेवन करता है तो वह भी युवा के समान दीप अभिवाला, बलवान, बली-पलित रहित तथा हृष्ट-पुष्ट अङ्गोवाला होकर विचरण करता है तथा मनोहर पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर हो जाता है ॥ २-७ ॥

पृथिमित्र रतिवलभे यदि पुनः सम्यक्खुरासानिका
चतुर्थस्य च बीजमर्ककरभः पाथोधिशोषशत्या ।

सन्मारुपकलं तथा खसफलं त्वक्कचापि निच्छिप्यते ।

चूर्णधार्मी विजया तथा स हि अवेक्षामेश्वरो मोदकः ॥ १ ॥

कामेश्वर मोदक—इसी उपरोक्त रतिवलभ नामक पाक में यदि चूर्ण वाली औषधियों को

मिलाने के समय खुरासानी अबवाइन, धूरे का शुद्ध बीज, अकरकरा, समुद्रशेष, माजूफल, उसखस और दालचीनी का चूर्ण भी एक २ पल मिलाया जाय तथा सभूती चूर्णों के आसा शुद्ध बांग का चूर्ण मिला दिया जाय तो वही रतिवलभपाक कामेश्वर मोदक हो जावेगा यहां इसके गुण भी प्रायः वही हैं जो रतिवलभ पाक के हैं ॥ १ ॥

आप्रापाकः—

पक्षाग्रस्य रसद्वोणे सितामाढकसमिताश्च । वृतं प्रस्थिर्यिदं दृष्टाद्वाग्रस्य पलाष्टकम् ॥ १ ॥
मरिचं कुडवोन्मानं पिष्ठलीं हृष्पलोनिमताश्च । सलिलस्थाऽऽद्वकं दृश्वा सर्वमेतत्र कारयेत् ॥
पचेतन्मृग्नमये पत्रे दालदर्शीं प्रचालयेत् । चूर्णान्येषां द्विपेत्तप्र घनीभूतेऽवतारिते ॥ २ ॥
चान्याकं जीरकं चित्रं पत्रकं मुस्तकं द्वच्यद्य । बृहज्ज्वीरकमध्यत्र ग्रन्थिकं जायकेशरम् ॥ ३ ॥
पुलां पत्रीं लवकं च पृथग्रातीफलं पलम् । सिद्धशीते प्रदृशाच्च मधुनः कुडवद्वयम् ॥ ४ ॥
भज्येद भोजनादवैपलयार्थमिदं नरः । अथवा नियता नाम मात्रा स्वादेशात्मानलभ्म् ॥ ५ ॥
मानवः सेवनादस्य बाजिवस्तुरते भवेत् । समर्थो बलवान्पुष्टो हृष्टो नित्यं निरामयः ॥ ६ ॥
ग्रहणीं नाशदेवेष ज्ञाथं श्वासमरोदकम् । अङ्गपित्तं च पित्तं तु कुष्ठं वै पाण्डुतामपि ॥ ७ ॥

आप्रापाक—एके हुए आमों का स्वरस एक द्रोण, इवेत शक्करा एक आड़क, गोधूत एक प्रस्थ, सोंठ का चूर्ण आठ पल, मरिच का चूर्ण एक कुडव, पीपल का चूर्ण दो पल और जक एक आड़क, लेकर सबको एकत्र कर एक मिट्टी के पात्र में रखकर पाक की विविसे एवं उसके चूर्णों को प्रक्षिप्त कर गाढ़ा होने पर उतार लेवे। यथा चिरियां, जीरा, चिक्रमूल, लेजैपात, नागरमोथा, दालचीनी, स्थूल जीरक, पिष्ठा मूल, नागकेशर, इलायची, जाविनी, छोंग तथा जायफर प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल लेकर उसमें प्रक्षेप देवे, पाक सिद्ध हो जाने पर उतार कर शीतल होने पर उसमें दो कुडव मधु मिला देवे। इसे रात को भोजन के पूर्व ही एक पल प्रमाण की मात्रा से खाना चाहिये अथवा इसकी मात्रा की कोई निश्चित नहीं है अपिनवल के अनुसार खाना चाहिये। इसके सेवन से मनुष्य मैथुन कम्म में धोड़े के समान समर्थ होता है तथा सामर्थ्ये युक्त, बलवान्, हृष्ट पुष्ट एवं नियत नीरोग रहता है। इससे ग्रहणी का नाश होता है तथा क्षय, इवास, अरुचि, अङ्गपित्त, पित्त, कुउ तथा पाण्डुरोग भी नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

कामाचिन्संदीपनो मोदकः—

कर्षेण रसो गन्धकमन्नं च हृष्पारचिन्नं लवणानि पद्म ।
शटी च्यानीद्वयकीटहारी तालीसपत्राणि परं विषं च ॥ १ ॥
जीरं चतुर्जातिलवङ्गजातीफलं च कर्षयन्नेवमन्यत् ।
सुकृद्धसर्वं कटुकत्रयं च तथा चतुर्कृपमिदं निषोद ॥ २ ॥
धान्याक्यथीमधुक कसेरु फलं पृथक्षपञ्चपलं विदारी ।
दन्ती कणा चातिवलात्मगुसाबीजं तथा गोकुरकरय बीजम् ॥ ३ ॥
सद्बीजपूरेन्द्रजःसमानं समा सिता चौद्युतं च तुलयम् ।
कर्षेकमिन्दोरथ मोदकं च कामाचिन्सन्दीपनमेनमाहुः ॥ ४ ॥
वृद्धं तथा परतरं सततं सुदीप्यमानं निषेद्य मनुजः प्रमदासहस्रम् ।
गच्छेन्न लिङ्गशिथिलात्मगुपैति नित्यं नागाधिपं विजयते बलतः प्रमत्तः ॥ ५ ॥
वातानशीतिमथ पित्तभवांश रोगाश् श्लेष्मोत्थविशतिरजः परमगिन्मान्द्रम् ।
दुर्वारकाभलभगन्द्रपाण्डुरोगान्मेहातिसारकुमिहृदग्रहणीचिकारान् ॥ ६ ॥

कासज्वरश्वसनयचमकप्रतिश्याशूलामवातसहिताश्रुः समस्ताः ।
हृत्वा गदान्वृविधांस्तदपत्यकारी सर्वं पथ्यमति सर्वं सुखप्रदायी ॥

बथ्यं वलीपलितहारि रसायनं स्थान्मूलं लदेव कथितं परमं पवित्रम् ॥ ७ ॥

कामाचिनसन्दीपन मोदक—शुद्ध पारद, शुद्धगन्धक, अभ्रकमस्म, सज्जीखार, चिन्नमूल, पांचो मध्यक (पृथक् २), कच्चर, जवाइन, अजमोदा, वायविंग, तालीसप्त्र प्रत्येक एक २ कर्ष और नागकेशर, दाढ़ीनी, तेबपात, लवंग तथा आवफर प्रत्येक दो २ कर्ष तथा विपारा, सौठ, मरिच और पीपल, प्रत्येक तीन २ कर्ष, धनिया, जेठीमधु, कसेरु तथा हरड़, बडेड़ा, आँवला प्रत्येक चार २ कर्ष तथा शतावरी, विदारीकन्द, बरिबारा, इस्तिर्कण, पलाश, नागबला, केवाच के बीज और गोखरु के बीज प्रत्येक पांच २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर ले और बीज-पद्म सहित शुद्ध भांग का चर्ण सब चूर्ण के समान भांग ले और उसमें समान ही शर्करा, मधु, घृत को मिलावे तथा एक कर्ष कपूर का चूर्ण लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अभ्रक मिलावे तब अन्य २ चूर्णों को मिलाकर विधिपूर्वक मोदक बनाले । इस मोदक को कामाचिनसन्दीपन मोदक कहते हैं । इसे वृष्टी में परम वृथ्य कहा गया है । इसके सेवन करने से मनुष्य सहस्र खियों के साथ संमोग कर सकता है । नित्य मैथुन करने पर भी लिंग में शिथिलता नहीं आती है और उन इतना बढ़ता है कि मत्त गजराज की भी जीत सकता है तथा इसके सेवन से ८० प्रकार के बातरोग, ४२ प्रकार के पित्तरोग, २० प्रकार के कफरोग अत्यन्त बढ़ी हुई मन्दाचिन, कठिन कामला, मग्नदर, पाण्डु, प्रमेह, अतीसार, कूमि, हृद्रोग, ग्रहणीरोग, कास, ज्वर, श्वास, यक्षमा, कफ, प्रतिश्याय, शूल तथा आमवात के सहित समस्त पीड़ियों नष्ट होती है तथा यह मोदक बहुत प्रकार के रोगों को नष्ट करके सन्तान देने वाला है । सर्वत्र सभी अवस्थाओं में यह पथ्य है, सभी सुखों को देने वाला है, बक़ाकारक है, बली-पक्षितरोग को नष्ट करने वाला है तथा सभी रसायनों में मूलरसायनरूप परम पवित्र है ॥ ७-७ ॥

शतावरीघृतम्—

घृतं शतावरीगम्भीरे दशगुणे पचेत् । शर्करापिधप्लीचौद्वयुते तद् वृथ्यमुच्यते ॥ १ ॥
शतावरी घृत—शतावरी का कल्प एक भाग, मूर्च्छित गोघृत चार भाग और गाय का द्रव चारों भाग लेकर एकत्र कर घृतपाक की विधि से पाक सिद्धकर शर्करा, पीपल चूर्ण तथा मधु मिलाकर सेवन करने से यह घृत अत्यन्त वृथ्य (बीर्यवर्धक) होता है ॥ १ ॥

लघुवाजिगन्धासर्पिः—

कषकेन वाजिगन्धाय विपचेद् घृतमुत्तमम् । चतुर्गुणमजाचीरं दत्त्वोद्घृत्याथ शीतले ॥

सितां समां प्रदायाद्वालुष्टिवृद्धे ॥ १ ॥

लघु वाजिगन्धाघृत—असग्नध का कल्प एक भाग, मूर्च्छित गोघृत चारभाग और गोदुग्ध सोलह भाग लेकर एकत्र कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्धकर शीतल होने पर उसमें समानभाग शर्करा मिलाकर सेवन करने से वह, पुष्टि की वृद्धि होती है ॥ १ ॥

चन्दनादितैलम्—

दृद्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम् । पत्तमस्थ कालीयाग्रहणागुरुणि च ॥ १ ॥

देवद्रुमः सधरलः एषकं क्षमुकोडपि च । कर्पूरी शूलान्मिश्र लताकस्त्रिकापि च ॥ २ ॥

सिद्धकः कुक्कुमं गध्यं जातीपलकमेव च । जातीपत्री लवहङ्गं च सूचमैला महती तथा ॥ ३ ॥

कझोलफलकं ध्वन्त्रं पद्मकं नागकेशरम् । बालकं च तयोशीरं मांसी दाह सितापि च ॥ ४ ॥

सुरा कर्चूरकश्रापि शैलेयं भद्रमुस्तकम् । रेणुकाश्च प्रियद्वगुणं श्रीवासो गुणगुलुस्तथा ॥ ५ ॥

लाला नखश्च रालश्च धातकीकुसुमं तथा । अनिधपर्णं च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ६ ॥
एतानि शाणमानानि कल्पकीकृत्य शनैः पचेत् । सैलं प्रथमितं सम्यगेत्यपात्रे शुभे चिपेत् ।
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोडशीतिसमोडपि च । सुखी भवति शुक्राळ्यः श्रीणामस्थन्तव्यः ॥
वन्ध्याडपि लभते गर्भं षष्ठोडपि तरुणायते । अतुरः पुत्रमाप्नेति जीवेच्च शरदां शतम् ॥
चन्दनादिं महातैलं रक्तपित्तं द्वयं ज्वरम् । वाहं प्रवेदद्वैर्गन्धं कुष्ठं कण्ठं विनाशयेत् ॥ १० ॥

चन्दनादिं तैलं—देवतचन्दन, रक्तचन्दन, पत्तमाठ, कृष्ण अगर (यह दो बार लिखा गया है अतः दो माग लेना चाहिये), देवद्रुम, सरलकाठ, पदुमकाठ, पूरीफल, कपूर, कस्तूरी, छता कस्तूरी, शिलाजीत, काश्मीरी कैसर, गोरोचन, ज्वायफर, जावित्री, लवंग छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कंकोल मरिच, दारुचीनी, पचाख, नागकेसर, सुगन्धबाला, खस, जटामांसी, दाहचीनी, सुरामांसी, कच्चर, शिलाजीत, मद्रसोथा (नागरमोथा), रेणुका, प्रियद्वगुण, कमल वा राल, शुद्ध गुणगुल, लाल, नखी, राल, धाय के पुष्प, वच, मजीठ और तगर और मोम प्रत्येक एक २ शाण (चार २ माशा) लेकर विधिपूर्वक कशक कर तिल के मूर्चित तेल एक प्रथम में देकर तथा तेल के चतुर्गुण जल मिलाकर मन्द अविन पर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध करे, तेल मात्रशेष रहने पर उतार छानकर रख लेवे । इस तेल के शरीर में मर्दन करने से ८० वर्ष का इड भी शुखी एवं बीमांसे से परिपूर्ण हो कर खियों को अव्यन्त प्रिय हो जाता है । वन्ध्या खो भी इसके सेवन से गर्भवारण कर लेती है, नपुंसक पुरुष भी युवा की भाँति मैथुन करने की शक्ति बाला शो जाता है, पुत्रहित भी पुत्र प्राप्त करता है तथा सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहता है । यह मध्याचन्दनादि तैल रक्तपित्त, ध्वन्त्र, ज्वर, दाह, स्वेद की दुर्बलिंग, कुष्ठरोग तथा कण्ठरोग को भी नष्ट करता है ॥ १-१० ॥

महासुगन्धितैलम्—

कपूरागुरुचोचपत्रनलिकालाजातीशावतकी-पुष्पैः सप्तदलैलवालुसरलैः शैलेयमांसीपलवैः ।
प्रलाकुकुमरोचनादमनकैः श्रीवासजातीफलैः कङ्गोलकमुकोच्चामदमुराक्षान्तालवङ्गामयैः ॥

बालोशीरहरेणुकामलयजस्थीयेत्यचणावन्धैः

जीतीकोशकुलीरपद्मकनतैः स्पृक्षान्वितैः पालिकैः ।

लालायोजनवलिलोध्रसिल्लैतैलं विपाच्याडपि
तैलाभ्यक्ततुर्जरननपि भवेत्खीणां परं वस्त्रलभः ॥ २ ॥

शुक्राळ्यो द्विलमानन्वपतनयः षष्ठोडपि तस्युत्सुको

वन्ध्या गर्भवती भवेदपि तथा वृद्धाडपि सूते सुतम् ।

कण्ठस्वेदविच्छिकामलहरं दौर्गन्ध्यकुष्ठापहः

भविभ्यां परिकीर्तिं बहुगुणं तैलं सुगन्धं महत् ॥ ३ ॥

महासुगन्धित तैल—कपूर, अगर, दालचीनी, देजपात, सुगन्धबाला, लाल, कच्चर, धाय के पुष्प, छितकन की छाल, मुसब्बर, सरल काठ, शिलाजीत, जटामांसी, नागरमोथा, इलायची, काश्मीरी कैशर, गोरोचन, दौना, कमलपुष्प वा राल, ज्वायफर, कंकोलमरिच, पूरीफल, सुर आँवला वा नागरमोथा, कस्तूरी, सुरामांसी, बड़ी इलायची, लौंग, कुट, सुगन्धबाला, खस, रेणुका, देवतचन्दन, स्थोणेयक वा शुनेरा, चौरा, नख, जावित्री, काङडासिंगी, पदुमकाठ, तगर तथा स्तुकवा वा पिंडिशाक नामक सुगन्धित द्रव्य प्रत्येक एक २ पल लेकर कल्प करले और लाल मजीठ तथा लोय प्रत्येक का काय तेल के चतुर्गुण तथा तिल का तेल एक आडक (चार प्रथम) लेकर उपर्युक्त कल्प सहित इन कार्यों को तेल में डालकर लेलपाक करे, तेल मात्र शैल शेष रहने पर उतारछान कर रख ले । इस तेल के मर्दन करने से जिसका शरीर जर्जर हो गया हो वह वृद्ध

भी खियों का अत्यन्त प्रिय हो जाता है तथा वीर्य से परिपूर्ण, तेज युक्त तथा बहुत पुत्रों वाला होता है, नपुंसक भी मैथुन करने के लिये उत्थक रहता है, वन्ध्या जी गर्भवती हो जाती है, तथा बृद्ध भी पुत्र को उत्थक करते हैं। इस तेल से कण्ठरोग, स्वेदरोग, विचिंचिकारोग, कामज्ञारोग, दुर्गन्धि तथा कुष्ठरोग नष्ट होता है। इस महाशुगन्धित तेल को अशिनीकुमारों ने निर्मित किया था ॥ १-३ ॥

पञ्चवाणरसः—सूताभ्रलोहोरगवङ्गशङ्कपर्दिकाश्वेत्र समं विधाय ।

सूतार्धभागं कनकस्य दध्याद्वारत्रयं चीरविभावितं तद् ॥ १ ॥

पोस्तैस्तथा भावितमेकविशद्वारां तथा यष्टिसुवर्णकानाम् ।

लवङ्गकाकलकरविश्वजातीफलत्रिकं कोलकचन्दनानाम् ॥ २ ॥

एषां द्रवैर्भावय सप्तवारं पृथक्यथैक मृगनाभिकायाः ।

इसोऽयसुक्षः परमेश्वरेण श्रीपञ्चश्वाणो रतिशक्तिदो लृणाम् ॥ ३ ॥

पृतस्मादविकं च नारित भुवने वीर्याभिकं खीश्वरः-

मायुषकान्तिकरं हितं बहुमतां नणामुदारामनाम् ।

आश्रासिद्धमिदं रसायनवरं बहर्यं वयःस्थापनं

मेहप्लीहजलोदशश्मरिक्षापस्मादविष्वसनम् ॥ ४ ॥

पञ्चवाण रस—पारदभस्म, अब्रकभस्म, लोहभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, शङ्खभस्म और कौड़ीभस्म, प्रत्येक एक २ माग लेकर उसमें पारद के आधा स्वर्णमस्म मिलाकर सबको एकत्र खरल कर (पारदभस्म के स्थान पर रससिन्दूर भी दिया जाता है) दूध से तीन बार भावित करे पुनः पोस्ते के काय से २१ बार भावित करे, यथात् जेठीमधु और घटूरे के काय या स्वरस से पृथक् पृथक् २१ बार भावित करे, पुनः छब्बी, अकरकरा, सोठ, चमेली, अमला, द्विद, बहेड़ा, कहुल तथा चन्दन के काय अथवा स्वरस से पृथक् २ सात बार भावित करे तथा एक बार कस्तूरी के रस में भावित कर रख लेवे। इस रसको पञ्चवाण रस कहते हैं, इसे परमेश्वर ने मनुष्यों को रतिशक्ति देने के लिये बनाया है। इससे बढ़कर संसार में अधिक वीर्यवर्धक बुद्धिवर्धक, आयु तथा कान्ति वर्धक, बनी तथा उदार मनुष्यों के लिये हितकर अन्य औषधि नहीं है। यह आश्रासिद्ध औषधि है, वैष्णवी की आशानुसार सेवन करने से यह रस पूर्ण फल देने वाला है, रसायनों में ऐसे ही, बलदायक है, आयुस्थापक है तथा इसके सेवन से प्रमेह, पश्चीमा, जलोदर, अश्मरी तथा अपस्मार रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

चन्द्रोदयरसः—पलं मृदु स्वर्णदलं इसेन्द्रपलाष्टकं योदशा गन्धकस्य ।

शोणैस्तु कार्पासमवैः प्रसौनैः सर्वं विमर्शाय कुमारिकादिः ॥ १ ॥

तरकाचकुम्भे निहितं सुगाढे मूरकपंटेष्टद्विवसत्रयं च ।

पचेतकमाग्नै सिकतास्ययन्ते ततो रसः पललवशश्वरयः ॥ २ ॥

सौवर्णमेतत्सकलामयन्ते सर्वेषु योगेषु च योजनीयम् ।

निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव ॥ ३ ॥

जातीफलं योगामिन्द्रपुर्षं कस्तूरिकाया हह शाण एकः ।

चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य माषो भुक्षोऽहिवज्ञीदलमध्यवर्ती ॥ ४ ॥

मदोदृतानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकात्वं श्लथयस्यवश्यम् ।

श्रतं घनीभूतसतीत दुर्गं मृदुनि मासानि समण्डकानि ।

माशाच्चमिद्यानि इसेन्द्रप वस्थमानन्दहायीन्परपराणि चात्र ॥ ५ ॥

बलीपलितजाशनस्तनुभृतां वयःस्त्रभनः समस्तगदखण्डनः प्रतुरोगपञ्चाननः ।

गृहे च रसराहयं भवति यस्य चन्द्रोदयः स पञ्चशरदविष्टो मृगाहशां भवेद्वरुलभः ॥ ६ ॥

चन्द्रोदय रस—क्षीमलं मृदु स्वर्णदल एक पल, शुद्र पारद एष और शुद्राद्याधक सौकृद पल लेकर प्रथम पारद गव्यक की कज्जली कर उसमें स्वर्णदल मिलाकर रक्त कपास के पुष्प के साथ खरल कर पुनः कुमारी के पत्तों के स्वरस में खरल कर सूख जाने पर कांच के पात्र में रख कर उस पात्र पर गाढ़ी कपरमिही भक्तिमूलक चालाकर बालुका वन्न में रख कर तीन दिन तक कम से मन्द, मध्य एवं तीक्ष्ण अग्नि से पाक करे। इसके पश्चात् स्वांगशीत होने पर उसमें से नये पलघ के वर्ण के समान रक्त वर्ण का रस निकलेगा। यह सौवर्ण मिकराद्यक सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला है, इसे सभी योगों में देना चाहिये। इस रस को एक पल लेकर इसमें चार पल कम्बूर का चूर्ण तथा जायफर का चूर्ण, मरिच का चूर्ण, छौय का चूर्ण तथा कस्तूरी को एक २ शाण (चार २ माशा) पृथक् २ लेकर मिलाकर सबको एकत्र कर मलीमौति खरलकर रख लेवे। इसको एक माशा के प्रमाण की मात्रा से पान के पत्ते में रख कर खाने से पुरुष मदोन्मत्त सैकड़ों खियों के बड़े हुए गर्व को अवश्य शिथिल कर देता है। इसके सेवन करते समय औटाकर अस्थन्त गाढ़ी किया हुआ दूध, कोमल मास, बकरे के अण्डकोश, छड़क के बड़े पदार्थ तथा मिठाइया पद्धति में लेना चाहिये एवं अन्यान्य आनन्ददायक रचिकर पद्धति पद्धति सेवन करना चाहिये। इस रस के सेवन से बली-पलित रोग नष्ट होते हैं, आयुस्थापन होता है, सम्पूर्ण रोगों का नाश होता है। यह रोग समूह के लिये सिद्धि के समान है, जिस मनुष्य के पास यह रसों का राजा चन्द्रोदय रस रहता है वह काम से उन्मत्त रहता है तथा खियों का प्रिय होता है ॥ १-६ ॥

बृहपुष्पधन्वा रसः—

कनकहरजकान्तं ताप्यकं बृद्धिभावं द्विजकुवलयष्टीशालीनागवङ्ग्यः ।

ष्टिमधुपृथक्षण्ठं पुष्पधन्वा द्विज्ञा-रमयति बहुकान्तां दीर्घमायुर्बली स्थाव ॥

बृद्धपुष्पधन्वारस—स्वर्णमस्म एक आग, पारद भस्म दो आग, कान्तलौहमस्म तीन आग और स्वर्णमालिक भस्म चार आग लेकर एकत्र खरल कर तेजबल के फलों के काय, कमल के स्वरस, जेठीमधु के काय, सेमर की त्वचा के स्वरस वा काय तथा पान के स्वरस में पृथक् २ आवित कर रख ले। इस पुष्पधन्वा नामक रस को दो वल प्रमाण की मात्रा से योग्य, मधु, दूध तथा शर्करा के अनुपान से सेवन करने से बहुत सी खियों को योगने का सामर्थ्य होता है, दीर्घ आयु होती है तथा मनुष्य बलवान होता है ॥ १ ॥

बृहपुष्पधन्वा रसः—

हरजसुभगलोहान्यज्ञकं च त्रिभागं-कनकविजययष्टीशालीनागवङ्ग्यः ।

सितमधुष्टदुर्ग्यैः सेवितो वीर्यबृद्धि-रमयति बहुकान्तां पुष्पधन्वा रसः स्थाव ॥ १ ॥

लभुपुष्पधन्वा रस—पारदभस्म वा रससिन्दूर, नायभस्म और लोहभस्म प्रत्येक एक २ आग तथा अब्रक तीन आग लेकर एकत्र खरलकर घटूरे के स्वरस, योग के स्वरस, जेठीमधु के रस वा काय, सेमर की त्वचा के स्वरस वा काय तथा पान के स्वरस पृथक् २ खरल में मदन्न कर रख ले। इस रस को शकरा, मधु, दूध तथा दूध के अनुपान से सेवन करने से यह पुष्पधन्वा रस बहुत सी खियों के साथ रमण करने की शक्ति देता है ॥ १ ॥

मदनकामदेवो रसः—

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रसूतकगाधकम् । लोहं कम्बिवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्राया ॥ १ ॥

विमर्शकन्यकाद्रावैन्यसेत्काचमये घटे । विमुद्रय पिठीमध्ये धारयेत् सैन्धवैर्मृते ॥ २ ॥

बहिं शनैः शनैः कुर्यादेनैकं तु तदुदरेत् । स्वाङ्गशीतं च सब्दूर्यं भ्रावयेदर्कदुर्घकैः ॥ ३ ॥

अथगन्धा च काकोली वानरी मुसली लुरा । विवारं च रसैभाव्यं शतावर्याश्च भावयेत् ॥४॥
कस्त्रीयोषकपूर्णं कड्डोलेलालवद्ग्रन्थम् । पूर्वचूर्णदधुमांशमेतच्चूर्णं विभिन्नयेत् ॥५॥
सबः समां शकरां च दख्वा शाणोन्मितं पिवेत् । गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥६॥
अस्य प्रभावात् सौन्दर्यं बलं तेजो विवर्धते । तर्हाणि रसयेद् वृद्धो न च हानिः प्रजायते ॥७॥

मदनकामदेव रस—रौप्यमस्म ८ भाग, द्विरकमस्म २ भाग, सुर्वणमस्म ३ भाग, ताम्रमस्म ४ भाग, शुद्ध पारद ५ भाग, शुद्ध गन्धक ६ भाग तथा लौहमस्म ७ भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिलाकर खरलकर कुमारी के पत्तों के स्वरस में विधि-पूर्वक खरल में मर्दन कर कांव के पात्र में रखकर मुखमुद्दाहरण करके एक हँडी में रखकर सेवानमक के चूर्ण से भर देवे मन्दारिन से पाक करे अर्थात् चार पहर तक अविराम मन्द २ अधिन देता रहे त्वांगशीत होने पर निकाल कर शोशी के ओषधि को चूर्ण कर आप के दूध, असगन्ध के स्वरस, काकोली के स्वरस, केवाच के बीज के काथ, मुसली के स्वरस तथा गोखुरु के काथ वा स्वरस से पूर्ण २ तीन २ बार भावित कर पुनः शतावरी के रस से तीन बार भावित करे । पश्चाद् कस्त्री सौंठ, मरिच, पीपल, कपूर, कंकोल मरिच, इलायची और लौंग का समान मिलित चूर्ण लेकर उपरोक्त शोशी के चूर्ण अष्टमांश भाग मिलाकर खरल करे तथा सब मिलकर जितना हो उसके समान भाग रेतशकरा मिलाकर रख लेवे । इसका एक शाण (चार माशा) प्रमाण की मात्रा में दो पल गो के दूध के अनुपान से पान करे तथा मधुर रस युक्त भोजन करे तो इसके प्रभाव से सुन्दरता बढ़ तथा तेज बढ़ता है, वृद्ध पुरुष भी तरणी छी के साथ रमण करता है तो उसके शरीर की हानि नहीं होती है ॥ १-८ ॥

मदाराजवटीरसः—बीजं ब्रह्मतरोर्विधाय बहुधा खण्डं त्रिष्णामोषितं
शाये दुर्घवरेऽथ शुष्कमय तद्वन्धेन तिथ्यशिना ।
युक्तं काच्चटीयुतं द्वृतसुज्ञो योगेन च श्वान्तसः

सर्वं तस्य नियुहा काच्चटिरे भाष्णे सुखं स्थापयेत् ॥ १ ॥

तच्छैलं ब्रह्माश्च तु ताम्बूलीपत्राणि चरेत् । च्छिप्वा तत्र रसं वल्लमङ्गुलयन्नेण मर्दयेत् ॥ २ ॥
युक्त्या तां कज्जलीं सुखस्वा ताम्बूलं शीलयेद्दत् । शाकाग्न्तं माषपट्याक्षिर्जितं पद्धत्यमावरेत् ॥
अनेन योगराजेन चण्डोऽपि पुरुषायते । अपूर्ववच्छृतं गच्छेद्वनितानां मदागणान् ॥ ४ ॥
वलीपलितविश्वंसी योगोयं च्छुक्षुजित् । वातपित्तकातङ्गहस्तिपञ्चाननः परम् ॥

नास्यनेन समं लोकं किञ्चिदन्यद्वासायनम् ॥ ५ ॥

मदाराजवटी—पलास के बीजों को लेकर टुकड़े २ करके तीन पहर तक बकरी के दूध में मिजावे पश्चात् निकालकर सुखा कर इसमें पन्द्रहवां भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कांव के पात्र में रखकर विधिवत् कपरमिट्टी आदि करके अधिन पर रख कर उसका तेल वा सच निकालकर कांच की शोशी में रख लेवे । उस सत्त्वपीति तेल को एक वल्ल प्रमाण लेकर पान के पत्ते पर रख कर उसमें एक वल्ल प्रमाण शुद्ध पारद मिलाकर अङ्गुली से मर्दन कर जब कज्जली हो जावे तब उसे पान सहित खाकर पुनः पान लावे । इसके सेवन के समय पत्रशाक, अम्लद्रव्य, माष, लवण आदि त्वाग कर एव्य का सेवन करें । इस योगराज के सेवन से नपुंसक पुरुष भी पुरुषत्व को प्राप्त होता है तथा मदमत्त सौ लिंगों के साथ सम्मोग्य करने पर भी शक्ति का छास नहीं होता है तथा इसके सेवन से बली पक्षित रोग, क्षय रोग तथा कुष्ठ रोग को नष्ट करता है, वात-पित्त एवं कफ सम्बन्धी रोग को नष्ट करने के लिये तो यह इस प्रकार है जिस प्रकार हाथियों के लिये सिंह । इसके समान संसार में कोई दूसरा रसायन नहीं है ॥ १-५ ॥

पूर्णदुनामा रसः—

शालमवयुशैद्वैर्मर्द्यं पह्नैकं शुद्धसूतकम् । यामदूयं पचेचापि वस्त्रे बद्धवाऽथ मर्दयेत् ॥ १ ॥
दिनेकं शालमलीद्वैर्मर्द्ययिवा बटीकूटम् । वेष्टयेकागववश्याऽथ निविषेकाच्चभाजने ॥ २ ॥
भाजनं शालमलीद्वैर्मर्द्ययिवा यामदूयं पचेत् । बालुकायन्द्रसम्ये तु द्रवे जीणे समुद्धरेत् ॥ ३ ॥
द्विगुञ्जं भव्येत्प्रातानीगवरलीद्वलान्तरे । मुसलीं ससितां ऊर्णे पलेकं पायवेद्दत्तु ॥ ४ ॥
रसः पूर्णन्दुनामाऽथ स्वयवीर्यकरो भवेत् । कामिनीनां सहस्रैकं नरः कामयते भ्रुवम् ॥ ५ ॥

पूर्णदुरस—शुद्ध पारद को सेमर की त्वचा के स्वरस में पन्द्रह दिन तक मर्दन कर उसे वज्ज में बांध कर सेमर के रस में दो पहर तक अधिन पर पाक करे पुनः मर्दन कर सेमर के रस में दिन भर (चार पहर) खरल कर बटी बना लेवे पुनः उस बटी को पान के पत्तों में लेपेण कर कांच के पात्र में रख देवे पुनः उस पात्र को सेमर के स्वरस से पूर्ण कर उसे बालुका यन्त्र में रखकर दो पहर तक अधिन पर पाक करे जब उसमें का द्रव पदार्थ पच जावे (सूख जावे) तब उतारकर उससे ओषधियों को निकाल कर खरल कर रख लेवे । इस ओषधि को दो रत्ती के प्रमाण पान के पत्ते में रखकर प्रातःकाल खावे तथा सूसली का चूर्ण और शकरा को एक पल दूध में मिलाकर अनुपान करे । यह पूर्णदुनामक रस बींयं को भलीआँति उत्पन्न करता है । इसके सेवन से मनुष्य एक सहज खियों के साथ भोगने की शक्ति प्राप्त करता है ॥ १-५ ॥

रसभ्रस्मयोगः—

खर्परं धारयेद्वन्धं तैलवद्वह्निना व्यगम् । ततस्तदिन्द्रियेत्पूर्तं तस्मानं ततः परम् ॥ १ ॥
वर्षयेषुहोदध्याऽथ यावज्ज्वलति वह्निना । खर्परस्यान्तरं वह्निर्यदा उवलति केवलम् ॥ २ ॥
अथो वह्नि तदा मन्दं विश्वाय घटयेत्पुनः । लोहदध्याय भवेत्यावद्वस्म ततस्फटिकोपमम् ॥ ३ ॥
तद्वादाय प्रयोक्तव्यं रोगेषु सकलेष्वपि । अस्मिन्माण्यं च खण्डद्वयं च कासशासभर्गंदराः ॥ ४ ॥
व्रणाकाल विविधाः सबै वलयः पलितानि च । नश्यन्त्यनेन योगेन सर्वं शिववचोदितम् ॥ ५ ॥

रसभ्रस्म योग—एक मिट्टी के स्थापर में शुद्ध गन्धक (आवलासार) रखकर अधिन पर रखते, क्षणमर में जब गन्धक गल कर तेल के समान हो जावे तब उसमें उसी के समान भाग शुद्ध पारद मिलाकर लोहे की कल्पी से घोटा रहे तथा आंच देता रहे, जब खप्पर में (पारद गन्धक के स्थान पर) केवल अधिन अलता हुशा दिखाई दे तब अधिन मन्द करके उसे घोटा रहे जब उसमें फटिक के समान द्वेषत भ्रस्म हो जावे तब उसे उतार कर भ्रस्म को लेकर इसका प्रयोग सभी रोगों में करे । इसके सेवन से मन्दारिन, नपुंसकता, कास, श्वास, भग्नदर, अनेक प्रकार के ब्रण, बली एवं पलित रोग सभी नष्ट हो जाते हैं, यह सत्य है तथा शिव जी की कही हुई बात है ॥ १-५ ॥

ध्वजवृद्धिकरणम्—

त्वैद्रं चुद्रात्वगरमरिचैः पिप्पलीसैन्दवाम्यां-प्रयोक्तुप्यायवतिलुगुद्वयेत्पिस्त्रार्थमाषैः ।
इलचणीभूतैर्भवति भिलितं वजियान्वासनायैः-श्रावीशुर्योर्भुजकुवियरः दोषसां वृद्धिकारी ॥

ध्वजवृद्धिकर योग—मधु, छोटी कट्टरी, तगर, मरिच, पीपल, सेवानमक, अपामार्ग मूल, जौ, तिल, गुड, रवेत सरसों, उड़द तथा असगन्ध को समान भाग लेकर विधिपूर्वक इलक्षण चूर्ण करके लेप करने से, नित्य, कान, मुजा, कुच, शिर तथा लिङ्ग की वृद्धि होती है ॥ १ ॥

सकृष्टमातङ्गवलाबलानां वच्चाश्वगन्धागजपिप्पलीनाम् ।

तुरङ्गशत्रोर्वनीतयोगाल्लेपेत् लिङ्गं मुशलात्प्रमेति ॥ २ ॥

कुषादि लेप—कूट, नागधला, बला, बच, असगन्ध, गजपीपल और कनेर के मूल को समान भाग लेकर विधिवत् इलक्षण चूर्ण कर मिलाकर लेप करने से लिङ्ग मूसल के समान (स्थूल) हो जाता है ॥ २ ॥

ब्रह्मस्तुनम्—

स्मरणं कीर्तनं केऽपि: प्रेस्वरं गुणाभासाणम् । सञ्जलोऽध्यवसायश्च क्षिदानिर्वृत्तिरेव च ॥ १ ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विषयीते अहमचर्चमेतदेवाष्टलचणम् ॥ २ ॥

ब्रह्मग्रन्थम्—स्मरण (खो का स्मरण, एवं विषय-वासना सम्बन्धी वातों का स्मरण), वासना सहित नृत्यादि में प्रवृत्त होना अथवा विषय-सम्बन्धी गीतादि में प्रवृत्त रहना, खो से विषय-सम्बन्धी वात करना, कामयुक्त इष्ट से खो को देखना, खो से गोप्य सम्भाषण करना, खो सम्बन्धी अनेक वातों पर विचार एवं निश्चिति करना, कामवासना की दुसि का यत्न करना तथा मैथुन करना । ये मैथुन के आठ भेद मुनियों ने कहा है। इन आठों प्रकार के छक्षणों से निवृत्त रहना ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥ १-२ ॥

कामेश्वरः—

जातीफलं च सौराष्ट्री कृष्णधत्तृवीजम् । जातीपुष्पमफेनं च नारं हिङ्गुलमेव च ॥ ३ ॥
एतानि समभागानि स्वसकायेन मर्दयेत् । गुज्जामात्रां च वटिकां सितया सह भर्षयेत् ॥ ४ ॥

जातना कामेश्वरः प्रोक्तो रमते कामिनीशतम् ॥ ५ ॥

कामेश्वर रस—जायफर, फिटकिरी अथवा गोपी चन्दन, कृष्ण घूरे के शुद्ध बीज, जावित्री, शुद्ध अफीम, नागमस्म और शुद्ध हिङ्गुल को समान भाग लेकर विषिवत् चूर्णकर खस के काष के साथ मर्दन कर एक गुज्जा के प्रमाण की बटी बनाकर शकरा के अनुपान से मक्षण करने से यह कामेश्वर रस सौ खियों को भोगने की शक्ति देता है ॥ १-२ ॥

ब्रह्मेश्वरः—

रसं वज्रसमं कृत्वा चतुर्भागं च गन्धकम् । कुमारीरससंयुक्तं दिनमेकं तु मर्दयेत् ॥ १ ॥
मन्दिमध्यमतीवानिवालुकायन्नरगं पचेत् । अश्वगन्धामृतासारमोचारसशतावरीः ॥ २ ॥
गोचूराभाषी कूर्माण्डी वाराही पत्रमामाधी । विफला कंकटी सुखता वष्टीमधुसमन्वितम् ॥ ३ ॥
सर्वसाम्यं सितायुक्तं चूर्णं कलार्द्धसंयुतम् । गुज्जाचतुर्थां मात्रां गोचूरमनुपानतः ॥ ४ ॥
ग्रातहृत्याय सेवेत लवणाग्नं च वर्जयेत् । बहुमूत्रं मूत्रकृच्छ्रं रक्तमूलप्रसेहकम् ॥ ५ ॥
मधुमेहं चष्टशुक्रं नष्टलिङ्गं च नाशयेत् । सर्वमेहप्रशमनो वज्रेश्वरं हति स्मृतः ॥ ६ ॥

ब्रह्मेश्वर रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध वंग एक भाग लेकर वंग को अशि पर पिघलाकर पारद मिलाकर मर्दन कर उसमें शुद्ध गन्धक चार भाग मिलाकर मर्दन कर पुनः कुमारी पत्र स्वरस में एक दिन (चार पहर) मर्दन करे पश्चात् काष की शीशी में कपरमिठी कर बालु का थन्व में विषिपूर्वक रस कर कम से मन्द, मध्य एवं तीक्ष्णाग्नि से चार पहर तक पकावे, स्वागतीत होने पर उससे ओषधियों को निकाल कर रख लेवे तथा असम्बन्ध, गुरुच का सत्त, मोचरस, शतावरी, योखर, अंमला, पेठा, वाराहीकद, तेजपात, पीपल, अंमला, इरड़, वहेदा, ककड़ी के बीज, नागरमोथा और लेटीमधु प्रत्येक समान भाग लेकर उसमें चूर्णकर अतिनां हो उसके समान भाग शकरा मिलाकर इस मिलित चूर्ण में से आधा कर्ष लेकर उसमें उपरोक्त प्रस्तुत रस में चार रसी मिलाकर गोदुरुच के अनुपान से सेवन करे। इसका प्रातःकाल ही सेवन करना चाहिये तथा इसके सेवन के समय लवण तथा अम्ल रस को स्याग दे। इसके सेवन से बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमेह, मधुमेह, नष्ट शुक्र तथा नष्ट लिंग रोग नाश होता है तथा यह सभी ग्रमेहों को नष्ट करनेवाला है ॥ १-६ ॥

शतावर्यश्वगन्धा च वानरी मुशराली तथा । गोकण्टः शकराष्ट्रीरं पिवेश्वरेन्द्रियो नरः ॥ १ ॥

शतावर्यादि चूर्ण—शतावरी, असगन्ध, केवांच के बीज, मूसली और योखर को समान भाग

लेकर विषिपूर्वक चूर्णकर शकरा युक्त दूध के अनुपान से नष्टेन्द्रिय मनुष्य को पीना चाहिये। इससे नयुसकता नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

तिक्कगोक्षुरचूर्णेन साधितं छागलं पयः । पीत्वा सशकरद्वौद्रं शीघ्रं गच्छति पण्डता ॥ २ ॥

तिक्कगोक्षुरादि चूर्ण—तिल तथा गोखरु समान भाग लेकर चूर्ण कर बकरी के दूध में पका कर उसमें शकरा तथा मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र नयुसकता नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

सेवेत गोक्षुरं चूर्णं छागलीरेण साधितम् । शकरामधुसंयुक्तं शीघ्रं गच्छति पण्डता ॥ ४ ॥

गोक्षुर पयः—गोखरु का चूर्ण बकरी के दूध में पकाकर शीतल होने पर शकरा तथा मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से नयुसकता शोषण नष्ट हो जाती है ॥ ५ ॥

मिन्दूरं कनकं शीजं विजया चुरुवीजाके । जातीफलं जातिपत्रीं कुरुशिग्रमकम् ॥ ६ ॥
समुद्रशोषसंयुक्तं लवणं च तथैव च । विजयारसनैर्मध्यं थामसेकं प्रशस्यते ॥ ७ ॥

बद्रीवीजमात्रं तु शीशातं रमते मुखा ।

सिन्दूरादि योग—शुद्ध सिन्दूर, शुद्ध घूरे के बीज, शुद्ध भाग, गोखरु के बीज, जायफर, जावित्री कुड्डा सहित, शुद्ध अकीम, समुद्रशोष तथा लवण को समान भाग लेकर विषिवत् चूर्णकर एकत्र खरक में मर्दन कर शुद्ध भाग के स्वरस के साथ एक पहर तक मर्दन कर एक वैर के बीज के प्रमाण से लेकर भाग के रस में मिलाकर इन्द्रिय पर मर्दन करने से मनुष्य आनन्द पूर्वक सौ खियों के साथ रमण कर सकता है ॥ ४-५ ॥

अविष्णवोषं च सिद्धार्थश्वतुर्वलमितान् पृथक् ॥ ८ ॥

अर्धशिष्टां च तद्वृग्नं सार्यकाले पिवेश्वरः । विन्दुपातं न कुक्ते बाजीकरणमुत्तमम् ॥ ९ ॥

अविष्णवोषादि योग—सुमुद्र शोष तथा वैरेत सरसों दोनों पृथक् २ चार २ वर्ष (बारह २ रसी) लेकर चूर्ण कर गाढ़े दूध के साथ सार्यकाल पान करने से मैथुन के सप्तय मनुष्य का एक बुद्ध भी बीर्य नहीं गिरता है। वह बत्तम बाजीकरण है ॥ ६-७ ॥

समझस्योगः—

एुदं सूतं द्विद्वा गन्धं लोहपात्रेऽपिन्संस्थिते । आद्र्द्वयग्रोधदण्डेन चालयेद्दस्मातां नयेत् ॥

रक्किकाद्वितयं भुक्तं रेतः पुष्टिकरं पृथक् ॥ १ ॥

रसमस्म योग—शुद्ध पारद एक भाग तथा शुद्ध गन्धक दो भाग लेकर एक लोहे के पात्र को अग्नि पर रखकर उसमें एक हरा वरणद के ढण्डा से चलाता रहे वह चलाते चलाते अग्नि पर वह पारद-गन्धक भस्म के रूप में हो जावे तब उतार कर रख लेवे। इसे दो रसी प्रमाण की मात्रा से खाने से बीर्य अत्यन्त पुष्ट होता है ॥ १ ॥

बीर्यसंस्तम्भवती—

जातीफलं लवणं च जातीपत्रं सकूरुमम् । सूचमैला चाहिफेनं च त्वाकारकरभं तथाः ॥ १ ॥

प्रयेकं कर्षमात्राणि कर्पूरं शाणमात्रकम् । नागवश्लीलदरसैर्वंटी श्वणकसंनिभा ॥

बीर्यसंस्तम्भनी होषा बलवर्णाभिन्दीपती ॥ २ ॥

बीर्यसंस्तम्भवती—जायफर, लौंग, जावित्री, कादमीरी केसर, छोटी इलायची, शुद्ध अफीम, अकरकरा प्रयेक एक २ कर्ष और शुद्ध कपूर, एक शाण (चार भाग) लेकर विषिपूर्वक चूर्ण कर पान के पत्ते के स्वरस में मर्दन कर चले के समान बटी बनाकर सेवन करने से बीर्य का स्तम्भन होता है तथा वह, वर्ण एवं अग्नि दीप होती है ॥ १-२ ॥

कपिकच्छुपाकः—

निस्तुरं बाजीवीजं कृत्वा विशत्पलानि च । त्रिंशत्पलाणि सितां दत्त्वा तृतीय योग ॥ १ ॥
तुरुषादकसमायुक्तं मृदुना वहिना पिवेत् । यावहर्षप्रलेपः स्यात्तमस्वे चूर्णितं दिपेत् ॥ २ ॥

जातीफलं विकटुकं विग्राधं देवपुष्पकम् । अकरुकं जातिपश्ची कोकिलावीजकेसरम् ॥ ३ ॥
पुनर्नवा पले है ज मुसली साहिफेनकम् । पारदं लोहचूर्णं च त्वभ्रकं च पलाधर्मकम् ॥ ४ ॥
चन्द्रनायाहकस्तूरीकपूर्तं शाणमात्रकम् । पलाधर्मस्तयेत्त्र क्रमाङ्गीर्थवलप्रदम् ॥ ५ ॥

कपिकच्छ पाक—केवाच के बीज का छिल्का निकाल कर २० पल, चीनी १० पल तथा दूब २ आदक लेकर सबको पकव कर मन्द अविन पर पाक की विधि से पाक करे जब दूध गाढ़ा होकर करछुल में लगने लगे तब आगे लिखे हुए औषधियों के चूर्ण को उसमें मिलावे—जायफर, सौठ, मरिच, पीपुल, दालबीनी, इलायची, तेजपात, लौंग, अकरकरा, जाविनी, तालमस्ताना, नामकेसर तथा पुनर्नवा प्रत्येक दो दो पल तथा मुसली, शुद्ध अफीम, पारदमस्त वा रससिन्दूर, लौहमस्त, अग्रमस्तम प्रत्येक आधा २ पल और रक्तचन्दन, अगर, कस्तूरी तथा शुद्ध कपूर प्रत्येक एक शाण लेकर विधिवत इलक्षण चूर्ण करके उपरोक्त पाक में मिलाकर रख लेवे । आधा ४८ पल प्रमाण की मात्रा के कम से (बड़ाकर) मश्शन करने से बीचं तथा बल की वृद्धि होती है ।

अथ रसदैकृतियोगोऽभिलिख्यते

जनितविधिदाहे शीततोयाभिषेको मलयज्ञनसारो लेपनं मन्दवातः ।

तष्णदधि सितार्कं नारिकेलीकलाभ्यो मधुरशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ १ ॥

रस-वैकृति योग—पारदादि रसों के मश्शन से जो अनेक प्रकार के दाहादि विकार उत्पन्न होते हैं उसमें शीतल जल का अभिषेक (सिचन) करना चाहिये, मलयागिरि चन्दन तथा कपूर का लेप करना चाहिये, मन्द २ बायु का सेवन करना चाहिये, तरुण (मधुर) दही चीनी मिलाकर खाना चाहिये, नारियल का जल पीना चाहिये, मधुर रस युक्त तथा शीतल पेय पीना चाहिये । इसी प्रकार अन्य शीतल उपचार एवं पदार्थ का सेवन करना उत्तम है ॥ १ ॥

सौभाग्यसेवनादाङ्गिसितामधुकचन्दनम् । तुषोदरेन पातव्यं सर्वस्मिन् रसवैकृते ॥ २ ॥

सौभाग्यादि योग—शुद्ध सोहागा, चौराई शाक का भूल, चीनी, मुलाइठी तथा चन्दन को समान भाग लेकर विधिवत चूर्ण कर तुषोदक (भूसी के खोये हुए जल) से सभी प्रकार के रस विकार में पिलाना चाहिये । इसमें सभी प्रकार के रस दोष (पारद-वैकृति आदि) नष्ट होते हैं । छ्वाँच्च चेन्नुरसो देयः कपिधर्मं वा सितान्वितम् । कुमारीदल्लेपत्रं सर्वाङ्गेण प्रशस्यते ॥ ३ ॥ चीरं मधुसितोपेतं कायो वाऽमृतविन्दुकः । उपचारा अमी सर्वे प्रशस्ता रसतापिनाम् ॥

रसदाहे भ्रवेरस्वं पित्तज्वरभिषग्नितम् ॥ ४ ॥

पारा के सेवन से रस के विकार से) यदि वमन होने लगे तो ईख का रस पीना चाहिये अथवा चीनी के साथ मिलाकर कैथ का चूर्ण सेवन करना चाहिये, कुमारी के पत्तों का स्वरस तथा जमीरी नीबू का स्वरस सर्वाङ्ग में लेप करना चाहिये । मधु तथा चीनी मिलाकर दूध पिलाना चाहिये अथवा गुरुच पर्व बलपिण्डी का काथ पिलाना चाहिये । ये सभी उपचार पारा सेवन में सन्तुष्ट मनुष्यों के लिये लाभप्रद हैं । रस के कारण उत्पन्न हुए दाह (विकार) में पित्त ज्वर नाशक सभी किया करनी चाहिये ॥ ३-४ ॥

रससारः—मुक्ताक्षिदुम्बवङ्गभूतिसहितं वल्लं पृथक् स्वर्णकं

छिप्रासवतुगासितानवनितं चाउलोदयं सरमझयेत् ।

सज्जाते तृष्ण नारिकेलसलिलं ताकालिकं प्राशयेत्

सर्वस्मिन् रसवैकृते च गदितं ह्येतच्च योगामृते ॥ ५ ॥

रससार—मुक्तामस्त, मूगामस्त और वंगमस्त प्रत्येक एक २ बरल (३-३ रसी) लेकर उसमें स्वर्णमस्त पक वल मिलाकर मलीमाति खरल कर गुरुच के सत्त, वंशशोचन, चीनी तथा

रसदैकृतियोगः

दूध के मज्जन यथाप्रमाण सबको मिलाकर रख लेवे । इस ओषधि के खाने के पश्चात जब सुश हो तब नारियल का सधः निःसारित उक्तपान करे । सभी प्रकार के रस के विकार में ये योग अमृत के समान युग्मारी कहे गये हैं ॥ १ ॥

सर्वस्मिन् रसवैकृते हि शिशिरं श्वेच्छामधुपानादिकं
देयं तापशमाय दाहिमतरोद्ग्राणि दूर्वाशिषाः ।
संपेत्यामलया दृशीत च तदा श्वेच्छावशेन त्यजेद्
आवश्यूर्वलं भ्रवेष्टुतरं तवरिक्षियं न रेषुशेत् ॥ २ ॥

सभी प्रकार के रस (पारद) के विकार में शीतल जल का इच्छापूर्वक पान करना चाहिये, शीतल पेय तापशमन होने के क्षेत्रे देना चाहिये, अनार के कोमल पल्लव, दूब की जड़ तथा आँखें के फल को पीसकर पीना चाहिये तथा इच्छापूर्वक जब तक शरीर में पूर्व वल से भी अधिक वल न हो जावे तब तक ज्वों का स्पर्श तक नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥

यष्टीयदोलनिष्ठायो मधुना मधुरीकृतः । तीव्रपित्तज्वरोन्मादबाजानो रसदाहजित् ॥ ३ ॥

बहुचादि योग—जेठीमधु तथा परवल के विधिपूर्वक वने काथ को मधु के प्रक्षेप से मधुर (मीठा) कर पान करने से तीव्र पित्तज्वर के कारण उत्पन्न उन्माद तथा पारद के विकार से उत्पन्न दाह भी नष्ट होता है ॥ ३ ॥

छिन्नायष्टीघनोशीर्धान्यपर्पटवन्दनैः । रसदाहं जयेत्काथो खण्डवंशीकसंयुतः ॥ ४ ॥

छिन्नायष्टीघनोशीर्धान्यपर्पटवन्दनैः । रसदाहं जयेत्काथो खण्डवंशीकसंयुतः ॥ ४ ॥ छिन्नायष्टीघनोशीर्धान्यपर्पटवन्दनैः । रसदाहं जयेत्काथो खण्डवंशीकसंयुतः ॥ ४ ॥

चन्दनादि काथ—युग्म, जेठीमधु, नागरमेथा, खस, बनियाँ, पित्तपापड़ा और चन्दन को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ करके चीनी तथा वंशशोचन का प्रक्षेप देकर पान करने से रस के विकार से उत्पन्न दाह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

चन्दनोदीच्यक्षीतैश्च छायः खण्डोपलान्वितः । रसदाहं जयेत्याशु पित्तज्वरहरः परः ॥ ५ ॥

चन्दनादि काथ—रक्तचन्दन, सुगन्धवाला तथा पित्तपापड़ा के विधिवत वने काथ में शिशी का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र ही रस के विकार से उत्पन्न दाह नष्ट होता है । यह काथ परम पित्तज्वर नाशक है ॥ ५ ॥

दूर्वासोत्पलकिञ्चकमज्जिष्ठाशैलवालुकम् । लित्तासितमधुरीं च मुखते च्छदन्पद्मम् ॥ ६ ॥

तरसमं च भवेत्तीरं दृश्टप्रथमं विपाचयेत् । जीवकर्षभक्ती मेदा महामेदा तथेव च ॥ ७ ॥

काकोली क्षीरकाकोली मधुकी का मधुकं तथा । मुद्रपर्णीं माषपर्णीं विदारी रक्तचन्दनम् ॥ ८ ॥

शर्करामधुसंयुक्तं विद्वं विप्लावयेद्वृत्तम् । रक्षपित्तविकारेषु वातरक्षगदेषु च ॥ ९ ॥

चीणशुक्रे प्रदातात्मं वाजीकरणसुक्तम् । अङ्गदाहं शिरोदाहं उवरं पित्तसमुद्धवम् ॥ १० ॥

दूर्वादि धृत—दूब, नीलकमल का केशर, मंबीठ, एलआ का मुसम्बर, चीनी, श्वेत खस, नागरमोथा, रक्तचन्दन और पदुमकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्प कर उससे चतुर्णु एक प्रस्तु धृत लेकर उसमें समान भाग (एक प्रस्तु) गोदुरथ देकर धृतपाक की विधि से मन्द अविन पर धृत सिद्धकर उसमें जीवक, ऋषमक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुनका, मुलाइठी, मुद्रपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द और रक्तचन्दन का समान मिलित चूर्ण, शर्करा तथा मधु मिलाकर रख देवे । इस धृत को रक्षपित्त के विकार में वातरक रोग में तथा बीचं की छाँगता में देना चाहिये । यह उत्तम वार्जीकरण है । अङ्ग के दाह, शिर के ताप तथा पित्तज्वर को भी यह धृत नष्ट करता है ॥ ६-१० ॥

विकारो यदि जायेत पारदम्बलसंयुतात् । गन्धकं सेवयेत्त्र शोषितं विधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥

अशुद्ध पारद दोष की शान्ति—पारद के मधुयुक्त रह जाने से यदि सेवन करनेवाले के विकार उत्पन्न हो जावे तो विधिपूर्वक शुद्ध किया दुष्टा गन्धक का सेवन कराना चाहिये ॥ १२ ॥

गन्धकं माषयुग्मं च नागवल्लीदलैः सह । खादेव्येत्पारदग्रस्तो दोषशानितस्तदा भवेत् ॥१३॥

शुद्ध गन्धक दो माशा लेकर पान के पत्ते के रस के साथ खाने से पारद के कारण उत्पन्न दोष की शान्ति हो जाती है ॥ १२ ॥

अन्यच—

लाञ्छाकूप्याण्डस्पदांश्च तुलसीं शतपुष्पिकाम् । लवङ्गं वत्सनामं च गन्धकेन समाक्रम् ॥३॥
कर्षमात्रं पथो तुर्कं सर्वं तत्र पृथक् पृथक् । सर्वयोगोत्तरासाध्यः सूतदोषविकारनुत् ॥२॥

लाञ्छ, रवेत कूप्याण्ड (पेटा), शकंरा, तुलसी, सौफ, लवंग और शुद्ध वत्सनाम विष के व्याधासाध्य रसरस एवं चूर्ण के साथ माशा के अनुसार एक कर्ष प्रमाण तक पृथक् २ शुद्ध गन्धक को खाकर दूध का अनुपान करने से असाध्य पारद दोष भी नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

अन्यच—

नागवल्लीरसप्रस्थं भृङ्गराजरसं तथा । तु उत्तराश्च रसं प्रस्थं छागहुर्घं समाक्रम् ॥१॥
मर्दनं सवंगात्रेषु यामयुग्मं दिनत्रयम् । स्नाने शीतलतोयैन सूतदोषप्रशान्तये ॥२॥

पान का रस एक प्रस्थ, मांगरे का रस एक प्रस्थ, तुलसी का रस एक प्रस्थ तथा बकरी का दूध सबके समान (३ प्रस्थ) मिलाकर दोपहर तक सम्पूर्ण शरीर में तीन दिन मर्दन करे तथा शीतल जल से स्नान करे तो इससे पारद विकार (ताप-दाहादि) नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

अथ रसायनाधिकारः

तत्र रसायनस्य लक्षणमाह—

यज्ञराध्याधिविधविति वयःस्तःप्रस्थं तथा । चतुर्थं चूहं चूर्ध्यं भेषजं तद्रसायनम् ॥१॥

रसायन के लक्षण—जो औषधि तुड़ापा तथा व्याधियों का नाश करे, आयु को स्थापना करे, नेत्र को बल देवे, धातुओं को बढ़ाये तथा वीर्य में शक्ति प्रदान करे उसे रसायन कहते हैं ॥ १ ॥

रसायनस्य फलमाह—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तक्षणं वयः । देहेन्द्रियबलं कान्ति नरो विन्देद्रसायनात् ॥

रसायन के फल—रसायन औषधि के सेवन करने से मनुष्य की आयु की दीर्घता, स्मृति-शक्ति, बुद्धि, आरोग्यता, युवावस्था, शरीर तथा इन्द्रियों में बल और शरीर की कान्ति प्राप्त होती है ॥ १ ॥

तद्विमाह—

पूर्वं वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम् । प्रयुक्तीत भिषक्ग्राहः स्त्रियशुद्धतनोः सदा ॥

रसायन विधि—दैव सदा मनुष्य की आयु के पूर्व अथवा मध्य भाग में (१६ वर्ष से ७० वर्ष तक की अवस्था में) प्रथम स्नेहन देकर पश्चात् वमन-विरेचन से शरीर शुद्ध कर तब रसायन औषधि का प्रयोग करावे ॥ १ ॥

ताविष्टुदशरीरस्य युक्तो रसायनो विधिः । आभाति वासिति विलेष रक्षयोग हवाऽहितः ॥

रसायन का दोष—जिसका शरीर स्नेहन, वमन, विरेचन से शुद्ध नहीं किया गया हो उसको रसायन औषधि नहीं देनी चाहिये । जिस प्रकार मलिन वज्र पर पूर्णलपेण रंग नहीं आता है उसी प्रकार अशुद्ध शरीर पर रसायन का युग पूर्ण रूप से नहीं प्रकट होता है अथवा अहित भी करता है ॥ २ ॥

तदुदाहरणानि—

शीतोदकं पथः चौदं चृतमेकैकाशो द्विशः । त्रिशः समस्तमथ वा प्राक् पीतं स्थापयेद्युयः ॥

शीतल जल, दूध, मधु तथा घृतको पृथक् २ अथवा दो को एकत्र मिलाकर अथवा तीन को एकत्र मिलाकर अथवा सबको एकत्र मिथाकर नित्य प्रातःकाल सेवन करने से आयु की स्थिरता होती है ।

मण्डूकपण्याः स्वरसः प्रभाते प्रयोजय यदीमधुकस्य चूर्णम् ।

रसो गुदूद्यथासु समूलपुष्ट्याः कलकः प्रयोजयः स्वत्तु शङ्खपुष्ट्याः ॥ २ ॥

आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलादिनवर्णंस्वरवधंनानि ।

मेधानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषण च शङ्खपुष्टी ॥ ३ ॥

मण्डूकपण्यादिं योग—प्रातःकाल नित्य मण्डूकपण्यानि के स्वरस का सेवन, जेठीमधु के चूर्ण का सेवन, गुरुच के रस का सेवन तथा मूल-पृष्ठसहित शङ्खपुष्टी के कलक का सेवन आयुवधक है, रोगनाशक है इल, अग्नि, वर्ण, तथा स्वर को बढ़ानेवाला है, मेधाशक्ति को बढ़ानेवाला है तथा रसायन है । विशेष कर शङ्खपुष्टी अधिक मेधावधक है ॥ २-३ ॥

विशेषण तुगाढीयां पिपलया लघणेन च । त्रिफला सितया वाऽपि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥

त्रिफला रसायन—इरड़, बडेहा और आँमला का समान मिलित चूर्ण रसायन है, विशेष बंशश्लेषन के चूर्ण के साथ अथवा पीपल के चूर्ण के साथ अथवा सेंधानमक के साथ अथवा चीनी के साथ इसका सेवन करना रसायन है, यह रसायन का सिद्धप्रयोग है ॥ ४ ॥

सिन्धूस्थार्कराशुण्ठीकणामधुगुद्यैः क्रमात् । वर्षादिव्यमया प्रायया रसायनगुणैरिणा ॥ ५ ॥

ऋतु इरीतकी—सेंधानमक, शकंरा, सौंठ, पीपल, मधु तथा गुड़ के साथ वर्षा आदि छै ऋतुओं में यथाक्रम से हरीतकी का सेवन करना रसायन का युग करने वाला है ॥ ५ ॥

ग्रीष्मे तुल्यगुदां सप्तैन्धवयुतां मेधावनश्चाभवे

साधं शार्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषायस्मे ।

पिपलया शिशिरे वसन्तसमये चौदेण संयोजितां

राजन्मुद्दूच द्विरीतकीमिव गदा नश्यन्तु ते शत्रवः ॥ १ ॥

श्रीम ऋतु में द्विरीतकी को समान गुड़ से, वर्षाक्रतु में सेंधानमक से, शरदक्रतु में शकंरा से, देहन्त में सौंठ के चूर्ण से, शिशिरक्रतु में पीपल के चूर्ण से तथा वसन्त क्रतु में मधु से द्विरीतकी के चूर्ण को सेवन करे । इस प्रकार के द्विरीतकी के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

पुनर्नवस्यार्धपूलं नवस्य पिण्ठं पिवेद्यः पर्याप्तमासम् ।

मासद्युयं तत्त्विण्ठुं समां वा जीर्णोदिपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ २ ॥

पुनर्नवायोग—नवीन पुनर्नवा आषापल पीसकर दूध के साथ जो मनुष्य आधामास, दो मास, छै मास अथवा एक वर्ष तक पान करता है वह यदि जीर्ण शरीर वाला हो तो भी पुनः नवीन शरीर वाला हो जाता है । अर्थात् इसके सेवन से वृद्ध मी युवा की भाँति हो जाता है ॥ २ ॥

ये मासमेंक स्वरसंपिबन्ति दिने द्विने भृङ्गरजःसमुखम् ।

क्षीराशिनस्ते खलवीर्यगुद्यकः समाः शतं जीवनमाष्टुवन्ति ॥ ३ ॥

भृङ्गराजरस—जो मनुष्य एक मास पर्यन्त नित्य मांगरे के स्वरस का पान करता है तथा ऐवल दूध का पद्य करता है वह बलवीरे से युक्त होकर एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है ॥ ३ ॥

शतावरी तुषिणिका गुद्यन्ती सहस्रिकर्णी सहतालमूली ।

एतानि कृत्वा समभागशुक्तान्यायेन किं वा मधुनाऽवलिष्यात् ॥ ४ ॥

जरारूजामृद्युवियुक्तदेहो भवेत्परो वीर्यवलादियुक्तः ।

विभाति देवप्रतिमः स नित्य प्रभामयो भूरिविद्युद्गुदिः ॥ ५ ॥

शतावरीदि चूर्ण—शतावरी, मुण्डी, गुरुच, इस्तिकणं पलाश और भूसली को समान आग लेकर विद्युपूर्वक चूर्णकर गोपूर्ण अथवा मधु के अनुपान से चाटने से बृद्धता रोग, मृत्यु (अपमृत्यु) आदि से रद्दित होकर मनुष्य वीर्य तथा बल से युक्त होता है तथा वह मनुष्य नित्य प्रतिभाषुक (तेजस्वी) महादुष्मान् होकर देवता के समान शोभित होता है ॥ ५-५ ॥

पीताऽश्वगन्धा पथसाऽर्थमासं घृतेन तैलेन सुखाभ्युना वा ।

कृशस्थ पुष्टि बुपुषो दधाति नरस्य सरस्य यथाङ्गुरुषिः ॥ ६ ॥

अश्वगन्धा योग—अश्वगन्ध के चूर्ण को १५ दिन दूध, घृत, तेल, अथवा सुखोण्ड जल के अनुपान से पान करने से कुछ (दुर्बल) मनुष्य के शरीर को इस प्रकार पुष्ट करता है जिस प्रकार जल की वृष्टि धान्य को पुष्ट करती है ॥ ६ ॥

शिशिरे चाश्वगन्धायाः कन्दचूर्णं पथोन्वितम् ।

कासमति समध्वाय य स बृहोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥

शिशिरघृत में अश्वगन्ध प्रयोग—शिशिर घृत में अश्वगन्ध के मूल का चूर्ण दूध में मिला कर अथवा दूध में पकाकर मधु तथा घृत का प्रक्षेप देकर जो एक मास पर्यन्त पीता है वह वृद्ध मी हो तो युवा के समान हो जाता है ॥ ७ ॥

धूतामलकशर्करातिलपलाशबीजानि यः समानि शयनस्थितो मधुयुतानि सादेजिति ।

बलीपलितवर्जितस्तस्तनागुरुषो बली बृहस्पतिसमः पुमान्भवति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥ ८ ॥

आमलकयादि—गोघृत, आँवला का चूर्ण, शर्करा, तिल का चूर्ण और पलाश बीज के चूर्ण को समान लेकर मधु मिलाकर जो मनुष्य रात को सोने के समय खाना है वह शीर्ष ही बलीपलित रोग से मुक्त हो जाता है, युवा हो जाता है, दायी के समान बलवान हो जाता है तथा बृहस्पति के समान बुद्धिमान हो जाता है । यह भ्रुव है ॥ ८ ॥

असिततिलविमिश्रान्पत्त्वलवानभृत्येद्यः सततमिह पयोशी भृङ्गराजस्य मासम् ।

अवति च चिरजीवी झाधिभिर्मुक्तदेहो भ्यमरसहशकेशः कामचारी मनुष्यः ॥ ९ ॥

कृष्णतिलादि योग—कृष्ण तिल तथा आंगरे के कोमल पत्ते को छो मनुष्य निरन्तर एक मास तक खाता है तथा दूध का पथ्य करता है वह व्याधिरहित शरीर ब्राह्म चिरजीवी होता है । उसके केश अमर के बर्ण के समान कृष्ण हो जाते हैं तथा वह मनुष्य कामचारी हो जाता है ॥ ९ ॥

ससितया वच्याऽमलकैरथ त्रिकलया त्वथवा घृतमित्यते ।

कनकलोहरजः सद्दलं कृतं परभिदं हि रसायनमित्यते ॥ १० ॥

सितादि योग—शर्करा के साथ चव का चूर्ण अथवा आँवले का चूर्ण मिलाकर अथवा त्रिकला के साथ घृत मिलाकर उसमें इन योगों में से किसी योग के साथ स्वर्णमस्त, लौहमस्त तथा शुद्ध गन्धक समान मिलाकर सेवन करने से यह परम रसायन कहा गया है ॥ १० ॥

धात्रीतिलान् भृङ्गरजोविमिश्रान् ये भृत्येयुमेन्जाः क्षमेण ।

ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाद्य निर्व्याप्त्यामरणाद्येयुः ॥ ११ ॥

धात्रीतिलादि योग—आँवला, तिल तथा आंगरे को समान लेकर चूर्णकर मिलाकर जो मनुष्य नित्य भक्षण करता है उसके केश कृष्ण हो जाते हैं, इन्द्रियों निर्मल हो जाती हैं तथा वृद्ध पर्यन्त जीवन भर रोग से रहित हो जाता है ॥ ११ ॥

पञ्च भृत्यातकांशिक्षया शोधयेद्विविचउज्ज्ञे । कषायं च पिबेद्वीतं घृतेनाक्षोऽष्टालुकम् ॥
पञ्चवृद्धया पिवेद्यावस्तुतिं हासयेत्ततः । जीर्णेऽयादोदनं शीतं घृतलीरोपसंहितम् ॥ १२ ॥

पूतद्रसायनं मेध्यं बलीपलितनाशनम् । कुट्ठार्शक्तिभिर्दोषधनं दुष्टशुकविशेषनम् ॥ १३ ॥

वर्धमान भृत्यातक योग—पांच मिलावों को काटकर शुद्ध कर जल के साथ विधिवैक काष कर जब शीतल हो जावे तब घृत से ओठ तथा तालु को युक्त करके उस काष का पान करे तथा इसी भाँति पांच २ मिलावे को नित्य बढ़ा २ कर काष करता हुआ पान करे तथा नित्य पांच मिलावे तब तक बढ़ाता जावे जब तक सत्तर भिलावे न हो जावे, सत्तर हो जाने पर पांच २

भिलावे को प्रतिदिन न्यून करता जावे तथा अंत में पांच भिलावे जब हो जावे तब समाप्त कर देवे । तथा प्रतिदिन जप न्याय पच जावे तब चावल का भात शीतल कर उसमें घृत तथा दूध मिलाकर ज्ञावे । इससे मेवावृद्धि होती है, बलीपलित का नाश होता है, कुष, अर्ण तथा कुमिदोष नष्ट होते हैं तथा दूषित वीर्य शुद्ध हो जाता है ॥ २-४ ॥

गुदूच्यपामार्गविड्हशङ्किनीचाभ्याशुपिठशतावरीः समाः ।

घृतेन लीढवा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रादिनम् ॥ १ ॥

गुदूच्यादि योग—गुरुच, अपामार्ग, वायविंग, शङ्कपुष्पी, वच, इरड, सौठ और शतावरी प्रत्येक समान लेकर चूर्णकर घृत में मिलाकर चाटने से यह योग मनुष्य को तीन दिन में ही सहज इको स्मरण करने की शक्ति उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

आङ्गीवचाभ्याचासापिष्पस्यो मधुसैन्धवम् । अस्य प्रयोगारससाहायिकचरैः सह गोयते ॥ २ ॥

ब्राह्मवायि योग—ब्राह्मी, वच, इरड, अरुसा, पीपल, मधु तथा सेवनमक को समान भाग लेकर चूर्णकर सात दिन ही सेवन करने से मनुष्य किन्त्रों के साथ गाने लगता है वा किन्त्रों के समान गाने योग्य स्वर हो जाता है ॥ २ ॥

हन्त्याल्पितवस्मानाहचिदाहमोहखालित्यमेहतिमिराम्भसगुक्तोषान् ।

मुक्त्वा नरः सततसामलकीरसेन वृद्धोऽपि तेन च भवेत्तद्विरंसुः ॥ ३ ॥

आमलकी रस—निरन्तर आँवले के रस को सेवन करने से अम्लपित, वमन, अस्त्रि, दाह, मोह, खल्काटरोग, प्रसेद, तिमिर, अर्म तथा शुक्रदोष ये सभी नष्ट हो जाते हैं । तान वृद्ध मनुष्य भी इसके सेवन से तक्षणी को भोगने की इच्छा करता है ॥ ३ ॥

ओहगुण्डः—अयः पलं गुणगुलुक्र योद्ययः पलत्रयं व्योषपलानि पद्म ।

पलानि चाषौ त्रिकलारजश्च कर्ष लिहन् व्यास्यमरस्यमेव ॥ ४ ॥

लौह गुणगुलुक्र—लौहमस्त एक पल, शुद्ध गुणगुलु ३ पल, सौठ, मरिच और पीपल समान मिलित चूर्ण पांच पल और इरड, वहेड़ा, अमला का समान मिलित चूर्ण आठ पल, लेकर एकत्र मर्दन कर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से मनुष्य अमरत्व को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

गन्धकरसायनम्—

शुद्धो बलिगीपद्यसा विभाष्य ततश्तुर्जातिगुद्धिकाभिः ।

पद्याभ्याच्यौषधञ्चगराजैर्भाव्योऽष्टवारं पृथगाद्रकेण ॥ ५ ॥

शुद्धे लितां योजय तुर्यभावां इसायनं गन्धकरसायनम् ।

कर्णनिमत्तं सेवितमेति मर्यों वीर्यं च पुष्टि षडदेहविह्म ॥ ६ ॥

कण्ठं च कुषं विषदोषमुग्रं मासद्वयेनेह जयेत्प्रयोगः ।

घोरतिसायनं ग्रहणीपदं च हरेच इक्षु दृष्टशुलुकम् ॥ ७ ॥

जीर्णज्वरे मेहगणे प्रकृष्टं वातामयानां हरणे समर्थम् ।

प्रजाकरं केशमतीव कृष्णं करोति चेत्प्रतिचित्तार्थवर्षम् ॥ ८ ॥

गन्धकरसायन—शुद्धगन्धक लेकर गाय के दूध से (आठ बार) भावित करे पश्चात दाढ़ीनी, इलायची, तेजप्रात और नागकेसर के समान मिलित काष से भावित करे, पुनः गुरुच के स्वरस से, इरड, वहेड़ा, आँवला के काष से, सौठ के काष से, भागरे के त्वरस से तथा अदक के त्वरस से प्रत्येक से आठ २ बार भावित करे । इस प्रकार शुद्ध किये हुये गन्धक में समान भाग श्वेत शर्करा मिलाकर रख लेवे, इसे एक के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से मनुष्य का वीर्य नष्ट होता है, पुष्टि होती है तथा शरीर पर्ण अविन दृढ़ होती है । इसके सेवन ते कण्ठरोग, कुष,

अस्यन्त उग्र विषदोष ये सभी दो मास में ही नष्ट हो जाते हैं और कठिन अतिसार, ग्रहणी तथा कठिन शूल युक्त रक्तस्राव को भी यह नष्ट कर देता एवं जीर्णज्वर, प्रमेह तथा अत्यन्त कठिन बात रोगों को भी नष्ट करता है। यह रसायन सन्तानदायक है, केश को अत्यन्त कृष्ण करता है। इसे छै भास तक लगातार सेवन करना चाहिये ॥ १-४ ॥

रसायनं पर्वतज्ञामवीज वाराङ्गलतेलादिकराजिवर्जम् ।

ससोमरोगं सहस्रुष्टवृद्धि द्विरेच्च वै गन्धकराजयोगः ॥ ५ ॥

हरति सकलरोगान् गन्धकाख्यः प्रयोगो सृतसदाशनराणां प्राणदो दीर्घमायुः ।
तदनु विदितयोगो भस्मसूतं सहेभ रमयति त्रिदशानो देहदीर्षि सुरूपम् ॥ ६ ॥

इस गन्धक रसायन के सेवन के समय आर, अग्नि, तेल आदि तथा ककाराटक (करेका आदि) तथा राई त्याग कर देना चाहिये। सोमरोग तथा अण्डकोष वृद्धि रोग इस गन्धकराज से अवश्य नष्ट होते हैं। यह गन्धकराज-प्रयोग सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है। शूलक सदृश मनुष्यों को शक्ति प्रदान करता है तथा दीर्घायु करता है। यदि इसके साथ पारद भस्म (रस सिन्दूर) तथा स्वर्णमस्म भी मिलाकर सेवन किया जावे तो देवताओं के समान रमणीय, तेजयुक्त तथा सुन्दर रूप कर देता है ॥ ५-६ ॥

बीर्यस्य वृद्धि इदं देहवह्निमशीतिवातान् विनिहन्ति कुष्ठम् ।

प्रमेहदुषोदररोगजालं विशेषतो हन्ति तु सत्त्विपातम् ॥ ७ ॥
दोषज्वरं राजरुजं प्रमेहं पाण्डुश्यावासगुदाकुरादीन् ।

पृतान् हि रोगान् विनिहन्ति क्षीघ्रं रसायनं ज्विपत्तमीक्षरेण ॥ ८ ॥

यह गन्धक रसायन बीर्य को वृद्धि करता है, शरीर तथा अरिन को दृढ़ करता है, १० प्रकार के बातरोग को नष्ट करता है तथा कुष्ठ, प्रमेह, दुष दुर्दर रोग तथा अन्य रोग समूहों को तथा विशेष कर सन्तिपात को नष्ट करता है तथा दोष ज्वर (वातादि से उत्पन्न ज्वर), राजरोग (यस्मा), प्रमेह, पाण्डु, क्षय, थास तथा अशं इन सभी रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। यह रसायन महादेव ज्वों का कहा हुआ है ॥ ७-८ ॥

पूरण्डतेलमध्य निष्पफलादिथतैलमेतद्वायनमनामयकामकारि ।

यजोतिष्मतीकफलपलाशकलोद्धर्वं वा तैलं वलीपलितहारि भिषक्षदिष्टम् ॥ ९ ॥

तैल प्रयोग—पूरण्ड का तैल अथवा नीम के बीजों का तैल रसायन तथा रोगनाशक है। मालकांयनी का तैल अथवा पलास के फल का तैल वली—पलित को नष्ट करनेवाले हैं ऐसा यिषगाचार्यों ने कहा है ॥ ९ ॥

न केवलं दीर्घमिहाऽऽग्नुरशनुते रसायनं यो विविधं निषेवते ।

गति स देवविनिषेवितां शुभां प्रपृथते ब्रह्म तथैव चाचयम् ॥ १० ॥

रसायन सेवन का फल—जो मनुष्य विविध प्रकार के रसायनों का सेवन करता है वह केवल दीर्घायु ही नहीं प्राप्त करता अपि तु देवता तथा ऋषियों की शुभ गति को प्राप्त होता है। २ ॥

तैति रसायनाधिकारप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ रोगानुसारेणौषधस्यानुपानानि

**कैराताम्बुदपर्यटं ज्वरगदे तक्ष ग्रहण्यामया
तीसारे कुटजः कुमी कुमिरिपुर्वन्नमिकेऽरुकरम् ।**

पाण्डी किष्टमध्य त्वये गिरिजतु शासे तु भास्यौषधं
मेहे त्वामलरात्रिके तृष्ण जलं संतसहेमान्वितम् ॥ १ ॥

शूले हिङ्करल्खमामपवने तैलं स्वोमूर्त्युक्
धेष्ठा प्लीहि कणा विषे शुक्रतः कासे तु कण्टकारिका ।

वातस्थाविषु गुण्गुलुश्च लशुनः स्वाद्रकपित्ते वृषोऽ-
पस्मारे तु वचा सवागथ गरे हेमोदरे रेचनम् ॥ २ ॥

रोगानुसार ओषधि का अनुपान—उदर रोग में—चिरायता, नागरमोथा तथा पित्तपापड़ा का अनुपान, ग्रहणी रोग में—तक का अनुपान, अतीसार रोग में—कोरेया के छाल का अनुपान, कुमिरोग में—वायविंदंग का अनुपान, अर्श में—भिलावा का अनुपान, पाण्डुरोग में—मण्डूर का अनुपान, क्षय रोग में—शिलाजीत का अनुपान, श्वास में—ब्रह्मदंडी (वसनेठी) तथा सौठ का अनुपान, प्रमेह में—आंमला तथा हल्दी का अनुपान, उच्च में—सोने को तपाकर बुझाया दुआ जल का अनुपान, शूलरोग में—शुद्ध हींग तथा करज का अनुपान, वामवात में—गोमूत्र सहित परश्च के तेलका अनुपान, प्लीहारोग में—पीपल का अनुपान, विष रोग में सिरिस का अनुपान, कास रोग में—छोटी कटेरी का अनुपान, वातव्याधि में—शुद्ध गुण्गुल तथा लहसुन का अनुपान, रक्तपित्त में—अरूसा का अनुपान, अपस्मार रोग में—वच तथा बाही का अनुपान, विष दोष में—सुवर्ण भस्म का अनुपान और उदर रोग में—रेवन वस्तु का अनुपान देना चाहिये ॥ १-२ ॥

वाताले तु गुद्विकार्डित्वगते माषेष्ठरी मेदसि ।

स्त्रीद्राघमः प्रदरे तिरीटमरुचौ लुक्ने व्योऽन्धः पुरा: ।

**शोके मध्यमध्यालपित्तसज्जि तु द्राष्टाऽथ कृच्छ्रे वरी
कूर्माण्डान्धु द्वागामये तु विष्फलोऽन्मदे पुराणं इतम् ॥ ३ ॥**

बातरक्त में—गुरुच का अनुपान, अदित वात में—उदक की बनी पिट्ठी के वटक का अनुपान, मेद रोग में—मधु तथा जल का अनुपान, प्रदर रोग में—ओंक का अनुपान, अरुचि में—विजौर नीवू का अनुपान, ब्रण में—नीवीन गुण्गुल का अनुपान, शोक में—मध (मदिरा) का अनुपान, अम्लपित्त में—दाढ़ का अनुपान, मूत्रकृच्छ्र रोग में—शशावरी तथा देवते कूर्माण्ड का जड़, नेत्र रोग में—विषफला का अनुपान और डन्माद में पुराने घृत का अनुपान देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुष्ठे खादिरसारवायथ पयो निद्राद्वये माषिषं

सिंत्रे वाकुचिक्षयजीर्णसज्जि तु स्वापो भये तोषण्यम् ।

छद्मै लाजमपूर्ध्वज्ञुविकृतौ नस्यं सतीष्ठौषधं

शूले पार्श्वमध्ये तु पुष्करजटा मूर्च्छासु शीतो विषिः ॥ ४ ॥

कुष्ठरोग में—खेरसार (खेदिर) के जल का अनुपान, निदाशय (निदिदा) रोग में—भैस के दूध का अनुपान। इष्टेकुष्ठ में—बाकुष्ठी के फल का अनुपान, अबीरं रोग में—निद्रा, भय में—सन्तोष, वमन में—धान का लावा तथा मधु का अनुपान, कर्वजनुगतरोग में—तीक्ष्ण धोषधियों का नस्य, पाइवशूल में—पुष्करमूल का अनुपान घौर मूर्च्छा में—शीतल विषि (सिंचन) करनी चाहिये ॥ ४ ॥

काश्ये मांसरसोऽस्मीषु गिरिभिदगुबमेषु शिग्रत्वचा

मोक्षाद्वय तु विद्रधी जतुरसैहिष्मामु नस्यं हितम् ।

दाहे शीतविषिभर्गन्वदरगदे तूर्वालिताष्ठासियनी

बृष्टे रासभलोहितैः स्वरगदे भव्यनिवतं पौष्करम् ॥ ५ ॥



COLLECTION OF VARIOUS
→ HINDUISM SCRIPTURES
→ HINDU COMICS
→ AYURVEDA
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with
By

Avinash/Shashi

[creator of
hinduism
server]

 KAPWING

कुशरोग में मांसरस का अनुपान, अद्यमोरी रोग में—पाषाण मेद (पथर चूर) का अनुपान, गुष्म में—सहिजन की त्वचा का अनुपान, विश्रवि में—रक्तमोक्षण, हिष्मा (षिक्का) में—लाल्च के रस का नस्य, दाइ में—शीतल किया, अगंदर रोग में—केन्द्रुये तथा आनंदी अस्थि को गदहे के रक्त से चिस कर और स्वर के रोग (स्वरभेदादि) में—मधु सहित पुहकरमूल देना चाहिये ॥

अनुपानगुणमाह—

यस्किंचिद्यौषधं वैद्यैर्देवं रोगानुपानतः । तत्तद्गुणकरं ज्ञेयमनुपानबलादिह ॥ १ ॥
अनुपान के गुण—जो ओषधि रोगों के अनुपान के अनुसार वैष देता है वह ओषधि उसी अनुपान के बल से उस रोग को नाश करने वाले गुण को करती है ॥ १ ॥

ग्रन्थसंग्रहकारस्याश्रिष्टः—

यावद्दृढ्योद्भवित्वमध्यरमणेऽर्द्दोऽविद्योतते
यावस्थस पयोधयः संयिरयस्तिष्ठन्ति पृष्ठे भूवः ।
यावच्चावनिमण्डलं फणिपतेरास्ते फणामण्डले
तावसञ्जितजः पठन्तु परितः श्रीयोगरत्नाकरम् ॥ २ ॥

इति श्रीयोगरत्नाकरः समाप्तः ।

ग्रन्थ संग्रहकार का आश्रिष्ट—जब तक इस संसार में आकाश पर मूर्य तथा चन्द्रमा अपनी ज्योति से प्रकाशित हैं, जब तक सातो समुद्र पर्वतों सहित इस भूमि (पृष्ठ) पर स्थित हैं, जब तक भगवान् शेषनाग के कण पर मृत्युमण्डल स्थित है तब तक सर्वत्र ही उत्तम वैष्य इस योग-रत्नाकर नामक ग्रन्थ को पढ़ते रहें ॥ २ ॥

इस प्रकार एषिष्टत श्री छमीपति शास्त्री आयुर्वेदाचार्य विरचित विष्णोतिनो हिन्दी दीक्षा में
योगरत्नाकर ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः